वैद्यनाथ-प्रकाशन

आयुर्वेद-सारसंग्रह

[आयुर्वेदीय औषधों के निर्माण, प्रयोग और गुण-धर्मों का विशद विवेचन]



प्रकाशक

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर

तृतीय संस्करण]   संवत् २०११

प्रकाशक : श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड,
१, गुप्ता लेन (जोड़ासाँकू), कलकत्ता – ६

मुद्रक : ज्ञानेन्द्र शर्मा ।
जनवाणी प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स लिमिटेड,
वाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता – ७

भूमिका

शरीर, इन्द्रिय, सत्त्व (मन) और आत्मा का संयोग है आयु किंवा जीवन और इस (जीवन किंवा आयु) का शास्त्र (आयुषोवेदः) यह आयुर्वेद मानव-जीवन के सर्वाङ्गीण विकास का ही शास्त्र है। फिर इसकी सीमा कैसी ?

'न ह्यस्ति सुतरामायुर्वेदस्य पारम्। तस्मादप्रमत्तः अभियोगोऽस्मिन् गच्छेत् अमित्रस्यापि वचः यशस्यं आयुष्यं श्रोतव्यमनुविधातव्यं च ×××॥'

इसी अनन्त आयुर्वेद का सार-संग्रह करने का प्रयत्न इस पुस्तक में किया गया है। प्रसन्नता की बात है कि ऊपर की उद्धृत पंक्तियों में आयुर्वेद का जो उदार दृष्टिकोण प्रतिपादित है, उसे "बैद्यनाथ-प्रकाशन" ने प्रारम्भ से ही निभाया है और बैद्यनाथ-प्रकाशन से निकले हुए अन्य मौलिक ग्रन्थो के समान प्रस्तुत संग्रह में भी वही दृष्टिकोण अपनाया गया है। "धन के लिए नहीं, सुख के लिए नहीं, अपितु प्राणियों के प्रति करुणा के उद्देश्य से" "आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव" वाले अपने प्राचीन आदर्श पर चल कर यह संस्था गत तीस वर्षों से आयुर्वेद के प्रचार-प्रसार का अत्यन्त स्तुत्य कार्य कर रही है। औषधों के निर्माण और बिक्रय में ही संलग्न न रह कर यह संस्था आयुर्वेद के अध्ययन और प्रैक्टिस को भी देश में बराबर प्रोत्साहन देती रही है।

मौलिक साहित्य का निर्माण जितना आवश्यक है, उससे साहित्य संकलन का कार्य किसी भी प्रकार कम आवश्यक नहीं। प्रस्तुत पुस्तक में आयुर्वेदीय औषध योगों के निर्माण एवं उपयोग का सरल-सुबोध वर्णन है। यह पुस्तक आयुर्वेदीय साहित्य के भाण्डार को समृद्ध करने के साथ-साथ चिकित्सकों के लिए भी सहायक का कार्य करेगी, यह मेरा दृढ़ विश्वास है।

इस वृहद् पुस्तक में सर्वप्रथम परम उपयोगी सांकेतिक तथा रासायनिक पारिभाषिक शब्दों तथा आयुर्वेदीय औषध-निर्माण में प्रयुक्त होने वाले यन्त्रों एवं पुटों का विशद वर्णन किया गया है। औषध की कृतकार्यता बहुत कुछ अनुपान पर निर्भर करती है, अतः अनुपान की व्याख्या तथा रोगानुसार संकेत कर रस-प्रकरण प्रारम्भ किया गया है। इस (रस-प्रकरण) में रस-उपरस, धातु-उपधातु, रत्न-उपरत्न एवं विष-उपविष प्रभृति के शोधन—मारण, गुण-धर्म एवं प्रयोग-विधि की विस्तृत व्याख्या तथा आयुर्वेद एवं यूनानी वैद्यक में प्रयुक्त होनेवाले सभी प्राणिज, खनिज एवं उद्भिज्ज द्रव्यों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

इसके बाद विविध प्रान्तों में प्रयुक्त होनेवाले चुने हुए आयुर्वेदीय तथा यूनानी योगों के निर्माण एवं प्रधान गुणों का दिग्दर्शन कराते हुए विविध रोगों में उनके प्रयोग-विधि का स्पष्टीकरण किया गया है। कषाय, चूर्ण, वटिका, आसव, अरिष्ट, घृत, तैल, अवलेह-पाक, लौह, गुग्गुल, मलहम आदि की निर्माण-विधि एवं गुण-धर्म लिखे गये हैं। सिद्ध योगों के वर्णन में इस बात का ध्यान रखा गया है कि पाठभेदों का भी यथासाध्य सकारण वर्णन हो। इस प्रकार यह पुस्तक चिकित्सकोपयोगी सभी औषध प्रयोगों का भाण्डार है, जो चिकित्सकों के लिए बड़ा सहायक है। ऐसी सुन्दर पुस्तक प्रकाशित करने के लिए मैं "श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड" के संचालकों को धन्यवाद देता हूँ और आयुर्वेदोन्नति की इनकी सभी योजनाओं की सफलता की कामना करता हूँ।

पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि आयुर्वेदीय अन्वेषण की दिशा में "श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०" ने एक नया कदम उठाया है और यह शीघ्र ही एक अन्वेषणालय (Research Institute), प्रयोगशाला (Laboratory) तथा आतुरालय (Hospital) स्थापित करने जा रहा है। वनस्पति-अन्वेषण के लिए काशी-विश्वविद्यालय के वनस्पतिशास्त्रवेत्ताओं की अध्यक्षता में कार्य प्रारम्भ भी हो गया है। मुझे विश्वास है कि अन्य आयुर्वेदीय प्रतिष्ठान भी इस संस्था का अनुकरण कर आयुर्वेद के प्रचार एवं प्रसार में हाथ बँटाएँगे।

अयोध्या शिवकुमारी
आयुर्वेदीय कॉलेज-बेगूसराय }

वैद्य रामरक्ष पाठक

प्रथम संस्करण का

प्रकाशकीय निवेदन

इस पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर शार्ङ्गधर संहिता का प्रसिद्ध श्लोक उद्धृत किया है :—

प्रसिद्धयोगा मुनिभिः प्रयुक्ता-
श्चिकित्सकैर्ये बहुशोऽनुभूताः।
विधीयते वैद्यवरेण तेषाम्।
सुसंग्रहः सज्जनरञ्जनाय ॥

इस से अन्दाज लगता है कि, जिस जमाने में शार्ङ्गधर संहिता जैसे महान् ग्रन्थ की रचना हुई थी, उस समय तक भी आयुर्वेद-शास्त्र इतना विस्तृत और गहन हो गया था कि इस ग्रन्थ के महान् रचयिता को उन प्रसिद्ध-प्रसिद्ध योगों पर एक अच्छा ग्रन्थ सर्वसाधारण के उपयोग एवं अध्ययन के लिये संग्रह के रूप में प्रकाशित करने की आवश्यकता महसूस हुई थी, जिन पर कि अनेक मुनियों ने प्रयोग किये थे, जो अनेक चिकित्सकों द्वारा अनुभूत थे और कुशल वैद्य जिनका उपयोग करते थे।

यह तो हुई इतिहास के आदिकाल की बात, जिन दिनों आयुर्वेद-शास्त्र अपने पूर्ण विकास की अवस्था में था और उसकी दुन्दुभी न केवल हिन्दुस्तान में, वरन् सम्पूर्ण एशिया, मध्य योरोप और अफ्रीका आदि अन्य महादेशों तक गूंजती थी और बाद में जन्म लेनेवाली चिकित्सा-प्रणालियों ने इस महान् चिकित्सा-प्रणाली से सिद्धान्त ग्रहण करके अपने-अपने क्षेत्रों में उनका प्रयोग प्रारम्भ किया था। किन्तु अब वर्तमान समय में, कुछ तो प्राचीन ग्रन्थों की अप्राप्यता और कुछ उपलब्ध ग्रन्थों की दुरूहता के कारण, और इन सब से भी अधिक इस कारण से कि आयुर्वेद-शास्त्र का ज्ञान न केवल आयुर्वेद के ही अनेक विशाल ग्रन्थों में विभक्त है, बल्कि संस्कृत वाङमय के अन्यान्य विभाग, जैसे दर्शन, साहित्य, व्याकरण, काव्य, नाटक आदि-आदि विषयों के ग्रन्थों में यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है—इन सब कारणों से वर्तमान समय में इसकी और भी अधिक आवश्यकता महसूस होती है कि वैद्यक विषयक सभी बातें एक ही ग्रन्थ में संग्रहीत हों, ताकि आयुर्वेद से सम्बन्ध रखनेवाले औषध-निर्माता, चिकित्सक, अध्यापक, विद्यार्थी और अन्य आयुर्वेदप्रेमी जनता बिना कठिनाई के, सर्वसाधारण की भाषा में लिखित एक "हैण्डबुक" से एतद्विषयक आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकें।

और वस्तुस्थिति में एक हैण्डबुक के रूप में ही इस पुस्तक के विद्वान् लेखक ने यह संग्रह किया है, ताकि आयुर्वेद प्रेमियों को जगह-जगह भटकने के बजाय एक ही जगह सम्पूर्ण बातें आसानी से मिल जायँ और वे अपने व्यस्त दैनिक जीवन में शास्त्रों के अधिक-से-अधिक निकट रह सकें। हमने कोशिश यह की है कि न तो यह ग्रन्थ बहुत बड़ा ही हो जाय और न इतना छोटा हो कि कोई आवश्यक बातें इससे छूट जायँ। इसके अतिरिक्त अन्यान्य प्रयास जो इस दिशा में अबतक हुए हैं, उनमें जो कुछ अपूर्णता वैद्यसमाज महसूस करता रहता है, वह भी पूरी हो जाय।

संस्कृत वाङमय के अन्यान्य अङ्गों की अपेक्षा आयुर्वेद पाश्चात्य विचारकों की दृष्टि से कहीं अधिक उपेक्षित रहा है। जहाँ ज्योतिष, दर्शन, वेद, उपनिषद्, पुराण और यहाँ तक कि भारतवर्ष की प्राचीन सामाजिक पृष्ठभूमि पर लिखे गये नाटक एवं काव्य तक योरोपियन साहित्य-विवेचकों की दृष्टि में आये और उनका अनुवाद जर्मन, फ्रेञ्च, इङ्गलिश, जेक आदि-आदि अनेक विदेशी भाषाओं में हुआ और इन सब के विषय में उन भाषाओं में आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखे गये। फिर चाहे वे उन्हीं विदेशियों के दृष्टिकोण से क्यों न हों और हमारे दृष्टिकोण से कितने ही अपूर्ण क्यों न हों, यह क्या महान् आश्चर्य की बात नहीं है कि संस्कृत वाङ्मय के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अङ्ग आयुर्वेद की ओर, जो न केवल मनुष्य के हित की दृष्टि से ही बहुत महत्त्वपूर्ण है, बल्कि विचारशैली और चिकित्सा-सम्बन्धी आधारभूत सिद्धान्तों में भी अद्वितीय है, उस आयुर्वेद की ओर किसी एक भी पाश्चात्य भाषातत्त्वज्ञ या संस्कृत-प्रेमी का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ और एक भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ उनके द्वारा आयुर्वेद के सम्बन्ध में नहीं तैयार हुआ।

"श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०" के एक प्रतिनिधि ने योरोप के एक सुप्रसिद्ध संस्कृतवेत्ता से जब इस विषय में प्रश्न किया, तब उनका जवाब था कि यह तो बहुत सीधी-सादी बात है—दुरूह विदेशी भाषा होने के कारण इस भाषा (संस्कृत) के सुबोध विषयों से आगे गहन विषयों में तैरने-उतराने की क्षमता हम में नहीं है; और आयुर्वेद जैसे टेकनिकल विषय की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिये संस्कृत भाषा पर जैसा अधिकार चाहिये, उसका सम्पादन हम विदेशियों के लिये बहुत दुष्कर है।

ये हैं योरोप के एक सुप्रसिद्ध संस्कृतवेत्ता के शब्द, जिनके संग्रहालय में दो हजार से भी अधिक हस्तलिखित संस्कृत पुस्तकें (आयुर्वेद को छोड़कर अन्यान्य) विविध विषयों पर थीं!

उस विद्वान् ने यह बात पाश्चात्य विद्वानों के लिये कही थी, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में हम भारतीयों के लिये भी बहुत अंशों में उपर्युक्त कथन सत्य है।

हमारे देश की वर्तमान परिस्थितियों के कारण तो यह बहुत ही आवश्यक हो गया है कि आयुर्वेद शास्त्र का सरल आधुनिक हिन्दी में निरूपण हो, ताकि सभी प्रान्तों के साधारण विद्यार्थी भी, बिना संस्कृत भाषा की जानकारी में पाँच-सात वर्ष गँवाये ही इस विषय को समझ सकें तथा उपयोग में ला सकें।

एक और भी बहुत बड़ा उद्देश्य "श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०" के सञ्चालक की दृष्टि में बैद्यनाथ-प्रकाशन के प्रारम्भ से ही रहा है। वह यह है कि योग्य विद्यार्थी अच्छी-ठोस बुनियाद पर आयुर्वेद का पूरा ज्ञान प्राप्त करके व्यवहारक्षेत्र में उतरें और अन्यान्य चिकित्सा-प्रणालियों के अप-टू-डेट चिकित्सकों के समक्ष खड़े हो सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये भी यह बहुत आवश्यक है कि आयुर्वेद का पूरा साहित्य देश की अपनी भाषा में सुगमता के साथ सबको प्राप्त हो सके। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन में भी यही भावना प्रधान रूप से प्रकाशकों के सामने रही है।

कलकत्ता

व्यवस्थापक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

द्वितीय संस्करण का

प्रकाशकीय निवेदन

आयुर्वेद-प्रेमी सज्जनवृन्द !

आप लोगों ने "आयुर्वेद-सारसंग्रह" के प्रथम संस्करण को जिस श्रद्धा और स्नेह से अपनाया है, उसी के फलस्वरूप आज हमें इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। वैसे तो कागज के दुष्काल के इस युग में इतने बड़े ग्रन्थ का प्रकाशन कोई आसान कार्य नहीं है, फिर भी हमने आयुर्वेद-प्रेमी जनता में "आयुर्वेद-सारसंग्रह" की अधिकाधिक बढ़ती हुई मांग को देख कर उसे निराश न होना पड़े, इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये इस कठिनतम कार्य को करने का साहस किया है।

आयुर्वेदशास्त्र के साररूप में संग्रहीत इस ग्रन्थ के द्वारा साधारण पढ़े-लिखे लोग भी आयुर्वेद जैसे उपयोगी और जीवन के लिये आवश्यक महत्त्वपूर्ण विज्ञान को सरल भाषा में भली प्रकार समझ कर अपना तथा रोग-पीड़ित जन-समाज का कल्याण कर सकते हैं। हमारी इस भावना को कितनी सफलता प्राप्त हुई है, यह तो इस ग्रन्थ के प्रति बढ़ती हुई जनता की माँग को देखकर सहज ही जाना जा सकता है।

इस प्रकार के जनोपयोगी ग्रन्थों के प्रति बढ़ते हुए जनता के अनुराग से, उसकी आयुर्वेद के प्रति कितनी श्रद्धा है, इसे भी सहज ही आँका जा सकता है। आयुर्वेद के द्वारा अतीत में हुए तथा वर्त्तमान में हो रहे जनकल्याण के कार्यों से भारतीय जनता को कितना लाभ है, यह सत्य किसी से भी छिपा हुआ नहीं है। भारतीय-जनता का आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा होने का कारण उस पर आयुर्वेद की उत्तम चिकित्सा-विधि के गुणों का प्रभाव ही है। आज नहीं कल सरकार को भी जनता की भावनाओं का आदर करना ही होगा। जनतन्त्र के इस युग में सरकार जनता की इच्छा के विपरीत कुछ मुठ्टी भर लोगों के स्वार्थसाधन के लिये सार्वजनिक हित के कार्यों की उपेक्षा नहीं कर सकेगी। जनतन्त्र-शासन में जनता की भावना ही सर्वोपरि मान्य होती है।

आयुर्वेद के प्रति जनता को भावनाओं को बढ़ाने के लिये हमें अधिकाधिक प्रयत्नशील रहने की अत्यन्तावश्यकता है। जन-समाज की अभिरुचि के अनुसार सर्वसाधारण के समझने योग्य सरल भाषा में आयुर्वेदीय साहित्य के प्रकाशन से सर्वसाधारण जनता आयुर्वेद के सिद्धान्तों को समझ कर उनसे लाभ उठा सकेगी

तथा इस प्रकार आयुर्वेद के पक्ष में सुशिक्षित समाज की भावनायें अधिकाधिक जागृत हो सकेंगी। "बैद्यनाथ-प्रकाशन" द्वारा प्रकाशित उत्तमोत्तम ग्रन्थों के द्वारा इस दिशा में कितनी उन्नति हुई है, यह तो सभी आयुर्वेद-प्रेमी सज्जन भली-भाँति जानते हैं।

"आयुर्वेद-सारसंग्रह" के द्वितीय संस्करण में इसको संशोधित और परिवर्द्धित रूप में ही प्रकाशित करने की हमारी प्रबल उत्कण्ठा थी, परन्तु ऐसा महत्त्वपूर्ण, किन्तु कठिन कार्य, जल्दी में होना सम्भव नहीं है, इसके लिये पर्याप्त समय की आवश्यकता है। इधर, इसके लिये आनेवाली ग्राहकों की दिनप्रतिदिन बढ़ती हुई माँग तथा उसकी पूर्त्ति के लिये निरन्तर आनेवाले तकाजों से तंग आकर शीघ्रतावश विवश होकर हमें "आयुर्वेद-सारसंग्रह" को इसके पूर्व संस्करण के कलेवर के अनुसार ही छपवाना पड़ा है। केवल अवलेह-मोदक-पाक-प्रकरण बढ़ाया है। आशा है, इसके आगामी तृतीय संस्करण में हम इसे संशोधित और परिर्वाद्धित रूप में प्रकाशित कर सहृदय ग्राहकों की सेवा में समुपस्थित कर सकेंगे।

निवेदक :

व्यवस्थापक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,

कलकत्ता।

तृतीय संस्करण का

प्रकाशकीय निवेदन

"आयुर्वेद सार संग्रह" के इस तृतीय संस्करण के साथ आयुर्वेदप्रेमी महानुभावों तथा हिन्दीभाषाभाषी जनता के समक्ष उपस्थित होते हुए हमें अतीव हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस वृहद् ग्रंथ का प्रथम प्रकाशन सम्बत् २००६ में हुआ और द्वितीय संस्करण सम्बत् २००८ में प्रकाशित हुआ था। इस थोड़े से समय में ही इसकी १० हजार प्रतियाँ जनसाधारण के बीच हाथोंहाथ पहुँच चुकी हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ की उप्योगिता एवं लोकप्रियता का यह एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। साथ ही इससे भारतीय जनता के हृदय की उस भावना का भी द्योतन होता है, जो राष्ट्रिय चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद के प्रति उस में वर्तमान वैज्ञानिक आक्रमणों के बावजूद अक्षुण्ण है।

किन्तु, भारतीय जनता की इस कोमल भावना एवं पुनीत श्रद्धा को बनाये रखने का दायित्व आयुर्वेदीय ओषधियों के काम करनेवाले प्रतिष्ठानों, वैद्यों तथा चिकित्सा-विद् लेखकों का है। क्योंकि आयुर्वेद-सम्बन्धी सभी ग्रन्थ संस्कृत भाषा में हैं। और संस्कृत जब जन-साधारण के वीच प्रचलित थी, उसके पठन-पाठन का समुचित राजकीय प्रबन्ध था, तब जन-साधारण भी इन ग्रन्थों के अव-लोकन-मनन द्वारा लाभान्वित होते थे। किन्तु, आज वैसी स्थिति नहीं है। न तो जनता के बीच संस्कृत भाषा का प्रचार ही है और न इसके पठन-पाठन का कोई विशेष आग्रह राज्य की ओर से ही किया जाता है। अतः अब आवश्यक है कि संस्कृत में प्राप्त उन सभी सामग्रियों को, ग्रन्थों, सूत्रों और मान्यताओं को हिन्दी में उपस्थित किया जाय। हमें हर्ष है कि बैद्यनाथ-प्रकाशन इसी लक्ष्य के साथ हिन्दी भाषा के पुस्तक-प्रकाशन क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ है और प्रारम्भ से अबतक अपने इस लक्ष्य की पूर्त्ति में यह अपनी पूरी शक्ति के साथ कार्य-संलग्न है। "आयुर्वेद सारसंग्रह" के इस तृतीय संस्करण को परिवर्तित एवं परिवर्द्धित रूप में प्रकाशित करने का हमारा विचार था। किन्तु ; इसी समय चिकित्सा-विषयक दो-तीन अन्य ग्रन्थों के सम्पादन कार्य में व्यस्त रहने के कारण एवं इस पुस्तक की अत्यधिक मांग के कारण तत्काल हमें ज्यों का त्यों प्रकाशित कर देना पड़ा। हम आशा करते हैं कि इसके चतुर्थ संस्करण में इसे यथा संकल्पित रूप देने का प्रयास करेंगे।

संवत् २०११ बि०



व्यवस्थापक,
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,
कलकत्ता।

दवाओं के सम्बन्ध में दो शब्द

पहली बुनियादी बात तो यह है कि औषध गुणकारी हो, उसकी गुणकारिता में जनता और वैद्य किसी को भी सन्देह नहीं हो, बल्कि दोनों एकमत हों। औषध गुणकारी कैसे होती है ? यह तभी गुणकारी और सर्वप्रिय बन सकती है, जब कि इस का निर्माण शास्त्रोक्त रीति से योग्य वैद्यों के निरीक्षण में हो, वे वैद्य ऐसे हों जिन्हें वनस्पतियों से लेकर समस्त मूलद्रव्य का पूर्ण ज्ञान हो। फिर औषध बनाने वाले मजदूरों को भरपूर पारिश्रमिक मिले, ताकि वे क्षुद्र प्रवृत्तियों से मुक्त रहें, उन्हें इसका ज्ञान रहे कि वे मानव-समाज के जीवन-मरण से सम्बन्ध रखने वाले कारखाने के श्रमजीवी हैं, कपड़े या सूत के कारखाने के मजदूर नहीं। इन सभी बातों का होना तभी सम्भव है जब औषध-निर्माण करने वाले कारखाने का मालिक स्वयं आयुर्वेदज्ञ हो तथा औषध-निर्माण-व्यवस्था का उसे पूर्ण ज्ञान हो। इसके अतिरिक्त वह एक जिम्मेदार नागरिक भी हो, जिसे मानव-समाज के प्रति औषध-निर्माताओं की जवाबदेही, अपनी संस्कृति और सभ्यता के प्रति उसके कर्त्तव्य, समाज के आर्थिक जीवन में दवा के कार-बार के स्थान आदि विषयों की भी समझदारी हो। क्योंकि औषधों का व्यापार केवल व्यापार ही नहीं है, यह मानवता की सेवारूपी परमार्थ का उत्तम साधन तथा महर्षियों द्वारा स्थापित एक धार्मिक कृत्य भी है। औषधों का व्यापार और विशेष कर आयुर्वेदीय औषधों का व्यापार, विना 'सेवाभाव' के चल नहीं सकता। सेवा-कार्य में भी उचित पारिश्रमिक लेने का विधान है ही। औषध की वृत्ति में उस विधान से जो अधिक लाभ करता है, वह पाप का भागी होता है और जो इस पवित्र लक्ष्य को सम्मुख रख कर कार्य करता है, उसे अवश्य सफलता मिलती है।

प्राचीनकाल में, जब कि चिकित्सा और औषध कोई व्यापार की वस्तु नहीं थी, तब इसे राजकीय सहायता पूर्णरूपेण प्राप्त थी। हिन्दू-राजत्वकाल की चिकित्सा और औषध-निर्माण को पूर्ण राजकीय प्रश्रय और प्रोत्साहन प्राप्त था। मुस्लिम काल में, जब चिकित्सा तो हकीमों के हाथ में और औषधि पंसारियों के हाथ में चली गई, तभी से चिकित्सा का स्वरूप व्यवसायी होने लगा। अङ्गरेजों ने तो चिकित्सा और औषध दोनों को पूर्णरूप से एक व्यापार बना दिया। आयुर्वेद को चिकित्सा-जगत में उत्पन्न हुई इस प्रवृत्ति से मुकाबला करना है और फिर से चिकित्सा और औषध-निर्माण तथा वितरण की व्यवस्था को 'सेवाभाव' का आधार प्रदान करना है। इसलिए यह आवश्यक है कि इस विषय पर पूर्ण राजकीय नियन्त्रण हो और इस कार्य में राज्य की प्रचुर सहायता भी प्राप्त हो।

यह प्रसन्नता की बात है कि सरकार ने यह निश्चय कर लिया है कि आयुर्वेदीय औषध बनाने और बेचने की जो परिपाटी अबतक प्रचलित थी, उसे वह बन्द कर देगी और ठीक शास्त्रीय नुस्खा (फारमूला) या अनुभूत योग (फारमूला) के अनुसार सरकार द्वारा निश्चित स्टैण्डर्ड की औषधें ही बाजार में बिक सकेंगी, जिनपर फारमूला (योग) भी लिखा रहेगा।

अभी तक तो यह होता था कि राज्य का किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं रहने के कारण, जिसकी जैसी इच्छा होती थी, औषध बना लेता था, उसका मनमाना नाम रख लेता और मनमाने मूल्य पर उसे बाजार में बेचता भी था। यह परिपाटी किसी चिकित्सा-पद्धति के मरणशील होने के लक्षण और उपक्रम थे। इसका कारण यही था कि इस देश में विदेशी सरकार थी। उसे तो यहाँ की चिकित्सा-पद्धति या औषध-निर्माण से कोई मतलब नहीं था। वह तो अपनी विदेशी पद्धति का प्रचार चाहती थी। इसलिए न तो उसने इस मनमानी औषध-निर्माण-प्रथा पर कोई नियन्त्रण रखने की आवश्यकता समझी और न शुद्ध औषध-निर्माण को प्रोत्साहन ही दिया। हाँ, राजकीय उपेक्षा रहने पर भी कुछ औषध-निर्माता ऐसे जरूर थे और अब भी हैं जिन्होंने आयुर्वेदीय औषधों की शुद्धता, उसके स्टेण्डर्ड और गुणकारिता को कायम रखकर समाज और जाति में उसे लोकप्रिय बनाये रखा। ऐसा करने से उन कारखानों को आर्थिक लाभ तो हुआ ही, साथ ही देशी चिकित्सा-पद्धति और देश का भी महान् लाभ और कल्याण हुआ। लेकिन इस प्रकार के औषध-निर्माताओं की कमी नहीं हैं, जो सस्ती से सस्ती हानिकारक औषधें बना कर भरपूर कमीशन का लोभ देकर औषध-बिक्रेताओं से उनकी बिक्री कराने की चेष्टा कर रहे हैं। इस में कोई सन्देह नहीं कि इस प्रकार के प्रयास में न औषध-निर्माताओं को और न एजेण्ट को सफलता मिल सकती है। औषध के व्यापार से तो औषधों की शुद्धता और गुणकारिता के बल पर ही पैसा पैदा किये जा सकते हैं, केवल अधिक कमीशन के लोभ में नकली दवा बेच कर कोई एजेण्ट अधिक दिनों तक लाभ नहीं उठा सकता। असली दवा के वेचने में कमीशन तो थोड़ा कम जरूर मिलेगा, लेकिन जो आमदनी होगी वह टिकाऊ और स्थायी होगी। साथ ही जैसे-जैसे आपके यहाँ से दवा खरीदकर रोगी चंगे होंगे, वैसे-वैसे आपकी दूकान की और आपकी ख्याति बढ़ेगी और ग्राहकों की संख्या भी बेहद बढ़ जायगी। इस प्रकार जितने ग्राहक बढ़ेंगे, दवाओं की बिक्री भी उतनी ही बढ़ेगी और फलतः कमीशन की रकम में भी वृद्धि होगी। कुछ दिन के बाद ही कमीशन की रकम बहुत मोटी हो जायगी। अङ्गरेजी में एक कहावत है—More profit, less sale, less profit, more sale; less profit, more profit.

अर्थात् "सौ की सवाई भली, एक की दुआई नहीं।" इसके अतिरिक्त असली दवा को बेचकर रोगी के प्राण बचाने का पुण्य और यश अलग से हाथ लगेगा।

इस प्रकार असली दवा बेचने वाले को हर तरह से लाभ ही होता है। इसके विपरीत नकली दवा बेचने वाले की बड़ी दुर्गति होती है। पहले तो उसे कुछ लाभ हो जाता है। लेकिन जो एक बार दवा खरीदकर ले जाता है वह फिर दूसरी बार दवा खरीदने उस दूकान पर नहीं आता और वह सर्वत्र उस दवा बेचने वाले और उसकी दवा की निन्दा करता फिरता है। नतीजा यह होता है कि दवाओं की बिक्री कम होते-होते बिलकुल बन्द हो जाती है। जब बिक्री ही बन्द हो जायगी तो अधिक कमीशन किस चीज का मिलेगा और एक बार जिस दूकानदार की बदनामी हो जाती है, असली दवा बेचने पर भी लोग उस पर विश्वास नहीं करते और उसका व्यापार बिलकुल उखड़ जाता है।

लेकिन प्रसन्नता की बात है कि अब इस प्रकार का गोरखधन्धा बहुत दिनों तक नहीं चलने का। अब तो सरकार ने जो नया कानून देशी दवाओं के लिये बनाया है, उसके द्वारा औषधों के निर्माण और बिक्री पर कठिन राजकीय नियन्त्रण रहेगा। अब तो अभी से नकली दवा बेच कर पैसा पैदा करने का क्षणिक लोभ त्याग देने में ही दवा-बिक्रेताओं का कल्याण है। विश्वासी दवाखानों की असली दवा बेचने में ही अब देश और व्यापार दोनों का हित है।

ओषधियों का व्यापार

आयुर्वेदीय ओषधियों का व्यापक प्रचार नहीं हो सकने तथा हर वैद्य द्वारा चिकित्सा के अलावा औषध-निर्माण के काम के लिये भी समय का अभाव नहीं रहने के कारण लोगों में यह वहम पैदा हो गया है कि बड़ी-बड़ी निर्माणशालाओं में जो ओषधियाँ बनती हैं, वे अशुद्ध और बाजारू होती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ कारखानों की गैर जिम्मेदारी के कारण ऐसा वहम लोगों में फैला हुआ है। लेकिन इस बात पर गौर करने की जरूरत है। वर्तमान समय का तकाजा है कि योग्य, अच्छे वैद्य सुन्दर चिकित्सा की व्यवस्था करें, रोगियों की अच्छी तरह परीक्षा कर तथा रोग की पूरी जाँच-पड़ताल कर रोग का निदान करें और नुस्खा लिखें तथा सच्ची और जिम्मेदार निर्माणशालाएँ असली ओषधियों का निर्माण करें। तभी आयुर्वेद दूसरी प्रचलित चिकित्सा-पद्धतियों के मुकाबले उन्नति कर सकेगा, तभी आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति का राष्ट्रीयकरण भी सम्भव होगा।

इसके अतिरिक्त हर वैद्य के लिये, हर स्थान पर यह सम्भव नहीं है कि वह सैकड़ों-हजारों प्रकार की वनौषधियों और खनिज द्रव्यों का अन्वेषण, संग्रह और

परीक्षण कर शुद्ध ओषधि-निर्माण के लिये असली मूल-द्रव्य प्रस्तुत कर सकें। नतीजा यह होता है कि हर वैद्य को बाजारू-मूल द्रव्य पर निर्भर रहना पड़ता है और उसके निर्माण के साधन भी बहुत सीमित होते हैं, जिससे ओषधियों की विशुद्धता की गारण्टी नहीं रहती। ठीक इसके विपरीत बड़ी-बड़ी निर्माण-शालाओं के लिये यह सम्भव ही नहीं, बल्कि आसान है कि वे वृहद् रूप से ओषधियों के काम में आनेवाली असली बनौषधियों, जड़ी-बूटियों और खनिज द्रव्यों की खोज करें, उनका संग्रह करें और उनकी विशुद्धता की परीक्षा विशेषज्ञों द्वारा करा कर शुद्ध ओषधियों का निर्माण करें। आज विदेशी दवाओं के निर्माण में ऐसा ही होता है और तभी उन्होंने समस्त संसार के बाजार और जनता पर अपनी धाक जमाने में इतनी सफलता पायी है।

ओषधियों की असलियत की परीक्षा के लिये राज्य की ओर से प्रबन्ध रहना चाहिए जैसा कि अंग्रेजी दवाओं में है। खुशी की बात है कि भारत सरकार ने देशी ओषधियों के लिये अब उचित प्रबन्ध किया है और इसके लिये उचित कानून भी बन गया है।

एक बात और सोचने की है। नकली दवा बनाने वाली निर्माणशालाएँ कितने दिन टिक सकती हैं? यदि दवा गुण नहीं करेगी, तो कोई क्यों खरीदेगा? एक आदमी को तो बहुत समय तक धोखे में रखा जा सकता है, सब लोगों को भी कुछ काल तक धोखे में रखा जा सकता है; लेकिन सब लोगों को सब काल के लिये तो धोखे में नहीं रखा जा सकता? निर्माणशालाएँ यदि ईमानदारी से दवा बनाएँ, तो उसमें ही नफा काफी है। दवा के निर्माण में जो लागत है उससे चौगुना दवा का दाम रखा जाय, तो खर्च काटकर २० फी सदी की बचत होती है। ओषधियों के उचित मूल्य पर २० प्रतिशत बेचने वालों के लिये कमीशन, १५ प्रतिशत प्रबन्ध-खर्च, १० प्रतिशत विज्ञापन-खर्च, १० प्रतिशत यातायात-खर्च, फिर थोड़ा पूँजी का व्याज—ये सब खर्च जोड़कर भी २५ फी सदी की बचत तो मजे में हो जाती है। ये बातें हम अपने कारखाने के ३३ साल के अनुभव से कह रहे हैं। हमारे विचार में इतना होने पर भी यदि कोई आदमी नकली दवा बनाकर बेचता है, तो अपने देश और समाज के साथ अन्यान्य ही नहीं करता, बल्कि व्यावसायिक दृष्टि से भी वह मूर्खता करता है।

एक दलील लोग और देते हैं। व्यक्तिगत रूप से जो दवाएँ वैद्य लोग बनाते हैं, वे महँगी होती हैं; इसलिये कारखाने की सस्ती दवा के बारे में कुछ लोग यह समझ बैठते हैं कि, वह सस्ती है तो नकली होगी। लेकिन वे यह नहीं सोचते कि कम ओषधि बनाने में और एक साथ अधिक ओषधि बनाने में लागत खर्च में कितना अन्तर पड़ जाता है। आयुर्वेदीय ओषधियों का निर्माण विशुद्ध और

सस्ता तभी हो सकता है जब इसका निर्माण अति वृहद् रूप से किया जाय। यह हमारा निज का अनुभव है। मान लीजिये हमें गिलोय सत्त्व तैयार करना है। अब आप देखें कि एक सेर सत्व तैयार करने वाले वैद्य को कितनी कठिनाई होगी। उसे एक सेर गिलोय के लिये बाजार पर ही निर्भर करना होगा। जिस भाव में जैसी भी गिलोय मिल जायगी, लेना पड़ेगा। लेकिन ठीक उसके विपरीत एक मन या इससे भी अधिक सत्व बनाने वाले के लिये यह सम्भव है कि जिस जङ्गल में जहाँ भी गिलोय मिलती हो वहाँ से सस्ते से सस्ते खर्च से उसे ट्रक पर लादकर लाये। इस प्रकार गिलोय का दाम भी कम पड़ा और चीज भी शुद्ध मिल गयी। फिर सत्व तैयार करने के साधन का प्रश्न ले लीजिये। हर वैद्य के लिये यह सम्भव नहीं है कि वह कीमती पात्र वगैरह का उचित प्रबन्ध कर सके। फिर मजदूर के लिये भी व्यक्तिगत रूप से ओषधि तैयार करने वाले को बहुत अधिक मजदूरी देनी पड़ती है। कारखानों में काम करने वाले मजदूर मासिक वेतन पर नियमित रूप से सुपरवाइजरों और निरीक्षकों की देखरेख में काम करते हैं, इसलिये खर्च तो कम पड़ता ही है, दवा भी शुद्ध बनती है। मेरे एक मित्र वैद्य ने मुझ से एक बार कहा कि भाई, मैं तो चोरी से तंग आ गया हूँ। उनकी दिक्कत यह थी कि यदि दवा में देने के लिये उन्हों ने सेर भर इलायची तौलकर दी, तो उसमें से एक पाव गायब, आधा सेर मिर्च दिया, तो दवा में छः छँटाक ही पड़ा। इतना ही नहीं कि मूल द्रव्य में से ये आवश्यक द्रव्य ही सिर्फ गायब कर दिये गये, बल्कि उसके बदले में दूसरी-दूसरी चीजें मिलाकर वजन पूरा कर दिया गया, और इस प्रकार ओषधियों को मिट्टी बना दिया। प्रायः ऐसा हुआ करता है। अच्छे कारखाने में यह दोष नहीं होता। वहाँ दवा बनानेवाले मजदूरों पर इतनी कड़ी निगरानी रहती है और उन्हें जीवन की सुविधा इस प्रकार दी जाती है कि इस प्रकार की घातक चोरी का खतरा नहीं रहता।

हम आपको सैकड़ों वैद्यों का उदाहरण दे सकते हैं जो पहले स्वयं थोड़ी मात्रा में दवा तैयार कर लेते थे और अब हमारी दवाएँ अपने रोगियों को देते हैं। उन्हों ने अपने अनुभव से बतलाया कि दवा तैयार करने की दिक्कत और झंझट से ही वे मुक्त नहीं हुए, बल्कि रोगियों की संख्या भी बढ़ी और उनका यश भी फैला। बैद्यनाथ ओषधियों की बिक्री का यही आधार है। जो दूकानदार या वैद्य आरम्भ में वैद्यनाथ दवाएँ ५०) रुपये की बेचते हैं, वे ही देखते-देखते ५००००) की बेचने लगते हैं। उनका कहना है, जो उनकी दूकान से एक बार दवा ले जाता है; वह दूसरी बार खुद ही नहीं आता, अपने साथ दो-चार और को भी ले आता है। असली ओषधि का यही सबसे बड़ा सार्टीफिकेट है।

हमें एक बड़ी मजेदार बात याद आती है। एक बार भारत की राजधानी

दिल्ली में एक बहुत बड़े वैद्यराज के यहाँ कई औषध-निर्माताओं के यहाँ से द्राक्षासव मंगवाया गया। परीक्षण के बाद वैद्यराजजी ने कहा, "बैद्यनाथ द्राक्षासव इतना स्वादिष्ट और मधुर क्यों है ? इसका उत्तर सीधा था। बैद्यनाथ द्राक्षासव के लिये जो द्राक्षा (मुनक्का) खरीदा जाता है, वह सैकड़ों मन एक साथ खरीदा जाता है और मेवा की सबसे बड़ी मण्डी में खरीदा जाता है। इसलिये उत्तम प्रकार का मुनक्का खरीदा जाता है। फिर उसके बाद बनाने और संग्रह करके रखने का प्रबन्ध ऐसा है कि उसका जायका और गुण जरा भी खराब होने नहीं पाता। यही कारण है कि हमारा द्राक्षासव सभी द्राक्षासव में उत्तम प्रमाणित हुआ।

अपने कारखाने के ३३ साल के अनुभव के बाद हम निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि आयुर्वेदीय औषधियों को अधिक लोकप्रिय बनाने, आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति को ठोस आधार प्रदान करने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि देश में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के समान ही सैकड़ों विश्वासी निर्माणशालाएँ खोली जाएँ, जो वृहद् रूप से वनौषधियों और खनिज द्रव्यों के अन्वेषण एवं परीक्षा के लिये रिसर्च करायें और योग्य तथा विद्वान् वैद्यों के निरीक्षण में विशुद्ध औषधियों का निर्माण करा कर औद्योगिक ढंग से देश के कोने-कोने में उसे पहुँचाने का प्रबन्ध करें। इन निर्माणशालाओं द्वारा प्रस्तुत औषधियों के स्टैण्डर्ड की परीक्षा तो सरकार का परीक्षण-विभाग करेगा ही। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० देश की सब से पुरानी और अनुभवी औषधि-निर्माणशाला होने के नाते सरकार एवं निर्माणशालाओं को हर प्रकार की सहायता करने को सदा तैयार हैं। क्योंकि हम इस कार्य को केवल व्यापारिक दृष्टि से ही नहीं देखते, इसे शुद्ध राष्ट्रिय और स्वधर्म की दृष्टि से भी देखते हैं। सर्व-साधन-सम्पन्न कारखाने के रहने पर भी मूल द्रव्यों के प्राप्त करने में तथा निर्माण-कार्य में जो कठिनाइयाँ श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० को होती हैं, उनको देखते हुए हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि विशुद्ध औषधियों के निर्माण में जहाँ तक हो सके, सहायता प्रदान करें।

औषधि-निर्माण कार्य में प्रवृत्त और पदार्पण करनेवाले मित्रों से भी हमारा अनुरोध है कि वे यदि शुद्ध औषधियों के निर्माण द्वारा आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति के प्रचार और प्रसार में सहायता करेंगे तो वे देश को सच्चे अर्थ में स्वतन्त्र और स्वावलम्बी बनाने का कार्य करेंगे। इससे उन्हें आर्थिक लाभ भी पर्याप्त होगा। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० का आदर्श सामने रख कर यदि आप काम करेंगे तो बाबा बैद्यनाथ अवश्य सफलता देंगे। सभी जानते हैं कि गत ३३ साल के भीतर श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० ने देश के कोने-कोने में आयु-

वेंदीय ओषधियों का प्रचार किया है और उसे घर-घर पहुँचा कर आयुर्वेदीय ओषधि की विशुद्धता और लाभकारिता की छाप भारतीय जनता के हृदय पर बैठायी है। इससे आर्थिक लाभ भी पर्याप्त हुआ है। हाँ, इस आर्थिक लाभ में से भी अधिकांश हमने आयुर्वेद की उन्नति तथा धर्मार्थ में ही लगा दिया है जिसे देश का बच्चा-बच्चा जानता है। यही कारण है कि इस कारखाने की और इसकी ओषधियों की प्रशंसा आज देश के नेता, विद्वान् और जनता—सभी करते हैं।

बैद्यनाथ दवाओं के बारे में दो शब्द

"श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०" की औषधों की गुणकारिता के बारे में हम अपनी ओर से आपको क्या कहें? इसकी ओषधि का सेवन कर लाभ उठाये हुए, मृत्यु के मुख से बचे हुए, लाखों-करोड़ों आदमी आपको इस देश में मिलेंगे। आप उन्हीं से पूछ सकते हैं। जन-साधारण ही नहीं; बैद्यनाथ दवाओं का अपने रोगियों पर व्यवहार कर यश और अर्थ दोनों उपार्जित करने-वाले हजारों चिकित्सक आपको देश के कोने-कोने में मिलेंगे। अर्थात् बैद्यनाथ औषधों की गुणकारिता के विषय में वास्तव में वैद्य-समाज और जनता एक-मत है। ३३ साल से इस कारखाने की बनी औषधों के उत्तरोत्तर प्रचार से बढ़ कर और कौन-सा दूसरा प्रमाण इसकी औषधों की गुणकारिता और विशुद्धता का हो सकता है?

इसका क्या कारण है?—इसका सब से पहला कारण तो यह है कि इस कारखाने के संचालकों में वे सारी योग्यताएँ और विशेषताएँ मौजूद हैं, जो एक आयुर्वेदीय औषध-निर्माता में होनी चाहिए। हम 'आप मियां मिट्ठू' बनने की बात आप से नहीं करते, ठोस प्रमाण के साथ बात करते हैं। अपनी औषधों को श्रेष्ठ से श्रेष्ठ बनाने के लिये हमारे कारखाने ने जो सतत रिसर्च के काम किये हैं, वह किसी से छिपे नहीं हैं। इसी काम में अधिकाधिक सुविधा प्राप्त करने के खयाल से श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन को ५० लाख की पूंजी लगाकर लिमिटेड कर दिया गया है। और, रिसर्च के कार्य को व्यापक और सबल बनाने के लिये "श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद-अन्वेषण-परिषद्" की स्थापना की गयी है, जिसमें हर साल भवन की ओर से ५० हजार रुपये दिये जायेंगे। इस परिषद् के द्वारा जो सब से बड़ा और महत्वपूर्ण कार्य होगा, वह है आयुर्वेदीय औषध-निर्माण के लिये 'फार्माकोपिया' तैयार कर औषधों का स्टैण्डर्ड (मान) निश्चित कर देना। यह कार्य अति महान् है और सरकार द्वारा ही इसे हाथ में लिया जाना चाहिये था। लेकिन राज्य के पास अभी जो आर्थिक साधन मौजूद है और उसके सामने जितनी उलझनपूर्ण समस्याएँ हैं, उनको देखते हुए इस बहुव्यय-साध्य कार्य

में विलम्ब की आशङ्का है। इसीलिये सरकार के सहयोग तथा प्रोत्साहन का वचन पाकर हमने इस महान् कार्य को आरम्भ कर दिया है। यदि भगवान की दया हुई और सरकार का समुचित साहाय्य और समर्थन प्राप्त रहा, तो हमारा यह प्रयास देशी ओषधि-निर्माण के उद्योग का कायापलट कर देगा। इसके बाद आयुर्वेदीय दवाओं की जो धाक और प्रतिष्ठा बाजार में जमेगी, उसी के बल पर हम अंग्रेजी दवाओं का सिक्का उखाड़ कर फेंक सकते हैं और उसके स्थान पर अपनी देशी दवाओं को बैठा सकते हैं। यह आज हमारे सामने बहुत बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य है। इस कार्य में समस्त आयुर्वेद प्रेमी जनता का सहयोग, समर्थन, साहाय्य अपेक्षित है।

विदेशी दवाओं की ऊपरी पैकिङ्ग आदि की लक-धक और आकर्षक की ओर भी हमें ध्यान देना होगा। यह ऐसी चीज है, जो हर आदमी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है। मनुष्य-प्रकृति सौन्दर्योपासक है। हर आदमी की आँखों को सुन्दर वस्तु प्रिय लगती है। मनुष्य जिस रूप में संसार में जन्म ग्रहण करता है, उसी रूप में नहीं रहता। अनेक प्रकार के वस्त्राभूषण पहनने के पश्चात् ही उसकी देह दर्शनीय होती है। इसी प्रकार औषधों को अच्छे शीशे या दूसरे उपयुक्त धातु के पात्र में भरकर, उनपर सुन्दर छपे लेबुल लगाने तथा आकर्षक खोलियों में बन्द करने से निश्चित रूप से वह मनमोहक हो जाती हैं। किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि बाहरी लक-धक के भीतर पोली चीजें शोभा पाती हैं। पवित्र आत्मा, स्वच्छ शरीर और सुन्दर वस्त्राभूपण ही वास्तविक सौन्दर्य है। उसी प्रकार शुद्ध औषध, स्वच्छ पात्र और आकर्षक पैकिङ्ग आदि के सहयोग से ही हम ऐसी चीजें बाजार में ला सकते हैं, जो विदेशी औषधों से मुकाबला कर उन्हें पछाड़ सकें। इस वास्तविकता की ओर से हम आँखें नहीं मूंद सकते। हमारे पूर्वज जिस रूप में आयुर्वेदीय औषधों को प्रस्तुत करते और अपने रोगियों को देते थे, उसका जमाना अब नहीं है। यह घोर वैज्ञानिक संघर्ष का युग है। इस संघर्ष में उसी पद्धति, नीति अथवा रीति को सफलता मिलेगी, जो वस्तुस्थिति को समझ कर कार्य करेगी।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड ने सदा इस ओर ध्यान रखा है। भविष्य में हम इसमें और भी परिवर्तन करने जा रहे हैं। ऐसे तो हमारी पैकिङ्ग आदि पहले से ही सुन्दर और आकर्षक थी, लेकिन हमने इसके लिए जो नयी योजना तैयार की है, उसके अनुसार अपनी खोली, पैकिङ्ग आदि को अधिक-से-अधिक सुन्दर और आकर्षक बनाने का प्रयत्न हो रहा है। कितनी औषधों की पैकिङ्ग आदि तो नयी योजना के अनुसार बन चुकी हैं। अन्य औषधों की भी शीघ्र तैयार हो जायगी।

रस-भस्मों की श्रेष्ठता

रस और भस्म आयुर्वेद के इंजेक्शन हैं। इनकी एक दो रत्ती खुराक ही १-२ घण्टे में अपना असर दिखाती है और इनकी छोटी-सी गोली लेने में अमीर स्वभाव के रोगी को भी अरुचि नहीं होती। इसीलिये आयुर्वेद शास्त्र में कहा गया है कि रस-भस्मों द्वारा चिकित्सा करनेवाला चिकित्सक उत्तम और जड़ी-बूटियों द्वारा चिकित्सा करनेवाला अधम माना जाता है। महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रान्तों में तो काढ़ा आदि काष्ठादि दवाओं की तरह ही भस्मों का व्यवहार मामूली रोगों में होता है। जुकाम-सर्दी लग जाने पर वनप्सा की तरह अभ्रक भस्म दी जाती है, जिससे रोगी जल्द अच्छा हो जाता है। काष्ठादि दवा के साथ रस-भस्मों का प्रयोग बहुत ही चमत्कारी फल दिखाता है। पाण्डु, संग्रहणी, शोथ, खून की कमी आदि में लोह या मण्डूरभस्म देना बहुत ही जरूरी है। सोना-भस्म के सिवा किस दवा में इतनी ताकत है, जो राजयक्ष्मा में फायदा दिखाये? मोती या प्रवाल भस्म के समान दिल को मजबूत करनेवाली कौन-सी दवा है? प्रमेह और धातुक्षीणता के लिए बंगभस्म से अच्छी कोई दवा नहीं है।

असेव्य भस्में और मिथ्या भ्रम

लोगों में यह झूठा भ्रम फैल गया है कि "कम उमर में भस्म न खानी चाहिए, भस्म खाने पर रोगी अच्छा तो हो जाता है, लेकिन जब फिर बीमार पड़ता है तो भस्म ही खाने से अच्छा होता है, भस्में फूट निकलती हैं" इत्यादि। इस भ्रम के कारण हैं वे धूर्त लोग, जो अशुद्ध और कच्ची लोह आदि की भस्में बनाकर ४-५ रुपये सेर में बेचते हैं। अशुद्ध और कच्ची भस्में कम उमर में भी नुकसान करती हैं और बुढ़ापे में भी।

कलकत्ते जैसे बहुत बड़े शहरों में जङ्गली कण्डों का मिलना बहुत मुश्किल है। हाथ से बने उपलों का मिलना भी कठिन है; क्योंकि बंगाल में बारहो महीने ओस पड़ती है। अतः कलकत्ते के बहुत से लोग पत्थर के कोयले से भस्म बनाते हैं। डाक्टरी दवा बनानेवाले भी धन कमाने की इच्छा से भस्म बनाने लगे हैं। ये लोग तेजाब (एसिड) से भी भस्म बनाते हैं। पत्थर के कोयले और तेजाब से बनी हुई भस्में कैसी होगी; यह तो सभी समझ सकते हैं। पत्थर के कोयले से बनाया गया भोजन गुण और स्वाद दोनों में घटिया होता है, तब धातु-भस्में तो पत्थर के कोयलों की तीक्ष्ण अग्नि से निश्चय ही विकृत हो जाती हैं। ये लोग आयुर्वेद पर विश्वास नहीं करते। अपनी दवा बेचने के लिए आयुर्वेद का नाम लेते हैं। नहीं तो जनता इनकी भस्में कैसे खरीदे? इन्हीं सब लोगों के कारण आयुर्वेदीय रस-भस्मों के सम्बन्ध में मिथ्या भ्रम फैलने लगा

है, अन्यथा हमारे रोज के खाद्य-पदार्थों में बहुत-सी धातुएँ मिली रहती हैं। केला, सेव आदि फलों में लोहा आदि धातुएँ पायी जाती हैं। डाक्टरी और हकीमी में दवाओं के रूप में धातुओं का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया जाता है। प्राचीन संहिताओं में बालक के जन्मते ही स्वर्णभस्म खिलाना लिखा गया है। अनुभव से व शास्त्र से यह साफ है कि धातु यदि शुद्ध है तो हर उमर में देने से लाभ करती है, जरा भी नुकसान नहीं करती।

बैद्यनाथ रस-भस्में श्रेष्ठ क्यों होती हैं ?

रसायन और भस्म बनाने के लिये रसायनशाला एक छोटे से गांव में है, जहाँ रसायन और भस्में बनाने के लिये सब तरह की सुविधाएँ प्राप्त हैं। इस जगह जङ्गल के कण्डे (वन्योपल—गोंइठे) हजारों मन आसानी से मिलते हैं और मजदूरी भी सस्ती है। यहाँ से सब से नजदीक का रेलवे स्टेशन २४ मील पर है। स्टेशन पर भी पत्थर के कोयलों की बिक्री नहीं होती। इस पर देहात में बिजली वा गैस का कोई प्रश्न ही नहीं। अतः शुद्ध आयुर्वेदीय पद्धति से भस्म और कूपीपक्व रसायन बनाने का जैसा स्वतन्त्र सुप्रबन्ध हमारे यहाँ है वैसा भारतवर्ष में किसी के यहाँ नहीं है। इस रसायनशाला के अध्यक्ष एक सुयोग्य वैद्य हैं, जो पारद के संस्कार और भस्म-निर्माण की विशेषता के लिये भारत-प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार बैद्यनाथ रसायन और भस्में सर्वश्रेष्ठ तैयार होकर हमारे कलकत्ता, पटना, झाँसी और नागपुर के कार्यालय में जाकर वहाँ पैक होकर तथा सिल-मोहर लगा कर एजेण्टों के पास बिक्री के लिये भेजी जाती हैं। भस्में जितनी पुरानी होती हैं उतनी ही ज्यादा गुणकारी होती हैं। हमारे यहाँ वजन में मनों भस्में एक साथ तैयार होती और पुरानी होने पर ही बिक्री की जाती हैं। कई दूसरे प्रतिष्ठित ओषधि-निर्माता भी हैं, जो रस-भस्में अच्छी बनाते हैं, परन्तु उनके मूल्य बहुत ज्यादा होने के कारण अमीर लोग ही खरीद सकते हैं, साधारण जनता नहीं। इसके विपरीत कई ओषधि-निर्माता बहुत ही सस्ते भाव में बेचते हैं जो किसी भी हालत में विश्वसनीय नहीं हो सकती। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा बनी हुई रस-रसायन और भस्में उत्तम श्रेणी की होने पर भी मूल्य में अधिक नहीं हैं। थोड़ा-सा अधिक मूल्य देकर आप बैद्यनाथ रस-भस्में खरीद कर निश्चित रूप से फायदा उठायेंगे। हम आपको पूर्ण विश्वास दिलाते हैं कि बैद्यनाथ रस-भस्म निश्चित रूप से फायदा दिखलाती हैं और माँ के दूध की तरह निर्दोष होती हैं। इस तरह की उत्तम भस्में डालकर बनाने वाले रस भी पूर्ण गुणकारी होते हैं। इन सब कारणों से भारतवर्ष में यह प्रसिद्ध हो गया है कि बैद्यनाथ रस-रसायन और भस्में सर्वश्रेष्ठ और पूर्ण गुणयुक्त होती हैं।

——०——

विषय-अनुक्रमणिका

मान परिभाषा

सांकेतिक परिभाषा

विषय — पृष्ठ

पथ्यापथ्य

अपथ्य

पथ्य में छाछ (मठा) का प्रयोग

रस (पारद)

गुटिका-वटी प्रकरण

पर्पटी प्रकरण

आसवारिष्ट प्रकरण

—०—

साहाय्य पुस्तकों की सूची

१ अनुपान तरंगिणी (अ० त०)
२ आयुर्वेद प्रकाश (आ० प्र०
३ आयुर्वेदीय विश्वकोष (आ.वि.को.)
४ आरोग्य प्रकाश
५ औषधगुणधर्मशास्त्र (औ.गु.ध.शा.)
६ खनिज विज्ञान (ख० वि०)
७ गद निग्रह (ग० नि०)
८ चरक
९ चक्रदत्त
१० चिकित्सा चन्द्रोदय (चि. चं.)
११ द्रव्यगुण विज्ञान (द्र. गु. वि.)
१२ धन्वन्तरि
१३ धन्वन्तरि निघण्टु (ध. नि.)
१४ धात्वंक
१५ वंगसेन
१६ वसव राजीयम् (व. रा.)
१७ वनौषधि चन्द्रोदय (व. चं.)
१८ वाग्भट्ट
१९ वैद्यचिन्तामणि (वं. चि.)
२० वृ० योगतरंगिणी (वृ. यो. त.)
२१ वृ० निघण्टु रत्नाकर (वृ. नि. र)
२२ भाव प्रकाश (भा. प्र.)
२३ भारत भैषज्य रत्नाकर (भा.भै.र.)
२४ भैषज्य रत्नावली (भै० र०)
२५ योगचिन्तामणि (यो० चि०)
२६ योगरत्नाकर (यो० र०)
२७ योग तरंगिणी (यो० त०)
२८ रस-भस्म सेवन-विधि
२९ रसतन्त्रसार (र० त० सा०)
३० रस विज्ञान (र० वि०)
३१ रस कामधेनु (र० का० धे०)
३२ रस योगसार (र० यो० सा०)
३३ रसायनसार (र० सा०)
३४ रस राजसुन्दर (र० रा० सु०)
३५ रसतरंगिणी (र० त०)
३६ रसरत्न समुच्चय (र. र. स.)
३७ रसेन्द्रसार संग्रह (र. सा. सं.)
३८ रस चण्डाशु (र० च०)
३९ शार्ङ्गधर संहिता (शा. ध. सं.)
४० सिद्धयोग संग्रह (सि. यो. सं.)
४१ हारीत संहिता (हा. सं.)

—०—

❀ श्री धन्वन्तरये नमः ❀

आयुर्वेद-सारसंग्रह

मङ्गलाचरण

ध्यात्वा शिवं परमतत्त्वविचारवेद्यम् ।
गौरीमभीष्टफलदां सगणं गणेशम् ॥
धन्वन्तरिं नृपवरं मुनिसुश्रुतादीन् ।
आत्रेयमप्रतपसम् शिरसा नमामि ॥

ग्रन्थ-प्रयोजन

प्रसिद्धयोगा मुनिभिः प्रयुक्ता-
श्चिकित्सकै र्ये बहुशोऽनुभूताः ॥
विधीयते वैद्यवरेण तेषाम् ।
सुसंग्रहः सज्जन रञ्जनाय ॥

चरकादि मुनियों द्वारा जो प्रसिद्ध योग प्रयोग में लाये गये हैं तथा जिन प्रयोगों का चिकित्सकों द्वारा अनेक बार प्रयोग कर अनुभव कर लिया गया है, ऐसे ही प्रयोगों का संग्रह करके सज्जनों (वैद्यजनों) के आनन्द के लिये यह ग्रन्थ लिखा जाता है ।

परिभाषा प्रकरण

ओषधि-संग्रह

आजकल के वैद्य दवाइयाँ पन्सारियों से लेते हैं, जो वनस्पति-शास्त्र का क्या किसी भी शास्त्र का ज्ञान नहीं रखते। हाँ, अर्थ-शास्त्र का ज्ञान अवश्य रखते हैं। हमारे वैद्य-बन्धुओं में आलस्य की मात्रा ज्यादे आ गई है; यदि वे (वैद्यगण) जंगलों में जाकर स्वयं वनस्पति-संग्रह करें तो अपनी दवा भी बना लें, और बची हुई दवा को बेचकर अर्थ प्राप्ति भी कर सकते हैं।

आयुर्वेदीय दवाइयाँ तो प्रकृति स्वयं पैदा करती है, इनका तो संग्रह ही करना पड़ता है। हाँ, एक कठिनाई जरूर है कि सब दवाएँ एक जगह पैदा नहीं होतीं। उड़ीसा में कुचला के जंगल हैं तो दार्जिलिंग में सिंगीमोहरा (शृङ्गिक) विष सैकड़ों मन मिलता है। राजपुताने में इन्द्रवारुणी बहुत मिलती है; चिरायता, कुटकी, पिपलामूल नेपाल की तराई में हजारों मन मिलता है। वैद्यों का कर्तव्य है, कि जिस स्थान में जो वनस्पति अधिक मात्रा में पैदा होती है, उसको अधिक तादाद में संग्रह करके काम में लायें, और बची हुई को विश्वासी आयुर्वेदीय औषध-निर्माताओं के हाथ बेच दें। इस प्रकार वैद्य-बन्धु सिर्फ परिश्रम मात्र से अपना और आयुर्वेद-जगत् का कल्याण कर सकते हैं।

ओषधि संग्रह काल

कौन दवा कौन सी ऋतु में ग्रहण करनी चाहिए—यह निश्चित नहीं है। हजारों की संख्यावाली वनस्पतियों का निश्चित काल होना भी कठिन है, तथापि एक सामान्य समय शास्त्रकारों ने निर्णय किया है।

सुश्रुत के मतानुसार—प्रावृट् ऋतु में मूल, वर्षा में पत्र, शरद् में छाल, वसन्त में सार और ग्रीष्म में फल लेने चाहिए। परन्तु,

यह मत ठीक नहीं है। जो ओषधियाँ सौम्य (मधुर, तिक्त और कषाय रसवाली) हों, उनको सौम्य (वर्षा, शरद् और हेमन्त) ऋतु में और जो आग्नेय (कटु, अम्ल और लवण रसवाली) हों, उनको आग्नेय (वसन्त, ग्रीष्म और प्रावृट्) ऋतु में लेना चाहिए। सौम्य ओषधियाँ सोमगुणाधिक भूमि से और सौम्य ऋतुओं में लेने से अति लघु, स्निग्ध और शीत गुणवाली होती हैं। इसी प्रकार आग्नेय ओषधियों के बारे में भी जानना चाहिए। समान गुण-वाली ऋतु में ली हुई ओषधि अव्यापन्न तथा अधिक रस-वीर्यवाली होती है।

राजनिघण्टु में लिखा है—हेमन्त में लिया हुआ कन्द, शिशिर में लिया हुआ मूल, वसन्त में लिया हुआ पुष्प और ग्रीष्म में लिया हुआ पत्र गुणकारक होता है। शरत्काल में लिये हुए पंचांग विशेष गुण-दायक होते हैं। जहाँ तक हो सके सब कार्यों के लिये ओषधियाँ नये-ताजे और सरस लेने चाहिये। यदि नये न मिलें तो, जिसको लाये हुए एक साल न बीता हो, ऐसे लें। जिस द्रव्य के स्वाभाविक रस-गन्ध-वर्ण (रङ्ग) आदि न बदले हों, ऐसा ताजा एक साल के अन्दर लाया हुआ द्रव्य काम में लेना चाहिये। औषध के लिए गुड़, धान्य, घी, शहद एक साल के ऊपर के और दो साल के अन्दर के लेने चाहिये।

शार्ङ्गधर कहते हैं—समस्त कार्यों के लिए रसयुक्त ओषधियाँ शरद् ऋतु में ग्रहण करें, परन्तु वमन और विरेचन की ओषधियाँ वसंत ऋतु के अन्त में ग्रहण करनी चाहिए।

भूमि विशेष से ओषधियों के गुण

पृथ्वी और जल के गुणों की अधिकतावाली भूमि से विरेचन (अधोभागहर) द्रव्य लेने चाहिए। अग्नि, वायु और आकाश के गुणों की अधिकतावाली भूमि से वमन (ऊर्ध्वभागहर) द्रव्य लेने चाहिये। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के गुणों की अधिकतावाली भूमि से उभयतोभागहर द्रव्य लेने चाहिए और आकाश के गुणों की अधिकतावाली भूमि से संशमन द्रव्य लेने चाहिए। इस प्रकार ली गई ओषधियाँ अधिक गुणवाली होती हैं।

औषध-द्रव्य लाने के बाद उनको छाया में या मन्द धूप में सुखाकर भेषजागार (गोदाम) में रखना चाहिए। भेषजागार (गोदाम) स्वच्छ स्थान में तथा पूर्व या उत्तर की ओर द्वारवाला होना चाहिए। जहाँ औषध-द्रव्य रखे जायँ, वह स्थान निर्वात हो। परन्तु अन्य स्थानों में वायु का संचार अच्छा हो, तथा जहाँ अग्नि, जल, भाप, धुंआ, धूल, चूहा और चौपाये न आ सकें ऐसा तथा साफ होना चाहिए, ऐसे स्थानों में औषध-द्रव्यों को उनके अनुरूप अच्छे पाट के थैले, मिट्टी के बरतन आदि पात्र में बन्द करके लकड़ी के तख्ते या खूंटे-छीकें आदि पर रखना चाहिए।

इन स्थानों की दवा नहीं लेनी चाहिये

साँप का बिल (बँबई), दूषित स्थान, जल से डूबे हुए स्थान अर्थात् जिन स्थानों में बराबर जल भरा हुआ रहता हो, श्मशान (जहाँ मुर्दे जलाये या गाड़े जाते हों), ऊषर (जहाँ रेह-ऊस ज्यादे निकलती हो), अथवा जिस जमीन पर घास-फूस पैदा नहीं होती हो, और सड़क आदि पर उत्पन्न हुई औषधियों का संग्रह नहीं करना चाहिए। कीड़ों से व्याप्त और अग्नि या पाला से जो ओषधियाँ झुलस गई हों, उन्हें भी छोड़ दें। क्योंकि ये ओषधियाँ उचित गुण करनेवाली नहीं होती हैं।

स्थानों की विशेषता

हिमालय पर्वत पर उत्पन्न होनेवाली दवाइयाँ श्रेष्ठ और ठंढी होती हैं। विन्ध्याचल पर्वत पर उत्पन्न होनेवाली दवाइयाँ भी श्रेष्ठ होती है, परन्तु गर्म होती हैं। यह शास्त्र का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है।

हमारा ऐसा अनुभव है कि आसाम, बंगाल, उड़ीसा आदि आनूप-देशों में उत्पन्न होनेवाली ओषधियाँ गुणों में बहुत कमजोर होती हैं। बिहार, नेपाल की तराई तथा विन्ध्याचल में पैदा होनेवाली दवाइयाँ मध्यम श्रेणी की होती हैं। हिमालय में पैदा होनेवाली दवाइयों को श्रेष्ठ समझना चाहिए। पंजाब और राजपूताने में उत्पन्न हुई दवा भी अच्छी होती है। जिस प्रदेश के अन्न और शाक आदि में स्वाद, गन्ध और सार पदार्थ अधिक हो, उस प्रदेश की ओषधियाँ भी उत्तम

होती हैं। हिमालय की महिमा बहुत है। वास्तव में हिमालय में पैदा हुई ओषधियाँ उत्तम होती हैं। ब्राह्मी हिमालय के अतिरिक्त स्थान में भी पैदा होती है, परन्तु गुण में उसके सामने कुछ भी नहीं होती। आजकल वैद्य लोग जितनी भी दवाइयाँ व्यवहार करते हैं, वे प्रायः विन्ध्याचल की ही अधिक होती हैं, अर्थात् विन्ध्याचल पर्वत पर उत्पन्न हुई ही दवा रहती हैं। यह तो व्यावहारिक बात है, कि जहाँ जो चीज पैदा होती है वहाँ के वैद्य या औषध-निर्माता वहीं की ओषधियाँ अधिक व्यवहार करते हैं।

जैसे बंगाल के औषध-निर्माता वहीं की ओषधियों से सब दवा बनाते हैं। और जो ओषधि वहाँ नहीं होतीं, वह अपने समीपवर्ती स्थान से ले ली जाती है। परन्तु यह सुविधा हमारी दृष्टि में अच्छी नहीं है। क्योंकि आजकल जब यातायात की सुविधानुसार १०-१० हजार मील दूर की दवा मंगाकर लोग व्यवहार करते हैं तो भारतवर्ष में पैदा होनेवाली दवा के लिए असुविधा ही क्या है?

इन ओषधियों का संग्रह करके रखें

एक ही ओषधि उत्तम, मध्यम और निकृष्ट श्रेणी की होती है। सर्वोत्तम सनाय बंगलोर में पैदा होती है, और वह प्रायः समस्त यूरोप में औषध-निर्माण के लिये भेजी जाती है। जब कि भारत के बाजारों में मध्यम श्रेणी की भी सनाय नहीं मिलती, बल्कि निकृष्ट श्रेणी की सनाय भारतीय चिकित्सकों को मिलती है। फिर लोग शिकायत करते हैं कि आयुर्वेदीय दवाइयाँ अच्छी नहीं होतीं। जब थर्ड क्लास की वनस्पति डाली जायगी, तो उत्तम दवा कैसे बन सकती है? अतः ओषधि-संग्रह करते समय उत्तम श्रेणी की ही वनस्पति-संग्रह करनी चाहिये।

आयुर्वेद की वनस्पति संग्रह करके रखने की प्रणाली, जो वर्तमान समय में है, वह दोष-पूर्ण है। हम देखते हैं कि वनस्पति के बड़े-बड़े स्टॉकिष्ट व्यापारी वनस्पतियों को बोरे में भर कर जहाँ-तहाँ लाट (थाक) लगा देते हैं, जिससे वनस्पतियाँ शीघ्र ही सड़ जातीं या घुन-फफुन्द जाती हैं।

इस काम को उत्तम रीति से करने का विधान यह है, कि वनस्पति को रखते समय देखना चाहिये, कि वनस्पति (मूल, छाल, फल आदि) अच्छी तरह सूखे हुए हों। गीली-ताजी या कुछ ही सूखी हुई वनस्पतियों को गोदाम में रख देने से, उसका शीघ्रही खराब होना निश्चित है। वनस्पति रखने के लिए बोरे नये और स्वच्छ हों। इनमें भरकर अच्छे स्थान में इन्हें रखने चाहिए। बंगाल, आसाम आदि आनूप देशों के गोदामों की फर्श (जमीन) पक्की, सीमेंट से बनी होनी चाहिए। इस फर्श पर भी सूखी लकड़ी के तख्ते डालकर वनस्पतियों के बोरे रखने चाहिए। बिहार, मध्यप्रांत आदि स्थानों में भी गोदाम पक्के होने चाहिये। राजपूताना, गुजरात, पंजाब आदि प्रांतों में वर्षा कम होती है, अतः साधारण गुदामों से भी काम चल सकता है। इन गुदामों में सूर्य की किरणें जानी चाहिए। यदि किरणें न जा सकें, तो प्रकाश तो जाना ही चाहिए। जहाँ वर्षा अधिक होती हो वहाँ की गुदाम में प्रकाश और हवा का ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए जो समय के अनुसार काम देता रहे। वर्षा काल में आर्द्र (जल मिश्रित) हवा गुदाम में नहीं जानी चाहिए। वर्षा के अलावा अन्य ऋतुओं में वायु का संचार (आना-जाना) गुदाम में होते रहना चाहिए।

गुदाम में लाट (थाक) लगाते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि एक दूसरे से विरोधी चीजें एक साथ नहीं रखी जाय। वनस्पति के बड़े-बड़े व्यापारी लोग, वनस्पतियों के साथ में मिर्च, मशाला, हींग, मुनक्का आदि के बोरे रख देते हैं, जिससे वनस्पतियों के मौलिक गुण नष्ट हो जाते हैं। सावधानीपूर्वक रखी हुई वनस्पतियाँ अधिक समय तक अच्छी ही बनी रहती हैं। वनस्पतियों को काम में लाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए, कि पहले की रखी हुई वनस्पति पहले काम में ली जाय और बाद की बाद में।

वनस्पति का खराब या कम गुणकारी होना

"गुण हीनं भवेद्वर्षादूर्ध्वं तद्रूपमौषधम्"। काष्ठौषधि जिस रूप में संग्रह की गई हो, उसी रूप में याने मूल, छाल, पंचाँग आदि

सुखाकर रखी हुई एक वर्ष के बाद गुणहीन हो जाती है। अर्थात् उसकी कार्य-क्षमता नष्ट हो जाती है, वनस्पति हो, या उससे बनी हुई दवा हो, जब खराब होती है,तो उसका रूप-रंग बदल जाता है,उसकी गन्ध और स्वाद भी बिगड़ जाते हैं। दो मास के बाद चूर्ण गुणहीन हो जाते हैं। गोलियाँ और अवलेह एक वर्ष के बाद वीर्यहीन हो जाते हैं। ओषधियों द्वारा सिद्ध घृत और तैल एक वर्ष और चार मास बाद हीन-वीर्य हो जाते हैं। आसव-अरिष्ट और धातुओं की भस्में तथा रस (पारद-गन्धक) के योग जितने पुराने होते हैं, उतने ही गुण सम्पन्न होते हैं।

आचार्य यादव जी त्रिक्रमजी का मत है कि--"वनस्पतियाँ एवं वनस्पतियों द्वारा बनी दवाएँ उपरोक्त समय में हीनवीर्य होने, या न होने, बिगड़ने या न बिगड़ने का आधार उस देश की हवा, ऋतु, रखने के पात्र और बन्द करके न रखने की क्रिया पर निर्भर है।

दवा रखने के स्थान की हवा शीत और रूक्ष हो, योग शीतकाल में बना हो, औषध रखने का पात्र अच्छा हो, और पात्र में वायु का प्रवेश न हो, इस प्रकार उसको बन्द किया हो, तो वनस्पति या वनस्पति द्वारा बने योग चिर काल तक अच्छे रह सकते हैं। इसके विपरीत यदि उस स्थान की हवा में नमी (आर्द्रता) अधिक होगी, योग वर्षा ऋतु में बना होगा, पात्र अच्छा न होगा, और पात्र में हवा न जा सके, इस प्रकार उसको बन्द न किया होगा,तो वनस्पति या उनके द्वारा बने योग हीनवीर्य या नष्ट हो जाएँगे। अतः वैद्यों को वनस्पति-द्रव्य अच्छे-सूखे लाने, वे गीले हों, तो उनको अच्छी तरह सुखा लेने और अच्छे पात्र में अच्छी तरह बन्द करके रखने में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। दवा आवश्यकता से अधिक परिमाण में बनाकर नहीं रखें, दवा जहाँतक बने शीत काल में ही बनाकर रखें, बिना विशेष आवश्यकता के वर्षा ऋतु में चूर्ण, अवलेह, गोली आदि नहीं बनानी चाहिए। वनस्पति और उनके चूर्ण आदि कल्पों का गन्ध, वर्ण (रंग) और स्वाद कम या विकृत हो गया हो, तो उसे फेंक देना चाहिए। भस्में और रस-योग अधिक परिमाण में बनाकर रखने चाहिए।

क्योंकि वे जितने पुराने होंगे, उतने ही अधिक गुणकारी होंगे।

निम्नलिखित द्रव्य सदा ताजे ही लेने चाहिए एवं इनका परिमाण द्विगुण नहीं करना चाहिए।

वासा, नीम, पटोल, केतकी, खरेंटी, पेठा, शतावर, पुनर्नवा, कुड़ा की छाल, असगन्ध, गन्ध प्रसारणी, नागबला, पियावासा, गूगल, हींग और अदरख आदि।

परन्तु वायविडंग, पिप्पली, गुड़, धनिया, मधु और घृत ये छः पदार्थ १ वर्ष के नीचे के नहीं लेने चाहिए।

उक्त ओषधियों के अतिरिक्त अन्य समस्त ओषधियाँ सब कार्यों में नवीन तथा सूखी ही डालनी चाहिए। यदि गीली हो, तो सूखी ओषधियों के दूने प्रमाण में डालें।

जहाँ ओषधि खाने के लिए समय नहीं लिखा हो, वहाँ खाने का समय प्रातःकाल ही जानें, तथा जिन औषधियों का अंग स्पष्ट न लिखा हो, वहाँ उसकी जड़ लेना और जिन ओषधियों का मान (तौल) न लिखा हो, वहाँ सब औषधियाँ समान भाग लें।

यदि किसी योग में एक ही ओषधि का नाम दो बार आ गया हो, तो वह ओषधि दूनी लेनी चाहिये।

यदि किसी प्रयोग में कोई ओषधि रोगी के लिए हानिकारक हो, तो उसे निकाल दें। इसी प्रकार यदि कोई ओषधि रोगी के लिए हितकारी हो, तो वह योग में न होने पर भी डाली जा सकती है।

जहाँ केवल चन्दन मात्र लिखा हो, तो सफेद चन्दन लेना चाहिए, परन्तु क्वाथ और लेप में रक्त चन्दन ही डालें।

अत्यन्त बड़े वृक्षों, जैसे नीम आदि की जड़ की छाल लें। परन्तु; कोमल छोटे वृक्षों जैसे गोखुरू, पियावाँसा आदि की जड़ अथवा पंचांग लेना चाहिए। बड़ आदि मोटे वृक्षों की छाल लें, तथा खैर आदि वृक्षों के सार, तथा महुआ, बबूल आदि वृक्षों की अन्तर छाल, और तालीसपत्र, पान, तुलसी, तेजपात, भाँग आदि का पत्ता और त्रिफला, सुपारी आदि का फल तथा गुलाब, सेवती आदि के फूल लेने चाहिए।

औषध निर्माण परिभाषा

जिन संस्कारों द्वारा औषध-द्रव्यों को प्रयोग कार्य के लिए उपयुक्त बनाया जाय, उसे औषध-निर्माण कहते हैं। किसी भी औद्भिद्, जांगम या पार्थिव द्रव्यों का चूर्ण, क्वाथ, भस्म आदि का निर्माण किये बिना, उसका मनुष्य शरीर पर प्रयोग नहीं किया जा सकता, अतः उनका क्वाथ, चूर्ण, अवलेह, गुटिका, आसव-अरिष्ट-रस-रसायन, भस्म, तैल, घृत आदि रूपों में परिवर्तन करने के लिए जो प्रारम्भिक निर्माण-विधान है, उसी का उल्लेख इस "औषध-निर्माण परिभाषा प्रकरण" में किया जायगा।

पंच कषाय (क्वाथ)

मधुर, अम्ल, कटु, तिक्त और कषाय रसवाले द्रव्यों द्वारा पाँच प्रकार के क्वाथ की कल्पना की जाती है, यथा—स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम और फाण्ट। इनमें स्वरस से कल्क, कल्क से क्वाथ, क्वाथ से हिम, हिम से फाण्ट हल्का (लघु) होता है। वाग्भट के मतानुसार फाण्ट से हिम, हिम से क्वाथ, क्वाथ से कल्क, और कल्क से स्वरस अधिक बलवान होता है। अतः व्याधि और रोगी के बलाबल का विचार करके पाँचों में से किसी एक का निर्माण करना चाहिए। क्योंकि सब तरह के कषाय सबके लिए उपयोगी नहीं होते।

स्वरस क्वाथ

कृमि आदि से अदूषित हरी-ताजी वनस्पति लाकर, उसे जल से धो छोटे टुकड़े कर ऊखल में कूट या सिल पर पीस कर यन्त्र या हाथ से दबा कर रस निकालें, फिर उसे कपड़े से छान लें, इस प्रकार निकाले हुए रस को "स्वरस क्वाथ" कहते हैं। इसकी मात्रा २ तोला है।

यदि आर्द्र (ताजी-गीली) वनस्पति न मिले तो सूखी वनस्पति का चूर्णकर, उसे चूर्ण से दूने जल में डाल, मिट्टी के बर्तन में २४ घंटा ढककर रख छोड़ें, दूसरे दिन हाथ से मसल, कपड़े से छान, उसका स्वरस के समान प्रयोग करें। इस प्रकार बनाये हुए स्वरस का चूर्ण में भावना देने के लिए उपयोग होता है।

उक्त दोनों स्वरसों के अभाव में सूखी औषधि लेकर अठगुने जल में पकावें, चतुर्थांश जल शेष रहने पर कपड़े से छान कर रख लें, यह भी स्वरस ही है, इन तीनों में भेद यही है, कि पूर्वोक्त स्वरस भारी होने से उसकी मात्रा २ तोला दें, और इसकी मात्रा ४ तोला दें।

स्वरस में प्रक्षेप द्रव्य—स्वरस में घी, तेल, गुड़, मिश्री और शहद डालना हो, तो २ तोला स्वरस में ६ माशा डालें और लवण, क्षार और पीपल आदि का चूर्ण रोगी और रोग के बलानुसार योग्य परिमाण में डालें।

स्वरस की पुटपाक विधि—कई द्रव्यों का स्वरस पुटपाक करके लिया जाता है। अतः पुटपाक विधि लिखते हैं—

यदि ताजी-हरी वनस्पति हो तो उसको वैसा ही शिला पर पीस कल्क बना लें और सूखी हो तो उसका कपड़छन चूर्ण कर उसमें थोड़ा जल मिला, कल्क बना लें, फिर उस कल्क का गोला बना, उसपर वट, जामुन-कमल आदि किसी मृदु वीर्य वनस्पति के पत्ते लपेट गोले को कसकर सूत से बाँध दें, और ऊपर जल में गुंधे हुए आटे का और उस पर पानी में खूब मसली हुई मिट्टी का दो अंगुल मोटा लेप करके गोला बना लें; इस गोले को बिना धुएँ के कण्डों की आँच में रखकर पकावें। जब गोले के ऊपर की मिट्टी लाल हो जाय तब गोले को थोड़ा ठंढा कर अन्दर का कल्क निकाल कपड़े में रख हाथ से दबा स्वरस निकाल लें।

नीम, बेल, अडूसा आदि सब वृक्षों की पत्ती-छाल आदि से बिना गरम किये स्वरस ठीक से नहीं निकलता, अतः उक्त विधान लिखा गया है।

कल्क कषाय

यदि ताजी—हरी वनस्पति हो, तो उसे जल से धोकर और सूखा हो, तो कपड़छन चूर्ण में जल मिला, कल्क बना लें। इसकी मात्रा १ तोला है।

खाने के लिए जो दिया जाता है, उसे "कल्क कषाय" कहते हैं

ग्रौर तैल, घृत, आसव आदि में जो प्रक्षेप के लिए बनाया जाता है, उसे "कल्क प्रक्षेप" कहा जाता है ।

कल्क की उक्त मात्रा मृदुवीर्यवाली दवा की है, मध्य ग्रौर तीक्ष्ण वीर्यवाली दवा की मात्रा क्रमशः न्यून जानें ।

कल्क में प्रक्षेप द्रव्य की मात्रा—कल्क में शहद, घी या तैल मिलाना हो, तो कल्क से दुगुनी मात्रा में मिलावें, मिश्री या गुड़ मिलाना हो, तो कल्क के बराबर दें ग्रौर जल, दूध आदि द्रव (पतला) पदार्थ मिलाना हो, तो चौगुना मिलावें ।

स्वरस ग्रौर कल्क में यही भेद है, कि स्वरस में द्रव्य का सार भाग लेकर काष्ठ भाग फेंक दिया जाता है, परन्तु कल्क में सार तथा काष्ठ दोनों भाग लिये जाते हैं, अतः स्वरस की अपेक्षया कल्क लघु होता है ।

क्वाथ (काढ़ा) कषाय

क्वाथ करनेवाले द्रव्य को दर-दरा कूटकर मिट्टी के बर्तन में या नीचे मिट्टी का लेप किये हुए कलइदार ताम्बे के वर्तन में कुटी हुई ग्रोषधि से १६ गुना जल डालकर मन्द-मन्द अग्नि से पकावें । जब आठवाँ हिस्सा जल बाकी रहे, तब बर्तन को उतार कर जल थोड़ा गरम रहते ही छान लें । मात्रा ८ तोला ।

यद्यपि शार्ङ्गधर संहिता में काढ़ा की मात्रा आठ तोला है, परन्तु आजकल यह मात्रा अधिक है, अतः २ तोला इसकी मात्रा ठीक मालूम होता है* ।

प्रमथ्या—शार्ङ्गधर में लिखा है कि ४ तोले ग्रौषध के चूर्ण को जल में पीसकर कल्क वनावें, उस कल्क को ३२ तोले जल में पका ८ तोला जल शेष रहने पर कपड़े से छानकर पिलावें ।

यहाँ द्रव्य की चार तोले मात्रा लिखी है, जो अधिक है । १ से २ तोला द्रव्य ग्रौर उसी के अनुसार जल लेना उचित है ।

प्रमथ्या क्वाथ का ही एक भेद है, अतः इसकी परिभाषा क्वाथ प्रकरण में लिखी गई है, वहीं देखें ।

---

* विशेष विवरण क्वाथ प्रकरण में देखें ।

क्षीर पाक विधि—औषधीय द्रव्य को जौ कुट चूर्ण कर ८ गुने दूध और दूध से चौगुने जल में डाल कर मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें, जब दूध मात्र शेष रह जाय, तब छान कर उपयोग में लें।

गरम जल विधि—ठंढे जल को औंटाकर आवश्यकतानुसार अष्टमांश, चतुर्थांश या आधा शेष रहने पर अथवा अच्छी तरह उबलने तक पकाकर कपड़े से छान लें।

औषधियों द्वारा सिद्ध जल—औषधिसिद्ध जल बनाना हो, तो १ तोले औषधि के चूर्ण में ६४ तोला जल दें, क्वाथ विधि से पका, आधा जल (३२ तोला) शेष रहने पर नीचे उतार कर कपड़े से छान ठंढा कर रोगी को आवश्यकतानुसार पिलावें।

औषधिसिद्ध जल (षडंग पानीय आदि) रोगी को दिया जाता है तथा क्वाथ साध्य यवागू आदि बनाने में भी इस प्रकार तैयार किये हुए जल का उपयोग होता है।

यवागू—मण्ड, पेया और विलेपी भेद से यवागू तीन तरह की होती है, जिस यवागू में सिक्थ (सिट्ठी) का भाग छोड़कर केवल ऊपर का द्रव भाग लिया जाय, उसको "मण्ड" कहते हैं। जिस यावागू में द्रवभाग अधिक हो, और सिक्थ कम हो, उसे "पेया" कहते हैं और जिस यवागू में सिक्थ अधिक और द्रवभाग कम हो, उसे "विलेपी" कहते हैं।

जिसे यवागू देनी हो, वह एक समय में जितना चावल खाता हो, उससे चतुर्थांश चावल यावागू बनाने के लिए लेना चाहिए। मण्ड बनाना हो तो मोटे पिसे हुए चावल में १४ गुना औषधिसिद्ध जल देकर पकावें, जब चावल अच्छी तरह पक जाए, तब ऊपर का द्रवभाग (मण्ड) निथार कर पीने को दें। पेया बनानी हो तो मोटे पिसे हुए चावल में छःगुना औषधिसिद्ध जल देकर द्रवांश अधिक रहे और सिक्थ कम रहे इतना पकावें। विलेपी बनानी हो तो मोटे पिसे हुए चावल में चार गुना औषधिसिद्ध जल देकर सिक्थ अधिक रहे और द्रवांश कम रहे इतना पकावें, चावलों को थोड़े भूनकर पीछे यवागू बनाने से यवागू ठीक बनती है।

मृदु, मध्य और तीक्ष्ण भेद से द्रव्य तीन तरह के होते हैं। कल्क

साध्य यवागू यदि तीक्ष्ण ओषधि द्वारा बनानी हो, तो १ तोला और मध्यवीर्य ओषधि से बनानी हो, तो २ तोला तथा मृदु ओषधि द्वारा बनानी हो, तो ४ तोले ओषधि का कल्क बना, उसमें यवागू पूर्वोक्त विधि के अनुसार मोटे पिसे हुए चावल और ६४ तोला जल देकर मण्ड, पेया या विलेपी बनावें।

यवमण्ड—छिलके उतारे हुए जौ को थोड़ा भूनकर १४ गुने जल में पकावें, जौ सिद्ध हो जाने पर ऊपर का जल निथार कर कपड़े से छानकर पीने को दें।

लाजमण्ड—धान की खील (लावा) को १४ गुने जल में पका कर कपड़े से छान लें।

यूष—दो तोले ओषधि का कल्क बना, उसमें ८ तोले मूँग, मसूर, मोठ आदि शिम्बीधान्य और ६४ तोला जल, छाछ आदि द्रव पदार्थ डालें, और इतना पकावें, कि चौथाई जल शेष रहे, फिर इसे छान करदें।

हिम-कषाय

जौकुट की हुई २ तोला ओषधि को १२ तोले ठंढे जल में डाल मिट्टी या काच के पात्र में रात भर ढक कर रहने दें, प्रातः हाथ से मसल, कपड़े से छानकर ४–४ तोले की मात्रा में दिन भर में तीन बार पीने को दें, इसे 'फाण्ट' कहते हैं। इसमें शहद, मिश्री, गुड़ आदि डालना हो, तो क्वाथ-प्रमाण के अनुसार डालें।

मन्थ—कुटे हुए ४ तोले द्रव्य को मिट्टी के बरतन में डाल उसमें १६ तोला ठंढा जल मिला मथानी से खूब मथकर कपड़े से छान लें, इसके ८ तोले की मात्रा में दिन भर में दो बार दें।

तर्पण-मन्थ—धान की खीलों के सत्तू में ज्वरनाशक फलों के रस और खाण्ड तथा शहद मिलाकर यह बनाया जाता है।

तण्डुलोदक—साफ किये हुए चार तोले चावल को मिट्टी के बरतन में डाल ३२ तोला जल डाल कर रखें, जब चावल नरम हो जाय तो छानकर १६-१६ तोले की मात्रा में दिन में दो बार दें।

पानक—आम, फालसा, इमली आदि के अधपके फलों को जल

में कुछ सिझा १६ गुने ठंढे जल में हाथ से खूब मसलकर कपड़े से छान लें। फिर अपनी रुचि के अनुसार मिश्री, कालीमिर्च, इलायची, लौंग का चूर्ण और केशर मिलाकर पीयें।

शर्बत—गुलाब, केवड़ा, वेदमुश्क आदि सुगन्धित द्रव्यों के अर्क में और अनार, नीबू आदि फलों के रस में दुगुनी चीनी मिला, मन्द आँच पर पकावें, ठंढा होने पर उतार कपड़े से छान लें।

अर्क—जिन द्रव्यों का अर्क निकालना हो, वे यदि ताजे हों, तो वैसे ही और सूखे हों, तो उनका दर-दरा चूर्ण करके रात को दशगुने जल में भिगो दें, सबेरे उसको भवके में डालकर भवके के दोनों पात्रों की सन्धि में अच्छी तरह कपड़ मिट्टी कर आग पर चढ़ावें, भवके के ऊपर के पात्र में जैसे-जैसे जल गरम होता जाय, उसे निकालकर दूसरा ठंढा जल डालते जायें, जितना जल डाला हो, उसका आधा क्वाथ खींचना चाहिए। अन्त में सब अर्क को कपड़े से छान शीशियों में भरकर बन्द कर दें। भवका ताँबे या पीतल का कलईदार होना चाहिए।

फाण्ट-कषाय

जौकुट की हुई ४ तोला ओषधि को १६ तोला गरम (उबलता हुआ) जल में डाल, ढककर थोड़ी देर रहने दें, जब जल ठंढा हो जाय, तब हाथ से मसलकर कपड़े से छान लें। इसको "फाण्ट" कहते हैं।

इसकी मात्रा ४ से ८ तोले तक है। इसमें भी मिश्री, शहद, गुड़ आदि क्वाथ के अनुसार ही मिलावें।

सन्धान

सन्धान के लक्षण—गन्ने का रस, क्वाथ आदि द्रव पदार्थ अकेला या औषधद्रव्य, अन्न, गुड़, किण्व आदि के साथ मिलाकर कुछ समय तक रख दिया जाय उसको "संधान" कहते हैं।

सीधु-मद्य—गन्ने के रस आदि मीठे पदार्थों को अग्नि पर पकाये बिना ही सन्धान करें तो शीतरस-सीधु और अग्नि पर पकाने के बाद संधान करें तो पक्वरस-सीधु बनता है।

वारुणी मद्य—ताल, खजूर के वृक्ष से निकाले हुए रस (ताड़ी) का संधान करके जो मद्य तैयार किया जाता है; वह "वारुणी मद्य" कहलाता है। वारुणी-मद्य को चिर काल तक रखना हो तो उसमें चतुर्थांश मीठा मिलाकर खमीर उठाना चाहिए और बोतलों में भरते समय पुनः चतुर्थांश मीठा मिलाना चाहिए।

सुरा-मद्य—चावल, यव आदि अन्न को पका, उसमें जल और किण्व मिलाकर संधान करने से "सुरा-मद्य" बनता है। सुरा के ऊपर के स्वच्छ द्रव भाग को "प्रसन्ना" उससे कुछ गाढ़े भाग को "कादम्बरी" उससे गाढ़े को "जगल" और उससे गाढ़े को "मेदक" कहते हैं। सुरा को कपड़े से छानने पर जो सारहीन भाग रहता है उसे "बक्कस" किण्व या सुराबीज कहते हैं। मद्य में खमीर उठाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

आसव में नीचे जो गाद बैठता है, वह दूसरा आसव बनाने में किण्व का काम देता है। दूसरे आसव का संधान करते समय उसमें थोड़ा मिला देना चाहिए।

आसव-अरिष्ट कल्पना—क्वाथ, स्वरस, जल आदि द्रव पदार्थों में औषध द्रव्यों का चूर्ण, शक्कर, गुड़ या शहद के साथ आसव ठीक उठने के लिए कुछ किण्व मिलाकर, अन्दर से अच्छी तरह घी लगाए हुए मिट्टी के घड़े में चीनी मिट्टी की बरनी में या सागोन लकड़ी के पीपे में डाल, उसके मुँह पर कपड़ा बाँधकर स्वच्छ और शीतल स्थान में रख दें। बीच-बीच में कपड़ा खोलकर देखते रहें कि खमीर उठना बन्द हुआ या नहीं। जब उसमें खमीर उठना बन्द हो जाये और प्रक्षेप द्रव्य नीचे बैठ जाये तब उसको कपड़े से छानकर जटामाँसी, कालीमिर्च और अगर का लेप या धूप दिये हुए पात्र (चीनी मिट्टी की पेचदार ढक्कन की बरनी या सागौन की लकड़ी के पीपे) में भर कर इस प्रकार बन्द कर दें कि वायु का प्रवेश न हो।

प्रक्षेप द्रव्यमान—जहाँ अरिष्टों में द्रव्यों का प्रमाण न लिखा हो, वहाँ १२ सेर १२ छंटाक ४ तोले क्वाथ, जल आदि द्रव्य पदार्थों में गुड़, चीनी या शहद ५ सेर और प्रक्षेप द्रव्य ४० तोला डालें। द्राक्षासव,

मधुकासव और खर्जूरासव में स्वभावतः शक्कर होती है, अतः इनमें मीठा ३०० तोला ही डालें। (विशेष विवरण आसवारिष्ट प्रकरण में देखें)

शुक्त—अरिष्ट आदि मद्य यदि बिगड़कर खट्टे हो जाएँ, या गन्ने आदि का मीठा रस संधान करने पर बिगड़कर खट्टा बन जाय, तो उसे "शुक्त" या "चुक्र" (सिरका) कहते हैं।

तुषाम्बु—तुष (छिलके) सहित कुटे हुए जौ को मिट्टी के घड़े में बिना पकाये ही चौगुने पानी में डाल, घड़े के मुँह को कपड़े से बाँध कर रख दें। जब द्रव खट्टा हो जाय तो उसे छानकर पात्र में भर दें।

सौवीर—निस्तुष (छिलके रहित) जौ को दल करके अठगुने जल में पका, आधा जल बाकी रहने पर मिट्टी के घड़े में डाल घड़े के मुँह को कपड़े से बाँधकर रख दें। जब द्रव खट्टा हो जाय, तो छानकर रख लें।

चूने का पानी—२ रत्ती अच्छा सूखा कली का चूना लें, उसे ५ तोले की हरी शीशी में जल भरकर छोड़ दें। फिर शीशी में हरे रंग के शीशे की डाट लगा खूब हिलाकर ठंढी जगह में रख दें। ६ घंटे के बाद निकला हुआ पानी फिल्टर पेपर द्वारा छान लें और इसे हरी शीशी में सुरक्षित रख लें।

काँजी—चावल को जल में पका, मिट्टी के घड़े में तीन गुने जल में डाल, घड़े के मुँह को कपड़े से बाँध कर ७ दिन रखें, खट्टा होने पर छानकर काम में लें।

सुरासव-कल्पना—औषध द्रव्यों के चूर्ण को स्वच्छ मद्य में ७ दिन बन्द पात्र में भिगो, हाथ से मसल, कपड़े से छानकर शीशी में भर लें।

स्नेहपाक-कल्पना—घृत, तैल आदि स्नेह को क्वाथ-स्वरस-दूध जल आदि द्रव पदार्थ तथा औषध-द्रव्यों के कल्क के साथ पकाकर जो सिद्ध घृत-तैल आदि तैयार करते हैं; वे पाक तीन प्रकार के होते हैं। जिस पाक से सिट्ठी कल्क जैसी कुछ द्रवांशयुक्त हो, उसे मृदु,

जो सिट्ठी द्रवांशरहित हलुए की तरह कोमल और कोंचे में न लगने वाली हो वह मध्य और जिसमें सिट्ठी पानी में नीचे बैठ जाय और कुछ कठिन हो, तथा दो अंगुलियों से दबाने से बत्ती बन जाय, वह खर होता है ।

तैलमूर्च्छना—तेल को मन्द आँच पर पकावें । जब तैल में फेन आकर बैठ जाये तब नीचे उतार, ठंढा कर उसमें तैल का सोलहवाँ भाग मजीठ का कल्क और मजीठ का चौथाई भाग हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, हल्दी, खस, लोध, केवड़े का फूल, बट की जटा और नलिका इनका कल्क तथा तेल से चार गुना जल मिलाकर पकाने से तेल की गन्ध जाती रहती है और तैल शुद्ध हो जाता है ।

घृतमूर्च्छना—६४ तोले घी को कड़ाही में डालकर पकायें । जब घी गरम होकर फेन और शब्दरहित हो जाय तब उसमें हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा और हल्दी के चूर्ण को बिजोरे के रस में पीसा हुआ कल्क १६ तोला और जल २५६ तोला मिलाकर स्नेह-पाक विधि से पकावें ।

यवक्षार—उत्तम जौ की गाँठें (मूल, फल, पत्ते आदि पाँचो अंग) एक साफ कड़ाही में जलाकर भस्म बना लें । भस्म को मिट्टी के पात्र में डाल, छै गुना जल मिला, हाथ से खूब मसल, पात्र को ढककर रात भर रहने दें । दूसरे दिन ऊपर के स्वच्छ जल को दूसरे पात्र में निथार लें । पीछे उस जल को २१ बार गाढ़े वस्त्र से छान लें । प्रति बार छानते समय वस्त्र को जल से धो लें । इस जल को मिट्टी के पात्र में मन्द आँच पर पकायें और जल को हिलाते रहें । जब सारा जल सूख जाय तब क्षार को खुरच कर निकाल लें । इसी प्रकार अन्य द्रव्यों का भी क्षार निकालें । क्षार को काँच के वर्तन में डाट लगाकर रखें, अन्यथा पिघल जाता है । यदि ज्यादे तादाद में क्षार हो , तो मिट्टी के कोरे बरतन में रखकर उसके मुँह पर मजबूत डाट लगा जौ या गेहूँ की भूसी के ढेर में दबा कर रख देने से सुरक्षित रखा रहता है ।

शंखद्राव—लवण, फिटकरी, सोरा, नौसादर, कसीस, सुहागा,

यवक्षार और सज्जी क्षार आदि लवण और क्षार द्रव्यों को काँच के नलिका यन्त्र (ग्लास रिटॉर्ट) में रख, यन्त्र की संधि को कपड़मिट्टी करके आग पर चढ़ावें। नलिका यन्त्र की तिर्छी नली का मुँह दूसरे जलभरे पात्र में रखी हुई काँच की शीशी के मुँह में लगाकर यन्त्र के नीचे मन्द आँच दें। तिर्छी नली के मुँह से टपक कर शङ्खद्राव शीशी में इकट्ठा होगा। जब शङ्खद्राव आना बन्द हो जाय, तब आँच देना बन्द कर दें। इसे "शङ्खद्राव" कहते हैं।

चूर्ण—बिलकुल सूखी हुई औषधियों को महीन कूट-पीसकर कपड़े से छान लें। इसको 'चूर्ण' कहते हैं। इसकी मात्रा १ तोला है। (व्यावहारिक मात्रा—३ से ६ माशा)

प्रक्षेप-द्रव्य—चूर्ण में गुड़ बराबर मात्रा में और मिश्री, घी, शहद तथा तेल दुगुनी मात्रा में मिलाये जाते हैं। जल, दूध आदि के साथ लेना हो तो चौगुनी मात्रा में दूध, जल आदि लें।

भावना—चूर्ण को स्वरस की भावना देनी हो तो चूर्ण में द्रव पदार्थ इतना डालें कि चूर्ण अच्छी तरह तर हो जाय।

अवलेह-कल्पना—क्वाथ या स्वरस को मन्द अग्नि पर पकाकर गाढ़ा कर लें। अवलेह जब अच्छी तरह तैयार हो जाता है तब वह करछी या कूँचे से उठाने पर तार बाँधकर उठता है, थोड़ा ठंढा कर जल में डालने से डूबकर एक जगह रह जाता है—बिखरता (फैलता) नहीं। ठण्ढा होने पर अंगुली से दबाने पर उसमें अंगुली के निशान बन जाते हैं और जिस द्रव्य का अवलेह बनाया हो उसकी गन्ध, वर्ण और रस उसमें आने लगते हैं। गोली बनाने के लिये चाशनी अवलेह जैसी बनने पर उसके अग्नि पर से उतार, थाली में फैला, धूप में सुखा, गोली बन सकने लायक गाढ़ी कर लेनी चाहिए। द्रवांश कम होने के बाद अग्नि पर रखने से औषधि का वीर्य कम हो जाता है।

अवलेह के लिए चाशनी—चीनी या गुड़ की चाशनी में चूर्ण मिलाकर जो अवलेह बनाया जाता है, उसमें चीनी दवाओं के चूर्ण से चारगुनी और गुड़ दुगुना लेना चाहिए। कलईदार बर्तन में चीनी डाल कर उसमें इतना जल डालें कि चीनी अच्छी तरह घुल जाय।

पीछे बर्तन को आग पर चढ़ा कर कोंचे से चलाते रहें। चाशनी जब उबलने लगे तो उसमें दूध के छींटे देकर हिलाने से मैल चाशनी के ऊपर आ जाती है, उसको कोंचे से निकाल दें। ऐसा दो-तीन बार करने से सब मैल निकल कर चाशनी स्वच्छ हो जाती है। जब चाशनी तैयार होने को आवे तो उसको जल में गेर कर परीक्षा करें। चाशनी जल में डालने से नीचे बैठ जाय—ऊपर तैरे नहीं, जल में फैले नहीं, बिना बिखरे पड़ी रहे—तब चाशनी तैयार हो गई है, ऐसा समझ कर उसे नीचे उतार लें।

अवलेह में चूर्ण-प्रक्षेप—चूर्ण डालते समय चाशनी में द्रवांश इतना रहना चाहिए कि उसमें सारा चूर्ण समा सके। पाक हो जाने पर, उसे नीचे उतार, चूर्ण थोड़ा-थोड़ा उसमें डालते और मिलाते रहें। यदि थोड़ा चूर्ण मिलाना हो तो पाक हो जाने पर, नीचे उतार कर चाशनी थोड़ी ठण्ढी हो जाने पर मिलावें। शहद मिलाना हो तो अवलेह ठण्ढा होने पर मिलावें। केवल शहद से अवलेह बनाना हो तो शहद को मिट्टी के पात्र में मन्द-अग्नि पर चढ़ा कर इतना गरम करें कि शहद पतला हो जाय। फिर नीचे उतार, ठण्ढा होने पर ऊपर का फेन चम्मच से उतार, कपड़े से छान कर उसमें चूर्ण मिलावें।

गुटिका-कल्पना—गुड़, शक्कर या गूगल—जिसमें गोली बनानी हो उसको अग्नि पर अवलेह की तरह पका, उसमें चूर्ण मिला कर मोदक, गोली या बत्ती बनावें। गूगल को बिना पकाये ही गोली बनानी हो तो गूगल के बड़े-बड़े स्वच्छ टुकड़ों को, इमामदस्ते में थोड़ा एरंड तेल लगाकर, उसमें डालकर, इतना कूटें कि गूगल नरम हो जाय। फिर उसमें थोड़ा-थोड़ा चूर्ण मिलाते जायें और कूटते जायें। जब सब चूर्ण अच्छी तरह मिल जाय तब उसकी पिण्डी या गोली बना लें। अथवा जल, स्वरस, शहद आदि किसी द्रव पदार्थ में चूर्ण को घोट कर गोली बनावें।

प्रक्षेप-द्रव्यमान—गोली बनाने में चूर्ण से चौगुनी शक्कर, दुगुना गुड़ और गूगल तथा शहद चूर्ण के बराबर लेना चाहिए। जल

स्वरस आदि द्रव पदार्थ इतना देना चाहिये कि चूर्ण अच्छी तरह से मर्दन किया जा सके।

फलवर्त्ति—मल और वायु के अनुलोमन के लिए, गुड़ का पाक कर उसमें विरेचन द्रव्यों का चूर्ण मिला कर हाथ के अंगूठे जितनी मोटी और चिकनी फलवर्त्ति बनायें। इस पर घी लगा कर गुदा में चढ़ायें। योनिमार्ग और मूत्र नली में चढ़ाने के लिए उत्तरबस्ति-यन्त्र के बराबर मोटी और लम्बी बत्ती बनानी चाहिए।

गुडूचीसत्त्व—अंगूठे जितनी मोटी-ताजी—हरी गिलोय लें, उसे जल से धो, छोटे-छोटे टुकड़े कर लकड़ी के ऊखल में डाल कर लकड़ी के मूसल से खूब कूटें। फिर इसे कलई किये हुए बड़े वर्तन में डाल, उसमें चौगुना पानी मिला, हाथों से खूब मर्दन कर दूसरे कलई किये हुए वर्तन में स्वच्छ कपड़े से जल को ३-४ बार छान, बरतन के मुँह पर थाली ढककर रातभर रहने दें। दूसरे दिन ऊपर का जल धीरे से दूसरे पात्र में निथार लें। पात्र के तलभाग में गिलोय का सत्त्व जमा हुआ मिलेगा ; उसको सुखाकर निकाल लें।

बिरोजे का सत्त्व—एक कलईदार पीतल या मिट्टी के पात्र में आधा दूध और आधा जल (आधे तक) भर दें। और पात्र के मुँह पर ढीला कपड़ा बाँध कर उस पर गन्धाबिरोजा डालकर पात्र को अंगीठी या चूल्हे पर चढ़ा नीचे मन्द-मन्द अग्नि दें, जब सब बिरोजा चूकर नीचे पात्र में बैठ जाय तो पात्र को नीचे उतार ठण्ढा होने पर बिरोजे का सत्त्व निकाल, इसे जल से धोकर छाया में सुखा कर रख लें।

गुलकन्द बनाना—अच्छे कलईदार पीतल या चीनी मिट्टी के बरतन में गुलाब, सेवती, अमलतास आदि के ताजे फूलों को बराबर वजन की शक्कर के साथ मिला, पात्र के ऊपर दोहरा मजबूत कपड़ा बाँध कर २०—४० दिन तक धूप में रखें—गुलकन्द तैयार हो जायगा।

मान परिभाषा

औषध-निर्माण के लिए मान* (तौल) का ज्ञान होना अत्यावश्यक है, क्योंकि प्रयोग में औषधियों का परिमाण ठीक-ठीक न होने से पूर्ण लाभ नहीं कर सकता। अतः इस अध्याय में मान परिभाषा का उल्लेख किया जाता है।

आयुर्वेद-शास्त्र में 'मागधीय' और 'कलिंग' भेद से दो मानों का उल्लेख मिलता है। इन दोनों में मागधीय मान श्रेष्ठ होने से इसी का व्यवहार वैद्य लोग करते हैं।

शार्ङ्गधर के मतानुसार

मागधीयमान

१ त्रसरेणु	=	छोटे झरोखे से कमरे में आती हुई सूर्य की किरण में उड़ती हुई धूल के जो कण दिखायी पड़ते हैं उन्हें "त्रसरेणु" कहते हैं।
६ त्रसरेणु, ध्वंसी या वंशी	=	१ मरीचि
६ मरीचि	=	१ राई
३ राई	=	१ लाल सरसों
२ लाल सरसों	=	१ पीली सरसों
४ पीली सरसों	=	१ लाल चावल
२ लाल चावल	=	१ उड़द या जौ
२ उड़द	=	१ रत्ती या गुंजा
२ रत्ती	=	१ निष्पाव (सेम का बीज)

* मान शब्द का "मीयते अनेन इति मानम्" अर्थात् जिसके द्वारा तौला या मापा जाय उसको "मान" कहते हैं। इस व्युत्पत्ति से "मान" शब्द से तौल करने के साधन राई, सरसों, चावल, जौ, रत्ती आदि तौल (वजन) का, द्रवद्रव्य के समान बिन्दु, शाण, शुक्ति आदि मापने के पात्र का तथा लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई नापने का साधन यव, चंगुल, वितस्ति आदि नाप (मापदण्ड) का ग्रहण होता है।

३ निष्पाव=६ रत्ती	=	१ माशा
४ माशा=२४ रत्ती	=	१ शाण या टंक
२ शाण=४८ रत्ती	=	१ द्रंक्षण, कोल, गद्याण या वटक
२ द्रंक्षण=४ शाण =९६ रत्ती	=	१ कर्ष
२ कर्ष =२ तोला	=	१ पलार्ध
२ पलार्ध=४ तोला	=	१ पल, मुष्टि, बिल्व, चतुर्थिका
२ पल =८ तोला	=	१ प्रसृति या प्रसृत
२ प्रसृति=१६ तोला	=	१ अंजलि, या कुडव
२ अंजलि=३२ तोला	=	१ मानिका, शराव या अष्टपल
२ शराव =६४ तोला	=	१ प्रस्थ
४ प्रस्थ =३ सेर ३ छ० १ तो०	=	१ आढक
२ आढक =६ से० ६ छ० २ तो०	=	१ कंस या अर्द्ध द्रोण
२ कंस =१२ से० १२ छ० ६ तोला	=	१ द्रोण
२ द्रोण =२४ सेर २४ छ० १२ तोला	=	१ शूर्प, कुम्भ या चतुःषष्टि शराव
२ शूर्प =५१ सेर ४ छ० ४ तो०	=	१ वाह, गोणी, भारी या द्रोणी
४ द्रोणी=२०५ सेर ५ छ०, १ तो०	=	१ ग्वारी
१०० पल =५ सेर	=	१ तुला
२० तुला =१०० सेर	=	१ भार

सुश्रुत के मत से मानपरिभाषा

१२ उड़द =१ सुवर्ण माषक (उड़द) (=१ माशा)

१६ सुवर्णमाषकों का	=१ कर्ष, =सुवर्ण	१ तोला
१६ निष्पाव	=१ धरण	
२॥ धरण	=१ कर्ष (तोला)	
४ कर्ष	=१ पल=४ तोला	
४ पल	=१ कुडव=३ छ० १ तोला	
८ कुडव	=१ प्रस्थ=१२ छ० ४ तोला	
४ प्रस्थ	=१ आढक=३ सेर ३ छ० १ तोला	
४ आढक	=१ द्रोण=१२ सेर १२ छ० ४ तोला	
४०० कर्ष	=१ तुला=५ सेर	
२० तुला	=१ भार=१०० सेर	

आचार्य यादवजी त्रिकमजी द्रव्यगुणविज्ञान में लिखते हैं :—

"सुश्रुत ने मान संक्षेपतः और सरल भाषा में लिखा है। एक मान के कई पर्य्याय भी नहीं लिखे हैं। शाण, कोल, प्रसृत, शराब, कंस, शूर्प, और खारी ये मान सुश्रुत ने लिखे ही नहीं हैं, माशे का मान सुश्रुत और शार्ङ्गधर दोनों का समान है। दोनों के मत से माशा ६ रत्ती का होता है और शाण ४ माशे का। चरक ने ८ रत्ती का माशा माना है, परन्तु शाण ३ माशे का माना है। अतः शाण दोनों के मत में २४ रत्ती का होता है। सुश्रुत तथा शार्ङ्गधर ने १६ माशे का और चरक ने (शाण ३ माशे का, कोल ६ माशे का और) कर्ष १२ माशे का माना है। परन्तु यह है केवल आभास मात्र। रत्तियों के हिसाब से सब का शाण २४ रत्ती का, कोल ४८ रत्ती का और कर्ष ९६ रत्ती का होता है। अर्थात् रत्तियों के हिसाब से सुश्रुत और शार्ङ्गधर के साथ चरक के शाण, कोल और कर्ष के मान में कुछ भी अन्तर नहीं है। कर्ष के आगे के मान तीनों में बराबर हैं, सुश्रुत में उड़द के पहले का मान नहीं लिखा है। उसका कारण यह हो सकता है कि सुश्रुत के योगों में उड़द से नीचे की मान की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। हाँ, हीरे प्रभृति के भस्म, संखिया जैसे विष या कुछ तीक्ष्ण रस-योगों को रत्ती से भी सूक्ष्म मात्रा में देने की आवश्यकता पड़ती है। उसके लिये सुगम उपाय यह है कि—उन द्रव्यों की एक

रत्ती की मात्रा लेकर उसकी जितनी मात्रा बनानी हो, उतनी गुना उसमें गिलोय सत्त्व या दुग्ध शर्करा (सुगर ऑफ मिल्क) मिला खूब मर्दन कर, उसकी उतनी मात्राएँ बनायें, इस प्रकार भाग बना लेने से मनोऽनुकूल मात्रा बनाने में सुविधा होती है और औषध के गुणों में कुछ भी अन्तर नहीं आता। इसी प्रकार गन्धकद्राव (गन्धकाम्ल) जैसे तीक्ष्ण द्रवौषधों को १०-२० गुने परिस्रुत जल में मिला लेने से उसकी अभीष्ट मात्रा देने में सरलता होती है।

स्व० पं० हरिप्रपन्नजी "रसयोगसागर" के परिशिष्ट में लिखते हैं—

"सुश्रुतीय मान के साथ शार्ङ्गधरोक्त मान की तुलना की जाती है। सुश्रुत में १२ उड़द का १ माशा माना गया है, तथा शार्ङ्गधर में ६ रत्ती का एक माशा माना है, और कर्ष को दोनों ने १६ माशे का लिखा है। वजन करने से १ रत्ती के बराबर २ उड़द होते हैं। सुश्रुत के हिसाब से एक कर्ष में १९२ उड़द होते हैं। और शार्ङ्गधर में ६ रत्ती के माशे के हिसाब से ९६ रत्तियाँ होती हैं। इन रत्तियों को द्विगुण करने से १९२ उड़द बनते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि सुश्रुत को भी ९६ रत्ती का कर्ष और ६ रत्ती का ही माशा मान्य है। जो–शार्ङ्गधर के मान के बराबर है। आजकल व्यवहार में भी एक तोले की ९६ रत्तियाँ मानी जाती हैं,xxx। यदि आजकल के प्रचलित रुपयों के साथ बराबरी करनी हो तो पंचमजार्ज का जो किल्विष रहित नया सिक्का है (आजकल यह सिक्का अप्राप्य-सा हो गया है), वह उपरि निर्दिष्ट तोले या कर्ष के बराबर वजन में है, परन्तु इससे पहले के दो सिक्के कुछ कम हैं। इसलिये रुपयों से तोलने का काम लिया जाय तो वर्तमान नये सिक्के से लेना उचित होगा। पर एकान्ततः उसपर भी भरोसा न रखना चाहिए। उसमें भी एक दूसरे में टकसाल की गलती से अथवा घिसने से अथवा तेजाब में डाल कर चाँदी निकालने से कुछ फेर-फार रहता है, इस बात पर ध्यान रखना चाहिए। एक कर्ष के १६ माशे माने गए हैं और आज कल १ तोले के १२ माशे माने जाते हैं, इस जगह आपाततः विरोध आता ह। परन्तु तोले में माशा ८ रत्ती का माना जाता है, और

उपरिनिर्दिष्ट कर्ष में ६ रत्ती का माना है, इसलिये कर्ष में १६ और तोले में १२ माशे का आभासमात्र भेद प्रतीत होता है, वास्तविक भेद नहीं है।"

द्रव पदार्थ का यूनानी मान

४।। माशा	...	१ चमचा
१२।। तोला	...	१ प्याली
२० तोला	...	१ प्याला

यूनानी मान के अनुसार चम्मच, प्याली और प्याले बनवा कर भी वैद्यों को उपयोग में लाने चाहिए।

द्रव द्रव्यार्थ कुडवमान

द्रव द्रव्य के मापन के लिए मिट्टी, लकड़ी या लोहे आदि धातुओं का चार अंगुल (=३२ जौ=३ इंच) चौड़ा और ४अंगुल ही ऊँचा गोल पात्र बनाया जाय, इसे कुडव कहते हैं।

वक्तव्य—शार्ङ्गधर आदि ने द्रव द्रव्यों के मापने के लिए इस प्रकार का कुडव बनाने को लिखा है। अंगुल ३ प्रकार का माना गया है—६, ७ और ८ यव की चौड़ाई का। छिले हुए यवों के मध्य भाग में सूई पिरोकर यह लम्बाई ली जाती है। एक यव की लम्बाई एक इञ्च के दशांश के बराबर होती है। यदि ६ यव का एक अंगुल मानकर ४ अंगुल (= २४ यव या २ इञ्च ४ दशांश) चौड़ा और गहरा गोल पात्र बनाया जाय तो उसमें १६ तोला (कर्ष) जल आ सकता है। आयुर्वेदीय पद्धति से द्रव द्रव्य मापने के लिये कुडव का मान बनाना आवश्यक है। इसमें कर्ष, पल प्रभृति और कुडव के स्थान में रेखाएँ लाकर नागरी अङ्क और मान के नाम लिखने चाहिये। जब तक इस प्रकार का कुडव का मान बनकर बाजार में न मिलने लगे तब तक सरकारी छाप के पाव, आधे और सेर के मानों से काम चलाना चाहिये। ÷ सेर = १। कुडव, ०।।० सेर =१। शराव और १ सेर = १ प्रस्थ।

भारतवर्ष में अंग्रेजी तौल

१८० ग्रेन	...		१ तोला
५ तोला	...	...	१ छटाँक
४ छटाँक	...	...	१ पाव
४ पाव (१६ छटाँक)		...	१ सेर
४० सेर	...	...	१ मन

घन पदार्थ का अंग्रेजी तौल

१ ग्रेन	...	...	१ गेहूंभर
६० ग्रेन	...	...	१ ड्राम
४३७॥ ग्रेन	...	...	१ औंस
१६ औंस	...	...	१ पौंड
१४ पौंड	...	...	१ स्टोन
२८ पौंड	...	...	१ क्वार्टर
४ क्वार्टर	...	...	१ हंड्रेडवेट
२० हंड्रेडवेट	...	...	१ टन

द्रव पदार्थ का अंग्रेजी मान

१ मिनिम	...	...	बूंद
६० बूंद	...	...	१ फ्लुइड (तरल) ड्राम
८ फ्लुइड ड्राम	...	...	१ फ्लुइड औंस
१६ फ्लुइड औंस	...	...	१ फ्लुइड पौंड
२० फ्लुइड औंस	...	...	१ पाइण्ड
८ पाइण्ट	...	...	१ गेलन

व्यवहार के लिये

आयुर्वेदोक्त मानों को व्यवहार में लाने के लिए उन मानों के बाट जंग न लगने वाले फौलाद, निकल, चाँदी, प्लेटिनम जैसी धातु के या मुलम्मा चढ़ाये हुए पीतल के बना लेने चाहिए। उन पर मान के अंक नागरी में लिखे होने चाहिए। जब तक ऐसे मान बाजार में न मिलने लगें तब तक बाजार में अंग्रेजी मान वाले ग्रेन के बाटों से या भारत सरकार के चाँदी के सिक्कों से काम चलाया जाय। १ ग्रेन १ यव या एक धान्यमाष के बराबर होता है। (द्र० गु० वि०)

सांकेतिक परिभाषा

दीपन—जो द्रव्य जठराग्नि को प्रदीप्त करता, किन्तु आम को नहीं पचाता; उसे 'दीपन' कहते हैं, जैसे—सौंफ।

पाचन—जो द्रव्य आम को पचाता और जठराग्नि को प्रदीप्त नहीं करता, उसको 'पाचन' कहते हैं, यथा—नागकेशर।

कई ऐसे भी द्रव्य होते हैं, जो 'दीपन' और 'पाचन' दोनों गुण रखते हैं, यथा—चित्रक।

संशमन—जो द्रव्य वात, पित्त और कफादि दोषों को न तो शमन करे और न प्रकुपित करे किन्तु बढ़े हुए दोषों का शमन कर दे उसे ",संशमन" कहते हैं, यथा—गुर्च (गिलोय)।

अनुलोमन—जो द्रव्य अपक्व मल को पकाकर अधोमार्ग द्वारा देह से बाहर निकाल दे, उसे 'अनुलोमन' कहते हैं, यथा—हरड़।

स्रंसन—जो द्रव्य अपक्व-मल को बिना पकाये ही अधोमार्ग द्वारा देह से बाहर फेंक दे, उसे 'स्रंसन' कहते हैं, यथा—अमलतास का गूदा।

भेदन—जो द्रव्य पतला-गाढ़ा या पिण्डाकार रूप में मल को भेदन करके अधोमार्ग से गिरा दे, उसे, 'भेदन' कहते हैं। यथा—कुटकी।

विरेचन—जो द्रव्य पक्व अथवा अपक्व मल को पतला बना कर अधोमार्ग द्वारा बाहर फेंक दे, उसे 'विरेचक' कहते हैं, यथा—त्रिवृता।

वामक—जो द्रव्य कच्चे ही पित्त-कफ एवं अन्नादि को मुख से बाहर बलात् निकाल फेंक दे, उसे 'वामक' कहते हैं, यथा—मैनफल।

शोधन—जो द्रव्य देह में संचित मलों को अपने स्थान से हटा कर मुख या अधोमार्ग द्वारा निकाल दे, उसे 'शोधन' कहते हैं, यथा—देवदाली (बन्दाल) का फल।

छेदन—जो द्रव्य देह में चिपके हुए कफादि दोषों का बलात् उन्मूलन (नाश) करता है, उसको 'छेदन' कहते हैं, यथा—सब प्रकार के क्षार, काली मिर्च, शिलाजीत आदि।

लेखन—जो द्रव्य शरीरस्थ धातु (रस-रक्तादि) और मल (मूत्र-पुरीषादि) को सुखा कर बाहर निकाल देता है, उसे 'लेखन' कहते हैं, यथा—शहद, गर्मजल, बच, जौ आदि।

ग्राही—जो द्रव्य दीपन एवं पाचन है वह अपने उष्ण गुण के कारण शरीर में रहने वाले द्रव (जल) अंश को सुखा देता है, उसे 'ग्राही' कहते हैं, यथा—सोंठ, जीरा, गजपीपल आदि।

स्तम्भन—जो द्रव्य रूक्ष, शीतल, कषाय और पाक में लघु गुण होने से वातवर्द्धक तथा स्तम्भक गुण वाला हो, उसको 'स्तम्भन' कहते हैं, यथा—इन्द्र जौ और सोनापाठा (श्योनाक)।

रसायन–जो द्रव्य जरा (वृद्धावस्था) और व्याधियों के आक्रमण से रक्षा करे, उसे 'रसायन' कहते हैं, यथा—गुर्चं (गिलोय), गूगल, रुद्रवन्ती, हर्रे आदि।

स्वस्थ मनुष्य के शरीर में जो ओज की वृद्धि करे और पौष्टिक हो वह भी 'रसायन' कहलाता है।

बाजीकरण—जिन द्रव्यों के सेवन से पुरुष की रति-शक्ति की वृद्धि हो, उसको 'बाजीकरण' कहते हैं। यथा—नागबला, कोंच के बीज आदि।

नोट—सुश्रुत के टिप्पणीकार ने—जनक, प्रवर्त्तक और जनक प्रवर्त्तक भेद से इसे तीन तरह का माना है। यथा :—

(१) **जनक**—घृत मांस आदि द्रव्य रस रक्तादि धातु क्रम से परिणत होकर प्रधान धातु की पुष्टि कर मैथुन शक्ति की वृद्धि करते हैं। अतः यह 'जनक' कहलाते हैं। कई आचार्यो ने उन्हें शुक्रल या शुक्रजनक भी बतलाया है।

(२) **प्रवर्त्तक**—कुचला-चूर्ण आदि विरेचनकारी द्रव्य 'प्रवर्त्तक' हैं।

(३) **जनक-प्रवर्त्तक**—गोदुग्ध, घृत, गेहूँ, उड़द, कौंचबीज आदि पदार्थ जनक और प्रवर्त्तक दोनों-गुण युक्त हैं। अर्थात् शुक्रल और बाजीकर गुणयुक्त हैं।

शुक्रल—जिस द्रव्य के सेवन से शुक्र की वृद्धि हो उसको 'शुक्रल' कहते हैं। यथा—असगन्ध, सफेद मूसली, मिश्री और शतावरी।

शुक्रप्रवर्त्तक—शुक्र (वीर्य) को उत्पन्न और प्रवर्त्तन करने वाले द्रव्यों को "शुक्रप्रवर्त्तक" कहते हैं। यथा—गो-दुग्ध, उड़द, भिलावे की गिरी, आँवला आदि।

सूक्ष्म-द्रव्य—शरीर के सूक्ष्म छिद्रों में जो द्रव्य प्रवेश कर जाय, उसे 'सूक्ष्मद्रव्य' कहते हैं। यथा—सेंधा नमक, शहद, नीम और एरण्ड का तैल आदि।

व्यवायी-द्रव्य—जो द्रव्य अपक्वावस्था में ही सम्पूर्ण शरीर में फैल जाय, फिर पचने लगे उसको 'व्यवायी' कहते हैं। यथा—अफीम और भाँग आदि।

विकाशी—जो द्रव्य शरीर में फैल कर जोड़ों के बन्धन को ढीला करे उसे 'विकाशी' कहते हैं। यथा—सुपारी और कोद्रव (कोदो) अन्न विशेष।

मदकारी—जो द्रव्य तमो गुण प्रधान होते हैं और जिनके सेवन से बुद्धि का लोप हो जाता है, उन्हें 'मदकारी' कहते हैं। यथा—मद्य, ताड़ी प्रभृति।

विष—जो द्रव्य व्यवायी, विकाशी, कफनाशक, मदकारक, आग्नेय गुण-विशिष्ट, गुणनाशक और योगवाही हो, उसको 'विष' कहते हैं। यथा—वच्छनाग, संखिया, अफीम आदि।

प्रमाथी—जो द्रव्य अपनी शक्ति से रस-रक्तबाही स्रोतों के भीतर संचित दोष (विकार) को दूर करता है उसको 'प्रमाथी' कहते हैं। यथा—काली मिर्च और बच।

अभिष्यन्दी—जो द्रव्य अपने पराक्रम से रसवाही स्रोतों को अवरुद्ध कर शरीर में गुरुता उत्पन्न करे, उसे 'अभिष्यन्दी' कहते हैं। यथा—दही।

योगवाही—जो द्रव्य पच्यमानावस्था में सांसर्गिक गुण को ग्रहण कर लेते हैं, उन्हें 'योगवाही' कहते हैं। यथा—शहद, घी, जल, तैल, पारद और लौह आदि धातु।

विदाही—जिस द्रव्य के सेवन से खट्टी-खट्टी डकारे आने लगें, प्यास लगे और हृदय में दाह हो तथा भोजन का परिपाक देर से हो, उसे 'विदाही' कहते हैं।

शीतल—जो द्रव्य स्तम्भक और ठंडा तथा सुखप्रद हो और प्यास, मूर्च्छा, दाह तथा स्वेद (पसीना) का शमन करे, उसे 'शीतल' कहते हैं।

उष्ण—शीत गुण के विपरीत अर्थात् प्यास, दाह, मूर्च्छा को उत्पन्न करनेवाला, विशेषतः घाव को पकाने वाला हो, उसे 'उष्ण' कहते हैं।

स्निग्ध—जो द्रव्य स्नेहयुक्त (चिकना) और कोमलता उत्पन्न करने वाला तथा बल- वर्ण की बृद्धि करने वाला हो, उसे 'स्निग्ध' कहते हैं।

त्रिकटु—सोंठ, पीपल और काली मिर्च के मिश्रण को 'त्रिकटु' कहते हैं।

त्रिफला—आँवला, हर्रे और बहेड़ा के मिश्रण को 'त्रिफला' कहते हैं।

त्रिकंटक—कटेली, धमासा और गोखरू के मिश्रण को 'त्रिकंटक' कहते हैं।

त्रिमद—एकत्र मिले हुए वायविडंग, नागरमोथा और चित्रक को 'त्रिमद' कहते हैं।

त्रिजात—दालचीनी, तेजपात और इलायची के मिश्रण को 'त्रिजात' कहते हैं।

त्रिलवण—मिले हुए सेंधा, काला तथा विड्नमक को 'त्रिलवण' कहते हैं।

क्षारत्रय—यवक्षार, सज्जीक्षार और सुहागा के मिश्रण को, 'क्षारत्रय' कहते हैं।

मधुरत्रय—न्यूनाधिक मात्रा में एकत्र मिले हुए घृत, मधु तथा गुड़ को 'मधुरत्रय' कहते हैं।

त्रिगन्ध—मिले हुए गन्धक, हरताल और मैनशिल को 'त्रिगन्ध' कहते हैं।

चतुर्जात—एकत्र मिले हुए दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर को 'चतुर्जात' कहते हैं।

चातुर्भद्र—एकत्र मिले हुए सोंठ, अतीस, मोथा तथा गिलोय को 'चातुर्भद्र' कहते हैं।

चतुर्बीज—एकत्र मिले हुए मेथी, अजवायन, काला जीरा तथा हालों के बीज को 'चातुर्बीज' कहते हैं।

चतुरुष्ण—एकत्र मिले हुए सोंठ, काली मिर्च, पीपल और पिपरामूल को 'चतुरुष्ण' कहते हैं।

चतुःसम—हरड़, लौंग, सेंधानमक और अजवायन के मिश्रण को "चतुःसम' कहते हैं।

बलाचतुष्टय—एकत्र मिले हुए खरेंटी, सहदेई, कंघी और गंगेरन को, 'बलाचतुष्टय' कहते हैं।

पंचबल्कल—आम, बड़, गूलर, पीपल, पाकर के पंचक्षीर वृक्षों के बल्कलों के मिश्रण को 'पंचवल्कल' कहते हैं।

तृणपंचमूल—एकत्र मिले हुए कुश, काँस, सरकण्डा, काश (डाभ) और गन्ने के मूल को 'तृणपंचमूल' कहते हैं।

अम्लपंचक—एकत्र मिले हुए बिजौरा, सन्तरा, इमली, अम्लवेत और जम्बीरी नीबू को 'अम्लपंचक' कहते हैं।

लघुपंचमूल—शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली और गोखरू को 'लघुपंचमूल' कहते हैं।

वृहत्पंचमूल—अरणी, श्योनाक, पाढ़ की छाल, बेल और गम्भारी को वृहत् 'पंचमूल' कहते हैं।

पंचपल्लव—एकत्र मिले हुए आम, कैथ, बिजौरा, बेल और जामुन के पत्ते को 'पंचपल्लव' कहते हैं।

मित्रपंचक—एकत्र मिले हुए गुड़, घी, घुंघची, सुहागा और गूगल को 'मित्रपंचक' कहते हैं।

पंचकोल—एकत्र मिले हुए पीपल, पीपलामल, चव्य, चित्रक, नागर (सोंठ) को 'पंचकोल' कहते हैं।

पंचगव्य—एकत्र मिले हुए गाय के दूध, दही, घृत गोबर और मूत्र को 'पंचगव्य' कहते हैं।

पंचलवण—एकत्र मिले हुए सेंधा, काला, विड्, सोंचल और सामुद्र लवण को 'पंचलवण' कहते हैं।

पंचक्षार—तिल, पलाश, अपामार्ग, यवक्षार और सज्जी क्षार को 'पंचक्षार' कहते हैं।

पंचसुगन्धि—शीतल चीनी, सुपारी, लौंग, जावित्री और जायफल को 'पंचसुगन्धि' कहते हैं।

षडूषण—पंचकोल में काली मिर्च मिला देने से 'षडूषण' कहलाता है।

सप्तधातु—सुवर्ण, चाँदी, ताम्र, बंग, यशद, शीशा और लोहा को 'सप्त धातु' कहते हैं।

सप्तउपधातु — सुवर्णमाक्षिक, रौप्यमाक्षिक, नीलाथोथा,

मुरदाशङ्ख, खर्पर, सिन्दूर और मण्डूर को 'सप्तउपधातु' कहते हैं।

सप्तउपरत्न—वैक्रान्त, राजावर्त्त, पिरोजा, शुक्ति, शङ्ख, सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त को 'सप्तउपरत्न' कहते हैं।

सप्तसुगन्धि—अगर, शीतल मिर्च, लोबान, लौंग, कपूर, केशर और चतुर्जात 'सप्तसुगन्धि' कहलाता है।

अष्टवर्ग—मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि और वृद्धि को 'अष्टवर्ग' कहते हैं।

मूत्राष्टक—गाय, भैंस, बकरा, भेड़, ऊँटनी, गधी, घोड़ी और हथिनी के मूत्र 'मूत्राष्टक' कहलाते हैं।

क्षाराष्टक—अपामार्ग, आक, इमली, तिल, ढाक, थूहर और जौ के पंचाग के क्षार तथा सज्जीक्षार 'क्षाराष्टक' कहलाते हैं।

नवरत्न—हीरा, मोती, पन्ना, प्रवाल, लहसुनियाँ, गोमेदमणि, माणिक्य, नीलम और पुखराज ये 'नवरत्न' कहलाते हैं।

नव उपविष—थूहर, आक, कलिहारी, चिरभिटी, जमाल गोटा, करेन, कुचिला, धत्तूरा और अफीम ये नव उपविष हैं।

दशमूल—लघु पंचमूल और वृहत् पंचमूल को मिला देने से 'दशमूल' बन जाता है।

रासायनिक परिभाषा

कज्जली—पारद को गन्धक के साथ अथवा प्रथम पारद में सुवर्णादि धातुओं का सूक्ष्म चूर्ण या बरक मिलाकर पीछे गन्धक के साथ बिना कोई द्रव्य मिलाये ही लोहे के खरल में पीसने से जो काजल जैसा काले रंग का पदार्थ बनता है, उसे 'कज्जली' कहते हैं।

रसपंक—यदि उपरोक्त विधि से बनी हुई कज्जली में द्रव पदार्थ मिलाकर घोंटा जाय तो उसे 'रसपंक' कहते हैं।

पिष्टी—२ माशे गन्धक और १२ माशे शु० पारद को लेकर

खरल में डाल कर तेज धूप में घोंटें। घोटते-घोटते चूर्ण के चिकना (कज्जली) हो जाने पर उसे 'पिष्टी' कहते हैं।

पातन-पिष्टी—एक भाग शुद्ध पारद को चौथाई भाग सुवर्ण पत्रों (वर्कों) के साथ घोंटने से जो कज्जली (पिष्टी) तैयार हो उसे 'पातन-पिष्टी' कहते हैं।

नोट—इस क्रिया से पारद के अन्दर अनेक गुणों का समावेश होता है।

वरलोह—तीक्ष्ण लौह तथा ताम्र को (अनेक बार) एक साथ ही पिघलावें, फिर गन्धक के चूर्ण को लकुच (बड़हल) के रस में मिलाकर उसमें बुझाये हुए लोह को 'वरलोह' कहते हैं।

निर्वापण—अग्नि में पिघली हुई धातु में अन्य धातुओं को पिघला कर वंकनाल से फूककर मिला दिया जावे तो उसको 'निर्वापण' या 'निर्वाहण' कहते हैं।

वंकनाल के लक्षण—पीतल आदि धातु की एक हाथ लम्बी, अग्रभाग में मुड़ी हुई, मूल में स्थूल छिद्रवाली और अग्रभाग में सूक्ष्म छिद्रवाली जो नली बनायी जाती है; उसको 'वंकनला' कहते हैं।

नोट—आजकल यह यन्त्र प्रायः सुनारों के यहाँ अग्नि प्रज्वलित करने के लिये देखा जाता है।

रेखापूर्ण भस्म—जिस धातु की भस्म तर्जनी (अंगूठे और मध्यमा के बीच की अंगुली) और अंगूठे के बीच में रगड़ने पर अंगूठे और तर्जनी की रेखाओं में प्रवेश कर जाय, उसे 'रेखापूर्ण भस्म' कहते हैं।

अपुनर्भव भस्म—किसी धातु की भस्म को गुड़, घुंघची का चूर्ण, सुहागा, शहद और घृत इनके साथ मिला मूषा में रख कर अग्नि में फूंकने से यदि भस्म से धातु पृथक् न हो तो उस भस्म को 'अपुनर्भव भस्म' कहते हैं।

वारितर भस्म—धातु की जो भस्म जल में तैर सकती है, उसको 'वारितर भस्म' कहते हैं।

वारितर भस्म की परीक्षा—एक छोटा सा काँच या पीतल अथवा कलई का गिलास लेकर उसे जल से भर दिया जाय। जब पानी स्थिर

हो जाय तब अंगुष्ठ और तर्जनी के बीच में रगड़ते हुए थोड़ी भस्म धीरे-धीरे उसमें छोड़ देनी चाहिये। ऐसा करने पर यदि वह भस्म उत्तम होगी तो पानी पर तैरेगी और वह कच्ची होगी तो पानी के नीचे बैठ जायगी।

बीज—किसी धातु को गला कर उसमें अन्य धातु का निर्वापण करने से वह धातु कोमल हो जाती है, तथा अद्भुत् गुणकारी हो जाती है। इसी को 'बीज' कहते हैं।

धान्याभ्रक—शुद्ध किये हुए अभ्रक का मोटा चूर्ण कर, उसमें चतुर्थांश (छिलके सहित चावल) डाल ऊनी कम्बल या खद्दर में बाँध कर एक पात्र में भरे हुए जल (या काँजी) में तीन दिन रख छोड़ें, इससे अभ्रक नरम हो जायगा। चौथे दिन कम्बल या खद्दर को एक पात्र में बाँध धान समेत अभ्रक को हाथ से मर्दन करके सब अभ्रक को जल में छान ऊपर का निथरा हुआ जल निकाल कर धूप में सुखा लिया जाय। इसको 'धान्याभ्रक' कहते हैं। धान्याभ्रक बनाने के बाद उसकी भस्म बनानी चाहिए। धान्याभ्रक बना लेने से अभ्रक सूक्ष्म और मारणोपयुक्त होता है।

सत्व—क्षारवर्ग, अम्ल वर्ग और द्रावण वर्गों के द्रव्यों के साथ अभ्रक, माक्षिक, खर्पर आदि जिस खनिज द्रव्य का सत्त्व निकालना हो उसको मर्दन कर गोला बना, सुखा कर मूषा में डाल भट्ठी में रख कर धौंकनी की सहायता से तीव्र आँच देने से उस खनिज से जो साररूप-द्रव्य प्राप्त होता है उसको 'सत्त्व' कहते हैं।

शोधन त्रितय—काँच, सुहागा और सौवीरांजन ये तीनों धातु-द्रव्यों को शुद्ध करने वाले हैं।

क्षीरत्रय—अर्क, बड़ और थूहर के दूध को 'क्षीरत्रय' कहते हैं।

हिंगुलाकृष्ट—हिंगुल को अद्रक के रस में घोंट कर ,विद्याधर यन्त्र, से उड़ा कर निकाले हुए पारद को 'हिंगुलाकृष्ट' कहते हैं।

घोषाकृष्ट—काँस्य के अन्दर कुछ हरताल मिला कर बंकनाल द्वारा अग्नि में फूंकने से बङ्ग का भाग और ताम्र का भाग पृथक्-पृथक् निकल जाता है, इसको 'घोषाकृष्ट' कहते हैं।

वरनाग—नाग को तीक्ष्ण लौह और नीलांजन के साथ अनेक बार तेज आँच में फूंकने पर जब वह अत्यन्त कोमल कृष्ण वर्ण तथा शीघ्र ही द्रुत होने लायक हो जाय तब उसको 'वरनाग' कहते हैं।

उत्थापन—किसी भी धातुकी भस्म को द्रावक वर्ग के द्रव्यों के साथ फूंकने से वह अपने स्वरूप में आ जाता है, इसको 'उत्थापन'कहते हैं।

ढालन—किसी धातु को अग्नि में द्रवित करके द्रव में बुझाने को 'ढालन' कहते हैं।

द्वन्दान—दो धातुओं को एक साथ मिला कर फूंकने से जो एकीकरण किया जाता है, उसको 'द्वन्दान' कहते हैं।

अवाप—अग्नि के द्वारा पिघलाये हुए धातु आदि में अन्य किसी द्रव्य को मिलाने की क्रिया को 'अवाप' 'प्रतिवाप' अथवा 'आच्छादन' कहते हैं।

निर्वाप—अग्नि में गर्म की हुई किसी धातु को जल में बुझाने की क्रिया को 'निर्वाप' कहते हैं।

शुद्धावर्त—जब अग्नि खूब प्रज्वलित हो जाय और उसमें से श्वेतवर्ण की ज्वाला उठने लगे तब उसको 'शुद्धावर्त' कहते हैं। यह आँच सत्त्व निकालने के लिए काम आती है।

बीजावर्त—किसी धातु का द्रावण करने के लिये उसको अग्नि में रख कर धौंकनी से धौंकते हैं, उस समय उसी धातु की तरह अग्नि में ज्वाला दिखाई देती है। इसी समय इसका द्रव होना भी प्रारम्भ हो जाता है, इसको 'बीजावर्त्त' कहते हैं।

स्वांगशीत और वाह्यशीत—भस्म चूल्हे पर या पुट में रखी हो और आग ठण्ढी हो जाय तो चूल्हे या पुट पर रखी-रखी ही ठण्ढी होने पर उसको 'स्वाँगशीत' कहते हैं और अग्नि से अलग निकालने पर जो ठण्ढी हो जाय उसको 'बाह्यशीत' कहते हैं।

स्वेदन—पारद या अन्य किसी द्रव्य को क्षारीय द्रव (घोल) अम्ल-द्रव अथवा दूध, गोमूत्र, क्वाथ आदि द्रव के साथ दोलायन्त्र में पकाने की क्रिया को 'स्वेदन' कहते हैं। इससे विषादि दोष नष्ट हो जाते हैं और पारद शिथिल हो जाता है।

मर्दन—पारद को मर्दन संस्कार में लिखित द्रव्यों के साथ अथवा किसी अम्ल पदार्थ (या कांजी) के साथ घोटने से पारद के बाहरी मल का नाश होता है।

मूर्च्छन—मूर्च्छन के लिये मूर्च्छनोक्त द्रव्यों के साथ पारद का मर्दन इतना करना चाहिये कि पारद अदृश्य हो जाय। इसको 'मूर्च्छन संस्कार' कहते हैं। इससे पारद के मल, वह्नि और विष-दोष दूर हो जाते हैं।

उत्थापन—कांजी में स्वेदन करके अथवा उसे कड़ी धूप में रख कर अथवा गर्म जल से धो कर पारद का ऊर्द्ध्व-पातन करके मूर्च्छित पारद को पुनः अपने स्वरूप में लाने की क्रिया को 'उत्थापन' कहते हैं।

पातन—पातन संस्कारोक्त द्रव्यों के साथ पारद को घोट कर उर्द्ध्व पातन, अधःपातन और तिर्यक्-पातन यन्त्रों में रख कर क्रम से पारद को ऊपर नीचे और तिर्यक् (तिरछे) मार्ग से उड़ाते हैं। इसको 'पातन' संस्कार कहते हैं।

रोधन—उपरोक्त संस्कार से पारद मन्द वीर्य वाला हो जाता है। उसमें पुनः शक्ति उत्पन्न करने के लिये मिट्टी के घड़े में पानी और सेंधा नमक भर कर, पारद डालकर, घड़े का मुँह तीन दिन तक बन्द रखा जाता है। इसको 'रोधन' संस्कार कहते हैं।

नियमन—रोधन संस्कार से प्राप्त शक्तिवाले पारद की चंच-लता निवृत्ति के लिये पारद का स्वेदन किया जाता है। इसको 'नियमन' संस्कार कहते हैं।

दीपन—स्वर्णादि की ग्रास करने की शक्ति बढ़ाने के लिये पारद का दोलायन्त्र द्वारा कसीस, चित्रक, सेंधा नमक आदि अन्य दीपनी ओषधियों के साथ तीन दिन तक स्वेदन किया जाता है, इसको 'दीपन' संस्कार कहते हैं।

ग्रासमान—इतनी मात्रा में पारद इतनी मात्रा वाले स्वर्ण, स्वर्ण-अभ्रक आदि धातुओं को ग्रसित कर सकता है। इस प्रकार ग्रास की मात्रा का जो निर्णय किया जाता है, उसको 'ग्रासमान' कहते हैं।

चारणा (जारण)—पारद में सुवर्णादि धातु को मिला देने की क्रिया को 'चारणा' कहते हैं।

चारणा के भेद—इसके दो भेद हैं, समुख चारणा और निर्मुख-चारणा।

समुख चारणा—पारद में ६४ वां भाग बीज मिलाने से पारद अभ्रक सत्त्व आदि कठिन सत्त्वों को खाने (अपने अन्दर विलीन करने) में समर्थ होता है। इस प्रकार पारद में पहले मुख उत्पन्न करके पीछे अभ्रक सत्त्व आदि के चारण कराने की क्रिया को 'समुख चारणा' कहते हैं।

निर्मुख चारणा—मुख उत्पन्न किये बिना ही खुले मुख की मूषा में रखा हुआ पारद दिव्यौषधियों के योग से जो समग्र लोह और सत्त्वों को खा ले (अपने में मिला ले) उसको 'निर्मुख चारणा' कहते हैं।

गर्भद्रुति—ग्रास दिये (मिलाये) हुए अभ्रक सत्त्व आदि को पारद के बीच में द्रवीभूत करने की क्रिया को 'गर्भद्रुति' कहते हैं।

वाह्यद्रुति—अभ्रक के सत्त्व या अन्य लोहादिकों की भस्म को, पृथक्-पृथक् द्रव कर, पारद के अन्दर जारण करने के लिये मिलाया जाता है। इसको 'वाह्यद्रुति' कहते हैं।

द्रुतिलक्षण—सुवर्णादि लोहों अथवा अन्य खनिज पदार्थों को विशिष्ट औषधों के साथ मिला कर तीक्ष्ण आँच देने से जब वे पिघल कर द्रवावस्था में ही रह जायँ तो इस क्रिया को "द्रुति" कहते हैं।

द्रुतियों के भेद—पात्रादि के साथ न चिपकना, सदा द्रव रूप में रहना, चमकदार होना, मूल पदार्थ से हल्का होना और पारद में शीघ्र मिल जाना, 'द्रुति' के ये पाँच लक्षण हैं।

जारण—ग्रास दिये हुए और द्रवीभूत किये हुए अभ्रक सत्त्व आदि को बिड मिला कर और जारण यन्त्र में पका कर पारद में जीर्ण करा देने की क्रिया को 'जारण' कहते हैं।

बिडलक्षण—पारद में दिये हुए ग्रास को जीर्ण कराने के लिये क्षार, अम्ल द्रव्य, गन्धक आदि खनिज द्रव्य, मूत्र और लवण को मिला कर विशिष्ट क्रिया से जो पदार्थ तैयार किया जाता है उस क्रिया को 'बिड' कहते हैं।

रंजनलक्षण—अच्छे प्रकार से सिद्ध किये हुए बीज (स्वर्ण-

चाँदी) धातुओं के साथ पारद का जारण करके उसमें पीत, रक्त इत्यादि रंग उत्पन्न करने की क्रिया को 'रंजन' कहते हैं।

सारणलक्षण—तैल से भरी हुई अन्धमूषा में रंजित पारद को डाल कर उसमें सोना-चाँदी आदि धातुओं को गेर कर जो वेध संस्कार किया जाता है उसको 'सारण' कहते हैं। इस संस्कार द्वारा पारे में लौह वेध करने की शक्ति बढ़ जाती है।

वेधलक्षण—अफीम, भाँग, धतूरा इत्यादि व्यवायी पदार्थों के साथ सारण किये हुए पारद को ताम्र, बंग आदि दूसरी धातु में डालने की क्रिया को 'वध' कहत हैं।

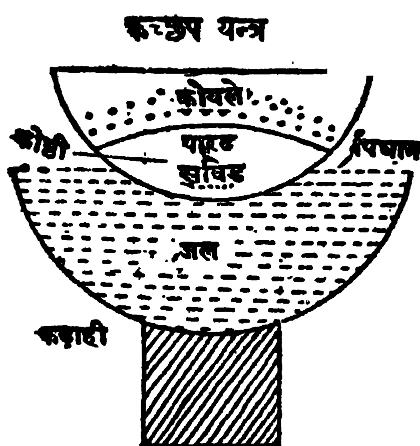
रस ग्रन्थों में इसके कई भेद लिखे गये हैं यथा—लेपवेध, क्षेप-वेध, कुन्तवेध, धूमवेध, शब्दवेध ये पाँच वेध हैं। इन सबका लक्षण रस-शास्त्रों में देखना चाहिये। —द्र० गु० वि०

आठ महारस—माक्षिक, विमल, शिलाजीत, चपल, रसक (खपरिया), शस्यक (नीलाथोथा), दरद (हिंगुल) और स्रोतोंजन इन आठ द्रव्यों को 'महारस' कहते हैं। —रसार्णव

आठ उपरस—गन्धक, हरताल, मैनसिल, फिटकरी, कसीस, गेरू, लाजवर्द और कुंकुष्ठ ये आठ 'उपरस' हैं। —रस प०

साधारण रस—कवीला, चपल, संखिया, नौसादर, कौड़ी, अम्बर, गिरि सिन्दूर, हिंगुल और मुर्दाशंख ये नौ 'साधारण रस' है।

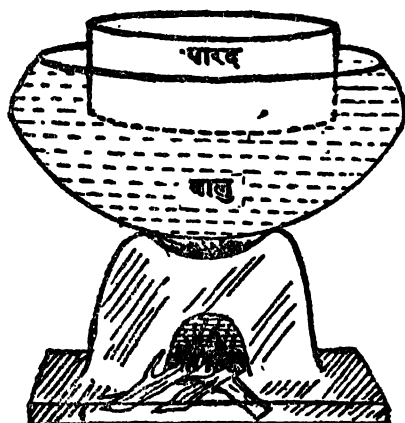
यन्त्र और पुट



१५-२० अंगुल चौड़ा और इतना ही गहरा मज-बूत मिट्टी का नाद लेकर उसमें आधे भाग तक शीतल जल भर दें, फिर एक दूसरा मिट्टी का पात्र लें, जो पात्र में पड़े हुए जल की सतह को छूता हुआ उसके मुख पर अच्छी तरह बैठ जाय। ऊपर वाले पात्र के बीच में पारद और

गन्धकयुक्त मूषा को रख दें। इस मूषा को एक दृढ़ शराव या प्याले से अच्छी तरह ढक कर जल और मिट्टी से अच्छी तरह सन्धिलेप करें, सबसे ऊपर के पात्र में रखे हुए प्याले के ऊपर चारों तरफ खैर के कोयले भर कर तबतक तेज अग्नि जलावें जब तक कि गन्धक जारण न हो जाय। इसे कच्छप यन्त्र कहते हैं। —र० वि०

हंसपाक यन्त्र



मिट्टी का बना हुआ एक पतला-चौड़ा कुंडा में किनारों तक बालू भर कर उसके ऊपर दूसरा चौड़ा कुण्डा रख उसमें यवक्षार आदि पंचक्षार, पाँचों नमक तथा पूर्वोक्त विड् द्रव्यों को गोमूत्र के साथ एकत्र पीस कर रखें, और धीमी आँच से उसे पकावें। यह यन्त्र विड के पाकार्थ प्रयुक्त होता है। —र० वि०

बालुका यन्त्र

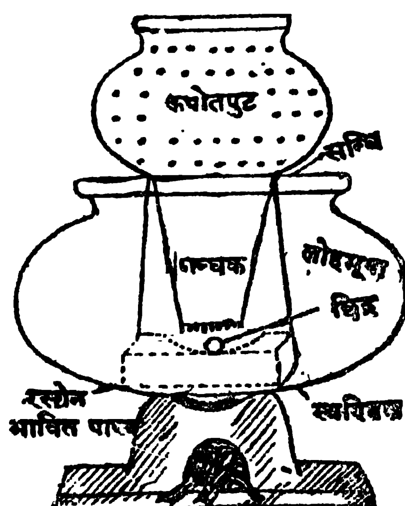


एक काँच की बोतल या आतसी शीशी लेकर उसके ऊपर सात बार अच्छी तरह कपड़मिट्टी करके सुखा इस शीशी में तृतीय भाग तक कज्जली भर दें। अब एक बारह अंगुल गहरी चौड़ी हाँड़ी लें। इस पर भी दो-तीन कपड़मिट्टी कर दें। इस हाँड़ी में कज्जलीयुक्त शीशी को मध्य में रख कर हाँड़ी के शेष भाग को गले तक साफ व मोटी बालुका से भर दें और हाँड़ी को चूल्हे या भट्ठी पर रख नीचे अग्नि दें। —र० वि०

लवण यन्त्र

बालुका यन्त्र में जहाँ बालू भरी जाती है वहाँ लवण यन्त्र में नमक भर कर पकाया जाता है। इस यन्त्र द्वारा मृगाँक रस आदि बनाया जाता है।

जारणा यन्त्र



१२ अंगुल लम्बी ६ अंगुल चौड़ी लोहे की एक मूषा लें और १२।।। अंगुल लम्बी और ६।।। इंच चौड़ी लोहे की दूसरी मूषा लें। १२।।। अंगुलवाली मूषा के चारों तरफ (ऊपर नीचे के तल्लों को छोड़कर) बारीक छिद्र करके उसमें पारद के समभाग शुद्ध गंधक का चूर्ण भर दें। दूसरी लौह मूषा में पारद भरकर इसमें गंधक-वाली मूषा को मुख की तरफ से खूब अच्छी तरह फँसा कर दृढ़ करके चूना, मण्डूर आदि के कल्क से लेप कर सुखा दें फिर एक चौड़े नाद में जल भरकर उसके मुख पर बीच में पारद वाली मूषा प्रमाण चौड़ा छिद्रकर एक दूसरा पात्र टिका दें। इस पात्र के छिद्र में पारदवाली मूषा इस तरह फंसावें जिससे इसका पारद वाला भाग मात्र जल में डूबा रहे और अवशिष्ट मूषा के नीचे-ऊपर कोयले या उपलों की अग्नि दें। इस क्रिया से गन्धक का जारण होता है। —र० वि०

वाष्पस्वेदन यन्त्र

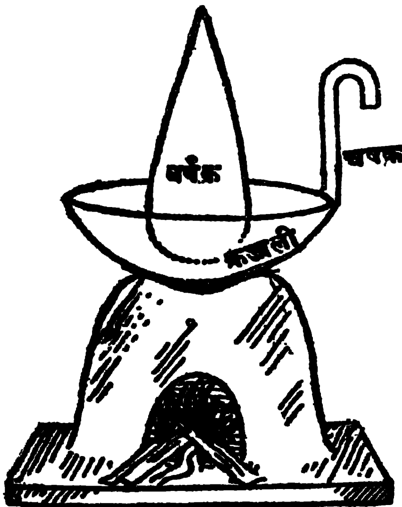
एक बड़े-से पात्र में आधा भाग जल भर दें, फिर एक दूसरे पात्र में जिसके दोनों तरफ एक-एक कड़ा या पकड़ने के लिये कुण्डे लगे हुए हों, उसमें औषधियों का क्वाथ या स्वरस भरकर उपरोक्त आधे जल भरे हुए पात्र में रख दें और बड़े जल वाले पात्र को चूल्हे

वाष्पस्वेदन यन्त्र



पर रखकर अग्नि जला दें। जब अग्नि के ताप से क्वाथ आदि द्रव्य चूर्ण रूप में हो जाय तो पात्र को नीचे उतार लें, इस विधि से जल-वाष्प द्वारा औषधों का स्वेदन किया जाता है, अतः इसे 'वाष्प-स्वेदन यन्त्र' कहते हैं। इस यन्त्र के द्वारा वनौषधियों के सत्त्वनिर्माण कार्य में बड़ी सुविधा होती है। —र० वि०

पालिका यन्त्र



किसी प्याले या करछी में यदि सीधी डंडी के स्थान पर, ऊपर की ओर डंडी करके उसको अन्त में कुछ मोड़ दिया जाय, तो उसे "पालिका यन्त्र" कहते हैं। इसका आधार ठीक तेल निकालने के लिये बनायी गयी, पली की तरह होता है। अतः इसे "पालिका यन्त्र" कहते हैं।

धूप यन्त्र



आठ अंगुल ऊंचा और आठ अंगुल चौड़ा एक लोहे का पात्र लें, उसमें गन्धक, हरताल तथा मैनसिल आदि धुआँ देने वाले द्रव्य, जिनसे सोना-चाँदी के पत्रों पर धुआँ देना हो डाल दें। उस पात्र में कण्ठ प्रदेश के नीचे निर्मित जलाधार पर पतली-पतली लोहे की शलाकाएँ (या लोहे की पतली जाली) लगा दें। उन शलाकाओं या जाली पर सोने या चाँदी के कण्टक-वेधी पत्र रख दें। अब इस लोह-पात्र के ऊपर दूसरा लोह-पात्र उल्टा मुख रख कर कपड़ मिट्टी से सन्धि बन्द करके सुखा लें।

इस यन्त्र को चूल्हे पर रखकर नीचे मंद-मंद आँच लगावें, इस प्रकार धूपन देने से स्वर्णपत्र काले और मृत हो जाते हैं; जिन्हें पारद शीघ्र ही खा जाता है और वे पत्र पारद में शीघ्र ही द्रव रूप हो विलीन हो जाते हैं। —र०वि०

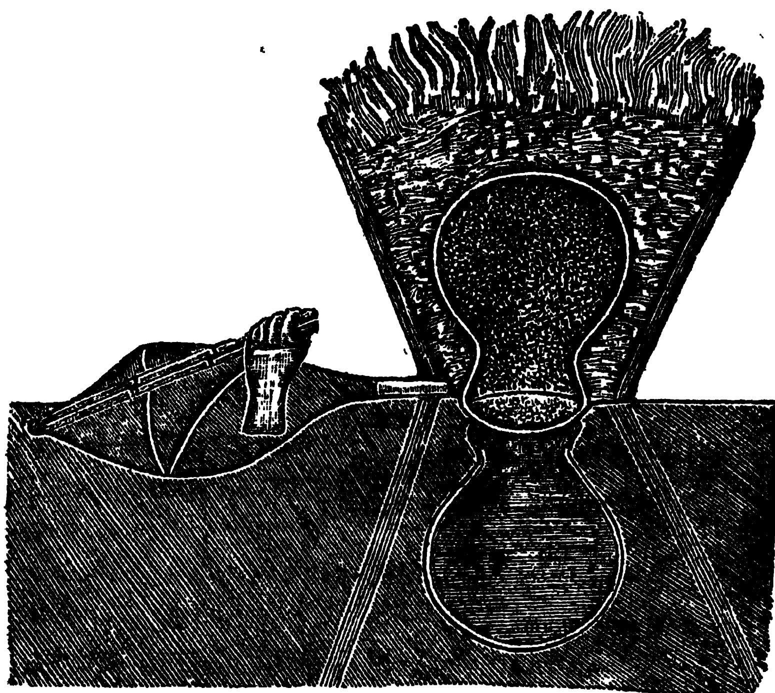
कोष्ठी यन्त्र

धातुओं का सत्त्वपातन करने के लिये सामान्यतः १६ अंगुल व्यास की और एक हाथ ऊँची जो भट्ठी बनाई जाती है उसे "कोष्ठी यन्त्र" कहते हैं।

कोष्ठी यन्त्र बनाने के लिये एक वालिस्त लम्बी, ६ अंगुल चौड़ी दो मजबूत मूषा बना लें। पहले एक मूषा को ऊपर सीधा मुख करके जमीन में गाड़ दें। उसके मुख पर दूसरी मूषा में सत्त्वपातनार्थ द्रव्यों को भर कर और उसके मुख पर एक छिद्र युक्त शराब

टिकाकर औंधा मुख करके रख दें और दोनों मूषा के मुखों का सन्धि बन्द कर दें। फिर ऊपर की मूषा के चारों तरफ नीचे से ऊपर को

कोष्ठी यन्त्र



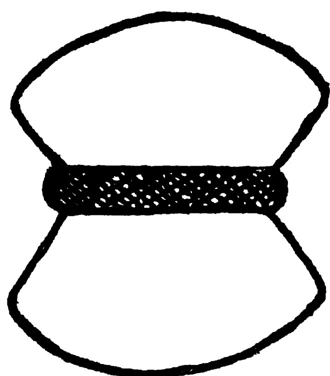
चौड़ा, कोयला रखने के लिये एक आधार १६ अंगुल ऊँचा बनावें। इसमें कोयला भर दें। इस आधार का ऊपरी मूषा के कण्ठ-प्रदेश के सामने जमीन पर धौंकनी द्वारा हवा देने के लिये एक छिद्र भी बनावें। फिर मिट्टी में कोयले डालकर इनके बीच में मूषा रख धौंकनी से धौंक कर आवश्यक मात्रा में अग्नि को प्रदीप्त करना चाहिये।

—र० वि०

विद्याधर यन्त्र

दो मिट्टी के वर्तनों के मुख को परस्पर, कपड़मिट्टी द्वारा बन्द करके जो बनाया जाता है, उसको 'विद्याधर या डमरू यन्त्र' कहते हैं।

विद्याधर यन्त्र



विधि—एक चार मुख वाला चूल्हा बनाकर उस पर औषधादि से भरा हुआ एक मिट्टी का भांड रखना चाहिये कि फिर इस भांड पर दूसरा भांड औंधा रखकर नीचे के भांड के मुख को ऊपर रखे हुए भांड के मुख के साथ मिला कपड़-मिट्टी द्वारा बंदकर अग्नि लगा देनी चाहिये। इसी को 'डमरू यन्त्र' भी कहते हैं।

सोमनाल यन्त्र

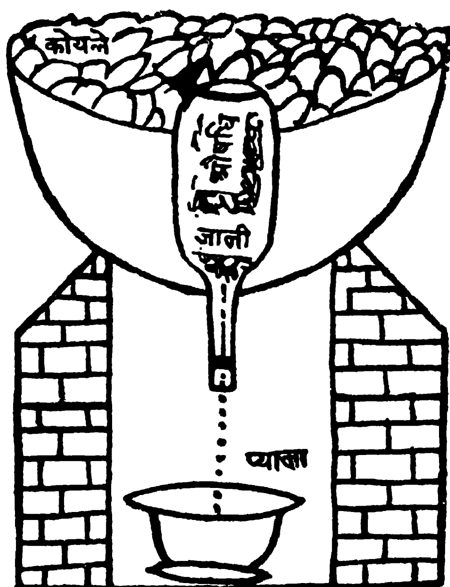


एक मिट्टी के पात्र में जल भरकर उसके ऊपर जल को स्पर्श करती हुई पारदयुक्त मूषा रखकर स्थाली के मुख को शराब से बन्द कर कपड़ मिट्टी कर दें। तत्पश्चात् उस शराब पर कंडों या कोयलों की आँच देनी चाहिये। इसको "सोमनाल यंत्र" कहते हैं।

गर्भ यन्त्र

एक चार अंगुल लम्बी और तीन अंगुल चौड़ी मूषा बना कर उसमें बीस भाग नमक और एक भाग गूगल और आधा भाग मिट्टी एकत्र मिलाकर मूषा में लेप कर दें। फिर उसके अन्दर पारद डालकर उसका मुख बन्द कर दें। सूखने के बाद मूषा को पृथ्वी में गाड़ दें और उसके ऊपर जंगली उपलों (कंडों) की आँच दें। स्वाँग शीतल होने पर मूषा को निकाल कर पारद निकाल लें। इसी को 'गर्भ यन्त्र' कहते हैं।

पाताल यन्त्र



पाताल यन्त्र द्वारा भिलावा आदि कई द्रव्यों का तेल निकाला जाता है। अतएव इस यन्त्र का भी उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा। यथा :—

एक लोहे की कढ़ाई को बीच से काट डालें। ऐसा गोल काटें ताकि मिट्टी के घड़े का मुँह उसमें आ सके (कोई-कोई कपड़मिट्टी की हुई काली बोतल में ही दवा भर कर तेल निकालते हैं, जैसा चित्र में दिखाया गया है)। पीछे उस कढ़ाई को लोहे की तिपाई पर रखें। जिस द्रव्य का तेल निकालना हो उसको यवकुटकर छोटे मुँह के मजबूत मिट्टी के घड़े या बोतल में भर दें और घड़े के मुँह पर लोहे के तार से लोहे की एक जाली बाँध डालें। फिर कढ़ाई के छेद में से या बोतल का मुँह नीचा करके रख दें और घड़े के ऊपर कंडों की आँच दें। अग्नि की गरमी से घड़े के अन्दर के द्रव्य का स्नेह चूकर नीचे के प्याले में इकठ्ठा हो जायगा। उसको कपड़े से छानकर शीशी में रख लें।
—र० वि०

सर्वार्थंकरी भ्राष्ट्री

पहले पृथ्वी में एक वृत्त (घेरा) इतना बड़ा बनावें, कि जिसमें डेढ़ हाथ का डण्डा आ जाय। अब इसके बीच में एक बालिश्त गढा खोदें और उसमें पानी डालकर मिट्टी को खूब कूटकर पक्का

कर दें। इसके पश्चात् इस गढे के किनारे-किनारे से भट्ठी की दीवार कच्ची ईंटों से बनाना शुरू करें, जब अठारह अंगुल ऊँची दीवाल बन जाय, तो उस पर चारों ओर लोहे के १-१ हाथ लम्बे चार डण्डे रख दें। और उनके ऊपर १६ अंगुल दीवाल और बना दें। लोहे के डण्डे इस प्रकार लगाने चाहिए, कि आवश्यकतानुसार बाहर-भीतर जा सके। दीवाल इस तरह की हो, जिससे अन्त में उसके ऊपर १२ अंगुल चौड़ी लोहे की जाली आ सके। दीवाल के नीचे के भाग में १-१ विलाँद लम्बे-चौड़े दो दरवाजे बनाने चाहिए। भट्ठी के अंदर, एक हाथ लम्बी लोहे की नली भी लगानी चाहिए। इस नली का एक सिरा भट्ठी के ऊपर जाकर निकलेगा और दूसरा भट्ठी के अन्दर। भट्ठी के अन्दर वाला सिरा (मुख) इतना बड़ा होना चाहिए, जिसमें मुट्ठी घुस सके, और ऊपर वाला सिरा (मुख) तीन अंगुल चौड़ा होना चाहिए। यह नली नीचे से ऊपर को सीधी नहीं बल्कि कुछ आड़ी करके लगानी चाहिए। इसके नीचे वाले मुख में अग्नि की लपटें घुसेंगी और ऊपर वाले मुख से बाहर निकलेंगी।

यह भट्ठी इतनी उपयोगी है कि इस पर आयुर्वेदीय सभी औषधें सुगमता पूर्वक बन सकती हैं।

उपयोग—यदि किसी औषध के सम्पुट को तीव्राग्नि में देनी हो, तो भट्ठी के बीच में लगे हुए लोहे के डण्डों को ६-६ अंगुल दीवाल के बाहर निकाल कर उन पर लोहे की जाली रख दें। (जैसे लोहे की अंगीठियों में होती है), इस जाली पर सम्पुट रखकर उसके चारों ओर पत्थर या लकड़ी के कोयले भरकर भट्ठी के नीचे के भाग में आग लगा दें।

२—हरितालादि की भस्म बनाने के लिए भट्ठी के ऊपर एक बड़ा-सा लोहे का चूल्हा रख कर उस पर यन्त्र को रखना चाहिए। बीच वाली जाली पर भी सम्पुट पकता रहे, तो कोई हर्ज नहीं है।

३—धात्वादि शोधन के लिए भट्ठी के दरवाजे के बीच में एक तीसरा दरवाजा भी रख लेना चाहिए। जिससे भीतर लोहे का करछा घुसाया जा सके, जिसमें धात्वादि डालकर तपाया जाय।

४—गजपुट देना हो, तो लोह की जाली को निकाल कर और लोहे के डण्डों को भीतर घुसाकर भट्ठी के मध्य में सम्पुट रख दें, और ऊपर-नीचे उपले भरकर आँच दें तथा दरवाजे बंद कर दें।

५—बाराहपुट देना हो, तो लोह की जाली पर उपले डालकर और भट्ठी पर लोहे का चूल्हा रखकर उसके भीतर सम्पुट रखें और चूल्हे में भी उपले भरकर उसके दरवाजे को लोहे की चादर और ईटों आदि से बन्द कर दें।

६—कुक्कुटपुट देना हो, तो पुट को लोह की जाली पर रख कर शेष भाग में उपले भर दें। इसमें भट्ठी के ऊपर चूल्हा रखने की आवश्यकता नहीं है। —र० सा० सार

पुट

पुट के लक्षण—धातु आदि को वनस्पतियों के स्वरस में घोंट टिकिया बना, सुखा तथा सम्पुट में रखकर अग्नि में पकाने की क्रिया को 'पुट' देना कहते हैं।

पुटों का ज्ञान होना प्रत्येक वैद्य के लिये आवश्यक है क्योंकि कम या अधिक पकी हुई ओषधि हानि पहुँचाती है और अच्छी तरह पकी हुई ओषधि हितकारक होती है।

पुट देने से लाभ—पुट से लौहादिक धातुओं का निरुत्थ मारण होता है अर्थात् पुट योग से बनी हुई लौहादिक धातुओं को मित्र पंचक के साथ फूंकने पर भी पुनः जीवित नहीं होते। लौहादिक का अपुनर्भव पुटों से ही होता है। बार-बार पुट देने से शरीर के अंदर अनेक गुण पहुंचाने वाली शक्ति भस्मों में उत्पन्न होती है। बार-बार पुट देने से भस्म में इतनी सूक्ष्मता आ जाती है कि वे जल पर भी तैरने लग जाती हैं। इसी भस्म को शास्त्र में 'वारितर भस्म' कहा गया है। पुट के ही प्रभाव से भस्में अंगुलियों की रेखाओं के अंदर प्रविष्ट हो जातीं हैं, जिसे 'रेखा पूर्ण भस्म' कहा जाता है। पुट के योग से रत्न-उपरत्न आदि जो अनेक भेद हैं; उनमें लघुता आ जाती है और उनकी भस्में शरीर में शीघ्र ही व्याप्त होकर शरीर

का हित साधन करती तथा पाचक रसों को उद्दीप्त करती हैं। पुट दी हुई धातु-भस्मों में जारित संस्कार युक्त पारद से अधिक गुण पाया जाता है। जिस तरह वाह्य पुट के प्रभाव से पत्थर के अन्दर वह्नि (आग) प्रवेश कर जाता है, उसी तरह चूर्ण किये हुये लौहादिक धातु-द्रव्यों में भी पुट द्वारा वह्नि शीघ्र प्रवेश कर उन्हें अनेक गुण-युक्त बना देते हैं।

अतएव प्रत्येक चिकित्सक को चाहिये कि पुटों द्वारा सिद्ध की हुई भस्मों का ही प्रयोग करें क्योंकि पुट द्वारा सिद्ध की हुई भस्में वारितर आदि गुणों से युक्त होती हैं और शरीर के अन्दर शीघ्र प्रवेश कर रक्त में मिल कर यथोचित रूपेण अपना कार्य प्रारम्भ कर देती हैं। अशुद्ध भस्में शरीर के अन्दर वहाँ के रासायनिक विश्लेषणों द्वारा पुनः अपने स्वरूप को प्राप्त कर शारीरिक सेलों का नाश करती हैं।

आजकल बड़ी-बड़ी रसायनशालाओं में मशीनों द्वारा स्वल्प प्रयास से थोड़े ही समय में अधिक रस तैयार कर सस्ते दामों में बेचे जाते हैं। उन रसों की परीक्षा कर आप देखेंगे तो उपरोक्त गुणों में से बहुत कम गुण इसके अन्दर मिलेंगे। फलतः इसका सदुपयोग होने के बदले शरीर में दुरुपयोग ही होने लगता है। फलतः अच्छी ओषधियों से भी मनुष्य का विश्वास हट जाता है।

वैज्ञानिक यह मानते हैं कि प्रत्येक पदार्थ गुरुत्वाकर्षण के कारण ऊपर की तरफ फेंकने पर भी पृथ्वी की ओर गिरता है। अतः धातुएं जल्दी ही पृथ्वी की ओर जाती हैं किन्तु पुट देने से उनकी गुरुता नष्ट हो उनमें लघुता आ जाती है। यह अत्यन्त सूक्ष्म होने से शरीर के सूक्ष्मावयवों में मिल कर रक्त के साथ सम्पूर्ण शरीर में परिभ्रमण करती है। ये सब पुट के ही गुण हैं। अब नीचे पुटों के भेद लिखे जाते हैं। यथा—

महापुट—जमीन में दो हाथ चौड़ा और दो हाथ गहरा गोल गढा बना, उसमें एक हजार जंगली उपलें भर कर बीच में औषध द्रव्य से भरा हुआ सम्पुट रख ऊपर से फिर पाँच सौ जंगली कण्डों से भर अग्नि जला दें। इसको "महापुट" कहते हैं।

गजपुट—जमीन में सवा हाथ गहरा और चौड़ा गढा बना, उसमें आधे तक जंगली कंडे भर दें। बीच में औषध-द्रव्य से भरा हुआ सम्पुट रख, ऊपर कण्ठ तक और कंडा रख कर आँच लगा दें। इसको "गजपुट" कहते हैं।

बाराहपुट—२२ अंगुल चौड़ा और गहरा गढा बना कर उसमें आधे तक जंगली उपलें भर दें। बीच में औषध भरा हुआ सम्पुट रख गढे के शेष भाग को कंडों से भर कर अग्नि जला दें। इसको 'वाराहपुट' कहते हैं।

कुक्कुटपुट—१६ अंगुल गहरा और चौड़ा गढा बना उसमें आधे तक जंगली कंडे भर दें। फिर बीच में औषध द्रव्य से भरा हुआ शराब सम्पुट रख दें। गढे के शेष भाग को भी कंडों से भर अग्नि जला दें। इसको "कुक्कुटपुट" कहते हैं।

कपोतपुट—जमीन के अन्दर ६ इञ्च गहरा और चौड़ा गढा बनाकर जंगली आठ उपलों की आँच दें। इसको 'कपोतपुट' कहते हैं। अग्नि स्थाई बनाये हुए पारद को पुट देने के लिये अथवा सोना, नाग और चाँदी को प्रारम्भिक पुट देने के लिये "कपोतपुट" काम में आता है।

गोवरपुट—एक गढे या हाँडी में गोवर या भूसा भर दें और उसके बीच में सम्पुट रखकर अग्नि जला दें। इसको 'गोवरपुट' कहते हैं। इसके द्वारा पारद भस्म या अन्य धातुओं की भस्में बनायी जाती हैं।

भाण्डपुट—एक मिट्टी के घड़े में धान की भूसी को दबा-दबा कर आधे तक भर दें। बीच में औषध से भरा हुआ सम्पुट रख ऊपर से और धान की भूसी दबा-दबा कर भर दें। फिर इसमें अग्नि लगा दें। इसको 'भाण्डपुट' कहते हैं।

लावकपुट—जमीन के ऊपर १६ तोला धान का भूसा या गोबर के बीच में सम्पुट रखकर अग्नि जला दें। इसको 'लावकपुट' कहते हैं। जो द्रव्य विशेष मृदु (अग्नि को न सहन करनेवाले) हों, उनका पाक करने के लिए इस पुट का प्रयोग किया जाता है।

अनुक्तपुट-मान—जहाँ कौन-सा पुट देना, यह स्पष्ट नहीं लिखा है। वहाँ जिस द्रव्य को पुट देना है, वह द्रव्य कितनी अग्नि सहन कर सकता है और कितने परिमाण (तौल) में है, इसका विचार करके पुट देने का निर्णय करना चाहिये।

पुटों की संख्या—यदि रसायन गुण के लिये भस्म बनानी हो तो एक सौ से ऊपर हजार तक पुट देने चाहिये। यदि केवल रोग निवारण के लिये भस्म बनानी हो तो १० से १०० पुट देने चाहिये। १०० तक पुट देना हो तो वनस्पतियों के रस में खूब मर्दन करने के बाद पुट देना चाहिये। और १०० से ऊपर एक हजार तक पुट देना हो तो स्वरसों की भावना देकर सामान्य मर्दन करने के पश्चात् पुट देना चाहिये। यह प्राचीन रसायनाचार्यों का मत है। मर्दन से भस्मों का जितना सूक्ष्मीकरण हो सकता है, उतना सौ पुट तक मर्दन करने से हो जाता है। सौ पुट के बाद मर्दन करने से विशेष सूक्ष्म नहीं होता। अतः १०० पुट के बाद स्वरस डाल, साधारण मर्दन करके पुट देना चाहिये। विशेष मर्दन की आवश्यकता नहीं।

—द्र० गु० वि०

खरल

आचार्य यादवजी ने 'द्रव्य गुण विज्ञान' में खरल के विषय में बड़ा अच्छा लिखा है यथा—'न घिसने वाले पत्थरों में अकीक, संगेयशव, समाक—ये पत्थर उत्तम होते हैं। रत्नों की पिष्टी बनाने के लिए इन पत्थरों के बने खरल काम में लेने चाहिए। उनके बाद कसौटी, सबाई माधोपुर (जयपुर राज्य) का उड़दिया और गया का तामड़ा—ये पत्थर भी अच्छे होते हैं। रत्नों को छोड़कर अन्य द्रव्यों को घोटने के लिए इन पत्थरों के खरल अच्छे हैं।

पत्थर की परीक्षा इस प्रकार करनी चाहिये—माणिक्य, मोती या प्रबाल का सूक्ष्म वस्त्र से छना हुआ चूर्ण खरल में डाल, उसमें थोड़ा जल मिला, ३-४ घण्टा घोटे। सूखने पर चूर्ण का वजन करके देखें। यदि वजन बढ़े तो पत्थर घिसने वाला है, ऐसा समझें

और वजन न बढ़े तो पत्थर अच्छा समझें। अथवा खरल को जल से धो, उसमें थोड़ा जल डालकर घोटें, यदि जल का रंग वैसा ही रहे बदले नहीं, तो पत्थर न घिसने वाला समझें।

लोहे का खरल अच्छे तीक्ष्ण लौह (फौलाद) का बनवाना चाहिए। पत्थर का खरल प्रायः सब कामों में उपयोगी होता है। लोहे का खरल पारद के संस्कार तथा लोह, मण्डूर, माक्षिक, अभ्र और ताम्र की भस्म बनाने के लिए अच्छा है।

खरल बनाने के लिये नीले अथवा काले रंग का चिकना, मजबूत और भारी पत्थर लेना चाहिये। साधारणतया खरल १६ अंगुल ऊँची ६ अंगुल चौड़ी और २४ अंगुल लम्बी होनी चाहिये। और उसमें घोटने की मूसली १२ अंगुल लम्बी बनवानी चाहिये अथवा १० अंगुल ऊँची और २१ अंगुल लम्बी खरल भी श्रेष्ठ होता है। इस तरह की खरल की लम्बाई-चौड़ाई का प्रमाण पारद के शोधन-मर्दन संस्कारों के लिये अच्छा होता है।

खरल के भेद—पारदादि रस पदार्थों को अच्छी तरह घोटने के लिये तीन प्रकार के खरल कहे गए हैं। यथा (१) अर्द्धचन्द्राकृति, (२) वर्त्तुल और (३) तप्त खल्व। अब इनके लक्षण देखिये—

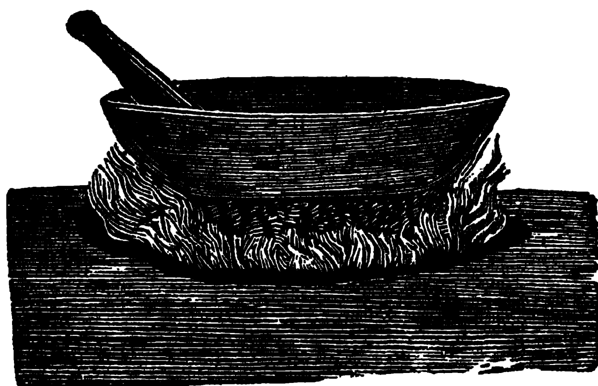
(१) **अर्द्ध चन्द्राकृति खरल**—१० अंगुल ऊंची, १६ अंगुल लम्बी, १० अंगुल चौड़ी और ७ अंगुल गहरी तथा किनारों की बनावट २ अंगुल चौड़ी और आधे चन्द्रमा के आकार की चिकनी खरल बनावें तथा उसकी मूसली १२ अंगुल की हो।

यह खरल रसादिकों के लिये उत्तम है। इस खरल में २० तोला तक पारा मर्दन संस्कार के लिये घोटा जा सकता है। इसी के अनुसार इससे छोटा भी खरल बनवाकर काम में ला सकते हैं।

(२) **वर्त्तुल खरल**—अत्यन्त चिकने पत्थर की १२ अंगुल लम्बी और चौड़ी तथा ४ अंगुल गहरी खरल बनवायें जो बीच में चिकनी तथा गहरी हो। इसकी मूसली नीचे से चिपटी और उसका ऊपरी भाग मुट्ठी में अच्छी तरह पकड़ने योग्य हो। इसको वर्त्तुल

(गोलाकार) खरल कहते हैं। यह खरल रस-रसायन घोटने के लिये उत्तम है।

तप्तखरल



(३) **तप्तखरल**—९ अंगुल लम्बी-चौड़ी तथा ६ अंगुल गहरी अत्यन्त चिकने लोहे की खरल और उसकी घर्षणी (मूसली) ८ अंगुल की बनवानी चाहिये। इसको 'तप्तखरल' कहते हैं।

तप्तखरल विधान—जिस आकार की लोहे की खरल बनी हो वैसा ही चूल्हा (भट्ठी) बनवाकर अङ्गारों (जलते कोयलों) से भर देना चाहिये। फिर उस चूल्हे पर खरल को रखकर चूल्हे की अग्नि को पार्श्ववाली धौंकनी से प्रदीप्त करे। तत्पश्चात् उस खरल में औषधियों के साथ घोटी हुई पारद की पिष्टी डालकर क्षार तथा अम्ल पदार्थों के साथ खूब घोटते रहना चाहिये। इस तरह स्वेदन करने से पारद की पिष्टी द्रवीभूत हो जाती है। यदि यह खरल साधारण लौह का न बनवा कर कान्त लौह की बनवाई जाय, तो उसमें सिद्धपारद अतुल गुण सम्पन्न होता है।

औषध-प्रयोग विधान

शारीरिक रोग में आवश्यकतानुसार शरीर के मुख, नासिका, कर्ण, नेत्र, गुदा, मूत्रमार्ग, योनि, त्वचा आदि अनेक अवयवों के द्वारा खिलाने, लगाने, वस्ति देने, मर्दन करने आदि अनेक विधियों से

औषध का प्रयोग किया जाता है। आयुर्वेद में औषध खाने का सविस्तर विधान वर्णित है। परन्तु यहाँ संक्षेप में ही लिखा जायगा।

मुख के द्वारा औषध प्रयोग-विधि—मुख के द्वारा औषध का प्रयोग दो उद्देश्यों से किया जाता है। एक तो स्थानिक क्रिया सम्पादनार्थ ओठ से गले तक के रोगों के लिये गण्डूष (कुल्ला) करना और दूसरे प्रतिसारण आदि क्रियाओं द्वारा औषध का स्थानिक प्रयोग करना। इन दोनों क्रियाओं में औषध गले से नीचे नहीं उतारा जाता है। सम्पूर्ण शरीर में होने वाले रोगों का नाश करने के लिये औषध भक्षण करना अर्थात् इस क्रिया में औषध गले से नीचे उतारनी पड़ती है। इनमें पहले औषध-भक्षण (खाने) विधि का वर्णन किया जायगा, क्योंकि औषधों का अधिकांश प्रयोग खिलाकर ही किया जाता है।

भक्षित ओषधियों के कार्य—खायी हुई ओषधियाँ कई प्रकार से शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों पर अपनी करामात दिखलाती हैं। कुछ ओषधियाँ अवस्थापाक के समय महास्रोतस के अवयवों पर स्थानिक क्रिया द्वारा अपना प्रभाव डालती हैं, कुछ जठराग्नि की क्रिया द्वारा परिपक्व होकर रस-रक्त आदि धातुओं में मिलकर समस्त शरीर का चक्कर लगाती हुई अपना काम करती हैं तथा कुछ मल-द्वारों और त्वचा से निकलते समय उन स्थानों पर अपना गुण दिखलाती हैं।

कषाय (क्वाथ) आसव, अर्क आदि द्रव रूप शरीर में शीघ्र ही मिलकर अपनी क्रिया शरीर पर करने लगते हैं। इसके विपरीत चूर्ण, वटी, भस्म आदि घन रूप ओषधियाँ शरीर में विलम्ब से शोषित होने के कारण आसव, अर्क आदि की अपेक्षा अपना प्रभाव देर से दिखलाती हैं। अतः आवश्यकतानुसार ही घन (चूर्ण, वटी, भस्मादि) और द्रव (अर्क, आसव आदि) का प्रयोग करना चाहिये।

शंखद्राव, मद्य और कई आसव अपनी तेजी के कारण अकेले नहीं लिये जा सकते। अतः उनको जल या किसी अर्क में मिलाकर देना चाहिये।

मूर्च्छा, संन्यास, अपतन्त्रकादि रोगों में रोगी जब अचेतनावस्था में होता है, तो उसको औषध पिलाना दुष्कर हो जाता है। इतना ही नहीं, औषध श्वास नलिका में भी चले जाने की सम्भावना रहती है। ऐसी अवस्था में थोड़ी मात्रा में शीघ्र कार्य करने वाली औषध शहद में मिलाकर जीभ पर या दाँत बन्द हो तो, दाँतों पर ही लगा देना चाहिये, इससे धीरे-धीरे दवा पेट में जाकर अपना कार्य करने लगती है। बच्चे प्रायः औषध खाने को राजी नहीं होते, जबर्दस्ती खिला भी दी गयी तो मुँह में ही दवा पड़ी रहती है। गले के नीचे औषध को बच्चे नहीं उतारते। ऐसी हालत में उसकी नाक को अंगुली से दबाना चाहिये। बच्चा जब श्वास लेने को मुंह खोलेगा, तब ओषधि आसानी से पेट में चली जायगी।

ओषधिद्रव्यों की गोली—वटी प्रायः इसलिए बनाई जाती है, कि ओषधि द्रव्य के स्वाद का पता न चले और आसानी से निगली जाय। परन्तु कई लोग गोली निगल नहीं सकते और कभी रोगावस्था में निगली हुई गोली पेट में हजम न होकर वैसी ही मल के साथ निकल जाती है, ऐसी दशा में गोली को पीसकर देना चाहिए।

कई औषध अपने अप्रिय स्वाद और गंध तथा तीक्ष्णता के कारण लेने में अच्छे नहीं लगते, उन्हें कैपशूल में बन्द करके देना चाहिए।

औषध सेवन-काल

रोगी तथा रोग की अवस्था देखकर चिकित्सक अनेक कालों में औषध सेवन कराते हैं। परन्तु सुश्रुत ने औषध सेवन के लिये १० काल (समय) लिखे हैं। यथा—

१ **अभक्त**—प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होकर बिना कुछ खाये ही जो औषध सेवन किया जाय, उसको अभक्तकाल कहते हैं। प्रातःकाल निरन्न अर्थात् अन्नरहित सेवन किया हुआ औषध अधिक गुण करता है और रोग को शीघ्र तथा निश्चित रूप से नष्ट करता है।

परन्तु बालक, वृद्ध, स्त्री, सुकुमार प्रकृतिवाले को कुछ खिला करके ही प्रातः काल औषध सेवन कराना चाहिए। अन्यथा ग्लानि और बल का क्षय होता है। —सुश्रुत

[शार्ङ्गधर का मत है कि पित्त और कफ की वृद्धि में, विरेचन और वमन कराने के लिए तथा लेखन के लिये प्रातःकाल बिना कुछ खाये ही औषध सेवन कराना चाहिये। प्रायः सब प्रकार के औषध विशेष कर कषाय (काढ़ा) प्रातःकाल ही देना चाहिये।]

२ **प्राग्भक्त**—औषध खिला कर तुरत ऊपर से अन्न दिया जाय, तो उसे "प्राग्भक्त" कहते हैं। अन्न के पहले खाई हुयी औषधि शीघ्र हजम हो जाती और वह बलहानि भी नहीं करती है। औषध अन्न के साथ मिल जाने पर वमन के साथ नहीं निकलता। —सुश्रुत

[वृ० वाग्भट्ट कहते हैं कि अपानवायु के विकारों में, नाभि के नीचे बल देने के लिये तथा उनके विकारों को शान्त करने के लिये और शरीर को पतला करने के लिये "प्राग्भक्त" औषध देना चाहिये।]

३ **अधोभक्त**—अन्न खाकर तत्काल ही जो औषध लिया जाये, उसे "अधोभक्त" कहते हैं। अन्न खाकर ऊपर से लिये हुए औषध नाभि से ऊपर होनेवाले रोग को दूर करता है और उन अवयवों को बल देता हैं। —सुश्रुत

[वृ० वाग्भट्ट कहते हैं—व्यान वायुके विकारों में प्रातःकाल के भोजन के बाद और उदान वायु के विकारों में सायंकाल के भोजन के बाद औषध देना चाहिये। "अधोभक्त" के समय में खाया हुआ औषध शरीर को स्थूल (मोटा) बनाता है।]

४ **मध्यभक्त**—जो औषध आधा भोजन करके लिया जाये और शेष भोजन ऊपर से किया जाये, उसे "मध्यभक्त" कहते हैं। भोजन के मध्य में खाया हुआ औषध कोष्ठ में होनेवाले रोग को दूर करता है।

[वृ० वाग्भट्ट कहते हैं—समान वायु के विकार, कोष्ठ के रोग और पित्त के रोग इन में मध्यभक्त (भोजन के मध्य में) औषध देना चाहिये।]

५ अन्तराभक्त—जो औषध सबेरे और शाम को भोजन के मध्य में लिया जाय अर्थात् सबेरे के भोजन जीर्ण होने पर औषध खाया जाय और वह औषध जीर्ण होने पर शाम को खाया जाय, तो उसे "अन्तराभक्त" कहते हैं। अन्तराभक्त में दिया हुआ औषध हृदय और मन को बल देनेवाला , दीपन और पथ्य होता है। अन्तराभक्त औषध दीप्ताग्नि और व्यानवायु के विकारों में दिया जाता है।

६ सभक्त—जो औषध अन्न के साथ दिया जाय या पकाये हुए अन्न में मिला कर दिया जाये, उसको "सभक्त" औषध काल कहते हैं। सभक्त औषध दुर्बल, स्त्री, बालक, सुकुमार, वृद्ध और औषध लेना पसन्द न करनेवाले, अरुचि और सर्वाङ्गगत रोग में देना चाहिये।

७ सामुद्ग—जो पाचन, अवलेह, चूर्ण आदि औषध लघु और अल्प अन्न के आदि और अन्त में दिया जाय, उसको "सामुद्ग" कहते हैं, सामुद्ग औषध हिक्का, कम्प और आक्षेप में तथा जब दोष अधोमार्ग तथा ऊर्ध्वमार्ग दोनों में फैले हों, तब देना चाहिये।

८ मुहुर्मुहुः—अन्न के साथ अथवा खाली पेट (भूखे ही) में जो बारम्बार औषध दिया जाये, उसे "मुहुर्मुहुः" औषध-काल कहते हैं। साँस बढ़ी हुई, खाँसी, हिचकी, वमन, तृषा और विष-विकारों में बारंबार औषध देना चाहिये।

९ सग्रास—जो औषध प्रत्येक ग्रास में या कुछ ग्रासों में मिलाकर दिया जाये, उसको "सग्रास" कहते हैं। मन्दाग्निवाले को जठराग्नि प्रदीप्त करने के लिये चूर्ण, अवलेह, गुटिका आदि का तथा बाजीकर औषध सग्रास अर्थात् कौर-कौर में मिलाकर देना चाहिये।

१० ग्रासान्तर—औषध यदि दो ग्रासों के बीच में दिया जाये तो उसको 'ग्रासान्तर-औषधकाल' कहते हैं। वमन करानेवाले धूम और श्वास-कास आदि में प्रसिद्ध गुणवाले अवलेह दो ग्रासों के बीच में देना चाहिये।

(वृद्धवाग्भट्ट कहते हैं कि प्राणवायु के विकारों में सग्रास और ग्रासान्तर में औषध देना चाहिये।) —द्र० गु० वि०

अनुपान

जो द्रव पदार्थ जैसे—शहद, घी, शर्बत, चाशनी आदि औषधों में मिलाया जाय या औषध के ऊपर जैसे—दूध, छाछ, पानी, क्वाथ, अर्क आदि पिलाया जाय उसे 'अनुपान' कहते हैं।

आयुर्वेदीय विश्वकोषकार अनुपान के विषय में लिखते हैं :—

अनुपान का प्राथमिक अर्थ वह तरल पदार्थ था जो औषध सेवनोपरान्त व्यवहार में लाया जाता है। परन्तु बहुत काल से अब यह उस द्रव पदार्थ के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा जिसके साथ औषध सेवन की जाती है। दूसरे शब्दों में इससे वह द्रव्य अभिप्रेत है, जो सेवन की हुई औषध को पथप्रदर्शक का काम देता है।

नोट—यह बात सिद्ध है, कि यदि किसी तरल (पतला) द्रव के साथ औषध सेवन की जाय, तो इसका शीघ्र प्रभाव होगा, और वह औषध को शरीर में उचित स्थान पर पहुँचाने में सहायक होगा, यही कारण है कि प्रायः सभी औषधें किसी न किसी तरल पदार्थ के साथ सेवन की जाती है। जैसे उपसर्ग लगाने से एक ही शब्द के अनेक अर्थ हो जाते हैं, उसी तरह अनुपान भेद से एक ही औषध गुण विशेष के कारण अनेक रोगों को नाश करता हैं।

कतिपय रोगोक्त अनुपान

ज्वर में—तुलसी की चाय, शहद, तुलसी के पत्तों का रस या मिश्री की चाशनी।

वातज्वर में—शहद, गिलोय का रस, पटसन (लाल पटुआ) तथा चिरायता का शीत कषाय और तुलसी पत्र स्वरस या कषाय।

पित्तज्वर में—पटोल पत्र स्वरस, पित्तपापड़ा का स्वरस, वा क्वाथ, गिलोय का स्वरस वा क्वाथ, निम्बूत्वक् क्वाथ वा स्वरस।

श्लेष्मज्वर में—मधु, पान का रस, आर्द्रक रस और तुलसी पत्र का रस या क्वाथ।

विषमज्वर में—मधु, पीपल (पिप्पली चूर्ण), हरसिंगार के पत्तों का रस, बिल्वपत्र स्वरस, बिल्वमूल चूर्ण, नागरमोथा, कुटज बीज, (इन्द्रयव) पाठा मूल, आम्रबीज, दाड़िम मूल वा फलत्वक्, धाय के फूल और कुटज वृक्षत्वक्।

सन्निपातज्वर में—आर्द्रक (अदरख) स्वरस, तुलसी या सहजने का रस।

शीतज्वर में—भांगरे का रस, या कालीमिर्च का क्वाथ।

जीर्णज्वर में—शहद, पीपल, जीरा-गुड़, या जीरा-मिश्री, वर्धमान पिप्पली, सितोपलादि चूर्ण व मधु, सितोपलादि चूर्ण व घी, धारोष्ण या गरम करके ठंढा किया हुआ दूध, शक्कर व सोंठ का चूर्ण।

अतिसार में—छाछ (मठा) या चावल के धोवन, कुड़ा (कुटज) की छाल या जड़ को सिल पर पीस कर निकाला स्वरस।

आमांश में—छाछ (मठा), ज्वरयुक्त हो तो शहद, यदि रक्त मिश्रित हो तो आम का रस, ककड़ी का पानी अथवा ईसबगोल का हिम।

संग्रहणी में—छाछ (मठा), दही का नितरा हुआ पानी।

खूनी बवासीर में—मक्खन, मिश्री, नागकेसर असली, वा घी, शक्कर, आँवला का चूर्ण अथवा आँवले का मुरब्बा।

वादी बवासीर में—घी और त्रिफला चूर्ण।

अजीर्ण में—गरम पानी, हींग और सैंधव नमकयुक्त छाछ (मठा) या नीबू का रस, प्याज व पुदीने का रस। अजवायन का फाण्ट, सौंफ का फाण्ट, पीपल, पिपलामूल, चित्रक, कालीमिर्च, सोंठ और हींग इनका चूर्ण।

अग्निमांद्य में—गरम पानी, पान खाने को दें।

विसूचिका में—अजीर्णोक्त अनुपान दें।

भस्मक रोग में—पका केला ५ तोला और घी।

कृमिरोग में—वायविडंग, शहद, अनार की जड़ का क्वाथ, अनन्नास के पत्तों का रस, तथा खजूर, भिण्डी, चम्पा की पत्तियों का रस और निर्गुण्डी का रस।

पाण्डुरोग में—त्रिफला और शहद, त्रिफला व मिश्री, अथवा गोमूत्र।

कामला में—त्रिफला व शक्कर, कुटकी चूर्ण व शक्कर।

रक्तातिसार व रक्तपित्त में—अडूसे के पत्तों का रस, आयापान

का स्वरस, अनार पत्र-स्वरस, गूलर का फल, कुटज वृक्ष की छाल का चूर्ण, दूर्बा-स्वरस, बकरी का दूध और मोचरस का चूर्ण।

क्षय (यक्ष्मा) में—मक्खन, शहद और मिश्री शहद, मिश्री, कफजश्वास या प्रतिश्याय हो जाय तो अडूसे के पत्ते का रस, तुलसी पत्र स्वरस, पान का रस, आर्द्रक स्वरस, मुलेठी, कण्टकारि, कायफल आदि इनमें से किसी का क्वाथ, बचा बीज चूर्ण, तालीसपत्र, पिप्पली, काकड़ा सिंगी और वंशलोचन में से किसी एक का चूर्ण।

कफ निकलनेवाली खाँसी व दमा में—पका पान, अदरख रस व शहद, तुलसी का रस व मिश्री, चतुर्जातावलेह।

कफ न निकलता हो तो—अडूसे का रस व शहद, अडूसा रस व मिश्री, काले अंगूर अथवा मूलेठी का क्वाथ या दाड़िमावलेह।

काली खाँसी में—पका केला, मक्खन, मिश्री, दाड़िमावलेह, आँवले का मुरब्बा, द्राक्षारिष्ट (शार्ङ्गधरोक्त)।

हिक्का 'हिचकी' में—मोर पंख की राख, पीपल व बेर की गुठलियों का मग्ज व शहद एकत्र करके देना।

अरुचि में—अदरख, विजौरा, अनार और नीबू में से किसी एक या दो अथवा चारों रस या इनका मिश्रीयुक्त अवलेह।

स्वरभेद में—मूलेठी व दाखों का काढ़ा।

वमन में—पीपल (वृक्ष) की क्षार, बड़ी इलायची का चूर्ण व क्वाथ।

बेहोशी व चक्कर में—धमासे का क्वाथ व घी, ब्राह्मी का रस, दूध, मिश्री, आँवले का मुरब्बा, अनार का रस या दाड़िमावलेह, गुलकन्द, ठण्डा जल, इनमें से या शहद ५ तोला उबाल कर ठण्डा पानी १० तोला में मिलाकर देना।

दाह में—औदुम्बरावलेह, दाड़िमावलेह, आँवले का मुरब्बा, धनिये का हिम, नीबू का शर्बत।

उन्माद व अपस्मार में—घी या ब्राह्मीरस या दोनों अथवा पुराना घी।

वातरोग—आमवात, अर्धाङ्गवात, लकवा आदि में—घी, गरम पानी, रेंड़ी का तेल, अनेक वातघ्न औषधियों के क्वाथ या स्वरस।

मूत्रकृच्छ्र या मूत्राघात में—चावलों का धोवन, गोखरू क्वाथ, दूध, पानी, ढाक के फूल तथा धनियाँ—इनका क्वाथ मिश्री मिलाकर।

प्रमेह में—हल्दी व मिश्री, त्रिफला, आँवला व मिश्री, शहद मिश्री।

बहुमूत्र में—पका केला, जम्ब्वावलेह, पुराना शहद, दूध, घी।

शोथ में—पुनर्नवा चूर्ण या काढ़ा, गोमूत्र, बिल्वपत्र स्वरस (बेल के पत्तों का स्वरस), सफेद अपामार्ग का क्वाथ या स्वरस, शुष्क मूली का क्वाथ, और काली मिर्च का चूर्ण तथा अर्क मकोय या मकोय का स्वरस।

गुल्म, उदर, तिल्ली, यकृत् आदि में—गोमूत्र, त्रिफला क्वाथ, घी, रेंडी का तैल, पुनर्नवादि क्वाथ।

गलगण्ड, ग्रन्थी, अर्बुद, विद्रधि आदि में—त्रिफला क्वाथ या चूर्ण, घी।

सूजाक में—गिलोय का रस, कच्ची हल्दी का रस, आँवले का रस लघु शाल्मली (सेमर) वृक्ष का स्वरस, दारु हल्दी का चूर्ण, मजीठ और असगन्ध का क्वाथ, सफेद चन्दन का कल्क, बबूल के गोंद का हिम, कदम्ब की छाल का रस और कसेरू का रस।

उपदंश (आतशक) में—घी, खोवा, पका पान।

विसर्प व कुष्ठ में—निम्ब के पंचांग का चूर्ण, त्रिफला, वाकुची चूर्ण और घी।

शीत पित्त में—अदरक रस या घी, छुहारे का काढ़ा (क्वाथ)।

अम्लपित्त में—अदरक का रस, अनार व मिश्री, आँवले का मुरब्बा, चन्दन व मिश्री का क्वाथ (काढ़ा), दूध, घी।

नेत्ररोग में—घी, त्रिफला चूर्ण व घी।

शिरोरोग में—घी व गुड़, घी व शक्कर।

प्रदर के लिये—चावलों का धोवन, जीरा, मिश्री, प्याज का रस, आँवले का मुरब्बा, दाड़िमावलेह, गुलकन्द, दारु हल्दी, अडूसा और गिलोय का काढ़ा इनमें से कोई एक, रोगी के प्रकृति के अनुसार।

शुक्रवर्द्धक तथा वृष्य—नवनीत (मक्खन), मांस-रस, केवाँच के बीज, विदारीकन्द, असगन्ध, सेमल की मूसली का रस और अनन्तमूल का रस।

नोट—रोगी और रोग दोनों की दशा को अच्छी तरह विचार कर अनुपान चुनना चाहिये। क्वाथ और फाण्ट की मात्रा २ औंस (१ छटांक) ओषधियों के निचोड़े हुए रस की मात्रा १ या २ तोला और चूर्ण की मात्रा १ से ३ माशा भर लेनी चाहिये। जब चूर्ण अनुपान रूप से व्यवहार में लाये जायें तब मधु मिलाकर उसका व्यवहार करें। पित्तोल्वणता की दशा को छोड़ कर शेष सभी दशा में शहद को अनुपान रूप से प्रयोग करें।

उपर्युक्त अनुपानों को उसी दशा में काम में लाया जाय, जब कि ओषध वटिका या चूर्ण रूप में दी जाय। किन्तु जब मोदक, गुग्गुल, और ओषधीय पाक प्रभृति का उपयोग किया जाय, तब शीतल या उष्ण जल अथवा उष्ण दूध को अनुपान रूप से व्यवहार करना चाहिये। सभी ओषधीय घृतों में चवन्नी भर शक्कर मिला कर लगभग एक छटाँक अर्धोष्ण दूध के साथ सेवन करें। बहुत से घी बिना शक्कर के भी उपयोग में आते हैं। —आ० वि०

अनुपानीय द्रव्य और उसकी मात्रा—गोमूत्र (गाय का मूत्र), दूध (जीर्णज्वर व अग्निमान्द्य हो तो गाय का, संग्रहणी, अतिसार और क्षय हो तो बकरी का दूध), गरम पानी, ठण्ढा पानी, चावलों का धोवन, गाय या बकरी का दूध आदि ५ तोले से ८ तोले तक लेना।

मीठे अनार का रस—२ तोला, मिश्री, मक्खन, आँवले का रस, मुरब्बा व गुलकन्द (एक वर्ष के पुराने), गुड़ (१ से ३ साल का पुराना हो), कागजी नीबू का रस, पुदीने का रस, प्याज का रस, इनमें से कोई भी पदार्थ १-१ तोला लेना।

घी—सभी विकारों में गाय का और कुष्ठ विकार हो तो भैंस का लेना चाहिये। मात्रा ६ माशे। घी ताजा ही लेना चाहिये। शहद जितना पुराना होगा, उतना ही सौम्य गुणवाला होगा। सहजन की छाल का रस, भाँगरे की पत्तियों का रस ३ माशे लें। हरी दूब का रस व कुटजमूल का रस ६ माशे लें।

आँवला, त्रिफला, निम्ब पंचांग या कुटकी, मुलेठी, वाकुची इनमें से किसी का चूर्ण लेना हो तो २ माशे लें। हल्दी, तमालपत्र, स्याह-जीरा, अपामार्ग, दालचीनी, बड़ी सौंफ, जीरा, सेंधा नमक, करंजबीज चूर्ण, नागकेशर, वायविडंग, इनके चूर्ण की मात्रा एक माशा लेना

अनुपान के लिये किसी भी दवा का क्वाथ बनाना हो तो आध सेर पानी दवा में मिला कर आग पर चढ़ा कर खूब उबालना चाहिये। ५ तोला शेष रहने पर उतार कर साफ कपड़े से छान लेना चाहिये।

काढ़े के लिये ताजी जड़ २ तोला और सूखी दवा १ तोला लेनी चाहिये।

पथ्यापथ्य

पथ्ये सति गदार्त्तस्य किमौषध निषेवणैः।
पथ्येऽसति गदार्त्तस्य किमौषध निषेवणैः॥

इस का भाव यह है कि यदि रोगी पथ्य से रहे, तो उसे औषध सेवन कराने की क्या जरूरत ? अर्थात् रोगोत्तर पथ्यापथ्य के विचार से रहने पर ही बहुत से प्रारम्भिक रोग अच्छे हो जाते हैं। जैसे साधारण ज्वरादि। इसी तरह यदि रोगी अपथ्य से रहे, तो उसे भी औषध सेवन से क्या लाभ। अर्थात्—औषध सेवनकाल में यदि वैद्यों के आदेशानुसार पथ्य-परहेज से नहीं रहे, तो सिर्फ औषध मात्र के सेवन से क्या फायदा होगा। अतः औषध सेवन काल में अथवा जब रोग छूट जाय उसके बाद भी वैद्यों के आदेशानुसार अथवा शास्त्र विधानानुसार पथ्य करने से शीघ्र ही शरीर निरोग हो जाता है। इसी का विवेचन इस प्रकरण में किया जायगा।

पथ्याहार—पुराने चावल का भात या दलिया, सत्तू, पुराने धान की खील (लावा) या मकई, ज्वार (जनेर) की खील (लावा) का आटा, मूंग की दाल, पुरानी अरहर की पतली दाल, साबूदाना, या दूध में बनी हुई पतली खीर या लप्सी ये सुपच आहार हैं।

पानी—धातु के कलईदार या मिट्टी के बर्तन में खूब उबालकर ठंडा किया हुआ पानी, सन्निपात ज्वर , अग्निमान्द्य, पेट के रोग,

उल्टी (वमन), आमांश, पार्श्वशूल, कटिशूल, जुकाम, वातरोग, गलग्रह, नवज्वर, हिक्का, दाह या जो स्नेह पान किया हो इत्यादि रोगों में सुबह से शाम तक पीना और शाम को उबाल कर ठंडा किया हुआ पानी रात भर पीना चाहिये। एक बार गरम किये हुए पानी को दुबारा नहीं उबालना चाहिये।

भोजन करते समय थोड़ा-थोड़ा पानी बार-बार पीना चाहिए। एक ही बार में ज्यादे पानी नहीं पीना चाहिये। दूध पीने के बाद आध घंटे तक पानी नहीं पीना चाहिये। पेट शूल और नलाश्रित वायु तथा अम्ल-पित्त के रोगियों को भोजन के समय पानी के स्थान में दूध पीना चाहिये। फिर छः घंटे के बाद यदि प्यास लगे, तो मात्र २० तोला पानी पीवें ज्यादा नहीं।

अरोचक, जुकाम, सूजन, क्षय, उदर रोग, अग्निमान्द्य, जीर्णज्वर नेत्ररोग, कुष्ठ और मधुमेह के विकारों में पानी बार-बार परन्तु थोड़ा थोड़ा पीना चाहिये। मधुमेह और बहुमूत्र रोग में पानी की अपेक्षा दूध ज्यादा लाभदायक है।

सौम्य मसाला—धनियाँ, जीरा, सौंफ (बड़ी), तेजपत्ता (पत्रज) आदि को एकत्र कूट कर रख लेना। यह मसाला कफ, खाँसी, दम्मा, मुँह आना, बवासीर, खून गिरना, दाह होना, रक्तप्रदर, नेत्ररोग, उपदंश (आतशक), प्रमेह, सूजाक और क्षय रोगों में हितकारी है।

फलवाले शाक—परवल, भिण्डी, तुरई, कच्चा केला, ककोड़ा (खेखसा), पेठा, तुम्बी, कुन्दरू, केले का फूल, काली बैंगन आदि ये शाक पथ्य हैं।

कन्दवाले शाक—सूरण (जिमीकन्द), शकरकन्द, पानी का आलू इन्हें भून कर या उबाल कर भरता या भाजी बनाकर सेवन करना चाहिये।

पत्तेवाले शाक—बथुआ, चौलाई, सोआ, मेथी, पुनर्नवा और गोभी के पत्ते आदि का शाक खाना चाहिए।

फल—मीठा अनार, सन्तरा, अंगूर, सेव, अनन्नास, कागजी नीबू, रसभरी, शरीफा (सीता फल), आम के मौसम में बीज के आम आदि खाने चाहिये।

अपथ्य

विषमाशन—कभी ज्यादा कभी कम या असमय में खाना 'विषमाशन' कहलाता है।

अध्यशन—खाये हुए पदार्थ का बिना हजम हुए ही पुनः खा लेना "अध्यशन" कहलाता है।

समशन—पथ्यापथ्यकारक (हित-अहित करने वाले) पदार्थ को एक जगह मिला कर खाना समशन कहलाता है। ये विषमाशन, अध्यशन और समशन अजीर्ण उत्पन्न कर अग्निमान्द्य आदि अनेक रोग उत्पन्न करते हैं।

पित्तवर्द्धक पदार्थ—दही, खट्टी छाछ, तेल और तेल में तले हुए पदार्थ, गुड़, नमक, मिर्च, हींग, मूँगफली, राई, बैंगन, गाजर, सहजन की फली, करेला, कुल्थी, कटहल, शराब, बासी भोजन, सूखे शाक, खिचड़ी वगैरह चीजें तथा गर्म हवा, भूख का दमन, चाय, तमाखू, गाँजा आदि का धुम्रपान, धूप में घूमना, अतिशय परिश्रम करना, जागरण, अधिक मैथुन, क्रोध आदि से पित्त बढ़ जाता है।

इससे शिर में दर्द तथा जकड़ जाना, चक्कर आना, अर्द्धाङ्ग वायु, लकवा, धातु का पतला होना आदि विकार उत्पन्न होते हैं और फिर वे अनेक रोगों की बृद्धि करने में सहायक होते हैं।

वात वर्द्धक पदार्थ—चना, मटर, मसूर, आदि का साग, दाल, चटनी, वेसन के लड्डू, आलू, कटहल, मूँगफली, बासी तथा खट्टा भोजन नया अन्न आदि पदार्थ वायुकारक हैं। ये वायु को बढ़ाते हैं। उपवास करना, दौड़ना, कूद-फाँद, तैरना, चिन्ता, शोक, श्रम, मैथुन, जुलाब, रक्त स्राव आदि कारणों से वात की वृद्धि होती है और पाचन-कम हो जाती है। फिर पेट फूलता और अजीर्ण होता है। संग्रहणी, आम वायु, उदर रोग, पेट में दर्द, बहुधा ये विकार उत्पन्न होते हैं। खासकर वर्षा, हेमन्त और शिशिर ऋतु में वायु के विकार बढ़ते हैं।

कफवर्द्धक पदार्थ—पका केला, आम का पना, कदली (केले) का फूल, दही, दूध से बनी चीजें, कच्चे नारियल के जल, तुम्बी, दूधी

इनके शाक, नया अन्न, नया वर्ष का या नयी सुराही या मटके का ज्यादा ठंडा पानी, नयी इमली, खट्टे बेर, करौंदे, कच्चे अमरूद, आँवले, चिरौंजी या तिल का तेल आदि का सेवन कफकारक होता है।

धातुनाशक पदार्थ—स्त्री के रूप एवं विलास के स्मरण, उनके विषय में विशेषतया बातें करना, गुह्यभाषण, क्रीड़ा, औरतों की तरफ घूर-घूर कर देखना, अश्लील उपन्यास एवं कहानियाँ पढ़ना, अश्लील चित्रादि देखना आदि कारणों से शुक्र का नाश होता है। इनके अतिरिक्त शरीर सदा गर्म रहने तथा विशेष चिन्ता आदि करने से भी शरीर कमजोर होकर धातु-नाश के कारण बनता है।

कटु पदार्थ तथा क्षार और कषैली चीजें धातु को नष्ट करती हैं। खट्टी और चटपटी चीजें शरीर में गरमी उत्पन्न करके धातु को पतली बनाती हैं। उपदंश और प्रमेह होने से सन्तानोत्पत्ति की शक्ति धातु में नहीं रहती है।

धातुबर्द्धक पदार्थ—जब शरीर में किसी तरह का विकार न हो, अग्नि भी ठीक रहे, खूब भूख लगे, दस्त साफ होता हो, तब निम्न पदार्थों के सेवन से धातु की पुष्टि होती है।

खूब औटाया हुआ दूध से बने पदार्थ, अच्छा दही या दही से बनी हुई चीजें, गेहूँ की रोटी, लड्डू, उत्तम सुगन्धित चावलों का भात, कुंदरू, परवल, भिण्डी, सूरण (जिमीकन्द), पेठा घी में भुना (तला) हुआ, अरहर, उर्द की दाल, किसमिस, पिस्ता, बादाम, चिरौंजी आदि मेवा, गन्ना, अनन्नास, खूब पका हुआ आम आदि फल खाने और रोज शीतल जल से स्नान, व्यायाम आदि करने से धातु की वृद्धि होती है।

साधारण ज्वर में पथ्यापथ्य—इसमें सर्वप्रथम लंघन कराने के बाद एक वर्ष के पुराने धान की खील (लावा), चावल, सूखे या हरे अंगूर, मीठा अनार, परवल, मौसम्बी, अनन्नास, मूली, चौलाई बथुआ आदि का शाक पथ्य में दें। मूँग की दलिया, साबूदाना का पानी आदि भी देने चाहिए।

पीने के लिये गरम करके ठण्डा किया हुआ पानी थोड़ा- थोड़ा और बार-बार देना चाहिये ।

अन्य उपचार—सूखी दाख भून कर उन पर थोड़ा पिसा हुआ सेंधा नमक लगाकर दें। इससे अरुचि या वमन का शमन होता है। यदि कफ न हो, तो आलूबुखारा देना हितकर है।

अपथ्य—कोशिश यह रहे कि रोगी अधिक नहीं बोले। जोर-जोर से रोगी से बातें न करनी चाहिये। शारीरिक व मानसिक परिश्रम, तथा दिन में सोना, रात को जागरण आदि नहीं करें। जब तक खूब स्वस्थ न हो जाय तब तक मैथुनादि—स्त्रीसम्भाषण से भी परहेज रखें।

अतिसार, पेचिस, संग्रहणी आदि में—पथ्य-हल्का देना, पुराने चावल का भात, पुराने मूंग को भून कर उसकी बनाई हुई दलिया, बकरी या गाय का दूध, घी, मक्खन , मठा, ककड़ी, केला पका, केले का फूल, सोया, गोभी आदि शाक, पका आम, बेल का फल आदि देना चाहिये।

अतिसार में रक्त नहीं गिरता हो—तो काली बैंगन, घीया (कद्दू), तुरई और कागजी नीबू भी दे सकते हैं।

अपथ्य—आटे से बनी हुई गरिष्ठ चीजें, पौष्टिक पदार्थ, दालमोठ, गुड़ आदि नहीं दें।

मुखरोग और गुदरोग में—पुराना चावल, यदि हजम हो सके तो जौ की दलिया, मूंग या अरहर की पुरानी दाल, कुन्दरू, पेठा, कच्चा केला, जिमीकन्द, पटोल (परवल), पुनर्नवा, सोआ के शाक आदि, सेंधा नमक, दूध, घी, मक्खन, छाछ, मीठा अनार, काले अंगूर, पका आम आदि पथ्य हैं।

घी, शक्कर का हलुआ, मुलायम भात, दलिया जैसी पतली चीजें, आरारोट की लस्सी आदि भी पथ्य हैं।

गुदा द्वार में मस्से निकल गये हों, सूजन में से रक्त निकलता हो, मुंह में छाले पड़ गये हों, तो कचनार की छाल और फिटकरी आदि डालकर क्वाथ करके सुखोष्ण जल से कुल्ला (गण्डूष) करें, बवासीर

वाले को यदि बर्दाश्त हो सके तो जिमीकन्द को घी में तल कर मिश्री मिला कर दें, शाक में जमीकन्द और पेठे को मिला कर देना पथ्यकारक है।

अपथ्य—गर्मागरम तथा बासी चीजें न खाना, दाँतों से ज्यादे चबाने वाली चीजें भी न खाएं, कड़े आसन से न बैठें, जिससे बैठने में गुदा को कष्ट हो। मूली, बैंगन, राई, हींग, लहसुन, अदरक, काली मिर्चें, खट्टी चीजें, खटाई, गुड़ आदि पदार्थ बवासीरवालों के लिये अपथ्य है।

क्षय, काली खाँसी एवं उरःक्षत—के लिये साधारणतया सौम्य-पदार्थ, ताजा मक्खन, घी, आँवले का मुरब्बा, छाती और छाती के पीछे पीठ पर पुल्टिस से उचित ढंग से ठीक-ठीक सेंक करना चाहिए।

पुल्टिस का विधान—अलसी या गेहूं का आटा ५ तोला, घी १।। तोला, दूध या पानी २० तोला, हल्दी १।। माशे इन सबको एकत्र मिला और पका कर जितना सह्य हो सके, उतना गर्म-गर्म पीड़ा (दर्द) की जगह पर लगावें। यह लेप आवश्यकतानुसार तैयार करना चाहिए। यह ध्यान रखें कि पुल्टिस गर्म ही रहे, ठण्डी पुल्टिस से सेंक न होने के कारण लाभ नहीं होता है।

गुण और उपयोग—छाती व छाती के पीछे पीठ पर लगाने से, कफ पतला होता है, दमा व खाँसी से हुई तकलीफ दूर होती है। क्षय के दर्द में यदि सूखी खाँसी हो, या कफ बहुत गिरता हो, थोड़ी बहुत दमा की शिकायत हो तो उस समय यह पुल्टिस अच्छा काम करती है। शरीर में कहीं मोच (झटका) आ गयी हो, जिससे रक्त एक जगह जम गया हो तो उस रक्त को फैलाने के लिये इसका प्रयोग करना चाहिए। बड़े-बड़े फोड़े-फुन्सियों में पीब जल्द बन कर उनके फूट जाने तथा नारू की सूजन कम होने या बह कर बाहर आ जाने के लिये, आमवात या संधिवात की सूजन कम होने के लिये और घावों की बदबू दूर करने के लिये यह पुल्टिस बहुत लाभप्रद है।

अपथ्य—ठण्ढी हवा, दही, इमली, धूल, रूई का कूड़ा-करकट, धुआँ आदि सूक्ष्म चीजों का गले व नाक के छेद में जाना, तली हुई

चीजें या वे चीजें जिनके तेल में तलने से उनकी गन्ध नाक-मुँह में जाती है, धूप में ज्यादे फिरना, ज्यादा जागरण करना आदि अपथ्य है।

शिर और नेत्र रोग में—सुखपूर्वक जितना हजम हो सके उतना गेहूं के आटे की बनी हुई चीजें या चावल, मूँग की दाल, उर्द की दाल, छाछ, पेठा, परवल, पुनर्नवा के पत्ते आदि का शाक, ठण्डा पानी, घी, शक्कर, मक्खन, सूखे अंगूर, हरे अंगूर, जुलाब के लिये–रेंडी का तैल, मस्तक पर ब्राह्मी का रस, खस, चन्दन कपूर मिश्रित, आँवला चूर्ण का लेप, खुशबूदार तैल और इत्र का सूँघना, खुली हवा और साफ जगह में रहना पथ्य है।

अपस्मार—स्नान के समय सिर पर ठण्डा पानी या किंचित् गरम पानी डालना, अपस्मार के रोगी को शाम के समय नारायण तैल की मालिश पाँवों पर करना तथा उस स्थान को गरम पानी से सेकना अच्छा है।

भोजन में घी ज्यादा हो, रोगी को एकान्त में रखें, रोगी के पास बहुत थोड़े आदमी जाएँ। रोगी को बहुत बोलने नहीं दें, जिन बातों से उसका मन बहलता रहे वैसी ही बातें करें, कोई ऐसी बात न करें जिससे उसके मन को कष्ट हो या किसी तरह की मानसिक चिन्ता हो।

अपथ्य—बिना किसी को साथ लिये बाहर कहीं न जायें, ताल, बावली, ऊंची-नीची जगहों पर चढ़ना, घोड़े पर चढ़ना, अशुभ या शोकदायक समाचार एकाएक सुनना, क्रोध, चिन्ता एवं सूर्य, अग्नि के तेज में तपना आदि अपथ्य है।

धनुर्वातादि कठिन वातरोग में—यह रोग बड़ा भयंकर होता है। यहाँ तक कि खाना खाने में भी दिक्कतें होती हैं। गेहूँ या कुल्थी का छना हुआ पतला दलिया, ज्यादा घी, थोड़ी शक्कर और सेंधा नमक मिलाकर बार-बार थोड़ा-थोड़ा दिया जाय, नारङ्गी, सहजना, लहसुन और गोमूत्र आदि पथ्य हैं।

आमवातादि रोग में—गेहूं के फुल्के, घृत और शक्कर डाला हुआ हलुआ, साठी चावल, परवल, पुनर्नवा के पत्ते का शाक, अनार,

आम, अंगूर, रेंडी का तैल और अग्निमांद्य न हो,तो उर्द की दाल देना पथ्य है। दोपहर और रात में नारायण तैल की मालिश करना उत्तम है।

अपथ्य—चना, मटर, सोयाबीन, आलू, मूंग, तरोई, मसूर, सामा, कटहल, ज्यादा श्रम, जागरण, व्रत करना, ठण्डे जल से स्नान करना आदि अपथ्य हैं।

मूत्ररोग (मूत्रकृच्छ्र-मूत्राघात-पथरी आदि) में—पुराने लाल चावल, भुनी हुई मूंग की दाल, गाय के दूध की छाछ (मट्ठा), घी, दूध,पेठा, परवल,ककड़ी,इलायची,कबाव चीनी,चन्दन का तैल, छुहारा, इसबगोल, तालफल, मीठा आम, धनियाँ, नागकेशर आदि पथ्य हैं।

पलास के फूल थोड़ा उबाल कर नाभी के नीचे पेट पर बाँधना, जननेन्द्रिय में सलाई चलवाना, गरम पानी में बैठाना आदि भी लाभदायक है।

अपथ्य—मटर, दही, राई, चना, हींग, उबली हुई चीजें, केला आदि पदार्थ, मल-मूत्र का वेग रोकना, मैथुन, श्रम, सफर, धूप में घूमना या बैठना आदि अपथ्य हैं।

प्रमेहरोग में पथ्य—सत्तू, गेहूं, चावल (महीन), सरसों, कोदो आदि कम से कम एक वर्ष के पुराने हों, पुराना मूंग, धुली हुई उर्द की दाल और अरहर एवं चना की दाल, मुलायम भात, बकरी या गाय का दूध और मठा, पटोल, ककड़ी, केला, केला के फूल आदि के शाक पथ्य हैं।

खस, कपूर, छुहारा, चन्दन, औदुम्बर, जामुन, ग्वारपाठा, ब्राह्मी, आदि का औषध रूप में प्रयोग करना पथ्य है। ज्यादा परिश्रम नहीं करना, मैथुन भी बन्द रखना चाहिये।

भोजन के समय पानी न पीकर भोजन के एक-दो घण्टे बाद पानी पीना चाहिये। रोटी और पूड़ी कठिनाई से हजम होती है। अतः हल्की चीजें खाना चाहिये।

अपथ्य—मूत्रवेग धारण करना, धूम्रपान, रक्तस्राव, सुख से निश्चिन्त बैठे रहना, दिन में सोना, कोई काम-काज नहीं करना,

दही, सोयाबीन, नया अन्न-जल का सेवन, आटे से तेल में बनी चीजें, तेल, गुड़, खटाई, आदि का सेवन, मैथुन, शराब, कद्दू (लौकी), अंजीर, गन्ना, शक्कर, (चीनी) आदि अपथ्य हैं।

मधुमेह तथा बहुमूत्र में—कम मीठे तथा कषैले फल खाना अच्छा है। इस रोग में क्रमशः रोज कमजोरी बढ़ती ही जाती है। अतः किसी प्रकार का शारीरिक परिश्रम नहीं करना, हाँ, थोड़ा-सा मानसिक श्रम जितना बर्दास्त हो सके करना, चित्त को हरदम काम-धन्धा में लगाये रहने से भी रोग की चिन्ता कम रहती है। इससे शारीरिक उत्साह (स्फूर्ति) बढ़ता है और थकावट भी दूर हो जाती है।

उदर रोग (पेटशूल-गुल्म-प्लीहा आदि) में—उबालकर ठंडा किया हुआ पानी, सोडावाटर, गाय, बकरी के दूध की छाछ (मठा), घी, पुराना चावल, कागजी नीबू, पुनर्नवा, सोया, प्याज, तरोई, परवल, बैगन, मूली, जिमीकन्द इनके शाक, रेंडी के तैल और गोमूत्र सेवन करना व बस्ति देना, अनार, अंगूर व अदरक आदि चीजें भी पथ्य हैं।

रक्तविकार में—दूध, पुराने चावल का भात, सेंधा नमक, भूने मूंग की दाल, अरहर की दाल, भिण्डी, तरोई, परवल, केला, केला के फूल, गोभी आदि में पूर्वोक्त मशाला डालकर सेवन करना, उबालकर ठण्डा पानी, छाछ इन चीजों में से जितनी चीजें और जितना कम खाई जाय अच्छा है।

गर्भिणी के लिये—सीढ़ियाँ चढ़ना, पलंग पर सोना, अधिक परिश्रम करना, मैथुन करना, बड़ी इलायची खाना, डरना आदि-आदि गर्भ और गर्भवती स्त्री दोनों के लिये हानिकर है, अतः इसे त्याग दें।

प्रसूता—को गेहूँ के आटे का हलुआ ज्यादे घी डालकर बनाकर खिलाना, पानी गर्मकर ठण्डा किया हुआ देना, हवादार और जिस कमरे में सूर्य की रोशनी आती हो और साफ हो, ऐसे कमरे में रखना, ऐसा करने से गर्भाशय में प्रसव के समय हुई वेदना कम मालूम पड़ती है।

प्रसूता के लिये पथ्य—गेहूँ, जुनरी (ज्वार), चावल, घी, दूध, शक्कर, परवल, सफेद कुंदरू, पेठा, भिण्डी, लौकी, भुने मूंग व उर्द की दाल, बादाम, किसमिस, सफेद प्याज (लहसुन), कौंच के बीज, खस, शतावरी, पान, सौम्य मसाला (जो पहले लिख चुके हैं) आदि चीजें १२ दिन के बाद अग्निबलानुसार दें।

बच्चों को दूध पिलाना—प्रसूता स्त्री, ज्वर या पेट के विकारों (जो प्रायः अक्सर प्रसूता को हो जाया करता है, जैसे—पेट फूलना, पतले दस्त होना, पेट में दर्द होना, अग्निमांद्य आदि) में बच्चों को दूध नहीं पिलावें, क्योंकि इस अवस्था का दूध दूषित हो जाता है। इससे बच्चों की तन्दुरुस्ती खराब हो जाती है, माता गर्भवती हो तो उस अवस्था में भी बच्चे को दूध नहीं पिलाना चाहिये, क्योंकि गर्भिणी माता का दूध पीने से बच्चे के पेट में डब्बा, तिल्ली आदि रोग हो जाया करते हैं। आजकल विशेषतया बच्चे जो कमजोर या रोगी दिखाई पड़ते हैं, उसका कारण यह भी है।

अतएव गर्भवती या रोगिणी माता का दूध बच्चे को बन्द कर दाई (धाय) का या न मिले तो बकरी या गाय का दूध पिलावें। बच्चे को उसकी माता का दूध पिलाना बन्द कर देने से प्रथम २-४ दिन स्तन में दूध जमा होकर माता को अधिक कष्ट होता है। वह दूध हाथ से या दूध निकालनेवाले यन्त्र से सुविधानुसार निकाल दें, कुछ दिनों के बाद दूध आना अपने आप बन्द हो जाता है।

बालरोगों का पथ्यापथ्य—यदि बालक सिर्फ माता का ही दूध पीता हो, और बीमारी का कारण भी दुग्ध ही हो, तो माता को दुग्ध-शोधन के लिए औषध व पथ्य देना चाहिये। इस समय माता को विशेष सावधानी से चलना चाहिये, क्योंकि उसकी थोड़ी-सी गलती से बच्चे को अनेक तरह के कष्ट भोगने पड़ते हैं। इसी प्रकार गर्भवती माता का भी दूध रोगकारक होता है, अतः ऐसे दूध बच्चे को न देकर उसके बदले दाई (धाय), बकरी या गाय का दूध दें।

जिस गाय को बच्चा दिये कम-से-कम ६ महीने हो गये हों उसका दूध देना ठीक है। गाभिन गाय का दूध बच्चे को कभी न देना चाहिये।

स्वाभाविक ही कुछ गायों का दूध गाढ़ा-पतला होता है, गाढ़ा दूध कमजोर बच्चे को ठीक से हजम नहीं होता, नीरोग और स्वस्थ बालकों को गाढ़ा दूध अच्छी तरह पच जाता है। ऐसे बच्चे भैंस का भी दूध हजम कर जाते हैं, रोग विकार की सम्भावना देखते ही गाढ़ा दूध बन्द कर देना चाहिये, बकरी का दूध सुविधानुसार और जल्दी हजम हो जाता है। बकरी के दूध से बच्चे पुष्ट और चंचल होते हैं, गाय के दूध पीने वाले बच्चे बुद्धिमान और अच्छे विचार के होते हैं, भैंस के दूध पीनेवाले बच्चे उन्मत्त और जड़ स्वभाव वाले होते हैं।

यदि बच्चे को कोई भी दूध हजम न होता हो, तो ५ तोला दूध में ५ बूंद चूने का (निथरा) पानी मिलाकर देना अच्छा है। छोटे बच्चे को अफीम या अफीम मिश्रित दवा नहीं देनी चाहिये। क्योंकि इसका असर सीधे दिमाग पर होता है। बहुत-सी माताएँ बच्चे को खूब सोने (नींद) के लिये जरा-सी अफीम दे दिया करती हैं, किन्तु यह आदत हितकर नहीं है।

पथ्य में दूधका उपयोग—दूध में अनेक गुण हैं। जहाँ दूध एक ओर बाल्यावस्था में शरीर का पोषण कर उसे तन्दुरुस्त बना देता है, वहाँ दूसरी ओर रोगी मनुष्य को सबल और पुष्ट भी करता है। परमात्मा ने दूध में सब गुण भर दिये हैं।

गाय अतिशय सात्त्विक तथा ममतामयी होती है। अतः गाय का दूध भी सात्त्विक होता है। गाय का दूध पतला होने से जल्दी हजम भी हो जाता है। इससे रस-रक्तादि धातुएँ एवं स्मरण शक्ति की वृद्धि होती है। अच्छे-अच्छे विचार तथा अच्छे कामों की ओर बुद्धि की प्रवृत्ति होती है। इससे परिशुद्ध भावना उत्पन्न होती रहती है।

पथ्य में दूध क्यों लिया गया ?— अन्नकी अपेक्षा दूध बहुत जल्दी हजम होता है तथा अन्न दिन भर में दो-तीन बार ही दिया जा सकता है, किन्तु दूध के लिये ऐसा नियम नहीं है, इसे आप हर २-२ घण्टे बाद दिन भर में ४-६ बार थोड़ा-थोड़ा दे सकते हैं, यथा—

प्रातःकाल ६-६-११ बजे, दोपहर में १-३-५ बजे और रात को ७-६-१२ बजे तक साधारणतया दे सकते हैं, अर्थात् दूध जब भी चाहें दे सकते हैं, परन्तु दें उतना ही जितना रोगी खुशी से पचा सके, बच्चे को सोते से जगाकर दूध कभी नहीं देना चाहिए।

जिसके शरीर में गर्मी बढ़ी हुई हो और हवा भी गर्म चल रही हो, उसे दूध देना हो तो गर्म दूध को गिलास में भरकर वर्फ या पानी में गिलास रख उसे ठण्ठा करके दूध देना चाहिये। जाड़े में गर्म ही दूध देना उचित है। अतिरिक्त समय में सुखोष्ण दूध देना हितकर है। ज्यादे मात्रा में एकबारगी दूध लेने से पतले दस्त आने लगते हैं।

पथ्य के योग्य दूध—खूब गर्म किया तथा मलाई निकाला हुआ दूध पथ्य के लिये उत्तम है, यदि गाय का दूध न मिले, तो भैंस का दूध (बराबर पानी मिलाकर उबाले, पानी जल जाने पर केवल दूधमात्र रह जाय तब) लेना चाहिये। बकरी के दूध से जुलाब नहीं होता, कफ भी इससे कम बढ़ता है, कफ सूखा गया हो या पेट फूला हुआ हो, तो गाय का और यदि रोगी शक्तिवान हो तथा हाजमा भी ठीक हो तो भैंस का दूध उपरोक्त विधान से देना चाहिये।

दूध देने का प्रमाण—कमजोर रोगी को हर बार दूध ५ से १० तोला, मध्यम को १५ से २० तोला और सशक्त को २० से ३० तोला तक दूध देना उचित है। इसी तरह अशक्त को ८ बार, मध्यम को १० बार और सशक्त को १२ बार दिन-रात में दूध देना चाहिये। अशक्त को ऽ१।। सेर, मध्यम को ऽ२।। सेर और सशक्त को ऽ४ सेर तक दूध दिन-रात में पिला देना चाहिये।

यदि दस्त में मल की गुठलियाँ तथा रूक्ष (सूखी) बनकर आने लगें, तो प्रातः और शाम को दूध में ३ माशा घी डालकर देना चाहिये। इससे शुद्ध मल आने लगेगा।

दूध के पथ्य के बाद अन्न देना—यदि दूध देने से भूख खूब लगने लगे, तो पुराने चावलों का भात, ताजा घी और सेंधव नमक मिलाकर देना चाहिये। यह हजम हो जाने पर मूंग की दाल, परवल, कुन्दरू,

तोरई आदि के रसदार शाक देना ठीक है। इस तरह अन्न-सेवन बढ़ाते जाएँ। पानी उबालकर ठण्डा करके देना चाहिये, सोडावाटर भी जब कभी दे सकते हैं। परन्तु बीच-बीच में दूध भी देते रहें। इस तरह अन्न की मात्रा बढ़ाते जाएँ और दूध की मात्रा कम करते जाएँ, किन्तु इसमें शीघ्रता नहीं करनी चाहिये, अन्यथा नुकसान होगा।

दूध के साथ अन्य वस्तुएँ—यदि दूध ही पथ्य में लेते हों, तो उस समय दूध में शक्कर (चीनी) नहीं डालें, यदि एकाध बार थोड़ी मात्रा में डाली भी जाय, तो कोई हर्ज नहीं। पका हुआ आम, मूँग की पतली दाल, जिमीकन्द (सूरण) आदि भी कभी-कभी ले सकते हैं। अनार, अंगूर, छुहारा, इलायची, लौंग, कबावचीनी या मिश्री आदि लेना तथा मुख में रखना भी लाभदायक है।

केवल दूध के पथ्य से मिटनेवाले रोग—जीर्ण ज्वर, अग्निमांद्य, तिल्ली, यकृत्, गुल्म, उदर, जलोदर, रक्त विकार, वातरक्त, गंड-माला, अपस्मार, उन्माद, भ्रम, चक्कर, मूर्च्छा, उपदंश-विष और उससे उत्पन्न सभी प्रकार के दर्द, लकवा, लूलापन, शिर और नेत्र रोग, मस्तक-शूल, मूत्राशय के रोग, पाण्डु, पीलिया, रक्तपित्त, प्यास, क्षय, उरःक्षत, हृद्रोग, छाती का दर्द, विषरोग, दवाओं की उष्णता, अम्लपित्त, पेटशूल, उल्टियाँ, जुलाब, पेट फूलना, संग्रहणी, आमांश, दस्त के विकार, मन के विकार, चिन्ता -फिक्र आदि-आदि अनेक रोग केवल दूध के पथ्य से आराम होते हैं।

अपथ्य—केला, अनन्नास, जामुन आदि फलों के साथ दूध नहीं देना (पके मीठे बीजू आम के साथ दूध देना अच्छा है)। कोदो, मोठ, कुलथी आदि धान्य के साथ भी दूध नहीं देना। मूली, धनियां, लहसुन, उर्द की दाल, मठा, दही, इमली, आम की खटाई (अमचूर) आदि के साथ भी दूध का सेवन नहीं कराना चाहिए।

क्योंकि इन पदार्थों के गुण-धर्म दूध के गुण-धर्म से विरुद्ध हैं। अर्थात् कुछ चीजें दूध को बिगाड़ देती हैं, कुछ चीजें सात्त्विक गुण जो दूध में रहता है उसको नष्ट कर देती हैं।

अंग्रेजी मतानुसार डाक्टर लोग दूध के साथ केला, नारंगी आदि फल खाने को कहते हैं। परन्तु वह भी बराबर नहीं। आप देखेंगे कि दूध में सन्तरा का रस डाल दें, तो दूध तुरत फट जायगा, डाक्टरों की यह युक्ति कि पेट में जाकर फल और दूध शीघ्र हजम हो जाता है, कभी भी मान्य नहीं हो सकती।

पथ्य में छाछ (मठा) का उपयोग

मठा बनाने का विधान—अच्छा जमाया हुआ दही को लेकर इसमें चौथाई भाग पानी मिला मथानी से मथकर उसमें से मक्खन निकाल लें। इस तरह से बना मठा अत्यन्त रुचिकर, पचने में हल्का, मल-मूत्र को साफ करने वाला, स्वयं पाचक तथा अन्य को भी पचाने के कारण वह अतिसार, संग्रहणी, अर्श, नलाश्रित वायु, पीलिया, पेट शूल, मूत्रकृच्छ्र, हैजा, मूत्राघात, अश्मरी, उदर और गुल्म आदि रोगों में लाभदायक है।

गुण—शीतकाल में तथा अग्निमांद्य, अरुचि, वातरोग, स्रोतरोध आदि रोगों में मठा अमृत के समान गुणकारक है। यह विष-विकार, छर्दि, लालास्राव, ऐकाहिकादि विषज्वर, पाण्डु, ग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी आदि—मूत्रविकार, भगन्दर प्रमेह, गुल्म, अतिसार, शूल, तिल्ली, उदर, अरुचि, श्वित्र (कुष्ठ) रोग, कोष्ठगत रोग, कोष्ठ सूजन, तृषा और कृमि का नाश करता है। यह क्षुधाबर्द्धक (भूख बढ़ानेवाला), नेत्ररोग नाशक, रक्त और मांसबर्द्धक, आँव व कफ-वात नाशक है।

रोगानुसार उपयोग—वात विकार में खट्टा और सेंधा नमक मिलाकर देना और पित्त विकार में मठा में शक्कर मिलाकर तथा कफ विकार में मक्खन निकाला हुआ मठा में सोंठ, सेंधा नमक, काली मिर्च, और पीपल मिलाकर देना; मूत्रकृच्छ्र में गुड़ मिलाकर और पाण्डु रोग में चित्रक चूर्ण मिलाकर मठा देना चाहिये।

उदर रोग में—वातोदर में पीपल व सेंधा नमक मिलाकर देना, पित्तोदर में—शक्कर तथा काली मिर्च मिलाकर, कफोदर में—

अजवायन, सेंधा नमक, जीरा, सोंठ, पीपल, काली मिर्च मिलाकर देना, सन्निपातोदर में—सोंठ, काली मिर्च, पीपल और सेंधा नमक मिलाकर मठा पीना। वद्धोदर में—हाऊबेर, अजवायन, जीरा और सेंधा नमक मिलाकर मठा देना। ग्रहणी (संग्रहणी) रोग के लिये तो मठा बहुत ही अच्छी चीज है। ग्रहणी ग्रस्त रोगी के लिये विशेष रूप से मठा सेवन करना चाहिये। ग्रहणी रोग में अन्न का बिल्कुल परित्याग कर निरन्तर खाने व पीने में मठा का ही बराबर प्रयोग करें। इसमें जरा-सा सफेद जीरे का चूर्ण भूनकर मिला लेना अधिक लाभदायक होगा।

रस-पारद

हमारे प्राचीन आचार्यों ने जिस विषय के ऊपर गवेगण करके जो कुछ सूत्र रूप में लिख दिया है, वह अक्षरशः सत्य है। उनके ज्ञान को आजकल के नवयुग के यथार्थवादी वैज्ञानिक अथक परिश्रम करने पर भी अभी तक नहीं प्राप्त कर सके हैं। बहुत से सत्यप्रिय वैज्ञानिकों ने हमारे आचार्यों के सूत्राशयों को प्रत्यक्ष प्रमाणों से स्वयं प्रत्यक्ष करके सिद्ध कर लेने पर मुक्तकण्ठ से उनकी प्रशंसा की है।

हमारे ऋषि-महर्षि आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक इन तीनों प्रकार के ज्ञान के यथार्थ विज्ञानी थे। इस विषय में वर्तमान समय के प्रायः सब देशों के विद्वानों का एकमत है। आजकल के पाश्चात्य विद्वानों ने हमारे ही महर्षिनिर्मित सूत्रों के तत्त्व को भलीभाँति समझकर उसी के आधार पर प्रत्येक पदार्थ का अन्वेषण करना प्रारम्भ कर दिया, जिसका फल यह हुआ कि गुरुओं को शिष्य बनाकर पाश्चात्य विद्वानों ने अपने मस्तक को ऊँचा उठा लिया। इतना होने पर भी आजकल हमलोग अपने महर्षियों के सद्वचनों का अनादर करके खोये हुए अपने ही विज्ञान भास्कर के उदय के लिये कुछ भी उद्योग नहीं कर रहे हैं, यह बहुत दुःख की बात है। अस्तु।

हमारा आयुर्वेद समस्त जगत की रक्षा के लिये ही है। कहा भी है, "नार्थार्थं नापि कामार्थमथ भूतदयाम्प्रति" अतएव हमें सर्वप्रथम अपने ज्ञान को सर्वांशेन समुन्नत बनाना चाहिये। रस जैसे चिकित्सोपयोगी पदार्थ कहाँ से और कैसे प्राप्त होते हैं, इसके ज्ञान की पूर्ण आवश्यकता है। अतएव आयुर्वेदीय साहित्य में वर्णित पारद विषयक बातों के साथ आजकल के पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने कहाँ तक इसकी खोज की है तथा आयुर्वेद से इसका कहाँ तक समन्वय है, प्रथम इसका उल्लेख कर देना आवश्यक है।

संसार में जितने खनिज पदार्थ पृथ्वी से निकलते हैं, उनमें पारद ही एक ऐसा पदार्थ है, जो साधारण तापक्रम पर द्रव रूप में प्राप्त होता है। पारद का स्वरूप—पिघली हुई चाँदी के समान होता है, अतएव रस कामधेनु में इसे "गलद्रौप्य निभम्" (अर्थात् पिघली हुई चाँदी के समान) कहा है। वैज्ञानिकों ने भी इसीलिये इसको "क्विक सिल्वर" कहा है।

पारद कभी-कभी मुक्तावस्था में या स्वतन्त्र रूप-प्रकृत रूप में अल्प मात्रा में पाया जाता है। परन्तु अधिक मात्रा में हिंगुल से ही निकाला जाता है, जिसका उल्लेख आयुर्वेदीय रसादि ग्रन्थों में बहुत मिलते हैं। भारत से अतिरिक्त देशों में भी हिंगुल से पारद निकालने का उल्लेख मिलता है। "थियोफ्रास्टस" नामक विद्वान् ने ईसा के पूर्व की ३०० शताब्दी के लगभग लिखा है कि ताम्रचूर्ण और हिंगुल को सिरके के साथ पीस कर उसे उड़ाकर पारद पृथक् करते थे। इसी प्रकार "डायस्कोरीडीज" नामक विद्वान् ने भी लौहचूर्ण के साथ हिंगुल मिला कर पारद निकाला था। यही विधि ऊँचे दर्जे के हिंगुल से पारद निकालने के लिये अभी भी कहीं-कहीं काम में लाई जाती है।

पाश्चात्य देशों में सर्व प्रथम सन् १५६६ ई० में "पेरू" देश के "हुवान्कावेलिका" नामक स्थान में हिंगुल का अस्तित्व विदित हुआ और सन् १६३३ ई० में "लोपेज-सावेद्रा—बर्बा" नामक व्यक्ति ने पारद निकालने के लिये—"अल्युडल" नामक भट्ठी तैयार की।

सन् १६४६ में "बुस्टामेण्ट" नामक रसायन शास्त्रवेत्ता "स्पेन" देशीय पारदीय खनिज प्राप्ति के प्रसिद्ध "अल्माडन" स्थान की खानों में पारद निकालने के लिये यही भट्ठी प्रचलित की और यह भट्ठी दोनों देशों में शताब्दियों तक प्रचलित रही। फिर कालान्तर में नई-नई भट्ठियाँ बन गईं, तब यह बन्द कर दी गई।

पारद की प्राप्ति

पारद अनेक प्रकार के रूप-रंगवाले विभिन्न जातीय जलज और पाषाण खण्डों में व्याप्त मिलता है। उदाहरण के लिये रेणु-शिला, मृत्तिका-पाषाण, सुधा-पाषाण, स्फटिक शिला आदि जलज और ज्वालामुखी की लावा आदि आग्नेय पाषाणों के नाम लिखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त उक्त दोनों से गुण-धर्म रहित अन्य पाषाण खण्डों में भी पाया जाता है। किन्तु अधिकतर आग्नेय पाषाण-खण्डों के समीप ही मिलता है।

पारदीय खनिजों के जमाव को देखने से ज्ञात होता है कि भूगर्भ में जब आग्नेय पाषाण क्रमशः शीतल होते हुए अपनी द्रवावस्था से घनावस्था में परिणत होने लगता है ; उस समय उड़नशील खनिज जो उनके भीतरी भाग में विद्यमान रहता है, वाष्प रूप में उड़कर ऊपर के समीपवर्त्ती पाषाण खण्डों की दरारों में जमा हो जाते हैं। उनमें पारदीय खनिज भी अन्यतम है। इसी कारण आजकल भी उष्ण जल के स्रोतों के समीप पारद पाया जाता है।

अमेरिका के प्रसिद्ध भू-गर्भ शास्त्री "रेन्सम" और "स्पर" नामक विद्वानों का विचार है कि पारद सदा ज्वालामुखी आग्नेय पाषाणों के समीप ही पाया जाता है। परन्तु इसमें मतभेद है, क्योंकि "स्पेन" देश की प्रसिद्ध खान जो अल्माडन नामक स्थान में है वह भू-गर्भ काल के निर्णयानुसार अत्यन्त प्राचीन है, और उसमे पारद १३०,० फीट की गहराई में पाया जाता है। इसी प्रकार अमेरिका प्रदेश की केलीफोर्नियाँ, न्यू इड्रीया और न्यू अल्माडन की खानें हैं, इनका सम्बन्ध ज्वालामुखी के उद्गम से नहीं है, इन खानों में २२०० फीट की गहराई में पारद मिलता है।

इस प्रकार अनेक मतभेद होने पर भी इस बात पर सब भू-गर्भ विज्ञों का एकमत है कि पारद भू-गर्भ के अन्तराल से उष्ण जल के साथ ही पृथ्वी पर बाहर प्रकट हुआ है। अतः अपने खनिजों के साथ पृथ्वी पर अधिकतर जमा हुआ मिलता है। जिस उष्ण जल के साथ पारद निकलता है, वह जल चाहे वर्षा द्वारा पृथ्वी के भीतर के उष्ण भाग में जाकर पुनः उष्ण स्रोत के रूप में बाहर निकला हो या पातालिक आग्नेय पाषाणों से निकलकर बाहर आया हो, किन्तु यह अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि पारद उष्ण जल के साथ ही क्षारीय घोलों में घुला हुआ पृथ्वी की दरारों में या खुले भू-भाग में आकर प्राकृतिक पारद और पारदीय खनिज हिंगुल आदि के रूप में जमा हुआ है।

पारद की उत्पत्ति

रसरत्नसमुच्चय आदि रस शास्त्रों में पारद की उत्पत्ति का वर्णन पौराणिक ढङ्ग से आलंकारिक भाषा में किया गया है, जिसका सारांश निम्न है।

गंगा नदी के किनारे महादेवजी के वीर्य से उत्पन्न पारद के सौ योजन लम्बे पाँच कुएँ (कूप) थे, इनमें से दो कुओं के पारद को सेवन कर देवता और नाग मृत्यु और बुढ़ापे से मुक्त हो गये, फिर उन्होंने उन दोनों कुओं को मिट्टी और पत्थर से भर दिया। शेष तीन कुओं के पारद के सेवन से मनुष्य भी मृत्यु तथा रोग से मुक्त होकर देवताओं के समान आयु और बलवाले होने लगे, यह देखकर दुःखी हुए, ईर्ष्यालु इन्द्र ने महादेवजी की प्रार्थना की, जिससे सन्तुष्ट होकर महादेव जी ने इन्द्र की इच्छानुसार शेष तीनों कुओं के पारद को शाप देकर आवरण रूप सात कंचुकादि दोषों से युक्त कर दिया, तब से बिना संस्कार किये पारद से कुछ भी लाभ नहीं होता है।

रसरत्न समुच्चय में मूल श्लोक निम्न प्रकार है। यथा—

शैलेऽस्मिन् शिवयोः प्रीत्या परस्पर जिगीषया।
सम्प्रवृत्ते च सम्भोगे त्रिलोक क्षोभ कारिणी॥
विनिवारयितुं वन्हिः सम्भोगं प्रेषितः सुरैः।

कपोत रूपिणं प्राप्तं हिमवत् कन्दरेऽनलम् ।।
अपक्षिभाव संक्षुब्धं स्मरलीला विलोकिनम् ।
तं दृष्ट्वा लज्जितः शम्भुर्विरतः सुरतात्तदा ।।
प्रच्युतश्चरमो धातुर्गृहीतः शूलपाणिना ।
प्रक्षिप्तो वदने वन्हे गगायामपि सोऽपतत् ।।
बहिः क्षिप्तस्तया सोऽपि परिदंदह्यमानया ।
संजातास्तन्मलाधानाद्धातवः सिद्धिदायकाः ।।
यावदग्नि मुखाद्रेतो न्यपतद्भुवि सर्वतः ।
शतयोजन निम्नास्ते जाताः कूपास्तु पंच च ।।
तदा प्रभृति कूपस्थं तद्रेतः पंचधाऽभवत् ।।

इस श्लोक का तात्त्विक भाव यह है—

हिमालय पर्वत पर जब जड़ और चेतन शक्ति का संघर्षण होता है, तब पृथ्वी के नीचे आग्नेय पदार्थ ज्वालामुखी के रूप में प्रकट होने लगते हैं। उस समय तीनों लोक (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल) में क्षोभ उत्पन्न करनेवाला भूकम्प पैदा होता है। समस्त संसार के हिम प्रदेश में ही प्रायः ज्वालामुखी उत्पन्न होता है। जहाँ भूकम्प के बाद ज्वाला मुखी का प्रादुर्भाव होता है, वहाँ पर पृथ्वी शतधा विदीर्ण हो जाती है, जिसमें से पहले धूम्र वर्ण की गैस निकलती है। धुआँ निकलने के पश्चात् अग्नि की ज्वाला निकलने लगती है। जब ज्वालामुखी प्रकट हो जाता है, तब भूकम्प बन्द हो जाता है, फिर जब ज्वालामुखी के आग्नेय पाषाण क्रमशः शीतल होने लगते हैं, तब उसके अन्तराल के उड़नशील खनिज उष्णजल के साथ मिलकर वाष्प रूप में ऊपर आकर शीत होने पर जम जाते हैं। जो खनिज इस प्रकार निकलकर जमा होते हैं उनके जमने का क्रम डा० सी० जी० कलिस प्रोफेसर इम्पीरियल कालेज लण्डन के मतानुसार यह है—

सबके नीचे पातालिक आग्नेय पाषाण (ग्रेनाइट) और उसके ऊपरी भागों में एक जलज, पारद, तुरमुली, पुखराज, वंग और टग-स्टन रहते हैं तथा दूसरी ओर भारी धातु जैसे ताम्र, नाग, यशद,

सुवर्ण, रजत और रौप्य माक्षिक आदि रहते हैं। जो लोग ऐसी खानों को खनते हैं वे प्रायः एक के बाद दूसरे खनिज पदार्थ को निकालकर लाभ उठाते हैं। यह भी निश्चित है कि जहाँ-जहाँ पारद की खानें हैं, वहाँ पर किसी-किसी स्थान में कुएँ भी मिलते हैं, इटली में ऐसे कुएँ मौजूद हैं। यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका में भी पारद के खानों में नलाकार कूप मिलते हैं, उन देशों में पारद के कूप २४५० फीट तक गहरे हैं। प्राचीन पारदोत्पत्ति के अन्दर पाच कूपों का ही वर्णन मिलता है। किन्तु वहाँ १८ कूप इस समय वर्तमान हैं, जिनसे पारद निकाला जाता है।

पारदीय खनिज

१—हिंगुल (सिनावार)—गुड़हर के पुष्प के सदृश लाल हिंगुल पारद निकालने के लिये यह मुख्य खनिज है। इसका रंग तेज-लाल होता है। यह पारद और गन्धक का यौगिक है। इसका रंग वैसा ही होता है जैसा जवाकुसुम (गुड़हल के फूल) का होता है। अतः "रेड सल्फाइड आफ मर्करी" खनिज ही रस-शास्त्र का हंसपाद हिंगुल है। साधारणतया यह मृत्तिका के ढेले-सा या दानेदार प्रकृत में प्राप्त होता है। कभी-कभी इसके रबे भी पाये जाते हैं। इसे चीनी मिट्टी की कसौटी पर घिसने से लाल लकीर खिचती है।

इसके दो भेद और हैं (१) यकृदाकार और (२) प्रवालाभ (कोरेलीन) इसमें पहला रसरत्नसमुच्चयोक्त 'दरद' है और दूसरे का एक नाम और है, जिसे 'कोरेलीन अर्टज' कहते हैं, इसका अर्थ मूँगे की-सी मिट्टी होता है, इस प्रकार का हिंगुल इटली देश में होता है।

२—चर्मारः—यह कृष्णवर्ण का खनिज हिंगुल है। इसका रासायनिक संगठन रक्त हिंगुल के सदृश है। यह मिट्टी और छोटे-छोटे कणों के रूप में पाया जाता है। इस कण को चीनी मिट्टी की कसौटी पर रगड़ने से काली लकीर खिच जाती है। देखने

में यह चमकदार होता है। कण की अपेक्षा मिट्टीवाले में गुरुता कम होती है। इसी को रस कामधेनु में "चर्मार: कृष्णवर्णस्यात्" इस रूप में वर्णन किया है।

३—हीरकद्युति (केलोमल)—यह हीरे के समान द्युति (कान्ति) वाला 'रवादार' पारद का खनिज है। इसे मर्क्यूरस क्लोराइड या केलोमल कहते हैं।

प्राप्तिस्थान—यह प्राकृतिक दशा में "स्पेन" देश के इड्रिया और अल्माडन नामक स्थान में स्वल्प मात्रा में पाया जाता है। यह कण के रूप में ही प्राय: मिलता है। इसके कण बहुत ही जटिल संगठन के रूप में होते हैं। इसका रंग श्वेत या पाण्डु वर्ण का होता है। चीनी मिट्टी की कसौटी पर रगड़ने से पीली-सी लकीर खिंच जाती है। भारतीय रसशास्त्रियों को इस पारदीय खनिजों का पूर्ण ज्ञान था। रस कामधेनु ग्रन्थ में इसका बहुत ही सुन्दर वर्णन है।

४—प्राकृतिक पारद—यह बहुत अल्प मात्रा में प्राप्त होता है। कभी-कभी इसके कण खनिज हिंगुल के साथ बिखरे हुए पाये जाते हैं। यह स्पेन तथा इटली की खानों में पाया जाता है। पारद प्राप्ति का यह गौण खनिज है।

५—पारद रजत मिश्रक (सिल्वर मर्करी)—यह प्रकृति में पारद और रजत के भिन्न-भिन्न परिणाम में पाया जाता है। अधिकतर यह चीली देश की खानों में मिलता है। इसके अतिरिक्त जर्मनी, स्पेन, अमरीका की खानों में भी मिलता है।

उपरोक्त किसी भी खनिज को पारद के लिये यदि परीक्षा करनी हो तो निम्न प्रकार से करें। एक काच की नली में पारदीय खनिजों में से जिसकी परीक्षा करनी हो, उसका चूर्ण तथा चूना या खाने का सोडा भरकर स्प्रीट-लैम्प पर तपाने से नलिका के शीतल प्रदेश में पारद के कण देखने में आवेंगे। यदि पारद का खनिज पारद और गन्धक का यौगिक हिंगुल हुआ, तो नलिका के शीतल प्रदेश में लाल हिंगुल और पारद दिखाई पड़ेंगे तथा जलते हुए गन्धक की तीव्र गन्ध भी प्रतीत होगी।

पारदीय खनिज प्राप्ति-स्थान

१—**भारतवर्ष**—यहाँ अब तक पारद या उसके खनिजों की प्राप्ति का कोई निश्चित स्थान ज्ञात नहीं हुआ है। अभी हाल ही में चित्रालर (पंजाब) नदी की रेत में हिंगुल के अस्तित्व का कुछ पता लगा है। यह स्थान सावधानीपूर्वक सुरक्षित कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त अदन, अफगानिस्तान, अण्डमन, आयरलेण्ड, बर्मा, तिब्बत आदि पार्श्ववर्ती देशों में भी हिंगुल के मिलने की संदिग्ध सूचनाएँ समय-समय पर प्रकाशित हुई हैं।

२—**यूनियन ऑफ साउथ अफ्रीका**—ट्रान्सवाल जिले में स्फटिक के साथ मिला हुआ हिंगुल पाया जाता है। इसी देश के अन्य स्थानों में गेलेना, लेडसल्फाइड, यशद, स्फटिक, रेणुशिला आदि के साथ में पाया जाता है। एक स्थान पर प्राकृतिक पारद सुवर्ण के साथ भी पाया गया है।

३—**उत्तरी अमेरिका**—कनाडा के सब प्रान्तों में अनेक जातीय खनिज पाषाण और उष्ण स्रोतों में प्राकृतिक पारद और हिंगुल पाया जाता है।

४—**आस्ट्रेलिया**—यहाँ हिंगुल तथा प्राकृतिक पारद अनेक स्थानों में पाया जाता है। यहाँ ज्वालामुखी पाषाणों में भी अधिकतर पारदीय खनिज मिलते हैं। पारद के खनिज निकालने के लिये यहाँ अनेक कूप भी खोदे गये हैं, जिनकी गहराई ५० से २४० फीट तक है।

५—**न्यूजीलेण्ड**—यहाँ सोना, चाँदी, माक्षिक आदि खनिजों के साथ अनेक स्थानों में पारदीय खनिज भी पाये जाते हैं। यहाँ एक स्थान पर उष्ण स्रोत में हिंगुल प्राकृतिक गन्धक के साथ अन्य खनिजों के सहयोग में पाया जाता है।

इसके अतिरिक्त अल्बेनिया, जेकोस्लोवाकिया, फ्रान्स और कार्सिका, जर्मनी, हंगरी, इटली, पोर्तुगाल, रूमानिया, रसिया, स्पेन, एशिया माईनर, चाईना, जापान, फारस, अफ्रीका, ट्यूनिस, नॉर्थ अमेरिका, होण्डुरास, मेक्सिको, यूनाइटेड स्टेट्स, अलस्का, एरिजोना,

केलिफोर्निया, कार्न, कौण्टी, इडाहो, निवाड़ा, ओरेगन, लेन, टेक्सास, वाशिंगटन, दक्षिण अमेरिका, डच, गायना, कोलम्बिया, यूकोडर, पेरू, जुनिन, हुवानुको, वीनेजुए आदि स्थानों में भी पारदीय खनिज प्राप्त होते हैं।

पारद के भेद और नाम

अनेक स्थानों में उत्पन्न होने के कारण पारद के प्रधान नाम—रस, रसेन्द्र, सूत, पारद और मिश्रक के भेद से पाँच हैं। ऐसे तो जितने नाम शिवजी के हैं, उतने नाम पारद के भी हैं। क्योंकि शास्त्रों में ऐसा ही उल्लेख है। यथा—

पारदो रसधातुश्च रसेन्द्रश्च महारसः।
चपलः शिव वीर्यश्च रसः सूतः शिवाह्वयः॥
रसेन्द्रः पारदः सूतः हरजः सूतकोरसः।
मुकुन्दश्चेतिनामानि ज्ञेयानि रस कर्मसु॥

१—**रस**—नाम का पारद लाल रंग का होता है। यह सब प्रकार के दोषों से रहित और रसायन है। इसी पारद के सेवन से देवता रोग, बुढ़ापा तथा मृत्यु से मुक्त हो गये।

२—**रसेन्द्र**—यह स्वभाव से ही निर्दोष, श्याव (काला-पीला), रूखा और अत्यन्त निर्मल होता है। इसी पारद के भक्षण से नाग-देव जरा और मृत्यु से छूट गये। इस पारद के सेवन से मनुष्य अजर-अमर न हो जाय इस कारण देवताओं ने इस कूप को मिट्टी और पत्थर से ढक दिया। तभी से ये दोनों पारद मनुष्यों के लिये दुर्लभ हो गये।

३—**सूत**—नामक पारद कुछ पीला, रूखा तथा दोषों से मिला हुआ होता है। १८ संस्कारों द्वारा शुद्ध होने पर देह लोह सिद्धि के लिए इसका उपयोग होता है।

४—**पारद**—यह चंचल और सफेद रंगका होता है। आजकल यही एक पारद मिलता है और इसी को शुद्ध करके अनेक प्रकार की दवाओं का निर्माण किया जाता है।

५—**मिश्रक**—नामक पारद मयूर (मोर) के पंख के समान चमकदार तथा पतलापन लिये हुए होता है। इसको भी १८ संस्कार द्वारा शुद्ध करने पर ही काम में लिया जाता है।

पारद में अन्य धातुओं का समावेश

जिस प्रकार शिवमूर्ति में मग्न हुए योगीराज मोक्ष को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार अभ्रक द्वारा जारण किये हुए पारद में सुवर्णादि धातु लीन हो जाते हैं। जड़ी-बूटियों के सत्त्वादिक क्षार शीशे में लीन हो जाते हैं। इसी प्रकार शीशा वंग में, वंग ताँबा में, ताँबा चाँदी में, चाँदी सोने में और सोना पारद में लीन हो जाता है। जिस प्रकार समस्त जीव (प्राणी) ब्रह्म में लय हो जाते हैं उसी प्रकार समस्त रसादि धातु पारे में लीन हो जाते हैं।

पारद के दोष

नागो वंशो मलोबह्निश्चापल्यं च विषं गिरिः।
असह्याग्निर्महादोषा निसर्गात् पारदे स्थिताः॥

पारद में १—नाग (शीशा), २ वंग (राँगा), ३—मल, ४—अग्नि, ५—चंचलता, ६—विष, ७—गिरिदोष, ८—असह्याग्निदोष, (अग्नि को न सहन करना, अग्नि पर गर्म करने से उड़ जाना) ये आठ महादोष स्वभाव से ही पारद में रहते हैं।

पारद के दोषों के विषय में अनेक मत हैं। 'रसेन्द्र चूड़ामणि' तथा 'रस प्रकाश सुधाकर' आदि ग्रन्थों में पारद के पाँच तथा अन्यों में सात और तीन नैसर्गिक दोष लिखते हैं।

पारद के गुण-दोष का विवेचन

स्वाभाविक पारद, सिंगरफ से निकाला हुआ पारद और उसके रस कर्पूरादि यौगिक दाहक विष हैं। पारद में अन्य धातु भी मिले रहते हैं, इन्हीं तीनों दोषों को दिखाने के लिये—रसरत्नसमुच्चय आदि पुस्तकों में—

विषं वह्निर्मलश्चेति दोषाः नैसर्गिकास्त्रयः

अशुद्ध पारद मारक होने से विष-दोष तथा दाहक होने से वह्नि दोष और धात्वान्तर के संयोग होने से —मल-दोषयुक्त माना गया है।

इन दोषों से युक्त पारद अथवा ऐसे पारदीय यौगिक सेवन करने से मरण-सन्ताप और मूर्छा आदि उपद्रव होते हैं।

यह बात आजकल के वैज्ञानिक भी मानते हैं। घोषकृत 'मेटेरिया मेडिका' में पारद प्रयोग के "एक्यूट टोक्सिन एक्सन" (तात्कालिक पारद-विष-प्रभाव) शीर्षक में लिखा है कि "पारद के यौगिक विशेष कर रस-कर्पूरादि (कोरोसिव सबलिमेण्ट), रसपुष्प (केलोमल, सुधानिधि रस) और मुग्धरस (ग्रेण्ट पाउडर) ये सेवन करने से कोष्ठ में भयंकर प्रभाव करते हैं। जिससे वमन, विरेचन, शूल, रक्तातिसार, मूर्छा तथा अन्त में मरण भी हो जाता है।"

इसीलिये हमारे प्राचीन रसशास्त्रों में पारद के संस्कारों की पूर्ण व्यवस्था की गई है जिससे ये दोष कम हों तथा दूसरे द्रव्य के संयोग से रोग नाशक व शक्तिप्रद गुण उत्पन्न हों।

पारद का विष-प्रभाव तो स्वाभाविक है। जब खान से पारद निकलता है, उस समय उसके साथ में संखिया और एण्टिमनी भी निकलते हैं। ये दोनों भयंकर विष हैं तथा उड़नशील भी हैं। अतः पारद शोधन करते समय इनकी अशुद्धियों को भी दूर करने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिये।

पारद में दो यौगिक दोष नाग और वंग माने गये हैं। यथा—

यौगिकौ नाग वंगौद्वौ तौ जाड्याध्मानकुष्ठदौ

यह आधुनिक दृष्टि से भी ठीक है। घोष की "मेटेरिया मेडिका एण्ड थेराप्युटिक्स" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि पारद में लेड, टिन तथा अन्य धातुओं की अशुद्धियाँ भी मिली रहती हैं।

अन्य धातुओं के सम्बन्ध में लाडर ब्रण्टन नामक विद्वान् ने अपने "फार्माकोलोजी थेराप्युटिक्स एण्ड मेटेरिया मेडिका" नामक ग्रंथ में लिखा है कि अन्य दोषों में —नाग (लेड), आर्सेनिक (संखिया), एण्टिमनी (स्रोतोंजन) हो सकते हैं। इन अवतरणों से स्पष्ट है

कि पारद में अन्य धातु मिले रहते हैं, अतएव मल-दोष को मानना सर्वथा सत्य है।

पारद के सप्तकंचुक दोष

उपरोक्त दोषों के अतिरिक्त पारद में सप्तकंचुक दोष भी माने गये हैं।

औपाधिकाः पुनश्चान्ये कार्तिताः सप्त कंचुकाः।
पर्पटी पाटिनी भेदी द्रावी मलकरी तथा ॥
अन्धकारी तथा ध्वांक्षी विज्ञेयाः सप्त कंचुकाः।

यह सप्त कंचुक दोष क्या है? साम्प्रतिक—रसायन और खनिज विज्ञान के परिशीलन से पता चलता है कि पारद प्रायः सब धातुओं से भारी होता है। जब यह अन्य धातुओं के साथ मिलता है, तब उसे पारदीयमिश्रक कहते हैं। इस अवस्था में पारद के अन्दर मिली हुई धातुएँ प्रायः पारद के ऊपर आवरण के रूप में फैली हुई रहती हैं। इस प्रकार के आवरण को कंचुक कहते हैं।

पारद के कंचुक दोषों का प्राच्य और पाश्चात्य ढंग से "रसतरंगिणी" में अच्छा वर्णन किया गया है। यथा—

धातवो रस संश्लिष्टा यदा विष्णुपदामृतम्।
गृह्णन्ति हि तदातेषां कश्चित् भागोऽवशीर्यते।
ततश्चूर्णत्वमापन्ना रसमाच्छादयन्ति ते।
तेनावरण साम्येन धातवः सूत संगताः ॥
कंचुकाख्यां भजन्तीति प्राच्य पाश्चात्य सम्मतिः।
कैश्चिदेते कंचुकाख्यां दोषाः औपाधिकाः स्मृताः।

पारद के मिश्रक अत्यधिक दबाव पर विशिष्ट हो जाते हैं, अर्थात्—पारद अलग निकल आता है। प्रायः इसी ज्ञान के आधार पर आयुर्वेद के रस शास्त्रज्ञों ने पारद को शुद्ध करने के लिये अनेक प्रकार के शोधन-विधानों का वर्णन किया है। साधारणतया पारद "लेटिन गेबर" के लेखानुसार वंग, सुवर्ण, ताम्र, रजत और लोहे के साथ मिलता है तथा इसके बाद के लेखकों के मतानुसार

पारद, यशद, नाग और धातु के साथ भी मिलता है। लौह के साथ कठिनता से मिलता है।

मिश्रक पारद का व्यापार

बाजार में ये मिश्रक पारद व्यापार के लिये आते हैं। पारद तथा वंग का मिश्रक दर्पण (शीशा-ऐना) पर कलई करने के काम आता है। सुवर्ण और रजत के द्वारा बने हुए पारदीय मिश्रक सोनहरी, रूपहरी, और गिलट की कारीगरी में उपयुक्त होते हैं।

यशद और वंग के साथ बने हुए पारदीय मिश्रक विद्युत् यन्त्रों को रबर पर चढ़ाने के लिये काम आते हैं, इसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार से बने हुए रजत, ताम्र, वंग और कभी-कभी सुवर्ण तथा प्लेटिनम् के द्वारा बने हुए पारदीय मिश्रक दाँतों के गढ़ों के भरने में काम आते हैं।

आधुनिक विद्वानों ने पारद पर वायु विशेष (गैस) को भी कंचुक आवरण माना है। यह आवरण अत्यन्त सूक्ष्म होता है और विशिष्ट यन्त्र द्वारा ही परीक्षित या दृष्टिगत होता है।

इन दोषों के अतिरिक्त भी रस ग्रन्थों में पारद के अन्दर अन्य दोष भी माने गये हैं, यथा—

भूमिजा गिरिजा वार्या ते च द्वे नाग वंगजौ

अर्थात्—भूमिज—(जिस भूमि से पारद निकला उसके संसर्गज दोष), गिरिज, वारिज (जिस स्रोत के जल में घुल कर ऊपर आकर हिंगुल के रूप में बना उसके दोष का भी पारद में रहना सम्भव है) अतएव जहाँ से खनिज पारद एकत्रित किया गया है, उन स्थान के संसर्ग से होनेवाले दोषों को अवश्य दूर कर देना चाहिये।

परन्तु दुःख है कि आजकल जो बाजार में पारद उपलब्ध होता है और हम लोग रात दिन उसे वर्तते हैं, यह पता लगाने की कभी भी चेष्टा नहीं करते कि यह पारद कहाँ से आया और किस देश में मिलता है तथा इसके सहयोगी कौन-कौन धातु हैं, इसकी शुद्धि क्यों की जाती है, शोधन द्रव्यों का इस पर क्या प्रभाव पड़ता है इत्यादि।

इस अनभिज्ञता का फल यह हो रहा है कि दिनानुदिन इस क्रिया का लोप होता जा रहा है और वैद्य समाज पारद जैसी महत्त्वपूर्ण औषध से सर्वथा अनभिज्ञ होता चला जा रहा है। यहाँ तक कि पारद का जो अष्ट संस्कार विधान है उसे भी बहुत से वैद्य झंझट समझ कर छोड़ ही देते हैं।

'पारद के संस्कार की आवश्यकता क्यों? अशुद्ध या खनिज पारद के अन्दर विष, वह्नि और मल ये ३ दोष स्वाभाविक रूप से रहते हैं, इन दोषों से युक्त पारद के सेवन से मनुष्य को क्रमशः मरण, सन्ताप और मूर्च्छा होती है। पारद के नाग और वंग ये दोष यौगिक हैं अर्थात् ये दोष खान में संसर्ग से पारद में उत्पन्न होते हैं। अथवा व्यापारी लोग इन दोनों धातुओं को पारद में मिला देते हैं, इन दोषों से युक्त पारद का सेवन करने से—जाड्य, आध्मान और कुष्ठ पैदा होता है। इसके अतिरिक्त सप्तकंचुक दोष हैं। ये औपाधिक दोष हैं। ये भूमि, पर्वत और जल से उत्पन्न होते हैं।

पारदीय भूमि से उत्पन्न कंचुक दोष कुष्ठ रोग उत्पन्न करते हैं। पर्वत से उत्पन्न जाड्यता, जल से उत्पन्न कंचुक दोष वातव्याधि, और नाग तथा वंग दोष अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं। अतएव इन दोषों से मुक्त करने के लिये पारद का संस्कार द्वारा शोधन करना चाहिये।

पारद-संस्कार की संख्या

रसरत्नसमुच्चयादि ग्रन्थों में पारद के १८ संस्कार करने का वर्णन है। किन्तु रसपद्धति, रुद्रयामल आदि रसशास्त्रियों का मत है कि पारद के आठ ही संस्कार चिकित्सकों को करना चाहिये। शेष १० संस्कार स्वर्णादि (रसायन) कार्य में काम आते हैं। अतएव हम भी यहाँ आठ ही संस्कार का उल्लेख करेंगे। यथा—

१—स्वेदन, २—मर्दन, ३—मूर्च्छन, ४—उत्थापन, ५—पातन (ऊर्ध्वपातन, अधःपातन, तिर्यक्पातन), ६—बोधन, ७—नियामन, और ८—प्रदीपन।

१ स्वेदन (स्वेद) संस्कार

स्वेदन संस्कार के लिए जितना पारा लें उसका आधा सोंठ, पीपल, मिर्च, सेंधा नमक, राई और चित्रक इन सबको कूट-कपड़छान कर बारीक चूर्ण कर लें, फिर आर्द्रक और मूली के रस से खरल में उपरोक्त चूर्ण और पारद को घोटें। यहाँ तक खरल करें कि गोला बन जाय, फिर इस गोले को तीन या चार पर्त्त किये हुए मजबूत स्वच्छ वस्त्र में बाँध कर काँजी भरी हुई मिट्टी के पात्र में इस गोले को (दोला यन्त्र में) लटका कर चूल्हे पर चढ़ा मध्यमाग्नि द्वारा तीन दिन तक स्वेदन करें। यदि काँजी कम हो जाय तो दुबारा फिर करें।

ध्यान रहे पोटली काँजी के मध्य में ही रहे तथा हाँड़ी की तली से कुछ ऊपर ही रहना चाहिये और हाँड़ी चौड़े मुंह की हो, जिससे पोटली सुगमता से आ जाये। चूंकि पोटली बड़ी होती है अतः हाँड़ी का पेट भी बड़ा होना चाहिए।

दोला यन्त्र

एक मिट्टी की हाँड़ी में काँजी आदि स्वेदन योग्य स्वरसादि भर कर उस हण्डिका के दोनों किनारों में दो छेद बनाकर उसमें मजबूत लकड़ी डाल दें, फिर उस लकड़ी के बीच में पारद की पोटली बाँधकर भाण्डस्थ द्रव में लटकाकर इस हण्डिका को चूल्हे पर चढ़ाकर यथोक्त समय तक आँच देकर स्वेदन करें। इसी को 'दोला यन्त्र' कहते हैं।

स्वेदन संस्कार से लाभ—रसपद्धति, भावप्रकाश तथा रससागर आदि ग्रन्थों के मतानुसार—स्वेदन-संस्कार द्वारा पारद के दोषों को शिथिल किया जाता है। शिथिलता दूर होकर –पारद में तीव्रता आ जाती है।

२ मर्दन संस्कार

पारद से सोलहवाँ भाग मर्दन संस्कार की औषधियों (घर का धुआँ, ईंट का चूर्ण, दही, गुड़, सेंधा नमक और राई) को अलग-अलग चूर्ण करने योग्य दवाओं को कपड़छन चूर्ण करें। फिर इस चूर्ण के साथ पारद को खरल में डालकर तीन दिन तक घोटें।

मर्दन संस्कार से लाभ—मर्दन संस्कार द्वारा पारद का बाहरी मल नष्ट होकर पारद शुद्ध और स्वच्छ हो जाता है।

३ मूर्च्छन संस्कार

पारद को घृतकुमारी के स्वरस में ७ दिन तक घोटने से मलदोष नष्ट हो जाता है। त्रिफला तथा काँजी या जल के साथ पारद को सात दिन तक घोटने से वह्निदोष नष्ट होता है। चित्रकमूल के चूर्ण के साथ घोटने से विषदोष दूर होता है। इस प्रकार पारद को उपर्युक्त सभी द्रव्यों के साथ पृथक्-पृथक् घोटने से मूर्च्छन संस्कार हो जाता है।

मूर्च्छन संस्कार से लाभ—मूर्च्छन संस्कार से मल, वह्नि तथा विषदोष नष्ट हो जाते हैं।

४ उत्थापन संस्कार

उपरोक्त मूर्च्छन संस्कार से पारद पिष्टी के रूप में हो जाता है। अतः उसको फिर अपने स्वरूप में लाने के लिए इसका उत्थापन करना चाहिये। यह उत्थापन संस्कार अनेक प्रकार से किया जाता है। यथा—

*१—नष्ट पिष्ट पारद को खरल में डालकर काँजी के साथ तेज धूप में एक प्रहर तक घोटकर फिर चार तह किये हुए वस्त्र में छानकर गर्म जल से धो लें।

२—नष्ट पिष्ट पारद को खरल में डालकर जम्बीरी नीबू के रस के साथ तेज धूप में तीन घण्टे तक खरल में घोटकर वस्त्र से छानकर जल से धो लेना चाहिये। इससे पारद का उत्थापन हो जाता है।

५ पातन संस्कार

एक खरल में शुद्ध पारद तीन भाग और ताम्रचूर्ण एक भाग डालकर इन दोनों को नीबू के रस से जब तक गोला (पिण्ड) न बन जाये तब तक मर्दन करें। यदि गोला न बने तो थोड़ा शुद्ध तूतिया डालकर घोटें, अवश्य गोला बन जायगा।

इस गोला को नीचे की हाँड़ी में रख दें और उस हाँड़ी के मुख पर नीचे की ओर मुख की हुई दूसरी हाँड़ी को रखकर दोनों हाँड़ियों के मुखसन्धि को मुल्तानी मिट्टी से बन्द कर सुखा दें। नीचे की

---

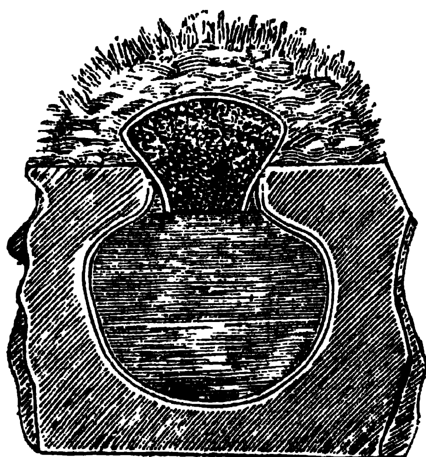
* स्वरूपस्य विनाशेन पिष्टत्वाद्बन्धनं हि तत्।
विद्वद्भिर्निजितःसूतो नष्टपिष्टः स उच्यते ॥

हण्डिका के अधोभाग (पेंद) में भी मिट्टी लगा देनी चाहिये। फिर इस डमरू यन्त्र (देखें पृष्ठ ४४ पर विद्याधर यन्त्र) को चूल्हे पर चढ़ा कर तीन प्रहर मध्यमाग्नि द्वारा आँच दें। पास में एक पात्र में शीतल जल भरकर रखें। उसमें ४ पर्त्त किये हुए कपड़े भिगोकर ऊपर की हाँड़ी के पेंद पर शीतलता पहुँचाने के लिए बार-बार रखते जायँ। इस तरह नीचे से पारद उड़कर ऊपर की हाँड़ी के भीतरी भाग में छोटे-छोटे कणों के रूप में चिपक जाता है। स्वाँग शीतल होने पर धीरे से यन्त्र को उतार उसकी सन्धि को तोड़कर ऊपरी हाँड़ी में लगा हुआ पारद को ब्रुस से साफ कर निकालें, फिर स्वच्छ वस्त्र से छान कर रख लें। इस तरह ऊर्ध्वपातन संस्कार से पारद नाग और वंग दोनों दोषों से मुक्त हो निर्मल हो जाता है।

नोट—इस ऊर्ध्वपातन विधि से ऊर्ध्वपातन करने क लिए आठ पल (३२ तोला) पारद लेना चाहिये। क्योंकि अनुभव से ६ घण्टे की अग्नि से प्रायः आठ पल (३२ तोला) पारद का ही ऊर्ध्वपातन देखा गया है। कभी-कभी ४० तोला भी उड़ जाता है। परन्तु इसमें बारह घण्टे की आँच लगती है। अतः ऊर्ध्वपातन के लिए ३२ तोला ही पारद लेना चाहिये।

अधःपातन यन्त्र

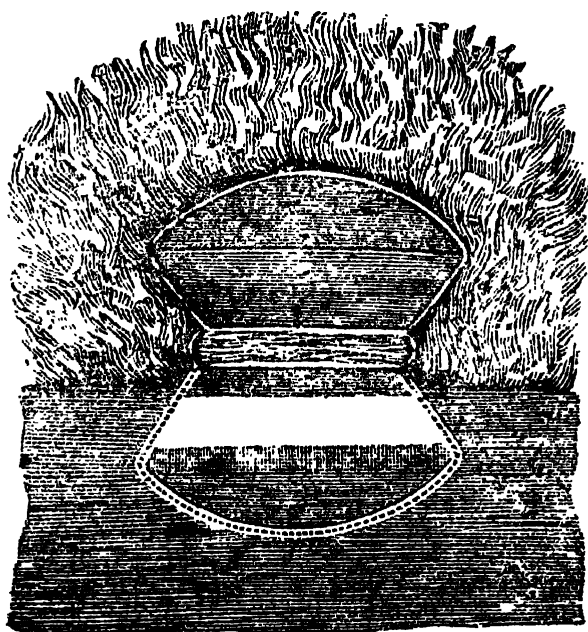
शु० आँवलासार गंधक तथा पारद समान भाग लेकर जम्बीरी नीबू के रस में एक दिन घोटकर कौंच के बीज, चित्रक, सहजना, राई और सेंधा-नमक के साथ इतना घोटें कि उसकी पिट्ठी बन जाये, जिससे कि पारद अलग न दीख पड़े, फिर इसे ऊपरी हण्डिका के भीतरी भाग में लेप कर दें



और नीचे की हण्डिका में जल भर दें, फिर पारद से लिप्त हण्डिका का मुख नीचे की जल भरी हुई हण्डिका के मुख से मिला कर मुल्तानी मिट्टी से सन्धि बन्द करके पृथ्वी में एक गढा (जिसमें यह यंत्र पूरा बैठ सके, केवल ऊपरी हण्डिका के पृष्ठभाग मात्र दिखाई पड़े) खोदकर गाड़ दें, बाद में ऊर्ध्व हण्डिका की पीठ पर जंगली कण्डों की आँच दें। इस तरह अग्नि के ताप से पारद नीचे शीतल जल में गिरेगा। स्वाँग शीतल होने पर सावधानी से ऊपर की हँड़िया हटा नीचे जल में से पारद निकालकर सुरक्षित रख लें। यदि एक बार में सम्पूर्ण न उड़ सके तो दुबारा फिर इसी प्रकार करें।

अधःपातन संस्कार के लिये भूधर यन्त्र, डमरू यन्त्र और कुक्कुट पुट की आवश्यकता होती है। भूधर यन्त्र से भी काम लिया जाता है, अतः भूधर यन्त्र का परिचय भी देना आवश्यक है।

भूधर यन्त्र



एक छोटा सा भाण्ड लेकर उसके भीतरी भाग में पारद कल्क का लेप कर दें, फिर एक चौड़ा पेटवाला भाण्ड लेकर उसमें शीतल जल भरकर पारद लिप्त भाण्ड को अधोमुख करके दोनों के मुखों को मिला कर संधि बन्द कर दें, फिर यन्त्र को गड्ढे में रखकर ऊपरी भाण्ड के पृष्ठ पर जंगली कण्डों की आँच दें। इससे पारद का अधःपातन शीतल जल में होता है।

तीर्य्यक् पातन यन्त्र

समान भाग धान्याभ्रक और पारद को काँजी में पीसकर पिष्टी बना लें, फिर इस पिष्टी को एक बड़े घट में रख दें और एक दूसरे घट में जल भर दें, इन दोनों घड़ों के मुख को प्याले से बन्दकर मुल्तानी मिट्टी से संधि बन्द कर दें, फिर पारदयुक्त घट को चूल्हे पर रख उसके पाँजर में जल भरा हुआ घट रख दें, पारदवाले घट की गर्दन से कुछ नीचे एक छेद बना बाँस की या और किसी लोहे आदि की नली लगा दें, किन्तु नली ज्यादे भीतर तक प्रवेश न करे इसका ध्यान रहे। उस नली के अग्र भाग जलवाले घट के पार्श्व में छेदकर प्रवेश कर दें। फिर मुल्तानी मिट्टी से अच्छी तरह संधि बन्द कर देने के बाद आँच दें। प्रायः ६ घण्टे तक की आँच देने से ३२ तोला पारद उड़कर आ जाता है। जल से भरा हुआ घड़ा के ऊपर शीतल जल में कपड़ा भिगोकर बराबर डालते रहें, जिससे घड़ा गर्म न होने पावे।

६ बोधन (रोधन) संस्कार

उक्त प्रकार से मर्दन, मूर्च्छन तथा पातन संस्कारों से संस्कृत किया हुआ पारद शक्तिहीन हो जाता है, अतः इसमें पुनः शक्ति लाने के लिये ही यह बोधन संस्कार किया जाता है। यथा—

एक हाँड़ी में पारद को रखकर ऊपर से नीबू के रस में पिसे हुए सधव नमक से ढक दें, और कुछ जल डालकर एक ढक्कन मुख पर रख मुख बंदकर संधि लेप कर दें, फिर इसे लघु पुट में देकर फूंक देने से बोधन संस्कार हो जाता है; तथा पारद शक्ति सम्पन्न हो जाता है।

७ नियमन संस्कार

बोधन संस्कार द्वारा बलवान पारद की चंचलता दूर करने के लिये नियमन संस्कार किया जाता है। इसका प्रयोजन सिर्फ पारद की चंचलता दूरकर अग्नि स्थायी करना है। इसके लिये—

नागफेनी, इमली, बाँझ ककोड़ा, भाँगरा, धतूरा और नागर मोथा के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ एक दिन स्वेदन करने से पारद की चंचलता दूर होकर अग्नि स्थायी बन जाती है, ऐसा रासायनिकों का मत है।

८ दीपन संस्कार

काँजी या क्वाथ आदि से भरी हुई हाँड़ी में दोला यन्त्र द्वारा तीन दिन तक स्वेदन करने से पारद का स्वेदन संस्कार हो जाता है। इस संस्कार से पारद की जारण शक्ति बढ़ जाती है और पारद का उत्तम स्वेदन हो जाता है।

पारद के ८ दोषों को दूर करने का सरल उपाय

१—नागदोष के लिये—पारद के १६ वाँ भाग ईंट का चूर्ण तथा हल्दी का महीन चूर्ण पृथक्-पृथक् लेकर तप्त खरल में नीबू के रस डाल कर एक दिन तक बराबर मर्दन करें।

इसके लिये खरल मजबूत लोहा अथवा पत्थर का होना चाहिये। मर्दन करने के पश्चात् पारद को काँजी से धो दें, इस तरह से नाग-दोष दूर हो जाता है।

२—बंग दोष के लिये—इन्द्रायण तथा अंकोठ के जड़ की छाल के चूर्ण के साथ पारद को मर्दन करने से बंग दोष नष्ट होता है।

३—मल दोष के लिये—अमलतास के गूदे के साथ पारद को मर्दन करने से मल दोष नष्ट होता है।

४—वह्नि दोष के लिये—चित्रक की जड़ की छाल के चूर्ण के साथ पारद को घोटने से वह्नि दोष नष्ट होता है।

५—चांचल्य दोष के लिये—काले धतूरे (पंचांग) के चूर्ण और पारद दोनों को एकत्र मर्दन करने से चांचल्य दोष नष्ट होता है।

६—**विष दोष के लिये**—त्रिफला चूर्ण और पारद दोनों को एकत्र घोटने से विष दोष नष्ट होता है।

७—**गिरिदोष के लिये** —त्रिकटु चूर्ण और पारद को एकत्र घोटने से गिरि दोष नष्ट होता है।

८—**असह्याग्नि दोष के लिये**—गोखरू का चूर्ण और पारद को एकत्र मर्दन करने से असह्याग्नि दोष नष्ट होता है। —र० सा० सं०

अशुद्ध पारद के लक्षण

आजकल बाजार में बिकनेवाला पारा कई विशेष धातुओं से मिश्रित रहता है। यदि आप इसकी परीक्षा करना चाहें, तो किसी साफ चीनी या काँच के बरतन में रखकर तिरछा करें, तो पीछे से पारद के छोटे-छोटे कण की लकीर-सी दिखाई पड़ेगी, अथवा इसे बात-प्रदेश में हिलावें तो पारद के ऊपरी भाग में काले से चूर्ण की या मलाई की तरह जम जायगी, जिससे पारद के छोटे-छोटे कण आच्छादित हो जायेंगे। यही कंचुकी दोष माना गया है। प्राय: अशुद्ध पारद का स्वरूप धुएँ के समान पाण्डु और चित्र-विचित्र होता है, यथा—

"××धूम्र: परिपाण्डुरश्च चित्रो न योज्यो रसकर्मसिद्धौ"

अत: उक्त प्रकार के पारद का प्रयोग औषध या रस कर्म में नहीं करना चाहिये। पारद को अन्य मिश्रित धातुओं से मुक्त करने के लिये पातन संस्कार करना बहुत उपयोगी है। इसमें आपको एक विचित्र बात देखने में आयेगी —यदि पारद में नाग या बंग धातु का सम्मिश्रण थोड़ा भी होगा, तो तीव्र आँच देने पर भी बहुत धीरे-धीरे पारद उड़ेगा ; कम आँच में तो नीचे बैठा ही रह जाता है ; बहुत कम मात्रा में ऊपर उड़ता है।

रस-ग्रन्थों में विष, बह्नि, मल, नाग, बंग आदि दोषों के अतिरिक्त चापल्य, गिरिदोष और असह्याग्नि ये महादोष भी माने गये हैं। ये दोष अवश्य विचारणीय हैं। चपल (विस्मथ धातु) कभी-कभी पारद के साथ मिला रहता है। चपल के साथ पारद के द्रवांक (मेल्टिग प्वाइण्ट) को घटाने के लिये मिलाते हैं ; अर्थात्

पारद मिलने से चपल शीघ्र ही मन्द अग्नि पर भी पिघल जाता है और "स्टीरियो टाइपिंग" के व्यापार में आजकल लगाया जाता है। ऐसा पारद यदि काम में (औषधि कर्म में) लाया जाय तो उसमें चपल धातु की अशुद्धि रहना अवश्यम्भावी है।

इसी प्रकार गिरिदोष है, जिसका उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। तथापि ध्यान रहे कि संखिया (आरसेनिक), सुरमा (एण्टिमनि) पारद के खनिजों के साथ ही अधिकांश निकलते हैं, और ये उड़नशील भी हैं; अतः इन दोषों को गिरिदोष मानना ठीक है।

कुछ ऐसे भी पारदीय खनिज हैं, जो ऑक्सिजन और नमक की गैस (क्लोरिन) के अत्यल्प मात्रा में पाये जाने वाले यौगिक हैं और अपेक्षाकृत अत्यन्त उड़नशील हैं। सम्भवतः इन्हीं यौगिकों को देखकर पारद में असह्याग्नि दोष गौण रूप में माना गया है।

शुद्ध पारद के लक्षण

शुद्ध पारद श्वेत (चाँदी जैसे) वर्ण का होता है। यह साधारण तापक्रम पर द्रव रूप में रहता है। यदि इसको आप किसी शीशी के अन्दर रखकर हिलायेंगे, तो छोटे-छोटे गोल-गोल कण बन जायेंगे, यदि पात्र से पृथ्वी पर फैला देंगे तो भी छोटे-छोटे कण के रूप में फैल जायगा। इन फैले हुए कण को इकट्ठा कर शीशी में आसानी से भर सकते हैं। पारद अत्यन्त शीतांश पर सफेद राँगे जैसा ठोस हो जाता है। किसी-किसी का कहना है कि इतना सख्त हो जाता है कि चाकू से कटता है। न जाने यह कहाँ तक सत्य है। द्रवावस्था में पारद की पतली सतह पारदर्शक होती है तथा उसमें नीले रंग की आभा दिखाई देती है। आयुर्वेद शास्त्र में शुद्ध पारद के लक्षण भी यही है। यथा—

"अन्तः सुनीलो वहिरुज्ज्वलो यो मध्याह्नसूर्यप्रतिमप्रकाशः"

थोड़ा-सा पारद एक काँच या चीनी के बर्तन में रखकर उस पर ऊपर से पानी की तेज धारा गिराई जाय, तो पारद के बुल-बुले पानी

की सतह पर तैरते हुए दिखायी देते हैं, उनमें नीली आभा दिखायी देती है तथा वे फूटकर ठोस पारद के कण के रूप में बदल जाते हैं।

—ख० वि०

गन्धक

रसायन-शास्त्र में पारद के बाद गंधक का ही नम्बर आता है। वास्तव म रासायनिक चिकित्सा की सृष्टि (रचना) के लिये इन दोनों (पारा-गंधक) का संयोग होना परमावश्यक है। इनके संयोग के बिना रासायनिक चिकित्सा चल ही नहीं सकती है। ये दोनों पृथक् रहने पर उतना कार्य नहीं कर सकते, जितना एक जगह मिलकर अद्भुत कार्य करते हैं। अतएव पारद के बाद गंधक का विवरण लिखा जाता है।

गन्धक के भेद और नाम

गन्धक तीन प्रकार का होता है। इनमें पहला शुक (तोते) की चोंच के समान लाल होता है, यह उत्तम होता है। दूसरा पीतवर्ण का होता है, यह मध्यम है। तीसरा श्वेत वर्ण का होता है, यह अधम है। कुछ लोगों का मत है कि गन्धक चार प्रकार (श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण वर्ण) का होता है। इनमें सफेद गन्धक को खटिक कहते हैं; क्योंकि यह खड़िया के समान सफेद होता है, और यह लेप तथा लोह मारण के काम में आता है और जो गन्धक पीले वर्ण का होता है उसे आँवलासार गन्धक कहते हैं। इसी का एक दूसरा भेद शुक पिच्छ है। यह रस और रसायन कार्य के लिये श्रेष्ठ होता है। जो गन्धक तोते की चोंच के समान होता है, वह सोना, चाँदी आदि धातु निर्माण के काम में आता है तथा जो काले वर्ण का गन्धक होता है, वह जरा और मृत्यु को नष्ट करने वाला होता है। परन्तु यह अतिदुर्लभ हो गया है।

गन्धक के नाम—गन्धक, गन्धपाषाण, शुकपिच्छ, सुगन्धक (सुन्दर गन्धवाला), शुल्वरिपु (यह ताम्बे को मारता है अतः इसका नाम ताम्बे का शत्रु है), पामारि (पामा-खुजली को नाश करने

वाला), नवनीतक (जिसे आजकल नौनियाँ या नुनियाँ गन्धक भी कहते हैं)।

गन्धक के दोष—अशुद्ध गन्धक के सेवन से ताप, कुष्ठ, भ्रम और पित्त के रोग उत्पन्न होते हैं तथा रूप, बल, वीर्य और आरोग्य का नाश होता है। अतः शुद्ध करके ही इसका उपयोग करना चाहिये।

गन्धक-शोधन-प्रकार—एक लोहे के पात्र में घृत डालकर आग पर रखें। पिघल जाने पर घृत के समान भाग गन्धक का दरदरा चूर्ण उस घृत में डाल दें, गन्धक के पिघलते ही दूध में डाल दें। पश्चात् उसमें से निकाल कर गर्म जल से धो डालें और सुखाकर रख लें, इसे सब रोगों में प्रयोग करें। —शा० सं०

नोट—अक्सर देखा जाता है कि प्रायः गन्धक में छोटे-छोटे शिलाकण तथा मिट्टी आदि के भी कण मिले रहते हैं, अतः गन्धक जब कड़ाही में पिघल जाय तो दूध के ऊपर एक स्वच्छ कपड़ा बाँध दें। उस कपड़े पर गन्धक डालें, जिससे छनकर सिर्फ गन्धक मात्र ही दूध में पड़े और कंकड़-पत्थर सब ऊपर कपड़े में ही रह जाय।

शुद्ध गंधक के गुण—शुद्ध गंधक रसायन में श्रेष्ठ और रस में मधुर तथा पाक में कटु है। यह खाज, कुष्ठ और विसर्प (फैलने-वाली खुजली) को दूर करता है। अग्निदीपक और पाचक है। आँव को दूर करता तथा उसका शोषक है और दुष्ट मलादि को निकालकर शुद्ध करनेवाला तथा विषनाशक है। पारे के लिये वीर्य-प्रद है अर्थात् उसकी रोगनाशिनी शक्ति को बढ़ाता है। कृमि और प्लीहावृद्धि नाशक है। सत्त्वरूप—(जैसे अन्य धातुओं से सत्त्व निकाले जाते हैं वैसे इसका नहीं, यह तो खुद ही सत्त्वात्मक है) और वीर्यवर्द्धक है।

गन्धक के कुछ विशिष्ट प्रयोग

गंधक के तैल बनाने की विधि—शुद्ध गंधक के चूर्ण में सोलहवाँ भाग त्रिकटु (सोंठ, पीपल, मिर्च) का चूर्ण मिलाकर तैल में बारीक घोटकर एक बालिश्त भर चौकोर स्वच्छ कपड़ा बिछाकर उस

पर इस पिष्टी को बिछा सावधानी से मोड़कर बत्ती बना लें, उस वर्त्तिका को धागे से लपेट दें। अब इस बत्ती को सड़सी या चीमटी से पकड़कर अग्नि में जलावें और नीचे एक काँच का पात्र रख दें जिसमें गंधक का तैल नीचे टपकता रहे, बत्ती जल जाने पर उस पात्र में जितना तैल हो उसे छानकर अच्छी शीशी में रख लें। इसे गंधक द्रुति भी कहते हैं।

—भा० भै० र०

गुण और उपयोग—इस तैल की ३ बूंद और रस सिन्दूर २ रत्ती लेकर घोटकर उँगली से पान में मिलाकर सेवन करें तो अग्नि प्रदीप्त होती है। तीव्र क्षय, पाण्डु, कास और श्वास रोग नष्ट होते हैं। शूल, दुःसाध्य ग्रहणी और आमाजीर्ण भी नष्ट हो जाते हैं।

कुष्ठ रोग में—शुद्ध गंधक और काली मिर्च का चूर्ण समान भाग लें और गन्धक से षड्गुण त्रिफला चूर्ण लेकर इसमें मिलाकर एकत्र घोट लें। फिर इस चूर्ण को अमलतास की जड़ के क्वाथ या स्वरस के साथ सेवन करने से कुष्ठ नष्ट होता है। यदि इस औषध-सेवन काल में अमलतास की जड़ को चन्दन की तरह पानी में घिसकर बराबर घावों पर लेप करते रहें, तो बहुत शीघ्र कुष्ठ व्रण आराम होता है।

सेहुआँ में—गंधक और यवक्षार को सरसों के तेल में मिलाकर लेप करने से सिध्म (सेहुआँ) नष्ट होता है।

गण्डमाला में—पारा, गंधक, आक का दूध, सेंधा नमक और हल्दी को पीसकर लेप लगाने से गण्डमाला की गाँठ बैठ जाती है।

पामा में—गंधक को महीन पीसकर सरसों तेल में मिलाकर लेप करने से पामा (कण्डू) नष्ट हो जाती है।

गंधक की गंध दूर करने का उपाय—गंधक के चूर्ण को ८ गुने दूध में इतना पकावें कि वह गाढ़ा हो जाय, फिर उसमें हुलहुल का रस डालकर धीरे-धीरे पकाने के बाद उसे त्रिफला के काढ़े में डालकर गर्म जल से धोकर रख लें।

हिक्का में—शुद्ध पारद और शुद्ध गंधक को समान भाग में लेकर ताँबे के बर्तन में घोटकर कज्जली बना पान के रस और मधु के साथ सेवन करने से सब प्रकार की हिक्का नष्ट हो जाती है।

प्रमेह पर—शुद्ध गंधक १ रत्ती को गुड़ ४ रत्ती में मिलाकर जयन्ती रस के साथ सेवन करें तो प्रमेह रोग नष्ट होता है।

विर्चचिका पर—शुद्ध गंधक ४ रत्ती को पाव भर धारोष्ण गो दुग्ध के साथ सेवन करने से विर्चचिका तथा पामा नष्ट होती है।

प्रमेह पिडिका पर—४ रत्ती शुद्ध गंधक १ माशे गुड़ के साथ मिलाकर खाने से प्रमेह पिडिका नष्ट होती है।

फोड़े-फुन्सियों पर—३ मा० शुद्ध गंधक के महीन चूर्ण को २॥ तो० कड़वे तेल में मिलाकर धूप में रख दें। एक दिन बराबर धूप लगने दें। दूसरे दिन इस तेल की मालिश घाम में बैठकर करें। इसी तरह एक सप्ताह तक करने से पुरानी से पुरानी फुन्सियाँ, रक्त-विकार आदि नष्ट होकर शरीर सुन्दर बन जायगा।

मूत्रकृच्छ्र पर—शुद्ध गंधक, जीरा और बड़ी कटेली के बीज क्रमशः १, २, ३ रत्ती की मात्रा में लेकर महीन चूर्ण कर सहजन के स्वरस के साथ सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है।

असाध्य आमवात पर—शुद्ध गंधक १ तोला, सोंठ २ तोला, निशोथ ३ तोला—इन सब का बारीक चूर्ण कर अदरक, त्रिकुटा, त्रिफला इनके क्वाथ से लगातार ३ रोज घोटकर चना बराबर गोली बनाकर प्रातः सायं १-१ गोली गर्म जल के साथ सेवन करने से ३ महीने में आमवात दूर हो जाता है।

पाण्डु रोग पर—शुद्ध गंधक ३ माशे, तुत्थ भस्म १ रत्ती दोनों को एकत्र मिला मधु के साथ देने से पाण्डु रोग नष्ट होता है। इसी तरह ३ रत्ती लोह भस्म के साथ देने से कुष्ठ रोग दूर हो जाता है।

शोषज्वर पर—गंधक, त्रिफला और भाँगरा इनका सम भाग चूर्ण कर तीन-तीन माशे की मात्रा में मधु और घृत के साथ खाने से शोषज्वर नष्ट होता है।

हिंगुल (सिंगरफ)

हिंगुल के पर्याय तथा भेद—हिंगुलं, म्लेच्छं, हंगुलं, चर्मारबन्धनम्, चूर्णपारदं, दरदं, कुरूविन्दं, चीनपिष्टं, लघुकन्दरसं, चर्मारगन्धिका, रत्नरागकरी, हंसपाद, चर्मारः, सुपीतक, शुकतुण्डकः इत्यादि पर्यायवाची शब्दों को देखने से ज्ञात होता है कि भारतेतर देशों से व्यापारी लोग पारद, हिंगुल या तत्सम्बन्धी अन्य खनिजों को यहाँ लाते थे। सिंगरफ जहाँ से आया और जिस तरह के कार्य में उपयुक्त हुआ, या पात्र आदि में रखे गये उसके संस्मरण के लिये वैसा ही नाम रख दिया गया। उदाहरण के लिये "म्लेच्छ" शब्द को ही लीजिये। यह शब्द सदा से यवनों के लिये ही व्यवहृत होता आया है। यहाँ यवन (ग्रीक) लोग बहुधा आकर यहाँ की कला-कौशल सीखकर चले जाते थे, इसके अनेक प्रमाण शास्त्रों में भरे पड़े हैं। अस्तु, पारद और उसके अन्य खनिज भारतेतर देशों से आया करते थे, अतः हिंगुल के लिये 'म्लेच्छ' शब्द का प्रयोग किया गया है।

इसी प्रकार चीन से चूर्ण रूप में हिंगुल आता था, अतः "चीनपिष्ट" शब्द रखा है। उस जमाने में व्यापारी लोग चमड़े के थैलों में भरकर हिंगुल लाया करते थे। अतः "चर्मारिगन्धिका" नाम रख दिया गया। काँच के पीछे हिंगुल की कलई कर दी जाती है, अतः "रत्नरागकरी" नाम रखा गया।

चीन में अबतक हिंगुल को पीसकर ही व्यापार करते हैं। "दरद" शब्द स्थानवाची है। सर पी० सी० राय महोदय ने अपने प्रसिद्ध "हिस्ट्री आफ हिन्दू केमेष्ट्री" में लिखा है कि हिंगुल काश्मीर के समीप वाले "दरिस्तान" से आता था, अतः इसका नाम "दरद" रखा गया। किन्तु "सर्वे आफ इण्डिया" नामक पुस्तक में इस स्थान का वर्णन देखने में नहीं आता। यह स्थान अरब सागर और फारस की खाड़ी में है, जिसको "दोरदुर" कहते हैं, यह दो पहाड़ियों के बीच का तंग समुद्री-मार्ग है। सम्भवतः इसी मार्ग से यवन लोग

भारत में हिंगुल लाया करते थे। अतः संस्कृत में "दोरदुर" का शुद्ध नाम "दरद" रखा गया।

कृष्ण वर्ण के हिंगुल को "चर्मार" कहते हैं। पीले रंग वाले को "सुपीतक" और लाल रंगवाले को "हंसपाद" और "शुकतुण्ड" नाम दिये गये हैं। पारदीय खनिजों के वर्णन में नवीन मतानुसार सब खनिजों का वर्णन किया गया है। परन्तु सर्वत्र आधुनिक ग्रन्थों में आजकल मुख्य खनिज में रक्त हिंगुल का ही वर्णन पाया जाता है। और अब चूंकि यह भी दुर्लभ हो गया है इसीलिए खनिज और कृत्रिम का भेद समझना भी कठिन हो गया है। परन्तु कुछ वैद्यों का ध्यान इधर आकर्षित हुआ है और उन्होंने अपनी पुस्तकों में इसका समावेश किया है। यथा—

जपाकुसुमवर्णाभः पेषणे सुमनोहरः।
महोज्ज्वलो भारपूर्णः हिंगुलः श्रेष्ठ उच्यते॥
प्रथमः खनिजोऽन्यस्तु कृत्रिमो हिंगुलोमतः।
खनिजः खनिजाद् जातः कृत्रिमो रसगंधजः॥

—रसतरंगिणी

अनेक प्राप्य रस ग्रन्थों के अनुशीलन से और अर्वाचीन शास्त्रों के अध्ययन से यही पता चलता है कि प्राचीन काल में खनिज हिंगुल ही व्यापार में तथा व्यवहार (प्रयोग) में काम आता था। पारद और उसके खनिज अरब, चीन, जापान आदि देशों के व्यापारी स्थल या जल मार्ग से लाकर यहाँ पर बेचा करते थे। परन्तु म्लेच्छों के आक्रमण काल में बाहरी व्यापार अधिकांश में बन्द हो गया, ऐसी स्थिति में अपने देश (भारतवर्ष) के अन्दर ही रासायनिक ढंग से हिंगुल बनाने का प्रचार हुआ।

स्त्रियाँ हिंगुल (इंगुरसिन्दूर) की बिन्दी लगाकर अपने को सौभाग्यवती समझती हैं तथा यह बिन्दी सौभाग्य का चिह्न भी माना जाता है। आजकल भी इंगुर (हिंगुल) के नाम से यह प्रचारित है। इसे "गिरि सिन्दूर" भी कहते हैं। रसरत्नसमुच्चय में लिखा है—

"महा गिरिषु चाल्पीयः पाषाणान्तः स्थितोरसः।
शुष्कशोणः स निर्दिष्टो गिरि-सिन्दूर संज्ञया॥

परन्तु दुःख है कि आजकल गिरि-सिन्दूर शब्द नाग सिन्दूर (लेडपेराक्साइड) के लिये व्यवहार होने लगा है और जहाँ-जहाँ सिन्दूर का व्यवहार होता है, वहाँ-वहाँ यही नाग सिन्दूर व्यवहार किया जाता है जो भ्रमात्मक मालूम पड़ता है। अतः जहाँ गिरि सिन्दूर का प्रयोग आवे वहाँ खूब विचार कर कोई भी सिन्दूर डालें। 'नागसिन्दूर' बनाने की व्यवस्था—"आयुर्वेद प्रकाश" में निम्न प्रकार है।

भू-भुजंगमगस्ति च पिष्ट्वाहेः पत्रमादिहेत्।
हण्डयामग्नौ द्रवी कृत्य वासापामार्ग संभवम्॥
क्षारं विमिश्रयेत्तत्र चतुर्थांशं गुरूक्तितः।
प्रहरं पाचयेच्चूल्यां वासा दर्व्या विघट्टयन्॥
चूर्णीभूतं पिधायाथ कुर्यादग्निसमं पुनः।
तत उद्धृत्य तच्चूर्णं शुद्धयाशिलयान्वितम्॥
वस्वंशयाथ तत्सर्वं वासानीरैर्विमर्दयेत्।
पुटेत्पुनः समुद्धृत्य तद्द्रवेण विमर्दयेत्॥
पत्रं सप्तपुटैर्नागः सिन्दूराभो भवेद्ध्रुवम्॥

आजकल रक्तवर्ण का "लेडपेराक्साइड" (नाग सिन्दूर) बहुधा वार्निश के काम में आता है। अतः चिकित्सकों को इस विषय में सावधान रहना चाहिये।

कृत्रिम हिंगुल बनाने का प्रचार रसरत्नसमुच्चयादि ग्रन्थों के संग्रह के पीछे हुआ है। क्योंकि उसमें या उसके समकालीन ग्रन्थ में भी इसका निर्माण प्रक्रिया का वर्णन नहीं मिलता। सर पी० सी० राय ने भी ऐसा ही लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि भावमिश्र के बाद यह प्रक्रिया चालू हुई है। भाव प्रकाश में रसकर्पूर बनाने का विधान है। किन्तु हिंगुल निर्माण विधि का कहीं उल्लेख नहीं है। अस्तु, आजकल समस्त देश में प्रायः कृत्रिम हिंगुल का ही व्यवहार हो रहा है।

आजकल बाजार में दो प्रकार के कृत्रिम हिंगुल पाये जाते हैं। एक को "कठा" और दूसरे को "रूमी" कहते हैं। "रूमी" सिंगरफ सूरत (गुजरात) में बनता है। सूरत में इसके बड़े-बड़े कारखाने भी हैं।

दूसरा "कठा" बंगाली कहलाता है। सुना जाता है कि इसका कारखाना मुर्शिदाबाद (बंगाल) में है। किन्तु सबसे अधिक अमेरिका, इङ्गलैंड और जर्मनी आदि पश्चिमीय देशों से आकर यहाँ बिकता है। सूरत के वैद्यों का कहना है कि यहाँ के सिंगरफ व्यापारी विलायती ढङ्ग पर गन्धक के तेजाब से हिंगुल बनाकर बड़ा लाभ उठा रहे हैं। सूरत के प्राचीन वैद्य अपने हित के लिये इसका निर्माण स्वयं करते थे।

भारतीय हिंगुल बनाने की विधि—अशुद्ध पारद १ तोला, गंधक ४ तोला दोनों को लोहे की कढ़ाई में डाल कर थोड़ी देर तक मन्द-मन्द आँच से पकावें, बाद में पारद की अपेक्षा दसमांश मैनशिल का चूर्ण मिलाकर लोहे की करछी से चलाते रहें। स्वांग-शीतल होने पर उतार लें। यह कृष्ण वर्ण का एक ढेला-सा बन जायगा, फिर इसे छोटे-छोटे टुकड़े कर आतसी शीशी में भरकर उस पर एक अंगुल मोटी कपड़मिट्टी कर दें। उसे छाया में सुखा कर रस सिन्दूर की तरह बालुका यन्त्र में एक दिन मन्दाग्नि से पाक करें। बाद में मृदु-मध्यम और तीक्ष्ण अग्नि दें, इस तरह पाँच दिन तक लगातार अग्नि देते रहें। स्वांग शीतल होने पर सावधानी से शीशी तोड़कर निकाल लें। बस सिंगरफ तैयार हो गया। इसको रसायन के काम में लावें। —आयुर्वेद प्रकाश

हिंगुल से पारद निकालना—हिंगुल से पारद निकालने की कई विधियाँ हैं, कोई "विद्याधर यन्त्र" से कोई 'डमरू यन्त्र' से और कोई 'कन्दुक यन्त्र' द्वारा पारद निकालते हैं। डमरू यन्त्र का वर्णन पारद प्रकरण में हो चुका है। यहाँ विद्याधर-यन्त्र द्वारा पारद निकालने का विधान लिखा जाता है।

एक मजबूत हाँड़ी लेकर उसमें हिंगुल का चूरा रखकर दूसरी हाँड़ी को उसके मुख पर ढक कर सन्धि बन्द कर ऊपर वाली हाँड़ी

में जल भर दें। जल उष्ण होने पर बदलते रहें, हिंगुल के तौल के अनुसार ८ से २४ प्रहर तक की आँच देकर स्वाँग-शीतल होने पर उतार लें और धीरे से ऊपर की हाँड़ी को हटाकर उसकी पेंदी में लगे हुये पारद को सावधानी से एकत्रित कर लें।

इन यन्त्रों द्वारा जो पारद निकाला जाता है, उसका रासायनिक ढंग पर विश्लेषण करके देखा गया है, तो पता लगा है कि यह पारद एकदम निर्मल होता है।

पारद निकालने की एक दूसरी प्रक्रिया भी आजकल प्रचलित है, उसे "कन्दुक यन्त्र" कहते हैं, इसका उल्लेख "भैषज्य मणिमाला" और "रसायन सार" नामक ग्रन्थों में आया है। इसका विधान निम्न है।

सिंगरफ को अम्ल रस (जम्बीरी नीबू के रस) की भावना (नीम के हरे पत्तों के रस में भी घोटा जाता है) देकर वस्त्र पर फैला कर कन्दुकाकार (गेंद-जैसा) गोला बनाकर ईंटों पर तवा रख उस पर गोला रख दें और उसे एक नाँद से इस प्रकार ढक दें जिससे वायु थोड़ी-थोड़ी जाती रहे, तथा आँच भी नहीं बन्द हों। फिर दियासलाई से आँच लगा दें। यह आँच कपड़े को धीरे-धीरे जलाती है। जिससे गंधक तो जल जाता है और पारद ऊपर नाँद के अन्दर पेंद में उड़ कर लग जाता है, कुछ तवे पर भी फैला हुआ रहता है। इस प्रकार से पारद निकाल कर विश्लेषण करके देखा गया तो ज्ञात हुआ कि इस पारद में सब तरह की अशुद्धियाँ मौजूद हैं। अतः इस प्रकार का पारद औषधोपयोगी नहीं होता है।

आयुर्वेद में जो पारद संस्कार के लिये ऊर्ध्वपातन, अधःपातन और तीर्य्यक पातन लिखा गया है, वह स्वतन्त्र मिलनेवाले खनिज पारद के लिये है। हिंगुलोत्थ पारद सप्त-कंचुकादि दोष से रहित होता है। इसका व्यवहार निर्भय होकर करना चाहिये। —ख० वि०

शोधन-मारण प्रकरण

धातुओं का शोधन, भस्मनिर्माण और उनका गुणधर्म

आवश्यक सूचना—भस्म बनाने के लिये जब पारा, गन्धक, मंखिया, हरताल, मैनसिल आदि अग्नि पर उड़ने वाली चीजें मिलायी गयी हों, तो सम्पुट की सन्धि को कपरौटी से अच्छी तरह बन्द कर सम्पुट को चारों तरफ से कपड़-मिट्टीकर सुखा करके पुट देना चाहिये। परन्तु यदि पारा, गन्धक आदि नहीं मिलाया गया हो, तो सम्पुट की सन्धि को इस प्रकार खुली रहने दें जिससे उसमें हवा प्रवेश करती रहे। इससे औषध में आँच अच्छी तरह लगती है और भस्म भी अच्छी बन जाती है।

कुछ वैद्य मिट्टी के घड़े-जैसे बड़े बर्त्तन में दवा भरकर गजपुट में डाल देते हैं। इसमें आँच अच्छी तरह नहीं लग पाती और भस्म भी अच्छी नहीं बनती है। अतः पुट देने के लिये मिट्टी के छोटे सिकोरे (सरवा) लेने चाहिये और इसमें टिकिया भरकर ऊपर से दूसरे सिकोरे से ढँककर पुट देना चाहिये, जिससे सब टिकियों में एक-सी आँच लगे। ये सिकोरे भी ऐसे हों जो बीच में ज्यादे गहरे न हों। भस्म के लिये टिकिया (अभ्रकादि का) बिल्कुल गोल और छोटी-छोटी हों, टिकियों को अच्छी तरह सूखने के बाद ही पुट देना चाहिये, यदि टिकियाँ गीली रह जायेंगी तो भस्म का रंग अच्छा नहीं होगा।

अभ्रक, लौह, मण्डूर, माक्षिक, वंग, जस्ता, ताम्र और रत्नों को प्रारम्भ में कुछ मन्द फिर तेज आँच दें। सबसे अन्तिम पुट में मृदु (मुलायम) भस्म बनाने के लिये मृदु ही आँच देनी चाहिए, अन्यथा भस्म कड़ी हो जाती है।

सोना, चाँदी और नाग को प्रारम्भ में थोड़ी ही आँच दें। जैसे-जैसे अग्नि सहन करने योग्य होते जाय वैसे-वैसे आँच भी तेज देते जायँ। भस्म तैयार होने के बाद उनमें किसी भी रस विशेष

(कषाय-अम्लादि) का स्वाद नहीं रहना चाहिये, अर्थात् भस्म बदजायका (स्वाद रहित) तथा जीभ को काटने वाली नहीं होनी चाहिये। जब तक इस तरह की भस्म न बने, तब तक बराबर पुट देते रहें। भस्म तैयार होने के बाद खूब महीन कपड़ा से छान लेना चाहिये।

भस्म बनाते समय उसमें उपयुक्त वनस्पतियों का स्वरस देकर ६-८ घण्टे तक लगातार खूब घोटना चाहिये। घुटाई जितनी अच्छी होगी भस्म भी उतनी ही अच्छी और बारीक बनेगी।

यह भी ध्यान रखने योग्य बात है कि पुट के लिये जहाँ तक हो सके, जंगली कंडों (उपलों) का ही प्रयोग करें, अभाव में हाथ के बनाये हुए कंडे ले सकते हैं। भस्मों में हरताल भस्म बहुत तेज होती है, हरताल भस्म से ताम्र भस्म और ताम्र भस्म से लौह भस्म कम तेज होती है। मुक्ता, शुक्ति और प्रबाल भस्म अन्य भस्मों की अपेक्षा कुछ सौम्य है। इनकी भस्म से पिष्टी में विशेष सौम्य गुण है और वह काम भी अच्छा करती है।

काँच की डाटवाली शीशी में भस्में रखनी चाहिए, ये भस्में जितनी पुरानी होती जायेंगी उतनी ही सौम्यगुणयुक्त तथा विशेष गुणकारी होंगी। इसके अतिरिक्त लकड़ी की डाटवाली शीशी में या टीन के डब्बों में या कागज की पुड़िया में भस्म रखने से बहुत शीघ्र हीन वीर्य हो जाती है। प्राचीन वैद्य भस्म को वसहा (नेपाली) कागज में पुड़िया बनाकर रखते थे। उन लोगों का कहना था कि इस कागज में भस्म निर्वीर्य्य नहीं होता।

आयुर्वेद शास्त्र की आज्ञा है कि भस्में जलतर एवं निरुत्थ ही लेनी चाहिये। वारितर (जल में तैरनेवाली) भस्म अपने विशेष हल्कापन और सूक्ष्मता के कारण रस रक्तादि द्वारा सम्पूर्ण शरीर में शीघ्र फैल जाती है और अपना प्रभाव भी शीघ्र दिखाती है।

कुछ धातु ऐसी भी हैं कि उनमें जितने अधिक पुट देते जायँ उतने ही गुण में वृद्धि होती जायगी। जैसे—लोहा, अभ्रक, ताँबा, सोना, चांदी और शीशा आदि। और कुछ ऐसे भी हैं कि उनमें मात्रा

से ज्यादे पुट लग जाने से उनकी भस्म हीनवीर्य हो जाती हैं, जैसे—रत्न-उपरत्न, प्रवाल, मुक्ता, शुक्ति आदि। अतः शतपुटी अभ्रक भस्म की अपेक्षा सहस्रपुटी अभ्रक भस्म का विशेष महत्त्व दिया जाता है। यही हालत लौहादिकों की भी है।

कपर्द (कौड़ी), शंख और शुक्तिभस्म को भस्म करने के बाद जम्बीरी नीबू के रस की भावना देने से उसकी तीक्ष्णता नष्ट हो जाती है और भस्म भी मुलायम और स्वच्छ बनती है। अन्यथा वह जीभ काट देती है और भस्मों के अन्दर मूल द्रव्य के छोटे-छोटे कण भी रह जाते हैं।

किसी-किसी रसायन शास्त्रियों का मत है कि इनकी भस्म बनाने के बाद में यदि इन भस्मों पर थोड़ा जल का छींटा दे दिया जाय तो यह अच्छी तरह खिल जाती है और एकदम स्वच्छ (सफेद) भस्म बन जाती है। परन्तु इसमें एक त्रुटि रह जाती है कि तीक्ष्णता नहीं जाती। अतः नीबू के रस की भावना देना ठीक है।

अभ्रक

परिचय—यह बहुधा पर्वतों पर पाया जाता है। भारतवर्ष में सफेद, भूरा और काले रंग का अभ्रक मिलता है। बिहार प्रान्त में हजारीबाग और गिरीडीह तथा बंगाल में रानीगंज के आसपास की कोयले की खानों के अन्दर मिलता है। इसकी बड़ी-बड़ी खानें हैं। यह बड़े-बड़े ढोकों (स्थानों) में तह पर तह जमे हुए पहाड़ों पर मिलता है। साफ करके निकालने पर इसकी तह काँच की तरह निकलती है। इसके पत्र पारदर्शक, मृदु और सरलता से पृथक्-पृथक् किये जा सकते हैं। आयुर्वेद में इसकी गणना महारसों में की गयी है। भस्म बनाने के लिए वज्राभ्रक काम में लिया जाता है। वज्राभ्रक में लौह का अंश विशेष होने से इसकी भस्म बहुत गुणदायक होती है।

अभ्रक के भेद—आयुर्वेदीय मतानुसार पिनाक, दर्दुर, नाग और वज्राभ्रक भेद से अभ्रक चार प्रकार का होता है। इनमें

आग में डालने से जिस अभ्रक के पत्ते खिल जायें, उसे "पिनाक" और जो अभ्रक आग में डालने से मेढक के समान (टर्र-टर्र) आवाज करे उसे "दर्दुर" तथा जो अभ्रक आग में डालने से साँप की तरह फुफकार छोड़े उसे "नाग" एवं जो अभ्रक आग पर डालने से अपना रूप नहीं बदले तथा आवाज भी न करे, उसे "वज्र" कहते हैं। वज्राभ्रक का ही विशेषतया उपयोग भस्म और रसायनादि में किया जाता है। वज्राभ्रक का धान्याभ्रक बनाकर भस्मादि कामों में लिया जाता है।

(धान्याभ्रक बनाने का विधान इसी पुस्तक में "रासायनिक परिभाषा प्रकरण" में पृष्ठ ३४ पर देखें।)

वज्राभ्रक के लक्षण

यदञ्जन-निभं क्षिप्तं न बह्नौ विकृतिं व्रजेत्।
वज्रसंज्ञं हि तद्योग्यमभ्रं सर्वत्र नेतरत्॥

—र० चि०

जो अभ्रक अंजन के समान काला हो और आग पर रखने से किसी तरह विकृत न हो, वही "वज्राभ्रक" है। यह सर्वत्र हितकारक है। भस्मादिक काम में यही अभ्रक लेना उत्तम है।

अंजन समान कृष्णाभ्रक (वज्राभ्रक) वही होता है, जिसमें लौहांश अधिक हो। अच्छा कृष्णाभ्रक हिमालय तथा पंजाब में काँगड़ा जिले के नूरपुर तहसील की खानों में मिलता है और यू० पी० में अल्मोड़ा के आगे वाघेश्वर में भी कहीं-कहीं मिलता है। कभी-कभी भूटान से भी यह अभ्रक आता है।

यह भूगर्भ में शिरा जाल की तरह मीलों तक पृथ्वी की गहराई में बिछी हुई रहती है। अतः प्रारम्भिक भाग को खोदकर निकाल लेने के बाद सूक्ष्म पत्रवाला अंजन के समान कृष्णवर्ण का जो अभ्रक का ढेला मिले वही ग्रहण करना उत्तम है।

इस अभ्रक में जो लौह का अंश होता है वह विद्युत् या उल्कापात से निकले हुए लौह की जाति का है। इसलिये विद्युत् लौह

सदृश लौह के सम्पर्क से ही वज्राभ्रक नामकरण किया गया है।

अच्छी अभ्रक की पहचान—जो अभ्रक छूने में चिकनी और देखने में चमकदार हो तथा जिसके पत्र मोटे हों और वे सहज ही खुल जाते हों एवं जो तौल में भारी हो, वह अभ्रक सबसे अच्छी होती है।

अभ्रक शोधन विधि—काले रंग का पत्थर रहित और वजनदार अभ्रक लाकर उसको अग्नि में तपा-तपा कर खूब लाल होने पर, गोमूत्र, त्रिफला क्वाथ तथा गाय के दूध में सात-सात बार बुझावें। पीछे जल से धो, सुखा इमामदस्ते में कूटकर कपड़छान चूर्ण कर लें।

—सि० यो० सं०

दूसरी विधि—अभ्रक को तपा-तपाकर सात बार सम्भालू (निर्गुण्डी) के रस में बुझावें, तो अभ्रक शुद्ध हो जाता है।

तीसरी विधि—अभ्रक को तपा-तपाकर सात बार बेर के काढ़े में बुझावें, फिर सुखाकर हाथों से मर्दन कर रख लें, तो यह धान्याभ्रक से भी अच्छा होता है।

अभ्रक निश्चन्द्रीकरण—अभ्रक भस्म वही अच्छी और विशेष गुणकारी होती है, जिसमें चमक नहीं होती। इस चमक को दूर करने के लिये वैद्य लोग अनेक प्रक्रिया से अनेक पुट देते हैं, किन्तु चमक दूर नहीं होती। भस्म में चमक रहने से रोगी की आँतें कटने लगती हैं, खून आने लगता है, गर्मी अत्यधिक बढ़ जाती है तथा अन्यान्य उपद्रव होने लगते हैं। अतः रोगी और वैद्य इस चमक के मारे परेशान हो जाते हैं। इस चमक को दूर करने के लिये एक ऐसी सरल युक्ति बतलायी जाती है जिससे एक से दो पुट में ही अभ्रक निश्चन्द्र हो जायगा।

विधि—पुराना गुड़ ऽ१, सोरा कलमी ऽ१, दोनों को थोड़ा पानी डालकर एक जगह मिलाकर घोल लें, फिर उसमें ऽ२ सेर शुद्ध अभ्रक मिलाकर हाँड़ी में भर दें, ऊपर से हाँड़ी का मुख एक ढक्कन से ढककर सर्वार्थकरी भट्ठी (इस भट्ठी का विवरण इसी पुस्तक में पृष्ठ ४५ पर देखें) की लोह जाली पर अथवा काढ़ा बनाने वाली भट्ठी

की लौह जाली पर (कोई २ गजपुट में ही रख देते हैं) अन्दाज से करीब १० सेर के लगभग पत्थर का कोयला रख दें, नीचे लकड़ी लगाकर कोयला सुलगा लें और इसी कोयले पर अभ्रक की हाँड़ी रख दें। (एक बार में एक ही हाँड़ी रखें)। आँच पर रखने से आँच की तेजी के कारण हँड़िया में से सोरा आवाज के साथ निकलता जायगा, इसमें डरने की कोई बात नहीं है। कभी-कभी सोरा नहीं भी उड़ता है।

इस विधान से एक-दो पुट में ही अभ्रक निश्चन्द्र हो जाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि यदि हाँड़ी पतली पेंद की रही, तो सोरा बहुत जल्द निकल जाता है जिससे ऊपरी भाग का अभ्रक निश्चन्द्र नहीं होता, तो उस अभ्रक को अलग निकालकर पुनः उक्त विधान से निश्चन्द्र करना चाहिये।

इस अभ्रक में सोरा का भाग कुछ न कुछ रह ही जाता है, अतएव इसको कूटकर एक दिन-रात जल में भिगोकर छोड़ दें, बाद में हाथ से खूब मल दें, जब जल स्थिर हो जाय और अभ्रक भी नीचे पात्र में बैठ जाय, तब धीरे-धीरे सावधानी के साथ पानी बहा दें। अभ्रक न बह जाय इस पर खूब ध्यान रखें, फिर पानी भरकर छोड़ दें, इस तरह जब तक इसमें से खारापन न निकल जाये, तब तक बराबर पानी डाल-डालकर धोते रहें।

—र० सा० सा०

अभ्रक मारण—उपरोक्त विधि से निश्चन्द्र किया हुआ अभ्रक को आक (मदार) के पत्तों के रस में घोटकर टिकिया बना लें, जब टिकिया खूब सूख जाय, तब गजपुट में सम्पुट को रखकर फूंक दें, ऐसे तीन पुट देने से लाल वर्ण की भस्म बनेगी। इसे सब रोगों में प्रयुक्त करें। —र० सा० सं०

दूसरी विधि—धान्याभ्रक को २४ घण्टे आक के दूध में खूब घोटकर गोल-गोल छोटी-छोटी टिकिया बना आक के पत्तों में लपेट शराब सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूंक दें। स्वांग शीतल होने पर निकाल कर फिर आक के दूध में उसी प्रकार घोटकर पुट दें।

ऐसे ७ पुट आक के दूध के साथ और तीन पुट बड़ की जटा के क्वाथ के साथ देने से १० पुट में ही अभ्रक की उत्तम भस्म बन जाती है।

—र० सा० सं०

तीसरी विधि—धान्याभ्रक के चूर्ण को प्याज के रस में पीस टिकिया बना सुखा लें, फिर इसे सराब सम्पुट में बन्दकर गजपुट में फूंक दें, इस प्रकार २१ पुट प्याज के रस में, ७ पुट गिलोय के रस में और ७ पुट आक के दूध में और ७ बार अडूसे के स्वरस में मर्दनकर पुट देने से अभ्रक की उत्तम भस्म बनती है। —सि० यो० सं०

नोट—अभ्रक भस्म एक साथ ४० से ६० तोले तक बनावें तो बहुत अच्छी भस्म बनती है।

अभ्रक भस्म ६० पुटी—शुद्ध अभ्रक को नागरमोथा के रस में खरलकर टिकिया बनाकर के सुखा लें, खूब सूख जाने पर टिकिया को शराब सम्पुट में बन्दकर गजपुट में फूंक दें। इस प्रकार नागर मोथा के रस में ३० पुट दें। फिर अभ्रक का जितना तौल हो, उसका १६ वां भाग सोरा मिलाकर ३० पुट चौलाई के रस का देकर सम्पुट में फूंक दें। इस प्रकार ६० पुट देने से अभ्रक की सिन्दूर के समान लाल भस्म हो जाती है। यह भस्म कुष्ठ और क्षयादिक रोगों को नष्ट करती है।

—चि० चं०

अभ्रक भस्म शतपुटी—धान्याभ्रक को कसौंदी के पत्तों के रस में बारह घण्टे खरल कर टिकिया बना, धूप में सुखा लें। सूखने पर सराब सम्पुट में रखकर गजपुट में फूंक दें। यह एक पुट हुई, इसी प्रकार ९९ पुट कसौंदी के पत्तों के रस में घोटकर गजपुट देते जाएँ, इस प्रकार १०० पुट होते ही निश्चन्द्र अभ्रक भस्म तैयार हो जायगी। —चि० चं०

अभ्रक भस्म सहस्र पुटी—निश्चन्द्र धान्याभ्रक को लेकर निम्न-लिखित वनस्पतियों में से जैसे-जैसे जो-जो दवाइयाँ मिलती जायें, प्रत्येक की १६-१६ भावना दें, यह ध्यान रखें कि प्रति भावना के बाद टिकिया बनाकर खूब सुखा लें, तब सराब-सम्पुट में बन्द करके

गजपुट में फूंके। रेचक, तीक्ष्ण तथा लेखन औषधियों की भावना लिखित मात्रा से ज्यादे न दें। भावना द्रव्य निम्न हैं—

थूहर का दूध, वट का दुग्ध या जटा का क्वाथ, आक का दूध या पत्र का स्वरस, घीकुमारी (ग्वारपाठा) का रस, अण्डी की जड़ का क्वाथ, कुटकी का क्वाथ, नागरमोथा का क्वाथ, गिलोय (गुर्च) का क्वाथ, भाँग का रस, गोखरू का क्वाथ, कटेरी का क्वाथ, शालिपर्णी का क्वाथ, पृश्निपर्णी का क्वाथ, ग्रन्थिपर्ण, सरसों का स्वरस, चिरचिटा (अपामार्ग) का क्वाथ, बड़ के अंकुर, बकरी का रक्त, बेलछाल का क्वाथ, अरणी का क्वाथ, चित्रक का क्वाथ, तेंदू का क्वाथ, हरड़ का क्वाथ, पाढल की जड़ का क्वाथ, गोमूत्र, आँवले का क्वाथ, बहेड़े का क्वाथ, जलकुम्भी का स्वरस, तालीसपत्र का क्वाथ, मूसली का क्वाथ, अडूसा (वाकस) का क्वाथ या रस, असगन्ध का क्वाथ, अगस्ति का रस, भांगरा, केले का रस, अदरक का रस, सप्तपर्ण (सतौना) का क्वाथ, धतूरे का रस, लोध का क्वाथ, देवदारु का क्वाथ, तुलसी का रस या क्वाथ, सफेद और हरी दूब का रस या क्वाथ, कसौंदी का रस या क्वाथ, मरीच का क्वाथ, अनार की छाल का रस, काकमाची (मकोय) का रस, शङ्खपुष्पी का क्वाथ, तगर का क्वाथ, पान का रस, पुनर्नवा का क्वाथ, मण्डूकपर्णी (ब्राह्मी) का क्वाथ, इन्द्रायण का क्वाथ, भारङ्गी का क्वाथ, देवदाली (बन्दाल) का क्वाथ, कैथ का क्वाथ, शिवलिंगी, कड़वा पटोल, पलाश (ढाक) तुरई का क्वाथ, मूषाकर्णी का क्वाथ, अनन्तमूल का क्वाथ, मछेछी का क्वाथ, कलौंजी का क्वाथ, तैलपर्णी (कोई-कोई इसे ओषधि विशेष कहते हैं) का क्वाथ, दन्ती और हरी शतावरी इन सबका रस या क्वाथ लें। —र० रा० सु०

यह सहस्रपुटी अभ्रक अनुपान भेद से अनेक रोगों का नाशक और शरीर में अतुल बल-वीर्य पैदा करने वाली है।

नोट—कभी-कभी अभ्रक भस्म खूब लाल नहीं होती है। ऐसी अवस्था में निम्नलिखित द्रव्यों के स्वरस की भावना देने से भस्म लाल हो जाती है, जैसे—नागबला, नागरमोथा, बट के दूध अथवा बट-जटा का स्वरस, हल्दी या मजीठ का पानी।

भस्मों के विषय में—धातुओं की भस्में अनेक विधियों द्वारा बनाकर उचित अनुपान भेद से अनेक रोगों में प्रयोग किया जाता है और लाभ भी होता है। ऐसी अवस्था में यह शंका या प्रश्न उठाना कि अनुपान (जिसके साथ ऐसी भस्में प्रयोग की जाती हैं और उन) से जो लाभ होता है, वह उसी अनुपान का प्रभाव है, भस्म तो नाम का ही प्रभावकारी मानी जाती है, यह अज्ञानता है।

क्योंकि अनुभव इस बात को बताता है, कि जब भस्म साथ में न हो तब, केवल अनुपान की इतनी थोड़ी मात्रा देने से शरीर पर कोई असर नहीं पड़ता। यह तो भस्म में ही ताकत है कि इतनी थोड़ी मात्रा में ही सम्पूर्ण शरीर पर अपना प्रभाव कर देती है। किसी भी धातु—उपधातु की भस्म हो, उसमें ऐसी रासायनिक शक्ति विद्यमान रहती है, कि मुख में डालते ही सम्पूर्ण शरीर की नसों में व्याप्त हो जाती है और अपने स्वाभाविक एवं मौलिक गुण-धर्म के अतिरिक्त जो उसके अन्दर गुण है, प्रत्येक उस औषध के प्रभाव को जिसमें वह भस्म किया गया है, या जो अनुपान रूप से प्रयोग किया जा रहा है सम्पूर्ण शरीर में, विशेष कर रोग-स्थान पर अत्यन्त शीघ्रता पूर्वक पहुँचा देता है।

जो दवा सेरों खाने से तब कहीं अपना प्रभाव शरीर में प्रकट करती है वह १-२ माशे की मात्रा में भस्म के संग मिला कर देने से तत्काल ही सेर भर औषध के प्रभाव से भी अधिक प्रभाव प्रगट करती है। यद्यपि यह प्रभाव भावित (भावना दी हुई) औषधियों का ही क्यों न हो, किन्तु औषध की इतनी थोड़ी मात्रा और प्रभाव को उस तात्कालिक शक्ति को देख कर बरबस यही कहना पड़ेगा कि यह औषध का ही प्रभाव है। इससे ज्ञात होता है कि यह चमत्कार भस्म के ही हैं, जो उक्त औषध के साथ सम्मिलित होकर उसके प्रभाव को सौ गुना बढ़ा देती है।

अतः अभ्रक भस्म को ही क्यों, सभी भस्मों को उचित अनुपान के साथ व्यवहार करने पर पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है तथा मिलती भी जा रही है। अतः निर्भय होकर भस्मों का प्रयोग किया जा सकता है।

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती प्रातः सायं अथवा रोगानुसार शहद के साथ।

रोगानुसार अनुपान

प्रमेह के लिये—अभ्रक भस्म को पीपल और हल्दी के चूर्ण में मिला शहद (मधु) के साथ दें।

क्षय के लिये—सोना भस्म १/४ रत्ती (अथवा वर्क), सितोपलादि चूर्ण या च्यवन-प्राशावलेह में मिला न्यूनाधिक मात्रा में घी और शहद के साथ दें।

धातु बढ़ाने के लिये—सोना और चाँदी की भस्म १/४ रत्ती या वर्क, छोटी इलायची के चूर्ण और शहद (मधु) या मक्खन के साथ दें।

रक्तपित्त के लिये—अभ्रक भस्म को गुड़ या शक्कर और हरड़ का चूर्ण मिला कर या इलायची का चूर्ण और चीनी मिलाकर दुर्वा-स्वरस के साथ दें।

बवासीर (अर्श) पाण्डु और क्षय के लिये—दालचीनी, इलायची, नाग केशर, तेजपात, सोंठ, पीपर, मिर्च, आँवला, हरड़, बहेड़े का महीन चूर्ण, चीनी या मिश्री मिलाकर शहद के साथ दें।

पैत्तिक प्रमेह के लिये—गुर्च सत्त्व और मिश्री मिलाकर शहद के साथ दें।

मूत्रकृच्छ्र के लिये—इलायची, गोखुरू, भूमि-आँवले का चूर्ण, मिश्री मिलाकर दूध के साथ दें।

जीर्ण ज्वर और भ्रम के लिये—पिपरामूल का चूर्ण मिलाकर शहद के साथ दें।

नेत्र की ज्योति बढ़ाने के लिये—त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला) के चूर्ण और शहद के साथ दें।

व्रण नाशन के लिये—मूर्वा के चूर्ण मिला कर शहद के साथ दें।

बल वृद्धि के लिये—विदारी-कन्द के चूर्ण मिला कर गाय के धारोष्ण दूध के साथ दें।

वादी अर्श के लिये—शु० भिलावे का चूर्ण या निशोथ का चूर्ण मिला कर गर्म जल के साथ दें।

वातव्याधि के लिये—सोंठ, पुष्करमूल, भारंगी और असगंध का चूर्ण मिला कर शहद (मधु) के साथ दें।

पित्त प्रकोप में—दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर का चूर्ण और चीनी (मिश्री) के साथ दें।

कफ प्रकोप में—कायफल और पिप्पली के चूर्ण में शहद के साथ दें।

अग्नि प्रदीप्ति के लिये—यवक्षार, सुहागे की खील (फूला) सज्जी खार के चूर्ण में मिलाकर गर्म जल के साथ दें।

मूत्राघात और पथरी के लिये—मूत्रकृच्छ्र का ही अनुपान ठीक है।

वीर्य स्तम्भन के लिये—भाँग के चूर्ण के साथ दें।

धातु क्षीणता के लिये—लौंग का चूर्ण और शहद (मधु) के साथ दें।

शारीरिक उत्ताप (दाह) के लिये—चीनी, मिश्री और गाय के दूध के साथ दें।

पाण्डु, संग्रहणी और कुष्ठ के लिये—वायविडंग, त्रिकुटा और घी के साथ २-४ रत्ती की मात्रा में अभ्रक भस्म सेवन करें।

मिश्र अनुपान—अभ्रक भस्म अकेली तथा पूर्वोक्तानुपान के साथ जैसे दी जाती है, वैसे ही भस्मों के मिश्रण के साथ देने से अपूर्व लाभ करती है। जैसे—

प्रसूत और कफ क्षय में—अभ्रक भस्म ४ रत्ती, सुवर्ण वर्क १ रत्ती, दोनों की ६ पुड़िया बना, प्रातः-सायं दाड़िमावलेह में मिलाकर देने से लाभ होता है।

कफक्षय, कामला और जीर्ण ज्वर तथा संग्रहणी पर—अभ्रक भस्म ३ रत्ती, कान्तलोह भस्म ३ रत्ती और सोने का वर्क १ रत्ती, इनकी ६ पुड़िया बना, प्रातः-सायं १-१ पुड़िया दाड़िमावलेह के साथ सेवन करावें।

धातुक्षय और मधुमेह के लिये—१ रत्ती अभ्रक, १ रत्ती कान्त लोह भस्म, २ रत्ती शिलाजीत इनकी गोली बना, प्रातः सायं दूध के साथ सेवन करें।

सन्निपात, पाण्डु आदि पर अभ्रक भस्म १ रत्ती, मौक्तिक भस्म १ रत्ती और ४ रत्ती गोरोचन मिला इन सबकी ६ पुड़िया बनाना और ६ माशे दाड़िमावलेह के साथ एक-एक पुड़िया प्रातः दोपहर और शाम को देना। इससे ज्वर, दाह, खाँसी, दमा, नकसीर (नाक से खून गिरना) और अति कमजोरी पर इसका उत्तम प्रभाव पड़ता है तथा क्षय, प्रसूतरोग, सन्निपात, पाण्डु, रक्त-पित्त और पित्तजकास आदि में यह मिश्रण बहुत काम करता है। इसके अतिरिक्त आँव एवं खूनी बवासीर में भी काम करता है।

गुण और उपयोग—अभ्रक भस्म अनेक रोगों को नष्ट करती है, देह को दृढ़ करती, वीर्य बढ़ाती, तरुणावस्था प्राप्त कराती और शत स्त्री (सौ स्त्रियों के साथ) सम्भोग(मैथुन) करने की शक्ति प्रदान करती है। राज यक्ष्मा, कफक्षय, बढ़ी हुई खाँसी, उरः-क्षत, कफ, दमा, धातु क्षय, विशेष कर मधुमेह, बहुमूत्र, बीसों प्रकार के प्रमेह, सोम रोग, शरीर का दुबलापन, प्रसूत रोग और अति कमजोरी, सूखी खाँसी, काली खाँसी, पाण्डु, दाह, नकसीर, जीर्ण ज्वर, संग्रहणी, शूल, गुल्म, आँव, अरुचि, अग्निमांद्य, अम्लपित्त, रक्तपित्त, कामला, खूनी अर्श (बवासीर), हृद्रोग, उन्माद, मृगी, मूत्रकृच्छ्, पथरी तथा नेत्र रोगों में यह भस्म लाभदायक सिद्ध हुई है। यह रसायन और बाजीकरण भी है।

त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) में जो दोष विशेष—उल्वण अर्थात् बढ़े हुए हों, उन्हें शमन करने के लिये उचित अनुपान के साथ अभ्रक भस्म का सेवन करना चाहिये। प्रमेह रोग में शिलाजीत के साथ और कुष्ठ तथा रक्त-विकार में अभ्रक भस्म १ रत्ती, बावंची चूर्ण ४ रत्ती, खदिरारिष्ट के साथ दें। उदर रोगों में—कुमार्य्यासव के साथ इसका सेवन करना अत्यन्त लाभदायक है।

राजयक्ष्मा की आभास अर्थात् क्षय रोग की प्रारम्भिक अवस्था में जब रोगी कास और ज्वर से दुर्बल हो गया हो, उस अवस्था में प्रवाल-पिष्टी, मृगश्रृंग भस्म और गिलोय सत्त्व के साथ अभ्रक भस्म का नियमित सेवन ८० प्रतिशत फलप्रद हुआ है। रक्ताणुओं की कमी से उत्पन्न पाण्डु और कामला पर अभ्रक भस्म को मण्डूर भस्म और अमृतारिष्ट के साथ देने से बहुत लाभ होता है। आजकल डॉक्टर लोग शरीर में रक्त की कमी की पूर्त्ति दूसरों के रक्त का इंजेक्शन देकर करते हैं, परन्तु आयुर्वेद में गुडूची सत्त्व के साथ अभ्रक भस्म सेवन कराने से यह काम पूरा हो जाता है।

संग्रहणी में अभ्रक भस्म का सेवन कुटजावलेह के साथ करने से यह आँव रोग को समूल नष्ट कर शरीर को नीरोग बना देती है। वातजन्य शूल में अभ्रक भस्म का सेवन शङ्खभस्म में मिला कर अजवायन अर्क के साथ करना परमोपयोगी है।

श्वास-रोग—पुराना हो जाने पर रोगी बहुत कमजोर हो जाता है और बहुत खाँसने पर चिकना-सफेद कफ थोड़ा-सा निकलता है तथा थोड़ा भी परिश्रम करने से पसीना आ जाता है। ऐसी अवस्था में अभ्रक भस्म का सेवन पिप्पली चूर्ण के साथ मधु मिलाकर करना बहुत लाभदायक है। अथवा १ तोला च्यवनप्राश चौथाई रत्ती स्वर्ण वर्क के साथ सेवन कराने से भी लाभ होता है।

सामान्य कास रोग में अधिक कफस्राव होने पर श्रृंगभस्म या वासावलेह के साथ तथा शुष्क कास रोग में प्रवाल पिष्टी, सितोपलादि चूर्ण तथा मक्खन या मधु के साथ इस भस्म का सेवन कराने से फायदा होता है।

आँव (पेचिस) में कुटजारिष्ट के साथ, मन्दाग्नि में त्रिकटु (सोंठ, पीपल, मिर्च) चूर्ण के साथ तथा जीर्णज्वर में लघुवसन्त-मालिनी के साथ अभ्रक भस्म रामबाण की तरह काम करती है।

रक्तार्श (खूनी बवासीर) पुराना हो जाने पर बारम्बार रक्तस्राव होने लगता है। शरीर में थोड़ा भी रक्त उत्पन्न होने से रक्तस्राव होने लगता है। ऐसी अवस्था में अभ्रक भस्म, शुक्ति पिष्टी के साथ देने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

मानसिक दुर्बलता होने पर कार्य करने का उत्साह नष्ट हो जाता है। चित्त में अत्यधिक चंचलता रहती है। रोगी निस्तेज, चिन्ताग्रस्त और क्रोधी हो जाता है, ऐसी अवस्था में अभ्रक भस्म का सेवन मुक्ता-पिष्टी के साथ कराना अधिक लाभप्रद है।

मन्दाग्नि हो जाने से खाया हुआ अन्न ठीक तरह से नहीं पचता जिससे शरीर में बल की वृद्धि नहीं होती है। परिणाम यह होता है कि अपस्मार, उन्माद, स्मृतिनाश, अनिद्रा, चित्त चांचल्य, हिस्टीरिया आदि अनेक मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी दशा में अभ्रक-भस्म के सेवन से थोड़े ही दिनों में बल की वृद्धि होकर शरीर पुष्ट हो जाता है। ब्राह्मी चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म का सेवन करना मानसिक रोग में लाभदायक है।

हृदय की दुर्बलता को नष्ट करने के लिये अभ्रक भस्म बहुत उपयोगी है। नागार्जुनाभ्र जो हृदय पुष्टि के लिये ही प्रसिद्ध है, यह केवल अभ्रक भस्म का ही प्रभाव है। अभ्रक भस्म हृदय को उत्तेजना देनेवाली है, किन्तु यह कर्पूर और कुचिला के समान हृदय को विशेष उत्तेजित नहीं करती। यह हृदय के स्नायुमण्डल को सबल बनाकर हृदय में स्फूर्ति पैदा करती है। अभ्रक भस्म १-२ रत्ती मधु में मिला कर सेवन करने से हृदयरोग में लाभ होता है।

पुरानी खाँसी, श्वास, दमा आदि रोगों में रोगी खाँसते-खाँसते या दमा के मारे परेशान हो जाता हो, श्वासनली या कण्ठ में क्षत (घाव) हो गया हो, ज्यादे खाँसने पर जरा-सा सफेद चिकना कफ निकल पड़ता हो। रोगी पसीना से तर हो जाता हो। उपरोक्त कारणों से दुर्बलता विशेष बढ़ गयी हो, तो अभ्रक भस्म, पिप्पली चूर्ण और मिश्री की चासनी के साथ मिलाकर लेने से अच्छा लाभ करती है।

चिरस्थायी (बहुत दिनों का) अम्लपित्त रोग में अनेकों दवा करके थक गये हों, अनेकों डाक्टर या वैद्य, हकीम असाध्य कहकर छोड़ दिये हों, पेट में दर्द बना रहता हो, हर वक्त वमन करने की इच्छा होती हो, कुछ खाते ही वमन हो जाय, वमन के साथ रक्त भी निकलता

हो, तो ऐसी अवस्था में अभ्रक भस्म को अम्लपित्तान्तक लौह और शहद के साथ मिलाकर देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है ।

प्रसूत रोग में देवद्राव्यादि क्वाथ अथवा दशमूल क्वाथ या दशमूलारिष्ट के साथ अभ्रक भस्म का सेवन लाभप्रद है। धातु क्षीणता की बीमारी में च्यवनप्राश और प्रवाल पिष्टी के साथ सेवन करना उत्तम है ।

अभ्रक भस्म योगवाही है । अत: यह अपने साथ मिले हुए द्रव्यों के गुणों को बढ़ाती है। पाचन विकार को नष्टकर आँत को सशक्त बनाने और रुचि उत्पन्न करने के लिये अभ्रक भस्म का मिश्रण देना अत्युत्तम है ।

संग्रहणी में अभ्रपर्पटी उत्तम कार्य करती है। मलावरोध तथा संचित मल के विकारों के लिये भी अभ्रपर्पटी का प्रयोग महोपकारी है ।

पाचक और रंजक पित्त की कमी होने पर यकृत् विकार को दूर करने के लिये मण्डूर भस्म के साथ अभ्रक भस्म देनी चाहिये । इसी प्रकार अरुचि, अम्लपित्त और पित्त की प्रबलता में कपर्द और प्रवाल-पिष्टी के साथ प्रयोग करने से अच्छा लाभ होता है ।

जिस स्त्री के बच्चे कमजोर पैदा होते हों, उस स्त्री को अभ्रक भस्म सितोपलादि चूर्ण में मिलाकर कुछ रोज तक सेवन करावें तो गर्भस्थ बालक बलवान और पुष्ट होकर पैदा होगा ।

अभ्रक भस्म रसायन और वृष्य होने के कारण इसका प्रभाव रस-रक्तादि धातुओं पर बहुत ज्यादा पड़ता है ।

शरीर में रक्ताणुओं की कमी हो जाने के कारण शरीर पीला हो जाता है। यह रोग अक्सर कच्ची उमर में जिस स्त्री को बच्चा पैदा होता है, उसे होता है । इसके साथ-साथ ज्वर, शरीर में आलस्य, कमजोरी , मन्दाग्नि आदि उपद्रव भी होते हैं, ऐसी दशा में अभ्रक भस्म कान्तलौह भस्म के साथ दें और ऊपर से दशमूल क्वाथ का अनुपान देने से बहुत लाभ होता है ।

—औ० गु० ध० शा०

अकीक

परिचय—यह एक प्रकार का खनिज पत्थर है। श्वेत, रक्त, नील तथा पीत भेद से यह चार प्रकार का होता है। इनमें श्वेत वर्ण वाला श्रेष्ठ होता है। हकीम (यूनानी चिकित्सक) के मत से लाल वर्ण वाला सर्वोत्तम होता है। यह बम्बई, बाँदा और खम्भात से आता है। इसकी कई किस्में यवन और बगदाद से भी आती हैं।

शोधन विधि—अकीक पत्थर को लेकर आग में तपा-तपाकर गुलाब जल में २१ बार बुझा दें तो यह पत्थर खिल जाता और मुलायम भी हो जाता है। —आ० प्र०

भस्म विधि—उपरोक्त रीति से शुद्ध किया हुआ अकीक का महीन चूर्ण करके अर्क गुलाब या घी कुमारी (ग्वार पाठा) के रस में खरल कर टिकिया बनालें, सूख जाने पर सराब-सम्पुट में बन्दकर गजपुट में फूंक देने से भस्म हो जाती है। फिर इस भस्म को गाय के दूध में घोट कर टिकिया बना सुखाकर गजपुट में फूंक दें, दूध में टिकिया बाँधने के बाद गजपुट में देने से भस्म फूलती है, अतः सम्पुट में थोड़ी-जगह खाली रहे, उतनी टिकिया रखें। इससे भस्म बहुत मुलायम हो जाती है।

—आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान—१ से ३ रत्ती, प्रातः, सायं, मधु (शहद), मक्खन या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—सब प्रकार की हृदय दुर्बलता, उष्णता, नेत्ररोग, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, मस्तिष्क विकार आदि में लाभकारी है। पैत्तिक विकारों के लिये इसका उपयोग करना उत्तम है।

इसकी भस्म हृदय एवं मस्तिष्क को बल देनेवाली तथा वात-पित्त नाशक है। इसके सेवन से बढ़ी हुई तिल्ली एवं यकृत् विकार आराम होते हैं। यह वात रोगजन्य—उन्माद, मूर्छा, पुराना और शुष्क कास, सब प्रकार के रक्तस्राव, रक्त प्रदर, पुराना सूजाक, व्रण (घाव), अश्मरी (पथरी) को नष्ट करने में अक्सीर है। इसे नेत्रों में

लगाने से नेत्र की ज्योति बढ़ती है। इसके सेवन से वीर्य गाढ़ा होता है और शरीर में कामोत्पादक शक्ति बढ़ती है। भिन्न-भिन्न अनुपानों द्वारा यह अनेक रोगों को नष्ट करती है। इसका सर्वसाधारण अनुपान मधु है। वात तथा प्लीहा-विकारों के लिये इसका खास प्रयोग होता है। थूक के साथ यदि खून आता हो, तो उसे बन्द करने के लिये इसका व्यवहार लाभदायक है।

अकीक पिष्टी—शु० अकीक को इमामदस्ते में महीन कूट-कपड़छान कर १०-१२ दिन लगातार गुलाब जल में घोटें, फिर इसे महीन कपड़े में छान सुखा करके सुरक्षित रख लें। यह भस्म से सौम्य होता है।

—आरो० प्र०

गुण और उपयोग—रक्तपित्त, शारीरिक उत्ताप तथा ज्वर की गर्मी, हृदय की दुर्बलता आदि में लाभदायक है। शेष गुण उपरोक्त भस्म ही के समान हैं।

कौड़ी

परिचय—कौड़ियाँ सारे भारत में मिलती हैं। इनकी सफेद, लाल और पीली भेद से तीन जातियाँ होती हैं। आयुर्वेद में लिखा है, कि जो कौड़ी कुछ पीत वर्ण युक्त और पीठ पर गाँठ तथा कुछ लम्बी और कुछ गोल आकारवाली हो, उसे "वराटिका" कहते हैं। ६ माशे की वजनवाली कौड़ी श्रेष्ठ होती है। ऐसी ही कौड़ी भस्म के लिये लें।

शोधन विधि—कौड़ी को काँजी में एक प्रहर तक दोलायन्त्र द्वारा स्वेदन करने से शुद्ध हो जाती है।

—र० र० स०

दूसरी विधि—जम्बीरी नीबू के रस और पानी समान भाग मिला कर उसमें कौड़ी को डुबो एक घंटातक आँच पर गर्म करें, फिर स्वाँग शीतल होने पर छान कर सब कौड़ी निकाल लें, इस तरह भी शुद्ध हो जाती है।

भस्म विधि—एक हाथ भर लम्बा, चौड़ा और उतना ही गहरा गढ़ा खोद लें। गढ़े को अन्दर से खूब झाड़-बुहारकर साफ कर

लें। इस गढ़े में एक लोहे का तवा नीचे रख दें। उस पर कौड़ी को अच्छी तरह बिछा दें। ऊपर से एक टीन की चद्दर ढक दें, जिससे कंडों की राख न मिल जाय, इस टीन की चद्दर के ऊपर जंगली कंडा अच्छी तरह बिछा दें, फिर आँच लगा दें। ८ घण्टे के बाद स्वाँग शीतल होने पर धीरे-धीरे ऊपर की राख हटा दें। नीचे कौड़ी जलकर सफेद (खील) हो जायगी, इसे नीबू के रस में घोटकर छोटी-छोटी टिकिया बना सुखा लें और सराब सम्पुट में बन्दकर गजपुट में फूंक दें। एक ही पुट में बिल्कुल मुलायम भस्म बन जायगी। यदि कुछ कसर रह जाय तो दुबारा पुनः पुट दें।

दूसरी विधि—दो मिट्टी के तवों के बीच में शुद्ध कौड़ी रखकर १० सेर कण्डों या लकड़ी के कोयलों की आँच में फूंक दें, स्वांग शीतल होने पर निकाल कर पत्थर के खरल में २-३ बार नीबू के रस की भावना दे सुखा कपड़छानकर शीशी में भर लें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—२ से ४ रत्ती नीबू के रस या पान के रस या घृत आधा तोला और शहद आधा तोला मिलाकर प्रातः-सायं दें।

गुण तथा उपयोग—यह भस्म परिणाम शूल, अन्नद्रवशूल-संग्रहणी, अम्लपित्त, रस क्षय, अफरा, प्यास, गुल्म, उदर वात, मन्दाग्नि आदि रोगों में लाभदायक है। इस भस्म में पित्त की अम्लता को कम करने का खास गुण है। यह शंख और शुक्ति की अपेक्षा पेट में स्वादुता उत्पन्न करती है। अतः कोष्ठगत वायु द्वारा आफरा या उदर-शूल तथा भोजन अच्छी तरह से परिपक्व न होने से बराबर खट्टी डकारों के आने पर पित्तज अजीर्णादि में कपर्दक भस्म अच्छा गुण करती है। यह वातहर शूलघ्न तथा पाचक भी है।

अजीर्णादि लक्षणयुक्त रोग हों, तो मधु के साथ दें। परिणाम-शूल में यदि वमन हो और आफरा भी हो, तो दाड़िम स्वरस या दाड़िमावलेह के साथ देने से विशेष लाभकारी है। रसाजीर्ण में कपर्दक भस्म, हिंग्वष्टक चूर्ण के साथ तथा अन्नद्रव शूल में शंख भस्म मिलाकर देने से अवश्य फायदा करती है। ग्रहणी की प्रारम्भिक

अवस्था में अफीम आदि स्तम्भक दवा न देकर, केवल भुना हुआ जीरा के चूर्ण के साथ कपर्दक भस्म अच्छा लाभकारक है। अम्लपित्त में बार-बार खट्टी डकारें एवं वमन आने की दशा में स्वर्णमाक्षिक भस्म के साथ मिला कर दें।

श्वास रोग में—पिप्पली चूर्ण और मधु के साथ देना अत्युत्तम है। अग्निमान्द्य में त्रिकटु (सोंठ, पीपल, काली मिर्च) के चूर्ण के साथ देना बहुत लाभदायक है।

कर्ण स्राव में—कपर्द भस्म को कान में डालकर ऊपर से नीबू का स्वरस डालना बहुत फायदेमन्द है।

नोट—कपर्द भस्म को मक्खन, मधु या मलाई में मिलाकर देना चाहिये। केवल कपर्द भस्म का कभी भी उपयोग न करें। क्योंकि तीक्ष्ण होने से यह जीभ काट देती है।

सूखी खाँसी में—कपर्द भस्म २ रत्ती की मात्रा में मलाई अथवा पान के रस के साथ देने से सूखी खाँसी जड़ से मिट जाती है।

क्षय रोग में—जब कि मन्दाग्नि हो जाय और खाँसी का वेग बराबर बढ़ता ही जाये साथ ही कमजोरी भी बढ़ती जाये और भूख न लगे तो कपर्दक भस्म मक्खन के साथ दें।

मन्दाग्नि में—अग्नि प्रदीप्त कर भूख बढ़ाने और खाये हुए अन्न का यथोचित पाचन के लिये कपर्दक भस्म को पीपरामूल के चूर्ण के साथ देने से उपरोक्त दोष मिट जाते हैं।

उदर शूल में —कपर्दक भस्म को काली मिर्च के चूर्ण के साथ मिला कर आधे नीबू में भर कर उसको गरम करके चूसने से उदरशूल मिट जाता है।

संग्रहणी की प्रारम्भिक अवस्था में —आम द्रव को पचाने के लिये कपर्दक भस्म का प्रयोग किया जाता है। इसमें क्रमशः आम संचित होते रहते हैं, यह आम इसलिये संचित होते हैं कि ग्रहणी जो अन्न को पचाती है और पित्तधरा के नाम से शरीर में स्थित है, उसमें विकार होने से वह अन्न पचाने में असमर्थ हो जाती है, जिससे अपचित अन्न का आँव (कच्चा रस) बनने लगता है। इस ग्रहणी

विकार को दूर करने के लिये—कौड़ी भस्म १ माशा, शहद ३ माशे और नमक १ रत्ती इन तीन चीजों को एक पात्र में मिलाकर चटावें, किन्तु इसके सेवन करनेवाले को साठी चावल और दूध के पथ्य पर रहना चाहिये।

मुहाँसे में—पीली कौड़ी को नीबू के रस में भिगो देना, जब रस सूख जाय तब खूब महीन पाउडर बनाकर मुँह पर लगाने से मुँह की झाईं और मुहासे मिट जाते हैं।

—औ० गु० धा० शा०

कहरवा (तृणकान्तमणि)

परिचय—एक प्रकार का गोंद, स्वच्छ, अत्यन्त चमकदार और रंग में पीला होता है। इसे कपड़े आदि पर रगड़कर यदि घास या तिनके के पास रखें तो उसे यह चुम्बक की तरह पकड़ लेता है। उक्त भौतिकीय आकर्षण शक्ति के कारण ही विद्युत्-शक्ति को उर्दू में "कुव्वत कहरुवाइया" कहा जाता है। यह प्रायः वर्मा की खानों तथा कतिपय अन्य खानों से भी निकलती है।

परीक्षा—उत्तम कहरवा की पहचान यह है कि वह कड़ा, स्वच्छ, उज्वल और स्वर्ण के समान पीत वर्ण का हो और देर में पिघले, यदि उसे हाथ से रगड़े और वह गरम हो जाय, तो उसमें से नीबू की सुगंध जैसी खुशबू आवे और घास के तिनके, रेशम और रूई को उठा ले, उसे उत्तम जानना।

कहरवा पिष्टी—कहरवा को छोटे-छोटे टुकड़े करके महीन चूर्णकर छान लें। फिर इसको गुलाबजल में १०-१२ दिन तक लगातार खरल करें, जब अच्छी तरह घुट जाय, तब शीशी में सुरक्षित रख लें।

भस्म विधि—कहरवा को बारीक टुकड़े-टुकड़े करके मिट्टी के सिकोरे में रख अच्छी तरह मुख बन्दकर कपड़मिट्टी लगा सुखाकर गजपुट में फूंक दें, फिर प्रातःकाल निकालकर खरलकर के महीन भस्म छानकर काम में लावें। —आ० वि० कोष

मात्रा और अनुपान—२ से ४ रत्ती दिन में २-३ बार शहद या मक्खन के साथ दें।

गुण और उपयोग—अपनी स्तम्भनकारिणी शक्ति से यह रक्तष्ठीवन (रक्त मिला हुआ थूक निकलना) और रक्तस्राव को रोकता है। हृदय को भी शक्ति प्रदान करता है क्योंकि इसमें हृदय को शक्ति प्रदान करने की प्रबल शक्ति है। यह पैत्तिक उन्माद में भी काफी लाभ पहुँचाता है, कारण इसमें प्रकृति को साम्य रखने की उतम शक्ति हैं। अपनी धारक (ग्रहण) शक्ति के कारण यह संग्रहणी और आँव (पेचिस) और प्रवाहिका को भी दूर करता है।

पित्तविकार, हृदय की दुर्बलता, रक्तातिसार, रक्तप्रदर, रक्त-पित्त, वमन, प्रवाहिका (पेचिस), अर्श आदि रोगों में इसका प्रयोग लाभदायक है। यह शीतल, पित्तशामक एवं रक्तनिरोधक है। चक्कर आना, दाह, ज्यादा प्यास लगना, पसीना ज्यादा आना आदि पित्तजन्य उपद्रवों में इसका प्रयोग उत्तम है। नाक, मुँह, गुदा, योनि, लिङ्ग आदि किसी भी मार्ग से गिरते हुए रक्त को यह रोकती है। मस्तिष्क में कीड़े पड़ जाने से बराबर होनेवाले सिर-दर्द में इससे अच्छा फायदा होता है। घाव पर छिड़कने से यह खून को बन्दकर घाव को सुखा देती है।

रक्तस्राव, अर्श (बवासीर) या रक्तपित्त हो अथवा मूत्रमार्ग आदि से खून निकलता हो तो सफेद दूब के स्वरस के साथ देने से शीघ्र ही लाभ होता है। यह नकसीर (नाक फूटना) और नेत्ररोग में भी उपकार करता है। इसके अतिरिक्त आमातिसार, पेचिस (आँव), वमन, रक्तातिसार, मूत्रावरोध में भी इसका विशेष प्रयोग होता है।

व्रण कैसा भी दुष्ट हो बराबर मवाद आता हो, कीड़े तक पड़ गये हों, बदबू भी आती हो, ऐसी हालत में इसकी पिष्टी उस व्रण के ऊपर पाउडर की तरह सूखे ही छिड़कने से बहुत फायदा होता है। आमाशय, यकृत् और मूत्र-प्रणालियों को शक्ति प्रदान

करता है, वृक्क एवं वात की निर्बलता तथा कामला में कल्याणप्रद है।

अग्निदग्ध—अग्नि से जल जाने पर इसकी पिष्टी को मुर्दाशङ्ख, कवीला और गाय के घी के साथ मिलाकर लेप करने से लाभ होता है। गर्भवती स्त्री जिसका अकाल में ही गर्भ प्रसव हो जाता हो या गिर जाता हो उसके गर्भाशय की धारण-शक्ति बढ़ाने के लिये इसकी पिष्टी का सेवन करना उत्तम है। अथवा साबित कहरवा लेकर उसकी माला या ताबिज बना गले में धारण करने से भी गर्भ की रक्षा होती है।

आमाशय कमजोर होकर जब वह अपना काम करने में असमर्थ हो जाय तो कहरवा की पिष्टी, बबूल का गोंद, निशास्ता, कतीरा और खीरे का बीज प्रत्येक १०॥ माशे और गुलाब के फूल, बबूल का गोंद प्रत्येक ५। माशे मिलाकर कूट छानकर ईसवगोल के लुआब में मिला, टिकिया बना लें, इसमें से दो माशे की मात्रा में देने से अच्छा लाभ करता है।

पित्तविकार में प्रवालपिष्टी २ रत्ती मिलाकर आँवले का मुरब्बा या शर्बत अनार के साथ और हृदय की दुर्बलता में अर्जुनारिष्ट के साथ, नेत्र रोग में आँवले के मुरब्बा के साथ या गौ-दूध के साथ दें। रक्तातिसार में कुटज क्वाथ या कुटजारिष्ट के साथ और पेचिश या बबासीर में ईसवगोल की भूसी के साथ मिश्री मिलाकर सेवन करना चाहिये

कसीस

परिचय—आयुर्वेदमतानुसार कसीस दो तरह का होता है। एक पुष्पकसीस और दूसरा बालूकसीस। बालू कसीस को धातु कसीस भी कहते हैं।

शोधन विधि—कसीस को भाँग के रस में दोलायन्त्र विधि से स्वेदन करने से एक बार ही में शुद्ध हो जाता है।—र० सा० सं०

भस्म विधि—अच्छे हरे रङ्ग की कसीस लेकर उसको लोहे के तवे पर रख, अग्नि पर गरम कर, उसका जल सुखा लें। बाद में

ताजे (हरे) आँवले, भांगरा अथवा खन्धारी अनार के रस में मर्दन कर लघुपुट (थोड़े कण्डों की आँच) में फूंक दें। ऐसे दो पुट देने से ही लाल रंग की भस्म हो जायगी।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से ३ रत्ती, सुबह-शाम शहद के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—यह भस्म पांडु, रक्ताल्पता, क्षय, कुष्ठ, यकृत्-प्लीहा वृद्धि, आम विकार, उदर रोग, गुल्म, शूल आदि रोगों में उपयोगी है। रोग छूटने के बाद की कमजोरी को दूर करने तथा शरीर में नया रक्त पैदा कर शरीर को पुष्ट बनाने के लिये यह उत्तम है। यह पाचकपित्त के विकार को दूर कर अग्नि प्रदीप्त करती है। रक्तवर्द्धक एवं पित्तशामक गुण विशेष होने से सुकुमार (कोमल) प्रकृति वाले को विशेष अनुकूल पड़ती है। कसीस की भस्म मण्डूर से भी ज्यादा सौम्य है। यह कषाय गुणयुक्त होने से नेत्र रोग में भी लाभदायक है।

"यह ढीले अङ्गों में मजबूती और कड़ापन ला देती है। जख्म (व्रण) पर लगाने से खरोंटे ला देती है। तर खुजली अर्थात् जिस खुजली के फोड़ों से बराबर मवाद बहता हो उसमें तथा सिर की गञ्जता में भी लाभदायक है। नासूर में इसकी बत्ती रखने से बहुत लाभ होता है। इसको मञ्जन में डालने सेमसूढ़ों के विकार अच्छे हो जाते हैं।

आधुनिक अन्वेषणों से ज्ञात हुआ है कि कसीस कारबंकल नामक फोड़े के अन्दर बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है।

डा० मूलजी जेठू जोशी जी ने वैद्य कल्पतरु में लिखा है—

"मेरे पास एक कारबंकल का रोगी आया जो अत्यन्त कमजोर होने के कारण शस्त्र क्रिया के योग्य न था। मैंने शुरू में पोटास परमेंगनेट का लोशन देना प्रारम्भ किया परन्तु उससे कुछ भी लाभ नहीं हुआ तब; हीरा कसीस के लोशन में लिंट का टुकड़ा भिगोकर फोड़े के ऊपर जितनी देर तक रोगी सहन कर सके, रखने के लिये

कहा। यह लोशन एक औंस ठण्डे जल में ५ ग्रेन हीरा कसीस डालकर तैयार किया गया था।

इस प्रयोग के चालू रखने से कारबंकल का बढ़ना रुक गया और उसका सड़ा हुआ मांस भी कट कर अलग हो गया, जितने भाग में लोशन रखा गया था, उतना भाग तो अच्छा होने लगा किन्तु दूसरी ओर फोड़ा बढ़ने लगा, जिसके परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण पीठ, छाती और कोहनी से ऊपर दोनों बाँह रतबे से छा गये। जहाँ-जहाँ रतबे दिखाई देने लगे, वहाँ-वहाँ हीरा कसीस के लोशन लगाते गये। करीब तीन सप्ताह बाद सब उपद्रव शांत हो गये और फोड़े में से सड़ा हुआ मांस कट कर शुद्ध हो गया। फिर इस घाव को आइडोफार्म, बोरिक एसिड और वैसलीन तीनों को मिलाकर मलहम बना, फोड़े पर लगा, ऊपर से हीरा कसीस के लोशन का प्रयोग भी करता रहा। करीब एक महीने में रोगी बिलकुल चंगा हो गया।

इसी प्रयोग की प्रशंसा करते हुए डा० केशवलाल जयशंकर भाई "प्रॉक्टिकल मेडीशिन" नामक पत्र में लिखते हैं कि मैं बराबर इसका प्रयोग करता हूँ और इससे अच्छा लाभ भी होता है। आप लिखते हैं कि १ औंस पानी में ५ ग्रेन हीरा कसीस डाल कर उस लोशन में लिंट को भिगो कर रोग-दूषित भाग पर रखने से शान्तिदायक, ग्राहक और जन्तुघ्न असर होता है। यह प्रयोग अत्यन्त लाभदायक और सब प्रकार के विष से रहित है तथा सस्ता योग भी है। एक रोगी का रोग मिटाने के लिये चार छः आने की हीरा कसीस काफी होती है। अतः ग्रामीणों को इसका प्रयोग निर्भय करना चाहिये।"

नोट—कारबंकल जैसे कष्टसाध्य व्रण के लिए कसीस कितना उपयोगी है; यह उपरोक्त डा० साहब के प्रयोग से ज्ञात होता है। अप्रासंगिक होते हुए भी वाचकों के लाभार्थ इस प्रयोग का यहाँ उल्लेख किया गया है।

पांडु और रक्ताल्पता में जब शरीर में—रक्तकणों की कमी हो जाती है—इसका कारण यह होता है कि पाचक पित्त दूषित होकर अपना कार्य बन्द कर देता है, जिससे खायी हुई वस्तुओं का ठीक से

पाचन न होने से अच्छा रस नहीं बनता और अच्छा रस न बनने से अच्छा रक्त भी नहीं बनता ; अतः रक्त कणों का बनना बन्द हो जाता है। रक्त कण कम होने से पित्त भी कम बनता है, क्योंकि ये दोनों एक दूसरे के सहारे रहते हैं। इनमें किसी एक के दूषित होने से दूसरे भी दूषित हो जाते हैं, यह स्वाभाविक है। ऐसी हालत में कसीस भस्म शहद के साथ कुछ दिन तक सेवन करने से बहुत लाभ होता है। इससे अग्नि प्रदीप्त होती है और पाचक पित्त अपना काम ठीक करने लगता है तथा क्रमशः अच्छा रक्त भी बनने लग जाता है।

क्षय रोग में चौंसठ पहरी पीपल के साथ तथा श्वेत कुष्ठ में त्रिफला और वाय विडंग चूर्ण तथा न्यूनाधिक मात्रा में घृत और मधु के साथ दें। यकृत् और प्लीहा-वृद्धि में शहद और गोमूत्र के साथ तथा आम विकार में शहद और धान्य पंचक के क्वाथ के साथ दें। उदर रोग में त्रिकुट चूर्ण और शहद से तथा गुल्म शूल में घृत कुमारी रस और शहद से दें। नेत्र रोगों में त्रिफला घृत अथवा आमले के मुरब्बा से और रजोरोध में—एलुवा और हींग के साथ देने से मासिक धर्म साफ होकर गर्भाशय शुद्ध हो जाता है।

कांस्य (कांसा)

परिचय—आठ भाग तांबा और दो भाग खुरक वंग इन दोनों को अग्नि में द्रुत (पतला) करके मिला देने से कृत्रिम कांस्य बनता है। इस विधि से खानों के अन्दर भी इसकी उत्पत्ति होती है। सौराष्ट्र देश का बना कांसा अच्छा माना जाता है।

—र० र० स०

उत्तम कांसा के लक्षण—जो कांसा बजाने से तेज शब्द करता हो, और मृदु, स्निग्ध तथा थोड़ी श्यामता लिये हुए श्वेत (सफेद) और निर्मल (स्वच्छ) हो, तथा अग्नि में तपाने से लाल हो जाता हो, वह कांसा श्रेष्ठ और भस्म के योग्य होता है।

र० र० स०

शोधन विधि—कांसे को अग्नि में तपा-तपा कर तिल तैल, गोमूत्र, मट्ठा (छाछ), कांजी और कुलथी के काढ़े में तीन-तीन बार बुझाने से कांसा शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि—शुद्ध कांसे का चूर्ण और शुद्ध हिंगुल दोनों समान भाग लेकर नीबू के रस से मर्दन कर धूप में सुखा लें, सूख जाने पर सराब-सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूंक दें। इस प्रकार तीन गजपुट देने से कांसे की उत्तम भस्म बन जाती है।

—र० त०

दूसरी विधि—शुद्ध कांसा, जवाखार, सज्जीखार, सुहागा, पांचो नमक, समान भाग लेकर सब को एकत्र मिलाकर नीबू के रस में लगातार ७ दिन तक घोटे, गोला बन जाने पर सराब-सम्पुट में बन्द कर धूप में सुखाकर गजपुट में फूंक दें।

—र० र० स०

मात्रा और अनुपान—१ से ३ रत्ती, प्रात:-सायं मधु या गुलकन्द के साथ दें।

गुण और उपयोग—कांसे की भस्म लघु, तिक्त, उष्ण और लेखन है। यह कृमि, कुष्ठ, वात, पित्तनाशक, अग्नि को प्रदीप्त करनेवाली, दृष्टि को बढ़ाने वाली, तथा प्रमेहादि रोगों पर भी उत्तम कार्य करती है। कांस्य भस्म के सेवन से त्वचा का रूखापन मिट कर त्वचा पर कोमलता आ जाती है।

कृमिरोग में—कोष्ठबद्धता के कारण दस्त साफ नहीं होता, फलत: जब ये पुराने मल संचित हो जाते हैं, तब इनमें सड़ांद उत्पन्न होकर पेट में छोटे-छोटे कीड़े (चुन्ने) हो जाते हैं, जिससे मन्दाग्नि हो जाती है, भूख नहीं लगती, दिनानुदिन कमजोरी बढ़ती जाती है। रोगी की अवस्था क्रमश: गिरती ही चली जाती है। ऐसी दशा में कांस्य भस्म १ रत्ती, वायविडंग चूर्ण १ माशा, बावची चूर्ण १ माशा एकत्र मिलाकर विडंगारिष्ट अथवा अभयारिष्ट के साथ सेवन करने से बहुत लाभ होता है।

रक्त विकार (कुष्ठ) में रक्त विकृत होने से पूर्व दस्त कब्ज की

शिकायत होने लगती है जिससे शरीर के अन्दर एक तरह की गर्मी उत्पन्न हो जाती है। यह गर्मी रंजक पित्त की विकृति से होती है, इसलिये शरीर में रूक्षता, चमड़े में कठोरता आदि कई विकार उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी दशा में काँस्य भस्म, गंधक रसायन में मिलाकर सारिवाद्यरिष्ट के साथ सेवन करने से बहुत लाभ होता है।

काँस्य में ताम्बा और वंग का मिश्रण है; अतः नेत्र रोग में आँवले के मुरब्बे के साथ या दूध के साथ, प्रमेह रोग में हल्दी के स्वरस और मधु के साथ इसका प्रयोग करना ठीक है।

कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म

भस्म विधि—मुर्गी के अण्डे के ऊपर का सफेद छिलका १० तोला लेकर यवकुट कर लें। इसे एक मिट्टी के सकोरे या छोटे से मिट्टी के बरतन में रख ऊपर से चाँगेरी का रस इतना डालें कि यह डूब जाय, बाद में सकोरे या बरतन के मुंह बन्द कर सन्धि लेप करके पुट में (१० सेर कण्डों की आँच में) फूंक दें। स्वांगशीतल होने पर इसे निकाल कर इसमें से सफेद मुलायम भस्म लेकर रख लें। यदि एक बार में आँच कम लगने या और किसी गड़बड़ी के कारण भस्म काली हो गयी हो, तो पुनः चांगेरी रस डाल कर पुट दें। इस तरह से दो-तीन पुट देने से उत्तम-स्वच्छ और मुलायम भस्म बन जाती है।

विशेष गुण-वृद्धि के लिये कोई-कोई इसी भस्म में हिंगुल ४ तो० मिला ग्वारपाठे (घीकुमार) के रस में घोट टिकिया बना सुखा कर सराब-सम्पुट में बन्द कर गजपुट में ५-६ पुट और दे देते हैं। व०

मात्रा और अनुपान—२ से ३ रत्ती शहद से प्रातः सायं दें।

गुण और उपयोग—इस भस्म को १ रत्ती की मात्रा में लेकर १ रत्ती वंगभस्म में मिला मलाई के साथ खाने से प्रमेह, एवं मूत्ररोग

नष्ट होते हैं। यह बाजीकरण और रसायन भी है। अतः धातु विकार में छोटी इलायची चूर्ण ४ रत्ती और कान्तलौह भस्म २ रत्ती में मिलाकर द्राक्षासव के साथ देने से शुक्र दोष दूर हो जाता है, और शरीर में ताकत भी आ जाती है। इसके सेवन से स्वप्नदोष, धातु का पतलापन आदि रोग नष्ट होते हैं।

इसी तरह स्त्रियों के रजोविकार यथा—प्रदर, सोमरोग आदि नष्ट हो जाते हैं। प्रसव के बाद स्त्रियाँ अक्सर कमजोर हो जाया करती हैं, ऐसी अवस्था में इस भस्म का सेवन कुछ रोज तक प्रताप-लंकेश्वर में मिलाकर शर्बत अनार के साथ करने और ऊपर से दश-मूलारिष्ट या दशमूल क्वाथ (काढ़े) का सेवन करने से उत्तम लाभ होता है। इससे स्त्रियों की कमजोरी दूर हो जाती है।

खर्पर

परिचय—पत्राकार और कारबेल्लक भेद से यह दो तरह का होता है। इनमें कारबेल्लक ठीक करेला के आकार का होता है और यही श्रेष्ठ भी है। भस्म भी इसी की बनायी जाती है।

शोधन विधि—खपरिये का सूक्ष्म चूर्ण बना मिट्टी या कांच के पात्र में डालकर ऊपर से पात्र को गोमूत्र से भर दें। प्रतिदिन गोमूत्र बदलता रहे। इस प्रकार ७ दिन तक करें। आठवें दिन गरम पानी से धो और सुखाकर रख लें। —सि० यो० सं०

भस्म विधि—शुद्ध खर्पर के कपड़छन चूर्ण को समान भाग पारे के साथ खूब घोटकर कपरौटी की हुई बोतल में रख बालुका यन्त्र में एक दिन पकाने से इसकी उत्तम भस्म बन जाती है।

—र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—२ रत्ती से ३ रत्ती तक, शहद, घृत या आवश्यकतानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह बीसों प्रकार के प्रमेह, कफ, पित्त, नेत्ररोग और राजयक्ष्मा को नष्ट करता है, लौह तथा पारद को रंग देता है।

नागार्जुनाचार्य ने खर्पर तथा पारद को सिद्ध रस कहा है। ये दोनों देह को दृढ़ करते हैं।

क्षयजन्य बुखार या जीर्ण ज्वर में पिप्पली चूर्ण चार रत्ती, खर्पर भस्म १ रत्ती और च्यवनप्राश १ तोले के साथ देने से अति गुणदायक होता है। इन रोगों में स्वर्ण वसन्तमालती जैसी शास्त्रीय प्रसिद्ध औषधों का प्रयोग अधिक होता है जिसमें खर्पर भस्म की मात्रा अधिक है। पुरानी खाँसी में यदि अन्य दवाओं से लाभ होता दिखाई न पड़े, तो उस समय सितोपलादि चूर्ण के साथ खर्पर भस्म का प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है।

गोदन्ती (हरताल)

गोदन्ती—यह अपने इसी नाम से प्रसिद्ध है। बाजार में पत्रमय-शिला या पाशेदार टुकड़ों के रूप में यह मिलती है। औषध में दोनों का प्रयोग होता है।

शोधन विधि—अच्छी गोदन्ती को गर्म पानी से धोकर साफ करके धूप में सुखाकर रख लें। —सि० यो० सं०

भस्म विधि—जमीन में एक हाथ गहरा गढा बना उसका चौथाई भाग कंडों से भरकर उस पर गोदन्ती के टुकड़ों को अच्छी तरह बिछा दें और ऊपर कंडों से शेष भाग को भर कर आँच दें। स्वांगशीतल होने पर कंडों की राख को सावधानी से हटाकर गोदन्ती भस्म को निकाल चन्दनादि अर्क (उत्तम चन्दन का चूर्ण, मौसमी गुलाब तथा केवड़ा वेदमुश्क या मौलसरी) और कमल के फूल—सब को एकत्र कर उसमें आठ गुना पानी डालकर भवके से आधा अर्क खींचें, इसमें या ग्वार पाठा (घी कुमारी) के रस में घोट टिकिया बना धूप में सुखावें, जब टिकिया खूब सूख जाय तो सराब-सम्पुट में बन्द कर लघुपुट में फूंक दें। यह स्वच्छ सफेद और बहुत मुलायम भस्म तैयार होगी।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—२ से ६ रत्ती शहद या गुडूच्यादि क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग—साधारणतया किसी भी प्रकार के ज्वर में ज्वर की गर्मी तथा दाह, प्यास, वमन, शिरोवेदना आदि ज्वर के उपद्रवों को कम करने के लिये इसका उपयोग होता है। विषम ज्वर में जबतक ज्वर का वेग हो तभी तक इसका प्रयोग करना चाहिये। ज्वर का वेग उतरने के बाद सप्तवर्ण बटी आदि ज्वर के आगामी (होनेवाले) वेग को रोकने वाली औषधियों का प्रयोग करें।

ज्वर के अतिरिक्त प्रतिश्याय (जुकाम), स्त्रियों के श्वेत प्रदर, रक्त प्रदर, रक्तस्राव, सूखी खाँसी में यह विशेष लाभदायक है। बालकों के ज्वर, कास-श्वास, कब्ज और अजीर्णादि रोगों में भी लाभ करती है, मलेरिया के लिये तो यह बहुत प्रसिद्ध औषध है।

मलेरिया के अत्यधिक तापमान में गोदन्ती भस्म २ रत्ती, फिटकरी भस्म २ रत्ती, सफेद जीरे का चूर्ण ४ रत्ती तीनों को तुलसी पत्र रस और शहद में मिलाकर चटावें, ऊपर से सुदर्शन अर्क ५ तोला पिलाने से मलेरिया की गर्मी दूर हो जाती है।

गोदन्ती भस्म ६ रत्ती में ½ रत्ती संखिया की भस्म मिला शहद के साथ दें, ऊपर से सुदर्शन चूर्ण का क्वाथ बनाकर अथवा सुदर्शन अर्क ही ५ तोला पिला देने से भी बहुत लाभ होता है, यह शीत ज्वर या पारी वाले बुखार के लिये विशेष गुणप्रद है।

सिरदर्द में—३ रत्ती गोदन्ती भस्म और १ माशा मिश्री तथा १ तोला गोघृत सबको मिलाकर दिन में तीन बार देने से विशेष लाभ होता है। इसी प्रकार सूर्य्यावर्त्त, अर्धावभेदक (अधकपारी) में सूर्योदय से १-१॥ घंटा पहले दो मात्रा गोदन्ती भस्म शहद के साथ देने से अवश्य लाभ होता है। यदि कफज सिर दर्द हो तो आधा रत्ती समीर पन्नग रस मिलाकर घी के साथ देना चाहिये। स्त्रियों के श्वेत प्रदर में गोदन्ती भस्म ६ रत्ती और त्रिवंगभस्म १ रत्ती मिला शर्बत बनप्सा या मधुकाद्यवलेह के साथ देने से उत्तम लाभ होता है।

रक्त प्रदर में पूर्व मिश्रण सहित देकर ऊपर से अशोकारिष्ट या पत्रांगासव पिलाने से बहुत जल्द फायदा करती है।

बच्चों के सूखा रोग में गोदन्ती भस्म ३ रत्ती को प्रवाल पिष्टी १।। रत्ती में मिलाकर शहद या माता के दूध के साथ देने और ऊपर से अरविन्दासव ६ माशे की मात्रा में पिलाने से शरीर में केल्सियम (चूने) की कमी के कारण होने वाले रोगों के लिये अत्युत्तम है। बच्चों के अग्निमांद्य, अजीर्ण, कब्ज, दूध फेंकना आदि-आदि रोगों में बराबर इसका प्रयोग किया जाता है। प्रतिश्याय, इन्फ्लुएंजा आदि में गोदन्ती भस्म लक्ष्मीविलास रस के साथ मिलाकर मधु के साथ देने से शीघ्र लाभ करती है।

गोमेद-मणि

परिचय—सफेद, लाल, पीला और नीलवर्ण के भेद से यह चार तरह की होती है। सफेद रंग की अत्यन्त चिकनी गोमेद-मणि धारण करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। कुरूप, खुरदरी और मलिन गोमेद-मणि अच्छी नहीं होती है।

उत्तम गोमेद—जो अत्यन्त चिकना तथा देखने में स्वच्छ और गोमूत्र के समान वर्ण युक्त हो, स्निग्ध तथा समानाकार हो, पत्र रचना रहित, मसृण, ज्यादा भारी न हो तथा चमकदार हो, वह उत्तम होती है। इस तरह की गोमेदमणि भस्म के लिये लेनी चाहिये।

गोमेद मणि को छोटे-छोटे टुकड़े कर उन्हें सोना गलानेवाली मूषा या सकोरे में रख अग्नि पर तपावें, जब लाल हो जाय, तब चन्दनादि अर्क या आँवले के स्वरस में बुझावें। ऐसे ५०-१०० बार करें, अर्थात् जब तक मणि नरम होकर आप से आप टुकड़े न हो जाये, तब तक बुझावें। —आरो० प्र०

भस्म विधि—उपरोक्त प्रकार से शोधित गोमेद लेकर खूब साफ किये हुए लोहे के इमामदस्ते में कूट कर महीन रेशमी कपड़े से छान लें, फिर समाक पत्थरवाले खरल में डाल ताजे आँवले के स्वरस में मर्दन कर टिकिया बना सुखा दें, फिर इसे सराव-सम्पुट

में बन्द कर गजपुट में फूंक दें। इस प्रकार ३० पुट दें। बाद में चन्दनादि अर्क में तीन दिन मर्दन कर छाया में सुखा, महीन रेशमी कपड़े से छान शीशी में भर कर रख लें। (रत्नों की भस्म एक साथ २० तोला से ज्यादे न बनावें।) —आरो० प्र०

गोमेद पिष्टी—शुद्ध गोमेद के पत्थर को लेकर इमामदस्ते में कूट कपड़ छानकर महीन चूर्ण बना लें, फिर इसे गुलाब जल या चन्दनादि अर्क में लगातार एक सप्ताह तक घोटकर पिष्टी बना सुरक्षित रख लें।

नोट—कुछ विद्वानों का मत है कि रत्नों का शोधनकर गुलाब जल में घोट पिष्टी बनाकर ही रोगों में प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि इनकी भस्म करने से इनके रोगघ्न प्रभाव नष्ट हो जाते हैं। यथा—

रत्नानां शोधनं श्रेष्ठं मारणं न गुणप्रदम्।
भस्मना वीर्य हानिःस्यात्तस्मात्तानि च शोधयेत्॥

—र० र० स०

परन्तु यह बात हरेक मणियों के लिये लागू नहीं हो सकती है। हाँ, इतना अवश्य है कि पिष्टी गुलाब जल में लगातार घुटने से शीत गुण प्रधान होती है और अग्निपुट होने से भस्म कुछ उष्ण गुण प्रधानवाली हो जाती है।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ रत्ती, सुबह-शाम—शहद (मधु), घृत या मक्खन के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसकी पिष्टी (भस्म) क्षय रोग में जब पित्ताधिक्य के कारण कफ सूख गया हो, और सूखी खाँसी बराबर हो, खाँसते-खाँसते रोगी पसीने से तर हो जाता हो, साथ में बुखार की भी गर्मी बढ़ती ही जाती हो और कमजोरी भी हो तथा शरीर में रक्ताणुओं की कमी के कारण देह पीली हो गयी हो, ऐसी दशा में इसकी पिष्टी १ रत्ती को सितोपलादि चूर्ण १ माशा और च्यवनप्राशावलेह १ तोला में[1] मिलाकर प्रातः सायं देना और भोजनोत्तर एकत्र मिला हुआ द्राक्षारिष्ट तथा बब्बूलारिष्ट १। तो० समान भाग शीतल जल में मिलाकर पीने से शीघ्र लाभ होता है।

यह दीपन और पाचन भी है अतः किसी रोग के बीच में या रोग

घटने के बाद मन्दाग्नि हो, भूख नहीं लगती हो, कोई भी पदार्थ खाने की इच्छा न हो, तो इसकी पिष्टी १ रत्ती और कपर्द भस्म ४ रत्ती, दोनों को मिला शर्बत अनार के साथ देने तथा ऊपर से आर्द्रक खण्ड १ तोला खिलाने से उत्तम लाभ होता है।

यह बुद्धिबर्द्धक भी है। कफ प्रकृतिवालों की अपेक्षा पित्त और वात प्रकृतिवालों की बुद्धि इसके सेवन से तीक्ष्ण होती है। क्योंकि कफ तमोगुण प्रधान है, और तमोगुण पदार्थ बुद्धिनाशक होता है। बुद्धि वृद्धि के लिये गोमेद पिष्टी १ रत्ती को ब्राह्मी और बच के समान भाग चूर्ण ३ माशे में मिला घी और चीनी के साथ सेवन करना चाहिए। इससे कफ छूंटकर निकल जाता है। इसका असर मस्तिष्क पर ज्यादा पड़ता है। यह त्वचा को भी साफ रखती है और बल, वीर्य तथा आयु की बृद्धि करती है।

जस्ता (यशद)

परिचय—यह एक सुप्रसिद्ध धातु है और यह मद्रास, बंगाल, राजपुताना, पंजाब आदि कई स्थानों में खान से निकलता है, इसका रंग सफेद होता है। व्यवहार मे इसका उपयोग व्यापारी लोग सुराही, हुक्का, गिलास, कटोरा, थाली आदि बनाने के काम में करते है। यह पानी से अठगुना भारी होता है।

शोधन विधि—जो जस्ता, भारी, सफेद, चमकदार और दाँतों के समान मोटे रवेवाला हो, वही उत्तम समझा जाता है, उसी को भस्म और अंजन के काम मे लेने चाहिये।

ऐसे उत्तम जस्ते को प्रथम अन्य धातुओं की तरह सात-सात बार तैल, तक्र, गोमूत्र, काँजी आदि में बुझा दें। फिर इसको तेज आँच पर कढ़ाई में रख उसमें जस्ता को डाल पतला करके गो-दुग्ध में बुझावें। इस तरह २१ बार गो- दुग्ध में बुझाने से शुद्ध हो जाता है। जस्ते का द्रव (पतला) होते समय उस पर मलाई-सा किट्ट की तरह जमता रहता है। उसको फेंकें नहीं, उसे बचे हुए जस्ते के साथ गरम करके बुझाते रहें। —सि० यो० सं०

नोट—यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसी गली (पतली) धातुएँ दूध आदि पतले जलीय पदार्थों में डालने से उछलती हैं। अतः जिस बरतन में बुझाया जाय उस बरतन के ऊपर चक्की का पाट या कोई ऐसे पदार्थ का बरतन रख देना चाहिए, जिसके बीच में छेद हो। उसी छेद की राह से धातु को उसमें बुझाना चाहिए। (बुझाने के लिये लोहे का इमामदस्ता लेना ठीक रहता है) इस क्रिया से जस्ता उछलकर बाहर नहीं आता तथा अच्छी तरह शोधन भी हो जाता है।

भस्म विधि—शुद्ध जस्ते को एक खूब साफ की हुई लोहे की कड़ाही में गलाकर ऊपर से थोड़ा-थोड़ा समभाग भाँग और पोस्ता के डोडे (पोस्ता का दाना जिसमें से निकाल लिया जाता है, उसके खाली फल को डोडा कहते हैं) का समभाग चूर्ण ऊपर से गेरता जावे और लोहे की कलछी से चलाता जाय, जब सब चूर्ण समाप्त हो जाय, तब उस चूर्ण को सकोरा से ढककर चूर्ण अग्निवर्ण लाल हो जाय, उतनी तेज आँच देकर छोड़ दें। स्वाँगशीतल होने पर कपड़े से छान, खरल में डालकर ग्वारपाठे (घीकुमारी) के रस में घोटें और छोटी-छोटी टिकिया बना सुखा सराब-सम्पुट में बन्दकर लघुपुट में फूंक दें। इस प्रकार ७ पुट देने से कुछ ललाई लिये हुए पीले रंग की भस्म होगी

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—आधी रत्ती से १ रत्ती, शहद, मक्खन, मलाई, मिश्री या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसकी भस्म कड़वी, कषैली, शीतल, कफ-पित्त नाशक, नेत्रों के लिये लाभदायक और पाण्डु, प्रमेह तथा श्वास को नष्ट करनेवाली है। नेत्ररोग में इसकी भस्म बहुत लाभदायक है, जैसे—नेत्र (आँख) में रोहे हो जाना, आँख में दर्द होना, बराबर आँख में लाली बना रहना या जल्दी-जल्दी आँखें आ (उठ) जाना, इन रोगों में १ माशे यशद भस्म और गोघृत २ तोला, दोनों को बासी पानी से १०८ बार काँसे की थाली में डालकर हाथ की हथेली से खूब मथकर अंजन बनाकर आँखों में आँजने से शीघ्र लाभ होता है। यदि बच्चों के लिये बनावें तो १ तोला मक्खन और चौथाई रत्ती भीमसेनी कपूर भी डाल दें। यह बच्चों के लिये विशेष लाभदायक होगा।

इस अंजन से पैत्तिक रतौंधी दूर हो जाती है। परन्तु रतौंधी में इतना और करें कि प्रातःकाल त्रिफला के जल से सिर और आँख को खूब धो दिया करें।

इसकी भस्म को घी में मिलाकर गर्मी में फोड़ा-फुन्सी आदि पर लेप लगाते हैं। हाथ और पैरों की अंगुलियों के बीच जो पानी लग जाने से सफेदी पड़ जाती है, उस पर इसकी भस्म को घी में या नारियल-तैल में मिलाकर लेप करने से लाभ होता है।

बच्चों की पीठ, छाती या माथे पर कभी-कभी ग्रन्थि (गाँठ) हो जाया करती है, और क्रमशः बढ़ती रहती है। साधारण बोल-चाल में इसको माँसवृद्धि कहते हैं। शास्त्रकारों ने इसका नाम अर्बुद (रसौली) रखा है। इस पर यशद भस्म का प्रभाव प्रबाल पिष्टी के साथ अच्छा पड़ता है। साथ ही ग्रन्थि फूटने के लिये—कसीस, सेंधा नमक, चित्रक की जड़, आक और सेहुँड के दूध, दन्ती की जड़, गुड़ और गो-दुग्ध इनका लेप बनाकर ग्रन्थि पर लेप करें, तो ग्रन्थि फूट जायगी। जस्ते की भस्म सरसों के तेल में मिलाकर पैत्तिक सूजन पर लेप करने से सूजन मिट जाती है।

यह भस्म कषाय और शीतल गुणयुक्त है। रस वाहिनी और रस पिण्ड की विकृति में यह बहुत उत्तम ओषधि मानी गयी है। यह कफ और पित्त शामक, दाह, प्रदर, पित्तज प्रमेह, खाँसी, अतिसार, संग्रहणी, धातुक्षय, जीर्णज्वर, पाण्डु, श्वास आदि रोगों में लाभ-दायक है। कण्ठमाला, अपची और आभ्यन्तरिक शोथ में भी लाभदायक है।

नेत्ररोग में १ माशा घी और ४ माशा शहद के साथ खाकर ऊपर से दूध पिलावें। दवा सेवन के साथ-साथ १ रत्ती यशद भस्म, ६ माशे शतधौत घृत में मिलाकर दिन में दो बार अंजन करना चाहिये। इससे नेत्र की ज्योति बढ़ती है। पेट में दाह (जलन) हो, तो प्रबाल पिष्टी और आँवले के मुरब्बे के साथ १ रत्ती यशद भस्म देने से बहुत लाभ होता है। प्रमेह और मधुमेह में १ रत्ती यशद भस्म, जामुन की गुठली का चूर्ण १ माशे में मिलाकर शहद के साथ देने से लाभ

होता है। विशेषकर पैत्तिक प्रमेह में—जब कि सर्वाङ्ग में दर्द हो, हाथ-पैरों में जलन हो, प्यास अधिक लगती हो, जिह्वा सख्त और फट जाय, कण्ठ में शोथ हो, मस्तिष्क शून्य हो जाय, थोड़े ही परिश्रम से थकावट मालूम हो इत्यादि लक्षणों से युक्त प्रमेह में यशद भस्म १ रत्ती, गिलोय सत्त्व ४ रत्ती, शिलाजीत १ रत्ती के साथ देने से बहुत शीघ्र फायदा होता है। खाँसी में सितोपलादि चूर्ण के साथ देना चाहिये।

अतिसार और संग्रहणी में—कभी-कभी आँतों में शोथ होने पर अतिसार हो जाया करता है, साथ में वमन, ज्वर, उदरशूल, स्वरभंग आदि उपद्रव होते हैं और रोगी की शक्ति-क्षीण हो कर ऐसी दशा हो जाती है कि उससे उठा-बैठा नहीं जाता, यहाँ तक कि हाथ-पाँव का संचालन भी अच्छी तरह नहीं कर सकता अर्थात् बहुत भयंकर परिस्थिति हो जाती है। ऐसी भीषण परिस्थिति में यशद भस्म बहुत अच्छा काम करती है। यशद भस्म १ रत्ती, मिश्री ४ रत्ती दोनों को एकत्र मिलाकर ३ पुड़िया बना प्रातः-सायं तथा दोपहर में शहद या मठा (छाछ) से दें।

धातुक्षय के कारण—धातु इतनी पतली हो गयी हो कि पेशाब के साथ पानी की तरह बहकर निकल जाती हो या स्त्री विषयक अथवा तत्प्रसंग विषयक चर्चा होते ही धातु स्राव हो जाता हो या थोड़ी भी खट्टी-मीठी चीजें खा लेने से रात में स्वप्न दोष हो जाता हो, अथवा मैथुनेच्छा (स्त्री प्रसंग की इच्छा) होते ही शुक्रस्राव हो जाता हो। ऐसी दशा में रोगी बहुत परेशान हो जाता है और आजकल तथाकथित नवयुवकों की यह खास बीमारी है। इसमें यशद भस्म १ रत्ती और शिलाजीत १ रत्ती दोनों एकत्र मिलाकर मक्खन या मलाई के साथ सेवन करने से फायदा होता है।

राजयक्ष्मा में—जब कि इस रोग का असर सम्पूर्ण शरीर में अच्छी तरह व्याप्त हो गया हो, खाँसी के मारे छाती और कलेजा तथा पीठ में दर्द मालूम होता हो। फुफ्फुस के कुछ भागों में इसका असर पड़कर वह भाग नष्ट हो गया हो, बुखार हर समय बना रहता

हो, प्रातःकाल पसीना जोरों से आता हो, बल तथा मांसादि क्षीण हो गये हों ऐसी दशा में यशद भस्म १ रत्ती, मोती पिष्टी आधा रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशा और च्यवन प्राशावलेह अथवा वासावलेह २ तोला में मिलाकर सेवन करावें। ऊपर से बकरी का दूध ५ तोला पिला दें। इससे पूर्वोक्त उपद्रव शान्त होकर रोग शमन होने लगता है।

पाण्डु रोग में—मण्डूर भस्म के साथ देने से लाभ होता है, और उसके उपद्रवों में पान के रस और मधु के साथ देने से लाभ होता है।

पैत्तिक प्रमेह में—यशद भस्म के उपयोग से विशेष फायदा होता है। जिस प्रमेह रोगी को पित्ताधिक्य के कारण हाथ-पाँव तथा सम्पूर्ण शरीर में दाह मालूम हो, प्यास लगने पर थोड़े ही पानी से शान्ति मिल जाय, मन में बेचैनी के कारण विचार शक्ति का ह्रास, मस्तिष्क शून्य मालूम पड़े, ऐसी दशा में यशद भस्म, प्रबाल चन्द्रपुटी या गुडूची सत्त्व के साथ देने से लाभ होता है।

पित्तज्वर और रक्तातिसार में छुहारे और चावल के धोवन के साथ शीतज्वर में लौंग और अजवायन के साथ तथा बमन और जी-मिचलाने में मिश्री और जीरे के साथ देना बहुत लाभप्रद है।

पंचकोल (पीपल, पिपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ) के साथ यशद भस्म १ रत्ती खाने से मन्दाग्नि दूर हो जाती है। इसको ६ माशे आर्द्रक रस और ६ माशे शहद के साथ सेवन करने से खाँसी व दमा नष्ट हो जाता है।

सूजाक में जब रोगी को कभी चैन न पड़ती हो। मारे दर्द के परेशान रहता हो। इन्द्री में जलन, पेशाब में भी जलन तथा बहुत कष्ट से पेशाब होता हो, मवाद का रंग पीला-सा तथा उसमें से बुरी बास (बदबू) आती हो, ऐसी दशा में ३ माशे सन्दल में ½ रत्ती यशद भस्म मिलाकर दें और ऊपर से दही की लस्सी पिला दें तथा प्रातः-सायं त्रिफला को दही के पानी में भिगोकर उस पानी को छानकर रख लें इस छने हुए पानी से पिचकारी लेकर इन्द्री को धोवें। इससे मूत्रनली साफ़ हो जाती है और पेशाब खुलकर आने से दुष्ट मवाद भी

निकल जाता और जलन भी शान्त हो जाती है तथा धीरे-धीरे सूजाक भी मिट जाता है।

गोखरू-क्वाथ के साथ यशद भस्म देने से पेशाब साफ आता है और कौंच के बीज के चूर्ण तथा मिश्री के साथ देने से नपुंसकता मिटती है। —औ० गु० ध० शा०

नोट—अशुद्ध जस्ते की भस्म सेवन करने से प्रमेह, अजीर्ण, चक्कर आना, वमन होना, वातजन्य रोग आदि उपद्रव हो जाते हैं, इन उपद्रवों को शान्त करने के लिये दो तोला हरड़ के चूर्ण में दो तोला मिश्री मिलाकर सेवन करने से ३-४ दिन में उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

जहरमोहरा खताई

परिचय—जहरमोहरा एक पत्थर है। यह रंग में सफेद कुछ पीला और हरापन लिए हुए होता है। यूनानी दवा बेचनेवालों के यहाँ इसी नाम से मिलती है। यूनानी वैद्य (हकीम) लोग इसका प्रयोग अधिक करते हैं। जो वजन में हल्का और चिकना हो, वह अच्छा समझा जाता है।

शोधन विधि—जहरमोहरा को अग्नि में तपा-तपाकर २१ बार गोदुग्ध या आँवले के रस में बुझाने से शुद्ध हो जाता है। —आ० प्र०

भस्म विधि—शुद्ध किया हुआ जहरमोहरा का महीन चूर्ण गोदुग्ध में ६ घंटे तक खरल कर टिकिया बना धूप में सुखाकर सराब सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूंक देने से उत्तम भस्म बन जाती है। —आ० प्र०

पिष्टी—उत्तम क्वालिटी के जहरमोहरा के टुकड़ों को जल से धोकर सुखा, कपड़ छन चूर्ण कर, पत्थर की खरल में गुलाब जल या चन्दनादि अर्क* से खूब बारीक घोट कर सुखा लें, इसको 'जहरमोहरा पिष्टी', कहते हैं। —सि० यो० सं०

---

* **चन्दनादि अर्क**—उत्तम सफेद चन्दन का चूर्ण, मौसमी गुलाब के फूल, केवड़े के फूल, वेदमुश्क और कमल के फूल सब को एकत्र करके उसमें अठगुना पानी डाल कर भवके से आधा अर्क खींचे। यही चन्दनादि अर्क है। मोती, प्रवाल आदि की पिष्टी बनाने में इसका प्रयोग करें। यदि वेदमुश्क के फूल न मिले तो मौलसरी के फूल डालें।

(आचार्य यादवजी त्रिकमजी का अनुभव है।)

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती, दिन में २ से ४ बार तक या आवश्यकतानुसार शहद से दें।

गुण और उपयोग—इसकी भस्म या पिष्टी मातदिल अर्थात् न अधिक गरम और न अधिक शीतल याने समशीतोष्ण है। इसलिये हर प्रकृति (वात-पित्त-कफ प्रकृति) वालों के लिये काम आ सकती है। यह हृदय एवं मस्तिष्क को बल देने वाली है। तथा पित्त नाशक है।

दाह, हैजा, अतिसार, एवं यकृत विकार, दिल की घबराहट, जीर्ण ज्वर, बालकों के हरे-पीले दस्त, एवं शोथ (सूखा) रोग में इसका सेवन विशेष हितकारी है। यह बल, वीर्य और कान्ति को बढ़ाती है। बालकों के लिए अमृत तुल्य औषधि है।

"करावा दीन कादरी, नामक एक यूनानी ग्रन्थ में लिखा है, कि जहरमोहरा को अग्नि में रखने पर उसमें से पानी-सा छूटता है, उसे जीर्ण ज्वर की रोगी को पिलाने से ज्वर दूर हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह औषध विष के उपद्रवों को दूर करने के लिये बहुत प्रभावशाली मानी जाती है। हकीम लोग इसे विषघ्न मानते हैं।

यद्यपि यह स्वयं विषैली नहीं है। किन्तु इस में जहर दूर करने की अद्भुत शक्ति है। साँप, बिच्छू, अफीम इत्यादि किसी प्रकार के स्थावर-जंगम विष के उपद्रवों में इसको पानी में घिस कर पिलाने से लगातार वमन हो कर जहर का प्रभाव दूर हो जाता है।

प्लेग, हैजा, मलेरिया, माता इत्यादि संक्रामक रोग जोरों से फैल रहे हों, उस समय जहर मोहरा पिष्टी ३ रत्ती और निर्मली बीज चूर्ण १।। रत्ती, दोनों को एकत्र मिला गुलाब जल के साथ सेवन करने से संक्रामक रोगों का कुछ भी भय नहीं रहता।

अगर संयोग से किसी को हैजा हो जाय तो आध घंटे के बाद मयूर पंख की भस्म २ रत्ती और जहरमोहरा पिष्टी २ रत्ती, दोनों को एकत्र मिलाकर अर्क कपूर या अर्क पोदीना के साथ बराबर देते रहने से हैजा के उपद्रव —यथा वमन, दस्त, प्यास ज्यादे लगना आदि कम हो जाते हैं।

देश-विदेश के दूषित जल और हवा के कारण ज्वर, अतिसार, संग्रहणी , सूजन, निर्बलता आदि उपद्रव शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं, इन उपद्रवों को शांत करने में यह प्रभावशाली औषध है। इसी प्रकार हृदय, मस्तिष्क, लीवर और पाचन-इन्द्रियों को बल देने में भी यह आचश्चर्यजनक लाभदायक है।

गर्मी के फोड़े, फुन्सी, जहरी सूजन, विस्फोटक आदि रोगों में इसकी पिष्टी को गुलाब जल, सफेद चन्दन अथवा नीम की लकड़ी का चन्दन घिस कर इसमें मिलाकर लगाने तथा खदिरारिष्ट के साथ कैशोर गूगल का सेवन करने से बहुत जल्दी फायदा होता है।

शीतला की बीमारी में—बच्चे बुखार से तड़फड़ा रहे हों, दाने खुल कर नहीं निकलते हों, या दाने निकल कर उसमें खुजली चलती हों, (यह खुजली, पित्त के प्रकोप से शरीर के अन्दर रक्त नालियों में में एक तरह की सनसनाहट पैदा होती है, जिस से खून में खलबली मच जाती है। इस खलबली की गति विशेष बढ़ जाने से शरीर में खुजली होती है,) प्यास ज्यादे लगती हो, रोगी कभी-कभी निश्चेष्ट भी हो जाता हो, होठ काले पड़ गये हों, ऐसी भयंकर परिस्थिति में जहरमोहरा पिष्टी आधा रत्ती, मोती पिष्टी चौथाई रत्ती, संगेयशव आधी रत्ती, कहरवा पिष्टी आधी रत्ती, इन सब को अर्कगुलाव या अर्क केवड़ा में घोंट कर प्रातः-सायं गोदुग्ध या बकरी के दूध के साथ देने से बहुत जल्दी लाभ होता है। चेचक होने से पूर्व यदि इसका सेवन किया जाय तो चेचक निकलने का डर ही नहीं रहता है।

बालकों के सूखा रोग के लिये—जब बच्चा दिनानुदिन सूखता ही चला जाय, पेट बढ़ कर आगे निकल जाय, हाथ-पाँव सूख जाएं तालू में गढे पड़ गये हों, शरीर की कान्ति भी नष्ट हो गयी हो, साथ ही ज्वर भी रहता हो और पतले दस्त भी लगते हों, जिससे कमजोरी बढ़ती जाती हो, शरीर में कीटाणुओं की कमी होने से शरीर पीला पड़ गया हो, बच्चा चलने-फिरने में एकदम असमर्थ हो गया हो, तो जहरमोहरा पिष्टी १ रत्ती, बंशलोचन १ रत्ती, छोटी इलायची चूर्ण आधा रत्ती और प्रबाल पिष्टी १ रत्ती में मिलाकर शहद के साथ

चटावें ऊपर से दो चार चम्मच चूने का पानी पीला दें या गाय का दूध पिला दें, इससे बालकों के सूखा रोग समूल नष्ट हो जाता है। सूखा रोग के लिये यह सर्वोत्तम औषध है। —व० प०

ताम्र (ताँबा)

परिचय—ताम्र के नेपाल और म्लेच्छ ये दो भेद हैं। इनमें नेपाल संज्ञक ताम्र श्रेष्ठ होता है। यही भस्मादिक कामके लिये भी लिया जाता है।

नेपाली ताम्र के लक्षण—जो ताम्र चिकना, भारी, लाल वर्ण, कोमल, चोट मारने पर चूर्ण न होकर बढ़ता हो, वह नेपाल संज्ञक ताम्र है।

म्लेच्छ ताम्र के लक्षण—जो ताम्र सफेद या कृष्ण (काला) तथा थोड़ा-थोड़ा लाल हो और अत्यन्त कठोर हो, खूब साफ करने पर भी काला ही बना रहे, वह म्लेच्छ संज्ञक ताम्र है। भस्मादिक कार्य में इसे नहीं लेना चाहिय।

भस्म के लिये यदि इससे भी उत्तम ताम्र लेने हो, तो तूतिया से ताँबा निम्नलिखित विधि से निकाल कर भस्म करें।

तूतिया से तावाँ निकालने की विधि

ऽ२।। सेर तूतिया को पीस कर एक साफ लोहे की छोटी कड़ाही में बिछा दें और उस लोहे की कढ़ाई को एक बड़े लोहे की कढ़ाई में डाल दें, फिर उस कड़ाई में पड़े हुए तूतिया को ढक दें। बाद में उस बड़ी कड़ाही में दस सेर मोटा कुटा हुआ त्रिफला चूर्ण और पक्का १ मन पानी डालकर कढ़ाई को खुली जगह में रख दें, जिससे सूर्य की किरण और चन्द्रमा की चाँदनी बराबर पड़ती रहे, इस तरह २ माह पर्यन्त छोड़ दें। बाद में पानी छान लें। यह पानी स्याही (लिखने) के काम में आ जायगी और छोटी कढ़ाई को बाहर निकाल कर उसके पेंद में जमें हुए विशुद्ध ताँबे के चूर्ण को चाकू से खुरच कर निकाल लें। इसमें करीब ४० तोला विशद्ध ताँबा आप को मिलेगा। यह ताँबा नेपाली ताँबा से भी उत्तम होगा। —र० सा०

शोधन विधि—उपरोक्त विधि से निकाले हुए ताँबे को अग्नि में खूब लाल कर के आक के पत्ते के स्वरस में ७ बार बुझावें। फिर २ सेर इमली के पत्तों को १० सेर पानी में उबाल कर ५ सेर शेष रहने पर उतार कर छान लें। इस ५ सेर काढ़े में सेंधानमक ऽ।। और उपरोक्त ताँबा ऽ।। डाल कर ४ पहर तक आँच दें यदि पानी जल जाय तो बीच-बीच में गोमूत्र डालते जाएँ। यदि गोमूत्र न मिले तो पानी से भी काम चल सकता है। इस ताम्र की इतनी ही शुद्धि पर्याप्त है, क्योंकि इस ताम्र में नेपाली ताम्र जैसा दोष नहीं रहता है। इस क्रिया से ताँबा शुद्ध हो जाता है। —र० सा०

दूसरी विधि—नेपाली ताँबे के पत्र को लेकर आग में तपा कर तेल, तक्र, गोमूत्र, काँजी और कुल्थी के क्वाथ में ३-३ बार बुझाने से शुद्ध हो जाता है। —भा० प्र०

तीसरी विधि—ताम्र चूर्ण में नीबू के रस और नमक डाल कर आग पर तपा-तपाकर निर्गुण्डी (संभालू) के रस में ८ बार बुझा देने से शुद्ध हो जाता है। —र० र० स०

भस्म विधि—हिंगुलोत्थ पारद १ तोला और शुद्ध गन्धक २ तोला की कज्जली बना नीबू के रस में मर्दन कर शुद्ध ताम्र पत्र पर लेप कर सुखा, सम्पुट में बन्द कर, सम्पुट की संधि को कपड़ मिट्टी से सन्धि बन्द कर धूप में सूखने दें, फिर हल्के पुट (अर्धगजपुट) की आँच में फूंक दें। ठण्डा होने पर ताम्र को निकाल, उसमें सम-भाग शु० गन्धक का चूर्ण मिला, नीबू के रस में घोट टिकिया बनाकर पूर्वोक्त विधि से पुनः पुट दें। इस प्रकार दो पुट देकर भस्म को एक काँच के पात्र में डाल कर ऊपर से खट्टे नीबू का रस देकर एक दिन-रात रहने दें। दूसरे दिन देखें यदि नीबू के रस में हरापन नहीं आया हो, तो भस्म ठीक हो गयी है, ऐसा समझ कर उसको काम में लावें। यदि नीबू के रस में हरापन आ जाय तो समभाग गन्धक के साथ नीबू के रस में पूर्वोक्त विधिसे घोटकर एक पुट और दे दें। परन्तु इसबार आँच पहलेसे भी कम दें। बाद में उपरोक्त विधि से पुनः परीक्षाकर लें। ताम्बे की भस्म एक साथ में आधा सेर तक बनावें।—सि०यो०सं०

सोमनाथी ताम्र भस्म—शु० पारद २ तोला, शुद्ध गंधक २ तोला, हरताल १ तोला, मैनसिल ६ माशे सब की महीन कज्जली बना लें और २ तोला शु० ताम्र चूर्ण (महीन) लें। पश्चात् गर्भ-यन्त्र में थोड़ी कज्जली बिछा कर उस पर ताम्र के महीन चूर्ण रखें और उसके ऊपर फिर कज्जली रखें, इसी प्रकार ताम्र-चूर्ण और कज्जली की तह जमाकर यन्त्र के मुख को बन्द कर के चार पहर तक अग्नि पर पकावें, स्वाँग शीतल होने पर ताम्र भस्म को निकाल कर पीस कर रख लें। यही सोमनाथी ताम्र भस्म है। —र० र० स०

मात्रा और अनुपान—आधा रत्ती से १ रत्ती, दिन में दो बार शहद से या आवश्यकतानुसार उचित अनुपान से दें।

गुण और उपयोग—उदर रोग, प्रमेह, अजीर्ण, विषमज्वर, सन्निपात, कफोदर, प्लीहोदर, यकृत् विकार, परिणाम शूल, हिचकी, अफारा, अतिसार, संग्रहणी, पाण्डु, मांसार्बुद, गुल्म, कुष्ठ, कृमि रोग, हैजा, अम्लपित्त, प्लेग आदि में ताम्र भस्म महौषधि है। अनेकों रस-रसायन औषधें इसके योग से बनती हैं। यह अत्यन्त शक्ति वर्द्धक, रुचिकारक और कामोद्दीपक है। यकृत् में विकृति होने पर पित्त का निर्माण बहुत कम हो जाता है, और कभी-कभी यकृत् में पथरी भी हो जाती है। इसके लिए ताम्र भस्म अव्यर्थ महौषधि है। इसके सेवन से पित्त विकृति जन्य शूल शान्त होता है।

यकृत् और पित्ताशय पर इसका असर अधिक पड़ता है, यकृत् बढ़ जाने से पित्ताशय संकुचित हो गया हो या पित्ताशय से पित्त गाढ़ा होने की वजह से स्रवित न होता हो या पित्ताशय के किसी भाग में विकृति आ गयी हो इत्यादि अनेकों या इनमें से किसी एक के कारण पेट में दर्द होता हो या पित्ताशय में पथरी या यकृत् के कण जम जाने के कारण ही दर्द होता हो तो ताम्र भस्म २ रत्ती, कपर्द भस्म २ रत्ती दोनों को एकत्र मिलाकर करेले के पत्तों के रस से या घी और चीनी मिला कर देने से लाभ होता है।

अष्ठीला और गुल्म की गाँठ को गलाने के लिये तथा बढ़ी हुई प्लीहा को नष्ट करने के लिये ताम्र भस्म १ रत्ती, शंख भस्म २ रत्ती

और मूलीक्षार ४ रत्ती में मिलाकर कुमार्यासव के साथ देने से बहुत लाभ होता है। साथ-साथ यदि साधारण रेचक दवा का भी एकाध मात्रा दे दिया जाय तो अच्छा है।

जलोदर में जब कि रोगी का पेट जल से परिपूर्ण हो गया हो, पेट के ऊपर हरी, नीली नसें दिखाई देती हों, टट्टी पेशाब भी काफी मात्रा में न होती हो, रोगी अधिक पीड़ा से व्याकुल होकर छटपटाता हो ऐसी हालत में सिर्फ ताम्र भस्म का ही प्रयोग न करें, क्योंकि यह मूत्रप्रवर्तक नहीं है, अतः इसके साथ फिटकीरी भस्म ४ रत्ती , कुटकी चूर्ण २ माशे मिलाकर दें। ऊपर से पुनर्नवा और मकोय का स्वरस ५ तोला पिला देने से अच्छा लाभ होता है।

हैजा में—जब कि बारबार दस्त और वमन होते हों, नाड़ी बिलकुल पतली हो गयी हो , आँखें अन्दर धंस गयी हों, ओठ काले पड़ गये हों, शरीर की गाँठों में भयंकर पीड़ा हो या नसें जकड़ जाती हों, जिससे रोगी को बहुत कष्ट होता हो, ऐसी स्थिति में ताम्र भस्म चौथाई रत्ती, कपूर वटी १ गोली प्याज के रस से या मयूर पुच्छ की भस्म के साथ मधु मिलाकर आध-आध घंटे पर दें। जब वमन और दस्त कुछ कम होने लगे तो हृदय को ताकत देने वाली ओषधियाँ भी दें।

अम्लपित्त की बढ़ी हुई अवस्था में जब कि पेट में दर्द अधिक काल बना ही रहता हो, वमन करने की इच्छा बनी रहती हो या कभी-कभी वमन भी हो जाती हो, शिर में चक्कर आता हो, पित्त विशेष बढ़ जाने से हाथ-पैरों तथा आँखों और पेट में जलन होती हो, खट्टी डकारें आवें, ऐसी अवस्था में ताम्र भस्म आधी रत्ती, सुवर्ण-माक्षिक भस्म १ रत्ती में मिला कर शहद से दें और ऊपर से १ तोला मुनक्का और १ तोला हरड़ की छिलका को ऽ।। पानी में पका कर ऽ। शेष रहे तब छान कर यह क्वाथ पिला दें, इससे एक-दो साफ दस्त हो जायेंगे। —औ० गु० ध० शा०

मन्दाग्नि और संग्रहणी में यकृत् से पित्त का स्राव कम होता है, ऐसी अवस्था में सफेद मायल दस्त होना प्रारम्भ हो जाता है। अतएव

इसके निवारण के लिये सफेद पुनर्नवा के चूर्ण के साथ ताम्र भस्म का प्रयोग लाभकारी है।

शरीर में रक्त बढ़ाने के लिए आयुर्वेद में लौह भस्म का प्रयोग करना अच्छा लिखा है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने निश्चय किया है कि लौह में ताम्र का अंश रहता है, अतएव यह रक्त बढ़ाने में समर्थ है। मन्दाग्नि जन्य रोगों में लौह और ताम्र का मिश्रित प्रयोग करना चाहिए।

कफज प्रमेह में कच्चे गूलर-फल के चूर्ण के साथ, वातज प्रमेह में गुर्च सत्व और मधु के साथ, अजीर्ण रोग में त्रिकटु चूर्ण और मधु के साथ तथा कफ प्रधान सन्निपात में अदरख स्वरस और मधु के साथ ताम्र भस्म का प्रयोग महान् लाभदायक है।

सब प्रकार के शूलों पर ताम्र भस्म १ रत्ती, शुद्ध गन्धक १ रत्ती, इमली क्षार १ माशा मिला कर गो-घृत के साथ देना चाहिये। हिक्का (हिचकी) में जम्बीरी नीबू के रस के साथ ताम्र भस्म का प्रयोग अच्छा लाभ करता है।

आमातिसार में आँवला चूर्ण २ माशा, पिप्पली चूर्ण ३ रत्ती को ताम्र भस्म १ रत्ती के साथ देना लाभदायक है। पाण्डु रोग में नवायस लोह और मण्डूर भस्म के साथ, कृमि रोग में वायविडंग चूर्ण और सोमराजी (वाकुची) चूर्ण २ माशे के साथ १ रत्ती ताम्र भस्म का प्रयोग करना अच्छा है। कुष्ठ रोग में बाकुची चूर्ण के साथ ताम्र भस्म का प्रयोग करना चाहिये।

नोट—ताम्र भस्म अत्यन्त उग्र, तीक्ष्ण, भेदी और पित्तस्रावी है। अतः इस औषध का उपयोग सम्हाल कर करना चाहिये। ताम्र में—वान्ति और भ्रान्ति का दोष विद्यमान रहता है। अतः इस दोष से रहित भस्म का ही प्रयोग करना चाहिये।

ताम्र भस्म की परीक्षाविधि—

सूर्य की किरणों द्वारा देखने से चन्द्रिका रहित मालूम हो या इसकी भस्म थोड़ी मात्रा में दही में डालकर काँच के पात्र में १२ घन्टा तक रखने पर भी दही में नीलापन न दिखाई पड़े तो विशुद्ध ताम्र भस्म समझें।

यदि अशुद्ध ताम्र भस्म हो तो उसको घीकुमार के रस में घोट कर

टिकिया बना २१ पुट देने से वान्ति एवं भ्रान्ति दोष से ताम्र भस्म मुक्त हो जाती है ।

तार्क्ष्य (पन्ना)

भस्म के योग्य पन्ना—जो पन्ना हरे रंग का भारी, स्निग्ध, उज्ज्वल किरण युक्त, कोमल तथा स्थूल हो ऐसा पन्ना, भस्म के लिये लेना चाहिये ।

शोधन विधि—पन्ना को गाय के दूध में दोलायन्त्र विधि से एक प्रहर तक स्वेदन करने मात्र से ही शुद्ध हो जाता है । —र० र० स०

भस्म विधि—शु० पन्ना के महीन चूर्ण के समभाग मैनशिल, हरताल और आँवलासार गन्धक मिला बड़हल के रस में घोटकर टिकिया बना लघुपुट में फूंक दें । इस तरह ८ पुट देने से उत्तम भस्म बन जाती है । —र० र० स०

पिष्टी—शु० पन्ना के टुकड़ों का महीन चूर्ण कर कपड छान कर लें फिर इसको खरल में डाल गुलाब जल से एक सप्ताह घोटे, जब बिल्कुल महीन और कोमल पिष्टी हो जाय तब रख ले ।

मात्रा और अनुपान—आधी रत्ती से एक रत्ती, मक्खन, मलाई, दूध या पान का रस और मधु (शहद) तथा रोग और रोगी की अवस्थानुसार अनुपान के साथ दें ।

गुण तथा उपयोग—इसकी भस्म ओजवर्द्धक है । सन्निपात ज्वर, विष विकार, वमन, प्यास, अम्लपित्त, पाण्डु, मलावरोध, अर्श और शोथ को दूर करती तथा अग्नि को प्रदीप्त कर बल बढ़ाती है । हृदय की गति को बल देने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है । इसके सेवन से स्मरण शक्ति और आयु की वृद्धि होती है । यह भस्म गर्म (पैत्तिक) प्रकृतिवालों के लिये अति लाभदायक है ।

तूतिया (नीलाथोथा)

परिचय—ताम्बे का (रेती से रेता हुआ) बारीक चूर्ण और नौसादर दोनों समभाग ले कर, एकत्र मिला कूटें, फिर दोनों के बराबर

नीबू का रस मिला कर मिट्टी के पात्र में भर कर रख दें। एक मास पश्चात् तूतिया तैयार हो जायगा। —र० सार

यूनानी ग्रन्थों के मतानुसार ताम्बा को सफेद फिटकरी के साथ जला कर तूतिया तैयार किया जाता है और डाक्टरों के मतानुसार ताम्बे का बुरादा गन्धक के तेजाब में डाल कर आँच देने से "नीला-थोथा" तैयार होता है।

उत्तम नीलाथोथा के लक्षण—जिसका रंग मयूर के कण्ठ के समान नीलवर्ण और भारयुक्त हो वह भस्म के लिये श्रेष्ठ माना जाता है।

शोधन विधि—नीलाथोथा को केवल दोला यन्त्र में ३ प्रहर तक गौ, भैंस और बकरी के मूत्र के साथ स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है।
—र० सार

भस्म विधि—शु० नीलाथोथा में गन्धक और सुहागा समान भाग मिलाकर लकुच (बड़हल) के फल के स्वरस में खरल करके सराव सम्पुट में डाल कुक्कुट पुट में रखकर फूंक देने से उत्तम भस्म तैयार होती है। —र० व० स०

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती, दिन में दो बार या आवश्यकतानुसार शहद से दें।

गुण और उपयोग—इसकी भस्म प्रकुपित वात पित्तादि दोष, विष का प्रभाव, हृदय रोग, अर्श, कुष्ठ, अम्लपित्त तथा विबन्ध और मलावरोध को नष्ट करती है। यह चरपरा, नमकीन, कसैला, बमनकारक तथा खुजली को दूर करने वाली है। विशेषकर मण्डल कुष्ठ; श्वित्रकुष्ठ, दाद और विष दोषघ्न है।

अगर किसी ने अफीम, धतूरा आदि विष खा लिया हो, तो २।। रत्ती से ४ रत्ती की मात्रा में तूतिया की भस्म पानी के साथ देने से उल्टी होकर विष-विकार निकल जाता है।

अपस्मार (मिरगी) की बीमारी में इसकी भस्म चौथाई रत्ती और कुनैन १ रत्ती के साथ देने से पूर्ण लाभ होता है। कम्पवात और हिस्टीरिया में भी यह पूर्ण लाभकारक है।

पुराने सूजाक की बीमारी में, जब जननेन्द्रिय के व्रण (घाव) अच्छे होते नहीं दीख पड़े, मवाद की मात्रा बढ़ती ही जाय, साथ ही सूजन भी हो तब एक रत्ती इसकी भस्म को पाव भर पानी में घोलकर जननेन्द्रिय के भीतर पिचकारी देने से काफी लाभ होता है। मुंह के छालों में इसकी भस्म १ रत्ती मधु में मिलाकर लगाने से लाभ होता है।

आँखों की पलकों की झिल्ली में अगर कफ की वजह से दाने पड़ गये हों तो इसकी भस्म को पानी में घोलकर रूई के फाहे से लगाने से लाभ होता है। पलक को उलटकर उस पर इसका लोशन लगाकर शीतल जल से तुरत धो देना चाहिये, अन्यथा फायदे की जगह उल्टे नुकसान ही करेगा।

पेट के कीड़े को नष्ट करने के लिये वायविडंग-चूर्ण के साथ देने से कीड़े को मारकर निकालता है। आँख के जालों के लिये— फिटकरी और मिश्री के साथ गुलाब जल में घोल कर बूंद-बूंद टपकाने से जाला नष्ट हो जाता है तथा आँख की सुर्खी (लाली) और दर्द भी दूर हो जाता है। बच्चों के डब्बा रोग जिसे आयुर्वेद में "पारिगर्भिक" नाम से उल्लेख किया गया है—गर्भिणी माता के दूध पीने से होता है। इसमें दस्त कब्ज हो जाता, पेट आगे को निकल आता और पीठ बीच में कुछ गहरी हो जाती है, स्वभाव चिड़चिड़ा और बात-बात में बच्चा रोने लगता है इत्यादि लक्षण होते हैं। इस रोग में तूतिया भस्म ⅛ रत्ती और सुहागे की खील ⅛ रत्ती दोनों को मिला कर प्रातः-सायं और दोपहर को १-१ पुड़िया माँ के दूध से अथवा शहद से दें, तो इससे उल्टी और दस्त होकर बच्चे की तबियत ठीक हो जाती है।

पुराने अतिसार और आमातिसार में ⅛ रत्ती की मात्रा में इसकी भस्म मधु में मिलाकर देने से लाभ होता है।

विष-विकार में—मठा (छाछ) पर इसकी भस्म १ रत्ती छिड़क दें और जो मनुष्य विष खाया हुआ हो, उसे यह छाछ पिला दें, तो वमन होकर विष-विकार निकल जाता है।

अथवा—२।। रत्ती इसकी भस्म गरम जल से दें, यदि आध घंटे तक इसका कुछ भी असर नहीं हो, तो बाद में फिर उतनी ही मात्रा में देनी चाहिये।

दाँत के दर्द पर—इसकी भस्म या केवल शुद्ध किया हुआ नीलाथोथा १ रत्ती का मंजन करने से दाँत का दर्द दूर हो जाता है।

त्रिवंग भस्म

भस्म विधि—शु० नाग, शुद्ध वंग और शुद्ध जस्ता प्रत्येक समान भाग लेकर एक साथ लोहे की कढ़ाई में डाल पतला कर लें, फिर उसमें भाँग और अफीम के पोस्ते का मिश्रित चूर्ण थोड़ा-थोड़ा डालते जाएं और लोहे की कलछी से चूर्ण डालकर चलाते जायें, जब चूर्ण समाप्त हो जाय और उक्त तीनों धातुओं का भी चूर्ण हो जाय, तब किसी तवे या ढक्कन से उस भस्म को ढककर नीचे खूब तेज आँच करीब १२ घंटे तक देते रहें। जब भस्म अग्निवर्ण लाल हो जाय, तब आँच बन्द कर दें और स्वांग शीतल होने पर कपड़े से छान खरल में डाल ग्वारपाठे के रस में मर्दनकर टिकिया बना सुखाकर लघुपुट में फूंक दें। ऐसे ७ पुट देने से पीले रंग की भस्म तैयार हो जाती है। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती, दिन में दो बार या आवश्यकतानुसार शहद, मक्खन, मलाई आदि के साथ दें।

गुण तथा उपयोग—प्रमेह-विकार पर त्रिवंग भस्म का प्रभाव बहुत अच्छा पड़ता है। विशेषकर मूत्रपिण्ड या मूत्रवाही नली पर इसका असर होता है। अतः मधुमेह में भी इस भस्म का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि मधुमेह में केवल नाग भस्म का ही प्रयोग बहुत लाभकर है। किन्तु कुछ लक्षण विशेष होने पर जैसे मधुमेह-वालों की सन्धि स्थानों (जोड़ों) में पीड़ा (दर्द) होता हो, शिर तथा पेट में दर्द हो या पहले मन्दाग्नि होकर पेट फूल जाता हो, बाद क्रमशः मधुमेह रोग उत्पन्न हो गया हो। ऐसी अवस्था में त्रिवंग भस्म बहुत लाभ करती है। इसके अतिरिक्त जिस मधुमेह के रोगी को,

मधुमेह बहुत पुराना होकर प्रमेह पिडिकायें (शरीर में फोड़े-फुन्सियाँ) निकलती हों, उसके लिये भी त्रिवंग भस्म बहुत हितकर है।

नपुंसकता चाहे किसी प्रकार की हो, जैसे अति-स्वप्नदोष या अतिमैथुन (स्त्री-प्रसंग) से मांसपेशियाँ शिथिल हो गयी हों या अपनी कामेच्छा पूर्ति के लिये अयोग्य-आचरण (हस्तमैथुनादि) किया हो, जिससे नपुंसकता आ गयी हो, तो इसमें त्रिवंग भस्म के उपयोग से लाभ होता है।

यह भस्म वीर्यवर्द्धक भी है। अत: जननेन्द्रिय की शिथिल नसों को सख्त कर देती है, जिससे वीर्य का स्वत: (अपने-आप) स्राव हो जाना तथा स्वप्नावस्था या स्त्री-प्रसंग की इच्छा होते ही अथवा स्त्री-प्रसंग से पूर्व ही जो वीर्य स्राव हो जाता है, वह रुक जाता है। इसके सेवन से जननेन्द्रिय की मांसपेशियाँ और नसें कड़ी हो जातीं, साथ ही शुक्र भी गाढ़ा हो जाता है। अत: वीर्य विकार के लिये यह भस्म बहुत उपयोगी है।

स्त्रियों के बन्ध्या रोग—यदि गर्भाशय का मांस विशेष मोटा हो गया हो या चर्बी ज्यादे बढ़ जाने से गर्भाशय का मुंह ढक गया हो, जिससे वीर्य गर्भाशय में प्रवेश नहीं करता हो अथवा जननेन्द्रिय की कोई नस टेढ़ी पड़ गयी हो, जिससे वीर्य सीधे गर्भाशय में न पहुंच-कर बीच में ही रुक जाता हो, तो ऐसी अवस्था में बाह्योपचार भी दवा-सेवन के साथ-साथ कराना अच्छा है। जैसे—किसी होशियार दाई या नर्स आदि को दिखाकर शस्त्रादि कर्म कराना।

यदि इनके अतिरिक्त कारणों से बन्ध्यापन दोष आ गया हो—जैसे—गर्भाशय की कमजोरी या गर्भाशय का संकोच (छोटा हो जाना) अथवा वीर्यधारण की अशक्ति और संकोच अथवा फल-वाहिनी की अशक्ति या संकोच अथवा इन अवयवों का पूरा-पूरा विकास न होने से ही बन्ध्यत्व दोष आ गया हो, तो ऐसी हालत में निम्नलिखित लक्षण होते हैं, जैसे—शरीर सुन्दर न होना, नितम्ब भाग भी भरा हुआ न होना, छाती उभरी हुई न होकर संकुचित-सी दिखायी देना, मासिक धर्म हो जाने पर भी मन में कामेच्छा की

भावना न होना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में त्रिवंगभस्म का प्रयोग करने से अच्छा लाभ होता है।

बार-बार गर्भस्राव या गर्भपात हो जाय, या बहुत जल्दी-जल्दी संतानोत्पत्ति होने आदि कारणों से स्त्रियों की माँसपेशियाँ कमजोर हो जाती हैं और क्रमशः स्त्री भी कमजोर होती चली जाती हैं। ऐसी हालत में उसकी सन्तानें भी कमजोर होने लगती हैं। इस परिस्थिति में त्रिवंग भस्म का उपयोग बहुत लाभ करता है।

छोटी आयु (उम्र) में मासिक धर्म होना या १४ से २० वर्ष तक की आयु में पुरुष का समागम ज्यादा होना, इससे गर्भधारण शक्ति कमजोर हो जाती है, अतएव गर्भ नहीं रहता और रहता भी है, तो असमय में ही (गर्भ की पुष्टि न होकर) हीनांग या अल्पायु अथवा रोगी सन्तान उत्पन्न होती है। साथ ही जच्चा (प्रसूता) को भी अत्यन्त कष्ट सहन करना पड़ता है। बहुत-सी स्त्रियाँ तो ज्वरादि से पीड़ित हो क्रमशः तपेदिक के भी शिकार हो जाती हैं, जिससे छुटकारा पाना कठिन ही नहीं असम्भव हो जाता है। ऐसी हालत में गर्भाशय को शक्ति प्रदान करने के लिये और स्त्रियों की कमजोरी दूर करने के लिये त्रिवंग भस्म का प्रयोग करना अत्युत्तम है।

श्वेत प्रदर—यह रोग आजकल स्त्री समाज में विशेषकर नयी शिक्षा से शिक्षिता स्त्री समाज में देखने में आता है। इसका सबसे मुख्य कारण आधुनिक बनावटी फैशन, सिनेमा, थियेटर, नोविल, उपन्यास, नग्न चित्रादि के देखने, पढ़ने तथा मनन करने से कामवासना की प्रवृत्ति सीमा से बाहर हो जाती है। परिणाम यह होता है कि सफेद पानी चिपचिपा-सा जननेन्द्रिय के मुँह द्वारा निकलना प्रारम्भ हो जाता है। कभी-कभी यह स्राव इतना बढ़ जाता है कि स्त्रियाँ इसके मारे परेशान हो जाती हैं। साथ ही कमजोरी बढ़ने लगती है, भूख कम हो जाती है, चक्कर आने लगता है। इस अवस्था में त्रिवंग भस्म का सेवन करना अति हितकर है। —सि० प्र० सं०

बीसों प्रकार के प्रमेह पर शुद्ध शिलाजीत और मधु में मिलाकर त्रिवंग भस्म १ रत्ती की मात्रा में सेवन करना अति लाभप्रद है।

धातुक्षीणता आदि कारणों से शुक्र-स्थान इतने कमजोर हो जाते हैं कि विषय-भोगादि के चिन्तन मात्र से ही शुक्र स्राव हो जाता है, ऐसी अवस्था में त्रिवंग भस्म १ रत्ती से २ रत्ती की मात्रा में प्रवाल पिष्टी १ रत्ती में मिलाकर मधु और ताजे आँवले के स्वरस में मिलाकर देने से लाभ होता है। बार-बार गर्भस्राव या गर्भाशय की कमजोरी अथवा गर्भधारण शक्ति नष्ट होने पर त्रिवंग भस्म १ रत्ती, मुक्ता-पिष्टी १ रत्ती, च्यवनप्राश १ तोला में मिलाकर गोदुग्ध के साथ सेवन कराना परमोत्कृष्ट है। मधुमेह में जामुन की गुठली या गुड़मार बूटी के चूर्ण २ माशे के साथ त्रिवंग भस्म १ रत्ती की मात्रा में मधु के साथ देना लाभप्रद है। नपुंसकता में मक्खन या मलाई के साथ १ रत्ती त्रिवंग भस्म देना अच्छा है। श्वेतप्रदर में त्रिवंग भस्म १ रत्ती, चावल के धोवन के साथ मृगश्रृंग भस्म २ रत्ती में मिलाकर देना उत्तम है।

नाग (सीसा)

परिचय—नाग (सीसा) यह खनिज द्रव्य है। यह वंग या राँगे के समान किन्तु रंग में उससे कुछ काला होता है। जो सीसा आग पर रखने मात्र से गल जाये, तौल में भारी हो, तोड़ने में काला और भीतर उज्ज्वल और दुर्गन्धयुक्त हो, वह उत्तम होता है।

शोधन विधि—नाग को मजबूत लोहे की कड़ाही में गलाकर एक मिट्टी की मजबूत हाँड़ी को तैल, तक्र, गोमूत्र, काँजी, कुल्थी का काढ़ा इनमें से किसी एक चीज से, जिसमें नाग को शुद्ध करना हो, लगभग आधी भरें, उस पर बीच में छेद किया हुआ सकोरा रख, उसको लोहे के तार से बाँध उस पर पिघला हुआ नाग (सीसा) कलछी से (जिसमें लम्बी काठ की डंडी लगी हुई हो) उठाकर साव-धानी से सकोरे के मुँह पर डाल दें, जिससे हाँड़ी में गिरकर उछला हुआ नाग शुद्ध करने वाले के शरीर पर न पड़े। इस प्रकार उपरोक्त प्रत्येक पदार्थ में पृथक्-पृथक् करके ७-७ बार बुझाने से नाग शुद्ध हो जाता है।

नोट—मिट्टी की हाँड़ी के बदले लोहे के इमामदस्ते पर पत्थर की चक्की के ऊपर का पाट रखकर उसके छेद से पिघला हुआ नाग (सीसा) को छोड़ना विशेष अच्छा है। इसमें न तो उछलने का डर रहता और न बरतन फूटने का ही डर रहता है। —सि० यो० सं०

भस्म विधि—शुद्ध नाग को साफ की हुई लोहे की एक बड़ी कढ़ाही में अग्नि पर गलाकर उस पर इमली और पीपल वृक्ष की छाल समभाग लेकर जौकुट किया हुआ चूर्ण या अर्कमूल का चूर्ण थोड़ा-थोड़ा छोड़ता जाय और लोहे की कलछी से चलाता जाय। जब तक सब नाग का सूक्ष्म चूर्ण लाल रंग का न हो जाय, तब तक इसी प्रकार करता रहे। पीछे सब चूर्ण कढ़ाही में इकट्ठाकर ऊपर से सकोरा से ढक दे और चूर्ण अग्निवर्ण (लाल) हो जाय, इतनी तेज आँच देकर रख छोड़े स्वांग शीतल होने पर कपड़े से छान खरल में डाल उसमें बारहवाँ हिस्सा शुद्ध मैनशिल मिला, अडूसे के रस में घोट टिकिया बना सुखा सराब सम्पुट में बन्दकर कपड़मिट्टी करके लघु-पुट (१-२ सेर कण्डों की आँच) में फूंक दें। इस प्रकार ४० पुट दें। जैसे-जैसे नाग अग्नि सहन करता जाय, वैसे-वैसे आँच की संख्या भी बढ़ाता जाय। १० पुट के बाद में मैनशिल देना बन्द कर दें और सम्पुट की सन्धि पर कपड़मिट्टी भी न करें। यह लाल रंग की भस्म होगी। नाग भस्म एक बार में ४० से ६० तोले तक की बनानी चाहिये। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती दिन में दो बार, शहद मक्खन, मलाई आदि के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस भस्म के सेवन से प्रमेह विशेषकर मधुमेह, नेत्ररोग, गुल्म, प्लीहा वृद्धि, प्रदर, अतिसार, रक्तगुल्म, आमाशय की वृद्धि से होनेवाले अम्लपित्त, मन्दाग्नि, अपची, गण्ड-माला, धातुक्षय, खाँसी, आमवात, सिरदर्द, कमजोरी, यकृत् दोष, श्वास रोग, मूत्र रोग, वात रोग, पाण्डु आदि रोग दूर होते हैं। इस भस्म के सेवन से धातुओं की वृद्धि होती है। अतः शरीर को पुष्ट करती और अग्नि को भी यह प्रदीप्त करती है।

यह भस्म अग्नि प्रदीपक अर्थात् मन्दाग्नि को नष्ट कर जठराग्नि को तेज करनेवाली है। अतः अम्लपित्त रोग में—जब कि पेट में अधिक दाह हो, प्यास ज्यादे लगती हो, बराबर वमन करने की इच्छा हो, ऐसी हालत में—नाग भस्म बहुत अच्छा काम करती है। क्योंकि पाचकाग्नि की विकृति से अम्लपित्त होता है और नाग भस्म का प्रभाव पाचकाग्नि पर बहुत ज्यादा पड़ता है। अतएव उपरोक्त दोष इस भस्म के सेवन से नष्ट हो जाते हैं।

नाग भस्म का प्रयोग मधुमेह में बहुत किया जाता है। मधुमेह में—सम्पूर्ण दोष और दूष्यों (तीनों दोष—वात, पित्त, कफ और दूष्यों—रस, रक्त, मांस, मेदा, वसा, लसीका, मज्जा, शुक्र और ओज) के दूषित होने से मधुमेह होता है। मधुमेह की चिकित्सा काल में इन सब बातों का ध्यान रख करके ही चिकित्सा करने पर दोष और दूष्यों के विकार दूर हो मधुमेह रोग अच्छा होता है। मधुमेह के उत्पादक विकारों में सबसे प्रधान विकार है शरीर में जल भाग की वृद्धि होना। प्रमेह क्रमशः पुराना होते-होते मधुमेह में परिणत हो जाता है। इस भस्म का सेवन प्रथम जल भाग की वृद्धि को शोषण (सुखाने) के लिये किया जाता है और इस भस्म के सेवन से शर्करा भी कम होने लगती है। यह शक्तिवर्द्धक होने के कारण शारीरिक शक्ति की वृद्धि करता है।

अतएव इसका कार्य्य—दोष और दूष्यों के विकार को सुधारकर उनको अपनी प्रकृति में लाने का रहता है। यही कारण है कि मधुमेह में यह शीघ्र लाभ करती है। साथ में शिलाजीत भी मिला दिया जाय तो और विशेष गुणप्रद होता है। पथ्य में गो-दुग्ध और भात मात्र दें।

यदि किसी स्थूल (मोटे) आदमी को मधुमेह हो जाय, तो उसकी मेदा (चर्बी) कम करने के लिये नाग भस्म का प्रयोग करना अच्छा है। क्योंकि नाग भस्म में दोनों गुण हैं अर्थात् बढ़े हुए धातुओं को घटाना और घटे हुए को बढ़ाना, परन्तु कृश मधुमेही को सिर्फ नागभस्म न देकर जसद भस्म के साथ देने से अच्छा लाभ करता है।

वात-पित्तजन्य उदरशूल में भी इसका प्रयोग किया जाता है। पेट के किसी एक भाग में यह दर्द होता है। इसमें होता यह है कि दर्द के साथ-साथ वमन भी होने लगती है, पेट की आँतें शिथिल हो जाने के कारण अपने काम करने में असमर्थ हो जाती हैं। इसमें वात और पित्त का विशेष प्रकोप रहता है। ऐसी अवस्था म नाग भस्म का प्रयोग करना बहुत लाभप्रद है। क्योंकि इसकी भस्म बढ़े हुए वात और पित्त को शमन करनवाली तथा आँतों के विकार को भी ठीक करनेवाली है। अतः इस भस्म के सेवन से वात-पित्त जनित उदरशूल मिट जाते हैं।

आँतों में विशेष कमजोरी होने के कारण कोष्ठबद्ध—(दस्त कब्ज) हो जाता है। आँतों की कमजोरी का कारण, अधिक शुक्र क्षरण याने वीर्य का स्राव होना है। इसके अतिरिक्त धातुओं की भी क्षीणता होने स बद्धकोष्ठ हो जाता है। ऐसी अवस्था में दस्त का वेग नहीं होता और यदि वेग होता भी है तो आँतें इतनी कमजोर रहती हैं कि वे मल को नीचे निकाल नहीं सकती है। ऐसी अवस्था में नाग-भस्म का उपयोग करना चाहिये। इसके सेवन से बद्ध-कोष्ठता दूर होकर धीरे-धीरे आँतें सबल हो अपना कार्य करने लग जाती हैं और दस्त भी साफ आने लगता है।

इसका प्रयोग अस्थि विकार में भी होता है। मज्जा में रहनेवाली वायु जब कुपित हो जाती है, तो अस्थि क्षीण और नरम होकर टेढ़ी हो जाती या पिचक (दब) जाती है। इसमें कभी प्रारम्भ में कभी बाद में बहुत दर्द होता है। विशेषकर जोड़ों (सन्धियों) में दर्द होता है। रोगी इस दर्द के मारे परेशान हो जाता है और उसको बुखार भी हो जाता है। प्रायः यह रोग अधिकतर प्रसूता को विशेष हवा लग जाने से वायु के कारण होता है। ऐसी अवस्था में नाग भस्म १ रत्ती, गोखरू चूर्ण १ माशा, मिश्री ३ माशे में मिलाकर प्रातः-सायं दशमूल क्वाथ से दें।

बादी का अर्श (बवासीर) में भी नाग भस्म का प्रयोग किया जाता है। इस रोग में गुदा की व्यवली (भीतरी भाग) में शोथ

हो जाता है, जिससे मस्से बाहर निकल आते हैं, ये मस्से नरम और बहुत कोमल होते हैं। मस्सों के कारण दस्त भी साफ नहीं होता, क्योंकि दस्त (पाखाना) निकलने के समय मस्से में विशेष दर्द होने लगता है। अतः किसी तेज विरेचन से दस्त कराना पड़ता है, अन्यथा स्वाभाविक बद्धकोष्ठता बनी ही रहती है। इस कोष्ठ-बद्धता को दूर करने तथा स्नायुओं में ताकत पैदा करने के लिये नाग भस्म का प्रयोग किया जाता है। इससे बवासीर के मस्से तथा सूजन दूर होकर दस्त साफ आने लगता और रोगी भी स्वस्थ हो जाता है।

गुल्म रोग को दूर करने के लिये विशेषतः रक्त-विकार जन्य गुल्म और पित्त-विकार जन्य गुल्म में इस भस्म का प्रयोग करना अधिक लाभदायक है। पित्तज गुल्म के प्रारम्भ में ही यदि नाग भस्म दिया जाय, तो यह अपने तीक्ष्ण गुण के कारण उसको गला देती है, आगे बढ़ने ही नहीं देती। इसी प्रकार रक्त गुल्म में भी फायदा करती है।

नाग भस्म का विशेष प्रभाव माँसपेशियों पर पड़ता है और खायी हुई चीजों को अच्छी तरह पचाकर उसके मूल अंश को ग्रहण करने की शक्ति स्नायुओं में पैदा करती है जिससे प्रतिदिन शरीर के अवयवों में नवीन रक्त का संचार होता रहता है। अतः स्नायुओं या मांसपेशियों की शक्ति क्षीण होने पर इसका उपयोग करना चाहिये।

यदि स्नायुओं की निर्बलता के कारण रोगी नपुंसक हो गया हो अथवा अण्डकोष की ग्रन्थियों की निर्बलता के कारण यह रोग हुआ हो, तो नाग भस्म का प्रयोग—शिलाजीत १ रत्ती, स्वर्णभस्म चौथाई रत्ती के साथ मिलाकर मधु से दें, इससे स्नायुओं में रक्त का संचार होकर शिथिलता दूर हो जाती और क्रमशः नसों मे ताकत पैदा होकर नपुंसकता भी मिट जाती है।

शुष्क कास जिसमें खाँसते-खाँसते रोगी परेशान हो जाता है, छाती, हृदय और फुफ्फुस कमजोर हो जाते और इनमें दर्द भी होने

लगता है, खाँसने के समय पेट की नसों में भी दर्द होने लगता है। कफ बिल्कुल नहीं निकलता है, जिससे खाँसी का वेग बराबर उठता ही रहता है। ऐसी अवस्था में नाग भस्म अच्छा काम करती है। इसके सेवन से कफ ढीला होकर निकलने लगता है, जिससे श्वासनली साफ हो जाती और खाँसी का वेग भी कम हो जाता तथा फुफ्फुस भी सबल हो अपना कार्य्य करने लगता है। —औ० गु० ध० शा०

अधिक वीर्यस्राव होने पर दिमाग कमजोर हो जाता है। काम करने में उत्साह नहीं होता। विचारों में उच्छृङ्खलता हो जाती है। ऐसी अवस्था में नागभस्म १ रत्ती, शिलाजीत १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी आधी रत्ती के साथ मिलाकर शहद के साथ अथवा दूध के साथ देना चाहिये। इससे एक-दो मात्रा में ही अद्भुत गुण देखने में आता है। मधुमेह में नागभस्म १ रत्ती, गुड़मार बूटी चूर्ण २ माशे, और गिलोयसत्त्व २ रत्ती की मात्रा में मिलाकर मधु के साथ देना। स्थूल शरीरवाले और मधुमेहवाले रोगी को नागभस्म १ रत्ती, टंकण (सुहागा) क्षार २ रत्ती में मिला कर देना लाभदायक है। मूत्राशय और शुक्र के सभी तरह के विकारों में नागभस्म १ रत्ती, मुक्ता शुक्ति पिष्टी १ रत्ती में मिलाकर मक्खन के साथ देने से फायदा होता है। नेत्र रोग में नाग भस्म १ रत्ती, त्रिफला चूर्ण २ माशे या त्रिफलादि घृत १ तोला में मिलाकर लेनेसे शीघ्र गुण करता है, वातज या पित्तज अथवा रक्तज गुल्म रोग में नाग भस्म १ रत्ती, सोंठ का महीन चूर्ण १ माशा, सेंधानमक या चणक (चना) क्षार १ माशा मिलाकर गर्म जल से देना चाहिये।

प्लीहा वृद्धि में नाग भस्म १ रत्ती, मण्डूर भस्म २ रत्ती, यवक्षार १ माशा में मिलाकर गोमूत्र के साथ सेवन करें। श्वेत प्रदर या रक्त प्रदर दोनों में नाग भस्म १ रत्ती, लाख का चूर्ण १ माशा में मिलाकर अशोक के काढ़े के साथ या अशोकारिष्ट १। तोला में बराबर ठण्ढा जल मिलाकर देना लाभकारक है। अतिसार और संग्रहणी में नाग भस्म १ रत्ती, कपूर बटी १ गोली या लाई चूर्ण ३ रत्ती में मिलाकर धान्य पंचक के काढ़े के साथ देने से लाभ करता है। यदि दस्त पतला होने लगे तो धान्यपंचक बन्द कर सिर्फ अर्क सौंफ के साथ

उपरोक्त दवा लें। अम्लपित्त में नागभस्म, आँवला स्वरस के साथ देना अच्छा है।

आँत की कमजोरी से पैदा हुई मन्दाग्नि और कब्ज में नाग भस्म १ रत्ती, पंच कोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ) का चूर्ण २ माशे के साथ जीरा के अर्क या सौंफ के अर्क के साथ देना चाहिये। अपची और गण्डमाला में गाँठ कठोर अथवा उठी (सूजी) हुई मालूम होती है, ऐसी दशा में नाग भस्म १ रत्ती मधु के साथ देने से लाभ होता है।

क्षय रोग में नाग भस्म १ रत्ती, मुक्ता पिष्टी १ रत्ती, च्यवन-प्राश या वासावलेह के साथ देने से महान उपकार होता है।

सूखी खाँसी में नागभस्म १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशे में मिलाकर वासारिष्ट के साथ देने से विशेष फायदा होता है। आम वात में नाग भस्म १ रत्ती, सोंठ का चूर्ण १ माशा को मधु में मिलाकर देना चाहिये। कमजोरी दूर करने के लिये नाग भस्म को मक्खन या मलाई के साथ देना अच्छा है। यकृत् दोष में—नाग भस्म १ रत्ती, अर्कक्षार १ रत्ती दोनों को मिलाकर मधु से देना। शिर दर्द में बादाम के हलुआ के साथ नाग भस्म देना उपकारक है। मूत्र रोग में यवक्षार १ माशा, नाग भस्म १ रत्ती पानी से देना।

नीलम (नील-मणि)

परिचय—नीलम के जलनील और इन्द्रनील ये दो भेद हैं। इन दोनों में इन्द्रनील-मणि उत्तम होती है। यह रत्न माणिक्य की खानों में से अनेक प्रकार का निकलता है।

जल नील के लक्षण—जो नीलम बीच में श्वेत हो और बाहर से नील वर्ण युक्त हो और हलकी हो, वह जलनील कहलाती है।

इन्द्रनील के लक्षण—जो मध्य में काले रंग की हो और बाहर से अत्यन्त नील वर्ण युक्त हो, तथा भारी हो, वह इन्द्रनील कहलाती है।

श्रेष्ठ नीलम के लक्षण—जो नीलम एक-सी छायावाली हो,

भारी हो, चिकना, स्वच्छ, आकार में स्निग्ध स्वरूप हो, मृदु, दीप्त, तेज युक्त इन सात लक्षणों से युक्त हो, वही नीलम भस्म के लिये लेनी चाहिये । —र० र० स०

शोधन विधि—नील (नीला अपराजिता) के रस में नीलमणि को दोला यन्त्र विधान से ३ घण्टे तक उबाल कर स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है । —र० र० स०

भस्म विधि—नील मणि का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर उत्तम पत्थर की खरल में डाल सम भाग हरताल, गंधक और मैनसिल मिला, बड़हल के स्वरस (काढ़ा) के साथ घोटकर छोटी-छोटी टिकिया बना लघु पुट में फूंक दें । ऐसे ८ पुट देने से उत्तम भस्म बन जाती है । —र० र० स०

मात्रा और अनुपान—चौथाई रत्ती से आधी रत्ती तक, शहद मक्खन, मिश्री या मलाई के साथ दें ।

गुण और उपयोग—प्रारम्भिक श्वास रोग में बलगम (कफ) ज्यादे निकलता है और खांसी भी होती है । इस रोग में प्रवाल भस्म २ रत्ती, नीलम भस्म आधी रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशे मधु में मिलाकर देने से नवीन कफ का बनना बन्द हो जाता है और बढ़ा हुआ कफ कम होकर खाँसी भी कम हो जाती है । कफ कम हो जाने से दमा का वेग (दौरा) भी रुक जाता है । यह त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) को भी नष्ट करती है ।

मलेरिया में यह बहुत अच्छा काम करती है, क्योंकि मलेरिया प्राय: दूषित जल-वायु के कारण ही होता है, और ज्वर जाड़ा देकर ही चढ़ता है । ऐसी स्थिति में नीलम भस्म आधी रत्ती, मल्ल भस्म चौथाई रत्ती, फिटकरी का फूला १ माशा सब को एकत्र मिला तुलसी पत्ती के रस के साथ दिन में तीन बार दें । यदि बुखार आ जाये तो नहीं दें । बुखार आने से १ घण्टा पूर्व ही दवा देनी चाहिये ।

यह अर्श नाशक और अग्नि प्रदीपक तथा वृष्य भी है । वृष्य होने के कारण ही यह शुक्र दोष को नष्ट कर शरीर पुष्ट बनाती है ।

प्रवाल (मूँगा)

परिचय—आयुर्वेद के मतानुसार समुद्र में बालसूर्य की किरणों के समान लाल मूँगे की बेल उत्पन्न होती है। यह बेल कसौटी पर कसने पर भी अपनी कान्ति (लालामी) नहीं छोड़ती। पके कुंदरू फल के समान लाल, गोल, लम्बे, सरल, स्निग्ध (चिकना), व्रण (गाँठ) रहित और स्थूल (मोटा) इन लक्षणों से युक्त मूँगा उत्तम होता है और इस की भस्म भी अच्छी बनती है।

पीला, टेढ़ा, सूक्ष्म (महीन), छेद वाला, रूखा, काला और हल्के सफेद वर्ण युक्त मूँगा की भस्म नहीं बनानी चाहिये।

नव्यमत—आधुनिक अन्वेषणों से पता चलता है कि समुद्र में एक प्रकार के छोटे-छोटे कीड़े होते हैं। ये कीड़े बहुत छोटे और मुलायम होते है। यद्यपि ये कीड़े अनेक चीजों को भक्षण करते है। परन्तु मुख्यतया पानी की मिट्टी इसका विशेष भोजन है। वह मिट्टी इसके पेट में जमा होती रहती है और जब कीड़ा मर जाता है, तब उसकी खाल अलग हो जाती है और वह मिट्टी मूँगा के रूप में निकलती है। समुद्र में इन कीड़ों की संख्या इतनी अधिक है कि लाखों मन मूँगा वहाँ इकट्ठा हो जाता है, जिससे मूँगा के पहाड़ बन जाते हैं।

इन मूँगों की कई किस्में होती है। कोई तो छोटे-छोटे पौधे की डालियों की तरह होते हैं। कोई टेढ़े-मेढ़े भी होते हैं। इस तरह मूँगों के बड़े-बड़े टीले समुद्र की तह तक पहुँच जाते हैं। यह कीड़ा २०-२२ फीट की गहराई (नीचे) से अपना काम प्रारम्भ करता और १२०-१२२ फीट की गहराई तक नीचे पहुँच जाता है नीचे से ऊपर तक दीवार की तरह यह सीधी इमारत बनाता है।

शोधन विधि—प्रवाल को दोलायन्त्र में डालकर उसमें जयन्ती (अरणी) का रस या क्वाथ भर कर चूल्हे पर चढ़ा तीन घण्टे तक स्वेदन करने से प्रवाल शुद्ध हो जाता है। —र० त०

भस्म विधि—उपरोक्त विधि से शुद्ध किये हुए प्रवाल को पहले

इमामदस्ते या लोह खरल में कूट कर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को साफ खरल में डाल ग्वारपाठे के रस में खूब खरल करें, गोला या टिकिया बना धूप में सुखाकर सराब-सम्पुट में बन्दकर गजपुट में फूंक दें। इस प्रकार तीन बार कुमारी स्वरस से सम्पुट देने से प्रवाल की सफेद भस्म हो जाती है। —र० त०

दूसरी विधि—अच्छे लाल रंग के छेद रहित शुद्ध प्रवाल लेकर उसे गर्म जल से धो, कपड़े से पोछ, सुखा, लोहे के इमाम दस्ते में कूट-कपड़छान चूर्णकर उत्तम पत्थर के खरल में आक के दूध या ग्वार-पाठे के रस में पीस टिकिया बना, सुखा सराब-संपुट में बन्दकर गजपुट में फूंक दें। स्वांग शीतल होने पर निकाल एक दिन नीबू के रस और एक-दो दिन चन्दनादि अर्क में पीस, छाया में सुखा कपड़-छान करके शीशी में रख लें। —सि० यो० सं०

पिष्टी (चन्द्रपुटी प्रवाल)—शुद्ध प्रवाल का कपड़छनचूर्ण कर उत्तम पत्थर के खरल में गुलाब जल के साथ लगातार ८-८ घण्टे दो सप्ताह (१४ दिन) तक घोंटें। गुलाब जल कम हो जाने पर पुनः डाल दिया करें और रात में इस खरल को खुली छत या ऐसी खुली जगह में रखे, जहाँ चाँदनी और ओस बराबर पड़ती रहे। चन्द्रमा की चाँदनी पड़ने से इसको चन्द्रपुटी प्रवाल कहा जाता है। यह सौम्यगुणयुक्त होता है। १४ दिन के बाद मुलायम पिष्टी को सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—प्रवाल पिष्टी १ से ६ रत्ती और भस्म १ से ४ रत्ती तक आवश्यकतानुसार शहद से दें।

गुण और उपयोग—प्रवाल मधुर, अम्ल, कफनाशक, पित्त को दूर करने वाला, वीर्यवर्द्धक, कान्तिजनक, क्षयनाशक, रक्त-पित्त को दूर करने वाला, खाँसी को नष्ट करनेवाला, दीपन, सारक, पाचक, हल्का, ज्वर, विष, भूतवाधा, उन्माद, पाण्डुरोग और नेत्ररोग को दूर करनेवाला है।

प्रवाल भस्म की अपेक्षा "पिष्टी" पित्तनाशक और सौम्य होने के कारण पित्तयुक्त शुष्क कास, रक्तप्रदर, रक्त-पित्त, अम्लपित्त,

नेत्र-प्रदाह और वमन आदि विकारों में विशेष हितकर है। पित्त-विकार की तो यह सर्वोत्कृष्ट दवा है। पित्त की तीक्ष्णता, उष्णता एवं अम्लता को शान्त करने में यह अपूर्व है। यह अपने शीत-वीर्य शामक और प्रसादक गुणों के कारण अनेक रोगों में उपयुक्त होता है।

ज्वर को पचाने के लिए—जब ज्वर प्रारम्भ होता है तो उपवास कराया जाता है। उपवास के बाद ज्वर (दोष) को पचाने के लिए गुडूच्यादि क्वाथ आदि पाचन काढ़ा का प्रयोग न कर केवल प्रवाल पिष्टी का ही प्रयोग करने से अच्छा लाभ होता है, क्योंकि यह दीपन-पाचन है, अतः ज्वरादि दोषों को पचाती है। पैतिक ज्वर में जब रोगी को निद्रा न आती हो, ज्वरावस्था में पतले दस्त भी होते हों, नाड़ी का वेग अति वेगयुक्त हो, कण्ठ, नाक और मुख में दाह होती हो, पसीना बराबर छूटता हो तो ऐसी हालत में इसकी पिष्टी से लाभ होता है।

पैतिक मलेरिया (विषमज्वर) में कभी-कभी ज्वर की गर्मी इतनी बढ़ जाती है कि रोगी परेशान हो जाता है। उसे प्यास ज्यादे लगने लगती है, गर्मी के मारे आँख और मुंह लाल हो जाते हैं, सम्पूर्ण शरीर जलता-सा मालूम पड़ता है, मुँह सूखने लगता है, पानी पीने पर भी प्यास की शान्ति न हो कर प्यास और बढ़ ही जाती है। ऐसी हालत में प्रवालपिष्टी, गिलोय (गुर्च) सत्त्व के साथ में मिलाकर देने से उपरोक्त उपद्रव शान्त होकर ज्वर की गर्मी भी जो पित्त-प्रकोप के कारण बढ़ी रहती है, कम हो जाती है। क्योंकि यह पित्त शामक है, अतः पित्तजन्य उपद्रव को नष्ट करने के लिये सर्वथा उपयुक्त है। पित्तप्रधान किसी भी ज्वर में पैत्तिक विकारों को शमन करने के लिये इसका प्रयोग स्वतन्त्र रूप से या किसी दवा में मिलाकर निर्भय होकर करना चाहिये, इससे आशातीत लाभ होता है।

राजयक्ष्मा के पूर्वरूपावस्था में अर्थात्—जब सूखी खाँसी के साथ ज्वर भी बराबर 'थोड़ी मात्रा में बना रहता हो। नाड़ी की गति भी कुछ-कुछ मन्द हो गयी हो, शिर में दर्द रहता हो, भूख कम

लगती हो, ऐसी अवस्था में प्रवाल पिष्टी का सेवन परमोत्कृष्ट होता है। किन्तु यह ऐसी अवस्था में होती है कि जल्दी किसी का ध्यान इस तरफ नहीं जाता है। अतः इस प्रथमावस्था को पार कर यक्ष्मा दूसरी अवस्था में आजाती है,इसमें रोगी को क्रमशः दुर्बलता, कमजोरी तथा खाँसी और बुखार एक साथ ही बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है। इस अवस्था में रोगी अपनी क्रिया-कर्म करना अर्थात् टहलना, उठना, बैठना आदि से रहित हो जाता है, तब समझ में आता है कि इसे यक्ष्मा (तपेदिक) की बीमारी हो गई है। इसमें रोगी को यदि सूखी खाँसी ज्यादे हो, श्वास और ज्वर विशेष हो, फुफ्फुसों तथा छाती और पीठ में भी दर्द होते हों तो प्रवालपिष्टी २ रत्ती, मुक्ताशक्ति २ रत्ती और गुर्च का सत्त्व ४ रत्ती में एकत्र मिलाकर च्यवनप्राश के साथ देना अति हितकर है।

यदि इस अवस्था से भी पार होकर यक्ष्मा, तीसरी अवस्था में पहुंच जाती है, तो निम्नलिखित लक्षण होते हैं—

मुंह से खून गिरना, ज्वर और खाँसी का बढ़ना, पीला-हरा बदबूदार कफ निकलना, कपाल पर अधिक पसीना आना, सम्पूर्ण शरीर से पसीना छूटना, कहीं भी मन में शान्ति न होना, प्यास ज्यादे लगना, रोगी की आँखें तथा मुंह निस्तेज (कान्ति हीन) हो जाना, कमजोरी के कारण करवट अपने-आप बदलने में भी असमर्थ होना आदि लक्षण होने पर प्रवाल-पिष्टी २रत्ती,मुक्ता पिष्टी १ रत्ती, सुवर्ण भस्म चौथाई रत्ती,गुर्च सत्त्व २ रत्ती में मिलाकर शर्बत अनार के साथ देने से बहुत लाभ होता है। यक्ष्मा की सब अवस्था में पिष्टी इसलिये लाभ करता है कि एक तो इसमें केलशियम ज्यादे होती है और यह शीतवीर्य प्रधान होनेसे पित्त को शान्त कर कफ ढीला करके सूखी खाँसी को भी बन्द करती है जिससे फुफ्फुस पर किसी तरह का आघात भी नहीं होने पाता। साथ ही यह वीर्यवर्द्धक भी है। अतएव शरीर में शक्ति भी बढ़ाती है। अतः यक्ष्मा के प्रत्येक अवस्था में इसका व्यवहार करना परम लाभदायक है।

रक्तपित्त में—पित्त दूषित हो रक्त में दाह उत्पन्न कर उसे दूषित कर देता है, जिससे रक्त पतला हो जाता है और पित्त में गर्मी विशेष बढ़ जाने से रक्तवाहिनी नसें संकुचित हो जाती हैं। फिर यह रस-रक्त को अच्छी तरह संवहन या धारण करने में असमर्थ हो जाती है। परिणाम यह होता है कि नसों में छेद हो रक्त निकलना प्रारम्भ हो जाता है। फिर यह रक्त ऊर्ध्वमार्ग—मुँह, नाक, आँख आदि द्वारा और नीचे गुदा, योनि, लिंग द्वारा बाहर निकलने लगता है। इस रोग के लिये चन्द्रपुटी प्रवाल अति लाभदायक है क्योंकि इस रोग का मूल कारण पित्तदुष्टि ही है और चन्द्रपुटी प्रवालपित्तशामक तथा रक्तप्रसादक होने से इन विकारों को दूर कर देता है।

यदि रक्त विशेष पतला हो या विशेष काल अधिक मात्रा में गिरता हो, तो चन्द्रपुटित प्रवाल पिष्टी के साथ—स्वर्णमाक्षिक भस्म हल्दी स्वरस के साथ देना, क्योंकि हल्दी में अवरोधक शक्ति है किन्तु; कोई-कोई कहते हैं कि इसे रक्तपित्त के प्रारम्भिक अवस्था में देने से दूषित रक्त रुक जाता है जिससे पुनः रोग हो जाने का डर रहता है। अतः प्रारम्भिक रक्त-पित्त के अनुपान में हल्दी नहीं मिलानी चाहिये।

कितने मनुष्यों का रक्त स्वाभाविक ही इतना पतला होता है कि जरा-सा भी घाव, फोड़ा-फुन्सी या ठेस लगने या गर्मी के दिनों में नाक फूटने पर इतना रक्त निकलने लगता है कि वह जल्दी बन्द ही नहीं होता और इसमें एक विशेषता यह होती है कि वह जल्दी जमता भी नहीं है। ऐसा रक्त स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में ज्यादा होता है। यदि स्त्रियों में ऐसा रक्त होता है, तो उन स्त्रियों के मासिक-धर्म अधिक दिनोंतक होता रहता है जिससे स्त्रियाँ कमजोर तथा उत्साहहीन हो जाती हैं। ऐसी परिस्थिति में प्रवाल चन्द्रपुटी का प्रयोग अमृतसमान गुण करता है।

स्त्रियों को यदि मासिकधर्म के समय नाक भी फूट जाय (नकसीर हो जाय) या गर्भावस्था में रक्तस्राव हो तो प्रवाल चन्द्रपुटी से अच्छा लाभ होता है।

पैत्तिक कास में—शरीर में दाह हो, मुँह सूखता हो, थोड़ा-थोड़ा ज्वर भी रहता हो, मुँह कड़वा बना रहता हो, प्यास ज्यादे लगती हो, कहीं भी चैन न हो, वमन में पीला और खट्टा पित्त मिला कफ निकलता हो, हाथ-पैरों में दाह हो, तो प्रवाल चन्द्रपुटी शर्बत अनार के साथ देने से फायदा होता है।

कुकुरखाँसी—यह खाँसी अधिकतर बच्चों को हुआ करती है, क्योंकि बाल्यावस्था में कफ बढ़ा हुआ रहता है और इसमें कफ रोज बनना या बढ़ना ही इस रोग का मूल कारण है। इस रोग में इतनी जोर की खाँसी का वेग होता है कि बच्चों को खाँसते-खाँसते मुँह, आँख, कान, आदि लाल हो जाते हैं, मुँह फूला हुआ-सा दिखाई पड़ता है। कभी-कभी खाँसी तब बन्द होती है जब कि वमन हो जाती है। किसी-किसी बच्चे की एक आँख का कोना लाल (सुर्ख) हो जाता है। खाँसी का वेग ज्यादे बढ़ जाने से कान की नसें फट जाती हैं जिससे खून भी आने लगता है, मुँह में भी खून आ जाता है। ऐसी दशा में प्रवाल चन्द्रपुटी बहुत जल्दी लाभ करती है। क्योंकि चन्द्रपुटी प्रवाल से नवीन कफ कम बनता है और बादी (बढ़े हुए) कफ को यह छाँटकर निकालता रहता है जिससे श्वास पथ भी साफ हो जाता है फिर साँस के आने-जाने में रुकावट न होने से खाँसी भी नहीं होती। खाँसी कम हो जाने से और भी विकार शान्त हो जाते हैं। अतः कुकुरखाँसी में इसका प्रयोग करना अति गुणप्रद है।

गर्भिणी की खाँसी या वमन होने पर चन्द्रपुटी प्रवाल का उपयोग करना अच्छा है। अथवा जिस स्त्री की सन्तान कमजोर, अल्पायु या अधिक रोनेवाली होती हो, अथवा दुबली-पतली त्वचा वह भी कहीं-कहीं सिकुड़ी हुई हों ऐसी सन्तान उत्पन्न करनेवाली स्त्री को गर्भाधान से लेकर और जबतक बच्चा पैदा हो, उस समय तक बराबर चन्द्रपुटी प्रवाल का सेवन कराने से उक्त दोष रहित और हृष्ट-पुष्ट बच्चा उत्पन्न होता है। क्योंकि उपरोक्त दोष माता की कमजोरी अर्थात् शारीरिक स्वत्वाभाव के कारण ही होता है। प्रवाल पौष्टिक

हैं। अतः उन सबकी पूर्ति इसके द्वारा होती रहती है जिससे बच्चे भी पुष्ट होते हैं।

नेत्ररोग में—पित्ताधिक्य के कारण आँखें लाल हो जाती हों, निद्रा कम होती हो, आँख में दाह और जलन रहती हो, निद्रा खूब न होने के कारण आँखों में पीड़ा व पलक सूजी हुई रहती हों, सिर में भी दर्द होता हो—ऐसी अवस्था में प्रवाल चन्द्रपुटी देने से प्रकुपित पित्त का शमन हो जाता और उसके उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं। कारण चन्द्रपुटी प्रवाल देने से बढ़ा हुआ पित्त शान्त हो जाता और कफ की उचित मात्रा में वृद्धि हो निद्रा आने लगती और जलन तथा पलकों की सूजन आदि भी नष्ट हो जाती है।

ज्यादे गर्मी से या गर्मी के दिनों में विशेषकर गर्म पदार्थ खाने या धूप में पैदल चलने पर शरीर के अन्दर गर्मी बढ़ जाने से, शरीर में दाह (जलन) होती हो, मूत्र लाल या पीला तथा कुछ तकलीफ के साथ थोड़ी-थोड़ी मात्रा में होता हो, तो प्रवाल चन्द्रपुटी के प्रयोग से ये सब शान्त हो जाते हैं, क्योंकि यह शीतवीर्य होने के कारण उपरोक्त सब विकारों को शान्त कर देती है।

पित्त विकार जन्य उन्माद रोग में यह अच्छा गुण करता है। उन्माद मानसिक और शारीरिक भेद से दो तरह के होते हैं, मन के क्षोभ अर्थात् शोक, चिन्तादि से मन में क्षोभ उत्पन्न होने से जो उन्माद होता है, वह मानसिक है और जिनमें पित्तवर्द्धक पदार्थ जैसे ज्यादे भाँग या शराब के सेवन से पित्त दूषित होकर जो उन्माद होता है, वह शारीरिक है, इसमें प्रवाल चन्द्रपुटी का अच्छा प्रभाव पड़ता है।

यदि किसी को विष खाने की वजह से पित्त दूषित होकर उन्माद रोग उत्पन्न हुआ हो (ऐसी हालत में कोई-कोई प्रचण्ड पागल भी हो जाते हैं) तो प्रवाल चन्द्रपुटी देना अच्छा है। बाल शोष (सूखा रोग) में भी इसका असर बहुत अच्छा होता है। यह रोग ६ मास के बच्चे से लेकर ३-४ वर्ष तक के बच्चों को होते देखा गया है। इस रोग की सबसे साधारण परीक्षा यह है कि, जिस बच्चे को यह

रोग होता है, उसकी कान की लौ (जिस स्थान पर कुण्डल या लौंग आदि छेदकर पहनाया जाता है, उसे लौ कहते हैं) को चुटकी से खूब जोर से दबाने पर भी उस बच्चे को तकलीफ नहीं हो तो, समझ लें कि यह बच्चा सूखा रोग से आक्रान्त हो गया है ।

इस रोग में बच्चे एकदम कमजोर हो जाते, चूतड़ सूख कर उसकी खालें लटक जाती हैं, हाथ-पाँव की भी खालों में सलवटें पड़ जाती हैं, अस्थियों में चूने (कैलशियम) की कमी के कारण कोमलता आ जाती है, जिससे हड्डियाँ टेढ़ी-मेढ़ी भी हो जाती हैं, विशेषकर पैर की हड्डियाँ मुड़ जाती हैं, ज्वर भी रहता तथा थोड़े-थोड़े दस्त भी होने लगते हैं । बच्चों का स्वभाव चिड़चिड़ा तथा रोना-सा हो जाता है । प्रधानतया ये ही लक्षण होते हैं । ऐसी परिस्थिति में प्रवाल चन्द्रपुटी देना बड़ा लाभदायक है । क्योंकि इसमें कैलशियम (चूना) का भाग ज्यादा रहता है, साथ ही पौष्टिक और शक्तिवर्द्धक एवं रक्त प्रसादक होने की वजह से हड्डी में चूने का अंश पूर्त्तिकर उसमें सख्ती लाती है और खून को बढ़ाकर शरीर पुष्ट करती तथा ताकत उत्पन्नकर बच्चे को सबल बनाती है । अर्थात् जिस अंश की कमी रहती है, उसकी पूर्त्ति कर रोग दूर कर देती है ।

बच्चों के डब्बा (पारिगर्भिक) रोग अथवा दाँत होने के समय हरे-पीले दस्त होने लगते हों अथवा दाँत निकलने में विशेष तकलीफ होती हो, ज्वर भी रहता हो, बालक कमजोर होता जा रहा हो, तो प्रवाल चन्द्रपुटी का उपयोग करना अच्छा है ।

स्वप्नदोष या किसी कारण से वीर्य पतला हो गया हो या खट्टी-मीठी अथवा कड़वी चीजों के खाने से शुक्रस्राव हो जाता हो या रास्ते में चलते-फिरते किसी नवयुवती को देखने मात्र से ही शुक्रस्राव हो जाता हो अर्थात् वीर्य में पतलापन आ गया हो, तो प्रवाल चन्द्रपुटी से इस अवस्था में बहुत फायदा होता है ।

एक साल के बाद की सूजाक या उपदंश रोग में—जब हाथ-पैरों में ज्यादा जलन होती हो, दाँतों की जड़ से खून निकलता हो, मसूढ़े सूज गये हों, पेशाब जलन के साथ तथा लाल या पीले रंग का

होता हो, तो ऐसी हालत में प्रवाल चन्द्रपुटी का प्रयोग अवश्य करना चाहिये। रक्त या श्वेतप्रदर में यह अच्छा काम करता है। रक्त प्रदर में पित्त की विकृति से रक्त विकृत होकर रक्त वाहिनी नसें फूट जाती हैं, तब रक्त प्रदर होता है। अतएव रक्त प्रदर में रक्त मूत्र नली द्वारा आता है और श्वेत प्रदर में इससे भिन्न रास्ते से आता है। श्वेत प्रदर में जलके समान पतला और चिप-चिपा,दाहयुक्तस्राव होता है। यह जल शरीर के किसी भाग में लग जाने से वहाँ खुजली होकर फुन्सियाँ हो जाती हैं। अथवा वहाँ की त्वचा में इतनी रूक्षता आ जाती है कि त्वचा फट जाती है फिर उसमें जलन होने लगती है। ऐसी हालत में प्रवाल चन्द्रपुटी के सेवन से आशातीत लाभ होता ह। —औ० गु० ध० शा०

क्षय की प्रारम्भिक अवस्था में जब कि रोग निर्णय करना कठिन प्रतीत हो। केवल क्षय का सन्देह मात्र हो, ऐसी अवस्था में प्रवाल चन्द्रपुटी १ रत्ती, शुक्ति पिष्टी २ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशे में मिलाकर मधु के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

क्षय की दूसरी अवस्था में प्रवाल चन्द्रपुटी २ रत्ती, मुक्तापिष्टी १ रत्ती, गिलोय सत्व ३ रत्ती के साथ मिलाकर देने से अपूर्व लाभ होता है। क्षय की तृतीयावस्था—यह कष्टसाध्यावस्था है। अतः सफलता कम ही मिलती है। फिर भी धन्वन्तरि भगवान के नाम लेकर प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, स्वर्ण भस्म या वर्क चौथाई रत्ती, मुक्तापिष्टी आधा रत्ती इन सब को गिलोय सत्त्व २ रत्ती में मिलाकर बकरी के दूध के साथ देना हितकर है।

पैत्तिक शिरःशूल, शिर दर्द, वमन, दाह, जलन आदि में प्रवाल पिष्टी १ रत्ती को आँवले के मुरब्बे के साथ देना लाभप्रद है।

रक्त-पित्त विकार में—बहुतों को ग्रीष्म ऋतु में और बहुत से लोगों को सदा ही नाक से रक्त बहता रहता है। इसमें रक्त विकार के कारण रक्त स्तंम्भक (गाढ़ापन) गुण नष्ट हो जाता, ऐसी हालत में जरा-सी चोट या ठेस आदि लगने से खून निकलना प्रारम्भ हो जाता है, जो बन्द होना कठिन हो जाता है। ऐसी अवस्था में प्रवाल

चन्द्रपुटी १रत्ती आँवले का मुरब्बा या दूर्वा स्वरस के साथ देने से अवश्य लाभ होता है। स्वर्णमाक्षिक भस्म के साथ तो इसका प्रयोग पित्तविकार में बहुत लाभ करता है। पित्तजन्य शुष्क कास में प्रवाल चन्द्रपुटी १ रत्ती, गिलोय सत्त्व २ रत्ती, शर्बत अनार १ तोला के साथ देने से खाँसी तुरत बन्द हो जाती है।

पित्तवृद्धिजन्य कास (खाँसी) में खाँसते-खाँसते जब वमन होने लगती है और हाथ-पैरों में जलन होती है, प्यास अधिक लगती, थोड़ा-थोड़ा ज्वर भी रहने लगता, तब प्रवालपिष्टी के सेवन से पित्त शान्त हो कफ पिघलकर बाहर निकल आता है।

बच्चों की कुकुरखाँसी (हुपिङ्ग कास) में बच्चों को अधिक दिन तक कष्ट भोगना पड़ता है। खाँसते-खाँसते बच्चे वमन कर देते हैं। ऐसी अवस्था में प्रबालपिष्टी आधी रत्ती, मिश्री आधी रत्ती, टंकण (सुहागा) भस्म आधी रत्ती घृत में मिलाकर दें, ऊपर से वासारिष्ट १ तोला बराबर जल मिलाकर पिला देने से बहुत शीघ्र लाभ करता है।

उरःक्षतजन्य शुष्क कास में लाख के क्वाथ के साथ प्रबालपिष्टी १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशे में मिलाकर देने से लाभ होता है। गर्भवती स्त्रियों के वमन, कास एवं अन्य उपद्रवों में प्रवाल-पिष्टी १रत्ती मिश्री एक माशा के साथ देने से जमा हुआ कफ निकल जाता तथा वमन और खाँसी भी मिट जाती है। कफ को सुखाने के लिये प्रवालपिष्टी १ रत्ती मधु के साथ देना चाहिये। पैत्तिक श्वास में कफ निकालने के लिए प्रवालपिष्टी को गुडूची सत्व के साथ या च्यवनप्राश में मिलाकर देना अच्छा है।

विष का प्रयोग होने पर शरीर में कुछ-न-कुछ विष का असर अवश्य ही रह जाता है। खासकर संखिया, हरताल और रसकपूर का असर प्रायः जीवन भर रह जाता है और शरीर को कष्ट भी देता रहता है। ऐसी अवस्था में प्रवालपिष्टी एक रत्ती का सेवन घी या मक्खन-मिश्री के साथ करना अति लाभदायक है।

भूतोन्माद और पित्तोन्माद में प्रवालपिष्टी २ रत्ती, ब्राह्मी

चूर्ण १ माशा, सारस्वतारिष्ट के साथ देना हितकर है। गर्मी के कारण आँखें आ जाती हैं, और उसमें अधिक जलन (दाह) तथा दर्द होने लगता है; ऐसी अवस्था में प्रवालपिष्टी १ रत्ती, स्वर्ण-माक्षिक भस्म १ रत्ती को घृत और मिश्री के साथ अथवा दूध के साथ देने से लाभ होता है।

पित्तप्रकृतिवाले को या पित्तवर्द्धक पदार्थ सेवन करने से स्वप्न-दोष या वीर्य पतला होकर स्राव होने लगता है। इसकी शान्ति के लिये कबाब चीनी चूर्ण १ माशा के साथ प्रवालपिष्टी २ रत्ती की मात्रा में सेवन करने से फायदा होता है।

पित्तजन्य शिरःशूल में प्रवालपिष्टी १ रत्ती, बदाम का हलुआ २।। तोला के साथ खाना लाभदायक है।

शुक्रस्थान की अत्यन्त निर्बलता अथवा स्नायुमण्डल की दुर्बलता के कारण शुक्र बहुत पतला और शक्तिहीन हो जाता है। इस अवस्था में च्यवन-प्राश एक तोला के साथ प्रवालपिष्टी १ रत्ती मिलाकर प्रातःसायं सेवन करें और भोजनोत्तर अवश्गन्धारिष्ट १। तोला बराबर जल मिलाकर पीने से लाभ होता है।

रक्तार्श में प्रवालपिष्टी २ रत्ती, मुक्ताशुक्ति १ रत्ती, असली नागकेशर का चूर्ण १ माशा के साथ देना हितकर है। इसका निरन्तर सेवन करने से स्थायी लाभ होता है। बार-बार रक्त गिरना तो सर्वप्रथम ही बन्द हो जाता है।

यकृत् विकार में पित्तदुष्टि यदि अधिक हो जाय, तो प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, आरोग्य वर्द्धिनी १ गोली में मिलाकर मधु से देना। पैत्तिक ज्वर या ज्वर की गर्मी (उत्ताप) को कम करने के लिए प्रवाल पिष्टी २ रत्ती, गिलोय (गुर्च) सत्त्व ४ रत्ती में मिलाकर ३-३ घण्टे के बाद मधु में मिलाकर देने से फायदा होता है।

बच्चों के शरीर में चूने का अंश कम हो जाने से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यथा—हड्डी, पसली का टेढ़ा हो जाना, दाँत का समय पर नहीं निकलना, पीले और अनपच दस्त होना, दूध पीने के साथ वमन होना आदि। इनके शमन के लिए प्रवाल पिष्टी आधी रत्ती,

मिश्री ३ रत्ती मिलाकर चूने का निथरा हुआ पानी १ तोला के साथ या कमला नीबू-रस के साथ देने से अमृत के समान लाभ करता है।

पित्तज अम्लपित्त में प्रवालपिष्टी २ रत्ती, अविपत्तिकर चूर्ण २ माशे आँवले के मुरब्बे के साथ देने से अत्यन्त लाभ करता है। पित्तज प्रदर में दाह व प्रदर के जल लगने से होनेवाली फुन्सियाँ, त्वचा फट कर फोड़ा होना, खुजली पैदा होना आदि उपद्रव होते हैं। इस अवस्था में प्रवाल पिष्टी १ रत्ती को उशीरासव या अशोकारिष्ट अथवा सारिवाद्यासव के साथ देना अत्यन्त लाभदायक है।

पारद भस्म

शुद्ध पारा और सेन्धानमक १-१ तोला, संखिया ६ माशे, बच्छनाग ३ माशे, हींग, फिटकरी, गेरू और समुद्र लवण का समानभाग मिश्रित चूर्ण इन सबके बराबर लेकर सबको एकत्र मिला, काँजी में अच्छी तरह घोटें। फिर इन्द्रायण की जड़ के स्वरस में घोटकर डमरूयन्त्र में रखकर आठ प्रहर की आँच दें। यन्त्र के स्वांगशीतल होने पर उसे खोलकर ऊपर की हाँड़ी में लगी हुई पारद भस्म को निकाल लें। —र० रा० सु०

मात्रा और अनुपान—१ रत्ती से दो रत्ती। इस भस्म को कैपशूल या मुनक्का के बीच में रखकर निगल जाना चाहिए।

रोगानुसार अनुपान

पारद भस्म को पित्तपापड़ा तथा मोथा-क्वाथ या तुलसी क्वाथ अथवा पिप्पली क्वाथ के साथ सेवन करने से ज्वर नष्ट होता है। लाक्षाचूर्ण, हरीतकी चूर्ण, या वासाचूर्ण के साथ मिलाकर मधु से सेवन करने से रक्तपित्त रोग नष्ट होता है। कास को नष्ट करने के लिए इसको छोटी कटेली के क्वाथ में पिप्पली चूर्ण मिलाकर सेवन करना चाहिए। पाण्डुरोग में इसे त्रिफला और हल्दी-कषाय के साथ प्रयोग करना चाहिए। अतिसार में पंचक्षीरी वृक्ष के क्वाथ

के साथ इसका सेवन करें। प्रवाहिका (पेचिश) में—आम तथा जामुन के पत्तों का रस, बेल का चूर्ण, सोंठ और गुड़ इन सबको एकत्र मिला, मन्दाग्नि पर पका अवलेह-सा बनालें, इस अवलेह के साथ पारद-भस्म का सेवन करें।

पारद-भस्म को हींग और पिप्पली चूर्ण के साथ सेवन करने से विसूचिका (हैजा) रोग नष्ट होता है। हरीतकी चूर्ण और काँजी के साथ इसका सेवन करने से अजीर्ण रोग नष्ट होता है।

पुरातन तथा नवीन अर्श रोग के लिए पारद-भस्म को पुटपक्व जिमीकन्द (सूरण) में तिल तैल तथा सेंधानमक मिलाकर सेवन करना चाहिए। बिजौरा नीबू तथा कालानमक के साथ इसका सेवन करने से हिक्का रोग नष्ट होता है। वमन और अन्तर्दाह के लिए धान की खीलों के चूर्ण को जल में घोलकर उसमें मधु तथा मिश्री मिलाकर सेवन करना चाहिए।

क्षतयुक्त क्षय में बकरी का दूध तथा पिप्पली कल्क-सिद्ध घृत में गन्धक मिलाकर, उसके साथ सेवन करने से विशेष लाभ होता है। गोक्षुरादि कषाय अथवा मसूर-क्वाथ में मधु मिलाकर सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र रोग आराम होता है। तिलों के क्वाथ में त्रिकटु चूर्ण मिलाकर इसके साथ पारद भस्म सेवन करने से शूल नष्ट होता है। शम्बूक और यवक्षार के साथ पारद भस्म देने से परिणाम शूल नष्ट होता है।

शोथरोग में कुटकी तथा सोंठ के कषाय में गोमूत्र मिलाकर पारद-भस्म सेवन करना चाहिए। दारुहल्दी तथा त्रिफलाक्वाथ के साथ पारद-भस्म सेवन करने से कामला रोग नष्ट होता है। स्थूलता (मोटापा) दूर करने के लिये शुद्ध गूगल में त्रिफला और त्रिकटु तथा मरिच चूर्ण और एरण्ड तैल मिलाकर खूब कूट लें, जिससे अवलेह-सा बन जाय। इसमें पारद-भस्म मिलाकर सेवन करना चाहिए। लहसुन के कल्क तथा स्वरस से पकाये हुए तिल तैल के साथ पारद-भस्म सेवन करने से पुराने तथा नवीन सब प्रकार के वातरोग नष्ट होते हैं। वातरक्त में पारद भस्म को हरड़ और गिलोय के क्वाथ

में गुड़ मिलाकर सेवन करना चाहिए। सोंठ और एरण्ड बीजके चूर्ण से पहिले क्षीरपाक विधि से दुग्ध सिद्ध कर लें, इसके साथ प्रत्यह दिन में दो बार पारद-भस्म का सेवन करने से गृध्रसी रोग नष्ट होता है। बाकुची, त्रिफला तथा भृंगराज चूर्ण के साथ पारद-भस्म सेवन करने से सफेद कोढ़ रोग नष्ट होता है।

उदर की क्रिमियों के लिए इसको वायविडंग, नीम, दाड़िम की छाल, पलास बीज के चूर्ण के साथ मधु मिलाकर सेवन करना चाहिए। शरीर की कृशता दूर करने के लिए पारद-भस्म को शतावरी, खरैंटी, असगन्ध और केला-कन्द के कषाय के साथ दो मास तक सेवन करना चाहिए।

अपस्मार रोग के लिए—कालानमक, त्रिकटु, हींग इनका कल्क कर इसमें कल्क से चौगुना गोघृत और उससे चौगुने गोमूत्र मिलाकर घृत सिद्ध कर लें। इसके साथ सात दिन तक पारद-भस्म का सेवन करावें। त्रिफला, शिलाजीत और त्रिकटु के चूर्ण को भांगरे के रस की सात भावना देकर सुखा लें। इस चूर्ण के साथ पारद-भस्म का सेवन करने से प्रमेह रोग नष्ट होता है। स्थावर तथा जंगम विषों के प्रभाव को दूर करने के लिए पारद-भस्म को कुमारी मूल-स्वरस अथवा चौलाई-स्वरस के साथ सेवन करना चाहिए।

—र० तरङ्गिणी

गुण और उपयोग—अच्छी तरह बनी हुई पारद की भस्म—संग्रहणी, अतिसार, क्षय और शोषरोग को नष्ट करती है तथा पाचकाग्नि की दुर्बलता दूर करती है। इस भस्म के सेवन से शरीर में बल, वीर्य तथा मैथुनशक्ति की वृद्धि होती है। शरीर को क्षीण करनेवाले क्षय रोग को नष्ट कर कान्ति उत्पन्न करता है। स्मरण शक्ति को बढ़ाता और शरीर को मजबूत करता है। लगातार एक वर्ष तक इसका सेवन किया जाय, तो बुढ़ापा नष्ट हो जाता है। पारद-भस्म सेवन करने पर मैथुन शक्ति की अपूर्व वृद्धि होती है। अधिक विषय भोग करनेवालों को पारद-भस्म का अवश्य सेवन करना चाहिए।

पीतल

परिचय—ताँबे और जस्ते के मेल से पीतल बनता है। यह सम्पूर्ण भारतवर्ष में बरतन बनाने के काम में आता है।

भस्म करने योग्य पीतल—जो पीतल अग्नि में तपाकर काँजी में बुझाने से ताँबे के समान वर्ण निकले और देखने में पीला, भारी और चोट सहन करनेवाला हो, वही पीतल भस्म के लिये लेना चाहिये। —र० र० स०

शोधन विधि—पीतल के पतले-पतले पत्र बनाकर आग में तपा-तपा कर निर्गुण्डीरस में हल्दी का चूर्ण मिलाकर इसमें सात बार बुझाने से शुद्ध हो जाता है। —र० त०

भस्म विधि—शुद्ध पीतल के छोटे-छोटे कंटकवेधी पत्र बनाकर २० तोला लें। फिर २० तोला गंधक और २० तोला मैनसिल मिला, घीकुमारी के रस के साथ अच्छी तरह घोटकर धूप में सुखा लें। बाद में इसे सराब-सम्पुट में बन्दकर गजपुट में फूंक दें। इस तरह गंधक और मैनसिल के साथ तीन पुट देने से पीतल की काजल के सदृश भस्म हो जाती है। —र० त०

इसमें ताँबे का अंश रहता है अतः वान्ति, भ्रान्ति दोष का भी रहना सम्भव है। इन दोषों को दूर करने के लिये इस भस्म को जम्बीरी नीबू के रस में घोटकर १-२ पुट और देने से उक्त दोष मिट जाते हैं और भस्म भी विशेष गुणकारी तथा निर्दोष हो जाती है।

मात्रा और अनुपान—आधा रत्ती से १ रत्ती, दिन में दो बार अनार के शर्बत या मधु से दें।

गुण और उपयोग—इसकी भस्म स्वाद में तिक्त, रूक्ष, कृमिनाशक, रक्तपित्त और कुष्ठ तथा पाण्डु को दूर करती है। प्रमेह वातविकार, अर्श, संग्रहणी, श्वास, कामला और शूल को भी नष्ट करती है। यह विषनाशक, वीर्यवर्द्धक और पलित रोगनाशक है। यह शीतल पदार्थों के साथ सेवन करने से शीतवीर्य और उष्ण पदार्थों के साथ सेवन करने से उष्णवीर्य है।

इस भस्म में ताम्र और यशद दोनों के मिश्रित गुण हैं, किन्तु यह भस्म ताम्र भस्म के समान उग्र (तेज) और यशद भस्म के समान शीत वीर्य वाली नहीं है। जिस रोगी को ताम्र भस्म सेवन करने से पेट में जलन हो, हाथ-पाँव में भी दाह तथा आँखों से गर्मी निकलती हो, कभी-कभी पेट में ज्यादे गर्मी बढ़ जाने से सम्पूर्ण शरीर की रक्तवाहिनी धमनी संतप्त हो जाती है, जिससे रक्त में खलबली मचकर देह में खुजली चलने लगती है, फिर जैसे-जैसे गर्मी कम होती जाती है वैसे-वैसे खुजली भी कम हो जाती है। ऐसी अवस्था में ताम्रभस्म न देकर पीतल भस्म देना अच्छा है।

शूल और संग्रहणी में यशद भस्म से यदि लाभ न हो तो पीतल भस्म देना श्रेष्ठ है। पित्त और कफ विकार में पीतल भस्म का प्रयोग करना अच्छा है। यह भस्म दीपन और पाचन भी है।

पुखराज

परिचय—यह भी नौ रत्नों में से एक रत्न है। इसका रंग सफेद और पीला होता है।

भस्म के योग्य पुखराज के लक्षण—जो पुखराज भारी, चिकना, स्वच्छ, मोटा, समानाकार, कोमल, अमलतास के फूल के समान पीत-वर्णयुक्त हो, वही पुखराज भस्म के लिये लेना चाहिये।

शोधन विधि—पुखराज को काँजी और कुल्थी के क्वाथ में दोलायन्त्र विधान से एक पहर तक स्वेदनकर गर्म जल से धोने पर शुद्ध हो जाता है। —र० र० स०

भस्म विधि—शुद्ध पुखराज को लेकर इमामदस्ते में कूट कपड़-छन चूर्ण में समान भाग मैनसिल, गन्धक और हरताल मिला बड़हल के रस में लगातार १२ घण्टे तक खरलकर गोला बना, सराब-सम्पुट में बन्दकर कपरौटी करके धूप में सुखाकर लघुपुट में फूंक दें। इस तरह ८ पुट देने से उत्तम भस्म बन जाती है। —र० र० स०

पिष्टी—शुद्ध पुखराज को कूट कपड़छन चूर्ण बना गुलाब जल के साथ खरल में १२ घण्टे तक घोटकर महीन पिष्टी बना छाया में सुखाकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती, शहद, मक्खन, मलाई आदि से दें।

गुण तथा उपयोग—पुखराज भस्म विष विकार, वमन, कफ, वात, मन्दाग्नि, दाह, कुष्ठ और बवासीर को दूर करती है। यह दीपन, हल्का और पाचन है। वैसे तो इसकी भस्म शीतल है किन्तु हरताल तथा मैनसिल के योग से कुछ उग्र हो जाती है। यह जठराग्नि दीपक, वीर्यवर्द्धक, बुढ़ापा को दूर करनेवाली, बुद्धिवर्द्धक, कीटाणुनाशक और पित्तवर्द्धक है।

पिष्टी भस्म से सौम्य होती है। यह दाह (जलन), और रक्त-पित्त-विकार को दूर करती है।

वंग

परिचय—यह दो प्रकार का होता है। एक हिरनखुरी और दूसरा मिश्रक। इनमें हिरनखुरी वंग भस्म के लिए ली जाती है।

हिरनखुरी वंग के लक्षण—हिरनखुरी वंग रंग में सफेद, कोमल, स्निग्ध, जल्दी गल जाने वाली, भारी और शब्दरहित होती है। यही वंग भस्म के लिये उत्तम है।

शोधन विधि—इसका शोधन नाग (पृष्ठ १५८) के समान होता है।

भस्म विधि—वंग को लोहे की कढ़ाई में अग्नि पर गलाकर उसमें पलास (ढाक-टेसू) के पुष्प, मोती की सीप का चूर्ण अथवा मुर्गे के अण्डे के छिलके का धोया हुआ चूर्ण थोड़ा-थोड़ा डालकर लोहे की कलछी से चलाता जाय, जब सम्पूर्ण वंग का चूर्ण हो जाय, तब उसके ऊपर सकोरा ढककर तब तक आँच दें जब तक वंग भस्म का वर्ण आग की तरह लाल न हो जाय। स्वांग शीतल होने पर कपड़े से छान ग्वारपाठे (घी कुमारी) के रस में मर्दन कर छोटी-छोटी टिकिया बना धूप में सुखा सराब-सम्पुट में बन्दकर गजपुट में फूंक दें। इस तरह सात पुट देने से श्वेतवर्ण की वंग भस्म मिलेगी।

—सि० यो० सं०

नोट—वंग भस्म एक बार में ४० तोले से ६० तोले तक की बनावें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती, मक्खन, मलाई, मिश्री, मधु या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

रोगानुसार अनुपान

मुख की दुर्गन्धि में—वंग भस्म १ रत्ती, शुद्ध कर्पूर २ रत्ती, सेंधा नमक २ रत्ती, इन्हें कडुआ तेल में मिलाकर मंजन करें।

शरीर पुष्टि के लिये—जायफल का चूर्ण २ रत्ती, वंग भस्म २ रत्ती में मिलाकर मधु या गाय के दूध के साथ दें।

प्रमेह में—वंग भस्म २ रत्ती, हल्दी चूर्ण ४ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती में मिलाकर मधु से दें।

अथवा—वंग भस्म १ रत्ती, गोखरू चूर्ण १ माशा में मिलाकर गोदुग्ध (मिश्री मिलाकर) के साथ दें।

अथवा—वंग भस्म १ रत्ती, नाग भस्म १ रत्ती, गिलोयसत्व ४ रत्ती एकत्र मिला मलाई के साथ दें।

पाण्डु में—वंग भस्म १ रत्ती, लौह या मण्डूर भस्म २ रत्ती, त्रिफला चूर्ण के साथ दें।

गुल्म में—वंग भस्म ३ रत्ती, सोहागे की खील ४ रत्ती में मिला मधु या गोमूत्र के साथ दें।

रक्तपित्त में—वंग भस्म १ रत्ती, प्रवालपिष्टी २ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशे मधु के साथ दें तथा ऊपर से उशीरासव पिलावें।

बलवृद्धि के लिये—वंग भस्म २ रत्ती, लौह भस्म १ रत्ती मक्खन-मिश्री में मिलाकर दें।

अग्निमांद्य के लिए—वंग भस्म १ रत्ती, पीपल चूर्ण २ रत्ती में मिला मधु से दें।

ऊर्ध्वश्वास के लिए—वंग भस्म १ रत्ती, हल्दी चूर्ण २ रत्ती में मिलाकर घृत और मिश्री के साथ दें।

शरीर की दुर्गन्धि के लिए—वंग भस्म १ रत्ती, चम्पा के फूल का चूर्ण १ माशा में मिला मधु के साथ दें।

दाह शमन के लिए—वंग भस्म १ रत्ती, नीम की पत्ती का रस १ तोला, मिश्री २ तोला मिलाकर दें।

वीर्यस्तम्भन के लिए—वंग भस्म २ रत्ती, नाग भस्म १ रत्ती, वंशलोचन चूर्ण ४ रत्ती में मिलाकर अथवा कस्तूरी आधा रत्ती, भाँग ४ रत्ती में मिलाकर मक्खन-मिश्री अथवा पान के रस और मधु में मिलाकर देना।

चर्मविकार में—वंग भस्म १ रत्ती, तबकिया हरताल भस्म आधी रत्ती में मिलाकर बावची चूर्ण १ माशे के साथ, ऊपर से खदिरारिष्ट या सारिवाद्यासव पिलावें।

अजीर्ण में—वंग भस्म १ रत्ती, सुपारी का चूर्ण १ माशा या सूखे आँवले का चूर्ण २ माशे में मिला गर्म जल से दें।

वात पीड़ा (दर्द) में—वंग भस्म १ रत्ती, लहसुन के कल्क में मिला कर खाने से वात विकार में फायदा होता है।

कुष्ठ में—वंग भस्म २ रत्ती, समुद्रफल का चूर्ण १ माशा, सम्भालू के पत्तों का रस १ तोला में मधु मिलाकर सेवन करें।

वातव्याधि में—वंग भस्म २ रत्ती, असगंध चूर्ण १ माशा, अजवायन चूर्ण १ माशा में मिलाकर मधु के साथ दें।

जलोदर में—वंग भस्म २ रत्ती, फिटकरी भस्म ४ रत्ती में मिलाकर बकरी के दूध के साथ दें।

कटिशूल में—वंग भस्म १ रत्ती, जायफल चूर्ण ४ रत्ती, असगंध का चूर्ण ४ रत्ती में मिलाकर शहद के साथ दें।

स्वप्नदोष के लिये—वंग भस्म २ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, गिलोय सत्त्व ४ रत्ती में मिलाकर शहद के साथ दें।

अथवा—वंग भस्म २ रत्ती, शिलाजीत १ रत्ती में मिलाकर गोदुग्ध के साथ सेवन करें। —भा० भै० र०

गुण और उपयोग—वंग भस्म प्रमेह, प्रदर, धातुक्षीणता, बहु-मूत्र, वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, नपुंसकता, कास, श्वास, रक्त-पित्त, पाण्डु, कृमि, मन्दाग्नि, क्षय आदि रोगों को नष्ट करती है। यह उष्ण, दीपन, पाचन, रुचिकर, बलवीर्य-वर्द्धक, वातघ्न

और किंचित् पित्तकारक है। स्त्रियों के गर्भाशय के दोष, अत्यार्तव, कष्टार्तव तथा बन्ध्यत्व दूर करने में भी यह भस्म गुणकारी है। उपदंश और सूजाक से दूषित शुक्र को शुद्ध कर सन्तानोत्पादन के योग्य बनाती है। पुराने रक्त और त्वचा का दोष भी इसके सेवन से दूर हो जाते हैं। सब प्रकार के प्रमेह विशेषतः शुक्रमेह पर वंग भस्म का प्रयोग अत्युत्तम लाभदायक है।

वंग भस्म का प्रभाव शुक्र-स्थान पर विशेष रूप से होता है। अतः यह शुक्र की कमजोरी को दूरकर शक्ति प्रदान करती है। कमजोरी किन्ही भी कारणो से क्यों न हो, सभी में वातवाहिनी शिरा तथा मासपेशियाँ शिथिल हो ही जाती हैं। इनमे शिथिलता आने का प्रधान कारण अधिक शुक्र का क्षरण होना है। जब मनुष्य प्राकृतिक (स्त्री सेवन) से या अप्राकृतिक (हस्तमैथुनादि) द्वारा शुक्र का अधिक दुरुपयोग करता है तब वातवाहिनी शिरा और माँस-पेशियाँ कमजोर होकर शुक्र धारण करने में असमर्थ हो जाती हैं जिसका फल यह होता है कि स्त्री प्रसंगादि विषयक विचार मन में उठते ही या किसी नवयुवती अथवा अश्लील तस्वीर आदि देखने मात्र से ही शुक्रस्राव होने लगता है। ऐसी दशा मे वंग भस्म का सेवन करना अच्छा है, क्योंकि यह वातवाहिनी तथा मांसपेशी की कमजोरी दूरकर इसमे सख्ती पैदा करती और शुक्र को भी गाढ़ा कर देती है जिससे उपरोक्त दोष अपने आप दूर हो जाते हैं।

स्वप्नदोष या पेशाब के साथ शुक्र जाना—यह बीमारी प्रायः पित्त प्रकृतिवाले को विशेष होती है। इसके अतिरिक्त प्रकृति-वाले को भी जो खटाई, मिठाई, कटु आदि गर्म पदार्थों का अधिक सेवन करते है उन्हे भी हो जाती है। इन पदार्थों के सेवन करने से पित्त कुपित हो रक्तवाहिनी शिरा में हलचल पैदा कर देता है, जिससे मन चंचल हो जाता और उसके विचार में भी अनेक दुर्भावनायें पैदा होने लगती है और यही विचार (भावना) स्वप्नावस्था में भी बने रहने के कारण क्षणिक उत्तेजना होकर शुक्रस्राव (स्वप्नदोष) हो जाता है।

किन्तु यह प्रारम्भिक अवस्था है। इसी प्रकार बराबर होते-होते शुक्र भी पतला हो जाता और स्नायु भी कमजोर हो जाती है। फिर तो यहाँ तक हो जाता कि स्वप्नदोष हुआ या नहीं इसका भी ज्ञान तबतक नहीं होता है जबतक धोती की तरफ निगाह नहीं पड़ती, अर्थात् उसे मालूम भी नहीं होता और स्वप्नदोष हो जाता है। यह बीमारी ऐसी है कि मनुष्य को सांसारिक सुख से सर्वदाके लिये वंचित कर देती है। वीर्य्य जब ज्यादा पतला (पानी-सा) हो जाता है, तो पेशाब के साथ आने लगता है ऐसी हालत में वंग भस्म से बढ़कर और कोई दवा नहीं है। क्योंकि शास्त्र में भी लिखा है कि जो वीर्य-रोगी वंगभस्म सेवन करता है, उसे स्वप्न में भी शुक्रस्राव नहीं होता।

वैसे तो सब प्रकार के प्रमेह पर वंग भस्म का उपयोग करने के लिये शास्त्रकारों ने लिखा है। इतना ही नहीं इसकी प्रशंसा करते हुए यहाँ तक लिखा है कि जैसे एक सिंह हाथियों के झुण्ड को मार भगाता है वैसे ही एक वंग भस्म सब प्रकार के प्रमेह को नाश कर देता है।

किन्तु अनुभव से यह बात जानी गयी है कि वंग भस्म जैसा कफ प्रमेह पर अच्छा और शीघ्र काम करता है वैसा अन्य में नहीं, विशेषतया शुक्रपात या शुक्रक्षय पर यह बहुत जल्दी असर दिखाती है।

मूत्रपिण्ड, मूत्राशय या मूत्रवह-स्रोतों पर भी इसका असर बहुत होता है। शरीर में जब रस-रक्तादि धातु का बनना कम हो जाता है, जिससे शरीर के सब अवयव कमजोर होने लगते हैं और शरीर में जलीय भाग की वृद्धि होने लगती है तब पेशाब करने के लिये बार-बार जाना पड़ता है। इसकी मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि दिन रात में २०-२५ बार पेशाब होने लगता है। ऐसी हालत में वंग भस्म का प्रयोग अमृत के समान गुण करता है। क्योंकि यह मूत्राशय तथा मूत्रवहा नाड़ी आदि को शक्ति प्रदान कर उसमें धारण-शक्ति उत्पन्न कर देती है, जिससे पेशाब की मात्रा कम हो जाती और रस रक्तादि धातु भी पुष्ट हो जाते हैं।

यदि विशेष शुक्रपात होने के कारण शरीर कमजोर हो गया हो, छाती में में कुछ दर्द रहता हो, हृदय ज्यादे धड़कता हो, छाती में कफ बैठा हुआ हो, जो कभी-कभी बड़ी कठिनता से पीला और दुर्गन्धयुक्त कुछ सफेदी लिए निकलता हो, साथ ही कभी-कभी बुखार भी हो जाता हो, मन्दाग्नि तथा बद्धकोष्ठ भी हो गया हो, तो ऐसी हालत में क्षय (राजयक्ष्मा) भी हो जाता है, इत्यादि लक्षण उपस्थित होने पर वंग भस्म का उपयोग बहुत लाभकर होता है। क्योंकि शुक्रदोष के कारण जो रोग होते हैं उनमें वंग भस्म का प्रयोग करने से वह सर्व-प्रथम शुक्रविकार को दूर कर फिर अन्य कार्य करती है। अतः इस रोग में वंग भस्म का प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

मन्दाग्नि और कोष्ठबद्धता (कब्जियत) हो जाने के कारण प्रायः पेट में छोटे-छोटे कीड़े (चुन्ने) हो जाते हैं, इससे ज्वर भी हो जाता है और यह ज्वर कभी-कभी अधिक दिनों तक रह जाता है, जिससे लोगों को विषमज्वर (मलेरिया) का संशय होने लगता है। परन्तु इसमें प्रधानतया निम्नलिखित लक्षण होते हैं, जैसे—पेट में पीड़ा होना, मुँह में पानी भर आना, जी मिचलाना आदि। इन लक्षणों से कृमि ज्वर का ज्ञान होता है। इसमें वंग भस्म अकेले या किसी और मिश्रण के साथ देने से लाभ होता है। क्योंकि वंग भस्म कृमिघ्न होने के कारण कृमियों को नष्ट कर देती या जिन कारणों से ये कीड़े पेट के अन्दर जीवित बने रहते हैं, उन कारणों को दूर कर देती है।

ज्यादे मात्रा में शुक्रपात या क्षरण होने से चेहरा पीला पड़ जाता आँखें भी कभी-कभी पीली हो जाती फिर क्रमशः सर्वाङ्ग शरीर में पीलापन का कुछ अंश दिखाई पड़ने लगता है। किन्तु पाण्डु जन्य पीलापन और शुक्रपात जन्य पीलापन में यह अन्तर होता है कि पाण्डु में रक्तकणों की एकदम कमी होकर शरीर बिल्कुल पीला-सा दिखाई पड़ता है। परन्तु शुक्रजन्य में इसके विपरीत रक्तकण रहते हुए भी पीलापन की झाँई दिखाई देती है। इसका कारण यह है कि शुक्रोत्पत्ति में जो सहायक अवयव (वातवाहिनी शिरा, प्राणवायु) हैं;

उनकी शक्ति का ह्रास हो जाने से शुक्रोत्पत्ति में बाधा पड़ती है। अतः शुक्र की कमी के कारण शरीर पीला दिखाई पड़ता, न कि रक्ताणुओं की कमी के कारण। इसमें वंगभस्म के सेवन से वातवाहिनी शिरा और प्राणवायु में सुधार हो जाता है, साथ ही शुक्र भी बनने लगता है, जिससे यह पीलापन दूर होकर रोगी स्वस्थ हो जाता है। इस रोग में वंग भस्म १ रत्ती, लौह भस्म २ रत्ती या प्रवाल पिष्टी २ रत्ती अथवा शिलाजीत २ रत्ती के साथ वंग भस्म का प्रयोग करना लाभदायक है।

कभी-कभी शरीर में शुक्र की कमी हो जाने के कारण सूखी खाँसी होने लगती है,इसमें शरीर बहुत कमजोर हो जाता है जिससे थोड़ा भी चलने-फिरने या जोर से देर तक खाँसी आने आदि से चक्कर आने लगता, आँखों के आगे अन्धेरा छा जाता, साथ ही श्वास भी उखड़ जाती है। ऐसी हालत में हरिताल मिश्रित वंगभस्म देने से लाभ होता है।

विशेष शुक्रपात होने की वजह से जो मन्दाग्नि हो जाती है, उसमें भी वंग भस्म बहुत लाभ करती है। इसमें एकाएक अन्न पर रुचि और भूख बिल्कुल बन्द हो जाती है तथा मुँह का जायका (स्वाद) भी तीता हो जाता है इत्यादि। इन लक्षणों के उत्पन्न होने पर वंगभस्म के सेवन से बहुत फायदा होता है, क्योंकि वंगभस्म दीपन-पाचन और अग्निदीपक भी है। अन्य अग्निदीपक पदार्थों (शंख-कौड़ी-भस्म, चित्रक, हींग आदि) की तरह पाचक पित्त को बढ़ा कर अग्नि को दीप्त नहीं करती, किन्तु इसका कार्य प्रथम शुक्र-स्थान पर होता है। अतः शुक्र-दोषों को दूरकर उसे पुष्ट बनाकर शरीर के अवयवों को भी बलवान बनाती और जठराग्नि को भी प्रदीप्त करती है।

नपुंसकता—ज्यादे स्वप्नदोष या हस्तमैथुन आदि के कारण वातवाहिनी और मांसपेशियाँ कमजोर हो जाने की वजह से शरीर में शुक्र नहीं रह पाता, जिससे मनुष्य काम-वासना से वंचित ही रह जाता है, ऐसी हालत में वंगभस्म का प्रयोग करना अति लाभदायक है।

कोई-कोई घाव ऐसे होते हैं, जिनमें से मवाद बराबर निकलता ही रहता है। कभी-कभी उसमें जीव भी पड़ जाते हैं। घाव को प्रातः नीम के पत्तोंद्वारा गर्म किया हुआ पानी से खूब साफ कर धोवें हो सके तो पानी में "बोरिक एसिड" या "कार्बोलिक" डाल दें तो और अच्छा। घाव पर उदूम्बर के दूध की पट्टी बांधे और प्रातःसायं १-१ रत्ती वंग भस्म मधु से सेवन करते रहने पर घाव में से निकलनेवाला मवाद बन्द हो जाता है और कृमि नष्ट हो कर व्रण भर जाता है।

प्रदर विशेष मात्रा में बढ़ गया हो अथवा स्त्रियों के डिम्बकोष कमजोर हो जाने से बीजधारणशक्ति का ह्रास हो गया हो, बीजधारक शक्ति की कमजोरी के कारण स्त्रियों में गर्भोत्पन्न करनेवाला बीज (आर्तव) की उत्पत्ति ही न होता हो या उपरोक्त कारणों की वजह से शरीर ज्यादा कमजोर हो गया हो, तो ऐसी स्थिति में वंगभस्म अच्छा काम करती है। क्योंकि वंगभस्म का असर गर्भाशय और रजो-विकार पर होता है, जिससे उपरोक्त दोष नष्ट होकर शरीर बलवान हो जाता तथा मन में प्रसन्नता उत्पन्न हो जाती और बन्ध्यापन भी दूर हो जाता है।

स्त्रियों की कटि शूल में—किसी-किसी स्त्री को रजोदर्शन काल में कमर तथा वस्तीप्रदेश (नाभि से नीचे का भाग) में दर्द होने लगता है। यह दर्द और दर्दों के समान नहीं होता, फिर भी नसों में दर्द होने की वजह से पीड़ा का बहुत अनुभव होता रहता है, इस दर्द का कारण मासिक धर्म खुल कर न होना, रजःस्राव थोड़ा-थोड़ा और रुक-रुक कर होना, मासिक धर्म का संचित होना आदि इसमें भी वंगभस्म बहुत फायदा करती है। —औ० गु० ध० शा०

अभ्रकभस्म और शिलाजीत, गिलोय (गुर्च) सत्त्व और मधु के साथ साधारणतया वंगभस्म का प्रयोग किया जाता है। स्त्रियों के श्वेत प्रदर में वंगभस्म २ रत्ती, मृगशृङ्ग भस्म १ रत्ती में मिलाकर शर्बत अनार के साथ या मिश्री की चाश्नी से दें, ऊपर से अशोकारिष्ट पीने को दें। इससे प्रदर रोग नष्ट होकर स्त्रीबीज (डिंब) भी सबल हो कर वन्ध्यत्व नष्ट हो जाता है।

शुक्र पतला होकर निकल जाने से मनुष्य शक्तिहीन हो जाता है। इसका असर दिमाग पर भी पड़ता है। जिसकी वजह से मन में अनेक दुर्भावनाएं पैदा होती हैं और इसी कारण स्वप्नदोषादि विकार भी उत्पन्न हो जाते हैं। इस रोग में वंगभस्म २ रत्ती, गिलोय का सत्त्व ४ रत्ती, शिलाजीत २ रत्ती में मिला मक्खन-मिश्री के साथ देने से रोग नष्ट हो जाता है। इससे शुक्र और शुक्रस्थान दोनों पुष्ट हो जाते और इनके पुष्ट होने से रस रक्तादि धातु पुष्ट होकर शरीर बलवान हो जाता है।

वृद्धावस्था एवं शुक्र प्रमेह तथा बहुमूत्र रोग में वंगभस्म २ रत्ती, नागभस्म १ रत्ती, अभ्रकभस्म १ रत्ती मिलाकर मधु के साथ दें। स्वप्नदोष में ईसवगोल की भूसी के साथ वंगभस्म २ रत्ती मिलाकर देने से बहुत लाभ करती है। यदि विशेष शुक्रपात के कारण नपुसकता हो गई हो, तो वंगभस्म २ रत्ती, मुक्तापिष्टी १ रत्ती, असगन्ध चूर्ण १ माशे में मिलाकर गोदुग्ध से दे। अति मैथुन या अति शुक्रपात के कारण कास, श्वास एवं क्षय रोग की उत्पत्ति हो जाती है, इसके साथ धातुक्षीणता के भी लक्षण विद्यमान रहते है। इस रोग में वंगभस्म २ रत्ती, च्यवनप्राश १ तोला, सितोपलादि चूर्ण २ माशे मे मिलाकर दें और ऊपर से द्राक्षासव पिलावें। रक्तपित्त में—प्रवालपिष्टी २ रत्ती, वंगभस्म १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशे वासावलेह के साथ दें और ऊपर से ऊशीरासव पिलावें। अप्राकृतिक मैथुन (हस्तमैथुन) आदि की आदत पड़ने के कारण पाण्डुरोग के समान चेहरा पीला पड़ जाता है। शरीर निस्तेज, कृश तथा शुष्क हो जाता है। पाचन-शक्ति मन्द हो जाती है। इस अवस्था में वंगभस्म १ रत्ती, प्रवालपिष्टी १ रत्ती, लौह भस्म आधी रत्ती पान के रस के साथ देने से विशेष लाभ होता है। मानसिक दुर्बलता में वंगभस्म और अभ्रक भस्म का मिश्रण ब्राह्मीचूर्ण के साथ देना बहुत हितकर है।

पेट में कृमि या अन्य कृमिजन्य विकार में वंगभस्म १ रत्ती, सनाय की पत्ती का महीन चूर्ण ३ माशे, मिश्री एक माशा में मिलाकर अमलतास के क्वाथ के साथ देना हितकर है। इससे कृमि नष्ट हो कर दस्त की राह से निकल जाते हैं।

शुक्र की कमजोरी के कारण अग्निमान्द्य में बंगभस्म १ रत्ती, पीपल चूर्ण ४ रत्ती में मिला मधु के साथ देना। नेत्ररोग में बंगभस्म १ रत्ती ताजे मक्खन और मिश्री के साथ देने से लाभ होता है। सूजाक में बंगभस्म १ रत्ती, मुक्तापिष्टी आधी रत्ती, चाँदी का वर्क चौथाई रत्ती, इलायची तथा वंशलोचन का चूर्ण ४-४ रत्ती में मिला मधु से देने से बहुत गुण करता है।

वज्र (हीरा)

परिचय—आयुर्वेदिक मत से हीरा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भेद से चार प्रकार का होता है। क्षत्रिय जाति का हीरा जिसमें सफेद वर्ण होते हुए भी किंचित्-लाली झाँई होती है, यह बुढ़ापा और सब रोगों को नष्ट करनेवाला होता है। ब्राह्मण जाति का हीरा सफेद वर्ण का होता है। यह रसायन कार्य के लिये उत्तम हैं। वैश्य जाति का हीरा जिसमें कुछ पीली झाँई होती है, धनदायक और शरीर को दृढ़ करनेवाला है और शूद्र जाति का हीरा जिसमें थोड़ी काली झाँई होती है व्याधिनाशक और अवस्था स्थापक होता है।

इसी तरह पुरुष,स्त्रीऔर नपुंसक भेदसे तीनजातियाँ इनकी और बतलायी गयी हैं, इनमें पुरुष जाति का हीरा उत्तम, गोल, रेखा तथा बिन्दु से रहित,चमकदार और बड़े आकार का होता है और स्त्री जाति का रेखा और बिन्दु से युक्त तथा छः कोनेवाला होता है एवं नपुंसक जाति का त्रिकोणयुक्त बड़े आकार का होता है। इनमें पुरुष जाति का हीरा श्रेष्ठ है, क्योंकि इसका प्रयोग सब रोगों तथा अवस्थाओं में होता है।

उत्तम हीरा की परीक्षा—उत्तम हीरे को कसौटी पर जोर से देर तक घिसने अथवा किसी दृढ़ पत्थर पर उसे खूब घिसने पर बिल्कुल नहीं घिसता, बल्कि अपनी तेज नोक से कसौटी, काँच आदि कठिन द्रव्यों को बड़ी आसानी से काट देता है।

शोधन विधि—हीरा को एक पहर तक कुल्थी या कोदो के क्वाथ में (दोलायन्त्र विधि से) स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है।
—र० र० स०

भस्म विधि—कुल्थी के क्वाथ में हींग और सेंधानमक का चूर्ण मिलाकर रख लें, फिर इस के काढ़े में हीरा को उत्तम चिकने खरल में घोटे, गोला बन जाने पर सराब-सम्पुट में बन्द कर लघु पुट में फूंक दें। ऐसे २१ पुट देने से कुछ सुर्खी मायल रंग की भस्म तैयार होगी। यदि सुर्खी न आवे तो एक खुला पुट देने से सुर्खी आ जायगी। —भा० प्र०

दूसरी विधि—शुद्ध हीरे का चूर्ण, रससिन्दूर, शुद्ध मैनसिल और शुद्ध गन्धक प्रत्येक समभाग लेकर एकत्र खरल में मर्दन कर सम्पुट में अच्छी तरह बन्द करके गजपुट में फूंक दें। इस तरह चौदह पुट में हीरे की भस्म अवश्य हो जाती है। रससिन्दूर प्रथम पुट में ही देना चाहिये। —र० तरंगिणी

मात्रा और अनुपान—१ रत्ती उत्तम हीरा भस्म को एक उत्तम खरल में डालकर उसमें चार माशा उत्तम रससिन्दूर मिलाकर अच्छी तरह पीसकर रख लें। आवश्यकता पड़ने पर इसमें से १ रत्ती से २ रत्ती तक की मात्रा में प्रयोग करें।

गुण और उपयोग—हीरा की भस्म रसायन और देह को दृढ़ बनानेवाली, पौष्टिक , बलदायक और कामोत्तेजक है। यह वर्ण को सुन्दर करनेवाली, सुखदायक तथा वात, पित्त, कुष्ठ, क्षय, भ्रम, कफ, वात, शोफ (शोथ), मेद, प्रमेह, भगन्दर और पाण्डु रोग नाशक है। यह सारक, शीतल, कषैला, मधुर, नेत्रों को हितकारी और शरीर को शक्ति प्रदान करनेवाली है।

हीरा भस्म नपुंसकता की अद्वितीय औषधि है। यह वृष्य (उत्पादक अंगों को बल देनेवाली) आयुवर्द्धक, नेत्र-ज्योतिवर्द्धक, बलवर्द्धक, त्रिदोष नाशक, वर्ण्य और मेधावर्द्धक है।

हीरा भस्म में रससिन्दूर या मकरध्वज मिलाकर मलाई के साथ कुछ दिनों तक सेवन करने से भयंकर नपुंसकता रोग नष्ट हो जाता है। राजयक्ष्मा में हीरा भस्म को स्वर्ण भस्म तथा रससिन्दूर के साथ मिलाकर सेवन करने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

रससिन्दूरयुक्त हीरा भस्म में कपूर, खाँड तथा छोटी इलायची के बीज का चर्ण मिलाकर इसको दूध के अनुपान के साथ निरन्तर छः महीने तक सेवन करने से तथा मधुर पदार्थों के भोजन करने से पुरुष में अनेक स्त्रियों के साथ समागम करने की शक्ति आती है। इसके सेवन से शरीर में सुन्दरता, रूप, तीव्र पाचन शक्ति, अतुल बल और प्रखर बुद्धि की प्राप्ति होती है।

वर्तलौह (जर्मनी सिल्वर)

परिचय—कांसा, ताँबा, पीतल, लौह और शीशा इन पाँच धातुओं को गला कर एकत्र मिला देने से जो धातु बनती है, उसको वर्तलौह (जर्मनी सिल्वर) कहते हैं।

शोधन विधि—वर्तलोह को अग्नि पर पिघलाकर तुरन्त ही घोड़े के पेशाब में बुझा देने से यह शुद्ध हो जाता है। —र० र० स०

भस्म विधि—शुद्धवर्तलौह (जर्मनी सिल्वर) को छोटे-छोटे टुकड़े कर उस पर समभाग गन्धक और शुद्ध हरताल लेकर नीबू के रस में घोट कर लेप कर देना चाहिये, फिर सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूंक दें। इस तरह ६-७ पुट देने से उत्तम भस्म बन जाती है। —र० र० स०

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती शहद, घृत या गिलोय के सत्त्व से देना।

गुण और उपयोग—यह पाँच धातुओं के संयोग से बनता है। अतः इसमें उन पाँचों के सम्मिश्रित गुण विद्यमान रहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य जो भस्में इसमें मिला दी जाती हैं उनके भी गुण रहते हैं। यह शीत वीर्य, अम्ल, कटु, रूक्ष, कफ, पित्त और कृमि को नष्ट करता है। त्वचा और नेत्र के विकारों में हितकर तथा रुचि-कारक अर्थात् अरुचि को नष्ट कर रुचि उत्पन्न करनेवाला है और मलशोधक भी है।

वैक्रान्त (तुर्मुली)

परिचय—यह एक विशेष खनिज है जो कि अभ्रक के साथ तथा कभी-कभी स्वतन्त्र रूप से भी प्राप्त होता है। प्रायः इसीलिये रसायन शास्त्र में अभ्रक के बाद ही इसको रखा गया है।

आजकल जौहरियों के परीक्षण के आधार पर इसका दग्ध हीरक होने की भावना लोगों के मन में है। परन्तु अभी इसका कोई निश्चय नहीं हुआ है। यह एक स्वतन्त्र खनिज है और खानों से अन्य खनिजों की भाँति आता है।

यह खनिज प्रथम सिलोन से निकलता था। किन्तु आजकल विशेष कर अफ्रिका से निकलता है और वहीं से सर्वत्र भेजा जाता है। इसके जो अनेक वर्ण के सुन्दर-सुन्दर कण (क्रिस्टल्स) आते हैं उनकी गणना रत्नों में होती है। इसके बहुमूल्य कणों को जौहरी अनेक प्रकार के आभूषणों के काम में लाते हैं।

इसके कृष्ण (काले) वर्ण के खनिज में लोहे का अंश अधिक होता है। अतः भस्मादिक काम के लिये उसे ही लेना चाहिये।

शोधन विधि—उत्तम वैक्रान्त के छोटे-छोटे टुकड़े कर कुल्थी के काढ़े में दोला यन्त्र द्वारा एक प्रहरतक स्वेदन करने से वैक्रान्त शुद्ध हो जाता है। —र० र० स०

भस्म विधि—शुद्ध वैक्रान्त मणि को सावधानी से इमामदस्ते में महीन चूर्ण कर समभाग गन्धक मिलाकर नीबू के रस में मर्दन कर गोला बना सम्पुट में बन्दकर अर्ध गजपुट में (थोड़ी आँच में) फूंक दें। ऐसे ८ पुट देने से इसकी भस्म तैयार हो जाती है। —र० र० स०

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती प्रातः-सायं मक्खन, मलाई या शहद (मधु) से दें।

गुण और उपयोग—वैक्रान्त रसों का राजा कहलाता है। अतएव हीराभस्म के अभाव में इसका प्रयोग किया जाता है और तदनुसार यह गुण भी करता है। यह त्रिदोषघ्न, ज्वर, कुष्ठ और क्षय रोगों को नष्ट करता, विषों के प्रभाव को दूर करता और शरीर

को लौह तुल्य बनाता तथा धातुओं की निर्बलता को दूर कर, धातु क्षीणता, प्रमेह आदि रोगों को नष्ट करता है।

इसके सेवन से पुराना अग्निमान्द्य नष्ट हो जाता है। मेधा (धारणा) शक्ति बढ़ाने के लिये यह उत्तम ओषधि है। स्वस्थ शरीर में इसका सेवन उत्तम रासायनिक गुणों को उत्पन्न करता है। यह भयानक सन्निपात ज्वरों में त्रिदोष को शान्त करता है और भिन्न-भिन्न रोगनाशक योगों में इसका मिश्रण करने से योगों की शक्ति बढ़ जाती है। वैक्रान्त भस्म उत्तम त्वच्य तथा राजयक्ष्मा, शोक-शोष, बुढ़ापा आदि अनेक प्रकार के शोष रोगों को नष्ट करता है। स्वस्थ शरीर में इसके सेवन से शरीर अत्यन्त मजबूत अर्थात् रोग-निवारक शक्तियुक्त हो जाता है।

धातुओं की निर्बलता में वैक्रान्त भस्म आधी रत्ती, वंग भस्म १ रत्ती, मक्खन और मिश्री में मिलाकर देने से लाभ होता है। स्वप्न-दोष की बढ़ी हुई अवस्था में वैक्रान्त भस्म आधी रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती में मिलाकर मधु या मलाई के साथ देने से लाभ होता है। स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिये वैक्रान्त भस्म चौथाई रत्ती, ब्राह्मी चूर्ण १ माशा वच मीठी का चूर्ण १ माशा में मिलाकर घृत के साथ देना चाहिये। आयुवृद्धि के लिए वैक्रान्त भस्म आधी रत्ती, आमलकी रसायन १ माशा के साथ देने से दीर्घायु प्राप्त होती है। राजयक्ष्मा तथा उरःक्षत के लिये वैक्रान्त भस्म आधी रत्ती, सुवर्ण भस्म या वर्क चौथाई रत्ती, वायबिडंग तथा छोटी पीपल का चूर्ण ४-४ रत्ती में मिलाकर च्यवनप्राशावलेह के साथ खाकर ऊपर से बकरी का दूध पीना। क्षय रोग की असाध्यावस्था में भी वैक्रान्त भस्म आधी रत्ती, रस सिन्दूर १ रत्ती, अभ्रक भस्म आधी रत्ती में मिलाकर आँवले के मुरब्बे के साथ देने से बहुत फायदा होता है। इस प्रयोग द्वारा यक्ष्मा के कितने असाध्य रोगी अच्छे होते देखे गये हैं।

विमल

परिचय—विमल और माक्षिक के विषय में रस-पद्धतिकार ने लिखा है, कि ताप्य दो प्रकार का होता है। एक विमल और दूसरा

माक्षिक। विमल गोलाई लिये, कोने और धारवाला तथा पासेदार होता है। उसके रंग-भेद से सुवर्ण विमल, रौप्य विमल और काँस्य विमल ऐसे तीन भेद माने जाते हैं। माक्षिक धार, कोने और पासे-रहित तथा वजनदार होता है। उसको अंगुलियों से खूब रगड़ने पर अंगुलियाँ काली हो जाती हैं। माक्षिक के भी उसके वर्ण के अनुसार स्वर्णमाक्षिक, रौप्य माक्षिक और काँस्य माक्षिक ऐसे तीन भेद माने गये हैं।

विमल में लोहा और गन्धक तथा माक्षिक में गन्धक, लोहा और थोड़े अंश में ताँबा पाया जाता है। इस समय बाजार में जो विशेष रूप से मिलता है और प्रायः वैद्यलोग जिसका माक्षिक के नाम से उपयोग करते हैं, बहुधा विमल ही है। —सि० यो० सं०

शोधन विधि—विमल को गर्म पानी से धोकर सुखा करके कपड़छन चूर्ण बना त्रिफला क्वाथ की तीन भावना देकर सुखा लें।

—सि० यो० सं०

भस्म विधि—शुद्ध किया हुआ विमल में से २० तोला चूर्ण लेकर लोहेकी कड़ाही में रख ऊपर से इतना गाय का घी छोड़े कि सब डूब जाय, फिर अग्नि पर चढ़ा कर कलछी या कोंचे से चलाते जायें। चलाते-चलाते जब उसमें से आग की ज्वाला उठने लगे तब कढ़ाई को उतारकर नीचे रख दें। स्वांगशीतल होने पर फिर यही विधि करें। इस तरह तीन बार करने से लाल रंग की भस्म तैयार होती है। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ रत्ती से ३ रत्ती, सुबह-शाम त्रिकटु, त्रिफला और घृत के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—विमल लोहे और गन्धक का यौगिक कल्प है। अतः रक्तवर्द्धन एवं रक्तशोधन कार्य के लिये इसकी भस्म विशेष गुणदायक होती है। पाण्डु, कामला, शोथ, क्षय, संग्रहणी, बवासीर, भगंदर आदि रोगों में रक्ताल्पता को दूरकर शरीर को नीरोग बनाने में अत्युत्तम है। यह वृष्य है अतः बल बढ़ाने में भी बहुत उपयोगी है। स्वर्णमाक्षिक लौह, मण्डूर आदि भस्मों का

प्रयोग जिन-जिन रोगों में होता है, उन-उन रोगों में विमलभस्म का प्रयोग लाभदायक है। पाण्डु (पीलिया) में विमल भस्म का प्रयोग अति हितकारी है।

परिचय—मण्डूर जितना पुराना होगा उतना ही विशेष गुण-युक्त तथा आशुफलप्रद होगा। अतएव आयुर्वेद में लिखा है कि १०० वर्ष का पुराना मण्डूर उत्तम, अस्सी वर्ष का मध्यम और ६० वर्ष का अधम गिना जाता है। ६० वर्ष से कम का मण्डूर विषवत् छोड़ने योग्य है।

जो मण्डूर भारी, चिकना, ठोस, तोड़ने पर अंजन के समान और बिना गढ्ढेवाला हो वह उत्तम होता है।

शोधन विधि—छेदरहित, वजनदार और चिकना मण्डूर लाकर उसको अग्नि में तपा-तपाकर लाल होने पर २१ बार गो-मूत्र में डालने से मण्डूर शुद्ध हो जाता है। —सि० यो० सं०

भस्म विधि—उपरोक्त रीति से शुद्ध किया हुआ मण्डूर ४० तोले से ६० तोले तक की मात्रा में लें, इसको इमामदस्ते में डालकर खूब महीन कपड़छन चूर्ण कर गोमूत्र में मर्दन कर थोड़े कंडों की आँच देकर गजपुट में फूंक दें। इस प्रकार ७ पुट गोमूत्र के, ७ पुट त्रिफला क्वाथ के और ७ पुट ग्वारपाठे के रस के दें। इस तरह २१ पुट देने से बहुत उत्तम और मुलायम भस्म बनती है। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ रत्ती से ६ रत्ती, सुबह-शाम शहद (मधु) से दें।

गुण और उपयोग—मण्डूर का प्रभाव यकृत् पर होता है। अतएव यकृत् की खराबी से होनेवाले पाण्डुरोग, मन्दाग्नि, कामला, बवासीर, शरीर की सूजन, रक्त विकार आदि रोगों में विशेष रूप से काम करता है। पाण्डुरोग में जब किसी औषध से लाभ न हो तब मण्डूर भस्म गिलोय (गुर्च) के रस अथवा पुनर्नवा के रस के साथ प्रयोग करने से आशातीत लाभ लोता है। इसके अतिरिक्त उदर रोग में भी अच्छा काम करता है।

इसकी भस्म शीतल, सौम्य और कषाय गुणवाली है। जो गुण लौह भस्म में है उससे कुछ ही कम गुण मण्डूर भस्म में पाया जाता है मण्डूर भस्म लौह भस्म की अपेक्षा शरीर पर जल्दी असर करती है, क्योंकि यह लौह भस्म से सूक्ष्म होती है। अतएव बच्चा, गर्भवती स्त्रियाँ एवं कोमल प्रकृतिवालों के लिये लौह भस्म की अपेक्षा मण्डूर भस्म का प्रयोग करना अधिक श्रेयस्कर है। मण्डूर भस्म या लौह भस्म रंजक-पित्त को सुधार करके रक्ताणुओं को बढ़ाती है। अतएव रक्ताणुओं की कमी से होनेवाले रोग इससे नष्ट होते हैं।

मण्डूर भस्म का प्रधान कार्य रक्ताणुओं की वृद्धि करना है। किसी भी कारण से रक्ताणुओं की कमी होने पर मण्डूर भस्म का प्रयोग करना बहुत लाभदायक है। पाण्डु रोग में रक्ताणुओं की कमी के कारण हृदय कमजोर हो जाता है और उसकी गति बढ़ जाती है। हृदय की गति बढ़ जाने से नाड़ी की गति में भी वृद्धि हो जाती है; क्योंकि शरीर में रक्ताणुओं की जितनी कमी होगी उतने ही शारीरिक अवयवों में भी कमजोरी होती जायगी। इन विकारों को दूर करने के लिये रक्ताणुओं की वृद्धि करनी चाहिए। रक्ताणुओं की वृद्धि के लिये ही मण्डूर भस्म का प्रयोग किया जाता है। यह रंजक पित्त को सबल बनाकर उसकी सहायता से शरीर में रक्ताणुओं की वृद्धि करने में समर्थ होता है। रक्ताणुओं की वृद्धि होने से शरीरावयव पुष्ट हो जाते हैं तथा हृदय की गति भी अपनी सीमा पर आकर नाड़ी की गति को भी उचित अवस्था पर ले आती है तथा शरीर में पाण्डुता भी कम हो जाती है। इसी कारण पाण्डु रोग के औषधियों में प्रायः मण्डूर और लौह का मिश्रण रहता ही है।

पाण्डुरोग की ही दूसरी अवस्था कामला है। इसकी उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि जो पाण्डुरोगी पैत्तिक पदार्थ का ज्यादा सेवन करते हैं उनके पित्त प्रकुपित (दुष्ट) होकर रक्त और मांस को दूषित करके कामला नामक रोग उत्पन्न कर देते हैं। इसमें आँख, मुंह, नाखून सब पीले हो जाते हैं। मूत्र पीला होना, मल (मटमैले) रङ्ग का होना, शरीर में दाह, अन्न में अरुचि आदि

लक्षण होते हैं। इस रोग में भी मण्डूर भस्म बहुत फायदा करती है क्योंकि मण्डूर भस्म शीतल है। अतः पैत्तिक रोगों में इसका असर बहुत शीघ्र होता है और इस रोग का प्रधान कारण पित्त की विकृति ही है। इसलिये निर्भय होकर इसका प्रयोग सुवर्ण माक्षिक भस्म के साथ करें। ऊपर से कुमार्यासिव का भी सेवन कराने से आशातीत लाभ होता है।

पाण्डु रोग की तीसरी अवस्था कुम्भकामला है। अर्थात् जब कामला रोग पुराना हो जाता है, तो दोष कोष्ठाश्रय होकर कुम्भ-कामला को उत्पन्न करता है। यह असाध्यावस्था है। इसमें रक्ताणुओं की कमी होते-होते शरीर में जल भाग विशेष हो जाता, जिससे सम्पूर्ण देह सूज जाती है। विशेष कर नेत्र, पेट, गाल और हाथ-पैर के ऊपर भाग में यह सूजन ज्यादा होती है। इस सूजन को दबाने से गढा पड़ जाता है, जो देर में भर पाता है। इसका कारण यह है कि दबाने से वहाँ का जल भाग दबकर अलग हो जाता, जो फिर धीरे-धीरे आकर उस स्थान की पूर्ति करता है। ऐसी स्थिति में मण्डूर भस्म के प्रयोग से शरीर में रक्ताणुओं की वृद्धि हो जल भाग को शोषित कर हृदय की गति को नियमित करते हुए सूजन कम कर देती है और शारीरिक अवयवों को भी पुष्ट कर शरीर को निरोग बना देती है।

इसी तरह यकृत् रोग के अनेक विकारों में कामला हो जाता है। अर्थात् रक्ताणुओं की कमी होने से कामला के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं। अतः इस रोग में भी मण्डूर भस्म का प्रयोग करन लाभदायक है।

हारिद्रक रोग में—यह रोग प्रायः तरुण स्त्रियों को प्रसूतावस्था के बाद में होता है। प्रसूतावस्था-अर्थात् बच्चा पैदा होने के बाद में—जो स्त्रियाँ गर्म चीजों (खटाई, मिर्च, तेल आदि) का ज्यादे सेवन करने लगती हैं तथा खाना समय पर न खाकर कुसमय में खाती है अथवा प्रसूतावस्था के पथ्य और नियमादि से वंचित रह जाती हैं, ऐसी स्त्रियों में पित्त और वायु कुपित हो शरीर के रक्त का शोषण कर निम्नलिखित लक्षण पैदा कर देता है। यथा—

भूख न लगना, कमजोरी (दुर्बलता), चक्कर आना, शरीर में दर्द तथा आँख, मुँह और हाथ-पैर की अंगुलियों में पीलापन आदि-आदि प्रारम्भिक लक्षण होते हैं। यह रोग किसी-किसी को मानसिक विकार से भी हो जाता है। इसमें भी प्रायः उपरोक्त ही लक्षण होते हैं। ऐसी अवस्था में मण्डूर भस्म अकेले या किसी उपयुक्त मिश्रण—जैसे अभ्रक, स्वर्णमाक्षिक, लोह आदि भस्म के साथ मिलाकर देने से बहुत लाभ होता है।

बालरोग—बच्चों के रोग में भी मण्डूर भस्म का प्रयोग बहुत गुणप्रद है। जैसे—यकृत् या प्लीहा वृद्धि। ये दोनों रोग ऐसे हैं कि प्रायः बच्चे को हो ही जाते हैं। इसमें भी रक्ताणुओं की कमी हो जाती है। बच्चा दुबला-पतला हो जाता, आँखें और मुँह पीले हो जाते हैं, बुखार भी हो जाता है। इसमें मण्डूर भस्म अकेले या प्रवालचन्द्र पुटी और स्वर्ण वसन्तमालती के साथ दें और शरीर पर महालक्षादि तैल की मालिश करवाने से बच्चा शीघ्र अच्छा हो जाता है।

कभी-कभी लड़कियों को छोटी आयु (बाल्यावस्था) में यकृत् या प्लीहा की वृद्धि हो जाती है या अतिसार, संग्रहणी, पेचिश आदि आन्त्रजन्य विकार हो जाया करते हैं जिससे लड़कियों में रक्ताणुओं की कमी होकर कमजोरी बढ़ जाती है। किसी-किसी को इन रक्ताणुओं की कमी बड़ी आयु (१४—१५ वर्ष) तक में भी बनी रह जाती है, जिससे बड़ी अवस्था में भी रजोदर्शन नहीं होता, शारीरिक पुष्टि या अवयवों का विकास नहीं हो पाता शरीर कान्तिहीन तथा मुँह पर पीलापन लिये हुए गाल कुछ फूला-सा मालूम होता है। कभी-कभी ज्वर भी आ जाता है। ऐसी परिस्थिति में मण्डूर भस्म देना आवश्यक है। क्योंकि बाल्यावस्था में रक्ताणुओं की कमी हो जाने से शारीरिक अवयव पुष्ट नहीं हो पाते, वे कमजोर ही बने रहते, जिससे उनके विकास में बाधा पड़ती है। रसादि धातुओं की विकृति या कमजोरी के कारण ठीक तरह से रज की भी

उत्पत्ति नहीं होती अतः रज रुके हुए रहते हैं। मण्डूर भस्म इन सब विकारों को दूर कर शरीर को स्वस्थ बना देती है।

रक्तस्राव—प्रसूतावस्था या रजोदर्शन काल में कभी-कभी स्त्रियों का विशेष रक्त निकल जाने से शरीर दुबला, अग्निमांद्य, कमजोरी, देह पीली हो जाना, मुँह का स्वाद बिगड़ जाना, शरीर में शोथ हो जाना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ये उपद्रव शरीर में से ज्यादा रक्त निकलने पर ही होते हैं। ऐसी हालत में मण्डूर भस्म स्वर्णमाक्षिक भस्म के साथ देने से रक्त की पुष्टि होकर उपरोक्त सब विकार दूर हो जाते हैं।

शरीर में रक्त या रक्ताणुओं की कमी हो जाने से हृदय की कमजोरी के साथ-साथ उसका मस्तिष्क भी कमजोर हो जाता है। जिससे उसकी स्मरणशक्ति नष्ट हो जाती, मन चंचल हो जाता, किसी भी विषय पर स्थिर विचार नहीं कर सकता, मन में अनेक तरह की शंकायें उत्पन्न होने लगती हैं जिससे उसको किसी पर विश्वास भी नहीं होता, और न अपने विरुद्ध छोटी से छोटी बात को ही सहन करने की शक्ति रखता है। ऐसी स्थिति में मण्डूर भस्म देना आवश्यक है, क्योंकि मण्डूर भस्म का प्रभाव पित्त पर बहुत पड़ता है, और उपरोक्त उपद्रव पित्त प्रकोप के कारण ही होते हैं। अतः इस भस्म के सेवन से उपरोक्त सब विकार दूर हो जाते हैं। इससे शरीर में ताकत भी आती है और रक्तादि की वृद्धि होकर पित्त भी शान्त हो जाता है। —औ० गु० ध० शा०

साधारणतया मण्डूर भस्म का सेवन त्रिकटु चूर्ण और मधु से करना चाहिए। अगर दस्त की कब्जियत हो, तो गोमूत्र का अनुपान देना ठीक है। किसी भी कारण से होने वाले शोथ में मण्डूर भस्म रामवाण ओषधि है। छोटे बालकों को मिट्टी खाने से होनेवाले पाण्डु रोग में तथा कमजोरी में मधु के साथ मण्डूर भस्म १ रत्ती की मात्रा में देना अच्छा है।

यकृत् और प्लीहा-वृद्धि में मण्डूर भस्म २ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, शंख भस्म १ रत्ती में मिलाकर मधु से देना, ऊपर से लोहासव

पिलाना। बच्चों के सूखा रोग में प्रवाल भस्म आधी रत्ती, मण्डूर भस्म आधी रत्ती, गिलोय सत्त्व १ रत्ती में मिलाकर मधु से देना विशेष लाभप्रद है।

मधु मण्डूर

भस्म विधि—१ सेर शुद्ध मण्डूर को १ प्रहर तक त्रिफला के क्वाथ में घोटकर सम्पुट में बन्द करके उसे सुखाकर इस प्रकार पुट दें, कि २ प्रहर में अग्नि शान्त हो जाय। इसी प्रकार त्रिफला के क्वाथ, गोमूत्र, घीकुमारी के रस और पंचामृत (गोखरू, मुण्डी, मूसली, गिलोय और शतावर, प्रत्येक समान भाग) चूर्ण की २१-२१ पुट दें। प्रत्येक पुट में इतनी अग्नि देनी चाहिये कि दोपहर में शान्त हो जाय। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१ से ६ रत्ती, सुबह-शाम पीपल चूर्ण और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसमें अधिक पुट लगने के कारण मण्डूर भस्म की अपेक्षा यह विशेष गुणकारी होता है। अतः जहाँ मण्डूर भस्म देने से सफलता न मिले वहाँ मधु मण्डूर का प्रयोग करना चाहिये। रक्ताल्पता, पाण्डु रोग, कामला, प्लीहा विकार, शोथ, उदर रोग आदि की यह श्रेष्ठ औषध है। यकृत् और रक्त-वृद्धि के लिये इसका प्रयोग विशेष लाभकर है। इससे शरीर में नया रक्त प्रचुर मात्रा में बढ़ता है। छोटे बच्चे, गर्भिणी स्त्रियाँ व कमजोर पुरुष इन सबके लिये यह उत्तम गुणकारी है। इसके सेवन से पाचन शक्ति, रक्त और मांस बढ़कर शरीर पुष्ट होता है।

संग्रहणी और पुरानी पेचिश में मधु मण्डूर भस्म १ रत्ती को बेल के मुरब्बा के साथ देने से फायदा होता है। कमजोरी दूर करने के लिये—मधु मण्डूर भस्म २ रत्ती घी या शहद के साथ खाना चाहिये। कृमि या तज्जन्य विकार में मधु मण्डूर भस्म १ रत्ती, वायविडंग चूर्ण १ माशा में मिलाकर मधु के साथ दें। यह भस्म साधारण मण्डूर भस्म की अपेक्षा सौम्य होती है। लगातार १४ दिन तक सेवन करने से मन्दाग्नि दूर होकर भूख लगने लगती है।

पुराने पाण्डु रोग में—मधु मण्डूर भस्म २ रत्ती, पिप्पली चूर्ण १ माशा में मिला मधु से लेने पर बहुत फायदा करती है।

मल्ल (संखिया)

परिचय—संखिया एक प्रकार का भयंकर और प्राणघातक खनिज विष है। यह रङ्ग भेद से सफेद, काला, लाल और पीला चार प्रकार का होता है। इनमें सफेद रङ्ग का संखिया अधिक तादाद में मिलने से यही औषध के प्रयोग में विशेष रूप से काम में आता है। यह देखने में सुहागे के समान और इसका स्वाद फीका होता है।

शोधन विधि—संखिये को सरौते से चने जितने छोटे-छोटे टुकड़े कर कपड़े में बाँध मिट्टी की हाँड़ी में दोलायन्त्र द्वारा गाय के दूध में धीमी-धीमी आँच पर तीन घण्टे पकावें। पीछे कपड़े में से निकाल गरम जल से धोकर सुखा लें। —सि० यो० सं०

भस्म विधि—मूली की एक सेर राख लेकर, उसमें से आधी राख एक मिट्टी की हाँड़ी में दबा-दबाकर भर दें, उस राख पर २ तोला संखिया की डली रखकर, ऊपर से बाकी राख दबा-दवा कर भर दें, फिर हाँड़ी के मुख पर ढक्कन रख कपड़मिट्टी से संधि बन्द कर दें। बाद में हाँड़ी को चूल्हे पर चढ़ा थोड़ी आँच १२ घण्टे तक देने से संखिया की भस्म हो जाती है।

दूसरी विधि—पापड़ खार चार तोले लेकर मिट्टी के एक सराब सम्पुट में उसमें से आधा पापड़ खार बिछाकर उस पर संखिया की १ तोले की डली रख उस पर बाकी पापड़ खार बिछाकर दूसरे सराब से बन्द कर कपड़ मिट्टी कर धूप में सूखा दें। सूखने के बाद २ सेर कण्डे की आँच में रख कर फूंक दें। इस तरह से १-२ पुट में संखिया की अच्छी और मुलायम भस्म बन जाती है। —चि० चं०

संखिया के फूल—१ तोला सफेद संखिया को ३ दिन पुनर्नवा के रस में घोट कर सुखा लें, फिर डमरू यन्त्र में रखकर चार प्रहर नीचे अग्नि लगावें। ऊपर के पात्र को भिगा हुआ कपड़ा रखकर

ठंडा रखें। स्वांगशीतल होने पर ऊपर के पात्र में लगे हुए संखिया के फूल निकाल लें।

इसे जाड़े के मौसम में सेवन करें। इसकी मात्रा अष्टमांश रत्ती है। इसके सेवन-काल में घी, दूध, मलाई का सेवन यथेष्ट मात्रा में करना चाहिये। ४०-५० वर्ष से विशेष आयुवालों के लिये यह अमृत तुल्य गुण करता है। परन्तु इससे कम उम्रवालों के लिये योग्य नहीं है। —आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान—आधा चावल, मुनक्का में रखकर लें, ऊपर से दूध और घी मिलाकर पीवें। अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ लें।

रसतरंगिणीकार संखिया की मात्रा के विषय में लिखते हैं, कि एक रत्ती शुद्ध संखिया लेकर उसमें १५ माशा कालीमिर्च के चूर्ण को मिला अदरख के रस से अच्छी तरह तीन दिन तक मर्दन करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लें। इसमें से १-१ गोली प्रातः-सायम् या आवश्यकतानुसार सेवन करें। इसी प्रमाण से भिन्न-भिन्न प्रयोगों की औषधों के साथ इसको मिलाकर गोली, चूर्ण आदि बना लें। क्योंकि एक रत्ती संखिया खाने से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। अतः देश-काल-अवस्था, रोगी का बल, दोष आदि का विचार करके बड़ी सावधानी से इसकी मात्रा निर्धारित करनी चाहिए।

गुण और उपयोग—इस भस्म के सेवन से मलेरिया ज्वर, उपदंश, ज्वर, गठिया, रक्त विकार, आधा शीशी, कास-श्वास, कोढ़, पक्षाघात और नामर्दी (नपुंसकता) दोष दूर हो जाता है।

संखिया की भस्म आधी चावल की मात्रा में देने से यह आमाशय में रस बनाने की क्रिया को उत्तेजित करती है। आमाशय के लिये यह एक उत्तेजक और शक्तिदायक पदार्थ है। इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है, और भूख बढ़ती है। इससे ज्यादे मात्रा में लेने से आमाशय में दाह पैदा करती और आमाशय तथा पक्वाशय में दाह और सूजन (शोथ) उत्पन्न करती है। इसका इन्जेक्शन देने से यह सम्पूर्ण शरीर में जज्ब होकर आमाशय में पहुँचता है। संखिया

की भस्म उचित मात्रा में भोजन के पहले लेने से यह दाह युक्त अपचन को और भोजन के पश्चात् लेने से दस्त और वमन को दूर करती है।

पाण्डु रोग की अनेक अवस्थाओं में इसकी भस्म दी जाती है। किसी भी अंग से रक्तस्राव होने के पश्चात् संखिया नये रक्त को बहुत शीघ्र बनाता है। इसकी भस्म हड्डियों के अन्दर मज्जा तथा रक्त में सफेद-रक्त-जीवाणुओं को बढ़ाता है।

नवीन पाण्डु रोग में संखिया की भस्म उपयोगी है। घातक पाण्डु रोग में यह रक्त रंजक कणों को बढ़ाती है। असाध्य पाण्डु रोग में जिसमें रक्त के अन्दर श्वेत जीवाणुओं की संख्या निरन्तर बढ़ती ही जाती है तथा तिल्ली और यकृत् में बहुत विकृति पैदा हो जाती है, इसमें भी इसकी भस्म अस्थायी रूप से लाभ पहुँचाती है।

मलेरिया के पश्चात् होने वाले पाण्डु रोग में इसकी भस्म देना अच्छा है। नवयुवतियों को होनेवाले ऐसे पाण्डु रोग में---जिसमें त्वचा हल्दी के रंग की-सी हो जाती है तथा मासिक धर्म की भी अनियमितता रहती है इसमें यह बहुत लाभ करती है। क्योंकि इस भस्म से शरीर के पोषण क्रिया को सहायता मिलती है। परन्तु इसके साथ में लोह या मण्डूर भस्म का मिश्रण अवश्य होना चाहिये। अन्यथा अकेली यह रक्ताणुओं को उतना नहीं बढ़ा सकेगी।

इसका इण्ट्रावेनस इंजेक्शन देने से, यह उन सूक्ष्म केशवाहिनी नाड़ियों को जो शुद्ध रक्तवाहिनी और अशुद्ध रक्तवाहिनियों को मिलानेका काम करती है, उसे फैलाकर रक्त का दबाव कम कर देती है। रक्तवाहिनियों के ऊपर इसका प्रभाव दूसरे अंगों की अपेक्षा अधिक होती है। इसीलिये इसकी कुछ अधिक मात्रा हो जाने पर आमाशय और आँतों में रक्ताधिक्य होकर उसमें सूजन पैदा हो जाती है और पानी के समान पतले दस्त होने लगते हैं।

शुद्ध संखिया १ रत्ती को १ तोला सोडावाई कार्ब में मिश्रण कर इसकी १६ मात्रा बना लें। इसमें से १ पुड़िया प्रातः और १ पुड़िया सायंकाल देने से बढ़ा हुआ श्वास का वेग कम हो जाता है।

दमे की बीमारी में इसकी भस्म का प्रयोग करना बहुत अच्छा है। इसका अधिक दिन तक सेवन करने से दमे की बीमारी में बहुत फायदा होता है। जुकाम, दमा, कठिन श्वासावरोध, आक्षेपयुक्त खाँसी और जुकाम से पैदा हुए निमोनिया में इसका असर बहुत शीघ्र होता है।

डा० ब्रण्टन के मतानुसार क्षय रोग में, यह क्षयजनित ग्रन्थियों को मुरझाकर उसके कीटाणुओं को बढ़ने से रोकता है, जिससे क्षय रोग का बढ़ता हुआ वेग रुक जाता है।

मज्जातन्तुओं पर इसको छोटी मात्रा में देने से यह मस्तिष्क और मज्जा तन्तुओं को बल देती है। इसकी भस्म बड़ी मात्रा (१॥ चावल) में देने से यह मस्तिष्क के केन्द्र-स्थान की ज्ञानग्राहक शक्ति को कम कर देती है। गतिवाहक तन्तु और मांसपेशियों पर भी इसका असर होता है। कम्प वात रोग पर भी इसका असर होता है। स्नायु सम्बन्धी बीमारी में विशेषकर हुपिंग कास (कुक्कुर खाँसी) और गलक्षत में भी यह बहुत उपयोगी है।

संखिया भस्म का त्वचा की पोषण क्रिया पर खास प्रभाव देखा जाता है। यह त्वचा की पोषण क्रिया और उसके रंग को सुधारती है। चमड़े के नीचे की चर्बी को बढ़ाती है। पसीने द्वारा बाहर निकलते समय यह त्वचा की विनिमय क्रिया को सुधारती है। कभी-कभी त्वचा पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ भी पैदा कर देती है। इसके अधिक प्रयोग से त्वचा का रंग काला पड़ जाता है।

प्राचीन चर्मरोगों में, प्रधानतया ऐसी खुजली में जिसमें खुजली चल-चलकर पपड़ियाँ उतरती हैं और ऐसी खुजली जिसमें छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाती हैं—इस तरह की खुजलियों में यह बहुत लाभ पहुँचाती है। इसी तरह विसर्प, सिर की गंज, मुँहासे और चमड़े पर होनेवाले फफोलों में भी इसके सेवन से लाभ होता है।

आधा चावल की मात्रा में इसकी भस्म को अधिक समय तक सेवन करने से यह शरीर की वृद्धि और पोषण क्रिया को बढ़ाती है। शरीर के तन्तुओं पर इसका प्रभाव फास्फोरस के समान

किन्तु उससे कुछ सौम्य होता है। अधिक दिन तक ज्यादे मात्रा में सेवन करने से यह यकृत की क्रियाशक्ति को कम करती है और ग्लायकोजन (शरीर रचना में शक्कर उत्पन्न करनेवाला एक पदार्थ) के बनने की क्रिया को कम कर प्रोटीन को नष्ट करनेवाली क्रिया को बढ़ाती है। यद्यपि इससे पेशाब के नाइट्रोजन की मात्रा में विशेष परिवर्त्तन नहीं होता तथापि पेशाब में यूरिया, एमोनिया-ल्यूसिन, ग्लायकोजन और टायरोजिन की मात्रा बढ़ जाती है। यकृत्, गुदा, क्षय और मांसपेशियों पर इसका हानिकारक प्रभाव साफ-साफ मालूम होता है।

मलेरिया के लिये संखिया एक बहुत उपयोगी वस्तु है। प्राचीन मलेरिया में जब कि पाण्डुरोग और दुर्बलता पैदा हो जाती है, यह एक बहुमूल्य औषधि का काम करती है। इस कार्य के लिये साधारणतया लौह और कुनैन में मिलाकर उपयोग किया जाता है। फीलपाँव और अण्डकोष की वृद्धि के लिये इसकी भस्म आधा चावल की मात्रा में लेते रहने से इस बीमारी में बार-बार आनेवाला ज्वर दूर हो जाता है।

संखिया के तीव्र विष का प्रभाव

अशुद्ध संखिया खाने के १५ मिनट बाद और एक घंटे के अन्दर विष के विकार प्रकट होने लगते हैं। कभी-कभी ४-६ मिनट के बाद ही इसके विष के लक्षण उत्पन्न होते देखे गये हैं। घाव के ऊपर भी संखिया का प्रयोग करने से विष के विकार उत्पन्न होने की पूरी सम्भावना रहती है।

संखिया खाने के पश्चात् शूल, तेज वमन और पतले दस्त, प्यास ज्यादे, शरीर में थकावट इत्यादि लक्षण एक साथ भयंकर रूप में उपस्थित होते हैं। संखिया खाते ही शरीर में शून्यता, मूर्छा, जी मिचलाना और उबकाई आने लगती है। पक्वाशय में दाह उत्पन्न होकर पीली वमन होने लगती है, फिर रक्त मिश्रित कफ की वमन होती है, कहीं पित्त मिश्रित वमन भी होती है। हाथ-पैर और जाँघों की मांस-पेशियों में अड़कन होती है, मुँह और गले में खुश्की आकर गला बैठ जाता है। नाड़ी हल्की, अव्यवस्थित और मन्द चलती है। पेट में दर्द, श्वास-प्रश्वास में दीर्घता, त्वचा ठण्ढी, पसीना ज्यादा आना इत्यादि लक्षण पैदा होकर दिल की धड़कन बन्द हो जाती है और रोगी मर जाता है।

विष का प्रतीकार (दर्पनाशक)—अगर किसीने संखिया खा लिया हो और वह विष आमाशय में हो तो पहले रोगी को मैनफल, रीठा अथवा और किसी उपाय से वमन कराना चाहिये, क्योंकि विष विकार दूर करने में वमन से बढ़कर और कोई, दूसरी दवा नहीं है।

वमन के पश्चात् निम्नलिखित वस्तुओं के प्रयोग से संखिया-विष की शान्ति हो जाती है।

संखिया खानेवाले को वमन-विरेचन कराने के पश्चात्—लहसोड़े के पत्तों का स्वरस १ छटाँक और पकी इमली का रस २॥ तोला मिलाकर पिला देने से विष शान्त हो जाता है।

विनौले की गिरी को गुनगुने दूध के साथ पिलाने से संखिया का विष नष्ट हो जाता है।

नीम के पत्तों का रस पिलाने से भी संखिया का विष उतर जाता है।

यदि रोगी को पके बेल का गूदा खिलाया जाय, तो विष शरीर में न फैल कर बेल के गूदा पर लिपट जाता है।

संखिया विष के रोगी को ठंडा जल न पीने को दे और न ठंडा जल से स्नान करावे, बराबर गर्म जल का ही व्यवहार करें।

संखिया विषखानेवालों के लिये घी का प्रयोग करना बहुत अच्छा है। पहले रोगी को खूब घी पिलाकर वमन कराना चाहिये। इससे सब विष घी के साथ निकल आवेगा।

संखिया-विष-खानेवाले को बारम्बार केले की जड़ का रस २॥ तोला से ५ तोला तक की मात्रा में घी के साथ देने से संखिया का विष वमन होकर निकल जाता है। —व० चं०

मयूर चन्द्रिका भस्म

भस्म विधि—मयूर (मोर) के पंख को दियासलाई या घी की बत्ती से जलाकर भस्म कर लें। पीछे पीस-छानकर रख लें ध्यान रहे पंख का पिछला चन्द्रिकावाला भाग ही विशेष गुणयुक्त होता है। अतः उतने ही अंश की भस्म करें।

मात्रा और अनुपान—२ रत्ती मधु (शहद) से दें।

गुण—हिक्का (हिचकी) और वमन में लाभदायक है।

—आरोग्य प्रकाश

माणिक्य (पद्मराग मणि)

परिचय—माणिक्य नामक रत्न दो तरह का होता है। एक पद्मराग और दूसरा नीलगन्धि। जो मणि लाल कमल के समान लाल वर्ण हो तथा स्निग्ध, भारी, दीप्तिमान, गोल और विस्तृत तथा समानावयवयुक्त हो, उसे पद्मरागमणि कहते हैं और जो नील वर्ण का तथा मध्य में रक्त वर्णयुक्त हो, उसे नीलगन्धि माणिक्य कहते हैं। भस्म के लिए दोनों लिये जाते हैं। —र० र० स०

शोधन विधि—माणिक्य के छोटे-छोटे टुकड़ों को पोटली में बाँधकर नीबू के रस में एक प्रहर तक (दोला यन्त्र में) स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि—शुद्ध माणिक्य के टुकड़ों को इमामदस्ते में कूट कपड़छन चूर्ण कर सम भाग मैनसिल गंधक और हरताल लेकर बड़हल के रस में सब को एकत्र घोटकर गोला बना सराब-सम्पुट में बन्द कर २-३ सेर कण्डों की आँच दें। ऐसे ८ पुट देने से उत्तम भस्म तैयार होती है। —र० र० स०

पिष्टी—शुद्ध माणिक्य के महीन चूर्ण लेकर अर्क गुलाब या चंदनादि अर्क के साथ लगातार खूब खरल करें। ऐसा करने से बहुत मुलायम और उत्तम पिष्टी तैयार होती है। यह पिष्टी भस्म से अधिक सौम्य होती है।

मात्रा और अनुपान—चौथाई रत्ती से आधा रत्ती दिन में दो बार मधु, मलाई, मक्खन, मिश्री आदि के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसकी भस्म या पिष्टी नपुंसकता, धातुक्षीणता, हृदय रोग, वात-पित्त विकार, ग्रहदोष, भूत बाधा और क्षय रोग दूरकर शरीर की धातुओं को पुष्ट बनाती है तथा बल-वीर्य और बुद्धि वृद्धि के लिये बहुत ही लाभदायक है। दीपन होने के कारण मन्दाग्नि में सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है।

उत्तम माणिक्य भस्म मेधावर्द्धक, मधुर रस, रसायन गुणयुक्त, उत्पादक अंगों के लिए बलदायक, आयुवर्द्धक तथा उत्तम वात, पित्त

और कफ दोषहर है। इसके सेवन से कफ का प्रकोप शान्त होता है। यह अंगों में स्निग्धता उत्पन्न करती और क्षयरोग को नष्ट करती है। जननेन्द्रिय की शिथिलता इसके सेवन से दूर होकर उसमें उत्तेजना आती है।

मोती

उत्तम मोती के लक्षण—जो मोती आकाश में तारों के समान चमकदार, चिकना, मोटा, गोल (यदि पूरा गोल न भी हो, किन्तु आबदार हो तो ले लेना चाहिये), चन्द्रमा जैसा सफेद और तौल में भारी हो, वह उत्तम होता है। भस्म या पिष्टी के लिये ऐसा ही मोती लेना चाहिये। उत्तम मोती को धान की भूसी से रगड़ने या गोमूत्र में लवण मिलाकर उसमें मलने से मोती की चमक में कोई परिवर्तन नहीं आता है। —र० त०

मोती की परीक्षा-विधि—एक हाँड़ी में गोमूत्र सेर भर डालकर उसमें १ छटाँक साँभर नमक पीसकर डाल दें, फिर उस हाँड़ी पर दोलायन्त्र की तरह एक लकड़ी रख मोती की पोटली को उस लकड़ी से इस तरह बाँधे कि पोटली गोमूत्र में डूबी रहे और पेंद से ऊपर ही लटकती रहे। उस हाँड़ी को चूल्हे पर चढ़ा ६ घण्टे की आँच देने के बाद मोती को पोटली में से निकाल धान की भूसी से मलकर देखें कि मोती के रंग में फर्क तो नहीं आया। यदि अच्छा मोती होगा, तो रंग ज्यों का त्यों ही बना रहेगा और नकली होगा तो मोती का रंग मैला-सा और आवरहित हो जायगा। —चि० चं०

नोट—जर्मनी, अमेरिका, जापान आदि देशों से नकली मोती बहुत आते हैं; जो देखने में प्राकृतिक मोती से भी अच्छे और आवदार मालूम होते हैं, परन्तु ये भस्मों के लिये अच्छे नहीं होते। मोती सबसे अच्छे बसरा के होते हैं। औषधों के काम के लिये अविध मोती तथा मोतियों के बड़े-बड़े चूरे ही काम में लेने चाहिए।

शोधन विधि—मोती को अच्छे स्वच्छ कपड़े की पोटली में बाँधकर जयन्ती (जैंत) के रस में दोला यन्त्र विधान से तीन घण्टे तक स्वेदन करने से मोती शुद्ध हो जाता है। —र० त०

भस्म विधि—मिट्टी के एक सकोरा में ग्वारपाठे का गूदा रखकर उस पर मोती के दाने रखें और ऊपर से फिर ग्वारपाठे का गूदा रख दूसरा सकोरा रख (सराब सम्पुट बना) लघुपुट में फूंक दें। इससे मोती के दाने कोमल (हाथ से मलने पर भुर-भुरे) हो जाते हैं। अब इसको ग्वारपाठे के स्वरस में घोट कर २ पुट और दे दें, तो अच्छी भस्म बन जाती है।

दूसरी विधि—शुद्ध की हुई मोतियों को एक उत्तम खरल में डालकर गोदुग्ध के साथ अच्छी तरह घोटकर सुखा लें। अब इस चूर्ण को एक सम्पुट में बन्द करके लघुपुट में फूंक दें। इस तरह तीन लघुपुट देने से मोती की चन्द्रमा के समान स्वच्छ भस्म हो जाती है। —र० त०

पिष्टी—अच्छा पानीदार बसराई मोती (छोटे अनविध दाने) लाकर उसको गरम पानी से धो, सुखा, खूब साफ किये हुए लोहे के इमामदस्ते में कूटकर सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण कर लें। फिर अच्छे (न घिसने वाले) पत्थर के खरल में डाल १ दिन नीबू के रस में मर्दन करें। नीबू का रस सूख जाने पर उत्तम गुलाब के अर्क में या चन्दनादि अर्क में मर्दन करें। आँख में डालने के अंजन जैसी सूक्ष्म पिष्टी हो जाय, तब छाया में सुखा कपड़छन करके शीशी में रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती मधु, मक्खन, मलाई, च्यवनप्राश, गुलकन्द, आँवले के मुरब्बे आदि के साथ दें।

रोगानुसार अनुपान

हृदय की धड़कन में—मोती की पिष्टी १ रत्ती, स्वर्ण वर्क चौथाई रत्ती, शहद (मधु) में मिलाकर चाटने से हृदय की धड़कन मिट जाती है।

कम्पवायु में—मोती पिष्टी १ रत्ती, विषमुष्टिकावलेह १ तोला में मिला कर देने से कम्पवायु मिट जाती है।

नेत्रों की ज्योति वृद्धि के लिये—मोती पिष्टी २ रत्ती त्रिफलादि घृत के साथ मिश्री मिला सेवन करने तथा इसी का अंजन करने से नेत्र की ज्योति बढ़ती है।

कामोद्दीपन के लिये—१ रत्ती मोती पिष्टी को २ माशे सितोपलादि चूर्ण में मिलाकर घी के साथ सेवन करें, हो सके तो चाँदी का वर्क भी चौथाई रत्ती मिला दें। इससे काम शक्ति बढ़ती है।

पित्त विकार में—मोती भस्म आधा रत्ती, गिलोय (गुर्च) सत्त्व ४ रत्ती में मधु या मक्खन मिला मिश्री के साथ सेवन करने से पित्तविकार नष्ट होता है।

ज्यादे वीर्यपात के कारण हुआ ज्वर में—अधिक वीर्यपात के कारण यदि ज्वर हुआ हो और उसमें अधिक खुश्की हो, बार-बार गश आता हो, कमजोरी भी बहुत हो तो ऐसी स्थिति में मोती भस्म १ रत्ती, चाँदी वर्क चौथाई रत्ती, गिलोय सत्त्व २ रत्ती, वंशलोचन, छोटी इलायची १ रत्ती, वंग भस्म १ रत्ती—इन सबको एकत्र कर शहद या शर्बत अनार में मिलाकर चाटने से १५ मिनट में ही पूर्ण लाभ करता है। —चि० चं०

गुण और उपयोग—मोती की अग्निपुटी भस्म में उत्तम जाति का कैल्शियम रहता है। अतः मनुष्य के शरीर में कैल्शियम की कमी से होनेवाले जितने रोग होते हैं, उन सब में मोती की अग्निपुटी भस्म का व्यवहार करने से अच्छा लाभ होता है।

इसकी भस्म मधुर और शीतल होती है तथा राजयक्ष्मा, नेत्र-रोग, वीर्य्य की कमजोरी और दुर्बलता आदि रोगों को नाश करती है। खाँसी, श्वास, कफ, क्षय और मन्दाग्नि को दूर करके यह मनुष्य को हृष्टपुष्ट बनाती है।

अग्निपुटी मोती भस्म की अपेक्षा मोती पिष्टी अधिक गुण-दायक है। अग्नि संयोग न होने के कारण मोती पिष्टी भस्म से अधिक सौम्य होती है। अग्निपुटी भस्म की अपेक्षा इसका प्रयोग भी विशेष होता तथा लाभप्रद भी है। यह पिष्टी जीर्णज्वर, रक्तपित्त, दिमाग की कमजोरी, शिरदर्द, पित्त की वृद्धि, दाह, प्रमेह और मूत्र-कृच्छ्र आदि को दूर करती है।

इसके सेवन से पित्त की तीव्रता और अम्लता कम हो जाती है तथा नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। शीतवीर्य होने के कारण यह मूत्र-

मार्ग एवं सर्वांग के दाह और पित्त वृद्धि को रोकती है। अनिद्रा रोग में मोती पिष्टी से यथेष्ट लाभ होता है।

अत्यन्त क्रोध, जागरण, ज्यादा पढ़ने, विशेष धूप में घूमने, पैत्तिक पदार्थों का विशेष सेवन आदि करने से मस्तिष्क की शिराओं में आघात पहुंचता है, जिससे शिर घूमने लगता है। विचारशक्ति कम हो जाना, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाना, किसी की बात अच्छी न लगना, बोलने में कठोरता आ जाना, निद्रा का अभाव या कम होना, दिमाग में गर्मी बढ़ जाना आदि लक्षण होने पर मुक्तापिष्टी का उपयोग बहुत अच्छा लाभ करता है। क्योंकि यह पिष्टी गुलाब जल में घुटने के कारण विशेष सौम्य होती है और यह पित्तशामक भी है तथा उपरोक्त सभी उपद्रव पित्त के बढ़ जाने से ही होते हैं। अतएव इसका प्रयोग बहुत लाभकारक है।

किन्हीं भी कारणों से जब मन में क्षोभ पैदा हो, या तेज शराब, गाँजा, भाँग, धतूरा आदि तीक्ष्ण, उष्ण और विकासी पदार्थों के अति सेवन से मस्तिष्क की विकृति होकर माथा खराब (पैत्तिक उन्माद) हो जाय, तो ऐसी स्थिति में मुक्तापिष्टी का उपयोग बहुत अच्छा गुण करती है। परन्तु इसमें केवल मुक्तापिष्टी न देकर स्वर्ण माक्षिक भस्म और प्रवाल पिष्टी मिलाकर देने से शीघ्र लाभ होता है।

इस के अतिरिक्त भूतोन्माद में—अर्थात् जिसमें रोगी जल्दी गुस्से में आ जाता हो, सबसे लड़ता ही (उलझता ही) रहता हो, ऐसे उन्माद रोग में भी यह लाभ करती है। क्योंकि मोती पिष्टी का सबसे ज्यादा प्रभाव दिमाग और हृदय पर होता है। अतः इसका प्रयोग करना उत्तम है।

मोती शीतवीर्य है। अतः गर्मी के मौसम में धूपजन्य प्रदाह को शान्त करने के लिये इसका प्रयोग करना चाहिये। कुछ आदमी ऐसी प्रकृति के होते हैं कि वे साधारण धूप भी नहीं सह सकते। उनकी बाहरी त्वचा धूप की गर्मी सहन करने में बिलकुल असमर्थ होती है जिससे गर्मी के दिनों में वे लोग बड़े परेशान (व्याकुल) हो

जाते हैं। इसका कारण यह है कि उनकी संज्ञावाहिनी शिराएँ इतने कोमल (मृदु) हो जाती हैं कि वह बाहरी गर्मी को सहन करने में एकदम असमर्थ रहती हैं। ऐसी हालत में मुक्तापिष्टी का उपयोग करना अच्छा है। इसके सेवन से गर्मीजन्य प्रदाह तो शान्त हो ही जाती है, साथ ही संज्ञावाहिनी शिराओं में भी सहन शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

गर्मी के दिनों में कड़ी धूप से, अग्नि के पास ज्यादा काम करने, रात में विशेष जागरण इत्यादि कारणों से नाक, मुँह तथा गुदामार्ग से रक्त गिरने लगता है। साथ ही हाथ, पाँव, कपार, नेत्र अथवा सर्वाङ्ग में दाह होने लगती है, जिससे दिमाग खाली हो जाता एवं बेचैनी ज्यादे बढ़ जाती है। रोगी को कहीं भी शान्ति नहीं मिलती है। ऐसी हालत में मुक्तापिष्टी का प्रयोग बहुत लाभदायक होता है। कारण, यह रक्तरोधक है। रक्तवाहिनी शिरा पर भी इसका असर होता है। अतः पित्त को शमन करते हुए रक्त की विकृति को शान्त कर उसमें गाढ़ापन पैदा कर देती है जिससे रक्त का स्राव रुक जाता है।

सूजाक या उपदंश होने के बाद या पैत्तिक पदार्थों के अधिक सेवन से या अन्य कई कारणों से पित्त के बढ़ने या पेशाब में उष्णता (तीक्ष्णता) बढ़ कर मूत्रमार्ग में जलन होने से रोगी व्याकुल हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में मुक्तापिष्टी देने से शीघ्र लाभ होता है। क्योंकि यह शीतवीर्य होने की वजह से मूत्रल भी है। इसका प्रभाव मूत्राशय या मूत्र-नलियों पर होता है।

अन्तर्दाह—ज्यादा रक्त (खून) गिरने से या अन्य कारणों से हो तो इसमें पिष्टी का उपयोग करना अच्छा है। किन्तु स्त्रियों को अपत्य पथ (योनिमार्ग) द्वारा रक्तस्राव में या प्रसव के बाद उत्पन्न हुए रक्तस्राव में मुक्तापिष्टी की अपेक्षा वंग भस्म विशेष लाभकर है। हाँ, श्वासरोग में यदि दाह (अन्तर्दाह) हो, तो मुक्तापिष्टी ही देना अच्छा है।

बार-बार आँख आने (उठने), उनमें सुर्खी (लाली) बनी

रहने, आँखों में से गर्म-गर्म आँसू निकलने आदि में मुक्तापिष्टी का उपयोग शीघ्र लाभ करता है।

पित्तज या कफ पित्तज कास मे यदि दाह हो तो पिष्टी का उपयोग करना अच्छा है।

क्षय (राजयक्ष्मा) मे—जब दाह, प्यास ज्यादे, बुखार, बेचैनी आदि लक्षण हों तो मुक्तापिष्टी का प्रयोग किया जाता है। क्षय के आरम्भ से अन्त तक जैसे प्रवालपिष्टी का उपयोग करने से लाभ होता है, वैसे ही पित्तजन्य क्षय मे आरम्भ से आखिर तक मुक्तापिष्टी का उपयोग गुणप्रद है।

पैत्तिक श्वास मे—जिसमे घबराहट हो, पेट मे दाह, सर्वाङ्ग में दाह, हाथ-पॉव मे जलन, मुँह सूखना, प्यास ज्यादे, वमन, शीतल हवा से कुछ आराम मिले, ऐसे समय मे मुक्तापिष्टी देना अच्छा है। क्योंकि ये सब उपद्रव पित्त के प्रकुपित होने मे होते है और मुक्तापिष्टी पित्तशामक है।

पित्तज अम्लपित्त मे—जब कण्ठ मे जलन हो, लाल मिर्चे लगने से जैसी जलन होती है वैसी जलन हो, गर्मी के साथ खट्टी डकारें हों तथा खट्टी वमन हो, तो मुक्तापिष्टी मे अभ्रक भस्म का मिश्रण करके देने से तुरत लाभ होता है—क्योकि अम्लपित्त के लिये अभ्रक भस्म बहुत मुफीद चीज है। यह मन्दाग्नि दूरकर कच्चे अन्न को पचाने का काम करती है और मोतीपिष्टी पित्त के विकार को शान्त कर पित्त को अपनी दशा मे लाती है। अत इन दोनो के मिश्रण देने से अम्लपित्त मे बहुत लाभ होता है।

पैत्तिक अतिसार मे जब पीले और बहुत बडी तादाद मे पतले दाह युक्त जल जैसे दस्त हों, गुदा और पेट मे दाह हो, तो मुक्तापिष्टी के प्रयोग से दाह दूर होकर पित्त की शान्ति हो जाती है और अतिसार भी बन्द हो जाता है।

वैसे ही रक्तार्श मे दाह, जलन, रक्तस्राव जलन के साथ होना, खून गर्म-गर्म गिरना और खून गिरने के बाद दाह होना, ऐसी दशा में मुक्तापिष्टी का उपयोग करने से पित्त शान्त होकर दाह कम हो

जाती और पित्त की शान्ति के साथ-साथ रक्त का भी अवरोध हो जाता है। जिससे रक्त का गिरना भी बन्द हो जाता है।

मूत्राघात अथवा मूत्रकृच्छ्र के साथ पेशाब के रास्ते से यदि खून गिरता हो, साथ में जलन तथा मूत्र थोड़ा-थोड़ा आता हो और पेशाब करने में तकलीफ मालूम पड़ती हो, तो मुक्तापिष्टी के उपयोग से पित्त शान्त होकर दाहादि उपद्रव नष्ट हो जाते और रक्त का आना भी बन्द हो जाता है। यह मूत्रल होने से पेशाब भी साफ लाती है।

रक्त पित्त रोग के कारण या रक्त प्रदर अथवा अत्यार्तव के कारण योनि मार्ग द्वारा जलन के साथ और अधिक परिमाण में रक्त निकलता हो, साथ ही खुजली भी हो, इसमें रोगिणी कभी-कभी इतना व्याकुल हो जाती है, कि जमीन पर लोटने लगती है। ऐसे समय में गुलकन्द अथवा धारोष्ण गोदुग्ध के साथ मुक्तापिष्टी देने से बड़ा लाभ होता है। साथ ही खुजली और दाह शान्ति के लिये योनि में सौ बार का धोया हुआ घी का फाया भी रखवा देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

कभी पित्त प्रकृतिवाली स्त्री की योनि में दाह, विषय भोग के समय दर्द और जलन, यह जलन इतनी तेज होती है, कि पुरुष ऐसी स्त्री के साथ सम्भोग भी नहीं कर सकता। इस अवस्था में भी मुक्ता पिष्टी के सेवन से बहुत फायदा होता है।

अनुलोमक्षय—इसमें रस धातु के क्षय से रोग शुरू होता है और उत्तरोत्तर सब धातु क्षय हो जाते हैं। शरीर दुर्बल और कमजोर हो जाता, अतिसार हो जाता, मुँह में छाले पड़ जाते, सम्पूर्ण शरीर में दाह, पेट में जलन इत्यादि लक्षण उपस्थित हो जाते हैं। पर मुक्ता पिष्टी के सेवन से ये सब लक्षण दूर होकर दाह कम हो जाती तथा रस रक्तादि धातु भी पुष्ट हो जाते हैं। —धात्वंक

नेत्र रोग में मोती पिष्टी १ रत्ती, मक्खन मिश्री या त्रिफलादि घृत १ तोला के साथ सेवन करना अत्यन्त लाभदायक है। अनुलोमक्षय में रसादि धातुओं का क्षय प्रायः दूषित जल के कारण होता है। इसमें बार-बार दस्त होते, मुँह में छाले पड़ जाते हैं, और

सर्वाङ्ग में दाह उत्पन्न हो जाता है। ऐसी अवस्था में मुक्ता पिष्टी २ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती मधु से देना चाहिये। क्षय रोग में—मोती पिष्टी १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण १ माशे के साथ च्यवनप्राश में मिला कर देने से विशेष लाभ होता है। दाह, बेचैनी, तीव्र ज्वर, प्यास आदि पित्त प्रधान लक्षण हों, तो मोती पिष्टी १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती घृत के साथ देने से विशेष एवं निश्चित रूप से फायदा करती है।

उरःक्षत में मोती पिष्टी २ रत्ती, च्यवनप्राशावलेह १ तोला में मिला कर सेवन करने से विशेष लाभ होता है। हृदय की निर्बलता में—मुक्ता पिष्टी १ रत्ती, अकीक पिष्टी १ रत्ती, आँवले के मुरब्बा के साथ देना अच्छा है। ऊपर से अर्जुनारिष्ट १ तोला या अर्जुन घृत १ तोला में पाव भर दूध मिला कर पीना चाहिये।

पित्त प्रधान कास और श्वास रोग में मोती पिष्टी १ रत्ती, च्यवनप्राश १ तोला, सितोपलादि चूर्ण १ माशे में मिलाकर सेवन करने से रोग शीघ्र शान्त हो जाता है।

जीर्ण ज्वर में रोगी अत्यन्त दुर्बल तथा शक्ति हीन हो जाता है। ऐसी दशा में मुक्ता पिष्टी १ रत्ती, स्वर्ण बसन्त मालती १ रत्ती, गिलोय सत्त्व २ रत्ती सबको एकत्र मिला मधु के साथ दें।

तेज शराब, भाँग, गाँजा आदि के अधिक सेवन करने से पित्त दूषित होकर उन्माद रोग हो जाता है। इसमें स्वर्ण माक्षिक भस्म आधा रत्ती, प्रवाल पिष्टी आधी रत्ती, मुक्ता पिष्टी १ रत्ती में मिला कुष्माण्डावलेह या ब्राह्मी घृत १ तोला में मिला कर देने से अच्छा लाभ होता है।

गर्मी के मौसम में उष्ण आहार-विहार के कारण नाक, मुँह, गुदा, एवं मूत्र आदि मार्गों से रक्त निकलने लगता है, तथा कोमल प्रकृति वाले मनुष्य को गर्मी के कारण बेचैनी आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में मोती पिष्टी १ रत्ती, गुलकन्द २ तोला में या आँवले के मुरब्बा में मिलाकर देने से लाभ होता है।

दिमाग की कमजोरी में १ रत्ती मुक्ता पिष्टी, स्वर्णवर्क चौथाई

रत्ती, मकरध्वज आधी रत्ती मलाई के साथ सेवन करने से आश्चर्य-जनक लाभ होता है।

पैत्तिक शिर दर्द में मोती पिष्टी १ रत्ती, बादाम का हलुआ १ छटाँक में मिलाकर सेवन करने से शीघ्र फायदा होता है। ४० दिन तक लगातार इसके सेवन करने से स्थायी लाभ होता है।

पित्त की अम्लता और तीक्ष्णता की अधिक वृद्धि होने पर मोती पिष्टी १ रत्ती, शर्बत अनार के साथ देना हितकर है।

पित्तज प्रमेह में दाह और उष्णता बढ़ जाने पर मोती पिष्टी १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी आधी रत्ती और गिलोय सत्व २ रत्ती में मिला शहद (मधु) के साथ सेवन करने से विशेष लाभ होता है।

मूत्र कृच्छ्र, मूत्राघात, मूत्र के साथ रक्त जाता हो या पेशाब के रास्ते खाली रक्त जाता हो, तो मोती पिष्टी १ रत्ती, कुकरौंधे का रस १ तोला, मधु मिला कर देने से तुरत गुण करती है।

अनिद्रा में—मोती पिष्टी १ रत्ती, स्वर्ण माक्षिक भस्म आधी रत्ती में मिलाकर मक्खन के साथ सेवन करें।

गर्भोपद्रव या गर्भ की पुष्टि के लिये—मोती पिष्टी १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशे में मिला कर गुलकन्द २ तोला या आँवले के मुरब्बा १ तोला के साथ देने से गर्भ पुष्ट हो जाता है।

मौक्तिक शुक्ति (मोती सीप)

परिचय—समुद्र के अन्दर दो प्रकार की सीप होती हैं, एक वह सीप जो मोती पैदा करती है और दूसरी वह जिसमें मोती पैदा नहीं होते। इसमें प्रथम प्रकार की सीप को मोती सीप तथा दूसरी को जल सीप कहते हैं। मोती की सीप बहुत बड़ी और दल-दार और अन्दर में मोती के ही समान चमकवाली होती है। इसी सीप की भस्म बनायी जाती है।

शोधन विधि—अच्छी, बड़ी, छेद रहित, वजनदार मोती की सीप लाकर उसको मिट्टी के घड़े में डाल ऊपर से जल और थोड़ा

नीबू का रस गेरकर मन्दाग्नि (मंद आँच) पर एक घण्टा पका लें, पीछे जल से निकाल कर धो करके सुखाकर रख लें।—सि० यो० सं०

भस्म विधि—इसकी भस्म कौड़ी भस्म की तरह बनावें। (देखें पृष्ठ १२३)।

पिष्टी—शुद्ध मुक्ताशुक्ति को लेकर अच्छे साफ किये हुये लोहे के इमामदस्ते में कूट कपड़छन चूर्ण कर लें, पीछे अच्छे पत्थर की खरल में चन्दनादि अर्क अथवा गुलाबजल के साथ तबतक खरल करें, जब तक खूब महीन न हो जाय, फिर छाया में सुखाकर कपड़छन कर शीशी में भर लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—२ से ४ रत्ती, शहद, ताजा मक्खन या दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—मोती सीप चूने का सेन्द्रिय कल्प है। गुण धर्म में यह मोती की अपेक्षा गुणों में कुछ कम है। अग्निपुटी भस्म की अपेक्षा पिष्टी विशेष लाभदायक होती है। क्षय, श्वास, खाँसी, जीर्ण ज्वर, नेत्रदाह, हृद्रोग, पित्तज दाह, पित्तप्रधान अरुचि, पित्तज परिणाम शूल, यकृत्, वमन, पित्तातिसार अम्लपित्त, रक्त और श्वेत प्रदर आदि रोगों में अत्यन्त लाभप्रद है। पित्त मिश्रित कफदोष, रस, रक्त, माँस और अस्थियों के दोष तथा आमाशय, यकृत्, प्लीहा, ग्रहणी आदि स्थानों पर इसका विशेष असर होता है।

वास्तव में यदि देखा जाय तो शुक्ति, शंख, कपर्द, ये सब एक ही सेन्द्रिय चूने के प्रकार हैं। परन्तु शुक्ति भस्म शंख भस्म की अपेक्षा कम तीव्र है। इन तीनों भस्मों के गुण-धर्म भी पृथक्-पृथक् हैं, शंख और कपर्दक (कौड़ी) भस्म में साधर्म्य है, तथा मुक्ता और मुक्ताशुक्ति भस्म में विशेष साधर्म्य है। यदि मुक्ताशुक्ति भस्म, मोती भस्म की तरह बनायी जाय, तो मुक्ताशुक्ति भस्म भी विशेष गुणकारी हो सकती है, परन्तु ऐसा न होकर मुक्ताशुक्ति भस्म खुला गजपुट द्वारा बनायी जाती है, इसीसे उसमें तीव्रता आ जाती है। किन्तु उतनी तीव्रता नहीं आती, जितनी कपर्द या शंख भस्म में रहती है। अतएव शुक्ति भस्म छोटे बच्चे, कोमल प्रकृतिवाली स्त्री और पुरुषों को भी दी जाती है।

शुक्ति भस्म से मुँह का जायका अच्छा बन जाता है, जिससे अम्लपित्त, पित्तजशूल, अन्नद्रवशूल, परिणामशूल आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

अम्लपित्त रोग में शुक्ति भस्म २ रत्ती, स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती के साथ देने से पित्त की शान्ति होकर सब उपद्रव कम हो जाते हैं। विदग्धाजीर्ण में जब खट्टी डकारें दाह के साथ आती हों, गले में हरदम जलन रहती हो तो शंख भस्म की अपेक्षा मुक्ता शुक्ति भस्म देना अच्छा है। कोमल प्रकृतिवाले को रसाजीर्ण हो गया हो तो शंख भस्म की अपेक्षा शुक्ति भस्म ही देना ठीक है, क्योंकि इसमें तीव्रता कम होती है। अतः कोमल प्रकृतिवाले इसे अच्छी तरह सहन कर लेते हैं और इस भस्म के सेवन से अग्नि (जठराग्नि) प्रदीप्त हो कच्चा अन्न को पचा देती है, जिससे पुनः अजीर्णादि विकार नहीं होते।

पित्तातिसार में जब दस्त बहुत लगते हों, हरे, पीले, काले, लाल रंग के दस्त आते हों, साथ ही प्यास भी लगती हो, देह में जलन हो, चक्कर आवे, कभी-कभी गश (बेहोशी) भी हो जाय इत्यादि लक्षण उत्पन्न होने पर शुक्ति भस्म दाड़िमावलेह या शर्बत अनार के अथवा मक्खन के साथ दें, इसी तरह पित्तजन्य वमन में जब अत्यन्त गर्म व कड़वी वमन हो, हरे, पीले रंग के पित्त वमन में गिरे, गले में धूएँ-सी जलन हो, पेट में दाह हो, नेत्र के सामने अन्धेरा छाकर मूर्च्छा आ जाय इत्यादि लक्षण होने पर शुक्ति भस्म का उपयोग करने से दूषित पित्त शमन होकर छर्दि (वमन) बन्द हो जाती है।

पित्तजन्य गुल्म में—जब ज्वर और प्यास ज्यादे हो, आँख और मुँह लाल हो गये हों, अन्न पचते समय दर्द हो, गुल्म में इतना दर्द हो कि रोगी किसी को छूने तक भी न दे, ऐसी स्थिति में शुक्ति भस्म देने से पित्त विकार शान्त हो जाता और साथ ही अपनी तीव्रता गुण के कारण यह गुल्म को भी गला देती है। पित्तज गुल्म, अष्ठीला या विद्रधि के समान मांसपिण्ड की वृद्धि होकर कठोर नहीं बनता, अतः इसे गलते देर नहीं लगती है।

रक्तगुल्म में भी शौक्तिक भस्म का उपयोग किया जाता है, बशर्ते कि साथ में पित्त दोष की आधिक्यता हो, पित्तज अर्थात् पित्त से होने वाले शिर दर्द में शौक्तिक भस्म मधु या बादाम के हलुआ के साथ दें, मूत्रकृच्छ्र, दाँत या और किसी भी राह से खून गिरने की आदत पड़ गयी हो तो वैद्य लोग शंख या कपर्द भस्म का प्रयोग करना अच्छा समझते हैं, किन्तु अनुभव से ज्ञात हुआ है कि यदि इसमें शुक्ति-भस्म दिया जाय तो अच्छा लाभ दिखलाती है।

कोष्ठगत वायु भी शौक्तिक भस्म के सेवन से शान्त हो जाता है, यह वायु विशेष बढ़ जाने पर श्वास, कलेजे में वात के योग से गुब्बारा (भारीपन) मालूम होना, पेट में दर्द होना, यकृत में जलन मालूम होना, हाथ-पैर में झंझनाहट या चीटी चलने के समान मालूम होना, रक्तवाहिनी शिरा शिथिल हो जाना, जिससे रक्त का प्रवाह अच्छी तरह न होने से हाथ-पाँव में शीतलता आ जाना इत्यादि लक्षण उत्पन्न होने पर शुक्ति भस्म देने से कोष्ठगत वायु शमन होकर इससे होने वाले जितने उपद्रव होते हैं सब शान्त हो जाते हैं।

पित्त की विकृति से उत्पन्न होनेवाली अरुचि में जब मुँह का स्वाद फीका हो गया हो, मुँह से दुर्गन्ध आती हो, खट्टा, मीठा, चरपरा या कड़वा मुँह हो गया हो, तो शुक्ति भस्म देने से बहुत लाभ होता है। —धात्वंक

क्षय की प्रत्येक अवस्था में मोती सीप भस्म २ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, गिलोय सत्व ३ रत्ती, च्यवनप्राश या आँवले के मुरब्बा के साथ सितोपलादि चूर्ण २ माशे में मिलाकर दिन भर में तीन बार देना। खाँसी और श्वास ज्यादे बढ़ी हुई हो तो शुक्ति भस्म २ रत्ती, वासावलेह १ तोला में मिलाकर देने से तुरत लाभ होता है।

जीर्ण ज्वर में—वसन्तमालती १ रत्ती, शुक्ति भस्म २ रत्ती, गुर्चसत्व २ रत्ती, मधु के साथ देना बहुत हितकर है।

नेत्र रोग में—त्रिफलाघृत १ तोला के साथ शुक्ति भस्म २ रत्ती मिलाकर दें, हृदय रोग में शुक्ति भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती,

अर्जुन घृत में मिलाकर दें, ऊपर से गोदुग्ध या अर्जुनारिष्ट १ तोला बराबर जल मिलाकर देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

पित्त विकार में आँवले का मुरब्बा, मक्खन, मलाई, गुलकन्द आदि के साथ मुक्ताशुक्ति का उपयोग करना अच्छा है। अरुचि और वमन में मुक्ताशुक्ति पिष्टी १ रत्ती, नीबू रस में या मिश्री की चाशनी में या कमला नीबू के रस के साथ देना चाहिये।

परिणाम शूल में—हिंग्वष्टक चूर्ण ३ माशे, शंख भस्म २ रत्ती, मुक्ताशुक्ति पिष्टी २ रत्ती एकत्र मिलाकर गर्म जल से दें। यकृत शूल में नवायसलौह ४ रत्ती, मुक्ताशुक्ति पिष्टी १ रत्ती मधु के साथ दें।

पित्तातिसार में—शर्बत अनार या बेल के मुरब्बा के साथ मुक्ताशुक्ति १ रत्ती की मात्रा में दें। अम्लपित्त रोग में मुक्ता शुक्ति पिष्टी १ रत्ती, कौड़ी भस्म १ रत्ती, मिश्री १ माशे में मिला मधु के साथ दें। रक्तप्रदर में मुक्ता शुक्ति पिष्टी १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती मधु में मिलाकर अशोकारिष्ट के साथ दें, श्वेत प्रदर में मुक्ता शुक्ति पिष्टी १ रत्ती, शृंग भस्म २ रत्ती, चावल के धोवन के साथ मिश्री २ माशे में मिलाकर दें।

राजावर्त (लाजवर्द)

परिचय—जो राजावर्त (लाजवर्द) स्वच्छ, चमकीला और मलरहित, स्निग्ध (चिकना) और नीलवर्ण, भारी तथा मयूर के कण्ठ के सदृश प्रकाशवाला हो, उसे उत्तम राजावर्त्त समझना चाहिये।

शोधन विधि—नीबू के रस में यवक्षार और गोमूत्र मिलाकर दोलायन्त्र द्वारा दो या तीन बार एक-एक पहर तक स्वेदन करने से राजावर्त्त शुद्ध हो जाता है। —र० र० स०

दूसरी विधि—राजावर्त्त को शिरीष पुष्प के रस और अदरक रस दोनों को एकत्र मिलाकर दोलायन्त्र विधि से स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है। —र० र० स०

भस्म विधि—शुद्ध राजावर्त लेकर इमामदस्ते में महीन चूर्ण

बना समान भाग गन्धक और नीबू के रस के साथ खरल में घोटकर छोटी-छोटी टिकिया बना धूप में सुखा, सराब-सम्पुट में बन्दकर गजपुट में फूंक दें। इस तरह ७ पुट देने से उत्तम और मुलायम भस्म तैयार होती है। —र० र० स०

मात्रा और अनुपान—१-२ रत्ती, दिन भर में २ बार—मिश्री, मलाई, मधु या घृत से दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से पित्त प्रकोप शान्त होता है और शरीर में मांसादि धातुओं की वृद्धि होने से शरीर मोटा हो जाता है। यह पाण्डुरोग तथा प्रमेह और क्षय रोग को नष्ट करता है। इसके सेवन से पुरातन मदात्यय रोगजन्य उपद्रव शान्त हो जाते और वमन तथा हिक्का रोग नष्ट होते हैं।

राजावर्त (लाजवर्द) की भस्म में सम भाग रजत (चाँदी) भस्म और स्वर्ण माक्षिक भस्म मिला, गो-घृत, शहद और मिश्री के अनुपान से मदात्यय रोग में दें। इसी तरह राजावर्त भस्म में रस-सिन्दूर और ताम्र भस्म, मुलेठी चूर्ण मिलाकर रखें। इसमें से उचित मात्रा लेकर शहद और गो-घृत के साथ सेवन करने से भी मदात्यय रोग नष्ट हो जाता है। राजावर्त भस्म में समानभाग अभ्रक भस्म और कान्त लौह मिलाकर कुछ दिन तक सेवन करने से प्रमेह रोग नष्ट होता है।

रौप्य (चाँदी)

चाँदी एक सुप्रसिद्ध धातु है। हिन्दुस्तान में बहुत प्राचीन काल से यह औषध प्रयोग के काम में आती है। इसकी गणना खनिज द्रव्यों में की जाती है। इसकी खानें—अमेरिका, सीलोन और चायना में हैं। बहुत-सी बड़ी-बड़ी नदियों की रेत में भी चाँदी के छोटे-छोटे कण पाये जाते हैं। हिन्दुस्तान के अन्दर भी कई बड़ी-बड़ी नदियों की रेत में इसके छोटे-छोटे कण पाये जाते हैं।

भस्म करने योग्य चाँदी—जो तौल में भारी, चिकना, कोमल और आग में तपाने तथा तोड़ने में सफेद, घन की चोट को सहन करने-

वाली, सुन्दर वर्ण और चन्द्रमा के समान निर्मल, इन गुणों से युक्त हो ऐसी चाँदी भस्म के लिये अच्छी होती है। —र० र० स०

शोधन विधि—चाँदी के (कंटकवेधी) पत्रों को आग में तपा-तपाकर तैल, गो-मूत्र, मठ्ठा, काँजी और कुलथी के क्वाथ में ३-३ बार बुझाने से शुद्ध हो जाती है।

भस्म विधि—चाँदी के पत्र से दूनी हरताल को सत्यानासी के क्वाथ में महीन पीस, शुद्ध चाँदी के पत्रों पर लेपकर सुखा, सम्पुट में रख, कपड़-मिट्टी कर १ सेर कण्डों की आँच का पुट दें। दूसरे पुट में आधी और तीसरे पुट में चौथाई हरताल लेवें, इस प्रकार १० पुट दें। क्रमशः आँच थोड़ी-थोड़ी बढ़ाते जायें, पीछे गुलाब के फूलों के स्वरस में पीस, टिकिया बना, सुखा, सराबसम्पुट में रख ५ सेर कण्डों की आँच दें। ऐसे तीन पुट देने से उत्तम भस्म बनती है और इसी भस्म को रस-रसायन के काम में लावें। —सि० यो० सं०

नोट—रौप्य भस्म एक बार में ५ से २० तोले तक बनावें। इससे ज्यादे एक बार में भस्म करने से अच्छी भस्म नहीं बनती है।

दूसरी विधि—चाँदी के शुद्ध कंटकवेधी पत्र को कैंची से खूब महीन काट लें। इसमें दूना हिंगुल (सिंगरफ) मिला नीबू के रस में घोट गोला बना कपरौटी की हुई मिट्टी की हाँड़ी में रखें, उस हाँड़ी के मुख पर दूसरी हाँड़ी औंधी रखकर सन्धि बन्द करके सुखा लें। इस उद्धर्वपातन यन्त्र को आँच पर रखें, आँच थोड़ी-थोड़ी देते रहें, ऊपरवाली हाँड़ी की पेंद पर कपड़ा भिगो-भिगोकर रखते जायें जिससे हाँड़ी की पेंद ठंडी बनी रहे। इस तरह ४-५ घंटे तक आँच देने के बाद आँच बन्द कर दें। स्वाँग शीतल हो जाने पर सावधानी से हाँड़ी को नीचे उतार कर खोलें, उसमें ऊपर की हाँड़ी में लगा हुआ पारा निकालकर रख लें और नीचे से चाँदी निकालकर पुनः सिंगरफ में डालकर गोला बना पूर्ववत् यन्त्र में रख कर भस्म करें। ऐसे १० पुट देने से चाँदी की भस्म हो जायगी, फिर इसे घीकुमारी के रस में घोटकर छोटी-छोटी टिकिया बना धूप में सुखा सराब संपुट

में बन्दकर १ सेर कण्डों की आँच में फूंक दें। ऐसे ५-७ पुट देने से उत्तम और मुलायम भस्म बन जाती है। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान--१ रत्ती, सुबह-शाम, मधु, घृत, मलाई, मक्खन मिश्री आदि के साथ दें।

रोगानुसार अनुपान

शारीरिक दाह में—चीनी १ माशा और चाँदी भस्म आधा रत्ती में मिला कर दें। ऊपर से धनिये का हिम पिला दें।

बढ़े हुए वात और पित्त दोष में—चाँदी भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, छोटी इलायची चूर्ण २ रत्ती मधु के साथ या आँवले के मुरब्बे के साथ दें।

प्रमेह में—चाँदी भस्म १ रत्ती, छोटी इलायची चूर्ण, दालचीनी चूर्ण, और तेज पत्र का चूर्ण प्रत्येक ३-३ रत्ती में मिला शिलाजीत के साथ गोली बना मलाई या मक्खन के साथ दें।

अथवा—चाँदी भस्म १ रत्ती, वंग भस्म १ रत्ती, शिलाजीत १ रत्ती शहद के साथ दें।

पाण्डु रोग में—चाँदी भस्म १ रत्ती, मण्डूर भस्म १ रत्ती, त्रिकुट (सोंठ, पीपल, मिर्च) चूर्ण ४ रत्ती में मिला शहद से दें।

ज्वर में—चाँदी भस्म १ रत्ती, छोटी पीपरि चूर्ण और इलायची चूर्ण २-२ रत्ती में एकत्र मिलाकर दें। धनिया का अर्क २ तोला ऊपर से पिला देने से नवीन ज्वर दूर हो जाता है।

वायु दर्द में—चाँदी भस्म १ रत्ती, बच का चूर्ण १ माशे में मिलाकर सेवन करें, ऊपर से गो-दुग्ध पावभर पीवें।

उन्माद और अपस्मार में—चाँदी भस्म १ रत्ती, बच और ब्रह्मदण्डी का चूर्ण ३-३ रत्ती, घी के साथ दें।

हिचकी (हिक्का) में—चाँदी भस्म १ रत्ती, आँवला और पीपर के चूर्ण २-२ रत्ती में मिला मधु के साथ दें।

वीर्य वृद्धि के लिये—चाँदी भस्म १ रत्ती, मोती भस्म आधी रत्ती, वंशलोचन, छोटी इलायची, केशर का चूर्ण प्रत्येक दो-दो रत्ती शहद में मिलाकर दें। ऊपर से गोदुग्ध मिश्री मिला हुआ पीवें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से त्वचा का वर्ण निखर आता है। अतः यह त्वच्य है। यह भस्म वातहर और कफ प्रकोप-नाशक है। यह रस कषाय रस के अतिरिक्त अम्लरस, सर तथा उत्तम लेखन है। यह भस्म वयः-स्थापक तथा बलवर्द्धक है। यह शीत होने से पित्त प्रकोपजन्य दाह में लाभ करती है। मस्तिष्क के पोषक होने से स्मरण शक्ति बढ़ाती है और शरीर में ओज शक्ति की पुष्टि करने से कान्तिवर्द्धक है। इसके सेवन से तृष्णा तथा मुख शोष शान्त होता है। शिरोविकार के कारण होनेवाले चक्करों में विशेष लाभ करती है। गर्भाशय शोधन के लिये यह बहुत उत्तम है। इसके सेवन से पित्त प्रकोपजन्यरोग तथा प्रमेह आदि रोग दूर होते हैं। शरीर में से वात प्रकोप को दूर करने के कारण वातिक संस्थान को स्वस्थ-सबल और क्षोभ रहित करने के कारण यह आयुष्य कही जाती है। आँतों में वात प्रकोपजन्य विदग्धाजीर्ण में यह विशेष लाभदायक है। मदात्यय के कारण होनेवाले अग्निमान्द्य को दूर करती है। ज्वर, विशेषतः पुरातन ज्वरों और प्लीहोदर रोग को शान्त करती है। क्षय-रोग के लिए स्वर्ण समान ही गुणदायक है। नाड़ीशूल और अपस्मार के लिए बहुत उत्तम द्रव्य है। —र० त०

रौप्य भस्म का विपाक मधुर, कषाय और अम्ल रसात्मक, शीतल, सारक, लेखन, रुचिप्रद और स्निग्ध होता है। यह बृंहण गुण होने के कारण प्रकुपित वात को शमन करती है। बीसों प्रकार के प्रमेह, वातरोग, पित्त-विकार, नेत्ररोग, क्षय, वात प्रधान कास, प्लीहा वृद्धि, यकृत वृद्धि, धातुक्षीणता, अपस्मार, हिस्टीरिया आदि रोगों में रौप्य भस्म का उपयोग अतिलाभदायक है। यह मूत्र पिण्डों का शोधनकर उन्हें शुद्ध और बलवान बनाती है।

चाँदी भस्म बृंहण है। अतएव वातवाहिनी शिरा और रक्तवाहिनी स्नायुओं पर इसका असर ज्यादा पड़ता है। इसीलिए यह वातशामक भी कहा गया है। पुराने पक्षाघात तथा कलायखंजादि रोगों में बहुत शीघ्र यह अपना प्रभाव दिखलाती है। रक्तवाहिनी शिरागत वायु के प्रकोप होने से शरीर में दर्द तथा रक्तवाहिनी

शिरा का संकोच और जकड़ जाना, अन्तरायाम, बहिरायाम, और कुलंजादि वात रोगों की उत्पत्ति होती है। इस वातप्रकोप का शमन रौप्यभस्म से बहुत शीघ्र होता है। क्योंकि यह वातवाहिनी शिरा और रक्तवाहिनी शिरा में प्रवेशकर रक्त और वायु का संचालन अच्छी तरह से करती है और रक्त तथा वायु का शरीर में संचालन होने से वातादिक दोष हो ही नहीं सकते। अतः उपरोक्त वातजन्य विकार शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

यदि उपरोक्त वातविकार केवल वातजन्य ही हो तो रौप्य भस्म से अच्छा हो जायगा, अन्यथा धातुर्गभित योगराज गूगल देना उत्तम होगा।

अत्यन्त परिश्रम , जागरण, विशेष चिन्ता या शोक करने से वात का प्रकोप होता है और दिमाग की शक्ति क्षीण हो जाती है। इसकी बजह से शरीर में थकावट, बेहोशी, चक्कर आना इत्यादि लक्षण उपस्थित हो जाते हैं, ऐसी दशा में रौप्य भस्म का उपयोग करना बहुत अच्छा है। उक्त कारणों से शिर में दर्द हो, यह दर्द कभी विशेष और कभी कम हो जाय, तो रौप्य भस्म देने से शीघ्र लाभ होता है। इसमें यदि पित्त की विशेषता हो तो मुक्ता भस्म के साथ रौप्य भस्म दें। और यदि केवल वात की ही वजह से दर्द होता हो, तो केवल रौप्य भस्म ही देना उत्तम है। क्योंकि रौप्य भस्म वातघ्न होने से तज्जन्य विकारों को नष्ट कर देती है।

वातवाहिनी शिरा की विकृति रौप्य भस्म के सेवन से दूर हो कर, उसमें यह साम्यता भी ला देती है। अतएव अपस्मार, उन्माद और विशेषतया आक्षेपक की प्रकोपावस्था में रौप्य भस्म का उपयोग करने से बहुत लाभ होता है। स्त्रियों को वात प्रधान भूतोन्माद में रौप्य भस्म का सेवन कराना श्रेष्ठ है। कारण वात प्रकुपित होकर वातवाहिनी नाड़ी और रक्तवाहिनी में विकृति (विकार) उत्पन्न कर देता है, जिससे मनोवाहिनी शिरा दूषित हो उपरोक्त अपस्मरादि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में रौप्य भस्म देने से प्रकुपित वात शान्त होकर उसस होनेवाले अपस्मारादि मानसिक रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

प्रकुपित वात या पित्त के कारण नेत्र रोग हो, तो रौप्य भस्म का उपयोग करना अच्छा है। ज्यादे क्रोध, परिश्रम या सूर्य किरण की तेज से दृष्टि (आँख) में विकार उत्पन्न हो गया हो, तो इन रोगों के लिये एकमात्र रौप्य भस्म ही उत्तम है।

शुक्र क्षय से उत्पन्न हुए रोगों में रौप्य भस्म और वंग भस्म ये दोनों काम करती हैं। शुक्र-क्षय विशेष होने से वायु प्रकुपित हो जाता है जिससे कमर में दर्द तथा खिंचाव होना, मूत्र मार्ग में दाह तथा दर्द होना इत्यादि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में रौप्य भस्म वंग भस्म में मिलाकर देने से शुक्र पुष्ट होकर विकृत वात भी शान्त हो जाता है।

इसी तरह कीटाणुजन्य क्षय में स्वर्ण भस्म या स्वर्ण भस्म मिश्रित दवा हितकर है। क्योंकि स्वर्ण भस्म कीटाणु नाशक है। अतएव राजयक्ष्मा आदि कठिन और संक्रामक रोगों में इसका प्रयोग किया जाता है। किन्तु सर्वाङ्ग में दाह, आँखें और मूत्र पिण्ड में जलन हो, तो रौप्य भस्म का प्रयोग करना चाहिये। क्योंकि इसका प्रभाव मूत्रपिण्ड पर विशेष पड़ता है और यह दाह को भी शान्त करती है। अतः दाह-शमन के लिये इसका प्रयोग अकेले या सुवर्ण भस्म के साथ अवश्य करें।

अर्श (बवासीर) वातजन्य या पित्तजन्य इनमें से किसी भी कारण से उत्पन्न हुआ हो, तो रौप्य भस्म का उपयोग करना चाहिये। यदि रक्त भी निकल रहा हो, तो भी अर्श रोग में रौप्य भस्म बहुत उपयोगी है। यदि बवासीर के मस्से बढ़ गये हों, तो उन मस्सों को निकलवा दें, फिर रौप्य भस्म का सेवन करें। रक्तार्श (खूनी बवासीर) में दर्द विशेष होता हो, या मस्से में चिनचिनाहट (खुजली) होती हो अथवा सूई चुभोने सदृश पीड़ा होती हो, तो रौप्य भस्म देना अच्छा है। और यदि मस्सों में जलन, वहाँ की खाल (चमड़ी) श्याम (काले) वर्ण की हो गयी हो एवं चमड़ी कठोर हो गयी हो, तो गंधक रसायन के साथ रौप्य भस्म देने से गंधक रक्तशोधन का काम करता है और रौप्य

भस्म दाह, जलन आदि को शान्त करती है। इस तरह दोनों मिलकर उपद्रवों को नष्टकर रोगी को स्वस्थ बना देते हैं।

पित्त की दुष्टि से उत्पन्न होनेवाले उदर रोग में —ज्वर, बार-बार मूर्च्छा, सर्वाङ्गमें दाह, मूत्र में जलन, चक्कर आना, पतले दस्त होना, त्वचा और पेट पर हरी या पीली नसें दिखाई देना, पसीना आना, त्वचा में दाह, गले में से धुआँ-सा निकलता जान पड़े, पेट में जल इकट्ठा होने लगना, अथवा जलोदर हो जाना, इनके साथ-साथ वातवाहिनी और रक्तवाहिनी शिराओं में दर्द होना इत्यादि लक्षण होने पर रौप्य भस्म का उपयोग करना चाहिये। क्योंकि यह भस्म पित्त की विकृति दूर कर उससे होनेवाले उपद्रवों को शान्त करती है और शरीर में रक्तकणों को बढ़ाकर शरीरस्थ जलीयांश भाग को भी सुखा देती और जलोदर रोग से मुक्तकर रोगी को स्वस्थ बना देती है।

विकृत वातजन्य अम्लपित्त में प्रधानत: आमाशय या कोठस्थ वातवाहिनियों में क्षोभ उत्पन्न हुआ हो, तो रौप्य भस्म का प्रयोग करना अच्छा है। इस रोग में बीमारी कुछ दिन के लिये छूट जाती और फिर किसी प्रकार के कुपथ्यादि होने पर शीघ्र ही उत्पन्न हो जाती है। ऐसे अम्ल पित्त रोग के लिये "रौप्य भस्म" बहुत उपयोगी है। इसके अतिरिक्त पेट बढ़कर यह रोग हुआ हो, और उसमें दर्द भी रहता हो, तो रौप्य भस्म का प्रयोग करने से अच्छा लाभ होता है। किन्तु शारीरिक शिथिलता और इन्द्रियों की अशक्ति विशेष हो, तो रौप्य भस्म के साथ वंग भस्म मिलाकर देना चाहिये।

शुष्क कास (खाँसी) में जब खासने से सर्वाङ्ग में दर्द हो, शरीर रूक्ष हो गया हो, कण्ठ में रूक्षता आ गयी हो, अर्थात्—गला सूखा ही रहता हो, साथ ही गले में छोटी-छोटी फुन्सियाँ भी हो गयी हों, जिससे खाँसने में गले में दर्द होता हो, ऐसी हालत में रौप्य भस्म प्रवाल पिष्टी में मिलाकर मधु के साथ अथवा आँवले के मुरब्बा के साथ देने से शीघ्र लाभ करती है। क्योंकि मधु के साथ

रौप्य भस्म देने से यह कफ की उत्पत्ति कर वातजन्य रूक्षता नष्ट कर देती और गले की फुन्सियाँ भी मिटा देती हैं।

वात प्रधान या वात-पित्त प्रधान पाण्डु रोग में रक्त कणों की कमी हो जाती है। विशेष मानसिक चिन्ता अथवा मन में किसी तरह का भारी आघात होने से भी शरीर में रक्त कणों की कमी हो जाती है जिससे शरीर पीला-पीला-सा दिखाई पड़ता है। इसमें मन्दाग्नि रहना, भूख कम लगना, क्रमशः कमजोरी बढ़ते जाना, दस्त कब्ज रहना आदि-आदि लक्षण होते हैं। ऐसे समय में रौप्य भस्म को लौह भस्म अथवा मण्डूर भस्म के साथ देना अच्छा है। इससे रक्त कणों की वृद्धि हो शरीर के सब अवयव पुष्ट हो जाते हैं और रोगी स्वस्थ हो जाता है।

अरुचि—मानसिक चिन्ता, या रोग की चिन्ता, शोक या अन्य वात प्रकोपक कारणों से अन्नादिक आदि में अरुचि हो गयी हो, तो इसमें भूख मन्द हो जाती है, कोई भी पदार्थ खाने की इच्छा नहीं होती, मुँह का स्वाद बिगड़ जाता है, स्वभाव रूक्ष अर्थात् किसी से बातें करने में रूखे स्वर में बोलना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी परिस्थिति में रौप्य भस्म देने से प्रकुपित वात शमन हो जाता और भूख भी बढ़ जाती तथा अन्नादिक पर रुचि भी आ जाती है।

जठराग्नि का कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिये समान वायु की आवश्यकता होती है। यदि समान वायु दूषित हो जाय तो जठराग्नि मन्द हो जाती है जिससे अन्नादिक (खाये हुए) पदार्थ कच्चा ही आमाशय में पड़ा रह जाता है। अतः समान वायु को सुधार कर जठराग्नि प्रदीप्त करने के लिये रौप्य भस्म का प्रयोग अवश्य करें।

कोथ (कुर्थ)—यह रोग बहुत भयंकर है। एक बार जिसे पकड़ लेता है उसका पुनर्जन्म ही होता है। इस रोग में शरीर के अन्दर रस रक्तादि धातु सड़ने लगते हैं। जिस भाग में सड़ना प्रारम्भ होता है। उस भाग में दर्द भी होने लगता है तथा उस भाग की त्वचा (चमड़ी) काली पड़ने लगती है। साथ ही कभी-कभी ज्वर भी हो जाता है। यह रोग अक्सर पुराने प्रमेह, सूजाक या

उपदंशवाले रोगियों को हो जाया करता है और इस रोग का प्रधान कारण प्रकुपित वात या प्रकुपित पित्त है। इसमें रौप्य भस्म देने मे प्रकुपित वातादिकों का सुधार हो रस रक्तादिक का भी सुधार हो जाता है।

उपदंश और सूजाक होने के बाद अण्डकोष और उसके पास में रहनेवाली वातवाहिनी या अन्य स्रोतादिकों के संकुचित हो जाने पर नपुंसकता उत्पन्न हो जाती है। ऐसे नपुंसकों के लिये रौप्य भस्म का उपयोग करना अच्छा ही नहीं विशेष लाभप्रद भी है। इससे वातवाहिनी शिराओं का संकोच दूर हो कर अंडकोशों में रक्तादि धातु उचित परिमाण में पहुँच जाते हैं और नपुंसकता भी दूर हो जाती है।

रौप्य भस्म बल्य भी है, अतएव स्रोतसों के संकोच से रक्तादि धातुओं का भ्रमण ठीक तौर पर न होने की वजह से शरीर के वाह्य अवयव हाथ पैर आदि आदि में थकावट आने लगती है और शक्ति क्षीण हो जाती है। इसमें रौप्य भस्म का उपयोग करना बहुत अच्छा होता है। स्रोतादिकों का संकोच दूर हो, अच्छी तरह से रसरक्तादि धातुओं का परिभ्रमण होने लगता है, जिससे शारीरिक थकावट एवं कमजोरी आदि दूर हो जाती है।

रौप्य भस्म बुद्धि वर्द्धक भी है। बुद्धि का कार्य साधक पित्त के संयोग से अच्छी तरह होता है। यदि साधक पित्त में किसी प्रकार की विकृति आ गयी हो और बुद्धि सुचारु रूप से अपना कार्य नहीं कर पाती हो तो इस विकृति को दूर करने के लिये रौप्य भस्म देना अच्छा है, क्योंकि यह मेध्य अर्थात् बुद्धि को बढ़ानेवाली है।

—औ० गु० ध० शा०

उपदंश या सूजाक होने के पश्चात् स्रोतों के संकुचित होने के कारण अगर नपुंसकता आ गई हो, तो रौप्य भस्म १ रत्ती, बङ्गभस्म १ रत्ती, शिलाजीत १ रत्ती में मिला कर धारोष्ण दूध के साथ देने से विशेष लाभ होता है। यह मांस पेशियों और रक्त वाहिनियों को बलवान बनाती और आयु, वीर्य, बुद्धि तथा कान्ति को भी बढ़ाती है।

बीसों प्रकार के प्रमेह पर रौप्य भस्म १ रत्ती शहद या मलाई के साथ लें और ऊपर से १ तोला ईसबगोल की भूसी को आध सेर गोदुग्ध में खीर बना मिश्री मिलाकर खिला दें अथवा शिलाजीत १ रत्ती और रौप्य भस्म आधी रत्ती दोनों एकत्र मिला मलाई के साथ सेवन करें तो इस प्रयोग से २१ दिन में प्रमेह दूर हो जाता है।

विशेष शारीरिक परिश्रम अथवा मानसिक चिन्ता, भय, शोक आदि कारणों से बात बढ़ जाता है और मस्तिष्क की शक्ति कमजोर हो जाती है। ऐसी अवस्था में रौप्य भस्म १ रत्ती, असगंध का चूर्ण १ माशे मधु के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ करती है।

पित्त विकार में रौप्य भस्म आधी रत्ती, गुलकन्द १ तोला या आँवले के मुरब्बे के साथ देने से पित्त विकार शमन हो जाता है।

वात प्रधान या पित्तप्रधान नेत्र रोगों में रौप्य भस्म आधी रत्ती, त्रिफलादि घृत १ तोला, मिश्री १ तोला मिला कर सेवन करें और प्रातः सायं त्रिफला जल से आँख धोने से बहुत शीघ्र फायदा होता है।

शुक्र जन्य क्षयादि रोगों में रौप्य भस्म १ रत्ती, वंग भस्म १ रत्ती, शङ्ख भस्म २ रत्ती मलाई के साथ देना उत्तम है। किन्तु यदि शुक्र क्षय में वात प्रकोप होकर कमर, पीठ आदि स्थानों में दर्द हों, पेशाब में जलन और अधिक दर्द आदि उपद्रव हों, तो रौप्य भस्म एक रत्ती, वंशलोचन और छोटी इलायची चूर्ण २-२ रत्ती मिलाकर मधु से दें, वात प्रधान शुष्क कास (खाँसी) में रौप्य भस्म आधी रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती में मिला मलाई या मक्खन अथवा मधु से देने से लाभ होता है।

यकृत् या प्लीहा-वृद्धि में रौप्य भस्म आधी रत्ती, मण्डूर भस्म १ रत्ती के साथ मिलाकर देना श्रेष्ठ है।

रस रक्तादि धातु बढ़ाने के लिये रौप्य भस्म आधी रत्ती, मोती भस्म आधी रत्ती में, मिला मक्खन और मिश्री के साथ देना चाहिये।

अपस्मार, हिस्टीरिया, उन्मादादि मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों में

रौप्य भस्म आधी रत्ती, बच और ब्राह्मी का चूर्ण ४-४ रत्ती घी के साथ देने से अधिक लाभ होता है।

खूनी और बादी दोनों प्रकार के बवासीर में रौप्य भस्म आधी रत्ती, शंकर लौह भस्म १ रत्ती, ईसबगोल की भूसी ६ माशे के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ करती है।

लौह

परिचय—लौह मुण्ड, तीक्ष्ण और कान्त भेद से तीन प्रकार का होता है। इनमें मुण्ड लौह के तीन, तीक्ष्ण लौह के छः और कान्त लौह के ५ भेद होते हैं। प्रत्येक के लक्षण और भेद नीचे दिये जाते हैं।

मुण्ड लौह के तीन भेद

१—मृदु लौह के लक्षण—जो लौह आग में तपाने से शीघ्र गल जाय और हथौड़े या घन से पीटने पर चूर्ण होकर बिखरे नहीं और मृदु (कोमल) हो, उसको मृदु लौह कहते हैं।

२—कुण्ठ लौह—जो लौह बड़ी कठिनता से घन की चोट देने पर चूर्ण हो या पसर जाय उसे कुण्ठ लौह कहते हैं।

३—कड़ार—जो लौह घन से पीटने पर जल्दी चूर्ण हो जाय और तोड़ने पर भीतर से काला रंग का हो उसे कड़ार लौह कहते हैं।

तीक्ष्ण लौह के ६ भेद

१—खार लौह के लक्षण—जो लौह कठोर और ऊँची-नीची टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं से रहित हो तथा तोड़ने पर पारद के समान चमकदार और मोड़ने से शीघ्र मुड़ जाये, वह खार लौह कहलाता है।

२—सार लौह के लक्षण—जिस लौह की धार विशेष चोट मारने मे टूट जाय उसे सार लौह कहते हैं। यह पीली भूमि में उत्पन्न होता है और इसमें टेढ़ी-मेढ़ी रेखायें स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं।

३—हृन्नाल लौह के लक्षण—जो लौह काला होते हुए पाण्डु वर्ण का हो तथा रेंड़ी बीज के छिल्के की रेखाओं के समान स्पष्ट

रेखाओं से युक्त हो और तोड़ने पर अत्यन्त कठिन हो उसको हृन्नाल लौह कहते हैं।

४—तराबट्ट लौह—यह लौह चमकदार और शीघ्र टूटनेवाला होता है।

५—वाजिर लौह के लक्षण—जो लौह अत्यन्त कठिन, चमकदार और अत्यन्त सटी हुई रेखाओं से युक्त हो तथा काले वर्ण का हो, उसको वाजिर लौह कहते हैं।

६—काल लौह के लक्षण——जो लौह नीलिमा लिये काले वर्ण का हो, तथा भारी, चिकना और चमकदार एवं घन की चोट से भी जिसकी धार न टूटे उसको काल लौह कहते हैं।

कान्त लौह के ५ भेद

१—भ्रामक लौह के लक्षण—जो लौह अपनी विशेष शक्ति द्वारा दूसरे लौह को चंचल कर देता है, उसको भ्रामक लौह कहते हैं।

२-३—चुम्बक और कर्षक के लक्षण—जो लौह अपने प्रभाव से दूसरे लौह को खींच कर चुम्बित कर (अपने में सटा) लेता है उसे चुम्बक कहते हैं। और जो लौह अपने प्रभाव से दूसरे लौह को अपनी तरफ खींचता है, किन्तु पकड़े हुए नहीं रहता, उसे कर्षक लौह कहते हैं।

४—रोमकान्त लौह के लक्षण—जिस कान्त लौह के तोड़ने पर बालों के समान रेखायें देखने में आवें, उसे रोमकान्त लौह कहते हैं।

इन लौहों में मुण्ड लौह कढ़ाई तवा इत्यादि बनाने के लिये और तीक्ष्ण लौह तलवार आदि बनाने और इसका चूरा भस्मादि के लिये काम आते हैं तथा कान्त लौह में भ्रामक और चुम्बक औषधि कार्य्य में काम आते हैं। अन्य रसायन (पाराबंधनादि) काम में आते हैं। अतएव औषधि कार्य्य में तीक्ष्ण और कान्त लौह ही लेना चाहिये।

५—कान्त लौह के लक्षण—कान्त लौह के पात्र में पानी भरकर उसमें तेल की बूंदें डालने से वह फैलती नहीं तथा उसमें हींग रख

देने से उसकी गंध नष्ट हो जाती है और नीम के पत्तों का लेप करने से उसकी कड़वाहट चली जाती है। कान्त लौह के पात्र में दूध पकाने से वह शिखराकर ऊंचा हो जाता, किन्तु बाहर नहीं निकलता।

नोट—जिस लोह की भस्म बनानी हो, उसे रेती से रेतवा कर बुरादा बनवा लें या लोहे के कारखानों में से लोह के महीन पत्र छिले हुये आते हैं, वही पत्र मंववाकर शोधन करके भस्म के काम में लें।

सबसे अच्छा लोहे का बुरादा ताले बनाने वालों के यहाँ बहुत तादाद में मिल सकता है। यह बुरादा तीक्ष्ण लौह का रहता है। इसकी भस्म बहुत मुलायम तथा लाल वर्ण की होती है। अतः भस्म के लिये यह बुरादा बहुत श्रेष्ठ है।

शोधन विधि—लोहे का बुरादा अथवा चूरा को आग पर तपा-तपा तिल तैल, गोमूत्र, कांजी, मट्ठा, कुल्थी का काढ़ा इनमें ७-७ बार बुझा लेने से लोहा शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधान—शुद्ध तीक्ष्ण लोहे का चूर्ण ४० से ६० तोला लें, उसमें १२ वाँ हिस्सा हिंगुल का चूर्ण मिला, ग्वारपाठे (घीकुमारी) के रस में मर्दन कर टिकिया बना सुखाकर सराब सम्पुट में बन्द कर कपड़ मिट्टी कर के धूप में सुखा गजपुट में फूंक दें, ऐसे ७ पुट ग्वारपाठे के रस में, ७ पुट गोमूत्र में, ७ पुट त्रिफला के क्वाथ में मर्दन करके गजपुट दें। सात पुट तक प्रत्येक पुट में १२ वाँ हिस्सा हिंगुल मिलावें और ६ से १२ घंटे तक खूब घोटें। इस प्रकार २१ पुट में लोहे की अच्छी भस्म होती है। हिंगुल के स्थान में शुद्ध मनः शिला का चूर्ण मिला ऊपर लिखी हुई विधि से भस्म बनाने से भी अच्छी भस्म बनती है।

लोहे को आक का दूध, पुनर्नवा, जामुन और अडूसा के रस में मर्दन करके पुट देने से भी अच्छी भस्म बन जाती है।

—सि० यो० सं०

नोट—लौह, मण्डूर, कसीस, अभ्रक और माक्षिक इनकी भस्मों को ताजे आँवले और भांगरे के स्वरस की ३ ३ भावना दे सुखाकर पीछे प्रयोग करने से विशेष गुणकारी होती है।

दूसरी विधि—शुद्ध तीक्ष्ण लोह के चूर्ण को त्रिफला क्वाथ के साथ घोट कर उसमें थोड़ा-सा भात मिला कर टिकिया बना सुखा लें। फिर सराब सम्पुट में बन्द कर गजपुट की आँच में रख दें। इस प्रकार ५ पुट देने से समस्त कार्यों में व्यवहार करने योग्य लाल रंग की लौह भस्म तैयार होती है। —र० र० स०

तीसरी विधि—शुद्ध लोह चूर्ण को सफेद पुनर्नवा और बाँसे के पत्तों के रस में घोट कर टिकिया बना धूप में सुखा सराब सम्पुट में बन्दकर गजपुट में फूंक दें। इसी प्रकार ३० पुट देने से इतनी लाल भस्म हो जाती है कि उसे देखकर सिन्दूर का भ्रम होने लगता है।

—र० र० स०

चौथी विधि—(साधारण लौह भस्म) त्रिफला के काढ़े को इतना औटावे कि कुछ गाढ़ा हो जाये। उसमें शुद्ध लोहे के चूर्ण को घोट टिकिया बना, धूप में सुखा, सराब सम्पुट में बन्द कर गज पुट में फूंक दें। इसी तरह ४-५ पुट देने से साधारण लौह भस्म तैयार हो जाती है।

फौलाद लौह भस्म (महा बाजीकरण)

शुद्ध किया हुआ असली फौलाद का बुरादा २० तोला, संखिया सफेद १ तोला, भीमसेनी कपूर १।। माशे सबको एकत्र कर ग्वार-पाठे के रस में १२ घण्टे तक मर्दन कर छोटी-छोटी टिकिया बना धूप में सुखा मिट्टी के कुल्हड़ में बन्द कर कपड़ मिट्टी करके सुखाने के बाद ५ सेर कण्डों की आँच में फूंक दें। जब आग ठंढी हो जाय तो कुल्हड़ में से भस्म को निकाल लें, फिर दूसरी बार इस भस्म को—हरताल १।। तोला और भीमसेनी कपूर १।। माशे मिला कर घी-कुमारी के रस के साथ घोट कर टिकिया बना, सुखा, सराब सम्पुट में रख गजपुट में आँच दें। स्वाङ्ग शीतल होने पर भस्म निकाल लें। इसी तरह तीसरी बार १ तोला आँवलासार गन्धक और १।। माशे भीमसेनी कपूर के साथ और चौथी बार १ तोला पारा और १।। माशे भीमसेनी कपूर मिला घीकुमारी के रस से मर्दन कर टिकिया

बना मिट्टी के कुल्हड़ (कुज्जे) में बन्द कर गजपुट में आँच दें। इस तरह ४ पुट दें।

इसके बाद उपरोक्त दवाओं के साथ पुनः ३-३ पुट देने से १६ पुट हो जायेंगे।

फिर भस्म को लोहे की कढ़ाई में डाल, समान भाग वीरबहूटी मिलाकर नीचे मन्द आँच दें। जब सब वीरबहूटी जल जाय तब भस्म को किसी तवे से ढक कर ३ घंटे तक खूब तेज आँच देकर छोड़ दें। स्वाङ्ग शीतल होने पर भस्म को निकाल सुरक्षित रख लें।

—चि० चं०

सेवन विधि—इस भस्म की मात्रा ४ चावल से १ रत्ती तक है। एक मात्रा भस्म लेकर मक्खन या मलाई के साथ खाकर ऊपर से मिश्री मिला हुआ गो दुग्ध पीना चाहिये।

पथ्य में—अनार, सेव, अंगूर, घी, शक्कर, (चीनी) आदि तरावट और पौष्टिक पदार्थ खाना चाहिये।

अपथ्य—लाल मिर्च, तेल, खटाई, स्त्री प्रसंगादि इस भस्म के सेवन काल में त्याग दें।

गुण—इस भस्म के सेवन से नया खून पैदा होता है। इक्कीस दिन तक खाने से चेहरा लाल-सुर्ख हो जाता है। यह भस्म अत्यन्त कामोद्दीपक है। इसकी ६-७ मात्रा खाते ही काम वासना बलवती होने लगती है। और ४० दिन में तो बहुत ही लाभ हो जाता है। मूत्रमेह, पाण्डु, और यकृत् रोगियों के लिये भी यह अक्सीर चीज है। ६-७ दिन में ही आदमी का वजन ४-५ पौंड बढ़ जाता है।

नोट—उपरोक्त सेवन विधि, पथ्य गुणादि का जो वर्णन किया गया है वह सिर्फ फौलाद भस्म का समझना चाहिये। इसके आगे जो वर्णन किया जायगा वह लौह भस्म के विषय में होगा।

रोगानुसार अनुपान

शरीर पुष्टि के लिये—लौह भस्म २ रत्ती, पीपलबड़ी का चूर्ण ४ रत्ती मधु के साथ देना चाहिये।

कफरोग नाश के लिये—लौह भस्म २ रत्ती, प्रवाल भस्म १ रत्ती, पीपल चूर्ण २ रत्ती मधु के साथ दें।

रक्त-पित्त में—लौह भस्म १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, मिश्री १ माशा मिला दूर्वा-स्वरस के साथ दें।

बलवृद्धि के लिये—लौह भस्म २ रत्ती, वंगभस्म १ रत्ती, सोंठ का चूर्ण ४ रत्ती मक्खन या मलाई के साथ दें।

पाण्डु रोग में—लौह भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती में मिला पुनर्नवा रस के साथ दें।

प्रमेह में—लौह भस्म १ रत्ती, नाग भस्म १ रत्ती, हरी पिप्पली चूर्ण ४ रत्ती मधु के साथ दें।

मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात में—लौह भस्म १ रत्ती, शिलाजीत सूर्यतापी २ रत्ती में मिला धारोष्ण दूध के साथ दें।

वातज्वर में—लौह भस्म २ रत्ती, अदरख रस, और शहद के साथ मिला कर दें।

सन्निपात ज्वर में—लौह भस्म १रत्ती, अदरख रस और काली मिर्च का चूर्ण ३ रत्ती में मिलाकर दें।

पित्त ज्वर में—लौह भस्म १ रत्ती, लौंग का चूर्ण ४ रत्ती मधु के साथ दें।

वायु रोगों में—लौह भस्म १ रत्ती, सोंठ का चूर्ण ४ रत्ती, निर्गुण्डी रस में मधु मिलाकर दें।

पैत्तिक रोगों में—लौह भस्म १ रत्ती, मिश्री ३ माशे, घी के साथ दें।

कफज रोगों में—लौह भस्म २ रत्ती, पीपल चूर्ण ४ रत्ती मधु के साथ दें।

सन्धि रोगों में—लौह भस्म १ रत्ती, दालचीनी, छोटी इलायची और तेजपात के चूर्ण प्रत्येक २-२ रत्ती मधु के साथ दें।

खाँसी में—लौह भस्म २ रत्ती, प्रवाल भस्म १ रत्ती, वासा-रस में मधु मिलाकर दें।

मन्दाग्नि में—लौह भस्म २ रत्ती,दाख और पीपल चूर्ण के साथ दें।

जीर्ण ज्वर में—लौह भस्म १ रत्ती, पीपरि चूर्ण ४ रत्ती में मिलाकर मधु के साथ दें।

श्वास रोग में—लौह भस्म १ रत्ती को अभ्रक भस्म १ रत्ती में मिलाकर घी के साथ दें।

कामला रोग में—लौह भस्म १ रत्ती, हर्रे और हल्दी का चूर्ण ३-३ रत्ती मिलाकर मधु के साथ दें।

पक्ति शूल में—लौह भस्म १ रत्ती, त्रिफला चूर्ण २ माशे में मिला घी के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसकी भस्म—पाण्डु, पित्त विकार, उन्माद, धातु दौर्बल्य, संग्रहणी, मन्दाग्नि, प्रदर, मेदोवृद्धि, कृमि, कुष्ठ, उदर-रोग, आमविकार, क्षय, ज्वर, हृदयरोग, बवासीर, रक्त-पित्त, अम्लपित्त, शोथ आदि रोगों में अत्यन्त गुणदायक है।

यह रसायन और बाजीकरण है। लौह भस्म मनुष्य की कमजोरी दूर कर शरीर को हृष्ट-पुष्ट बना देती है। भारतीय रसायनों में लौह भस्म का प्रयोग सबसे प्रधान है। यह रक्त को बढ़ाने और शुद्ध करने के लिये सर्वप्रसिद्ध औषध है।

धातूपधातुओं की भस्मों में, उष्णता में ताम्र भस्म के बाद लौह भस्म का ही नम्बर आता है। अतएव यह कफ प्रकृतिवाले को जितना शीघ्र गुण करता है, उतना अन्य प्रकृतिवाले को नहीं। यह तीव्र (उष्ण) है, किन्तु दूसरी सौम्य भस्मों या वनस्पतियों के साथ मिलाकर देने से यह सौम्य हो जाती है और वह मिश्रण फायदा भी अच्छा करता है। अतएव हमारे प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों में और आधुनिक (आजकल) अंग्रेजी वैद्यक में सब रोगों की औषध योजना में लौह का उपयोग किया जाता है। अनुपान की भिन्नता से यह सब रोगों को नाश करती है। फिर भी कफयुक्त खाँसी, दमा, जीर्ण ज्वर और पाचन क्रिया बिगड़ने से उत्पन्न हुई मन्दाग्नि, अरुचि, मल-बद्धता, कृमि आदि रोगों में यह विशेष फायदा करती है। पौष्टिक, शक्तिवर्द्धक, कान्तिदायक और कामोत्तेजक आदि गुण भी इसमें विशेष रूप से हैं।

लौह भस्म किसी भी प्रकार की हो, सेवन करने से पूर्व यदि दस्त साफ आता हो तो अच्छा, नहीं तो इस भस्म के सेवन काल में रात को सोते समय त्रिफला चूर्ण में मिश्री मिलाकर दूध के साथ सेवन करें। इससे दस्त साफ होता रहता है और इसकी गर्मी भी नहीं बढ़ने पाती। क्योंकि अक्सर देखा जाता है कि लौह भस्म के सेवन काल में दस्त कब्ज हो जाता है जिससे गर्मी भी बढ़ जाती है। इसी को दूर करने के लिये दूध का सेवन किया जाता है।

लौह भस्म रक्ताणुवर्द्धक और पाण्डु रोग नाशक है। वह पाण्डु चाहे किसी भी कारण से उत्पन्न हुआ हो। रक्तकणों की कमी होकर श्वेत कणों की वृद्धि हो जाना ही "पाण्डु रोग" कहलाता है। इसमें कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि कुछ रोज तक शरीर के ऊपरी भाग में फीकापन दिखाई पड़ता और बाद में पुनः लाली छा जाती है किन्तु; यह वास्तविक पाण्डु रोग नहीं है। वास्तविक पाण्डु रोग तो वही है, जिसमें श्वेत कणों के प्रभाव से शरीर पर बराबर फीकापन बना रहे, चमड़ी रूक्ष (सूखी) हो जाय, रंजक पित्त (जिसके द्वारा रक्त में लाली भी बनी रहती है) का नाश हो जाय, इत्यादि लक्षण होने पर पाण्डु रोग समझना चाहिये। ऐसे पाण्डु रोग में लौह भस्म से बहुत फायदा होता है।

पाण्डु रोग में भी पित्तजन्य अर्थात् पित्त की दुष्टि से होनेवाला पाण्डु और हलीमक में इसका विशेष उपयोग होता है। कृमिजन्य या धातु क्षीणताजन्य पाण्डु रोग में कृमिघ्न और पौष्टिक औषधियों के मिश्रण के साथ लौह भस्म देने से बहुत फायदा होता है। आँतों में पैदा होनेवाले कीटाणुओं से पाण्डु रोग की उत्पत्ति होती है। उसमें वायविडंग के चूर्ण और अजवायन के फूल के साथ लौह भस्म का प्रयोग करना बहुत श्रेष्ठ है। कारण लौह भस्म का प्रभाव रक्त पर बहुत शीघ्र होता है, यह श्वेताणुओं को कम कर रक्ताणुओं (रक्त कणों) को बढ़ाता है। अतएव पाण्डु रोग में इसके प्रयोग से बहुत ऐस फायदा होता है।

मज्जु विकार—वातवाहिनी या मांसपेशी अथवा कण्डराओं

(शिराओं) के संकोच के कारण शरीर के उन-उन प्रदेशों में विशेष दर्द होने लगे, तो कान्त लौह भस्म, जो सिंगरफ के द्वारा भस्म की हुई हो उसका प्रयोग करना अच्छा है।

ज्यादे रक्तस्राव होने से रक्तवाहिनी शिरा, मस्तिष्क आदि में ज्यादे शून्यता आ गयी हो, साथ ही थोड़ी-थोड़ी पीड़ा (दर्द) भी हो, घबराहट, कमजोरी से चक्कर आना आदि लक्षण उत्पन्न होने पर लौह-भस्म के सेवन से बहुत शीघ्र लाभ होता है। यदि रक्तपित्त में रक्तस्राव के बाद उपरोक्त उपद्रव हुए हों, तो लौह भस्म रक्त-चन्दनादि काढ़ा या लौहासव के साथ देना अच्छा होगा। क्योंकि यह भस्म पित्त-विकार दूरकर रक्त में गाढ़ापन एवं रक्तवाहिनी शिरा में चेतना (शक्ति) पैदाकर स्राव को रोक देती है, फिर इससे होनेवाले उपद्रव अपने आप शान्त हो जाते हैं।

किसी कारण से पित्त विकृति होकर आँखें लाल हो जायें, हाथ-पैरों में पसीना आने लगे, सिर में भी ज्यादे पसीना आवे, मुँह लाल और पसीना से भिगा हुआ रहे, मन में अशान्ति (व्याकुलता), रक्त-वाहिनी शिराओं में रक्त का संचार जल्दी-जल्दी हो जिससे सम्पूर्ण शरीर गर्म हो जाय और हृदय तथा नाड़ी की गति में वृद्धि हो, त्वचा का स्पर्श करने से ज्यादा गरमी मालूम हो, ऐसे समय में लौह भस्म देने से बढ़ा हुआ पित्त शान्त होकर इससे होनेवाले उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं। क्योंकि लौह भस्म पित्त विकार शामक है और इसका प्रभाव रक्त और पित्त पर ज्यादा होता है। इसलिये यह बढ़े हुए पित्त को तथा इसके द्वारा विकृत रक्त को शीघ्र शान्त कर देती है।

पाचक पित्त में विकृति होकर मन्दाग्नि हो जाने से अन्नादिक (खाद्य-पदार्थ) अच्छी तरह नहीं पचता है, तब आफरा (पेट फूलना), अपचन (जो खाय सो पचे नहीं), बार-बार खट्टी डकारें आना, कभी-कभी वमन भी हो जाना, वमन में कभी पित्त, तो कभी बदबूदार कफ निकलना इत्यादि उपद्रव होते हैं। ऐसे समय में लौह भस्म देने से बहुत उपकार होता है। क्योंकि लौह भस्म पाचक पित्त के विकार

को दूर कर उसे प्रदीप्त कर देती है जिससे अपचन आदि दोष सब मिट जाते हैं और अन्न भी ठीक तरह से पचने लगता है। यह कार्य लौह-भस्म के द्वारा अच्छी तरह होता है।

अतिसार अथवा संग्रहणी में पक्वाशय और ग्रहणी एकदम कमजोर हो जाने से बहुत पतले दस्त बार-बार होने लगते हैं, दस्त सफेद माइल और बदबूदार होता है। ऐसे समय में लौह भस्म शक्ति बढ़ाने के लिये दी जाती है। यदि संग्रहणी में बल-मांसादि क्षीण होकर कमजोरी आ गयी हो तो लौह भस्म देने से अच्छा फायदा होता है, क्योंकि लौह शक्तिवर्द्धक है। यह शरीर के अवयवों (पक्वाशय और ग्रहणी) में शक्ति पैदाकर उनको सशक्त बना अपने कार्य करने योग्य बना देती है। अतः लौह भस्म का प्रयोग अवश्य करें।

खूनी बवासीर के प्रारम्भिक अवस्था में लौह भस्म का उपयोग नहीं करना चाहिये। क्योंकि इससे रक्त रुकने के बजाय और गिरने ही लगता है। परन्तु पित्त प्रधान या वात प्रधान खूनी बवासीर के प्रारम्भ में जब रक्त गिरने के कारण ज्यादे कमजोरी मालूम होती हो, चक्कर आता हो, शरीर में गर्मी ज्यादे बनी रहती हो तो ऐसी हालत में लौह भस्म देना अच्छा है। इसी तरह रक्तार्श में ज्यादा खून निकल जाने से हृदय में दर्द होना, हाथ-पैरों में कुछ-कुछ शोथ हो जाना, शरीर का वर्ण पीला-पीला सा हो जाना इत्यादि लक्षणों में कान्तलौह भस्म का उपयोग करना बहुत अच्छा है। क्योंकि अधिक रक्त स्राव होने से रक्तवाहिनी सिरायें एवं शरीर पोषक धातुएँ कमजोर हो जाती हैं, जिससे इतने उपद्रव उत्पन्न होते हैं। लौह भस्म के प्रयोग से रक्तवाहिनी सिरा में धारणा शक्ति पैदा हो जाती है और रक्त में भी कुछ अन्तर पड़ जाता है, साथ ही शरीर के पोषण करने वाली धातुएँ पुष्ट हो जातीं हैं जिससे शारीरिक दुर्बलता एवं पाण्डुता आदि का नाश हो जाता है।

हृदय में पीड़ा होने के बाद श्वास रोग हो गया हो तो लौह भस्म बहुत शीघ्र काम करती है। पित्त प्रधान श्वास रोग में जब रोगी को मालूम पड़े कि साँस छाती में भरा हुआ है, इसके साथ ही बेचैनी

होना, शरीर कान्ति हीन हो जाना और नाड़ी की गति तेज हो जाने पर लौह भस्म देने से शीघ्र लाभ होता है।

मलेरिया ज्वर विशेष दिन तक रह जाय या जाड़ा देकर बुखार दूसरे-तीसरे रोज आ जाता हो तो इसमें कच्चे पानी पीने अथवा ज्वरावस्था ही में कुछ-कुछ खाते रहने आदि कारणों से प्लीहा बढ़ जाती है। अथवा ऊपर कहे हुये ज्वर में मात्रा से ज्यादा या अधिक दिन तक कुनीन खाते रहने से—व्याकुलता, कुछ-कुछ सूजन (शोथ) मुँह पर हो जाना, मुँह की कान्ति नष्ट हो जाना, सुनाई कम देना इत्यादि लक्षण होने पर लौह भस्म के सेवन से ये सब विकार दूर हो जाते हैं। प्लीहा वृद्धि के कारण शरीर पीला-पीला-सा दिखाई दे तो उसमें भी लौह भस्म देना श्रेष्ठ है। कुछ रोगी ऐसे भी होते हैं कि वे लौह भस्म सहन नहीं कर सकते हैं। ऐसे रोगियों को सोनामखी की भस्म देना अच्छा है।

सर्वाङ्ग शोथ में लौह भस्म बहुत शीघ्र लाभ करती है। जब सम्पूर्ण अंग में शोथ हो, त्वचा के नीचे भाग में लसीका का संचय हो जाय; वह संचय इतना बढ़ा हुआ हो, कि शोथ को अंगुली से दबाने पर बहुत देर तक गड्ढा बन कर धीरे-धीरे भरता हो, शरीर पीला, मन में घबड़ाहट, मुँह सूखता हो, समस्त शरीर की शिराओं में फड़कन हो, रोगी अच्छी तरह बोल न सके और यदि कुछ बोलने लगे तो श्वास तेजी से चले, मूत्र साफ हो, कमजोरी की वजह से मूत्रवाहिनी शिरायें भी कमजोर हो गयी हों, जिससे पेशाब बार-बार होता हो, इनमें लौह भस्म देने से शरीर में रक्तकणों की वृद्धि होकर देह में उत्पन्न जलीय भाग शुष्क होने लगता है। और जैसे-जैसे रक्तकणों की वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे शोथ भी कम होने लगता है, और पाण्डु (पीलापन) भी मिट जाता है। यदि सूजन के साथ-साथ प्लीहा भी बढ़ी हुई हो, तो लौह भस्म में ताम्र भस्म मिलाकर देना अच्छा है।

कफ या पित्त जन्य प्रमेह में लौह भस्म का प्रयोग करना अच्छा है। इस रोग में लौह भस्म के उपयोग से प्रमेह रोग से उत्पन्न कम-

जोरी दूर हो जाती है। जिस प्रमेह रोगी की पेशाब अधिक बार तो नहीं किन्तु; पेशाब जब हो तब अधिक मात्रा में हो, त्वचा पीली, तथा निस्तेज (कान्ति हीन) हो, ऐसी दशा में लौह भस्म, वंग भस्म और शिलाजीत के साथ मिश्रण करके देने से विशेष फायदा करती है। यदि पेशाब बार-बार हो और थोड़ी-थोड़ी मात्रा में हो तब लौह भस्म में यशद भस्म मिलाकर देना अच्छा है।

जीर्ण ज्वर, पाण्डु, क्षय आदि रोगों से अधिक दिन तक रोगी रहने के बाद जब उस रोग से छुटकारा मिल जाता है, तब रोगी में शक्ति बहुत कम रह जाती, और रक्तकण भी निर्बल हो जाते हैं, जिससे शरीर की शिराएँ एवं हाथ-पैर आदि गठीले (सख्त) न होकर ढीले-ढीले-से दिखाई पड़ने लगते हैं। मांस भी क्षीण हो जाता है तथा दोषों (वात-पित्त-कफ) की शक्ति और रोग की शक्ति में बराबर संघर्ष होने से दोष थके हुये रहते हैं। अतः वे कमजोर होने की वजह से धातुओं को अपने स्थल में अच्छी तरह रखने में भी असमर्थ होते हैं। इन कमजोरियों को दूर करने के लिये तथा शरीर में दोष और धातुओं को पुष्ट करने तथा रक्त की निर्बलता को दूर कर शरीर के अवयवों (हाथ-पैर आदि) को पुष्ट कर ताकत पहुंचाने के लिये लौह भस्म अमृत के समान गुण करती है।

पित्तजन्य कुष्ठ रोग में—ज्यादा तर त्वचा और रक्त दोनों दुष्ट हुये रहते हैं, इस रोग में त्वचा का वर्ण लाल हो जाता और अंगुलियाँ एवं फोड़ों में से पानी-सा स्राव होना, थोड़ा-सा भी त्वचा छिल जाने या कट जाने पर घाव होकर पक जाना, और उसमें से दुर्गन्धयुक्त पीव निकलना, अंगुलियों की त्वचा रूक्ष होकर फट जाना, एक घाव होने पर उसके चारों ओर की छोटी-छोटी फुन्सियों को खुजाने पर पतला पानी-सा स्राव होना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी हालत में लौह भस्म बावची चूर्ण या अन्य कुष्ठनाशक औषधियों के साथ देने से लाभ होता है। क्योंकि लौह भस्म का सबसे मुख्य कार्य दूषित रक्त का संशोधन कर रक्ताणुओं को बढ़ाना है। यह पित्तघ्न होने के कारण दूषित पित्त को दूर करता है। और इस रोग में ये ही दोनों

विशेष दूषित रहते हैं। अतः लौह का असर रक्त और पित्त पर शीघ्र होता है, जिससे उक्त विकार नष्ट हो जाते हैं।

नोट—कुष्ठ रोग की चिकित्सा में पहले जिस दोष की प्रधानता हो, उसकी चिकित्सा करते हुए, फिर उसके साथ या उसके पीछे जो दोष कुपित हुए हों उनकी चिकित्सा करें। इस नियमानुसार प्रथम पित्त दोष और बाद में रक्त दुष्टि की चिकित्सा करने से कुष्ठ रोग अच्छा हो जाता है।

लौह भस्म रसायन भी है, अतः यह रस-रक्तादि धातुओं को उत्पन्न कर शरीर के सब अवयवोंमें यथा समय पहुँचाती रहती है जिससे शरीर के सब अवयव पुष्ट होते रहते हैं। क्योंकि इसी (रक्तधातु) के रक्तकणों से शरीर के अवयवों का पोषण होता रहता है। और ये रक्तकण लौह भस्म के सेवन से ही पुष्ट होते हैं। इसी परिपुष्ट रक्तकणों की वजह से शरीर की सब इन्द्रियाँ (हाथ, पाँव, आँख, कान, नाक आदि) संगठित तथा बलवान और अपने कार्य करने में समर्थ रहती हैं। ये सब कार्य लौह भस्म के द्वारा अच्छी तरह होता रहता है।

छोटे-छोटे बच्चों को लौह भस्म के स्थान पर मण्डूर भस्म देना अधिक हितकर है। क्योंकि मण्डूर भस्म लौह भस्म की अपेक्षा लघुपाकी और सौम्य है। बड़ी आयुवालों के लिये कान्त लौह भस्म देना अच्छा है। स्वस्थ-नीरोग मनुष्य को यदि कमजोरी मालूम हो, तो कान्त लौह भस्म देना चाहिये। जो मानसिक या शारीरिक किसी प्रकार की व्याधि से पीड़ित नहीं हैं, उन्हें लौह भस्म के सेवन से दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

यदि वातवाहिनी शिरा या स्नायुओं के संकोच से शरीर में दर्द होता हो, तो कान्तलौह भस्म देने से शिरा और स्नायुओं की संकोच दूर होकर रक्त संचालन (खून का आवागमन) अच्छी तरह होने लगता है, जिससे शरीर के दर्द शीघ्र मिट जाते हैं। यदि यह दर्द आमवात जन्य हो, तो महा योगराज गूगल, महावात विध्वंसन रस आदि का प्रयोग करना चाहिये।

यदि शरीर में शुक्र की कमी अथवा अण्डकोष की निर्बलता के

कारण नपुंसकता उत्पन्न हो गयी हो, तो लौह भस्म के सेवन से दूर हो जाती है। क्योंकि लौह भस्म अण्डकोष को ताकत देती और शुक्र की कमी को पूर्तिकर शुक्र की भी वृद्धि करती है जिससे शरीर की कान्ति बढ़ती और शरीर के सब अवयव बलवान हो जाते हैं। शरीर बलवान होने से रोगोत्पादक (रोग उत्पन्न करनेवाले) कीटाणुओं के विष का असर शरीर पर नहीं होता। इस दृष्टि से लौह भस्म विषघ्न भी है।

कामला रोग में पित्त, पित्ताशय से निकलकर कोष्ठ में नहीं जाता, बल्कि रक्त में जाकर मिलता है। ऐसे समय में पित्ताशय अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। त्वचा, नख, मूत्र आदि पीले हो जाते हैं। इस रोग में मण्डूर भस्म के साथ कान्त लौह भस्म देने से विशेष लाभ होता है। —औ० गु० ध० शा०

पाण्डु रोग यकृत् (लीवर) की क्रिया बिगड़ने पर रंजक पित्त अच्छी तरह अपना कार्य नहीं कर पाता, वही पित्त रुधिर में मिलकर उसके स्वाभाविक रंग को बदल देता है। इसी को पीलिया कहते हैं। ऐसी अवस्था में लौह भस्म २ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, कुटकी चूर्ण १ माशे अथवा इसी का क्वाथ बना मधु के साथ देने से आशातीत लाभ होता है।

कृमिजन्य पाण्डु रोग में—लौह भस्म १ रत्ती, वायविडंग चूर्ण १ माशा, कवीला ३ रत्ती गुड़ में मिलाकर देने से फायदा होता है।

पित्त विकार में—नेत्र लाल हो जाना, अधिक स्वेद आना, बेचैनी होना आदि विकारों में लौह भस्म २ रत्ती, दालचीनी, इलायची, तेजपात इन सबका चूर्ण १-१ माशे मिला घी और मिश्री के साथ देना।

उन्माद रोग में—लौह भस्म १ रत्ती, सर्पगंधा चूर्ण २ माशे, ब्राह्मी रस मधु में मिला सेवन करें, ऊपर से सारस्वतारिष्ट १। तोला बराबर जल मिलाकर भोजनोपरान्त दें।

धातुदौर्बल्य में—लौह भस्म १ रत्ती, प्रवाल भस्म २ रत्ती, अश्वगंधा चूर्ण १ माशा में मिला गोदुग्ध के साथ दें।

संग्रहणी में—अन्न का परिपाक ठीक-ठीक न होने से जठराग्नि निर्बल हो जाने के कारण अपचित दस्त होते हों, तो लौह भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, भुना हुआ जीरा का चूर्ण १ माशा मधु के साथ देने से फायदा होता है।

मन्दाग्नि में—लौह भस्म १ रत्ती, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मिर्च) का चूर्ण १ माशा में मिलाकर मधु के साथ देने से मन्दाग्नि दूर हो जाती है। सब प्रकार के प्रदर रोग में लौह भस्म १ रत्ती, त्रिवंग भस्म १ रत्ती, छोटी इलायची चूर्ण ४ रत्ती, मिश्री २ माशे में मिला मधु के साथ दें। ऊपर से अशोकारिष्ट या पत्रांगासव १। तोला बराबर जल मिला कर पिलावें।

मेदो वृद्धि में—लौह भस्म २ रत्ती, त्रिफला चूर्ण ३ माशे में मिला मधु के साथ देने से मेद (चर्बी) की वृद्धि रुक जाती है।

मण्डल कुष्ठ, पामा (खुजली) आदि रक्त विकार में लौह भस्म १ रत्ती, नीम के पंचांग का चूर्ण १ माशा, आँवला चूर्ण १ माशा में मिला अर्क उशवा के साथ दें। ऊपर से खदिरारिष्ट या सारिवाद्यासव १। तोला बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद दें। पेट के दर्द में लौह भस्म ४ रत्ती, गोमूत्र द्वारा पकायी गयी छोटी हरड़ का चूर्ण १ माशा, गुड़ में मिलाकर गर्म पानी के साथ दें।

रोगोन्मुक्त होने के बाद शरीर अत्यन्त निर्बल हो जाता है। साथ ही रस रक्तादि धातु भी निर्बल रहते हैं। इस अशक्ति को दूर करने के लिये लौह भस्म २ रत्ती, च्यवनप्राशावलेह १ तोला में मिलाकर दूध के साथ सेवन करने से शीघ्र ही लाभ होता है।

पुराने ज्वर में—लौह भस्म २ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, पीपरि चूर्ण ४ रत्ती में मिलाकर मधु के साथ देने से लाभ होता है। हृदय की कमजोरी में लौह भस्म १ रत्ती, अकीक भस्म १ रत्ती, मधु में मिला कर दें। बाद में अर्जुनारिष्ट १। तोला बराबर पानी मिलाकर भोजन के बाद दें।

रक्तार्श (खूनी बवासीर) में अधिक रक्त गिर जाने से शोथ और पाण्डु के लक्षण प्रगट हो जाते हैं। ऐसी दशा में लौह भस्म

२ रत्ती, नागकेशर चूर्ण १ माशा मिश्री मिला कुटजावलेह के साथ देने से तत्काल लाभ होते देखा गया है।

रक्तपित्त में—लौह भस्म १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण में मिला मधु के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है।

शोथ रोग में—लौह भस्म १ रत्ती, पुनर्नवा चूर्ण २ माशे में मिला गोमूत्र से दें। यकृत प्लीहा वृद्धि पर लौह भस्म १ रत्ती, ताम्र भस्म १ रत्ती मधु के साथ, भोजनोत्तर लौहासव १। तोला बराबर जल मिलाकर देने से अवश्य फायदा होता है।

शंख

परिचय—यह एक समुद्री कीड़ा है जो समुद्र में तथा उसके आसपास की बड़ी-बड़ी नदियों में पैदा होता है। शंख के दो भेद होते हैं। एक दक्षिणावर्त्त और दूसरा वामावर्त्त। दक्षिणावर्त्त शंख अच्छे संयोग से ही कभी किसी को मिलता है। लोकोक्ति है कि जिसके घर में दक्षिणावर्त्त शंख रहता है, उसके घर से लक्ष्मी कभी नहीं जाती है। औषधि कार्य्य में वामावर्त्त शंख ही लिया जाता है; क्योंकि यह अधिक तादाद में मिलता है।

भस्म के लिये—निर्मल, चन्द्रमा के समान उज्ज्वल और चमकदार तथा छेदरहित शंख के टुकड़े लेना अच्छा है।

शोधन विधि—अच्छे छिद्ररहित बड़े और वजनदार शंख के टुकड़े लें, उनको मिट्टी के घड़े में डाल, उसमे जल और नीबू का रस डालकर १ घण्टा मन्द आँच पर पकावें। बाद मे निकालकर गर्म जल से धोकर सुखा करके रख लेने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि—शुद्ध शंख के छोटे-छोटे टुकड़ों को घीकुमारी के रस में मिलाकर एक मिट्टी की हाँड़ी में रख संधि बन्द करके गजपुट में रख आँच दे दें। स्वांगशीतल होने पर निकालकर रख लें, और यदि भस्म खूब सफेद न हो (कच्ची ही रह गयी हो) तो नीबू के रस में खरलकर छोटी-छोटी टिकिया बनाकर धूप में सुखा गजपुट में फूंक दें। १ से २ पुट में खूब मुलायम तथा सफ़ेद और तीक्ष्णता रहित शंख भस्म तैयार हो जाती है।

उक्त विधि से शोधित शंख के टुकड़े को १० सेर कण्डों की या लकड़ी के कोयलों की आँच में फूंक लें। शंख अच्छी तरह फूंक जाने पर अंगुली से दबाने से चूर्ण जैसा हो जाता है। पीछे उसको पत्थर के खरल में तीन बार नीबू रस की भावना देकर छाया में सुखा करके कपड़छन चूर्ण कर रख लें। —आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान—४ से ८ रत्ती, नीबू के रस, मिश्री अथवा गर्म जल के साथ अजीर्ण में और बेल के मुरब्बे के साथ संग्रहणी में तथा काकड़ा सिंगी और पीपरि चूर्ण १-१ रत्ती के साथ हिक्का में दें।

गुण और उपयोग—इसकी भस्म संग्रहणी, नेत्र का फूला, पेट की पीड़ा (दर्द) और तारुण्य पिड़िका (युवावस्था में मुँह पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ निकलती हैं उनको तारुण्य पिड़िका या युवान पिड़िका कहते हैं) को दूर करती है। यकृत्, प्लीहावृद्धि, गुल्म, अजीर्ण, मन्दाग्नि, आफरा आदि को भी नष्ट करती है।

इस भस्म में केल्शियम का अंश बहुत रहता है, अतः कैल्शियम की कमी से शरीर के अन्दर जितने विकार पैदा होते हैं, उनमें यह बहुत लाभ पहुँचाती है। इसमें कुछ फास्फोरस का भी अंश रहता है। मन्दाग्नि या यकृत के विकार से होने वाले उपद्रवों में भी यह भस्म बहुत लाभ पहुंचाती है। बच्चों के वेंकोन्यूमोनियाँ (पसलीचलना) और डब्बे की बीमारी में श्रृंग भस्म के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

शंख भस्म में क्षार के गुण धर्म बहुत अंश में रहने से इसे क्षार भी कहते हैं। शंख भस्म और कौड़ी भस्म दोनों के गुणों में बहुत साम्यता है, क्योंकि दोनों सेन्द्रिय चूने के कल्प हैं। फिर भी कौड़ी भस्म से शंख भस्म में विशेष गुण हैं, उन्हीं का विवेचन यहाँ किया जायगा।

शंख भस्म ग्राही—स्तम्भनकारक है। अतएव अतिसार में विशेषतः पक्वातिसार में—सुहागे का फूला २ रत्ती, अफीम चौथाई रत्ती, जायफल का चूर्ण १ रत्ती में शंख भस्म ४ रत्ती मिलाकर मधु के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

ग्रहणी रोग में जिसमें बार-बार और पतले दस्त हों, कोष्ठ में दर्द हो, और दर्द के साथ थोड़ा-थोड़ा पतला दस्त भी हो, ऐसी दशा में शंख भस्म देने से बहुत लाभ होता है। क्योंकि शंख भस्म में ग्राहक गुण होने से यह दस्त रोकता है तथा क्षारीय होने से शूल को भी नष्ट करता है।

पित्त के दूषित होने से जो कोष्ठ में शूल होता है या पित्तजन्य अतिसार और कफ पित्तज कोष्ठ शूल में जब पेट में वायु भरकर पेट फूल जाय, और दर्द भी हो, कोष्ठ की क्रिया बन्द हो जाय, अन्न का परिपाक ठीक से न हो जिससे खट्टी डकारें जलन के साथ आवें—ऐसी परिस्थिति में शंख-भस्म देने से बहुत लाभ होता है। शंख-भस्म से पेट में भरे हुये वायु का शमन और जठराग्नि प्रदीप्त होकर अन्न अच्छी तरह पचने लगती है, जिससे पेट फूलना या खट्टी डकारें आना बन्द हो जाती हैं।

अन्न का परिपाक ठीक तरह से न होने के कारण आमाशय या पक्वाशय में दर्द होने लगे, तो शंख भस्म नीबू-रस के साथ या घृत में मिलाकर देने से लाभ होता है। पित्त प्रकृति वाले को शंख भस्म उतना लाभ नहीं करता जितना वात और कफ प्रकृति वाले को लाभ करता है।

यकृत् और प्लीहा के बढ़ जाने से ये दोनों अपनी क्रिया करने में असमर्थ हो जाते हैं, जिससे अन्नादिक पचने और रस रक्तादि धातु ठीक तरह से बनने में बाधा पड़ने लगती है। परिणाम यह होता है कि शरीर दुर्बल और पीला-पीला सा दिखाई पड़ने लगता, मन्दाग्नि हो जाती, भूख कम लगती, इत्यादि उपद्रव उपस्थित हो जाते हैं—ऐसी अवस्था में शंख भस्म के उपयोग से यकृत् और प्लीहा की वृद्धि कम हो जाती है तथा ये अपने-अपने काम को अच्छी तरह करने लग जाते हैं। यदि इसके साथ में मलावरोध भी हो तो किसी रेचक औषधि के साथ शंख भस्म देनी चाहिये।

पेट में वायु उत्पन्न होकर शूल होना, आफरा होना, अन्न न पचने के कारण जलन सहित खट्टी डकारें आना आदि उपद्रव होने पर

शंख भस्म २ रत्ती, हिंग्वष्टक चूर्ण ३ माशे में मिला कर गर्म जल से दें।

यकृत् और प्लीहा के बढ़ जाने पर प्रायः क्षारीय (तीक्ष्ण) ओषधियाँ देने की आवश्यकता होती है। परन्तु जब मलावरोध न हो, तो अन्य क्षारीय ओषधियों की अपेक्षा शंख भस्म को मण्डूर भस्म में मिलाकर कुमारी आसव के साथ देने से बहुत लाभ होता है। मलावरोध हो, तो साथ में रेचक ओषधियों का भी प्रयोग करना चाहिये। गुल्म रोग में वज्रक्षार चूर्ण के साथ शंख भस्म देना अच्छा है।

अजीर्ण, मन्दाग्नि और आफरा में १ से ४ रत्ती तक शङ्ख भस्म नीबू रस अथवा मिश्री के साथ या भुनी हींग १ रत्ती और घृत ६ माशे के साथ दिन भर में २-३ बार देने से फायदा होता है। अथवा इसके योग से बनी शङ्खबटी और महाशङ्खबटी आदि का भी प्रयोग गर्म जल से करना अच्छा है।

सब प्रकार के दर्दों पर—काला नमक, भुनी हींग और त्रिकटु चूर्ण के साथ शङ्खभस्म देने से चमत्कारिक गुण होता है। पक्वा-तिसार और संग्रहणी में शङ्खभस्म बेल के मुरब्बे के साथ देने से फायदा होता है।

शुभ्रा (फिटकरी)

परिचय—फिटकरी एक प्रकार की खनिज मिट्टी से, जिसको देशी भाषा में रोल और अंग्रेजी में "एलम शोल" कहते हैं, उसके द्वारा तैयार होने वाली वस्तु है। यह लाल और सफेद भेद से दो तरह की होती है। भारतवर्ष में फिटकरी बनाने वाले कई कारखाने हैं। सबसे बड़ा कारखाना सिन्ध नदी के पश्चिमीय किनारे पर "काला बाग" नामक स्थान में है। जहाँ आज भी बहुत बड़े परि-माण में फिटकरी तैयार की जाती है। राजपुताने के अन्दर भी फिटकरी की मिट्टी बहुत पायी जाती है। इसके अतिरिक्त बम्बई, मद्रास और पंजाब में भी फिटकरी तैयार की जाती है।

भस्म विधि—फिटकरी के टुकड़े को साफ करके छोटे-छोटे टुकड़े बना मिट्टी की हाँड़ी (जिसका पेट बड़ा हो) उसमें रखकर ऊपर से किसी ढक्कन से ढक दें। फिर इसे गजपुट में फूंक दें। स्वांग शीतल होने पर भस्म को निकाल लें। यह भस्म स्वच्छ, मुलायम और श्वेत वर्ण की होती है। बहुत वैद्य फिटकरी को तवा पर रखकर फुलाकर इसकी खील बना महीन पीस करके भी काम में लाते हैं।

लाल फिटकरी भस्म—लाल फिटकरी ५ तोला लेकर घृतकुमारी के रस में खरल करें। जब रस सूख जाय,तो फिर उसे एक दिन भाँगरे के रस में खरल करके उसकी टिकिया बना धूप में सुखा सराब-सम्पुट में बन्दकर ५ सेर कण्डों की आँच में फूंक दें, स्वाङ्ग शीतल होने पर भस्म को निकाल लें।

मात्रा और अनुपान—२ से ४ रत्ती मधु, घी, शर्बत बनफ्शा या रोगानुसार दें।

गुण और उपयोग—इसकी भस्म सूजाक, रक्तप्रदर, खांसी, पार्श्वशूल, पुरानी खाँसी, राजयक्ष्मा, निमोनियाँ, रक्तवमन, विषविकार, मूत्रकृच्छ्र, त्रिदोष, प्रमेह, कोढ़, व्रण आदि को दूर करती है।

इसकी भस्म रक्त रोधक है। इसके सेवन से रक्तवाहिनी शिरा संकुचित हो जाती है, अतः यह बहते हुए रक्त को रोकती है। इसके सेवन से बढ़े हुये श्वास-कास के वेग भी कम हो जाते हैं। छाती में कफ जम कर बैठ जाने से खाँसी होने पर छाती में दर्द होने लगता है। इस खाँसी के आघात से फुफ्फुस खराब हो जाता तथा उसमें भी दर्द होने लगता है। इस कफ को निकालने के लिये फिटकरी भस्म अमृत के समान गुण करती है। कभी-कभी फुफ्फुस में ज्यादे कफ संचय हो जाने से फुफ्फुस कठोर हो जाता तथा अपने कार्य्य करने में भी असमर्थ हो जाता है। ऐसी अवस्था में भी यह भस्म बहुत उपकार करती है।

हुपिंग कास (कुकुर खाँसी)—यह बीमारी बच्चों को अधिकतर

देखने में आती है। इसमें इतने जोर की खाँसी उठती है कि बच्चे को वमन तक हो जाती है—ऐसी हालत में फिटकरी भस्म १ रत्ती, प्रवालपिष्टी आधी रत्ती, काकड़ासिंगी चूर्ण २ रत्ती में मिला मधु के साथ देने से बहुत फायदा होता है।

नये सूजाक रोग में रोगी की मूत्रेन्द्रिय पर (१ बड़ा लोटा भर) ठण्डे पानी की धार लगानी चाहिये। फिर १ औंस पानी में २ रत्ती भर कच्ची फिटकरी डाल कर उस पानी को सिरिंज में भरकर उसकी मूत्रेन्द्रिय में पिचकारी दें। यह पिचकारी पहले दिन आध-आध घण्टे के अन्तर से दें, इसके साथ यवक्षार या गोखरू अथवा ककड़ी के बीज इत्यादि कोई भी मूत्रल औषधि लस्सी के साथ दें।

दूसरे दिन आध-आध घण्टे के बजाय एक-एक घण्टे पर पिचकारी दें। इस प्रकार बराबर ४ रोज पिचकारी देते रहें। इससे पीव का आना, जलन और सूजन शान्त हो जाती है। फिर भी सूजाक के जहर को बिल्कुल नष्ट करने के लिये और भी ४ रोज तक इस प्रयोग को चालू रखना चाहिये। इस प्रयोग से सूजाक अवश्य दूर हो जाता है।

एक यूनानी हकीम ने लिखा है कि यदि सूजाक किसी भी दवा से अच्छा न होता हो, तो फिटकरी भस्म १ माशा को २ माशे मिश्री में मिला कर प्रातः काल धारोष्ण दूध के साथ सेवन करें, अथवा दूध की लस्सी बना कर पीवें, साथ-साथ कच्ची फिटकरी १ रत्ती १ औंस पानी में घोल कर इस पानी से पिचकारी द्वारा मूत्रेन्द्रिय की नली को धो कर साफ करता रहे। इस क्रिया से बहुत शीघ्र बीमारी मिट जाती है।

यह भस्म विष नाशक भी है। अतएव सभी प्रकार के विषों पर इसका प्रभाव अच्छा होता है। नाग (शीशा) धातु की कच्ची भस्म के सेवन करने से पेट में दर्द होता हो तो फिटकरी भस्म १ रत्ती, अफीम १/२ रत्ती, कपूर १/२ रत्ती मिलाकर पानी के साथ सेवन करने तथा रात में एक मात्रा मृदु विरेचन चूर्ण दूध से लेने पर प्रातः

दस्त भी साफ हो जाता और पेट का दर्द शान्त होकर विषदोष भी दूर हो जाता है।

इसी तरह तत्काल काटे हुए सर्प के रोगी को फिटकरी भस्म १ माशे को ५ तोला घी में मिलाकर पिलाने से कुछ देर के लिये विष का वेग आगे नहीं बढ़कर रुक जाता है।

बिच्छू के विष में भी १ तोला फिटकरी को ५ तोला गर्म पानी में मिलाकर रूई के फाहा से काटे हुए स्थान पर इस पानी को बार-बार रखने से बिच्छ का विष दूर हो जाता है।

प्लेग रोग में—लाल फिटकरी भस्म के प्रयोग से बहुत फायदा होता है। प्लेग रोग में जब बुखार बहुत तेज हो, गर्मी के मारे रोगी व्याकुल हो जाय, साथ-साथ प्रलाप भी हो तब फिटकरी भस्म तीन रत्ती, मिश्री १ माशे में मिलाकर देने से बहुत फायदा होता है। परन्तु दवा देने के बाद १ घण्टा तक पानी नहीं देना चाहिये। बाद में १ तोला धनियाँ आधा सेर पानी में डालकर आधा पाव पानी शेष रहने पर छानकर पीने को दें। साथ-ही-साथ गिल्टी पर असगन्ध को पानी में घिसकर दिन भर में २-३ बार लेप करें और दूध-भात पथ्य में दें। इस प्रयोग से अनेक रोगी बच गये हैं।

मलेरिया (पारीवाले ज्वर) में—जब बार-बार ज्वर आता हो, ज्वर का वेग किसी दवा से कम न होता हो तो लाल फिटकरी भस्म ४ रत्ती में शुद्ध संखिया सफेद $\frac{1}{10}$ रत्ती मिलाकर मधु के साथ बुखार आने से १ घण्टा पहले देने से २-३ पारी के बाद शीतज्वर अवश्य रुक जाता है।

नेत्र रोग के लिये फिटकरी एक अक्सीर चीज है। इसके लोशन को आँख में डालते रहने से आँख की सुर्खी और आँख में कीचड़ का आना बन्द हो जाता है। आँख के अन्दर एक प्रकार का बाल उगता है। जिसको "परबाल" कहते हैं। इस रोग में कच्ची फिटकरी की डली ४ तोला को मिट्टी के बर्तन में रखकर आँच पर चढ़ावें, जब फिटकरी पिघल जाय, तब उसमें सोना गेरू का चूर्ण १ तोला डालकर लकड़ी से चला एक जीव कर लें, फिर इसको नीचे

उतारकर खरल में घोंटकर महीन चूर्ण बना कपड़छन कर रख लें।

इसे अंजन की तरह आँख में लगाने से परबाल रोग बहुत शीघ्र दूर हो जाता है। आँखें साफ हो जातीं तथा आँखों में पुनः किसी तरह की बीमारी होने की आशा नहीं रहती है। नेत्र रोग के लिये यह अंजन बहुत ही मुफीद है।

व्रणरोपण के लिये भी इसका प्रयोग किया जाता है, छुरी, तलवार या कुल्हाड़ी आदि के आघात से अगर कोई घाव हो गया हो और उसमें से खून निकलता हो, तो कच्ची फिटकरी को बारीक पीसकर घी के साथ मिलाकर उसको घाव पर रख ऊपर से रूई का फाहा रख पट्टी बाँध देने से खून का बहना तुरत बन्द हो जाता है और घाव बिना पके भर जाता है।

इसी तरह स्त्रियों के ज्यादे रक्तस्राव होने पर या नाक से अधिक खून बहने पर फिटकरी भस्म को मिश्री के साथ खिलाने और नकसीर में इसकी भस्म को सुँघाने से बहुत शीघ्र फायदा होता है। क्योंकि फिटकरी में ग्राही गुण है तथा यह चमड़े एवं शिराओं को संकुचित करती है।

रस कपूर या पारा के विशेष सेवन करने से अथवा और किसी कारण से मुँह में छाले पड़ गये हों और मसूड़ों में जखम हो गये हों तो फिटकरी के पानी से कुल्ले करने से लाभ होता है।

गर्भाशय से अगर खून बहता हो तो गन्दना बूटी के स्वरस में फिटकरी को घोलकर उसमें कपड़ा तर करके गर्भाशय में रखने से खून आना बन्द हो जाता है। गर्भाशय बाहर निकल आने पर भी इसका प्रयोग लाभदायक है।

छाती से रक्त आने पर—जब किसी कारण से छाती में विशेष चोट लगने से खून आने लगे तो ४ रत्ती फिटकरी भस्म, २ माशे मिश्री में मिलाकर २ पुड़िया बना, प्रातः सायं देने से खून आना बन्द हो जाता है। बाद में कमजोरी दूर करने एवं भीतर के घाव को भरने

क लिये प्रवालपिष्टी मिलाकर शर्बत अनार के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

नोट—घरेलू दवाओं में फिटकरी अपूर्व चमत्कारी दवा है और यह सुगमता से मिल भी सकती है। अतएव इसके गुण-धर्म के वर्णन में कच्ची फिटकरी के भी उपयोगों का वर्णन वाचकों के लाभार्थ किया गया है।

शृङ्ग भस्म

भस्म विधि—हरिण या सांभर के अच्छे पुष्ट (भर हुए) सींग लें, उनके ४-५ अंगुल के बराबर छोटे-छोटे टुकड़े कर ऊपर नीचे कण्डे देकर गजपुट की अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर निकालकर चूर्णकर, ग्वारपाठे के रस में पीस टिकिया बना सुखाकर सराब-सम्पुट के बीच में रखकर लघुपुट में फूंक दें। स्वांग शीतल होने पर खरल में पीस कपड़छन कर शीशी में भर लें। —सि० यो० सं०

नोट—प्रथम बार सींग जलते समय उसमें से बड़ी दुर्गन्ध आती है, अतः उन्हें खुली जगह में पुट देना चाहिए।

दूसरी विधि—शृङ्ग के छोटे-छोटे टुकड़े कर एक हण्डी में नीचे ऊपर घृत कुमारी के छिले हुए टुकड़े और बीच-बीच में शृङ्ग के टुकड़े भर कर सकोरे से हाँड़ी का मुख बन्द कर चूल्हे पर चढ़ा तेज आँच लगानी चाहिये, जिससे शृङ्ग के टुकड़े हाँड़ी के अन्दर ही जल जायँ। फिर इन टुकड़ों को घृत कुमारी के रस में घोट कर टिकिया बना ऊपर लिखी विधि से भस्म बनानी चाहिये। इस विधि से बनाई भस्म विशेष गुणयुक्त होती है।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ रत्ती, सुबह-शाम, शहद या गाय के घी के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह भस्म कास, श्वास, पार्श्व-शूल, न्यूमोनिया, ब्रोंकाइटिस, इन्फ्लुएंजा, जीर्ण ज्वर, राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था, हृदयशूल, सर्दी, जुकाम, पायरिया, बालकों का सूखा रोग आदि में महोपकारी है। इस भस्म का मुख्य गुण—कफ और श्वास का नियमन करना, फुफ्फुसों में रहे हुए कफ-दोषों को साम्यावस्था में स्थापित कर फुफ्फुस कोषों और हृदय को शक्ति देना, क्षय

की प्रथमावस्था में क्षय के कीटाणुओं का नियमन कर क्षय को बढ़ने न देना आदि हैं। श्वास, कास में सहायक ओषधियों के साथ शृंग भस्म बहुत काम करती है।

कास रोग में विशेषतया कफजन्य कास (खाँसी) में यह बहुत फायदा करती है। कफज कास में जब दूषित नया कफ रोज बन रहा हो, अन्न में अरुचि, भूख कम लगे, निद्रा ज्यादे आती हो तो ऐसी अवस्था में शृङ्ग भस्म के उपयोग से बहुत फायदा होता है। यह भस्म नवीन कफ को बनने से रोकती है तथा दूषित कफ को छाँटकर बाहर निकाल देती है, जिससे खाँसी भी कम हो जाती और कफ दोष से उत्पन्न उपद्रव भी दूर हो जाते हैं।

किन्तु वातज कास में अर्थात् सूखी खाँसी जिसमें कफ नहीं निकलता हो, उसमें इस भस्म का प्रयोग नहीं करना चाहिये। क्योंकि इससे गले में खुश्की और बढ़ जाती है जिससे खाँसी कम न होकर और बढ़ ही जाती है।

बच्चों के सब प्रकार की खाँसी में विशेषतया कुकुरखाँसी तथा जिसमें खाँसते-खाँसते पसली चलने लगती है, साथ ही खाँसी का भी वेग इतना बढ़ा हुआ रहता है कि बच्चे को दम लेने में बड़ी दिक्कत होती है। मुँह से साँस लेने में असुविधा हो, दूध भी पीना कभी-कभी बन्द कर दे, रोवे ज्यादा, ऐसी हालत में शृंग भस्म आधी रत्ती और अभ्रक भस्म आधी रत्ती दोनों को मिलाकर माँ के दूध या मधु के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

न्यूमोनिया में—न्यूमोनिया होने के बाद छाती में कफ का संचय अधिक हो जाता है। और जब तक यह संचय बना रहता है, तब तक अनेक तरह के उपद्रव उत्पन्न होते रहते हैं। खाँसने पर यह कफ बदबूदार-पीला और चिकना निकलता है। इस दूषित कफ को शीघ्र निकालने के लिये शृंग भस्म का प्रयोग करना उत्तम है। और पुनः दूषित कफ नहीं बने एवं शारीरिक अवयव निर्दोष तथा शक्तिशाली बने रहें इसके लिये रससिन्दूर या मकरध्वज के साथ शृङ्ग भस्म का उपयोग करने से अच्छा लाभ होता है।

छाती पर सेंधा नमक तथा कड़आ तैल अथवा नारायण तैल या रूमी-मस्तगी को पुराने घी में मिलाकर मालिश करनी चाहिये। कभी-कभी दूषित कफ का कुछ अंश भीतर रह जाने से वहाँ दुष्ट दोषों का संचय होना प्रारम्भ हो जाता है। यह संचय ज्यादे होने से ज्वर की उत्पत्ति होती है। किन्तु प्रारम्भ में यह ज्वर सूक्ष्म रूप में भीतर-ही-भीतर बना रहता है। जैसे-जैसे दोष दूषित होते जाते हैं; वैसे-वैसे ज्वर का भी वेग बढ़ता जाता है; और रोगी की शक्ति भी क्षीण होती जाती है। भूख नहीं लगती, शिर में दर्द बना रहता, थोड़ा भी चलने-फिरने से रोगी हाँफने लगता है। साथ ही खून भी कम बनता है इत्यादि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी हालत में शृंग भस्म का प्रयोग करना अच्छा है। क्योंकि यह दूषित कफ को बाहर निकाल कर दुष्ट दोषों को भी सुधार देती है जिससे ज्वर अपने आप कम होने लगता है।

यदि फुफ्फुस में भी विकार आ गया हो, तो शृंग भस्म के साथ थोड़ी-थोड़ी मात्रा में रससिन्दूर मिलाकर देने से फुफ्फुस के विकार शमन हो रोगी शीघ्र अच्छा हो जाता है।

हृद्रोग में शृंग भस्म के उपयोग से अच्छा लाभ होता है। विशेष-कर कफ से उत्पन्न होनेवाले हृद्रोग में—हृदय में कफ का संचय ज्यादा हो जाने से हृदय भारी मालूम पड़े, कफ अधिक मात्रा में निकलता हो, अन्न में अरुचि हो, मन्दाग्नि, भूख कम लगे, मुँह का स्वाद मीठा बना रहे और हृदय जकड़ा हुआ हो, ऐसी स्थिति में शृंग भस्म देने से हृदय में जमा हुआ कफ बाहर निकलकर हृदय हल्का हो जाता और इससे होनेवाले उपद्रव भी दूर हो जाते हैं।

हृदय में किन्हीं कारणों से कमजोरी आ गयी हो अर्थात्—ज्यादा रास्ता चलने या विशेष मानसिक परिश्रम करने अथवा अधिक दिन तक उपवास करने आदि कारणों से हृदय निर्बल हो गया हो, तो शृंग भस्म में अकीक भस्म मिलाकर देने से हृदय की निर्बलता दूर हो जाती है। क्योंकि शृंग भस्म हृदय को पुष्ट करनेवाली है, अतः हृदय को सशक्त बनाती और निर्बल नसों में बल पहुंचाकर

सबल बना देती है, जिससे हृदय में रक्त का आवागमन अच्छी तरह से होने लगता और हृदय भी पुष्ट होकर अपना कार्य करने में समर्थ हो जाता है।

राजयक्ष्मा की प्रारम्भिक अवस्था में मन्दज्वर के साथ-साथ खाँसी भी होती हो, कफ ज्यादा निकलता हो, शिर में दर्द हो, भख कम लगती हो, धीरे-धीरे शारीरिक शक्ति का नाश होते जाना आदि लक्षण उत्पन्न होने पर श्रृंग भस्म के प्रयोग से अपूर्व लाभ होता है। यदि क्षयरोग की प्रथमावस्था से ही श्रृंग भस्म का सेवन कराना शुरू कर दें तो यक्ष्मारोग आगे नहीं बढ़ सकता तथा रोगी भी बच जाता है। क्षयरोग के लिये यह सर्वोत्तम औषध है। क्योंकि यह भस्म कफ नाशक तो है ही, साथ ही क्षयरोग के बढ़ानेवाले कीटाणुओं को भी नाश करने में अपूर्व चमत्कार दिखाती है। अतः प्रथमावस्था से ही इसका प्रयोग करने से कीटाणु आगे नहीं बढ़ पाते, जिससे क्षयरोग आगे न बढ़कर उसी अवस्था में शान्त हो जाता है।

सर्दी (जुकाम) प्रतिश्याय, की नवीनावस्था में नाक से पानी अधिक गिरता है। शिर में दर्द, आँखों की पलकें भारी हो जाना, नाक से श्वास न लेकर मुँह से ही श्वास लेना। कुछ-कुछ बुखार भी बना रहना इत्यादि लक्षण होते हैं। यह बीमारी बहुत भयंकर होती है, क्योंकि यदि जुकाम रुक जाता है, तो खाँसी उत्पन्न हो जाती है और यह खाँसी ऐसा उग्ररूप धारण कर लेती है कि कभी-कभी तो यह क्षय के रूप में परिणत हो रोगी को परेशान कर देती है। अतः इस रोग को प्रारम्भ में ही दूर करने के लिए श्रृंग भस्म का प्रयोग करना चाहिये। इस भस्म के प्रयोग से मस्तिष्क में रुकी हुई रतूवत निकल जाती है और जुकाम भी शीघ्र ठीक हो जाता है। कभी-कभी दुष्टजल या ऋतु के कारण कफ का संचय विशेष परिमाण में हो जाता है। यह बढ़ा हुआ कफ श्वास-नलिका में इस तरह प्रवेश किये हुए रहता है कि श्वास लेने में भी कठिनाई होती है। खाँसी आने पर सफेद और पतला कफ निकलने पर कुछ

देर के लिये शान्ति मिल जाती है। किन्तु फिर पूर्ववत् ही हालत हो जाती है जिससे रोगी बहुत घबराया हुआ-सा रहता है। ऐसी परिस्थिति में शृंगभस्म १ रत्ती, मल्लचन्द्रोदय आधी रत्ती, त्रिकटु चूर्ण ३ रत्ती में मिलाकर मधु के साथ देने से बहुत फायदा होता है। ऊपर से तुलसी की पत्ती और कालीमिर्च की चाय भी देते रहने से अच्छा रहता है किन्तु, यदि कफ पक गया हो तो मल्लचन्द्रोदय न देकर अभ्रक भस्म आधी रत्ती, सितोपलादि चूर्ण में मिला मधु से देना हितकर है। —औ० गु० ध० शा०

सर्दी (जुकाम) की खाँसी में शृंग भस्म १ रत्ती शर्बत बनप्सा के साथ देने से बहुत फायदा होता है। न्यूमोनिया और पार्श्वशूल म शृंग भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म आधी रत्ती मधु के साथ तथा ब्रोंकाइटिस में शृंग भस्म १ रत्ती, मल्लसिन्दूर आधी रत्ती में मिलाकर पान के रस और मधु मिलाकर देना बहुत उपकारी है।

एन्फ्लुएंजा के बाद अवशिष्ट दूषित कफ बहुत समय तक कष्ट देता है तथा दुर्गन्धयुक्त पीले रंग का चिकना कफ निकलता रहता है। इसके लिये शृंग भस्म १ रत्ती, मल्लचन्द्रोदय आधी रत्ती, मुलेठी और बहेड़ा की मींगी का चूर्ण २-२ रत्ती, मिश्री १ माशे में मिला वासास्वरस १ तोला मधु में मिलाकर सेवन करने से इस रोग में शीघ्र लाभ होता है।

कफ को निकालने के लिये मिश्री का अनुपान और कफ को सुखाने के लिये मधु या पान के रस का अनुपान देना अच्छा है।

प्लूरसी (उरस्तोय) में शृंग भस्म २ रत्ती, मकरध्वज आधी रत्ती मधु मिलाकर ऊपर से मुलेठी का क्वाथ देना अच्छा है।

न्यूमोनिया में गोदन्ती हरताल भस्म २ रत्ती, शृंग भस्म १ रत्ती पान के रस के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

राजयक्ष्मा में—शृंग भस्म १ रत्ती, प्रवालपिष्टी १ रत्ती दोनों मिला कर सितोपलादि चूर्ण में मिला घी के साथ दें, बाद में च्यवन-प्राश १ तोला की मात्रा में देने से रोग निर्मूल हो जाता है।

हृदयशूल में शृंग भस्म १ रत्ती मक्खन के साथ देना चाहिये।

वृक्क व्रण या मूत्रस्तम्भ में श्रृंग भस्म १ रत्ती, वंगभस्म आधी रत्ती, १ माशा मिश्री मिलाकर दूध की लस्सी के साथ देना चाहिये।

संगयशव

शोधन विधि—संगयशव को आग में तपा-तपाकर २१ बार गावजवाँ के अर्क में बुझाने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि—शुद्ध संगयशव के टुकड़ों को महीन चूर्ण बना ग्वारपाठे के रस में घोंटकर छोटी-छोटी टिकिया बना धूप में सुखा सराबसम्पुट में बन्दकर गजपुट में फूँक दें, ऐसे २-३ पुट देने से उत्तम भस्म बन जाती है।

दूसरी विधि—(पिष्टी) शुद्ध संगयशव को छोटे-छोटे टुकड़े कर महीन चूर्ण बना कपड़े से छानकर अर्क गुलाब में ७ दिन तक लगातार घोटते रहें, जब सुर्मा जैसी महीन पिष्टी बन जाय तब छाया में सुखाकर शीशी में भरकर रख लें।

मात्रा और अनुपान—२ से ४ रत्ती, मधु या शर्बत बनप्सा अथवा मिश्री की चाशनी में मिलाकर दें।

गुण और उपयोग—इसका प्रभाव हृदय पर सबसे ज्यादा होता है। किसी भी कारण से हृदय कमजोर होकर उसकी गति में वृद्धि हो गयी हो, शरीर की कान्ति नष्ट हो गयी हो, भूख कम लगती हो, कमजोरी बढ़ रही हो, शिर में दर्द होता रहता हो, कभी-कभी कफ बढ़ जाने से शरीर में भारीपन मालूम हो, तो संगयशव १ रत्ती, मकरध्वज आधी रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशे में मिलाकर मधु के साथ या च्यवनप्राश १ तोला के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है।

शुक्र की निर्बलता में भी इसका प्रयोग किया जाता है। वातवाहिनी नाड़ी की कमजोरी के कारण शुक्र पतला होकर पेशाब के साथ या अनायास ही अथवा स्वप्नदोषादि के कारण शुक्र निकल जाता हो, तो संगयशव भस्म २ रत्ती, वंगभस्म आधी रत्ती, छोटी इलायची-चूर्ण ४ रत्ती, मक्खन या मलाई के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

यह बुद्धिवर्द्धक भी है। अतएव स्मरणशक्ति के ह्रास होने पर इसकी भस्म ब्राह्मी चूर्ण के साथ प्रयोग करें और ऊपर से सारस्वतारिष्ट १। तोले की मात्रा में बराबर जल मिलाकर दें।

नोट—यूनानी चिकित्सकों का कहना है कि संगयशव पत्थर की ताबीज बनाकर गले में धारण करें और उस ताबीज की डोर इतनी लम्बी हो कि संगयशव पत्थर हृदय पर लटकता रहे, तो हृदय की बीमारी कभी नहीं होती है।

संगयहूद (हजरूलयहूद)

परिचय—इसको पत्थरबेर भी कहते हैं। यह बेर के सदृश खाकी रंग का एक पत्थर होता है। यूनानी दवा बेचनेवालों के यहाँ इसी (हजरुलयहूद) नाम से मिलता है। यूनानी वैद्यक में यह मूत्रल और पथरी को तोड़कर निकालनेवाला माना गया है। इसका उपयोग विशेषतया यूनानी चिकित्सक करते रहे हैं। किन्तु इसमें अनेक उपयोगी गुण देखकर इसका समावेश आयुर्वेदीय चिकित्सा के अन्दर किया गया है।

शोधन विधि—संगयहूद को आग में तपा-तपाकर ७ बार कुल्थी के क्वाथ में बुझाने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि—शुद्ध संगयहूद पत्थर को इमामदस्ते में कूटकर सूक्ष्म कपड़छन चूर्णकर पत्थर के खरल में ३ दिन तक मूली के स्वरस में मर्दन कर टिकिया बना सुखा लें। फिर इसे सराब-सम्पुट में बन्दकर लघुपुट में रखकर आँच दें। स्वांगशीतल होने पर टिकिया निकाल पीसकर शीशी में भर लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—२ रत्ती से ४ रत्ती नारियल के पानी या अश्मरी नाशक क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह अश्मरी (पथरी) नाशक और मूत्रल है। किसी भी तरह रुके हुए पेशाब को खोलने में यह उत्तम है। यदि पथरी बहुत बड़ी न हुई हो, तो कुछ दिन लगातार इसका प्रयोग करने से बिना आपरेशन के ही पेशाब के रास्ते पथरी को गला कर

निकाल देती है। मूत्रावरोध, मूत्रकृच्छ्र और शर्करा आदि में पेशाब साफ आने के लिये इसका प्रयोग बहुत लाभदायक है।

स्वर्ण (सोना)

परिचय—जो सोना तपाने पर लाल (सुर्ख) हो जाय, कसौटी के ऊपर कसने से केसरिया रंग का हो जाय, चाँदी और ताम्बे के अंश से रहित हो और स्निग्ध, नरम तथा भारी हो, ऐसा सोना उत्तम होता है। भस्म के लिये ऐसा ही सोना देखकर लेना चाहिये।

अग्राह्य स्वर्ण—जो सोना मोड़ने या हथौड़े की चोट मारने पर कठोर, तौल में हल्का, रूक्षवर्ण, कसौटी पर रगड़ने और तपाने तथा काटने पर श्वेतवर्ण वाला हो, वह सोना अग्राह्य है। ऐसे सोने में चाँदी तथा ताँबे का मिश्रण पाया जाता है।

शोधन-विधि—सोने का कंटकवेधी पत्र (आजकल मशीन द्वारा सोने का बहुत पतला पत्र बनवा लिया जाता है। इसी को भस्म के लिये लेना चाहिये); लेकर आग में तपा-तपाकर तैल, तक्र, गोमूत्र, काँजी और कुल्थी के क्वाथ में ३-३ बार बुझाने से शुद्ध हो जाता है। या वर्क अथवा कुन्दन बनवा लिया जाय। वर्क और कुन्दन बनाने के पहिले ही स्वर्ण-पत्रों को तैल-तक्र आदि में शुद्ध कर लेना चाहिये।

भस्म-विधि—चन्द्रोदय (मकरध्वज) बनाते समय शीशी के तलभाग में जो सोना रह जाता है, उसमें समभाग संखिया मिला, तुलसी की पत्ती के स्वरस में ७ दिन तक घोट, टिकिया बना सुखा, दो सकोरे के बीच में रख सन्धि-स्थान पर कपड़मिट्टी कर, १ सेर कण्डों की आँच में निर्वात-स्थान में पुट दें। पीछे सम्पुट से टिकिया निकाल उसमें पुनः आधा भाग शुद्ध संखिया मिला, प्रथम पुट की तरह पुनः पुट दें। तीसरी बार या आगे जब तक भस्म न हो जाय चौथाई संखिया मिला पुट देते रहें, भस्म हो जाने के बाद तुलसीपत्र के रस में ३ दिन मर्दन करें। १०-१२ पुटों में लाल रंग की भस्म तैयार होती है। फिर इस भस्म को गुलाब, कमल और मौलसरी के फूलों के स्वरस में १-१ दिन घोटकर पुट देने से उत्तम भस्म बनती है।

—सि० यो० सं०

नोट—सोना, चाँदी और शीशे की भस्म बनाते समय यह ध्यान में रखें कि थोड़ी-सी भी आँच अधिक होने से ये तीनों धातु गलकर गट्टा बन जाता है, अतएव प्रारम्भ में आधा सेर से १ सेर तक कण्डों की आँच दें। फिर जैसे-जैसे अग्निसह होता जाय वैसे-वैसे आँच भी बढ़ाते जायें। सोने की भस्म एक बार में १ से ५ तोले तक की बनावें।

दूसरी विधि—शुद्ध कंटकवेधी स्वर्ण के शुद्ध पत्र को कैंची से बहुत बारीक-बारीक कतर लें। इसे दुगुना पारा में मिलाकर दोनों को एकत्र घोट पिट्ठी बना लें। इस पिट्ठी को तुलसी पत्र के रस में तीन दिन तक लगातार मर्दन कर टिकिया बना धूप में सुखा, सराब-सम्पुट में बन्द कर आधा सेर कण्डों की आँच में फूंक दें। इस तरह ५-७ पुट देने से ही भस्म हो जाती है। पर यह भस्म काली होगी। इसी काली भस्म को लेकर १-२ पुट खुला ही देने से सुर्ख (लाल) रंग की भस्म हो जाती है।

तीसरी विधि—विशुद्ध स्वर्ण के सूचीवेध्यपत्रों को खरल में डाल उसमें समभाग शुद्ध पारद मिला, तीन दिन तक नीबू के रस में मर्दन कर जल से अच्छी तरह धो लें, अब इसमें सोने से आधा भाग श्वेतपाषाण (संखिया) का चूर्ण मिलाकर जम्बीरी नीबू के रस में तीन दिन तक मर्दन करके द्रवभाग को सुखाकर चूर्ण कर लें। अब इस चूर्ण में स्वर्ण के बराबर भाग शुद्ध गन्धक चूर्ण मिला सम्पुट में बन्द कर लघुपुट में फूंक दें। इस प्रकार तब तक पुट दें, जब तक चन्द्रिका रहित भस्म न हो जाय, निश्चन्द्र भस्म होने पर इसको कचनार की छाल के स्वरस की भावना देकर तीन पुट दें। इस विधि से बनी हुई स्वर्ण भस्म पके जामुन के रंग की तरह होती है। —र० त०

मात्रा और अनुपान—चौथाई से आधी रत्ती तक मधु, मक्खन, मिश्री, मलाई, गिलोय सत्त्व, च्यवनप्राशावलेह आदि के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

रोगानुसार अनुपान

बातप्रकोपयुक्त ज्वर में स्वर्ण भस्म को रससिन्दूर के साथ पीस-कर बेल की छाल के स्वरस के साथ दें। पित्तज्वर में स्वर्ण भस्म

में रस सिन्दूर मिलाकर पित्त पापड़े के स्वरस के साथ दें। इसी तरह कफज्वरों को दूर करने के लिये स्वर्ण भस्म को रससिन्दूर के साथ मिलाकर तुलसी पत्र-स्वरस के अनुपान से दें। जीर्णज्वर में स्वर्ण भस्म और अभ्रक भस्म मिलाकर शहद के साथ दें। पुरानी संग्रहणी में स्वर्ण भस्म को रसपर्पटी में मिलाकर उचित अनुपान के साथ सेवन करने से लाभ होता है। पुराने पाण्डु रोग में—गुर्च सत्त्व, स्वर्ण भस्म और लौह भस्म को एकत्र मिला शहद के साथ सेवन करें।

राजयक्ष्मा में—स्वर्ण भस्म, अभ्रक भस्म, रससिन्दूर और मुक्तापिष्टी एकत्र मिलाकर शहद के साथ दें। गर्भाशय शुद्धि के लिये स्वर्ण भस्म को क्षीरकाकोली और चोपचीनी चूर्ण में मिलाकर सेवन करें। पुराने फिरङ्ग को नष्ट करने के लिये स्वर्ण भस्म में रसपुष्प मिलाकर इसको रक्तशोधक गुर्च, केसर, अनन्तमूल आदि वनौषधियों के क्वाथ के साथ सेवन करना चाहिये। चरकोक्त श्वासहर शठीचूर्ण आदि द्रव्यों के साथ सेवन करने से भयंकर श्वास-रोग नष्ट हो जाता है। नवीन या पुराने अम्लपित्त में स्वर्ण भस्म आँवले के चूर्ण में मिलाकर सेवन करें। अपस्मार तथा योषापस्मार में स्वर्णभस्म को रससिन्दूर, अभ्रक भस्म तथा शंखपुष्पी-चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है। शिरःकम्प-रोग में स्वर्ण भस्म को बला (खरेंटी) क्वाथ के साथ सेवन करें। स्वर्ण भस्म में समभाग बनी पारद-गन्धक की कज्जली और पुनर्नवा चूर्ण मिलाकर गो-मूत्र के अनुपान से सेवन करने से अण्डकोष में होने-वाली सूजन मिट जाती है। स्वर्ण भस्म को मुनक्का, पिप्पली-चूर्ण, कायफल-चूर्ण तथा मुलेठी-चूर्ण में मिलाकर कुछ दिनों तक सेवन करने से कण्ठस्वर कोमल और सुरीला बन जाता है।

लालचन्दन, नागकेसर अथवा कमलकेशर, नीलोफर, मुलेठी, खाँड, मजीठ, केसर आदि रक्त शोधक तथा रक्तवर्द्धक द्रव्यों के साथ स्वर्ण भस्म सेवन करने से स्त्रियों में सुन्दरता की वृद्धि होती है। त्रिदोषजन्य उन्माद रोग में स्वर्ण भस्म को सोंठ, लौंग और काली

मिर्च के चूर्ण में मिलाकर शहद के साथ सेवन करने से लाभ होता है। स्वर्ण भस्म को वच, गिलोय, सोंठ तथा शतावर-चूर्ण के साथ ६ मास तक लगातार सेवन करने से मेधा (धारणा) शक्ति की वृद्धि होती है। स्वर्ण भस्म को शालपर्णी, विदारी कन्द, असगन्ध और कौंचबीज के चूर्ण के साथ तीन मास तक निरन्तर सेवन करने से कृश शरीरवाले मनुष्य हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं।

नागकेशर चूर्ण में स्वर्ण भस्म मिलाकर ऋतुकाल में स्त्री को सेवन कराने से उसके गर्भाशय में गर्भधारण की शक्ति उत्पन्न होती है। गर्भाशय में अनेक उपद्रवयुक्त शोथ को दूर करने के लिए स्वर्ण भस्म को शिलाजीत, लोह भस्म और चाँदी की भस्म में मिलाकर दशमूल कषाय के अनुपान से सेवन करें।

शरीर में अकाल में उत्पन्न जराप्रभाव को दूर करने के लिए स्वर्ण भस्म को च्यवनप्राश तथा मकरध्वज और अभ्रक भस्म के साथ सेवन करना चाहिए।

गुण और उपयोग—इसकी भस्म स्निग्ध, मधुर, कषाय, किंचित् तिक्त, शीतवीर्य और रसायन गुणवाली है। पाककाल में मधुर, बृंहण, हृद्य और स्वर शुद्धिकारक है। सुवर्ण भस्म प्रज्ञा, वीर्य, स्मृति, कान्ति और ओज को बढ़ानेवाली है। यह क्षय (राजयक्ष्मा), धातुक्षीणता, जीर्ण ज्वर, मन्दज्वर, बराबर आनेवाला ज्वर, त्रिदोष, मस्तिष्क की निर्बलता, पुराना श्वास, कास, दाह, पित्त रोग, पित्तज उन्माद, विषविकार, पित्त प्रधान प्रमेह, दृष्टि क्षीणता, प्रदर, नपुंसकता आदि रोगों में इसका प्रयोग करना श्रेष्ठ है।

जिस प्रकार स्वर्ण को सामाजिक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, ठीक उसी प्रकार शारीरिक व्याधि दूर करने में भी यह बहुत महत्त्व रखता है। अत्यन्त क्षीणावस्था को प्राप्त मृतप्राय रोगी को भी जीवन-शक्ति प्रदान करने की अद्भुत शक्ति स्वर्ण भस्म में पायी जाती है।

वैसे तो सभी रोगों में स्वर्णघटित औषधियों से चमत्कारिक लाभ होता है। किन्तु राजयक्ष्मा, संग्रहणी, जीर्णज्वर, स्नायुदौर्बल्य,

नपुंसकता आदि व्याधियों में तो स्वर्ण भस्म के बिना रोग आराम होना ही कठिन है। दिल को ताकत पहुँचानेवाली औषधियों में स्वर्ण भस्म का सर्वप्रथम स्थान है। स्वर्ण भस्म का कार्य रक्त को निर्दोष बनाकर हृदय को पुष्ट तथा रक्तवाहिनियों और वातवाहनियों को सबल करना है। अर्जुन, कपूर, कुचला, डिजिटेलिस पत्र आदि में जो हृदय पुष्ट करने के गुण हैं; उनसे बिलकुल भिन्न गुण स्वर्ण भस्म में है। यह स्मरण रखना चाहिये कि स्वर्ण भस्म बहुत कम मात्रा में दें।

अनुलोम क्षय में—स्वर्ण भस्म विशेष लाभदायक है। इस तरह कण्ठमाला में भी स्वर्ण भस्म से उत्तम लाभ होता है। दोनों प्रकार की धातु क्षीणता (अर्थात् रस-रक्तादि धातुओं की क्षीणता में तथा केवल शुक्र धातु की क्षीणता) में स्वर्ण वसन्त मालती, वसन्त-कुसमाकर और स्वर्णघटित औषधियों से विशेष लाभ होता है। स्वर्णघटित वृहत् विषम ज्वर हर लौह, और पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लौह आदि औषधि से कालाजार या किसी तरह न आराम होनेवाला मलेरिया ज्वर जड़ से नष्ट हो जाता है।

सैकड़ों इंजेक्शन और वर्षों डाक्टरी चिकित्सा करने पर भी जो रोगी अच्छे न हुये, वे स्वर्णघटित औषधों से अच्छे होते देखे गये हैं। त्रिदोष (सन्निपात) में कस्तूरी भैरव, समीरपन्नग रस आदि स्वर्ण-घटित दवाओं से रोगी की प्राणरक्षा होती है। मस्तिष्क की निर्बलता में स्वर्ण भस्म सर्वोत्तम साबित हुई है। स्वर्ण मिश्रित मकरध्वज बटी, वृहत् वात चिन्तामणि आदि महौषधियों से अत्यन्त कष्टदायक दिमाग की कमजोरी दूर करने के लिये सुप्रसिद्ध औषध है।

पुराना कास-श्वास किसी भी तरह आराम न होता हो, तो वृहत् श्वास चिन्तामणि, महालक्ष्मी विलास रस आदि स्वर्णघटित दवाओं का प्रयोग करना चाहिये। इन दवाओं से निश्चित रूप से लाभ होता है। तीव्र विष विकार के शमन होने पर भी शरीर में कुछ अंश विष का रह जाता है। उस विष विकार को दूर करने के लिये स्वर्ण भस्म का प्रयोग थोड़ी मात्रा में करना लाभप्रद है। स्वर्ण

भस्म सेवन करनेवालों पर विष का प्रभाव प्रायः बहुत कम होता है।

क्षय रोग के समान भयंकर और दुर्जय रोग में स्वर्ण भस्म का उपयोग बहुत लाभदायक है। जिस प्रकार आयुर्वेद के आचार्यों ने क्षय रोग में सुवर्ण उपयोगिता का मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है, उसी प्रकार आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सकों ने भी इस भयंकर व्याधि में स्वर्ण की उपयोगिता को दिल खोल कर स्वीकार किया है। जैसे वैद्यगण सुवर्ण भस्म अथवा उससे बनी औषधें क्षय रोगियों को देते हैं, वैसे ही पाश्चात्य चिकित्सकों ने सुवर्ण के इंजेक्शन तथा दूसरी बनावटें क्षय रोगियों के लिये तैयार की हैं और उनका प्रचुर मात्रा में वे लोग उपयोग भी करते हैं।

इसका कारण यह है कि स्वर्ण तेजस्वी होते हुये भी यह एक सौम्य पदार्थ है। यह हृदय, मस्तिष्क, स्नायुजाल, मूत्रपिण्ड, और शरीर के प्रत्येक अंगों पर एक प्रकार का स्फूर्त्तिदायक प्रभाव डालता है। जिससे शरीर का ओज और कान्ति बढ़ती है, शरीर में स्फूर्त्ति और मन में उमंग पैदा होती है और रक्त संचालन की क्रिया में रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है। जिससे रोग के कीटाणु उस रक्त में नहीं बढ़ सकते।

सुवर्ण भस्म हृदय को शक्ति प्रदान कर पुष्ट बनाती है। यह दूषित रक्त को शुद्ध कर हृदय को पुष्ट करते हुये वातवाहिनी और रक्तवाहिनी शिराओं में शक्ति प्रदान करती है। सुवर्ण भस्म में यह गुण अन्य भस्मों से कहीं ज्यादा है।

विषविकार—स्थावर या जंगम विष का जो शरीर पर बुरा असर पड़ता है अर्थात् अशुद्ध संखिया, सींगिया, मीठा तेलिया आदि स्थावर विष के खाने से और साँप, पागल कुत्ता, बिल्ली आदि जंगम प्राणियों के काट खाने से जो विष शरीर में व्याप्त होकर अपना असर प्रकट करता है, इस तरह के विष-विकार को दूर करने के लिये स्वर्ण भस्म का प्रयोग करना चाहिये। ऐसी अवस्था में विष का वेग अन्य उपचारों द्वारा बन्द कर देने के बाद भी थोड़ी-थोड़ी मात्रा में स्वर्ण भस्म का बार-बार प्रयोग करना चाहिये। क्योंकि स्वर्ण विषघ्न

है अतएव विष विकार को दूर करने के लिये इसका प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

सुवर्ण कीटाणु नाशक है, अतएव क्षयरोग में सुवर्ण का उपयोग अनेक तरह से किया गया है, कहीं स्वतन्त्ररूप से और कहीं यौगिक रूप से इसका प्रयोग करने का आयुर्वेद में वर्णन है। क्षय के किसी भी अवस्था में स्वर्ण भस्म का प्रयोग कर सकते हैं। आयुर्वेद के आचार्यों ने देश, काल, बल आदि का सूक्ष्म से सूक्ष्म विचार करके ही अनेक तरह से स्वर्ण का प्रयोग क्षयरोग में किया है।

किन्तु क्षयरोग में जब ज्वर का वेग बहुत ज्यादा हो, पित्त के मारे मन व्याकुल हो, प्यास की भी विशेषता हो, ऐसी अवस्था में स्वर्ण भस्म नहीं दें, क्योंकि कभी-कभी देखा गया है कि ऐसी अवस्था में स्वर्ण भस्म देने से ज्वर का टेम्प्रेचर (गर्मी) और भी बढ़ जाती है। इसका कारण यह है कि स्वर्ण देने से क्षय के कीटाणु मरने लग जाते हैं। वे जैसे-जैसे मरते जाएं वैसे-वैसे शरीर के बाहर निकलते जाएं, तो ज्वर आगे न बढ़ कर कम होने लगता है, और रोगी भी अच्छा हो जाता है। किन्तु यदि वे मरे हुये कीटाणु बाहर नहीं निकल पाएं, तो उनके विष सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर ज्वर को और भी बढ़ा देता है। अतः रोगी की अवस्था, प्रकृति और बल देखकर स्वर्ण भस्म का प्रयोग करना चाहिये।

क्षय रोग के पूर्वरूपावस्था में अर्थात् क्षय होने से पहले सूखी खांसी हो, शरीर में पीड़ा (दर्द) हो और प्रतिदिन सायंकाल अथवा रात्रि में बुखार हो, दिनानुदिन क्रमशः कमजोरी बढ़ती जाय, जिससे क्रोध ज्यादा हो, रोगी सदा उदास बना रहे, किसी की बात अच्छी न लगती हो ये लक्षण होने पर स्वर्णभस्म देने से बहुत फायदा होता है। क्योंकि उस समय में क्षय रोग उत्पन्न करनेवाले दूषित दोष अथवा कीटाणु स्वर्ण भस्म के प्रयोग से आगे नहीं बढ़ पाते हैं। कारण इस भस्म का प्रधान कार्य रक्त प्रसादन अर्थात् रक्त के विकार को दूर कर स्वच्छ बनाकर रोगोत्पन्न करनेवाले कीटाणुओं का नाश करना है। अतः क्षय रोग होने से पूर्व ही यदि स्वर्णभस्म का सेवन

कराया जाय, तो इस रोग के उत्पन्न होने की आशा ही नहीं रहती है ।

क्षय रोग में—जब सर्वाङ्ग में मन्द-मन्द ज्वर रहने लगे, हाथ-पाँव में जलन हो, स्वर भेद (आवाज बैठ जाना), अंश (कन्धा) और पसली में खिंचाव (संकोच) हो, बार-बार पतले दस्त हों, खाँसी का वेग अधिक और वह भी सूखी खाँसी हो, कण्ठ में खुजलाहट मचती हो, और पित्त के विशेष प्रकोप हो जाने से कफ के साथ रक्त भी गिरता हो, तो ऐसी अवस्था में स्वर्ण भस्म स्वतन्त्र रूप से अथवा प्रवाल पिष्टी आदि के साथ बहुत शीघ्र लाभ करती है । क्योंकि यह पित्त को शान्त करके दूषित रक्त को सुधार कर स्वच्छ बना देती है तथा कफ की वृद्धि कर गले में स्निग्धता (चिकनाहट) उत्पन्न कर देती है, जिससे सूखी खाँसी बन्द हो जाती है । ये दोनों विकार शान्त होते ही अन्य सब उपद्रव अपने आप शान्त हो जाते हैं ।

उरःक्षत रोग में—जब मुँह से ज्यादा रक्त निकलने लगे, तो चिकित्सा तो रक्त पित्त की तरह करें, किन्तु उन औषधियों के साथ या स्वतन्त्र रूप से थोड़ी-थोड़ी मात्रा में सुवर्ण भस्म का भी प्रयोग करते रहें । क्योंकि इस रोग में कमजोरी बहुत जल्द आ जाती है । जिससे हृदय कमजोर होकर हार्ट फेल होने की सम्भावना बनी रहती है । अतः हृदय में ताकत पहुँचाने के लिये स्वर्ण भस्म देना अच्छा है । इससे रक्त प्रसादन होकर हृदय भी पुष्ट हो जाता है ।

पित्तज और कफज उन्माद—अर्थात् पित्त और कफवाले उन्माद रोग में जब रोगी उठ-उठकर भागता हो, कभी-कभी रोने भी लगता हो, किसी की भी बात अच्छी नहीं लगती हो, चंचलता विशेष हो, गर्म पदार्थ के देखने या छूने से रोष पैदा हो । एकान्त में बैठना अच्छा लगे, ज्यादे बोले नहीं, हाथ-पैर पटकता रहे । बेचैनी अधिक हो, मुख, नेत्र कपोल आदि पर थोड़ा-थोड़ा शोथ हो, ठण्डे जल और अन्न खाने की विशेष अभिलाषा बनी रहे, दूसरे को मारने के लिये दौड़ना, अन्न पर अरुचि, जड़ता, स्त्री सम्बन्धी बातों को सुनने की

ज्यादे इच्छा होना आदि लक्षण उत्पन्न होने पर सुवर्ण भस्म धमासे के क्वाथ के साथ देना हितकर है। क्योंकि इसकी भस्म विकृत कफ और पित्त से उत्पन्न विकार को दूर कर हृदय को शुद्ध रक्त द्वारा पुष्ट करते हुए मानसिक विकार जिससे मन विकृत रहता है दूर करके मन में शान्त्वना पैदा करती है।

खाँसी या श्वास, जिसमें पित्त अथवा वात की प्रबलता हो, उसमें सुवर्ण भस्म देने से बहुत फायदा होता है।

राजयक्ष्मा के विष जब अंतड़ियों या ग्रहणी में पहुँच जाते हैं, तब अतड़ियाँ और ग्रहणी दोनों दूषित हो जाते हैं, जिससे बार-बार पतले दस्त आने लगते हैं, ये दस्त जैसे-जैसे बढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे शरीर भी कमजोर होता जाता है। कभी-कभी आँतों में क्षत (खराश) हो जाने से भी रक्त गिरने लगता है। ऐसी अवस्था में स्वर्ण भस्म देना अच्छा है। कारण इस भस्म के प्रभाव से यक्ष्मा बढ़ानेवाले दूषित विष नष्ट होकर आँतों में भी सुधार हो जाता, जिससे पतला दस्त होना रुक जाता है। साथ ही अन्य विकार भी शान्त हो जाते हैं।

कुष्ठ रोग में भी सुवर्ण भस्म का उपयोग अच्छा होता है। क्योंकि इससे रक्त का प्रसादन हो त्वचा कोमल हो जाती और त्वचा गत विकृत पित्त भी शान्त हो जाता, जिससे शरीर की कान्ति अच्छी हो जाती तथा क्षुद्र कुष्ठ अथवा त्वचा के रोग नष्ट हो जाते हैं। महाकुष्ठ उत्पन्न करनेवाले कीटाणु भी इस भस्म के सेवन से नष्ट हो जाते हैं।

आन्त्रिक ज्वर आदि पुराने बुखारों में स्वर्ण भस्म के प्रयोग से दो काम होता है। पहला तो यह कि शरीर में फैला हुआ विष द्वारा दूषित रक्त का विष दूरकर शुद्ध रक्त का शरीर में संचालन करना और दूसरा कार्य—पुरानी बीमारी की वजह से हृदय कमजोर हो जाता है, जिससे हृदय की गति बढ़ जाती है और रक्त की कमी के कारण नाड़ी की गति भी क्षीण हो जाती है, इस विकार को दूर करना अर्थात् रक्त प्रसादन कर हृदय की कमजोरी दूर हो हृदय

पुष्ट हो जाता तथा रक्त की पूर्त्ति होकर नाड़ी की गति में भी सुधार हो जाता है। —औ० गु० ध० शा०

हृदय को पुष्ट और बलवान बनाने के लिये स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती, अकीक भस्म १ रत्ती में मिला, शहद या अदरख रस के साथ दें। क्षय (राजयक्ष्मा) की प्रथम और द्वितीयावस्था में स्वर्ण भस्म आठवां रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, शृंग भस्म आधी रत्ती, गिलोय सत्व २ रत्ती में मिला मधु के साथ देने से बहुत शीघ्र फायदा होता है। पित्त प्रधान या वात प्रधान श्वास-कास में द्राक्षासव के साथ स्वर्ण भस्म का सेवन करना परम हितकर है। दाह में—स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती, मोती पिष्टी आधी रत्ती में मिला, आँवले के मुरब्बा के साथ देना श्रेष्ठ है। पित्त रोग और पित्त प्रधान उन्माद रोग में स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, ब्राह्मी और बच के चूर्ण २-२ रत्ती, मधु के साथ दें। और भोजनोत्तर सारस्वतारिष्ट १ तोला बराबर जल मिलाकर सेवन करावें। सिर में हिम कल्याण तैल की मालिश करावें। इस रोग में स्वर्ण मिश्रित दवाइयाँ भी बहुत फायदा करती हैं।

पैत्तिक प्रमेह में—स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती, बंग भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म आधी रत्ती ताजे आँवले या गिलोय (गुर्च) के स्वरस के साथ देने से शीघ्र ही लाभ करता है अथवा स्वर्णघटित औषधियाँ देने से भी काफी लाभ होता है। नेत्रों की दृष्टि में विकार उत्पन्न होने पर स्वर्ण भस्म आठमांश रत्ती, कांस्य भम १ रत्ती में मिला, त्रिफलादि घृत के साथ दें। यदि दस्त में कब्जी भी रहती हो, तो रात को सोते समय त्रिफला चूर्ण या और कोई हल्का विरेचन ले लेने से कब्जियत दूर हो जाती है। भयंकर प्रदर (श्वेत-रक्त दोनों) में स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती, श्वेतांजन १ रत्ती, मुक्ता शुक्ति पिष्टी १ रत्ती में मिला चौलाई की जड़ का चूर्ण १ माशा अथवा इसके क्वाथ के साथ देने से बहुत शीघ्र फायदा होता है। नपुंसकता में स्वर्णघटित मकरध्वज आधी रत्ती, मुक्ता पिष्टी १ रत्ती और स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती

की मात्रा में मलाई के साथ देने से बहुत फायदा होता है। ग्रहणी में स्वर्ण-पर्पटी से मृतप्राय रोगी अच्छे होते हैं। ग्रहणी में स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती, सोंठ और भुने जीरे का चूर्ण २–२ रत्ती मिलाकर मधु के साथ देने से अपूर्व लाभ होता है।

स्वर्ण माक्षिक

परिचय—सोनामक्खी एक उपधातु है। इसमें बहुत अल्पांश में स्वर्ण होने तथा इसके गुणों में सोने के गुणों की समानता होने और इसमें स्वर्ण-जैसी कुछ चमक होने से इसको "स्वर्ण माक्षिक" कहते हैं।

शास्त्रों के कथनानुसार स्वर्ण माक्षिक स्वर्ण का उपधातु निश्चित होता है, क्योंकि इसमें कुछ स्वर्ण का गुण और सहयोग होते हैं। परन्तु वास्तव में यह लौह धातु का उपधातु है। विश्लेषण करने पर इसमें लौह, गंधक और अल्पांश में ताम्बे का भाग पाया जाता है। इसको लौह समास निश्चित किया गया है। इस विश्लेषण से यह उपधातु निश्चित होता है न कि उपरस। स्वर्ण माक्षिक और रौप्यमाक्षिक भेद से इसके दो भेद होते हैं।

जो स्वर्ण माक्षिक बाहर से देखने में स्निग्ध, भारी, नीली-काली चमकयुक्त तथा कसौटी पर रगड़ने पर कुछ–कुछ स्वर्ण समान रेखा खिंचनेवाली, कोण रहित, सोने के सामान वर्णवाला हो, उसे स्वर्ण माक्षिक समझें। —र० त०

शोधन विधि—स्वर्ण माक्षिक का कपड़छन किया हुआ चूर्ण तीन पाव में सेंधा नमक एक पाव मिला कर लोहे की कढ़ाई में डाल ऊपर से विजौरा या जम्बीरी नींबू का रस इतना डालें कि चूर्ण डूब जाय। फिर इस कड़ाही को अग्नि पर रख कलछे से चलाते रहें, जब चूर्ण अग्निवर्ण हो जाय तब चलाना बन्दकर आँच भी बन्द कर दें। स्वांगशीतल होने पर जल से ४-६ बार धो दें, जिससे सेंधा नमक का अंश निकल जाय, जल को सावधानी से निकालें अन्यथा स्वर्ण माक्षिक का महीन चूर्ण भी जल के साथ निकल जायगा। फिर इसको धूप में सुखा कर रख लें। —र० सा० सं०

भस्म विधि—शुद्ध स्वर्ण माक्षिक आधा सेर, शुद्ध गन्धक एक पाव दोनों एकत्र मिला बिजौरा नींबू के रस में डालकर एक दिन बराबर मर्दन कर इसकी छोटी-छोटी टिकिया बना, सुखा, सराब-सम्पुट में बन्दकर कपड़मिट्टी कर के सुखा लें। पीछे गजपुट में रख कर फूंक दें। स्वांगशीतल होने पर निकाल ग्वारपाठा में मर्दनकर टिकिया बना सुखा, सराब-सम्पुट में बन्द कर लघुपुट में रख कर आँच दें। इस प्रकार प्राय: १० पुट में जामुन के रंग की भस्म हो जाती है। स्वर्णमाक्षिक की भस्म एक बार में आधा सेर या तीन पाव से ज्यादा का नहीं बनावें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती मधु (शहद), घी, गिलोय-सत्त्व, मक्खन, मिश्री आदि के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—कुछ चिकित्सकों का विश्वास है कि स्वर्ण माक्षिक भस्म स्वर्ण भस्म के अभाव में इसलिए दिया जाता है कि इसमें स्वर्ण का कुछ अंश रहता है, किन्तु वास्तव में स्वर्ण माक्षिक लौह का सौम्य कल्प है। हां, लोहे में जो कठोरता उष्णता और तीव्रता आदि गुण रहते हैं, वे इस भस्म में नहीं है। लौह का अति सौम्य कल्प होने से यह कमजोर, सुकुमार एवं नाजुक स्त्री-पुरुष तथा बालकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

स्वर्ण माक्षिक भस्म—विपाक में मधुर, तिक्त, वृष्य, रसायन, योगवाही, शक्तिवर्द्धक, पित्तशामक, शीतवीर्य, स्तम्भक और रक्त प्रसादक है। पाण्डु, कमला, जीर्णज्वर, निद्रानाश, दिमाग की गर्मी, पित्त विकार, नेत्ररोग, वमन, उबकाई, अम्लपित्त, रक्तपित्त, व्रणदोष, प्रमेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र, शिर:शूल, विषविकार, अर्श, उदररोग, कण्ड, कुष्ठ, कृमि, मदात्यय और बाल रोग में यह विशेष उपयोगी है। विशेषकर कफ-पित्तजन्यरोगों में यह बहुत लाभदायक है।

यद्यपि पाण्डु, कमला आदि रक्ताल्पता की प्रधान औषध लौह भस्म है, किन्तु यदि लौह भस्म से रोग का शमन न हो तो लौह का आधा कल्प मण्डूर का प्रयोग करें। अगर मण्डूर से भी सफलता

नहीं मिले तो स्वर्ण माक्षिक भस्म का प्रयोग करना चाहिये। बच्चों को गहरी निद्रा लाने का तो इस में प्रधान गुण है।

केवल पित्तविकार या कफ-पित्त संसर्गज विकार में इसकी भस्म अच्छा काम करती है। अतएव पित्तज शिर:शूल या अम्लपित्त अथवा पित्तज परिमाणशूल में इसका अनुपान भेद से उपयोग होता है।

वात-पित्तात्मक शिर:शूल हो तो सूतशेखर रस के साथ स्वर्ण माक्षिक भस्म का उपयोग होता है, किन्तु जिस शिरो रोग में वमन, मूंह का स्वाद कषैला, अन्न में अरुचि और वमन होते ही शिर दर्द कम हो जाये, आदि लक्षण उपस्थित हों उसमें सूतशेखर रस साथ में न देकर केवल स्वर्ण माक्षिक भस्म ही देना ठीक है। पुराने शिर:शूल में इस भस्म से बहुत ही फायदा हो होता है।

चक्कर आना, विचार करते-करते मन में भ्रम हो जाना, गर्म पदार्थ के खाने या धूप में चलने अथवा अधिक जगने से थोड़ा भी मानसिक परिश्रम अथवा शारीरिक परिश्रमकरने से चक्कर आ जाना , ऐसी हालत में स्वर्ण माक्षिक भस्म देने से अतिशीघ्र लाभ होता है। यह भस्म पित्त शामक और रक्त प्रसादक भी है, अत: पित्त को शमन कर दूषित रक्त को स्वच्छ बना रक्त प्रसादन करती है। जिससे उपरोक्त सब विकार दूर हो जाते हैं।

पित्तजन्य नेत्ररोग—अर्थात् नेत्र ज्यादे लाल हों, थोड़ा-थोड़ा दर्द भी होता हो, नेत्र में जलन इतनी हो कि शीतल पानी छिड़कने या वर्फ आदि ठण्डी चीजें आँख पर रखने की इच्छा होती हो, ऐसी परिस्थिति में स्वर्ण माक्षिक भस्म का उपयोग (खाने और आँजने) दोनों तरह से करना चाहिये। इसमें भी प्रधान दोष—पित्त और रक्त की विकृति ही रहती है। अत: स्वर्ण माक्षिक भस्म के सेवन से लाभ होता है।

ज्यादा क्रोध, जागरण आदि से पित्त बढ़कर हृदय एकदम कमजोर हो जाता है जिससे थोड़े ही परिश्रम से घबराहट उत्पन्न हो जाती है। शारीरिक शक्ति का भी ह्रास हो जाता है। ऐसी दशा में स्वर्णमाक्षिक भस्म देने से पित्त की शान्ति हो रक्त प्रसादन हो जाता

तथा यह हृदय को पुष्ट भी करती है और क्रमशः शरीर म ताकत उत्पन्न कर शरीर को स्वस्थ बनाने में सहायता करती है।

पित्त दूषित हो जाने पर रक्त और रक्तवाहिनी शिराएँ और हृदय ये सब (जो उसके आश्रय में रहनेवाले हैं) दूषित हो जाते हैं, इनके दूषित होने पर अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं और जैसे-जैसे वे रोग पुराने होते जाते हैं, वैसे-वैसे हाथ-पाँव और मुँह पर शोथ उत्पन्न होने लगता है। ऐसी दशा में स्वर्ण माक्षिक भस्म देने से शीघ्र लाभ होता है। क्योंकि स्वर्ण माक्षिक भस्म हृदय तथा रक्त प्रसादक होने के कारण इन सब विकारों को दूरकर देती है।

जब पित्त विदग्ध हो कर रक्त में जा मिलता है, तब रक्तवाहिनी शिराएँ पतली हो जाती हैं और रक्त में दूषित पित्त की गर्मी अधिक बढ़ जाने से रक्तवाहिनी की पतली शिराएँ फूट जाती हैं। जिसके द्वारा दूषित रक्त का प्रवाह होने लगता है। यह रक्त अधोमार्ग (गुदा, लिंग) अथवा ऊर्ध्वमार्ग (मुख, कान, नाक, आदि) द्वारा निकलने लगता है, दोषों के विशेष प्रकोप होने से रोम छिद्रों द्वारा भी निकलने लगता है। यही "रक्त पित्त" है। इस रोग में माक्षिक भस्म से बहुत फायदा होता है। इससे दूषित पित्त शमन हो कर रक्त भी स्वच्छ और गाढ़ा होने लगता है जिससे रक्तवाहिनी शिराएँ पुष्ट होतीं और उनमें रक्त को अपने अन्दर धारण करने की शक्ति उत्पन्न होती है, फिर रक्तस्राव होना अपने आप बन्द हो जाता है।

पेट के अन्दर आमाशय बढ़ जाने के और पेट की भीतर त्वचा-विकृत होने तथा उदर में व्रण हो जाने से अम्लपित्त रोग होता है। शास्त्र में इन सब की गणना अम्लपित्त में की गयी है। व्रणजन्य अम्लपित्त को छोड़कर शेष अम्लपित्तों में स्वर्ण माक्षिक भस्म बहुत लाभदायक है।

आमाशय बढ़कर उत्पन्न होनेवाले अम्लपित्त रोग में यह अपने स्तम्भक और शामक तथा स्वादु गुण के कारण पित्त को नियमन करता तथा उसमें सौम्यता स्थापित करता है। फिर भीतरी

पिच्छिल (स्निग्ध) त्वचा की विकृति से जो अम्लपित्त होता है, उसमें माक्षिक अपने लवणत्व के प्रभाव से फायदा करता है। उदर में पित्तोत्पादक अथवा रसोत्पादक पिण्ड की विकृति होने से उत्पन्न हुई विकृति में माक्षिक भस्म में विद्यमान लौह अंश और बल्यत्व गुण के कारण अंकुचन (खिचाव) हो तथा बल-प्राप्ति होकर कार्य होता है।

माक्षिक में लौह के अंश होने से यह शक्तिवर्द्धक है। रक्त नाक से आता हो, चक्कर आता हो, कमजोरी ज्यादा मालूम पड़े, ऐसे समय में स्वर्ण माक्षिक भस्म देने से बहुत शीघ्र फायदा होता है।

मद्य (शराब) आदि का अति सेवन करने से मदात्यय रोग हो जाता है। इसमें चक्कर आना, वमन होना, वमन में रक्त आना, नेत्र लाल हो जाना, मुँह की कान्ति नष्ट हो जाना, निद्रा नाश होना आदि लक्षण होने पर स्वर्ण माक्षिक भस्म के सेवन से मद्य जनित गर्मी कम हो जाती है।

विसूचिका—अजीर्णजन्य विसूचिका में वमन बन्द करने के लिये स्वतन्त्र रूप से या किसी औषध (सूतशेखर रसादि) के साथ इसे देने से वमनादि उपद्रव शीघ्र शान्त हो जाते हैं। विसूचिका रोग शान्त हो जाने के बाद निर्बलता दूर करने के लिये भी स्वर्ण माक्षिक भस्म का उपयोग करना अच्छा है। इस रोग में—चक्कर आना वमन होना, कभी-कभी पतले दस्त हो जाना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी हालत में स्वर्ण माक्षिक भस्म शंख भस्म में मिलाकर देने से हितकर होता है।

वातजन्य या वात-पित्तजन्य हृद्रोग में—हृदय चंचल हो, बार, बार घबराहट, जम्भाई आना, पसीना आना, सर्वाङ्ग में कम्प हो जाना इत्यादि लक्षण उत्पन्न होने पर सुवर्ण माक्षिक भस्म देने से लाभ होता है। यह भस्म हृद्य है, अतः हृदय की चंचलता दूर कर हृदय को शुद्ध रक्त द्वारा पुष्ट बनाता है।

शीतज्वर में—जिस ज्वर में पहले ठण्ढ लगकर ज्वर चढ़े या लगातार बहुत दिनों तक ज्वर आता रहे अथवा ज्वर दूर करने के लिये क्विनाइन का सेवन किया हो, क्विनाइन सेवन करने के बाद

प्लीहा वृद्धि हो कर प्लीहा बढ़ जाने से पेट बढ़ गया हो और सर्वाङ्ग में शोथ, घबराहट आदि लक्षण उत्पन्न हो गये हों, तो ऐसी स्थिति में सुवर्ण माक्षिक भस्म का उपयोग करना श्रेष्ठ है, क्योंकि कुनीन के अति सेवन से या उसके विकार से उत्पन्न जैसे—कान से कम सुनाई देना, नींद न आना, दिमाग कमजोर हो जाना, यकृत् विकार, पीला पेशाब होना आदि विकार दूर हो जाते हैं, कुनीन जन्य विकार को दूर करने के लिये इससे अच्छी दवा कोई नहीं है।

हृदय रोग से उत्पन्न हुए शोथ अथवा शीतज्वर के बाद शरीर कान्तिहीन हो पाण्डुवर्ण का हो जाना अथवा पाण्डु रोग के कारण शोथ उत्पन्न होना, साथ-साथ वमन होना, शिर में दर्द हो, चक्कर आवे, ऐसी परिस्थिति में स्वर्णमाक्षिक भस्म देने से बहुत फायदा होता है। क्योंकि इसमें लोहे का अंश विद्यमान होने से यह रक्त कणों की वृद्धिकर पाण्डुरोग नाश करती तथा शरीर को भी कान्तिमय बनाती है।

रक्तविकार में—सम्पूर्ण शरीर में छोटी-छोटी फुन्सियाँ होकर, उनमें खुजली होना, त्वचा, मुँह और नाखून सब कान्तिहीन (निस्तेज) हो जाना ये लक्षण रक्तस्राव या अतिसार के बाद हुये हों, साथ में कमजोरी ज्यादा हो, तो सुवर्ण माक्षिक भस्म देना अच्छा है। क्योंकि यह रक्त प्रसादक है अर्थात् रक्त के विकार को दूरकर परिशुद्ध रक्त शरीर में संचालन करती है। जिससे दूषित रक्त से होनेवाले सम्पूर्ण विकार शान्त हो शरीर सुन्दर और स्वस्थ बन जाता है।

—औ० गु० ध० शा०

पाण्डु और कमला रोग में स्वर्णमाक्षिक भस्म २ रत्ती, मण्डूर भस्म १ रत्ती में मिलाकर शहद (मधु) के साथ अथवा कच्ची मूली के रस निकालकर उसके साथ देना। जीर्ण ज्वर में—स्वर्ण माक्षिक भस्म २ रत्ती, वर्द्धमान पिप्पली के साथ देने से अच्छा लाभ होता है।

निद्रा नाश एवं पित्तज उन्माद में—रात्रि को सोते समय स्वर्ण माक्षिक भस्म २ रत्ती, जटामांसी, नेत्रवाला और रक्तचन्दन के क्वाथ में मधु मिलाकर देने से निद्रा आने लगती है। दिमाग की गर्मी शान्त

करने के लिए स्वर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती, कूष्माण्डावलेह ६ माशे के साथ देना अच्छा है।

पित्तविकार में स्वर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती शर्बतवनफ्सा या शर्बत अनार के साथ देना लाभदायक है। नेत्र रोग में नेत्र की जलन और लाली दूर करने के लिये स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती मक्खन और मिश्री मिला कर सेवन करें। साथ ही गुलाब-जल भी आँख में डालते रहें। वमन एवं उबकाई में स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, बेर की गुठली की मींगी १ नग के साथ देने से अच्छा फायदा होता है।

अम्लपित्त की सभी अवस्था में स्वर्ण माक्षिक का मिश्रण लाभप्रद है यदि केवल स्वर्ण माक्षिक ही देना हो तो स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म आधी रत्ती आँवला के रस के साथ दें। अभाव में मधु के साथ दें।

रक्तपित में स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, प्रवालचन्द्रपुटी १ रत्ती, गिलोय सत्त्व ३ रत्ती में दुर्वा स्वरस अथवा बासा (अडूसा) के पत्तों के रस के साथ मधु मिला कर देना श्रेष्ठ है।

रक्त विकार में स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती मधु में मिलाकर ऊपर से महामंजिष्ठादि अर्क २ तोला अथवा सारिवाद्यासव १ तोला बराबर जल के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

पित्तज प्रमेह में स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, वंग भस्म आधी रत्ती गिलोय सत्त्व ३ रत्ती, मुक्ताशुक्ति पिष्टी १ रत्ती मिलाकर द्राक्षावलेह अथवा शर्बत वनप्सा के साथ देने से शीघ्र ही फायदा होता है।

मूत्रकृच्छ्र में स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, यवक्षार ४ रत्ती में मिलाकर पानी के साथ देना। पित्तज शिरदर्द में स्वर्ण माक्षिक भस्म २ रत्ती, शुक्ति भस्म १ रत्ती मक्खन और मिश्री के साथ दें। विष विकार में स्वर्ण माक्षिक भस्म २ रत्ती मधु के साथ कुछ दिनों तक लगातार सेवन कराने से विशेष लाभ होता है।

रक्तार्श और पित्तार्श में—स्वर्ण माक्षिक भस्म २ रत्ती, नागकेसर असली, तेजपात और छोटी इलायची का चूर्ण २-२ रत्ती मधु के साथ देने से लाभ होता है।

उदर रोग में यकृत् और प्लीहा बढ़ जाने पर स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, शंख भस्म २ रत्ती, मूलीक्षार २ रत्ती गोमूत्र के साथ देने से लाभ होता है। कृमि विकार में स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती वायविडंगचूर्ण ३ रत्ती में मिला तुलसी पत्र रस के साथ दें।

मदात्यय रोग में—स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, ब्रह्मी चूर्ण ४ रत्ती, कुटकी, पुनर्नवा और गिलोय (गुर्च) के क्वाथ के साथ दें। मसूरिका रोग में—स्वर्ण माक्षिक भस्म २ रत्ती, मोतीपिष्टी आधा रत्ती, कचनार-छाल के क्वाथ के साथ देने से मसूरिका का आभ्यन्तरीय विकार शीघ्र बाहर निकल आता है। कुनीन के विकार में स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, मिश्री १ माशे में मिलाकर गोदुग्ध के साथ देने से कुनीन जनित विकार शान्त हो जाते हैं।

हरताल (तवकिया)

परिचय—यह दो प्रकार की होती है। १—पत्र (तवकिया) हरताल और २—पिण्ड हरताल। इनमें पत्र हरताल ही औषध काम में आती है। पत्र हरताल—सोने के समान रंगवाली होती है, इसमें अभ्रक के समान पत्र मिलते हैं। इसीको तवकिया या बर्की हरताल कहते हैं, यही गुण और प्रभाव में श्रेष्ठ भी होती है।

भस्म के योग्य हरताल—जो हरताल स्वर्ण के समान पीतवर्ण, भारी, स्निग्ध और छोटे-छोटे पत्रों की रचनावाली तथा चमकदार होती है वही हरताल भस्म के लिये श्रेष्ठ है।

शोधन विधि—अच्छी पत्री (वर्की) हरताल के चने बराबर छोटे-छोटे टुकड़े कर कपड़े में बाँध कर मिट्टी की हाँड़ी में पेठे के स्वरस में दोला यन्त्र विधान से धीमी आँच पर ६ घंटा पकावे, पीछे मिट्टी या काँच के वर्तन में नीबू का रस डालकर भिगो दे। प्रतिदिन नींबू का रस बदलते रहें। ऐसे सात दिन नींबू के रस में रखने के बाद जल में धोकर सुखा लें। —सि० यो० सं०

भस्म विधि—पलाश की जड़ का क्वाथ शहद के सामान गाढ़ा बना इससे ३ बार उक्त विधि से शुद्ध हरताल को भावना दें पश्चात्

भैंस के मूत्र की भावना देकर खरल करके गोला बना ले, फिर सराब-सम्पुट में बन्द कर कपड़ मिट्टी कर के सुखाकर दश जंगली कंडों की आँच में रख दें। ऐसे १२ पुट देने से हरताल की भस्म हो जाती है।

—र० र० स०

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती, शहद या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह भस्म स्निग्ध, उष्ण, कटु एवं अग्नि दीपक है। वातरक्त, कुष्ठ, उपदंश (गर्मी), चर्म रोग, रक्तविकार विषमज्वर, शीतांग, कफ-वात प्रधान भयंकर सन्निपात, वात रोग, उर्ध्वश्वास, मृगी, भगन्दर आदि रोग नाशक और उत्कृष्ट रसायन है।

वातरक्त में—वात या कफ प्रधान वात रक्त में इसका विशेषतया प्रियोग कया जाता है। वातरक्त का प्रारम्भ हाथ-पाँव की अंगुलियाँ सूज कर होता है। पहले अंगूठे सूजकर दर्द करने लगते हैं, फिर धीरे-धीरे सम्पूर्ण शरीर में यह रोग फैल जाता है।

जिस वातरक्त में—सम्पूर्ण शरीर चमक उठे, कभी-कभी धमनियाँ फड़कने लगें, हड्डियों में दर्द हो, शोथ हो जाय, शोथ की त्वचा रूक्ष होकर फट जाय। हाथ-पाँव की धमनियों में खिचाव हो, अंगुलियाँ टेढ़ी हो जाएँ, जिससे—चलने में दिक्कत हो, हाथ की भी अंगुलियाँ टेढ़ी हो जायें, हाथ-पैर का सन्धिबन्धन हो, जिससे अंगुलियों की संचालनादिक्रिया बन्द हो जाय, खिचाव, जहाँ शोथ हो वहाँ की त्वचा काला तथा सुन्न हो जाय, सम्पूर्ण अंग जकड़ जाय, शीतल जल या वायु से द्वेष होना आदि लक्षण होने पर हरताल भस्म के प्रयोग से बहुत लाभ होता है। इस रोग का प्रधान कारण दूषित वात और रक्त है अतः इनकी विकृति दूर होने से और जितने विकार हैं वे सब दूर हो जाते हैं।

यदि वातरक्त के शोथ में शून्यता आगयी हो, सम्पूर्ण शरीर में जड़ता उत्पन्न हो गई हो, कहीं भी स्पर्श करने से स्पर्श-ज्ञान मालूम न हो, सब अंगों में खुजली हो, वेदना (दर्द) कम हो और शरीर भी

कफ प्रधान होने के कारण शीतल हो, तो हरताल भस्म का उपयोग अवश्य करना चाहिये।

हरताल भस्म वातरक्त के उपद्रवों में भी लाभ करती है। जैसे—निद्रा नाश (नींद न आना), अरुचि, श्वास, मांस गलना, शिर की नसें अकड़ जाना, बार-बार मूर्च्छा होना, आँखों से धुंधलापन दिखाई देना, शरीर में ज्यादा दर्द होना, प्यास लगना, ज्वर, शोथ का पक जाना, चक्कर आना, शरीर में थकावट, अंगुलियाँ टेढ़ी हो जाना शरीर पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ उत्पन्न होना इत्यादि बड़े भयानक उपद्रव होते हैं। इसमें बार-बार मूर्च्छा होना असाध्यावस्था के चिह्न हैं। इन उपद्रवों में भी हरताल भस्म देने से लाभ होता है।

यह रोग अधिक दिवों तक रहनेवाला तथा बहुत भयंकर होता है। इसरोग में सब से ज्यादे खराबी यह है कि रोग कुछ दिन के लिये अच्छा होकर फिर कुछ रोज बाद उत्पन्न हो जाता है। थोड़ा-सा भी आहार-विहार में अन्तर पड़ जाने पर इसका प्रादुर्भाव पुनः हो जाता है। किसी-किसी रोगी को तो वातरक्त शमन होकर विसर्प-रक्त दूषित होकर छोटे-छोटे फोड़े-फुन्सियाँ तथा शरीर पर छोटे-छोटे चकत्ते भी हो जाते हैं, और सम्पूर्ण अंग काले पड़ जाते हैं। इन लक्षणों के उपस्थित होने पर हरताल भस्म का प्रयोग अवश्य करना चाहिये। इससे दूषित रक्त शुद्ध हो जाता और वातवाहिनी शिराओं का भी संकोच दूर हो कर शुद्ध रक्त का संचार शरीर में होने से रक्त विकार-जन्य दोष दूर हो जाते हैं।

यद्यपि वातरक्त और कुष्ठ की सम्प्रति में अन्तर है। अतः लक्षणों में भी अन्तर पड़ जाते हैं, परन्तु कुष्ठ रोग में भी हरताल भस्म वातरक्त के समान ही गुण करती है। त्वचा के रोग और पामा (खुजली) कच्छु, दद्रु (दाद) आदि उपकुष्ठों में हरताल भस्म की अपेक्षा गन्धर्क रसायन विशेष लाभ करता है। हाँ, इनमें भी यदि कोई रोग बहुत पुराना हो गया हो, किसी तरह भी नहीं छूटता हो, जिसकी जड़ जम गयी हो, तो किसी रक्त शोधक दवाओं के साथ

हरताल भस्म सेवन करना अच्छा है। शेष कुष्ठ रोगों में दोष और दुष्यों की प्रधानता देखकर ही इसका प्रयोग करना चाहिये। पित्त प्रधानकुष्ठ की अपेक्षा वात और कफ प्रधान कुष्ठ रोग में यह विशेष लाभ करती है। उचित अनुपान के साथ मात्रानुसार हरताल भस्म के सेवन से कुष्ठ रोग अवश्य दूर हो जाता है।

उपदंश (सिफलिस) रोग के नये व पुराने दोनों अवस्थाओं में यह भस्म गुणकारी है। उपदंश के प्रारम्भिक अवस्था में जब कि शरीर के ऊपरी त्वचा पर इसका असर नहीं हुआ हो अर्थात् चकत्ते नहीं हुए हों तो ऐसी अवस्था में पारद भस्म, रस कपूर आदि देना अच्छा है। परन्तु यदि उपदंश के विकार बाहरी त्वचा पर आ गये हों, जैसे चट्ठे हो जाना, शरीर में खुजली होना आदि तो हरताल भस्म का ही प्रयोग करें। उपदंश के सब उपद्रवों और सब अवस्थाओं में हरताल भस्म देना उत्तम है। उपदंश के उपद्रव—अर्थात् उपदंश होने के बाद कई प्रकार के उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। इनमें मुख्य उपद्रव गलित कुष्ठ और गुदशूल (मांस कीलक) हैं। इन दोनों में हरताल भस्म का बहुत अच्छा असर होता है।

उपदंशजन्य कुष्ठ और निज कुष्ठ में बहुत अन्तर होता है। उपदंशजन्य कुष्ठ-उपदंश होने के बाद में होता है। इसमें दोष-दूष्य नहीं होते, अन्य कुष्ठों के समान इसके भेद या लक्षण भी नहीं होते, इसमें तो एकही प्रकार के लक्षण होकर धीरे-धीरे गलित कुष्ठ में परिणत हो जाता है। सर्वप्रथम कान की बाली (लौ), नाक के अग्र भाग और गाल पर लाल-लाल चकत्ते हो कर फिर सम्पूर्ण शरीर में वैसे ही चकत्ते होने लगते हैं। हाथ-पाँव की अंगुलियाँ फूलने लगती इसमें स्पर्श-ज्ञान का अभाव हो जाता और इतनी शून्यता आ जाती है, कि जलने तक का भी ज्ञान नहीं होता। बाद में धीरे-धीरे सूजन फूटने लगती और उसमें से पीव निकलने लगती है। सर्वाङ्ग में शोथ (सूजन) हो जाता, शरीर का अंग विकृत हो टेढ़ा-मेढ़ा होने लगता, जिससे रोगी देखने में डरावना मालूम पड़ता है। इस अवस्था में भी हरताल भस्म देने से अच्छा लाभ होता है।

गलित कुष्ठ में जब तक पूय (पीव) मात्र ही बह कर निकलता हो, तभी तक आभ्यान्तरिक या बाहरीय उपचार से फायदा हो सकता है। यदि पूय के साथ-साथ मांस-मज्जा आदि भी आने लगे, तब किसी भी दवा से फायदा नहीं होता है।

हरताल भस्म वातरक्त की अचूक दवा है। विशेषतया बात या कफ प्रधान वातरक्त के लिये तो बहुत ही अच्छी दवा है। इस रोग में हरताल भस्म १ रत्ती घी के साथ खाकर ऊपर से गुर्च का क्वाथ पीने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। इसी तरह कफ प्रधान वात रक्त में हरताल भस्म १ रत्ती, करंज के पत्तों के रस में मिश्री मिलाकर देना हितकर है। वातरक्त शमन हो जाने पर भी किसी-किसी को खुजली फोड़े-फुन्सी आदि रक्त दूषित हो जाने पर चकत्ते होना आदि उपद्रव होते हैं, ऐसी अवस्था में हरताल भस्म १ रत्ती, चोपचीनी चूर्ण ४ रत्ती में मिला मधु से देना, ऊपर से खदिरारिष्ट १ तोला या महामंजिष्ठादि अर्क २ तोला पिलाना अच्छा है। —औ० गु० ध० शा०

कुष्ठ रोग में—हरताल भस्म २ रत्ती, बाकुची चूर्ण १ माशे, सारिवाद्यासव के साथ देना हितकर है। पुराने उपदंश रोग में हरताल भस्म १ रत्ती, गन्धक रसायन १ रत्ती, अनन्तमूल का क्वाथ या अर्क के साथ देना हितकर है। चर्म रोग में हरताल भस्म १ रत्ती, गिलोय सत्त्व ४ रत्ती मधु के साथ दें, ऊपर से मंजिष्ठादि अर्क पीने को देने से यह रोग दूर हो जाता है। शीतांग और कफ प्राधान्य सन्निपात में हरताल भस्म आधी रत्ती अदरख-रस के साथ देने से मूर्च्छा और शीतांगपना आदि दूर होकर रोगी जल्द ही होश में आ जाता है। उर्ध्वश्वास रोग में बहेड़ा की मिंगी या सोमलता चूर्ण २-२ रत्ती के साथ हरताल भस्म मिला कर देने से विशेष लाभ होता है। अपस्मार (मृगी) में हरताल भस्म आधी रत्ती, ब्राह्मी चूर्ण १ माशे में मिलाकर घी और मिश्री के साथ देना श्रेष्ठ है। विषम ज्वर में कुनीन की जगह इसका व्यवहार करें। वात व्याधि में दशमूल क्वाथ के साथ देना लाभप्रद है।

कूपीपक रसायन प्रकरण

इस प्रकरण में पारद और गन्धक के योग से कूपीपक्व द्वारा अनेक प्रकार की उत्तमोत्तम दवाएँ तैयार करने के विषय में विवेचन किया जायगा।

रस शास्त्रियों का मत है कि पारद अनेक प्रकार के रोगों का नाशक है अतएव इसका नाम रस, रसेन्द्र, सूत, पारद आदि रखा गया है। रस शास्त्रियों ने इसकी व्युत्पत्ति करते हुए इसके नामों का बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। यथा—

रसनात् सर्व धातूनां रस इत्यभिधीयते।
जरारुङ्मृत्युनाशाय रस्यते वा रसोमतः॥
रसोपरसराजत्वाद्रसेन्द्र इति कीर्तितः।
देहलोहमयीं सिद्धिं सूते सूतस्ततः स्मृतः॥
रोगपङ्काब्धिमग्नानां पारदाना च्च पारदः। —र० र० स०

अर्थात् सुवर्ण, रजत (चाँदी) आदि धातुओं को भक्षण करने से यह "रस" कहलाता है। अथवा—जरा (बुढ़ापा), व्याधि (रोग) और मृत्यु को नाश करने के लिये इसका भक्षण किया जाता है। अतएव यह "रस" कहा जाता है। अभ्रक आदि आठ महारस तथा गंधकादि उपरसों में श्रेष्ठ होने से "रसेन्द्र" कहलाता है। शरीर को मजबूत करने से यह "सूत" कहलाता है। व्याधि रूपी कीचड़ के समुद्र में डूबे हुए मनुष्यों को उससे पार करने के कारण "पारद" कहलाता है। आगे जहाँ इसके गुणों का वर्णन किया है, वहाँ लिखते हैं—

मूर्च्छार्तो गदहृत्तथैव खगतिं धत्ते निवद्धोऽर्थदः
तद्भस्मामयवार्धकादिहरणं दृक् पुष्टिकान्ति प्रदम्।
वृष्यं मृत्यु विनाशनं बलकरं कान्ताजनानन्ददम्॥
शार्दूलातुलसत्वकृत् क्रमभुजां योगानुसारिस्फुटम्॥

तथा च—

मूर्च्छित्वा हरति रुजं बन्धनमनुभूय मुक्तिदोभवति ।
अमरीकरोति हि मृतः कोऽन्यः करुणाकरः सूतात् ।।

हमारे प्राचीनाचार्यों ने बहुत सूक्ष्म रूप से अनेक क्रियाओं द्वारा इसकी भस्मादिक बना और रोगादिकों पर परीक्षा कर, इसके गुणों का संस्कृत साहित्य में वर्णन किया है।

इसी आधार पर तत्कालीन रस-शास्त्रियों ने पारद मिश्रित औषधें बना कर प्रयोग करना शुरू किया। इसमें उन्हें अपूर्व सफलता मिली। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह रही, कि बहुत थोड़ी मात्रा में और शीघ्र फल देनेवाली यह अपूर्व औषध निकली। इसीलिये इसकी प्रशंसा करते हुये लिखा है, कि—

अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसंगतः ।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिकोरसः ।।

तथा च—

साध्येषुभेषजं सर्वमीरितं तत्त्ववेदिना ।
असाध्येष्वपि दातव्यं रसोऽतः श्रेष्ठ उच्यते ।।

अर्थात्—साध्य बीमारियों के लिये तो अनेक तरह की दवाओं का उल्लेख किया गया है। किन्तु यह (रस) असाध्य रोगों में भी हितकर होता है। इसीसे रस (पारद किंवा पारदीय औषधों) को सब औषधों से श्रेष्ठ कहा जाता है।

आज भी इसकी कज्जली या भस्म (रससिन्दूर आदि) के योग से अनेक रोगों में लाभ पहुँचाया जाता है। अन्य चिकित्सा पद्धति-वालों के लिये यह आश्चर्य की बात है कि वैद्य लोग प्रायः सब रसों में पारद मिलाते तथा उनका सब रोगों में प्रयोग करते हैं।

आजकल उन्नत कहे जानेवाले चिकित्सा व्यवसाइयों में इस बात का उद्योग हो रहा है, कि ऐसी औषध मनुष्य को सेवन कराते रहना चाहिये, जिससे उसके अन्दर रोगों का आक्रमण सहसा न होने पावे। इस प्रकार की पद्धति को वे लोग प्रतिषेधक चिकित्सा कहते हैं। और इस काम के लिये अनेक प्रकार के "सिरम" और इंजेक्शन व्यवहार में लाये जा रहे हैं। किन्तु उनका अभी तक निश्चित

फलप्रद व्यापक गुण स्थिर नहीं हुआ है। अमेरिका और जर्मनी में इस प्रकार के अनेक परीक्षण हो रहे हैं, और वहाँ पर पारद के यौगिकों पर विशेष मत मिल रहे हैं, कि यह संक्रामक रोग निवारक है और थोड़ी-सी मात्रा में भी अच्छा लाभ करता है। अस्तु।

इसके निरन्तर सेवन से शरीर में मल संचय नहीं हो पाता, और शरीर की जो स्वाभाविक क्रिया है वह सतत होती रहती है। इसके सेवन से रक्तकण बढ़ते हैं, जिससे मनुष्य बलवान रह बराबर अपने कार्य करने में समर्थ रह सकता है। परन्तु उनके अभी तक जितने भी यौगिक प्रयोग सामने आये हैं, वे सभी विषात्मक हैं, और अधिक समय तक सेवन कराने से शरीर में संगृहीत हो सहसा पारदीय विष उत्पन्न कर मारक हो सकते हैं। इसी भय से उन देशों में अभी तक इसका प्रचार रुका हुआ है।

परन्तु जर्मनों ने हमारे "जरारुङमृत्यु नाशनः" वाक्य की परीक्षा प्रारम्भ कर दी है, और वे लोग चन्द्रोदय का उपयोग भी करने लगे हैं। जर्मनी का बना हुआ चन्द्रोदय आज भारतवर्ष के बाजारों में अनेक जगह बिकते हुए देखा जाता है। यदि यही क्रम चालू रहा, तो थोड़े ही समय में जर्मनी चन्द्रोदय का उपयोग सम्पूर्ण संसार में होने लगेगा।

पारद का सुवर्ण और गंधक योग से ४ दिन की निरन्तर आँच से बना हुआ यह रक्त वर्ण का मकरध्वज या मकरध्वज का यौगिक अल्प मात्रा में निरन्तर सेवन (पथ्य पूर्वक) करें, तो बिना किसी प्रकार के विष प्रभाव के मनुष्य सबल रहकर अपना नित्य नैमित्तिक कार्य भली-भाँति कर सकता है।

पारद के गुणों का जो वर्णन लिखा हुआ है वह प्रायः सब ठीक ही है। आवश्यकता है, कि उसका ज्ञान पुरःसर उपयोग किया जाय तो असम्भव प्रतीत होनेवाले गुण भी किसी दिन प्रत्यक्ष और सिद्ध फलप्रद हो सकते हैं। ख० वि०

पारद और कूपीपक्व रसायन

यह बात ध्यान में रखने की है कि आयुर्वेद में अकेले पारद का उपयोग औषध के लिये बहुत कम होता है। विशेष कर गंधक के साथ इसको मिला कर इससे कूपीपक्व रस तैयार किये जाते हैं। इन रसों में मकरध्वज, चन्द्रोदय, रससिन्दूर, स्वर्णसिन्दूर, मल्ल-सिन्दूर आदि आमतौर से प्रसिद्ध हैं, तथा इन रसों को बनाने के लिये भी विशेष प्रकार की विधियाँ प्रचलित हैं जिनका ज्ञान होना प्रत्येक वैद्य के लिये अत्यावश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। आयुर्वेदिक रसायनशाला में कूपीपक्व रस निर्माण के यन्त्र तथा उनकी विधियाँ प्रधान स्थान रखती हैं। इसलिये यहाँ पर थोड़ा-सा कूपी-पक्व रस निर्माण के सम्बन्ध में विवेचन करना आवश्यक है।

कूपीपक्व रसों को तैयार करना वैद्य समाज में बहुत कठिन माना जाता है। कई बार औषध कच्ची रह जाती और कई बार जैसा रंग चाहिये, वैसा नहीं तैयार होता। इस पर विचार करने से दो-तीन कारण ही इसके प्रधान मालूम पड़ते हैं।

सबसे पहला कारण इन रसों को आँच दी जानेवाली अज्ञानता है। रसायन शास्त्र या धातुवाद के अन्दर आँच का समुचित ज्ञान होना परमावश्यक है। गंधक और पारद के यौगिक (मिश्रण) बनाने के लिये कितनी आँच की आवश्यकता होती है, इसका ज्ञान जब तक हमको नहीं होगा, तब तक हम कूपीपक्व रसायन बनाने में सफल नहीं हो सकते। इसके लिये नीचे लिखी बातों का ज्ञान होना परमावश्यक है। कूपीपक्व रसायन की ४ स्थिति होती है। यथा—

१—द्रव होना। २—उड़नशील होना। ३—गले में जाकर लगना। ४—अधिक उत्ताप से द्रव्य का नष्ट हो जाना।

ये बातें यदि प्रत्येक कूपीपक्व रसायन निर्माण के प्रारम्भ में ध्यान में रखा जायँ तो रस तैयार करते समय उसके बिगड़ने या यौगिक के बदलने या शीशी टूटने का भय नहीं रहता। इसमें कोई संशय नहीं कि हमारे प्राचीन रसायनाचार्यों ने प्राचीन रस-ग्रन्थों में

मन्द, मध्य और तीव्र भेद से आँच देने के लिये लिखा है। परन्तु मन्द से, कितना मन्द आँच की तरफ आचार्यों का ध्यान था, इसका कहीं स्पष्ट उल्लेख देखने में नहीं आता। यही बात मध्य और तीव्र आँच के विषय में है। जो लोग रस क्रिया करने के अभ्यस्त हैं, वे तो अपने अन्दाज से भी काम चला लेते हैं। किन्तु जो इस क्रिया में नवीन प्रवेश करना चाहते हैं, उनके लिये बहुत कठिनाइयाँ होती हैं। यही कारण है कि आयुर्वेदीय कूपीपक्व रसायन कभी तो बहुत अच्छा बन जाता और कभी अनेक तरह की परेशानी उठाने पर भी नहीं बन पाता।

इसी कमी को दूर करने के लिये पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने कई प्रकार के ताप मापक यन्त्र बनाये हैं जिनके द्वारा हम किसी भी आँच का प्रमाण बिल्कुल सही तौर पर ज्ञात कर सकते हैं। इन यन्त्रों में एक यन्त्र "थर्मोस्कोप" नामक है जो भट्ठी के द्वार के सामने रखा जाता है। इसमें एक लाल रंग का काँच लगा रहता है। यह काँच, आँच की किरणों को शोषित करता है और उन किरणों के प्रभाव से उसके अन्दर सूई घूमती है। जितनी आँच होती है, उसी अंक पर वह सूई जाकर ठहरती है। इस यन्त्र की सहायता से हम ताप-ज्ञान अच्छी तरह कर सकते हैं। वास्तव में अगर कूपी-पक्व रसायन बनाते समय हमको ताप का ज्ञान अच्छी तरह हो जाय, तो हम इस कार्य में कभी असफल नहीं हो सकते

दूसरी बात जिन चीजों को हम रस-निर्माण के लिये उपयोग में लेते हैं उनकी शुद्धता और उत्तमता तथा उसके परिमाणों की तरफ हमको पूरा ध्यान देना चाहिये। शास्त्र में जो निर्माण प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है, उसके आधार पर तथा वैज्ञानिक तत्त्व को समझते हुए हम निर्माण कार्य करें तो अधिक उत्तम औषध बन सकती है।

रससिन्दूर, मकरध्वज इत्यादि कूपीपक्व रसों को बनाते समय उसमें दुगुना, चौगुना और छः गुना तक गन्धक जला देते हैं और भी निश्चित बात है कि जितना ही अधिक गन्धक जारण करते

जायेंगे, उतनी ही प्रभावशाली वह औषध बनेगा। परन्तु गन्धक जलने से उस यौगिक की रसायन क्रिया में कौन-कौन प्रभाव उत्पन्न होते हैं और वह क्यों अधिक प्रभावशाली होता है, इसका भी पूरा ज्ञान होना चाहिये, ताकि हमारी क्रिया विशेष रूप से सफल हो।

कूपीपक्व रस अनेक प्रकार के होते हैं। उन सबों को समझने के लिये साधारणतया दो भेद किये जा सकते हैं। पहला 'तलस्थ' और दूसरा 'ऊद्ध्र्वलग्न।'

पारद जितनी देर तक अग्नि पर स्थायी रूप से रहेगा, उतना ही गुणकारी होगा, अतएव तलस्थ विशेष गुणदायक होता है।

कूपीपक्व रसों के सम्बन्ध में कुछ आवश्यकीय बातें

पारद के साथ धातुओं का मिश्रण करना—पारद के साथ नाग, वंग, स्वर्ण, चाँदी इत्यादि धातुओं को मिलाना हो, तो उनको दो प्रकार से मिलाया जा सकता है—

(१) पहली विधि तो यह है कि धातु को गलाकर उसी गली हुई धातु में पारा डालकर मिला दें। फिर उसे अग्नि पर से उतार कर रख लें।

(२) दूसरी विधि यह है कि सोना, चाँदी के वर्क को खरल में डाल पारद के साथ घोट लें।

पारद के साथ गन्धक मिलाना—गन्धक के साथ पारद को डाल, खरल में घोटने से काले रंग की कज्जली बन जाती है। कूपीपक्व रसों को बनाते समय जहाँ गन्धक और पारे की कज्जली में अन्य धातु भी मिलाना हो, वहाँ प्रथम कज्जली बना, फिर उसमें अन्य धातु मिलावें। अगर पारद में धातुओं का मिश्रण करना हो, तो प्रथम धातुओं का मिश्रण करके फिर गन्धक के साथ उसकी कज्जली बनानी चाहिये।

भावना देना—अनेक कूपीपक्व रसों में भावना भी देनी पड़ती है। ऐसे रसों में जिस वनस्पति के रस की भावना देनी हो उसका रस एक साथ न डालकर धीरे-धीरे उतना ही रस डालें जिससे दमें

तर हो जाय, फिर घोटें। जब दवा गाढ़ी हो जाय, तब फिर स्वरस डालें। इस तरह जब सब स्वरस समाप्त हो जाय, तब दवा को घोटकर खुश्क बना धूप में सुखा, कूपीपक्व रस के लिये आतसी शीशी में भरकर चढ़ावें।

कूपीपक्व रस बनाते समय अगर उस कूपीपक्व में शास्त्र विधानानुसार गन्धक अधिक डाला जाता है, तो उसका द्रव होने के बाद जलना आवश्यक हो जाता है। ऐसे समय में जब कि शीशी के मुँह पर गन्धक जलने लगता है और शीशी के मुँह से गन्धक की लपटें उठने लगती हैं तो कई वैद्य घबरा जाते हैं कि कहीं शीशी टूट न जाय (और वास्तव में यदि शीशी का मुँह तंग हो और उस तंग मुँह में गन्धक भर जाय तो शीशी टूटने का डर रहता भी है) ऐसे समय में लोहे की छड़ लेकर उसको शीशी के गले में फेरना चाहिए। यदि गन्धक जल गया हो तो लोहे की सलाई (छड़) को आग में लाल करके उससे गन्धक को नीचे (शीशी में) गिरा देना चाहिए। इस प्रकार उस शीशी का मुँह तब तक खुला रखना चाहिए जब तक वेग से ज्वाला निकलना बन्द न हो जाय। जब गन्धक जल जाता है तब रस-निर्माण होता है। उस समय शीशी में खड़िया मिट्टी की बनाई गई डाँट लगा गुड़ और चूना मिलाकर उससे सन्धि बन्द कर देना चाहिए।

ऊर्ध्वलग्न रसों में जब गन्धक पारद से अधिक डाला जाता है तब उसका जलना निश्चित रहता है। उस समय यदि आँच कम लगने के कारण गन्धक जलने से रह जाय तो आँच की मात्रा बढ़ा दें। फिर यदि शीशी के भीतर काफी आँच न लग रही हो तो एक मिट्टी का छोटा घड़ा लेकर उसके पेंदे में इतना बड़ा छेद कर दें जो उस शीशी के मुख भाग को खुला रखकर बाकी बालुका यन्त्र को अपने पेट में छिपा ले। उस घड़े को बालुकायन्त्र पर इस प्रकार औंधा करके ढक देना चाहिए कि वह बालुकायन्त्र को चारों तरफ से ढक ले, इस क्रिया से थोड़ी देर में ही गन्धक जलने लगेगा और उसकी लपटें भी ऊपर निकलने लगेंगी।

गन्धक की ज्वाला केवल रस सिन्दूर, मकरध्वज इत्यादि रसों में ही नहीं, अपितु सभी ऊर्ध्वलग्न रसों में न्यूनाधिक गन्धक जलकर ज्वाला अवश्य उठती है। ज्वाला उत्पन्न होने पर ही इस बात का अनुमान होता है कि अब गन्धक के जलने पर रस निर्माण होगा। जब तक गन्धक नहीं जलेगा तब तक रस भले ही यौगिक निर्माण कर ले, किन्तु वह तल में ही बैठा रहेगा। —कूपी० वि०

चन्द्रोदय

शुद्ध पारद ३२ तोला पत्थर के खरल में डाल, उसमें ४ तोले सोने के वर्क एक-एक करके मिला, नीबू का रस डालकर एक दिन मर्दन करें। दूसरे दिन उसको धोकर उसमें शुद्ध गन्धक ६४ तोला मिला कज्जली करें। फिर एक दिन लाल फूलवाले कपास के फूलों के रस में और एक दिन ग्वारपाठे के रस में मर्दनकर सुखा लें। पीछे एक अच्छी आतशी-शीशी या काली बोतल पर कपड़मिट्टी चढ़ा, सुखाकर उसमें कज्जली भर दें। (एक काली बोतल में २५ तोला कज्जली भरनी चाहिये) बाद एक लोहे की या मिट्टी की नाद या घड़े में, नीचे एक अंगुल बालू (रेत) बिछाकर उस पर शीशी रख, शेष भाग में शीशी के गले तक बालू भर कर चूल्हे पर चढ़ा, नीचे क्रमशः मन्द, मध्य और तेज आँच दें।

इस क्रिया में प्रथम गन्धक ऊपर आने लगेगा। गन्धक जमकर शीशी का मुंह बन्द न हो जाय, इसलिये जब गन्धक ऊपर आने लगे, तब एक लोहे की सलाई अग्नि में तपाकर शीशी के अन्दर गले तक फिरावें। जब सारा गन्धक जल जाय तब शीशी के मुँह पर खड़िया मिट्टी या मुल्तानी मिट्टी की डाँट लगाकर ऊपर से गुड़ या शहद में मिला हुआ चूना लगा दें। पीछे १२ घण्टे की तीव्र अग्नि दें। बाद में आँच देना बन्द कर दें। जब आप से आप ठण्डा हो जाय तब शीशी को निकाल, ऊपर की कपड़मिट्टी को हटा, शीशी के मध्य में मिट्टी के तेल में भिगोई हुई सूतली लपेट, उसको दियासलाई से जलाकर ठण्डे पानी के छींटे देकर शीशी को तोड़ दें। इस क्रिया

से आसानी से बीच से शीशी टूट जाती है, पीछे शीशी के गले में लगे हुए चन्द्रोदय को सावधानी से निकालकर रख लें। —सि० यो० सं०

नोट—शीशी के तल भाग में स्वर्णभस्म मिलेगी, उसे सुरक्षित निकालकर रख लें, यह स्वर्ण भस्म की शकल में मिलती है, किन्तु वास्तव में यह निरुत्थ भस्म नहीं रहती, अतः इसको परिशुद्ध भस्म बनाने के लिये कज्जली के साथ ५-७ पुट देकर भस्म बना लेनी चाहिए।

मकरध्वज

सोने का वर्क १ तोला, शुद्ध पारा ८ तोला, शुद्ध गन्धक १६ तोला लें। फिर सुवर्ण के वर्क को थोड़ा-थोड़ा करके पारद के साथ घोटें, जब सब वर्क पारद के साथ मिलकर एक जीव हो जाय तब उसमें थोड़ा-थोड़ा गन्धक मिला रोज ६-७ घण्टे के हिसाब से कम से कम ७-८ दिन तक (इसे जितना अधिक दिन तक घोटा जाता है, मकरध्वज उतना ही अच्छा बनता है) घोटें। फिर ग्वारपाठे के रस (ग्वारपाठे को कपड़े में निचोड़कर निकाला हुआ रस) में घोटकर लाल कपास के पुष्प-स्वरस में (रस तरंगिणीकार ने अंकोल की जड़ के स्वरस की भी भावना देने को लिखा है)एक या दो दिन तक मर्दन कर धूप में सुखा, ७ बार कपरौटी की हुई आतसी शीशी में कज्जली भर बालुका यन्त्र में रख, २४ घण्टे के हिसाब से मृदु, मध्य और तीव्र आँच दें। स्वांग शीतल होने पर उतार कर शीशी के गले में लगा हुआ लाल मकरध्वज निकाल लें। —र० तरंगिणी

शीशी के तल भाग में सोने की जो भस्म मिले उसमें कज्जली मिला भस्म बना लें।

उपरोक्त विधि द्विगुणजारित मकरध्वज की है। इसी प्रकार षड्गुणजारित मकरध्वज भी बनाया जा सकता है।

मकरध्वज की परीक्षा—जो मकरध्वज कड़ा न हो, अंगुली से जरा दबाने पर ही टूट जाय, जिसका चूर्ण रवेदार, चमकदार एवं स्निग्ध-सा प्रतीत हो तथा जो जला हुआ न दीखे, वह उत्तम है।

जो मकरध्वज देखने में काले या पीतवर्ण युक्त लालवर्ण

का हो तथा अंगुली से जोर से दबाने पर भी जिसका चूर्ण न हो या जिसका चूर्ण रवेदार न हो, उसे गुणहीन और कच्चा समझें।

नोट—उत्तम मकरध्वज तभी तैयार हो सकता है जब बालुका यन्त्र में आँच यथायोग्य लगेगी। आँच में किसी प्रकार की न्यूनाधिकता होने से—गन्धक कच्चा रह जाता है और मकरध्वज का अधिकांश भाग उड़ जाता है तथा जो कुछ भी प्राप्त होता है वह रंग में कुछ काला जला हुआ-सा तथा गुणहीन होता है। अतः आँचपर खूब ध्यान रखना चाहिए।

सिद्ध मकरध्वज

यदि उपरोक्त मकरध्वज निर्माण-काल में स्वर्ण १ तोला की जगह ४ तोला डाल दिया जाय और पारा ८ तोला (पारा अष्टादश संस्कारयुक्त होना चाहिए) तथा गन्धक १६ तोला ही रहे। इसके अतिरिक्त और जितनी भी क्रियाएँ हैं वे सब पूर्वोक्त मकरध्वज के समान ही की जाय अर्थात् लाल कपास के पुष्प का स्वरस और घृतकुमारी के रस में घोंट, सुखाकर आतशी शीशी में भरकर बालुका यन्त्र द्वारा पकाते हुए मृदु, मध्य और तीक्ष्ण आँच के द्वारा पारद में छः गुना गन्धक जारण क्रमशः किया जाय, तो यही सिद्ध मकरध्वज कहलाता है। सर्वप्रथम शंकर भगवान ने इसका सेवन सिद्धों को कराया था। अतः इसे सिद्ध मकरध्वज कहते हैं।

नोट—जब तक शीशी में से पीले रंग का धुआँ निकलता रहे, तब तक शीशी का मुँह बन्द नहीं करना चाहिये, जब धुआँ निकलना बन्द हो जाय, तब शीशी के मुँह में डाट लगा दें।

शीशी के गले मे मकरध्वज लगा हुआ मिलता है तथा शीशी की दीवारों के भीतर भी थोड़ा-बहुत मकरध्वज रहता है। उन सबको सावधानीपूर्वक छुड़ा कर रख लें।

यदि शीशी के नीचे भाग में अधपकी कज्जली रह गयी हो तो उसमें समान भा धक मिला वट के अंकुरों के रस तथा ग्वारपाठे के रस में घोट सुखा आतसी शीशी में पूर्वोक्त विधि से पुनः बालुका यन्त्र द्वारा मकरध्वज बना लें।

मकरध्वज की विशेषता—यह एक ऐसी सर्वश्रेष्ठ महौषध है, जिसके समान सर्वरोग नाशिनी महौषध संसार के किसी भी पैथी (चिकित्सा) में नहीं है। बड़े-बड़े डाक्टरों ने यह बात मान ली

है कि मकरध्वज के जोड़ की दवा दूसरी है ही नहीं। इसके द्वारा अगणित प्राणी काल के मुंह से बचते हैं, बहुत से डाक्टर इसका इंजेक्शन तथा स्वतन्त्र रूप से सेवन भी कराते हैं।

यह तो सब लोग जानते हैं कि ताकत बढ़ने से प्रत्येक रोग में फायदा होता है। मकरध्वज के सेवन से मनुष्य की ताकत बहुत बढ़ जाती है। यह हृदय और स्नायुमण्डलों को पाँच मिनट में ताकतवर बनाता है, मकरध्वज के सेवन से शरीर का वजन निश्चित रूप से बढ़ता है। यह बल, वीर्य्य, कान्ति आदि के लिये सर्वश्रेष्ठ दवा है। शीघ्र पतन के लिये भी बहुत लाभप्रद दवा है। नपुंसकता, नामर्दी के लिये भी मकरध्वज बहुत गुणकारी है। बच्चों से लेकर बुड्ढों तक को एक-सा फायदा करता है। मरणासन्न रोगी को जब और किसी दवा से लाभ नहीं होता है, तब यही मकरध्वज और कस्तूरी उसके प्राण रक्षक होते हैं। मकरध्वज की महत्ता इसी से जानी जा सकती है, कि जो मरते हुए रोगी को देने से उत्तम फायदा करता है, तो साधारण, साध्य और कष्टसाध्य रोगों में कितनी जल्दी लाभ कर सकता है? बहुत से धनी-मानी इसका सेवन बराबर करते हैं, जिससे वे लोग जल्दी रोग ग्रस्त नहीं हो पाते। शरीर में किसी कारणवश रक्त की कमी हो जाय तो मकरध्वज का सेवन उस हालत में अमृत के समान गुण करता है। किसी भी रोग के कारण शरीर में कमजोरी आ जाने पर मकरध्वज के सेवन से बहुत शीघ्र कमजोरी दूर हो जाती है। बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सब इसके सेवन से लाभ उठा सकते हैं। भैषज्य रत्नावली में लिखा है :—

एतदभ्यासतश्चैव जरामरण नाशनम्।
अनुपानविधानेन निहन्ति विविधान्गदान्॥

इसके सेवन से शरीर की झुर्रियाँ, बालों का सफेद होना आदि रोगों का नाश होता और आयु की भी वृद्धि होती है। जो इस रस का सेवन करते हैं वे अनेक स्त्रियों को रति द्वारा प्रसन्न कर सकते हैं। रति के अन्त में इसके सेवन से शक्ति का ह्रास नहीं होता है। जो

बराबर इसका सेवन करते हैं, उनके ऊपर स्थावर-जंगम किसी भी प्रकार के विषैले कीड़ों का असर नहीं होता है।

यह विशेषकर राजयक्ष्मा और कफजन्य बीमारियों को बहुत शीघ्र दूर करता तथा हृदय की दुर्बलता को नष्ट कर उसे ताकतवर बनाता, रक्त प्रसादन करता, शुक्र को पुष्ट करता, रोगोत्पादक कीटाणुओं का नाश करता, विष-विकार को दूर करता, उन्माद, अपस्मार (मृगी) रोग में भी लाभ करता है। यह रसायन, बाजीकरण और योगवाही है।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ रत्ती तक पान के रस, शहद, घी, मिश्री, मक्खन, मलाई, दूध (गाढ़ा और औटाया हुआ) आदि के साथ तथा रोगानुसार अनुपान के साथ देने से लाभ होता है।

मकरध्वज की साधारण सेवन विधि—एक रत्ती मकरध्वज को उत्तम पत्थर की खरल में डालकर ५ मिनट तक खूब महीन पीसना चाहिये, यदि खरल न हो तो बढ़िया पत्थर पर भी सिलवट (लोढ़ा) से पीसा जा सकता है। परन्तु पत्थर पर पीसने से उसका बहुत-सा अंश व्यर्थ चला जाता है और खरल की तरह उत्तम घुटाई भी नहीं होती इसलिये पत्थर की खरल में ही घोटना अच्छा है।

अच्छी तरह घुट जाने के बाद इसमें ३ माशे असली शहद मिला १५ मिनट तक फिर घोंटे, क्योंकि शहद में अच्छी तरह मकरध्वज न घुटने से पूरा-पूरा लाभ नहीं करता है। फिर जिस रोग के लिये देना हो, उस रोगनाशक औषधियों का रस या चूर्ण मिलाकर रोगी को खिला देना चाहिये। ताजी-हरी दवा का रस १ तोला और सूखी दवा का चूर्ण ३ माशा मिलाना चाहिये। चूर्ण मिलाने पर शहद १ तोला मिलावें। दवा का पानी या काढ़ा २॥ तोला दें।

रोगानुसार अनुपान

वातज्वर में—बच का चूर्ण १ माशा, बड़ी इलायची के बीज १ माशा, मिश्री १ तोला, मकरध्वज १ रत्ती, सबको एकत्र मिलाकर मधु से दें।

पित्तज्वर में—मकरध्वज १ रत्ती, गिलोयसत्व २ रत्ती, मधु के साथ दें।

कफ ज्वर में—मकरध्वज २ रत्ती, तुलसी, अदरक, पान इन तीनों का रस १-१ माशा, शहद ६ माशे में मिला कर दें।

साधारण ज्वर में—मकरध्वज १ रत्ती, अदरक का रस १ माशा, शहद (मधु) १ माशा के साथ दें।

सन्निपात ज्वर में—मकरध्वज २ रत्ती, ब्राह्मी का रस १ माशा, और मधु १ माशा में मिला कर दें।

मोतीझरा में—मकरध्वज १ रत्ती को मधु में मिला कर चटा दें। ऊपर से लौंग का क्वाथ पिला देना चाहिए।

मलेरिया ज्वर में—मकरध्वज १ रत्ती, करंज बीज चूर्ण १ माशा मधु में मिला कर देना चाहिये।

जीर्ण ज्वर में—मकरध्वज १ रत्ती, २ नग छोटी पीपल का चूर्ण शहद के साथ दें।

ज्वरातिसार में—मकरध्वज १ रत्ती, शहद १ माशा, सोंठ पानी में घिस कर १ माशा, सबको एकत्र मिला कर दें।

आँव के दस्त में—मकरध्वज १ रत्ती, बेलगिरी का चूर्ण १ माशे मिला कर मधु में मिला चटावें।

खून के दस्त में—कुड़ा की छाल का रस अथवा अडूसे की जड़ की छाल का रस, शहद या अनार का रस १ तोला, शहद २ माशे में मिला कर दें।

पतले दस्त में—सफेद जीरे का चूर्ण ३ माशे शहद १ माशा के साथ दें।

संग्रहणी में—मकरध्वज १ रत्ती, सफेद जीरे का चूर्ण ३ माशे में मिला शहद के साथ दें, ऊपर से सौंफ का अर्क २ तोला पिला दें।

बवासीर में—मकरध्वज १ रत्ती, सूरण (जमीकन्द) का चूर्ण १ माशा मिश्री ६ माशे के साथ दें।

अजीर्ण रोग में—मकरध्वज १ रत्ती मधु में मिलाकर दें। ऊपर से सौंफ या आजवायन का अर्क २॥ तोले पिला दें।

हैजा में—प्याज का रस १ तोला और शहद २ माशे मिलाकर मकरध्वज १ रत्ती की मात्रा में देने से विशेष लाभ होता है।

कब्जियत में—मकरध्वज २ रत्ती, ५ तोले त्रिफला के क्वाथ में शहद २ माशे मिलाकर दें।

अम्लपित्त में—आँवले का रस १ तोला या क्वाथ २॥ तोला और शहद, अथवा परवल के पत्तों का रस, गिलोय (गुर्च) का रस, अनार के कोमल पत्तों का रस १ तोला, या मिश्री, सौंफ, धनियाँ को १२ घण्टे भिगोकर उसके जल के साथ भी देना हितकर है।

पाण्डुरोग में—कुटकी का काढ़ा २॥ तोला, या कुटकी का चूर्ण ३ माशे, मकरध्वज १ रत्ती, मधु अथवा पुराना गुड़ के साथ दें।

राजयक्ष्मा में—मकरध्वज २ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण ३ माशे शहद के साथ दें।

खाँसी में—मकरध्वज १ रत्ती, मुलेठी का क्वाथ ५ तोला, या मुलेठी चूर्ण ३ माशे, अथवा अड़ूसे की छाल का रस या कंटकारी रस १ तोला अथवा पीपल और बच का चूर्ण १॥ माशे शहद से दें।

श्वास में—बेल के पत्ते का स्वरस १ तोला या अड़ूसे की छाल का रस १ तोला अथवा चार-पाँच बहेड़े की गिरी का चूर्ण या पीपल और बड़ी इलायची का चूर्ण १॥ माशे और शहद के साथ मकरध्वज १ रत्ती की मात्रा में दें।

स्वरभंग में—मकरध्वज १ रत्ती, बच या ब्राह्मी का चूर्ण १ माशा, मधु के साथ दें।

अरुचि में—नीबू का रस १ तोला और शहद के साथ दें।

मृगीरोग में—बच का चूर्ण १ माशा शहद के साथ दें।

उन्माद में—ब्राह्मी का रस १ तोला, अथवा शतावरी का रस १ तोला त्रिफला चूर्ण ३ माशे, शहद के साथ दें।

वातव्याधि में—एरण्ड की जड़ का रस १ तोला में १ माशा शहद के साथ १ रत्ती मकरध्वज दें।

आमवात में—बड़ी इलायची के बीज का चूर्ण १॥ माशा और शहद अथवा केवल शहद के साथ चाट कर ऊपर से सनाय, बड़ी

हरड़ और अमलतास मिला कर २।। तोले, पानी ऽ। भर, ऽ- भर शेष रहने पर छान कर पिला दें।

वायुगोला में—भुनी हुई हींग का चूर्ण २ रत्ती, गर्म पानी के साथ दें।

हृदय रोग में—अर्जुन की छाल का रस १ तोला या चूर्ण ३ माशे शहद के साथ दें।

मूत्रकृच्छ्र में—गिलोय (गुर्च) का पानी (हिम) १० तोला मधु में मिला कर दें।

मूत्राघात में—मकरध्वज १ रत्ती मधु में मिला कर चटा दें। ऊपर से तृणपंचमूल क्वाथ ५ तोला पिला दें।

सूजाक में—यवक्षार में मिलाकर गर्म पानी के साथ दें।

पथरी में—कुल्थी का क्वाथ, शहद के साथ दें।

धातुस्राव में—कच्ची हल्दी का रस, गिलोय और आँवला तथा नीम की छाल, सेमल मूल, या भृङ्गराज का रस, इनमें से किसी एक चीज के रस के साथ मधु मिलाकर दें।

स्वप्नदोष में—रात को सोते समय कपूर चौथाई रत्ती, कबाब चीनी का चूर्ण १ माशा, शहद १ तोला मिलाकर चटावें। ऊपर से २।। तोले चूने का पानी पिला दें।

शीघ्रपतन में—कौंच के बीज का चूर्ण या असगंध चूर्ण १ माशा शहद के साथ अथवा सेमल की जड़ का रस या विदारी कन्द का रस अथवा शतावरी का रस १ तोला शहद मिलाकर दें।

मधुमेह में—जामुन की गुठली का चूर्ण २ माशे शहद के साथ दें।

अधिक समय स्त्री संभोग के लिये—माजूफल और जायफल का चूर्ण १ माशा मधु के साथ दें।

कृशता में—असगंध चूर्ण १ माशा और मधु के साथ दें।

रक्ताल्पता (खून की कमी) में—मक्खन और मिश्री अथवा लौह भस्म २ रत्ती के साथ दें।

उदर रोग में—पीपल चूर्ण १ माशा या शु० कसीस चूर्ण

३ रत्ती मधु के साथ दें, अथवा छोटी हर्रे का चूर्ण ३ माशे, काला नमक १ माशा गर्म जल के साथ दें।

गर्मी (आतशक) में—अनन्त मूल का फाण्ट ५ तोले शहद के साथ दें।

शीतला (चेचक) में—करेले के पत्ते का रस १ तोला और मधु या तुलसी पत्ती का रस ६ माशे शहद मिला कर दें।

मुखरोग में—गिलोय के रस और मधु के साथ दें।

शोथरोग में—पुनर्नवा का रस और शहद के साथ दें।

रक्तप्रदर में—अशोक छाल का चूर्ण ३ माशे और शहद, अथवा अशोक छाल २ तोला डाल कर औटाया हुआ दूध एक पाव या गिलोय का रस १ तोला शहद मिलाकर दें।

श्वेतप्रदर में—चावल के धोवन का पानी २॥ तोले शहद के साथ, अथवा राल का चूर्ण १ माशा, शहद में मिलाकर दें।

प्रसूत रोग में—मकरध्वज १ रत्ती मधु के साथ, ऊपर से दशमूल क्वाथ पिला दें।

नाड़ी छूटने की अवस्था में—मकरध्वज २ रत्ती, कस्तूरी चौथाई रत्ती, तुलसीपत्र-स्वरस और शहद के साथ दें।

शक्ति बढ़ाने के लिये—बेदाना का रस, मलाई, मक्खन, अंगूर का रस, शतावरी का रस, पान का रस, और शहद उचित मात्रा में दें।

—आरोग्य प्रकाश

नोट—उत्तम शास्त्रानुसार बनाये गये मकरध्वज में सर्व रोग नाश करने की शक्ति है। आजकल बहुत से धूर्त लोग नकली मकरध्वज बनाकर बेचने लगे हैं उस मकरध्वज के सेवन से लाभ की जगह नुकसान ही होता है। जिन रोगों में मकरध्वज की मात्रा नहीं लिखी गयी है, वहां साधारणतया १ से २ रत्ती का उपयोग करें। इसके अतिरिक्त वैद्य देश-काल और रोगी के बलाबल के अनुसार दें।

गुण और उपयोग—मकरध्वज में सुवर्ण का आंशिक संयोग रहता है अतः यह उत्तेजक, हृदय को बलदायक, रक्त-दोष को दूर कर परिपुष्ट रक्त बनाने वाला और कीटाणुनाशक है।

क्षय (राजयक्ष्मा) की द्वितीयावस्था में जब क्षय के कीटाणु शरीर में व्यापक रूप से अपना प्रभाव जमा लिये हों। रोगी दुर्बल, कान्तिहीन हो, बुखार और खाँसी की वृद्धि हो, क्रमशः रक्त की भी कमी हो रही हो, ऐसी दशा में मकरध्वज का सेवन करना बहुत लाभदायक है। यद्यपि सुवर्ण रहने के कारण यह कुछ अपना उत्तेजक प्रभाव रक्तवाहिनी नाड़ियों पर डालता है, जिससे रोग के उपद्रव कुछ बढ़े हुए मालूम होने लगते हैं, किन्तु जब क्रमशः रक्त, सुवर्ण के उत्तेजक प्रभाव को सहन करने में समर्थ हो जाता है और यह दवा भी शरीर में काफी मात्रा में पहुँच कर अपना व्यापक प्रभाव सम्पूर्ण शरीर में फैला देती है, तब क्षय के कीटाणुओं का नाश हो रोग आराम होने लगता है और क्रमशः रोग की गति नीचे होने लगती है। प्रारम्भ में मकरध्वज की मात्रा बहुत कम रखें, क्योंकि कभी-कभी ज्वर की गर्मी इससे अधिक हो जाती है।

रक्तजन्य कीटाणुओं को नाशकर रक्त को सबल बनाना इस रसायन का प्रधान कार्य है। अतएव यह आन्त्रिक क्षय, फुफ्फुसावरण प्रदाह, न्यूमोनिया, उरस्तोय (प्लुरसी) तथा संक्रामक रोगों में जब हृदय की शक्ति निर्बल हो गयी हो, ऐसी स्थिति में हृदय को सर्व प्रथम बल पहुँचाना आवश्यक हो जाता है। इसके लिये मकरध्वज विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। क्योंकि यह बल्य तथा रक्त प्रसादक है। कितने मनुष्यों को अधिक वय तक भी उसके शरीर के अवयवों का उचित विकास नहीं हो पाता अर्थात् रस-रक्तादि की निर्बलता के कारण शरीर दुबला-पतला और कान्तिहीन दिखाई पड़ता है। यदि लड़की हुई तो उसे जवानी आने पर भी नितम्ब (चूतड़), स्तन, मुख-मण्डल आदि छोटी लड़की के समान ही सूखे हुए रहते हैं, हर समय वह मन्द बुद्धि-सी पड़ी या बैठी रहती है। काम-काज करने को जी नहीं चाहता या बहुत धीरे-धीरे काम करती है। यदि पुरुष हुआ तो उसमें वीर्य की कमी रहने की वजह से उसका भी शरीर सूखा, निस्तेज तथा ठिगना-सा दिख पड़ता है। ऐसी अवस्था में मकरध्वज देने से रस-रक्तादि पुष्ट हो कर शरीर के अवयवों में प्रवाहित

होने लगते हैं। और इनकी वृद्धि भी होने लगती है। सब अवयव भी पुष्ट होने लगते जिससे रोगी हृष्ट-पुष्ट हो जाता है।

शरीर की कोई भी इन्द्रिय जब निर्बलता के कारण अपना काम करने में असमर्थ हो जाती है, अर्थात् आँख से अच्छी तरह देख न सकना, कान से न सुनना, आदि, ऐसी अवस्था में भी मकरध्वज बहुत लाभ करता है। क्योंकि यह विकृति, वात और पित्त के दूषित होने के कारण होती है। इसमें मकरध्वज देने से उक्त दोषों की विकृति दूर हो परिशुद्ध रक्त द्वारा उन इन्द्रियों की नसें पुष्ट और सबल हो जाती हैं। जिससे वे इन्द्रियाँ अपना काम करने में समर्थ हो जाती हैं। धातु मिश्रित औषध का प्रभाव जैसे शरीर के अवयवों अथवा रस रक्तादिकों पर पड़ता है उसी तरह मन, बुद्धि, ज्ञानेन्द्रिय या कर्मेन्द्रिय पर भी पड़ता है।

अधिक शुक्र पतन के कारण या वातवाहिनी नाड़ियों की कमजोरी के कारण उत्पन्न हुई नपुंसकता नष्ट करने के लिये मकरध्वज का सेवन करने से विशेष लाभ होता है। —औ० गु० ध० शा०

रस सिन्दूर

१६ तोला शुद्ध पारद और १६ तोला शुद्ध गन्धक, दोनों को पत्थर के उत्तम खरल में डालकर खूब घोटाई करें। घोटने से काले वर्ण की कज्जली बन जायगी। इसको इतना घोटना चाहिये कि कज्जली को अंगुली पर रगड़ने से अंगुली की रेखा में प्रवेश कर जाय। अनन्तर इसको सात कपड़मिट्टी की हुई आतसी शीशी या मजबूत काली बोतल में भर कर हाँड़ी में रखें, और शीशी के गले तक बालू भर दें, इस बालुका यन्त्र को भट्ठी पर रख मन्द-मन्द आँच देना प्रारम्भ करें। ३-४ घंटा बाद आँच को थोड़ी तेज कर दें। इसके बाद भी ३-४ घण्टा के अन्तर से आँच और तेज कर दें। इस तरह मृदु, मध्य और तीक्ष्ण आँच से यह रस सिन्दूर तैयार हो जायगा।

शीशी का गला साफ करने के लिये बीच-बीच में लोहे की शलाका को गर्म कर शीशी का गला साफ करते रहें। सम्पूर्ण कज्जली

उड़कर शीशी के गले में लग जाने का परीक्षा यह है कि लोहे की शलाका को पेंदे तक पहुँचावें। शीशी का तलभाग खट्-खट् आवाज के साथ बजेगा, तथा शलाका में कुछ भी लगा हुआ नहीं आयेगा।

ध्यान रखने की बात यह है कि द्रव्य जितना अधिक होगा, आँच भी उतनी ही देर तक देनी होगी। यहाँ तक कि आध-आध सेर पारा गन्धक को ३-३ दिन रात पकाना पड़ता है। साथ ही यह भी बात है कि तेज आँच लगनेवाली भट्ठी होगी तो रससिन्दूर जल्दी तैयार हो जायगा। प्रायः १० घण्टे में हो जाता है। जब सम्पूर्ण द्रव्य ऊपर चढ़ जाय तो शीशी का मुँह खड़िया मिट्टी या ईंट के टुकड़े की डाट से बन्द कर ऊपर से गुड़ और चूना लगा दें। थोड़ी देर खूब तेज आँच लगा कर आँच बन्द करदें। स्वाँगशीतल हो जाने पर शीशी को सावधानी से चन्द्रोदय में लिखित विधान से शीशी को तोड़ कर रस सिन्दूर निकाल लें। यह खूब चमकदार लाल और मृदु तथा वजनी होनी चाहिये, यदि इन गुणों से रहित हो तो इसे उत्तम नहीं समझें।

—आरोग्य प्रकाश

नोट—बालुकायन्त्र की हाँड़ी के पेंदे में एक कनिष्ठिका अंगुली के समान छिद्र करके उसपर शीशी रखकर फिर बालू भरने का कई वैद्य विधान मानते हैं। और कई हाँड़ी के छिद्र में भीतर की तरफ एक अभ्रक का पत्र रखकर उसपर शीशी रखकर बालुका भरने को कहते हैं। किन्तु इन दोनों का अभिप्राय तीव्र आँच लगने से ही है।

रससिन्दूर (तलस्थ)

समभाग शुद्ध पारा और गन्धक लेकर कज्जली बना आतसी शीशी में भर कर डाट लगा दें और इस डाट को गुड़ और चूना से अच्छी तरह बन्द कर दें। अब जमीन में एक हाथ लम्बा-चौड़ा गढ़ा बना इसके बीच में शीशी को रख शीशी के चारों तरफ जहाँ तक कज्जली हो वहाँ तक बालू से भर दें। बचे हुए खुले भाग के ऊपर गढ़े में जङ्गली कण्डा भर अग्नि जला कर पुट दें। स्वाँगशीतल होने पर शीशी को निकाल इनके गलप्रदेश में चिपका हुआ रक्त वर्ण का रससिन्दूर निकाल लें। इस यन्त्र को अधः सैकत यन्त्र

कहते हैं। इस विधि से बनाया हुआ रस सिन्दूर अन्तर्धूम होने के कारण अत्यन्त गुणशाली होता है। —र० त०

रससिन्दूर (अर्द्धगन्धकजारित

शुद्ध पारा ८ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला, नौसादर २ तोला, इन सब को एकत्र मिला कर बिजौरा नीबू के रस में खूब अच्छी तरह मर्दन करके सुखा लें, फिर कपड़मिट्टी की हुई आतसी शीशी में भरकर, बालुका यन्त्र में इस शीशी को रख क्रमवृद्धि अग्नि द्वारा पाक कर लें। स्वांग शीतल होने पर शीशी के गले में लगे हुए लाल वर्ण के रससिन्दूर को निकाल कर रखें।

नोट—इसमें गन्धक आधा भाग होने से गन्धक जलाने में समभागिक रससिन्दूर की अपेक्षा आधा समय लगना चाहिये, किन्तु ये सब बातें आँच की उत्तमता पर निर्भर है।

रससिन्दूर (द्विगुण गन्धकजारित)

शुद्ध पारा ८ तोला, शुद्ध गन्धक १६ तोला, दोनों को एकत्र कर खरल में कज्जली बना लाल कपास के फूलों के रस से (अभाव में कपास की जड़ की छाल के रस से) मर्दन कर कज्जली को धूप में सुखा, कपड़मिट्टी की हुई आतसी शीशी में भर कर बालुका यन्त्र में रख क्रमवृद्धि अग्नि से २४ घण्टे तक पकावें। स्वाँगशीतल होने पर शीशी के गलप्रदेश में लगा हुआ रक्तवर्ण का रससिन्दूर निकाल कर शीशी में रख लें। —र० त०

नोट—इसी प्रकार त्रिगुण और षट्गुण गन्धक जारित रस सिन्दूर बनाने का नियम है। इसमें अन्तर इतना ही है कि गन्धक जितना ज्यादा रहेगा, उतनी ही देर तक गन्धक जारण के लिये आँच देनी पड़ेगी। शेष सब प्रक्रिया समान ही होती है।

मात्रा—१ से २ रत्ती, शहद अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

रोगानुसार अनुपान

नवज्वर में—रससिन्दूर २ रत्ती, तुलसी पत्र स्वरस अथवा अदरक या पान के रस के साथ दें।

जीर्णज्वर में—गिलोय, धनियाँ, पित्तपापड़ा, सब समान भाग लेकर इसका क्वाथ बना शहद मिलाकर दें।

प्रमेह में—कच्ची हल्दी का स्वरस, अथवा गिलोय सत्व मिलाकर शहद के साथ दें।

प्रदर में—अशोक की छाल, खरेंटी, लोध प्रत्येक सम भाग लेकर इनके क्वाथ के साथ दें।

अर्श में—छोटी हरड़ के कषाय के साथ दें।

अपस्मार में—बच के चूर्ण के साथ दें।

उन्माद रोग में—पेठे का स्वरस या ब्राह्मी चूर्ण ३ माशे के साथ दें।

श्वास रोग में—बहेड़े की मिंगी के चूर्ण के साथ अथवा अड़ूसा पत्र रस के साथ दें।

कामला में—रससिन्दूर को दारुहल्दी क्वाथ के साथ दें।

पाण्डु में—लौह भस्म के साथ मिलाकर त्रिकुटा, त्रिफला और अड़ूसा स्वरस के साथ सेवन करावें।

मूत्रकृच्छ्र रोग में—शिलाजीत, छोटी इलायची बीज चूर्ण और मिश्री मिलाकर, धारोष्ण दूध के साथ दें।

अजीर्ण में—रससिन्दूर मधु के साथ दें, ऊपर से अर्क अजवायन २॥ तोला पिला दें अथवा धनिया और सोंठ के क्वाथ के साथ दें।

उदर शूल में—रससिन्दूर १ रत्ती, मधु में मिलाकर चटा दें, ऊपर से त्रिफलाक्वाथ पिलावें, अथवा कालानमक और अजवायन के सम भाग ३ माशे चूर्ण में मिला ऊपर से सौंफ का अर्क २॥ तोला पिलावें।

मूर्च्छा में—रससिन्दूर १ रत्ती में पीपल चूर्ण २ रत्ती मिला मधु के साथ दें तथा रोगी को कुएँ के शीतल पानी से स्नान करावें।

वमन विशेष होने पर—रससिन्दूर १ रत्ती, छोटी इलायची चूर्ण और मधु मिलाकर दें या भाँग और अजवायन चूर्ण २ माशे सम भाग के साथ दें।

सर्वाङ्ग शोथ में—रससिन्दूर १ रत्ती मधु मिला कर चटा दें। ऊपर से पुनर्नवासव १। तोला बराबर शीतल जल के साथ दें।

भयंकर विस्फोटक में—रससिन्दूर, चतुर्जात (छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर) चूर्ण के साथ मिलाकर गिलोय, नीम, खैर की छाल, इन्द्रजव इनका क्वाथ बना इसी के अनुपान के साथ दें।

गर्भाशय रोग में—रससिन्दूर १ रत्ती, काकोली चूर्ण १ माशा में मिला, नारियल के जल के साथ दें।

पुराने प्रमेह में—रस सिन्दूर १ रत्ती, वंग भस्म १ रत्ती शहद के साथ दें।

अति प्रबल वमन को रोकने के लिये—रससिन्दूर १ रत्ती, त्रिकुटा चूर्ण, धनियाँ, जीरे का चूर्ण सब को मिला कर ३ माशे मधु के साथ लेकर कई बार चटावें।

अपस्मार में—रससिन्दूर २ रत्ती, ब्राह्मी, वच, शंखपुष्पी, कूट, छोटी इलायची प्रत्येक सम भाग का चूर्ण २ माशे में मिला, सारस्वतारिष्ट १ तोला बराबर जल के साथ दें।

भगन्दर में—त्रिफला और वायविडंग के क्वाथ के साथ दें।

गुल्म में—छोटी हरड़ और सौंफ के क्वाथ के साथ दें, अथवा विड्लवण और अजवायन चूर्ण के साथ गर्म जल से दें।

वात कफात्मक पुराने शिरःशूल में—रससिन्दूर १ रत्ती मधु से दें, ऊपर से दशमूल क्वाथ पिला दें।

पुराने व्रण में—कंटकारी, सुगन्धवाला, गिलोय तथा सोंठ के क्वाथ के साथ देना चाहिये।

पुराने आमवात में—रससिन्दूर १ रत्ती, गुड़ूची, मोथा, शतावर, पीपल, हरड़, वच, मोथा और सोंठ के कषाय के साथ दिन भर में दो बार प्रयोग करें।

वाजीकरण के लिये—सेमल के कन्द और मूसली चूर्ण सम भाग ३ माशे अथवा विदार्यादि गणोक्त दवा के ३ माशे चूर्ण के साथ गोदुग्ध से दें।

धातुवृद्धि के लिये—रससिन्दूर १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, स्वर्ण भस्म चतुर्थांश रत्ती मलाई के साथ दें। अथवा—

लौंग, केशर, जावित्री, अकरकरा, पीपल प्रत्येक १-१ भाग तथा कपूर, भाँग, अफीम और नाग भस्म आधा-आधा भाग, सब का यथा-विधि चूर्ण बनावें। इस चूर्ण के साथ उचित मात्रा में रससिन्दूर दें।

स्वप्नदोष दूर करने के लिये—जायफल, लौंग १-१ भाग, कपूर और अफीम चतुर्थांश भाग सब का यथा विधि चूर्ण बना लें। इसमें से ३ माशे चूर्ण में १ रत्ती रससिन्दूर मिला, जल के साथ दें अथवा शीतल चीनी के कषाय के साथ दें।

शिर:कम्प में—रससिन्दूर १ रत्ती, वला (खरेंटी) के क्वाथ से देना चाहिये।

मदात्यय रोग में—हींग, अजवायन, सोंठ, चव्य, धनियाँ और सोंचल नमक चूर्ण के साथ रससिन्दूर का सेवन करना चाहिये।

परिणाम शूल में—रससिन्दूर १ रत्ती, यवक्षार ४ रत्ती, सुहागे की खील ४ रत्ती सब को एकत्र मिला कर अर्क दशमूल के साथ देना चाहिये।

रक्तप्रदर में—रससिन्दूर १ रत्ती, वासा क्वाथ या लोध के क्वाथ के साथ दिन भर में दो बार देने से फायदा होता है।

मूत्राशय के रोग में—रससिन्दूर १ रत्ती, त्रिफला क्वाथ के साथ देना चाहिये।

बालकों के नवज्वर में—रस सिन्दूर आधी रत्ती, तुलसी पत्र रस के साथ दें।

बच्चों के श्वास-कास में—रससिन्दूर आधी रत्ती, छोटी कटेली के क्वाथ से दें।

शरीर पुष्टि के लिये—रससिन्दूर २ रत्ती, गिलोयसत्व २ रत्ती मक्खन के साथ मिश्री मिलाकर दें।

नोट—यद्यपि यहाँ अनेक रोगों पर अनुपान के साथ रससिन्दूर का प्रयोग करने के लिये लिखा गया है। तथापि चिकित्सक को चाहिये कि देश, काल और रोगी के बलाबल के अनुसार रससिन्दूर की मात्रा तथा उसके अनुपानादि की व्यवस्था करें।

गुण और उपयोग—उत्तम प्रकार से बनाया हुआ रससिन्दूर

प्रमेह रूपी हाथी के लिये सिंह समान नाशक है। यह प्रबल शूल को नष्ट करता है। इसके कुछ दिन लगातार प्रयोग करने से भगन्दर रोग नष्ट हो जाता है। इसके सेवन से भयंकर ज्वर भी नष्ट होता है। हर प्रकार के यक्ष्मा को दूर कर शरीर को स्वस्थ बना देता है। यह कामोद्दीपक तथा मन को प्रसन्न करनेवाला है। यह गुल्म रोग, पाण्डु रोग तथा शरीर का मोटापन दूर करता है। प्राणादि भेद से पाँच प्रकार के वायु को भी शमन करता है। इसके सेवन से वातनाड़ी सशक्त होकर अपना कार्य करने में समर्थ होती है। अतः रस सिन्दूर सेवन करनेवालों का मन बराबर प्रसन्न रहता है तथा शरीर भी स्वस्थ रहता है। रस सिन्दूर का नियम पूर्वक सेवन करनेवाले के शरीर से मल रूप में बाहर निकलनेवाले मल-मूत्र तथा अपान वायु बिना कष्ट बाहर निकलते रहते हैं, और शरीर भी शुद्ध रहता है। यह पित्त को बाहर निकालता, किन्तु दस्त पतला नहीं लाता है। और पित्ताशय अथवा कोष्ठ में किसी प्रकार का क्षोभ पैदा नहीं करता इसके अतिरिक्त अधिक दिन तक सेवन करने पर भी केवल पारद अथवा रस कपूर जैसा यह दाँतों के मसूड़ों में शोथ, मुखपाक, व्रण, लालास्राव तथा प्रदाहादि विकार उत्पन्न नहीं करता। इसे विधि पूर्वक सेवन करने से शरीर में अत्यन्त बढ़े हुए वातादि दोष शान्त हो जाते हैं। —र० त०

गुण धर्म के हिसाब से यह उष्ण वीर्य तथा रसायन है। रक्त की गति को बढ़ाना, रक्त गत दोषों को नष्ट करना और हृदय को बल देना इसका प्रधान कार्य है। पारद-गन्धक का यह कल्प शरीर के अंगों की क्रिया को बढ़ाता है। अनुपान भेद से अनेक रोगों को इसका मिश्रण नाश करता है। अकेला रस सिन्दूर पित्त प्रधान रोगों में नहीं देना चाहिये। यदि देना ही आवश्यक हो, तो इसके साथ कोई शीत वीर्य प्रधान औषध मिला कर दें। कफ जन्य विकार को यह बहुत शीघ्र दूर करता है। रस, रक्त और माँस गत रोगों तथा श्वासेन्द्रिय के विकारों में यह अच्छा लाभ पहुँचाता है। न्यूमोनियाँ,

उरस्तोय, संग्रहणी, पाण्डु, सन्निपात आदि में सहायक औषधियों के साथ इसका मिश्रण देना चाहिये। बल-वीर्य की वृद्धि और रक्त शोधन आदि सभी कार्यों में इस रसायन का उपयोग किया जाता है।

कफ प्रधान सन्निपात, न्यूमोनियाँ, एन्फ्लुएंजा, श्वास रोग, पुराना कफज कास आदि रोगों में कफ संचित हो कर रोग बढ़ता जाता हो, साथ ही दूषित कफ होने के कारण इनके उपद्रव भी बढ़ते जाते हों, तो ऐसे समय में रस सिन्दूर बहुत अच्छा काम करता है, क्योंकि इसका प्रभाव फुफ्फुस और श्वासवाहिनी नाड़ी पर विशेष रूप से होता है। अतः यह दूषित और संचित कफ को सुलभता से बाहर निकाल कर कफ को शुद्ध कर देता तथा फुफ्फुस के विकार—(शोथादि) को भी दूर कर बलवान बना देता है।

रस सिन्दूर अपने उत्तेजक प्रभाव के कारण दूषित कफ को शरीर से निकालता है। परन्तु सूखी खाँसी में रस सिन्दूर अकेले न देकर प्रबाल भस्म या पिष्टी के साथ २ माशे सितोपलादि चूर्ण, च्यवनप्राश १ तोला के साथ मिलाकर देने से शीघ्र लाभ होता है।

कफ जन्य कास में कफ निकालनेवाले अनुपान (मुलेठी, छोटी इलायचीबीज-चूर्ण आदि) के साथ रस सिन्दूर का प्रयोग करें। इससे कफ संचय दूर हो जाता है, अर्थात् कफ जो संचित हुआ रहता है उसे पतला कर निकाल देता है। यदि यह कफ नहीं निकाला जाय, तो रस-रक्तादि वहन करनेवाली नाड़ियाँ दूषित हो ज्वरादिक उपद्रव उत्पन्न कर देती हैं, जिससे कभी-कभी इन्फ्लुएंजा रोग भी उत्पन्न हो जाता है। परिणाम यह होता है कि इन्फ्लुएंजा आदि की तीव्रावस्था शान्त होने पर भी यदि थोड़ा बहुत यह दूषित कफ फुफ्फुस के किसी स्थान में लगा हुआ रह जाता है, तो वह कुछ ही समय बाद दुर्गन्ध युक्त हरे-पीले रंग के निकलने लगते हैं। ऐसी अवस्था में रस सिन्दूर, मृगशृंग भस्म में मिलाकर देने से काफी लाभ होता है। जिन्हें बार-बार जुकाम हो अर्थात् बहुत से मनुष्यों की प्रकृति ऐसी होती है, कि उन्हें हर समय थोड़ा-बहुत जुकाम

(प्रतिश्याय) बना ही रहता है ; ऐसे मनुष्यों के लिये रस सिन्दूर का सेवन करना अमृत के समान गुणकारक है।

उरः क्षत रोग में यदि कफ के साथ खून न आता हो, केवल कफ वह भी दुर्गन्ध युक्त और पीला निकलता हो, तो रस सिन्दूर वासावलेह के साथ देने से विशेष फायदा करता है। इससे व्रण भर जाता है और दूषित कफ निकल कर कफ भी शुद्ध हो जाता है।

राजयक्ष्मा की द्वितीयावस्था में कफ के उपद्रव विशेष होने पर रस सिन्दूर १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, सुवर्ण वर्क या भस्म चतुर्थांश रत्ती में मिलाकर देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। क्षय की तृतीयावस्था में यदि उरःक्षत हो गया हो, तो इस में प्रायः कोई भी दवा नहीं काम करती है, परन्तु यदि तृतीयावस्था के प्रारम्भ काल में कफ का विशेष प्रकोप हो, तो उस समय रस सिन्दूर अभ्रक भस्म के साथ देने से अवश्य लाभ होता है।

किसी रोग के कारण या मानसिक क्षोभ आदि के कारण हृदय कमजोर हो गया हो, रक्त वाहिनी शिरा संकुचित हो गई हो, उचित परिमाण में रक्त संवहन नहीं करती हो, साथ ही स्नायु भी कमजोर पड़ गया हो, तो ऐसी स्थिति में —रस सिन्दूर का प्रयोग करने से रक्त वाहिनी नाड़ी विस्तृत हो, परिपुष्ट रक्त हृदय में पहुँचाकर हृदय को बलवान बना देता जिससे स्नायुयों की भी शिथिलता दूर हो स्नायु पुष्ट हो जाते हैं, और मनुष्य हर तरह से स्वस्थ दिखलाई पड़ने लगता है।

—औ० गु० ध० शा०

तालं सिन्दूर

शुद्ध तबकिया हरताल १ भाग, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक २-२ भाग। सब को एकत्र कर पत्थर की खरल में घोंटें। खूब उत्तम कज्जली बना लें, (कोई-कोई घृत कुमारी के रस में इस कज्जली को घोटने के लिये कहते हैं, यद्यपि मूलपाठ में ऐसा विधान नहीं है. तथापि इसमें घोटने से अच्छा रहता है) इस कज्जली को आतशी शीशी में भर बालुका यन्त्र में रख १२ घण्टे तक आँच लगने के

बाद शीशी में डाट लगा दें। डाट लगाने के बाद ३६ घंटे तक तेज आँच देकर बन्द कर दें। स्वांग शीतल होने पर सावधानी से शीशी तोड़ कर ताल सिन्दूर निकाल लें। —रसा० सार०

नोट—इसमें इतनी आँच देने का कारण यह है, कि हरताल जल्दी नहीं उड़ता है। कुछ लोग २४ घंटे की ही आँच देने के लिये कहते हैं, किन्तु इतनी जल्दी तभी तैयार हो सकता है, जब भट्ठी अच्छी और खूब तेज आँच लगने वाली हो।

इसी विधान में पारे के साथ यदि स्वर्ण-वर्क मिला कर बनाया जाय तो यही "ताल चन्द्रोदय," हो जाता है।

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती, शहद, अदरक रस या घी के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—कज्जली और हरताल के रासायनिक योग से बननेवाला यह रसायन शरीर के अन्दर रहनेवाले विजातीय विकार को सहसा निकाल देता है। हरताल का सम्पूर्ण गुण-धर्म इसमें रहता है। अतः यह रक्त शोधक, जन्तुघ्न, कफ और कुष्ठ नाशक है। उष्ण वीर्य होने के कारण वात विकार को भी नष्ट करता है। आतशक और उसके उपद्रव वात रक्त, मलेरिया और चर्म रोगों में यह बहुत फायदा करता है। फेफड़े में संचित जल को यह जल्दी सुखाता है। अतएव कास-श्वास और उरस्तोय में ताल सिन्दूर का मिश्रण बहुत काम करता है। हृदय और रक्तवाहिनियों की गति में इससे सहायता मिलती है तथा रक्त के अणु इससे शुद्ध और पुष्ट होते हैं। जलीय अंश का शोषण करने के कारण जलोदर और शोथ में भी इसका अच्छा प्रभाव होता है। शीतांग सन्निपात में यह उष्णता लाता और गले में भरे हुए कफ को जल्दी निकाल देता है। बार-बार आनेवाले बुखारों का विष इससे नष्ट हो जाता है, तथा आतशक के कारण होनेवाला गठिया रोग भी इससे ठीक हो जाता है।

क्षय की प्रथम या द्वितीयावस्था में इसका प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है, क्योंकि यह कफघ्न तथा कीटाणुनाशक

है। यह ज्वर की गर्मी और फुफ्फुस के विकारों को नष्ट करता है। क्षय की प्रथमावस्था में कफ युक्त कास (खाँसी) न हो, सिर्फ खाँसी ही हो तो ताल सिन्दूर का अकेला प्रयोग न कर कफ को पिघलानेवाली दवा प्रवाल चन्द्रपुटी आदि का मिश्रण कर मधु या च्यवनप्राशावलेह के साथ दें। यदि कफ वृद्धि ज्यादा हो जाय तो ताल सिन्दूर को अभ्रक भस्म या शृंग भस्म के साथ सितोपलादि चूर्ण में मिला शहद से देना चाहिये।

मलेरिया ज्वर की सभी अवस्थाओं में इसका उपयोग किया जाता है। जैसे दूषित जल के कारण हुए विषम ज्वर, बार-बार आनेवाला ज्वर, एकतरा, तृतीयक तथा चौथिया ज्वर, जीर्ण ज्वर आदि रोगों में इसके प्रयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है, क्योंकि इन ज्वरों के दूषित कीटाण रक्त में प्रवेश कर रक्त को दूषित कर देते हैं। अतः इन रोगों का प्रधान कारण दूषित रक्त या कीटाणु ही होते हैं और ताल सिन्दूर कीटाणुनाशक तथा रक्त शोधक होने से इन कीटाणुओं को नष्ट कर रक्त को शुद्ध करते हुए ज्वर को दूर कर देता है। अतः ताल सिन्दूर का प्रयोग इस रोग में बहुत शीघ्र फायदा करता है।

जलोदर में भी इसका प्रयोग करने से अच्छा लाभ होता है। जलोदर रोग में यकृत और हृदय में विकृति हो जाती है। इसका कारण यह होता है कि रक्ताणुओं की कमी होकर शरीर में जलभाग की ही वृद्धि होती है जिससे यकृत् और हृदय दोनों अपने-अपने कार्य करने में असमर्थ हो जाते हैं। ताल सिन्दूर यकृत् और हृदय को बल पहुँचाता है, जिससे हृदय और यकृत में परिपुष्ट रक्त पहुँच कर उसे सशक्त बना देता और रक्ताणुओं की वृद्धि होने से जलीयांश भाग शोषित होने लगता है। अतः जलोदर एवं शोथ ये दोनों रोग इसके सेवन से दूर हो जाते हैं।

—औ० गु० ध० शा०

आतशक की सभी दशाओं और उसके उपद्रवों में ६ रत्ती चोपचीनी चूर्ण में १ रत्ती ताल सिन्दूर मिलाकर दें। ऊपर से महामंजिष्ठादि अर्क पिला दें। कुष्ठ रोग में ताल सिन्दूर १ रत्ती, बावची चूर्ण ४

रत्ती, गोमूत्र अथवा खदिरारिष्ट के साथ दें। समस्त चर्म रोगों में गुडूची स्वरस या मधु के साथ ताल सिन्दूर दें। कास, श्वास और कफ रोगों में अदरक रस और मधु से दें। मलेरिया तथा विषम ज्वरों में तुलसी रस या मधु के साथ, ऊपर से सुदर्शनार्क पिला देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

मल्लसिन्दूर

शुद्ध पारद ६ तोला, शुद्ध गन्धक ५।। तोला, रस कपूर ६ तोला शुद्ध संखिया ४।। तोला। प्रथम पारा और गन्धक की कज्जली करें, पीछे उसमें रसकपूर और संखिया मिला ग्वांरपाठा (घीकुमारी) के रस में दो दिन मर्दन कर, कपड़मिट्टी की हुई आतसी शीशी में भर कर बालुका यन्त्र में २ दिन पकावें। स्वाँगशीतल होने पर शीशी को तोड़ कर शीशी के गले में जमे हुए मल्लसिन्दूर को निकाल तीन दिन पत्थर के खरल में पीस खूब महीन होने पर शीशी में भर लें।

—सिद्धयोग संग्रह

नोट—मल्लसिन्दूर बनाने में बहुत सावधानी की आवश्यकता है। लोहे की सलाई से बराबर शीशी के गले को साफ करते रहें; जब तक शीशी में गन्धक रहेगा; तब तक सलाई में गन्धक पिघला हुआ काले रंग का देखने में आयेगा। करीब १०-१२ घण्टे में इस गन्धक का जारण हो जाता है, फिर संखिया का धुआँ निकलने लगता है। इसी समय डाट लगा दें अन्यथा संखिया सब निकल जायगा। गन्धक रहते हुए यदि डाट लगा दी जाती है, तो गन्धक की गैस बनकर डाट को फेंक देती या शीशी को तोड़ डालती है। अतः डाट सावधानी से लगावें। साथ ही संखिया के धुआँ से भी बचना चाहिये। मल्लसिंदूर के लिये ३६ घण्टे की आँच पर्याप्त है।

मात्रा और अनुपान—आधी रत्ती से १ रत्ती, दिन में दो बार शहद, और अदरक के रस के अनुपान से दें।

गुण और उपयोग—संखिया और कज्जली का यह रासायनिक कल्प अत्यन्त तीक्ष्ण और उष्ण वीर्य है। पित्त प्रधान रोगों में और पित्त प्रकृति के पुरुषों को यह बहुत हल्की मात्रा में सौम्य औषध सितोपलादि चूर्ण, प्रवालपिष्टी आदि के मिश्रण के साथ देना

चाहिये और ठंढा उपचार करना चाहिये। वात और कफ के विकारों में यह तीर की तरह शरीर में प्रवेश कर शीघ्र ही उत्तम फल दिखलाता है। जन्तुघ्न गुण के कारण रक्त में घुसे हुए मलेरिया, हैजा, गरमी आदि के कीटाणुओं को जल्दी नष्ट करता है। यह रक्तवाहिनियों में उत्तेजना पैदा करता है और हृदय की गति को बढ़ाता है। तेज बुखार में इसे नहीं देना चाहिये। आतशक के लिये तो इसे न्यूस-ल्वर्सन इन्जेक्शन ही समझें। आतशक या सूजाक के कारण होनेवाले गठिया तथा अन्य उपद्रवों में भी बहुत शीघ्र लाभ होते देखा गया है।

पक्षाघात, आमवात, धनुष्टंकार आदि वात रोगों में और कफ सम्बन्धी कास, श्वास, न्यूमोनिया, उरस्तोय, डब्बा आदि रोगों में यह आशातीत लाभ करता है। शीतांग और कफ प्रधान सन्निपात में यह अपूर्व प्रभाव दिखलाता है। स्त्रियों के हिस्टीरिया रोग में इसका बहुत जल्दी प्रभाव पड़ता है। एक सप्ताह में ही सब दौरे समाप्त हो जाते हैं। बुढ़ापे की दुर्बलता और पुराने दमे के रोग में मल्लसिन्दूर अमृत के समान गुण करता है। यह पाचक रस को पैदा करके भूख पैदा करता है और मूत्राशय तथा शुक्र प्रणालियों की कमजोरी को दूर करके रक्त उत्पन्न करता है। हस्तमैथुन से नामर्द हुए मनुष्य को इसे अवश्य सेवन करना चाहिये। हैजे और अजीर्ण जन्य दस्तों के विष को यह जल्दी नष्ट करता है। वात, कफजन्य प्रमेह में यह रसायन अच्छा गुण दिखलाता है। अतः केवल बल-वीर्य वृद्धि के लिये भी इसका सेवन किया जाता है। यह थोड़े ही दिनों में शरीर को पुष्ट बनाकर मैथुनशक्ति को बढ़ा देता है। इसको प्रबालपिष्टी जैसी सौम्य औषधि के साथ मिलाकर खिलाने से ज्यादा गर्मी नहीं मालूम होती है।

कफजन्य सन्निपात में—मल्लसिन्दूर का प्रयोग किया जाता है। सन्निपात के प्रारम्भिक अवस्था में इसका प्रयोग करने से सन्निपात की शक्ति कम हो जाती है तथा रोगी भी विशेष परेशान नहीं होता। कफ प्रकोप के कारण कण्ठ में कफ भरा हुआ रहता हो, घर-घर आवाज

होती हो, साथ ही थोड़ा कफ भी हो, अधखुले नेत्र, अक-बक बकना, तन्द्रा, बेहोशी, कभी-कभी निन्द्रा आ जाना, ज्वर की गरमी भी ज्यादा न मालूम पड़े—ऐसी अवस्था में मल्लसिन्दूर मधु के साथ देने से बहुत फायदा करता है।

दूषित जल-वायु या कफकारक पदार्थ का विशेष सेवन करने से कफ प्रकुपित हो छाती में संचित होने लगता है। कफ संचित होने से फुफ्फुस और वातवाहिनी नाड़ी कमजोर हो जाती है, जिससे कफ जल्दी बाहर नहीं निकल पाता। फुफ्फुस की कमजोरी के कारण खाँसने में भी कष्ट होता है। ऐसी हालत में मल्लसिन्दूर के प्रयोग से संचित कफ बाहर निकलने लगता है। मल्लसिन्दूर के साथ प्रबाल चन्द्रपुटी या अभ्रक तथा लौहभस्म आदि भी मिलाकर देने से बहुत फायदा होता है।

न्यूमोनियाँ या इन्फ्लुएञ्जा आदि रोग में जिनका असर खास कर फुफ्फुस पर पड़ता है, ऐसे रोगों से मनुष्य जब ग्रस्त हो जाता है, तब फुफ्फुसों की कमजोरी के कारण श्वास लेने में भी कष्ट होता है और रोगी इतना कमजोर हो जाता है कि वह देर तक बातें भी नहीं कर सकता तथा उसका हृदय भी कमजोर हो जाता है। ऐसी दशा में मल्लसिन्दूर आधी रत्ती, मोती भस्म या पिष्टी १ रत्ती, लौह भस्म १ रत्ती इन्हें मधु या पान के रस में मिलाकर देने से लाभ होता है। —औ० गु० ध० शा०

मलेरिया (विषमज्वर) में मधु और तुलसी पत्ती के रस के साथ दें। आतशक और सूजाकजन्य वातविकारों में मंजिष्ठादि क्वाथ और मधु के साथ दें। पक्षाघात आदि विकारों में मल्ल सिन्दूर आधी रत्ती मधु के साथ दें। ऊपर से महारास्नादि क्वाथ ५ तोला मधु मिलाकर पिला दें। कफ और वातजन्य सन्निपात में मल्ल सिन्दूर आधी रत्ती अदरक रस के साथ देने से लाभ होता है। प्रमेह और बहुमूत्र में मल्ल सिन्दूर आधी रत्ती, बंग भस्म १ रत्ती, मधु के साथ दें। शुक्रक्षय में मल्लसिन्दूर आधी रत्ती, छोटी इलायची चूर्ण ४ रत्ती, २ माशे मिश्री में मिला दूध के साथ दें। आतशक और

उसके विकारों में मल्ल सिन्दूर आधी रत्ती मधु में मिलाकर चटा दें। ऊपर से सारिवाद्यासव १ तोला बराबर पानी मिलाकर देना चाहिये। न्यूमोनिया- इन्फ्लुएंजा आदि रोगों में पान के रस और मधु के साथ दें।

ताम्र सिन्दूर

ताम्र भस्म ५ तोला, पारा १० तोला, गन्धक १० तोला, तीनों को एकत्र कज्जली बना घीकुमारी के रस में घोलकर छाया में सुखा लें। इस सूखी हुई कज्जली को आतसी शीशी में भर बालुकायन्त्र में रख भट्ठी पर चढ़ा ३६ घण्टे की आँच लगातार देने से यह तैयार होता है।

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती, मधु, पान या तुलसी पत्ती के रस से सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग—पारद गन्धक और ताम्र भस्म के योग से बननेवाला यह रसायन उष्णवीर्य है। यह रक्तविकृतिजन्य रोग में बहुत फायदा करता है। ताम्र सिन्दूर यकृत् प्लीहा के रोग और अम्लपित्त तथा अपस्मार एवं शूलनाशक है। इसके प्रयोग से शरीर में होनेवाले आक्षेप तथा खल्ली (वाँयटे) आना बन्द हो जाता है। पुराने मन्दाग्नि रोग तथा परिणाम शूल के लिये यह बहुत उत्तम गुणकारी माना जाता है। आँतों में होनेवाले क्षय रोग की उत्तम औषधि है।

आमाशय के लिये यह बल्य तथा आँतों के लिये ग्राही एवं उत्तम जीवाणुहर है। यह आँतों की वात नाड़ियों के क्षोभ को शान्त करने के कारण शूल को नष्ट करता है। हृदय तथा श्वास की बढ़ी हुई गति कम करता है। नाड़ी संस्थान में यह बल पहुँचाता है। त्वचा के विकारों को दूर करने के लिये उत्तम दवा है। इसके प्रयोग से बढ़ी हुई प्लीहा और यकृत् कम हो जाती है।

आमाशय में उत्पन्न हुए कर्कटस्फोट में और वात-कफ प्रधान मांसार्बुद में ताम्र सिन्दूर का अच्छा प्रभाव देखा जाता है। इसके

प्रयोग से पित्ताशय की सूजन कम हो जाती है, जिससे पित्ताश्मरी नहीं हो पाती और यकृत्-पित्त का स्राव ठीक तथा नियमित रूप से होने लगता है। अतएव यह यकृत् शोथ वृद्धिजन्य जलोदर में अत्यन्त लाभ करता है। ताम्र सिन्दूर लेखन गुण के कारण पाचन संस्थान की कफ-ग्रन्थि और गुल्म रोग में बहुत फायदा करता है। हैजा की अन्तिम अवस्था में जब हृदय-दुर्बलता के कारण नाड़ी क्षीण हो गयी हो, और शरीर ठंडा हो गया हो, तो ऐसी अवस्था में ताम्र सिन्दूर-प्रवाल चन्द्रपुटी या मोती पिष्टी के साथ देने से बहुत फायदा करता है। हैजा की प्रारम्भिक अवस्था में इसके प्रयोग से हैजे के कीटाणु मर जाते हैं तथा हाथ-पाँव में होनेवाली ऐंठन भी कम हो जाती है। ताम्र सिन्दूर मांसपेशी को बल देता है। हिक्का रोग में भी यह विशेष फायदा करता है। वात और कफ प्रधान हिक्का में ताम्र सिन्दूर आधी रत्ती, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती, बिजौरा नीबू के रस में देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

वातजन्य खाँसी में जिसमें बहुत सूखी खाँसी आती हो, कफ नहीं निकलता हो, खाँसी विशेष जोर पकड़ती जा रही हो, खाँसते-खाँसते शरीर में खिचाव होने लगे, श्वास भी रुकने लगे तथा मुँह नीला पड़ जाय, ऐसी अवस्था में ताम्र सिदूर आधी रत्ती, प्रवाल भस्म १ रत्ती सितोपलादि चूर्ण २ माशे में मिलाकर च्यवनप्राश के साथ दें। ऊपर से द्राक्षारिष्ट १। तोला बराबर जल मिलाकर पिला दें।

वमन की उग्रावस्था में—अर्थात् जब वमन अधिक समय तक और ज्यादे परिमाण में हो, वमन में कफ की अधिकता हो, ज्यादे ताकत लगाने के बाद वमन हो, ऐसी हालत में ताम्रसिन्दूर १ रत्ती, मयूरपुच्छ भस्म २ रत्ती, पीपलवृक्ष की छाल की भस्म चार रत्ती, एकत्र मधु में मिलाकर चटाने से शीघ्र लाभ होता है।

बालकों के आक्षेपजन्य रोग में—इसमे रोगी की मुठ्टी मजबूती के साथ बंध जाती है, मुँह पर नीली नसें उभर आई हों, जिससे मुँह नीला मालूम पड़ता हो, खाने या पानी आदि पीने के

समय गले में घर-घर शब्द होता हो, इतने लक्षण कुछ देर तक रहनेवाले हों या तुरन्त मिट जाएँ अथवा पैर तथा पेट में एकाएक मांसपेशियों की खिचावट हो। ऐसी हालत में ताम्र सिन्दूर आधी रत्ती, स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती, जटामांसी चूर्ण २ माशे के साथ सेवन करने से आक्षेप शान्त हो जाता है।

भयंकर कष्टरज (रजोरोध) में—जिसमें पेट और छाती में तीव्र दर्द हो, दर्द के मारे स्त्री चीखती हो तथा अण्ट-सण्ट बोलती हो, साथ ही वमन भी हो, जी मिचलाता हो, हाथ-पाँव में खिचावट हो, ऐसी अवस्था में ताम्र सिन्दूर आधी रत्ती, सम्भालू बीज, सोंठ, एलुआ और दालचीनी के चूर्ण २ माशे में मिलाकर कुमार्यासव के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है।

हैजा में—जिसमें अत्यन्त पतला-सफेद दस्त होता हो, प्यास ज्यादा लगे, रोगी के सम्पूर्ण देह में ऐंठन हो, नाड़ी की गति बिल्कुल क्षीण हो गयी हो, मुखमण्डल नीला तथा होंठ काले पड़ गये हों। ऐसी हालत में ताम्र सिन्दूर आधी रत्ती, कस्तूरी आधी रत्ती, भीमसेनी कपूर आधी रत्ती इन सबको एकत्र मिला मधु के साथ दें। ऊपर से सौंफ या अजवायन का अर्क २ तोला पिला दें। इससे दस्त बन्द होकर नाड़ी की गति सुधर जाती है। फिर क्रमशः रोगी अच्छा होने लगता है।

अपस्मार रोग में—होठ नीले पड़ गये हों, मुख से झाग निकल रहा हो, आँखों की पुतलियाँ टेढ़ी पड़ गयी हों, रोगी रोता या चीखता हो, दाँतों को चबाता हो, ऐसी दशा में ताम्र सिन्दूर १ रत्ती, शीघ्र लौह भस्म आधी रत्ती मधु में मिलाकर चटावें। इससे लाभ होता है।

शिला सिन्दूर

शुद्ध मैनसिल ५ तोला, शुद्ध पारा १० तोला, शुद्ध गन्धक १० तोला इन तीनों को एकत्र मिला कज्जली करें। इस कज्जली को ग्वारपाठा के रस में घोटकर सुखा, आतसी शीशी में भरकर बालुका-

यन्त्र में रख ४ दिन-रात की अग्नि दें। स्वांगशीतल होने पर उतार-कर सावधानी से शीशी के गले में लगे हुए शिला सिन्दूर को निकाल लें। इसका रङ्ग कलासयुक्त चमकदार होता है।

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती, शहद (मधु) के साथ दें। ग्रीष्म ऋतु में १ से ४ चावल की मात्रा में दें।

गुण और उपयोग—नियमित रूप से कुछ दिनों तक इसका सेवन करने से कुष्ठ या खून की खराबी से उत्पन्न चर्मविकार आराम हो जाता है। जाड़ा देकर आनेवाला बुखार और शीतांग सन्निपात में इसके प्रयोग से बहुत लाभ होता है। गर्मी की अपेक्षा जाड़े में इसका उपयोग विशेष करना चाहिये।

इसमें प्रधान औषध मैनसिल है। मैनसिल स्निग्ध, उष्ण और गुरु होती और यह लेखन कार्य करती है। कास और श्वास रोगनाशक है, जीवाणुजन्य रोगों को नष्ट करती है। इसके अति-रिक्त अग्निमांद्य, क्षय तथा आफरा, कब्ज और कण्डू को मिटाती है। यह नियम पूर्वक शुद्ध रूप में सेवन करने से हरताल की भाँति शरीर में रसायन कार्य करती है। पुराने और नवीन ज्वरों में लाभ-दायक है। त्वचा के रोगों को नष्ट करके उसकी सुन्दरता को बढ़ाती है।

कास-श्वास रोग में—कफ या वात प्रधान कास हो, खाँसी बार-बार आती हो, साथ में सफेद तथा चिकना कफ निकलता हो, खाँसते-खाँसते आँखें तथा मुंह लाल हो जाते हों, अन्न में अरुचि, निद्रा, देह में भारीपन, आदि लक्षण उपस्थित होने पर शिलासिन्दूर १ रत्ती, त्रिकटु चूर्ण १ माशा में मिला वासा (अड़ूसा) स्वरस के साथ देने से विशेष लाभ होता है। यह दूषित कफ को निकाल कर श्वासनली को साफ करता तथा अपने उत्तेजक गुण के कारण हृदय और वातवाहिनी नाड़ी में उत्तेजना पैदा करता है।

स्थूलता दूर करने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। घी, दूध, गेहूं आदि मेदा (चर्बी) बढ़ानेवाले पदार्थों का अधिक सेवन करने तथा दिन भर गद्दी के सहारे बैठे रहने के कारण शरीर में चर्बी की

वृद्धि हो जाती है, ऐसी हालत में थोड़ा-सा भी चलने पर मनुष्य थक जाता है, सांस चलने लगती है, पसीना दुर्गन्ध युक्त आने लगता है, भूख और प्यास के वेग को थोड़ी देर के लिये भी सहन नहीं कर सकता, शरीर आलसी हो जाता और निद्रा अधिक होती है। ऐसी परिस्थिति में शिला सिन्दूर १ रत्ती, मधु में मिलाकर देने से लाभ होता है। इस रसायन के सेवन से चर्बी बनना बन्द हो जाती तथा बढ़ी हुई चर्बी घटने लगती है, और शरीर में एक तरह की नवीन स्फूर्ति पैदा हो जाती है।

नोट—इस रसायन के सेवन काल में पौष्टिक पदार्थ का सेवन क्रमशः कम करते जायें, और भोजन सिर्फ दिन-रात में दो बार ही करें। तथा भोजन में जौ और चने की रोटी या चने का ही लड्डू आदि बनाकर (थोड़ी मात्रा में) सेवन करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

कण्ठमाला, गलगण्ड, अपची आदि रोग यदि अधिक पुराने न हों, ज्यादा-से-ज्यादा साल भर के अन्दर के ही हों तथा कफ प्रधान कुष्ठ, खून की विकृति और रक्तवाहिनी की विकृति से स्थान-स्थान पर खून जम गये हों, चर्म रोग आदि व्याधि भी हों, तो ऐसी दशा में यह रसायन बहुत फायदा करता है। परन्तु ध्यान रखें कि ये रोग पुराने होने पर फिर किसी भी दवा से नहीं जाते हैं। अतः इन रोगों की प्रारम्भिक अवस्था से ही चिकित्सा शुरू कर दें।

यह रसायन कीटाणु नाशक, उत्तेजना पैदा करने वाला, तथा चिकना होने के कारण आमाशय और अन्त्र (आँत) में संचित आम दोष तथा दूषित कीटाणु एवं विष को नष्ट करनेवाला है। यह कोष्ठ को सशक्त बना कब्जियत दूर करता है। उन्माद रोग में भी स्मृतिसागर रस आदि के साथ सेवन कराया जाता है।

—औ० गु० ध० शा०

कुष्ठ रोग में शिलासिन्दूर १ रत्ती, १॥ माशा वाकुची चूर्ण और मधु में मिलाकर चटावें, ऊपर से खदिरारिष्ट १ तोला बराबर जल के साथ दें। मलेरिया बुखार में बुखार आने से पहले दो-दो घण्टे के अन्तर से एक-एक मात्रा तुलसी स्वरस और मधु से दें। शीतांग-सन्निपात में अदरक रस के साथ दें।

समीरपन्नग रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध संखिया, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल, प्रत्येक समान भाग लेकर कज्जली करें, फिर इसे तुलसी पत्र स्वरस या ग्वारपाठे के रस में ३ भावना देकर सुखा, कपड़मिट्टी की हुई आतसी शीशी में भर बालुका यन्त्र द्वारा ३ दिन लगातार आँच दें। १६ घण्टे आँच देने के बाद गन्धक का जारण होता है। उसके बाद शीशी में डाट लगाकर ३६ घण्टे तेज अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर इसे निकाल लें। यह रसायन शीशी के गले में कठोर और काले रूप में मिलता है। यह ऊद्र्ध्वलग्न रस है।

—औ० गु० ध० शा०

दूसरी विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध संखिया और शुद्ध हरताल समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके कज्जली बना तुलसीपत्ती के रस में घोंट, टिकिया बनाकर सुखा लें। पश्चात् एक सिकोरा इतना बड़ा लें कि उसमें अभ्रक पत्र बिछ जाय, उस पर दवा की टिकिया रख दूसरे अभ्रक पत्र से ढक, सराब सम्पुट में रखकर तीन-चार कपड़मिट्टी कर सुखा, बालुकायन्त्र में ४ प्रहर की खूब तेज अग्नि दें। (कोई-कोई मन्द-अग्नि ही देने को कहते हैं किन्तु मन्द-अग्नि देने से रस का परिपाक ठीक नहीं होता, जिससे कुछ दिन बाद उसमें से बदबू आने लगती है और सर्दी पाकर वह फफुन्द भी जाता है, अतः तीक्ष्णाग्नि द्वारा ही परिपाक करें) स्वांग शीतल होने पर सम्पुट के अन्दर से काले रंग की और कठोर टिकिया निकालकर रख लें, यह तललग्न रसायन है। —र० चं०

मात्रा और अनुपान—आधी रत्ती से १ रत्ती, पान या अदरक रस या शहद इनमें से किसी एक के साथ, कफाधिक्य में अडूसा या मुलेठी, और वनप्शा के क्वाथ अथवा मिश्री के साथ देना चाहिये।

गुण और उपयोग—सम्प्रति इस रस को ऊद्र्ध्वलग्न बनाने की प्रथा-सी चल पड़ी है। वास्तव में तललग्न की अपेक्षा ऊद्र्ध्वलग्न ही विशेष लाभदायक होता है। इसके गुणों में भी विशेषता आ जाती है। इसकी मात्रा १ रत्ती बहुत है।

इस रसायन के सम्बन्ध में स्वामी हरिशरणानन्दजी लिखते हैं कि "इस रस की १ रत्ती की मात्रा से अर्द्धाङ्ग के अनेक रोगी मैंने अच्छे किये हैं। अर्द्धाङ्ग में जितना अच्छा लाभ इससे होता है, उतना अच्छा लाभ करनेवाला इस रोग के लिये एक भी रस नहीं मिला। इसके अतिरिक्त गृध्रसी के रोगी भी हमने अच्छे किये हैं।

रक्तचाप अधिक बढ़ जाने पर जब मस्तिष्क की केशिका फट जाने से रक्तस्राव मस्तिष्क के किसी भाग में होता है, उसी के कारण अर्द्धाङ्ग, सर्वाङ्ग या एकाङ्ग घात (लकवा) आदि रोगों का एकाएक प्रादुर्भाव हो जाता है। जिन व्यक्तियों को पक्षाघात होता है, उनका रक्तचाप प्रायः बढ़ा हुआ देखा जाता है। ऐसे समय में बड़े-बड़े डाक्टर प्रथम रक्तचाप ठीक करने का उपाय सोचते हैं, किन्तु सफलता नहीं मिलती है, हमने देखा है कि यह ऊर्द्ध्वलग्न समीरपन्नग रस पक्षाघात में प्रारम्भ से दिया जाय तो बढ़े हुए रक्त-चाप को भी कम कर देता है और बहुत जल्दी रोगी स्वास्थ्य-लाभ करता है।

समीरपन्नग रस का स्नायु निर्बलता पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। शरीर में इससे कफ और रक्त की भी वृद्धि होती है। हम इसको शहद से देते हैं।"

श्रीयुत् छांगाणीजी के मतानुसार "यह (दूसरा) सन्निपात की उत्तम औषध है। विशेषकर सन्धिक सन्निपात के लिये बहुत उपकारी है। कफ के बढ़ जाने पर इसका प्रयोग बहुत काम देता है। शीतांग सन्निपात में नाड़ी की गति क्षीण हो जाने पर इसकी १-२ मात्रा से ही आशाजनक लाभ होता है।"

इस रसायन में संखिया, हरताल और मैनसिल का योग है। तीनों अत्यन्त उग्र तथा उष्ण वीर्य्य हैं। इन तीनों में संखिया की ही प्रधानता है। जो मनुष्य संखिया भस्म या उसका जौहर (सत्व) आदि सेवन करने में असमर्थ हो उसे इसका सेवन करना चाहिये। क्योंकि संखिया भस्म या उसके सत्व से यह सौम्य है। यह

न्यूमोनिया, उन्माद सन्धिवात, कास, जुकाम, सन्निपात ज्वर आदि में विशेष लाभ करता है।

इसमें संखिया होते हुए भी यह विषाक्त नहीं है। कारण, संखिया का विष रासायनिक क्रिया द्वारा नष्ट हो कर उसमें सौम्य गुण का प्रादुर्भाव हो जाता है। संखिया के मिश्रण से बननेवाले मल्लसिन्दूर पंचसूतरस और समीरपन्नग रस हैं। इन तीनों के गुणों में बहुत सादृश्य भी है और विशेषता भी। मलसिन्दूर में केवल संखिया की ही प्रधानता और मिश्रण है। अतएव यह तीक्ष्ण तथा श्लैष्मिक कला को उत्तेजित करनेवाला है। पंचसूत में उग्रता नहीं है, अत: श्लैष्मिक कला को उत्तेजित नहीं करता, बल्कि दूषित कफ को छाँट कर बाहर निकाल देता है। समीरपन्नग रस तो इन सब से विशेष सौम्य है। इसमें उग्रता उतनी नहीं है, जितनी उपरोक्त दोनों में है।

छाती या हृदय अथवा फुफ्फुस के किसी भाग में दूषित कफ संचित हो जाने से इन अवयवों में विकृति आ गयी हो, जिससे ये कमजोर हो अपने काम करने में असमर्थ हो गये हों, तो समीरपन्नग रस के प्रयोग से बहुत फायदा होता है। इससे दूषित और संचित कफ निकल जाता है। समीरपन्नग रस के साथ चन्द्रपुटीप्रवाल और लौह भस्म का मिश्रण देने से विशेष सहायता मिलती है।

श्वास-नलिका या गले में कभी-कभी ज्यादे सूखी खाँसी या दमा का ज्यादा दौरा होने से इनमें खराश पैदा हो जाती है, जिससे खाने-पीने या खाँसने में भी बहुत कष्ट होता है। इसे दूर करने के लिये समीरपन्नग रस में सितोपलादिचूर्ण च्यवनप्राश या मधु में मिलाकर चाटने से खराश मिट जाती है तथा खाँसी भी कम हो जाती और कफ निकल जाने से श्वासनली भी साफ हो जाती है। जिससे दमा (श्वास) का वेग भी कम हो जाता है।

श्वास रोग में—जिस श्वास रोग में वात या कफ की प्रधानता हो, सूखी खाँसी हो, कफ नहीं निकलता हो, साँस ज्यादे फूलती हो,

ऐसी दशा में कफ निकालने के लिये समीरपन्नग रस आधी रत्ती, प्रवाल भस्म १ रत्ती, मधु के साथ दें। और ऊपर से—

मुलैठी, वनप्सा, मिश्री, बहेड़े की मिंगी, अडूसे का पत्ता इनका क्वाथ बना पिलावें। इससे कफ बहुत शीघ्र निकलने लगता तथा श्वास का वेग भी कम हो जाता है।

ऋतु और दोष के अनुसार पुरानी खाँसी में भी परिवर्तन होता है। अर्थात् वर्षा ऋतु में वातजन्य दोष की प्रधानता के कारण, ग्रीष्म ऋतु में पित्तजन्य एवं शीत ऋतु में कफजन्य खाँसी उत्पन्न होती है। परन्तु ये खांसी सब को नहीं, प्रकृति के अनुसार होती हैं। ऐसी खाँसी कभी-कभी स्वयं शान्त भी हो जाती है। जब दोष धातु में विलीन हो जाते हैं, तब खाँसी भी कम हो जाती है, फिर थोड़ा भी कुपथ्य पर ये दोष कुपित हो बार-बार खाँसी उत्पन्न कर देते हैं। ऐसे मनुष्य (रोगी) को बराबर पथ्य और संयम से ही रहना पड़ता है। जिससे रोगी कमजोर होता जाता तथा रोग भी पुराना होता चला जाता है और उसकी जीवनीय शक्ति निर्बल होती जाती है। जीवनीय शक्ति निर्बल तथा शारीरिक अवयव कमजोर हो जाने पर और दोष के अंश शरीर में अत्यन्त सूक्ष्म रूप से बीज रूप में जम कर बैठ जाने पर रोगी कितना भी पथ्य-संजम, परहेज तथा दवाइयों का सेवन क्यों न करे, कुछ भी लाभ नहीं होता। ऐसी दशा में रोग के बीज को नष्ट करना ही श्रेयष्कर है। इसके लिये समीरपन्नग रस का प्रयोग करना अच्छा है।

वातजन्य आक्षेप, अर्दित, जिह्वास्तम्भ धनुर्वात आदि रोगों में जब कफ की प्रधानता हो, तब समीरपन्नग रस के सेवन से अच्छा लाभ होता है। इसी तरह स्नायुजन्य शूल में भी यह विशेष फायदा करता है। वात और कफ प्रधान उन्माद रोग में भी इसका उपयोग करने से अच्छा लाभ होता है। कफ की विशेष वृद्धि हो जाने पर मन्दाग्नि हो जाती है। जिसकी वजह से खाये हुए अन्न का ठीक-ठीक परिपाक नहीं होता और कफ की वृद्धि के कारण पित्त भी बहुत कम बन पाता है। ऐसी दशा में बढ़े हुए कफ को कम करने तथा

पित्त को उत्तेजित कर मन्दाग्नि दूर करने के लिये समीरपन्नग रस का सेवन करना बहुत हितकर है।

हैजे की उग्रावस्था में—बार-बार दस्त और वमन होते हों, प्यास ज्यादे लगती हो, नाड़ी क्षीण हो गयी हो, सर्वाङ्ग में ऐंठन तथा शीतलता छा गयी हो, कभी-कभी रोगी बेहोश हो जाय, पसीना खूब निकलता हो, ऐसी भयंकर अवस्था में सोंठ और जायफल का महीन चूर्ण बना शरीर पर मालिश करें। इससे पसीना रुकता है तथा वात का शमन हो शरीर की ऐंठन कम हो जाती है। दस्त में भी कुछ अन्तर पड़ जाता और पसीना रुकने से पित्त जागृत हो खून में गर्मी पैदा कर देता है। जिससे शरीर थोड़ा-थोड़ा गर्म होने लगता है, साथ ही समीरपन्नग रस १ रत्ती, सुवर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, प्रवाल भस्म १ रत्ती अदरक रस के साथ देने से रोगी का शरीर गर्म हो जाता तथा बेहोशी दूर हो जाती और रक्त में गर्मी पहुँचने के कारण रक्तवाहिनी नाड़ियाँ सबल हो जाती हैं तथा हृदय की निर्बलता दूर हो जाने से रोगी अपने कार्य करने में समर्थ हो जाता है। फिर मृतशेखर और संजीवनी वटी आदि का भी प्रयोग करते रहें। इस तरह रोगी क्रमशः अच्छी हालत में आने लगता है और उसकी दशा भी सुधरने लगती है। कुछ ही दिनों बाद रोगी स्वस्थ हो जाता है।

बद्धकोष्ठता के कारण दस्त कब्ज हो जाता है। यह कब्जियत दीर्घकालीन होने के कारण शरीर में दूषित कीटाणु उत्पन्न हो बढ़ने लगते हैं; जिससे शरीर में किसी-किसी को आक्षेप होने लगता है। यह आक्षेप (खिंचाव) जब तीव्रावस्था में पहुँच जाता है, तब छाती की धड़कन बढ़ जाती है, श्वास लेने में कष्ट का अनुभव होता है, सिर में दर्द तथा मन घबड़ाने लगता है। ऐसी अवस्था में समीरपन्नग रस आधी रत्ती, लौह भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती में मिला अदरक रस या पान के रस अथवा तुलसी के रस के साथ देने तथा महानारायण तैल अथवा चन्दनादि तैल को गर्मकर छाती पर मालिश करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

इस रोग में दवा देने से पहले कैस्टर आयल की दस बूंद पाव भर दूध में मिलाकर पिला देने से उदर शुद्धि हो जाती है। फिर उदर-शोधन के बाद दवा देने से विशेष लाभ होता है।

अध्यशन रोग—अर्थात् पहले जो खाया जाय वह पचे नहीं, और उसी पर पुनः खा लेने को अध्यशन कहते हैं। इसमें आमाशय निर्बल हो जाता और वह अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। जिससे पेट भारी बना रहता है तथा अपान वायु रुकी रहती है। हृदय में पीड़ा होती है, खट्टी डकारें जलन के साथ आती हैं, ऐसी हालत में समीरपन्नग रस आधी रत्ती, शंख भस्म २ रत्ती, मुलेठी का चूर्ण अथवा सोंठ के चूर्ण १ माशा में मिला मधु के साथ दें। खाना खाने के समय हिंग्वाष्टक चूर्ण घी मिला कर पहले ५-७ ग्रास खाने के बाद फिर भोजन करें। इससे आमाशय की शिथिलता दूर हो सबल हो जाता और वह अपना कार्य करने में समर्थ हो जाता है। साथ ही पित्त में भी उत्तेजना आकर जठराग्नि प्रदीप्त हो खाये हुए अन्न को पचाने लगता है। इस तरह धीरे-धीरे रोगी की हालत सुधरने लगती है और रोगी स्वस्थ हो जाता है।

प्रकुपित वात, कफ को सुखाकर सूखी खाँसी उत्पन्न कर देता है। यह खाँसी जब उठती है तब छाती, हृदय और शिर में दर्द होने लगता है। पसुली में खिचाव होने के कारण उसमें भी दर्द होता है। इसका दौरा २-३ मिनट तक लगातार होता रहता है, परन्तु यह दौरा पुराना होने पर होता है। ऐसी दशा में समीरपन्नग रस आधी रत्ती, प्रवाल चन्द्रपुटी १ रत्ती, लौह भस्म आधी रत्ती, तालीशादि चूर्ण १ माशा मिला शर्बत अनार या लऊक सपिश्ता के साथ दें। ऊपर से वासारिष्ट १ तोला बराबर पानी मिलाकर पिलावें।

सुवर्ण समीरपन्नग रस

सोने के वर्क १ तोला, पारा शुद्ध ४ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला, शुद्ध संखिया ४ तोला, शुद्ध मैनसिल ४ तोला, और शुद्ध हरताल ४ तोला लें। प्रथम पत्थर की खरल में पारा डालकर उसमें सोने के

वर्क एक-एक करके मिलावें। जब सब वर्क मिल जायें, तब उसमें गन्धक मिला कज्जली करें; पीछे मैनसिल, संखिया और हरताल मिलाकर दो दिन ग्वारपाठे के रस में मर्दन कर सुखा लें। पीछे सात कपड़मिट्टी की हुई शीशी में भरकर बालुका यन्त्र में दो दिन पकावें। अग्नि इतना रखें कि जिसमें कज्जली द्रव हो कर पकती रहे। स्वांग शीतल होने पर शीशी को तोड़, तलस्थ रस को निकाल दो-तीन दिन खूब महीन पीस कर शीशी में भर लें।

मात्रा और अनुपान—आधी रत्ती से १ रत्ती शहद (मधु) या अदरक रस और शहद मिलाकर दें।

गुण और उपयोग—यह सब प्रकार के वात रोग में विशेषतः अर्दित, पक्षाघात, कटिस्तम्भ, पार्श्वशूल, कफाधिक्य, तमक श्वास और सन्निपात ज्वर में जब तन्द्रा, पसीना ज्यादा आवे, सम्पूर्ण शरीर ठण्ढा हो जाय—इन लक्षणों की उपस्थिति होने पर इस योग से अच्छा लाभ होता है। फिरंगोपदंश से जो वातरोग होते हैं उनमें भी इससे विशेष लाभ होता है। —सि० यो० सं०

चिन्ता, भय, शोक और क्रोध से उत्पन्न होनेवाले योषापस्मार (हिस्टीरिया), उन्माद, वातजन्य निर्वलता आदि में इसका उपयोग करने से अच्छा लाभ होता है। शिर में रक्त संचरण क्रिया की वृद्धि में भी इसका प्रयोग करते हैं। अस्थिशोष (हड्डी का गलना) तथा जङ्घास्थि-वेदना एवं पुरातन फिरंगजन्य अण्डमांस की वृद्धि, चित्त का सदा खिन्न रहना, भ्रम, ग्लानि इन सब रोगों में यह बहुत लाभ करता है। इसके प्रयोग से पुराना कास—श्वास रोग शान्त हो जाता है।

तीव्र पाण्डु रोग में जब रक्ताणुओं की कमी हो श्वेताणुओं की वृद्धि होकर शरीर में पाण्डु रोग के लक्षण प्रकट हो जाते हैं, तब इसके प्रयोग से रक्ताणुओं की वृद्धि होने लगती है, इसी तरह यह हृदय की निर्बलता दूरकर हृदय में ताकत पहुँचाता है। कारण, इसमें स्वर्ण का संयोग रहता है अतएव हृदय को उत्तेजित कर हृदय की दुर्बल गति को सबल बना देता है। हरताल और संखिया-भस्म

का प्रभाव श्वसन संस्थान पर बल्य रूप में होता है। अतएव इसके सेवन से श्वासकाठिन्य दूर हो जाता है। लसीकार्बुद तथा लसीका ग्रन्थियों को नष्ट करने में यह अच्छा लाभ करता है।

नोट—शेष इसके गुणधर्म साधारण समीरपन्नग रस के समान समझें।

स्वर्णवंग

शुद्ध वंग ४ तोला, शुद्ध पारद ४ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला, नौसादर ४ तोला और कल्मी शोरा १ तोला लें। पहले लोहे की कड़ाही में वंग को पिघलाकर खरल में डाल दें, फिर उसमें पारा मिला मूसली से खूब घोटें। घोटने से इसकी पिट्ठी बन जायगी। इस पिट्ठी को नमक मिले हुए जल से दो दिन खरल करने के बाद ५-७ बार स्वच्छ जल से धो दें। ताकि क्षार का अंश निकल जाय। जब तक काला पानी निकलता रहे, तब तक इसी तरह जल से धोते रहें। फिर इस पिट्ठी को धूप में सुखा, गन्धक मिला कर कज्जली बना लें। बाद में नौसादर और शोरा मिलाकर खूब महीन कज्जली बना आतसी शीशी में रख वालुका यन्त्र द्वारा ४ पहर (२४ घण्टे) तक आँच दें। आँच देते समय नौसादर उड़ कर उसका क्षार शीशी के गले में आकर लगेगा। इसको लोहे की गरम सलाई से साफ करते हैं। इस तरह ८-१० घण्टे में गन्धक का जारण हो जाता है, फिर डाट लगाकर आँच देते रहें। डाट लगाने के बाद १५-१६ घण्टे तक आँच देकर, बन्द कर दें। स्वाँग शीतल होने पर शीशी के तल भाग में लगे हुए स्वर्ण के समान वर्णवाले स्वर्णवंग को शीशी तोड़कर निकाल लें।

भारत भैषज्यरत्नाकर में "मस्कमृगांक रस" के नाम से इसका उल्लेख है। मूल पाठ रसराज सुन्दर का है।

नोट—स्वर्ण वंग बनाते समय वंग को खूब पिघलाकर पत्थर के खरल में डालकर पारा मिलाकर घोंटने में सुविधा रहती है, अन्यथा पारा मिलाने में कठिनाई होती है। आंच इसमें मध्यम श्रेणी की ही देनी चाहिये। तेज आंच देने से वंग जलकर काली या बदसूरत हो जाती है। सोरा सिर्फ रंग लाने के लिये ही दिया जाता है। इस रसायन का रंग गिनीगोल्ड जैसा कुछ लालिमा लिये पीला होना चाहिये। यदि इसे सुवर्ण के समान पीला रंग

बनाना हो तो सुवर्ण वंग को कपड़े में रखकर गर्म पानी में डुबोकर तुरन्त निकाल कर सुखा लेना चाहिये।

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती मधु, मक्खन, मलाई आदि के साथ दें।

रोगानुसार अनुपान

श्वेत प्रदर में—सुवर्णवंग १ रत्ती, यशद भस्म १ रत्ती, जटामाँशी चूर्ण १ माशा, मधु मिलाकर सेवन करें। ऊपर से अशोकारिष्ट १ तोला बराबर जल मिलाकर पियें।

शुक्रमेह में—स्वर्ण वंग १ रत्ती, यशद भस्म आधी रत्ती, ४ रत्ती छोटी इलायची चूर्ण में मिला कर मक्खन या मलाई के साथ सेवन करने से कैसा भी पुराना शुक्रमेह क्यों न हो बहुत शीघ्र दूर हो जाता है।

सूजाक में—स्वर्ण वंग २ रत्ती, १ माशा शीतलचीनी-चूर्ण में मिला कर ठंढे जल के साथ देने से बहुत फायदा करता है।

अथवा—स्वर्ण वंग १ रत्ती, कच्ची हल्दी का रस १ तोला, मधु ६ माशे में मिला कर सेवन करने से भी लाभ होता है।

प्रारम्भिक सूजाक में—स्वर्ण वंग १ रत्ती मधु में मिलाकर दें, ऊपर से अनन्तमूल का क्वाथ बनाकर अथवा सारिवाद्यासव १ तोला बराबर जल में मिला कर देने से अच्छा फायदा होता है।

स्वप्नदोष दूर करने के लिये—स्वर्ण वंग १ रत्ती, प्रवालचन्द्रपुटी १ रत्ती दोनों को एकत्र मिला शीतलचीनी चूर्ण १ माशा में मिलाकर मधु के साथ दें।

वीर्य वृद्धि के लिये—स्वर्ण वंग १ रत्ती, सिमरकन्द चूर्ण ३ माशे में मिला दूध के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है।

बल वृद्धि के लिये—स्वर्ण वंग १ रत्ती, यशद भस्म आधी रत्ती, शतावरी चूर्ण ३ माशे में मिलाकर सुबह-शाम दूध के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—स्वर्ण वंग शीत वीर्य, शीत गुण, रूक्ष, सर, तिक्त, लवण और अम्लरसयुक्त होता है। यह सर्व शरीर को बल देनेवाला है। अतः रसायन है। यह प्रमेह नाशक, बुद्धिवर्द्धक,

बल्य और नेत्रों के लिये परम लाभदायक है। इसको लगातार कुछ दिनों तक सेवन करने से शारीरिक कान्ति बढ़ जाती है और भूख लगने लगती है। ऊर्ध्वजत्रु तथा श्वासनली आदि स्थानों में होनेवाले कफ प्रकोपजन्य रोग दूर होते हैं। यह उत्पादक अंगों के लिये उत्तम बल्य (वृष्य) है। इसके सेवन से मेदो-विकार नष्ट हो जाते हैं तथा शरीर में शुक्रधातु की उत्पत्ति होती है।

स्वर्ण वंग का विशेष प्रभाव शुक्रस्थान, मूत्रपिण्ड और वीर्यवाहिनियों पर होता है। अतः यह प्रमेह, नामर्दी, शीघ्रपतन, शुक्रस्राव आदि मूत्र और वीर्य विकारों को जल्दी ठीक करता है। जीर्ण सूजाक और श्वेत प्रदर में इससे अच्छा लाभ होता है। सूजाक से उत्पन्न हुई नपुंसकता तथा स्त्री-पुरुषों की जननेन्द्रियों के सभी विकार इस रसायन से दूर हो जाते हैं। स्त्रियों के सोम रोग और अस्थिस्राव तथा श्वेतप्रदरजन्य क्षय में इसका लाभजनक प्रभाव होता है। वीर्य को पुष्ट कर शरीर को बलवान तथा फुर्तीला बना देता है।

निरन्तर कुछ दिनों तक इसका सेवन करने से शुक्र की कमी दूर हो कामवासना जागृत होती है। इसके सेवन से स्वप्नदोष बहुत शीघ्र नष्ट हो जाता है। शरीर का रंग निखर आता तथा त्वचा भी सुन्दर हो जाती है। पुराना कास तथा श्वास भी इससे नष्ट हो जाता और जो मनुष्य रस रक्तादि की कमी के कारण सूखता जाय वह इसके सेवन से मोटा हो जाता है। इसके गुणों के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। यह मनुष्यों के लिये बहुत लाभदायक दवा है। इसके सेवन से अपने स्थान से हटा हुआ गर्भाशय पुनः यथा स्थान पर आ जाते हैं। श्वास लेने में होने वाला कष्ट दूर हो जाता है। राजयक्ष्मा रोग में रात्रि को आनेवाला स्वेद तथा बढ़ा हुआ कफ-प्रकोप शान्त हो जाता है।

शुक्र की दुर्बलता (अल्प परिमाण में होना), गठीला, दुर्गन्धित आदि दोष युक्त होने से सन्तानोत्पादन में असमर्थता को दूर करने के लिये—स्वर्ण वंग १ रत्ती, रस सिन्दूर १ रत्ती, दोनों को एकत्र पीस कर शहद के साथ सुबह-शाम चाटें। नियम पूर्वक एक मास

तक इसका सेवन करने तथा पथ्यपूर्वक रहने से शुक्र की दुर्बलता दूर हो जाती है।

जठराग्नि मन्द हो जाने पर—आमाशय में कच्चे अन्न अधिक पड़े रहते हैं। इनमें सड़ाँद पैदा हो विषाक्त कीटाणुओं की उत्पत्ति होती है। मन्दाग्नि की वजह से वृक्क भी निर्बल हो अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। अतः इन कीटाणुओं के विष बाहर न निकल कर संचित होते रहते हैं और वृक्क की निर्बलता के कारण बहुमूत्र या प्रमेह रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जिससे रोगी क्रमशः क्षीण होने लगता है। ऐसी अवस्था में इस तरह की दवा का उपयोग करना चाहिये जो संचित विष को बाहर निकाल दे, और विषाक्त कीटाणुओं से विष की उत्पत्ति न होने दे। इस कार्य के लिये स्वर्ण-वंग का प्रयोग करना अच्छा है। क्योंकि यह कीटाणुनाशक, प्रमेह और बहुमूत्रनाशक है। इसके सेवन से मन्दाग्नि दूर हो भूख खूब लगती और वृक्क भी अपने कार्य करने में समर्थ हो जाता है।

गनोरिया (सूजाक) की उत्पत्ति अण्डाकृति कीटाणु गोनोकोकस द्वारा होती है। यह किसी स्त्री या पुरुष को होने पर उसके साथ संसर्ग करनेवाले दूसरे स्त्री-पुरुषों को भी हो जाता है। इस रोग में मूत्र नली के अन्दर जलन, शोथ, व्रण और मवाद की उत्पत्ति हो जाती है। इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में स्वर्ण वंग के सेवन से व्रण रोपण हो मवाद कम हो जाता है; साथ ही जलन वगैरह भी कम हो जाती है।

पुराना सूजाक—जब सूजाक पुराना हो गया हो, मवाद आना कम हो गया हो, साथ ही जलन में भी कुछ अन्तर पड़ गया हो, तब स्वर्ण वंग १ रत्ती, प्रवाल चन्द्रपुटी आधी रत्ती, शिलाजीत चौथाई रत्ती, गुर्च सत्व १ रत्ती में मिला दूध अथवा मलाई के साथ देने से सूजाक का विष नष्ट हो जाता है। यदि मवाद आना बिल्कुल बन्द हो गया हो तो स्वर्ण वंग १ रत्ती, गिलोय सत्व २ रत्ती, छोटी इलायची चूर्ण ४ रत्ती मक्खन और मिश्री के साथ देना चाहिये।

चर्म रोगों में—जैसे शरीर में छोटी-छोटी फुन्सियाँ उत्पन्न हो जाना, अधिक पसीना चलने से घमौरी (अम्हौरी-व्यूची) हो जाना आदि में भी स्वर्ण वंग का उपयोग किया जाता है, परन्तु इस रोग में प्रयोग करने के पूर्व कैस्टर आयल या और किसी मृदु विरेचक द्वारा कोष्ठ शुद्ध कर लेना चाहिये।

सुवर्ण वंग का उपयोग सूजाक जन्य सन्धिवात में भी किया जाता है। सन्धि वात और आम वात में इतना ही अन्तर है कि सूजाक-जन्य सन्धिवात में जो दर्द आदि होता है, वह मवाद के कारण से और आमवात में दूषित वातजन्य के कारण दर्द होता है। अतएव आमवात में योगराज गुग्गुल आदि वायुनाशक प्रयोग उपयोगी है और सूजाक जन्य सन्धिवात में स्वर्ण वंग आदि मवाद नाशक औषधों का प्रयोग लाभदायक होता है। यदि गाँठों पर सूजन आ गई हो तथा दर्द बहुत पुराना हो गया हो, तो स्वर्ण वंग के सेवन के साथ-साथ गुग्गुल आदि औषधियों का भी सेवन करना अच्छा है।

पित्तजन्य कास—अर्थात् सूखी खाँसी हो, खाँसते-खाँसते वमन हो जाय, आँख और नाक से पानी बहता रहे, तथा इन में जलन भी हो, चक्कर आने लगे, खाँसते समय मुँह की नसें फूल जाएँ, मुँह का रंग लाल हो जाय, आँखें भी लाल हो जाएँ, ऐसी हालत में स्वर्णवंग १ रत्ती, प्रवाल भस्म १ रत्ती और अमृतासत्व २ रत्ती में सितोपलादि चूर्ण के साथ घृत मिलाकर दें। इससे बढ़ा हुआ पित्त शांत हो जाता है और दूषित संचित कफ का स्राव होने लगता तथा नवीन कफ बनना बन्द हो जाता है। जिससे खाँसी भी बन्द हो जाती है। फिर धीरे-धीरे रोगी स्वस्थ हो जाता है।

रस-रक्तादि धातुओं के क्षीण हो जाने से शरीर दुर्बल होने लगता है। वास्तव में शरीर पोषण के लिये यह एक प्रधान वस्तु है। इसलिये शास्त्र में "रक्तंजीव इतिस्थितिः" अर्थात् रक्त ही जीव है, ऐसा कहा है। इस रक्त की पुष्टि स्वर्ण वंग द्वारा अच्छी तरह से होती है। स्वर्ण वंग १ रत्ती, शुद्ध शिलाजीत चौथाई रत्ती, लौहभस्म आधी रत्ती, प्रवाल चन्द्रपुटी आधी रत्ती सबको एकत्र मिलाकर

मक्खन-मिश्री के साथ दें, अथवा नियमित रूप से केवल स्वर्ण वंग का ही सेवन कराने से भी अच्छा लाभ होता है।

स्वर्ण वंग द्वारा धातुओं की विषमता दूर हो समता उत्पन्न हो जाती है। अतः यह जीवनीय और रसायन भी कहलाती है।

—औ० गु० ध० शा०

माणिक्य रस (राजयक्ष्माधिकारोक्त)

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध नाग (शीशा) प्रत्येक ३२-३२ तोला लें। प्रथम शीशा को पिघला कर पारे में डाल कर घोटें। जब पारे में शीशा मिल जाय तब अन्य औषधें मिला कज्जली बना कपरौटी की हुई आतसी शीशी में भर कर बालुका यन्त्र में रख १६ पहर तक लगातार आँच दें। स्वांग शीतल होने पर उसमें से रस को निकाल सुरक्षित रखें। यह माणिक्य के समान चमकदार होगा। —र० रा० सु०

नोट—इसमें नीचे शीशा भस्म रह जाती है, इसे निकाल कर अच्छी तरह पुट देकर काम में लावें।

मात्रा और अनुपान—आधी रत्ती मक्खन मिश्री या मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह राजयक्ष्मा को दूर करता है और शरीर में बल वृद्धि कर शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाता है। श्वास, कास तथा शुक्र विकारादि रोगों को भी दूर करता है। नियमित रूप से पथ्यपूर्वक सेवन करने से यह वीर्यस्तम्भन करता और शरीर की निर्बलता को नष्ट करता है। राजयक्ष्मा के लिये यह बहुत उपयोगी औषध है।

प्रकुपित पित्त के कारण कफ सूख कर छाती में बैठ जाने पर सूखी खाँसी (ठसी) उत्पन्न होती है। यह खाँसी बीच-बीच में कुछ देर के लिये शान्त हो कर फिर उठती है और लगातार १-२ मिनट तक खाँसने के बाद थोड़ा-सा पीला कफ निकल जाने पर ही खाँसी का वेग रुकता है। ऐसी दशा में माणिक्य रस आधी रत्ती, प्रवाल चन्द्रपुटी १ रत्ती, लौह भस्म आधी रत्ती, तालिशादि चूर्ण में

मिला मधु के साथ अथवा शर्बत वनप्सा के साथ देने से तत्काल लाभ होता है। इससे बढ़ा हुआ पित्तदोष कम हो जाता है और कफ सरलता से बाहर निकलने लगता है।

क्षय रोग में—जब ज्वर के वेग के साथ-साथ कास (खाँसी) की वृद्धि हो, शरीर दिनानुदिन कमजोर होता जाय, कफ भी बढ़ रहा हो, पसीना रात में अधिक आवे इत्यादि लक्षण उपस्थित होने पर माणिक्य रस आधी रत्ती, वसन्तमालती १ रत्ती में मिला कर अष्टांगावलेह के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है। इससे बढ़ा हुआ कफ कम हो जाता और ज्वर की गर्मी भी कम होने लगती है और शरीर में कुछ-कुछ बल का संचार भी होने लगता है।

यकृत् विकार—यकृत में पित्त दूषित हो उस (यकृत) में पीड़ा उत्पन्न करता है। यकृत में से पित्त का स्राव विशेषतया होने लगना, पतले दस्त होना, पेशाब कम मात्रा में होना, पित्त दूषित हो जाने के कारण मुँह में छाले हो जाना, बुखार भी रहना आदि लक्षण उपस्थित होने पर इसका प्रयोग करना चाहिये।

रसमाणिक्य

वंशपत्री (तबकी) हरताल को तीन-तीन या सात-सात बार पेठे के रस और खट्टे दही में पृथक्-पृथक् दोलायन्त्र विधि से ४ घण्टे तक स्वेदन कर लें। इसके छोटे-छोटे टुकड़े कर एक मिट्टी के सराव में (नीचे अभ्रक पत्र विछा कर उस पर) यह हरताल फैला कर (उसके ऊपर दूसरा अभ्रक पत्र रख) सराब को दूसरे सराब से ढक दें तथा उसकी सन्धि बेर के पत्तों के कल्क से बन्द कर दें और जब तक पात्र (सराब) नीचे से लाल वर्ण का न हो जाय, तबतक बेर के कोयलों की आँच दें। पश्चात् नीचे उतार कर मन्द आँच से ३ घंटें तक पकावें। स्वांग शीतल होने पर उसमें से रस को निकाल सुरक्षित रखें। —भै० र०

मात्रा और अनपान—२ रत्ती, शहद और घृत के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से स्फुटित तथा गलित कुष्ठ,

वात, वातरक्त, विसर्प, विपादिका (विमाय), विर्चचिका तथा अनेक प्रकार के कुष्ठ रोग, भगन्दर, नाड़ीव्रण (नासूर), नासा रोग, मुखरोग, विस्फोटक आदि रोग नष्ट होते हैं।

स्वर्णभूपति रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक १-१ भाग, ताम्र भस्म २ भाग, अभ्रक भस्म, लौह भस्म, कान्त लौह भस्म, स्वर्ण भस्म या वर्क, चाँदी भस्म या वर्क, शुद्ध वच्छनाग १-१ भाग लें। प्रथम पारा और गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य औषधें मिला सबको हंसराज के रस में एक दिन खरल कर, सुखा, इस कज्जली को आतसी शीशी में भर एक दिन बालुका यन्त्र में मन्दाग्नि द्वारा पकावें। स्वांगशीतल होने पर निकाल कर पीस लें। —र० रा० सु०

मात्रा और अनुपान—आधी रत्ती से १ रत्ती। मधु, अदरक रस, पीपल-चूर्ण के साथ या रोगानुसार देना चाहिये।

गुण और उपयोग—यह सन्निपात और क्षयरोग में विशेष लाभ करता है। आमवात, धनुर्वात, शृंखलावात, आढ्यवात, पंगुता, कफवात, अग्निमान्द्य, कटिशूल, शूल, गुल्म, उदावर्त्त, दुस्तर ग्रहणी, प्रमेह, उदर रोग, अश्मरी, मूत्राघात, भगन्दर, कुष्ठ, विद्रधि, श्वास, कास, अजीर्ण, ज्वर, कामला, पाण्डु, शिरोरोग और अनुपान विशेष के साथ इसका प्रयोग करने से अनेक प्रकार के रोग नष्ट होते हैं।

क्षय की द्वितीयावस्था में इसका प्रयोग किया जाता है। परन्तु ज्वर की गर्मी विशेष हो तो इसकी मात्रा बहुत थोड़ी देनी चाहिये। अन्यथा गर्मी और बढ़ जायगी। इसके प्रयोग से क्षय के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं तथा कास और ज्वर की शान्ति हो क्रमशः रोग घटने लग जाता है। इसमें सोना, चाँदी, ताम्र, अभ्रक आदि भस्मों का संमिश्रण है अतः यह त्रिदोषनाशक है। सन्निपात में जब वात और पित्त का विशेष कोप हो, कफ का प्रकोप कुछ कम हो, श्वासोच्छ्वास में कष्ट न होता हो, तब इस रसायन के सेवन से प्रकुपित वात तथा पित्त शान्त हो जाते तथा इसके उपद्रव भी नहीं बढ़ते हैं।

इसमें ताम्र भस्म की मात्रा विशेष होने से—यह यकृत् प्लीहा रोग और मूत्राशय को शुद्ध करता तथा विषाक्त कीटाणुओं के विष को बाहर निकालता और मन्दाग्नि को दूर कर आमाशय स्थित आमान्न (कच्चा अन्न) को पचाता है। परिणाम शूल को नष्ट करने के लिये यह उत्तम दवा है। इसके अतिरिक्त जीर्णज्वर और सम्पूर्ण शरीर में होने वाले दर्द को भी शमन करता है।

इसमें चाँदी भस्म का भी मिश्रण है। अतएव यह कषाय रस, स्निग्ध, रुचिकारक और उत्तम मेधावर्धक है। इसके सेवन से त्वचा मुलायम हो जाती और उसे बल मिलता है। यह उत्तम वयःस्थापक तथा शरीर में बल प्रदान करता है। ओजःशक्ति को बढ़ाता है। मस्तिष्क के पोषक होने से स्मृति (स्मरण) शक्ति को भी बढ़ाता है। शिरो विकार से होने वाले चक्कर में यह विशेष लाभदायक है। गर्भाशय शोधन के लिये भी यह उत्तम है। इसके प्रयोग से पित्तप्रकोपजन्य रोग तथा प्रमेह आदि रोग दूर हो जाते हैं। शरीर में से वात प्रकोप को दूर करने के कारण वातिक संस्थान को स्वस्थ-सबल और क्षोभरहित रखने के कारण यह आयुवर्द्धक भी है।

जब किसी रोग के उपद्रव स्वरूप अथवा मधुमेह, प्रमेह या सूजाक में उपद्रव स्वरूप शरीर के अवयवों में विकार उत्पन्न हो गये हों, और उन दूषित अवयवों में दाह और शूल के साथ-साथ त्वचा काली पड़ गयी हो, कभी-कभी ज्वर भी हो जाता हो, तो इस प्रकार के वातिक तथा पैत्तिक दुष्टिजन्य कोथ रोग में इसका प्रयोग करना बहुत श्रेष्ठ है। सूजाक के पश्चात् वातवाहिनियों के संकोच से होनेवाली नपुंसकता में भी इसका प्रभाव अच्छा होता है। अम्लपित्त में भी इसका प्रयोग लाभदायक है।

यह कोष्ठगत वायु की वृद्धि को शान्त करता और रस-रक्तादि धातुओं में संचित पित्त तथा जत्रु (गले) से ऊपर के भाग गला, कण्ठ, नासिका, मुख आदि भाग में प्रकुपित कफ को शान्त करता है। बुद्धि-स्मृतिहीन तथा डरपोक मनुष्यों के लिये यह बहुत अच्छी

दवा है। निरन्तर मस्तिष्क से काम लेनेवालों के लिये तो यह परमोत्तम औषध है।

इसका असर विशेष कर वातवाहिनी नाड़ियों पर होता है। अतएव वातजन्य विकार के अनेक रोगों में– जैसे आक्षेपक वात, लंगड़ापन, वात प्रधानजन्य शुष्क कास और सर्वाङ्ग में दर्द आदि रोगों में यह अच्छा काम करता है। वात रोग में—स्वर्णभूपति रस आधी रत्ती, शुद्ध कुचला आधी रत्ती, मधु के साथ दें। ऊपर से दशमूलार्क या दशमूल क्वाथ पिला दें।

आमाशय में विकार उत्पन्न होने से फुफ्फुस, हृदय और शुक्राशय तथा यकृत् निर्बल हो जाते हैं। तब वातवाहिनी नाड़ियों द्वारा इन अंगों की पूर्ति होती रहती है। किन्तु जब वातवाहिनी नाड़ी में ही दुर्बलता आ जाती है, तो अनेक प्रकार के वातजन्य रोगों का आक्रमण हो जाता है। ऐसी अवस्था में आमाशय के विकारों को दूर करने तथा वातवाहिनी नाड़ी को सबल करने के लिये स्वर्णभूपति रस का उपयोग किया जाता है। —औ० गु० ध० शा०

स्वर्ण सिन्दूर

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक ४-४ तोला और सोने का वर्क १ तोला लें। प्रथम पारे और वर्क को मिलाकर खरल कर लें। जब दोनों (पारा और सोना) अच्छी तरह मिल जायं तो गन्धक मिलाकर खरल कर उत्तम कज्जली बन जाने पर १ दिन घीकुमारी के रस और १ दिन वटजटा के स्वरस में खरल करें। फिर कज्जली को सुखा कर आतसी शीशी में डाल कर बालुका यन्त्र में १२ पहर तक पकावें। स्वांग शीतल होने के बाद शीशी को निकाल शीशी के गले में लगी हुई सिन्दूर समान लाल रंग की औषध निकाल लें, शीशी के तल भाग में सोने की भस्म मिलेगी। इसे सुरक्षित रखकर विधिवत् पुट दे कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—आधी रत्ती से १ रत्ती, मधु; मक्खन; मिश्री; मलाई आदि के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से अनेक रोगों का नाश होता है तथा धातु-अग्नि, बल, आयु, मेधा, कान्ति और काम शक्ति की वृद्धि होती है। यह अत्यन्त रसायन और बाजीकरण है।

स्नायुविकार (मस्तिष्क-सम्बन्धी) दुर्बलता के लिये यह बड़ा उत्तम रसायन है। अनुपान भेद से मकरध्वज की तरह यह अनेक रोगों में फायदा पहुंचाता है। इसके सेवन से बल-वीर्य, स्मरण शक्ति और कान्ति बढ़ती है। साधारण ज्वर, सन्निपात ज्वर, सर्दी, जुकाम खाँसी, मन्दाग्नि, संग्रहणी, अम्लपित्त, प्रमेह, सूतिका रोग आदि में यह बहुत अच्छा लाभ करता है। इसके नियमित सेवन करने से धातु सम्बन्धी रोग अच्छे होते हैं। किसी रोग के बाद की कमजोरी और बुढ़ापे की दुर्बलता को दूर करने के लिये यह बहुत फायदेमन्द है। साधारण कमजोरी को मिटाने के लिये भी यह बहुत अच्छा है।

ज्वर में—स्वर्ण सिन्दूर १ रत्ती, पीपल चूर्ण ४ रत्ती, मधु के साथ दें। प्रतिश्याय (सर्दी-जुकाम) में—स्वर्ण सिन्दूर १ रत्ती, अदरक रस ६ माशे में मधु ६ माशे मिलाकर दें। खाँसी में—स्वर्ण सिन्दूर आधी रत्ती, अभ्रक भस्म आधी रत्ती, लौह भस्म आधी रत्ती में मिला मधु के साथ दें। ऊपर से वासारिष्ट १ तोला में बराबर जल मिलाकर दें। संग्रहणी में—स्वर्ण सिन्दूर १ रत्ती, भुने हुए जीरे का चूर्ण २ रत्ती में मिला शहद के साथ दें। प्रमेह में—स्वर्ण सिन्दूर १ रत्ती, वंगभस्म आधी रत्ती दोनों को एकत्र मिला मधु के साथ चटाने से अच्छा लाभ होता है।

व्याधिहरण रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध संखिया, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल और रसकपूर प्रत्येक ५-५ तोला लेकर पहले पारद-गंधक की कज्जली बनावें, फिर संखिया, मैनसिल आदि दवा डाल कर घोटने के बाद ग्वारपाठे के रस से ३ दिन तक खरल कर कज्जली को धूप में सुखा आतसी शीशी में डाल बालुका यन्त्र में रख क्रम से मृदु, मध्य और

तीक्ष्ण आँच लगातार ३ दिन तक दें। बाद में आँच बन्द कर दें. स्वांग शीतल होने पर शीशी को निकाल औषध निकाल लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती, घी, मधु अथवा अदरक या पान के रस के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह नये पुराने उपदंश, आतशक और उससे पैदा होनेवाले रक्त विकार, सन्धि वात, गठिया, कुष्ठ, नासा एवं मुख व्रण, नाड़ीव्रण, अस्थिगतव्रण, बालों का अकाल में गिरना, निद्रानाश, नाखून सड़ना, पाण्डु, नेत्र विकार, वृक्क शोथ, अण्डवृद्धि, शोथ, चकत्ते पड़ना, गुद शूक (गुदा में अंकुर निकलना) आदि उपद्रवों के लिये सर्वोत्कृष्ट औषध है।

उपदंश का विष हड्डी तक पहुंच गया हो, तो भी अल्प काल (थोड़े ही दिनों) में ही इस रसायन के सेवन से व्याधि नष्ट हो शरीर निरोग और स्वस्थ बन जाता है। उपदंश का प्रभाव गर्भ, गर्भाशय एवं सन्तानों पर भी पड़ता है। इसलिये अनेक प्रकार के चर्म, अस्थि और मज्जागत रोग हो जाते हैं। इनकी उत्पत्ति रोकने के लिये इस रसायन का सेवन करना चाहिये। यह उपदंशजन्य विष को नाश करने की अच्छी दवा है।

—०—

रस-रसायन प्रकरण

इस प्रकरण में पारा, गन्धक और सिंगरफ आदि के योग से बनी हुई दवाओं की निर्माण विधि तथा उनके गुण-धर्मों का वर्णन किया जायगा। परन्तु वर्णन करने से पूर्व कुछ बातें ऐसी हैं, जिनके विषय में जानकारी प्राप्त कर लेना अच्छा है।

रस नाम है पारा का, अतः पारद और पारद के खनिज सिंगरफ तथा गन्धक के संयोग से जितनी दवाइयाँ बनती हैं, वे चाहे चूर्ण रूप में हों या गोली रूप में, सब रस संज्ञक हैं। अर्थात् उनकी गणना रसायन के अन्दर होती है।

जिन दवाओं में पारा-गन्धक के साथ अन्य भी धातुएँ (भस्में) या काष्ठादि औषधियों का सम्मिश्रण करना हो, उनमें सर्वप्रथम पारा और गंधक डालकर कम से कम ३ दिन तक खूब घोट कर कज्जली बनावें। कज्जली की घोटाई जितनी अधिक होगी, दवा उतनी ही गुणकारी होगी। कज्जली जब सुर्मावत् महीन तथा चिकनी हो जाय तब उसमें दूसरी दवा मिलाकर पुनः घोटें।

पारा, गन्धक, विष (बच्छनाग), हिंगुल (सिंगरफ), टंकण (सुहागा), फिटकरी, कुचला, अफीम, भाँग, जायफल आदि दवाइयाँ शुद्ध करके ही दवा में डालनी चाहिये। ये अशद्ध डालने से लाभ की जगह नुकसान करती हैं।

जहाँ अन्य समस्त औषधियाँ निष्प्रयोजन सिद्ध होती हैं, वहाँ रस-रसायन अपने अनन्य प्रभाव से सबको आश्चर्य में डाल देते हैं। इनके सेवन से वृद्धावस्था का निरोध होता है। रोगों का नाश हो, शरीर में परिशुद्ध रस रक्तादि का संचार होता है तथा शरीर स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट हो जाता है।

रसों के समान गुणकारी, हानि रहित अन्य दवा मिलना कठिन है। परन्तु वे सब गुण तभी प्राप्त हो सकते हैं, जब औषधें शास्त्रोक्त रीति से तैयार की गयी हों, अन्यथा लाभ के स्थान में हानि हो सकती

है। इसके अतिरिक्त रसों में जो धातु, उपधातु, रत्न, उपरत्न, रस, उपरस, विष, उपविष आदि व्यवहृत होते हैं उन्हें भी विधिवत् शोधन-मारण करके ही लेना चाहिये। यदि कहीं किसी औषध विधान में शोधन करने की स्पष्ट आज्ञा नहीं दी गयी हो, और वैद्यों के विचार में उसमें शोधन करने के बाद उसे दवा में डालना अच्छा हो, तो वहाँ वैद्य अपनी रुचि के अनुसार शोधन करके दवा में उपयोग करें।

अगस्ति सूतराज रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल १-१ तोला, शुद्ध धतूरे के बीज २ तोला तथा शुद्ध अफीम २ तोला। प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बना फिर अन्य दवाओं का महीन चूर्ण कर सबको मिलाकर भाँगरे के रस में घोटें। लगातार तीन रोज तक घोटने के बाद आधी-आधी रत्ती की गोली बनाकर रख लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली प्रातः, दोपहर और सायंकाल। घृत और कालीमिर्च के चूर्ण के साथ सेवन करने से प्रवाहिका रोग नष्ट होता है तथा जीरे और जायफल के चूर्ण के साथ देने से सभी प्रकार के अतिसार और त्रिकुट चूर्ण तथा मधु के साथ देने से हर प्रकार के वमन, शूल, कफ और वात के विकार, अग्निमान्द्य तथा निद्रानाश दूर होता है।

गुण और उपयोग—संग्रहणी, अतिसार, वमन, पेट का दर्द, आमांश, कफ-वात विकार, अग्निमांद्य, अनिद्रा, आमाशय व पक्वाशय की विकृति से उत्पन्न होनेवाले जलस्राव को कम करता तथा सूजन, दाह आदि रोगों को नष्ट करता है।

आमातिसार में इसका प्रयोग करने से उतना लाभ नहीं करता जितना कफ-वात प्रधान पक्वातिसार में करता है। विशेष कर जब कि बार-बार दस्त लगते हों, फेनयुक्त दस्त होते हों, पेट में दर्द होता हो, यह दर्द बीच-बीच में बन्द होकर पुनः उठता हो, जिससे रोगी को अधिक कष्ट होता हो। ऐसी हालत में अगस्ति-सूतराज

रस त्रिकटु चूर्ण और मधु के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। क्योंकि इसमें अफीम पड़ी हुई है, अतः यह पीड़ा शामक होने की वजह से पेट के दर्द को शान्त कर देती है और ग्राही होने से दस्त को भी बन्द (कम) कर देती है।

वातप्रधान ग्रहणी में और लक्षणों के साथ पेट में आक्षेप (खिंचाव) शूल होता है। यह शूल अक्सर आँतों में उत्पन्न होता है। अन्न ठीक से नहीं पचना, खट्टी डकार आना, गुदा में कैंची काटने जैसी पीड़ा होना, अन्न पचने के बाद पेट फूल जाना, दस्त पतला, कभी गाढ़ा भी होना इत्यादि लक्षण उपस्थित होने पर इस रसायन के सेवन से लाभ होता है।

कोई-कोई वैद्य इस रोग में औषध प्रयोग करने से पूर्व बस्ति (अनुवासनबस्ति) देने के लिये कहते हैं, परन्तु वैद्य को अपनी सुविधानुसार कार्य करना चाहिये। ग्रहणी, अतिसार या संग्रहणी जब पुराने हो जाते हैं, तो रोगी की आँत तथा कोष्ठ एवं गुदा की अवलियाँ कमजोर हो जाती हैं, जिससे वे मल को रोक नहीं सकतीं ; ऐसी दशा में कभी-कभी अनजान में ही दस्त हो जाता है या जब दस्त का वेग होता है, तब बहुत तेज वेग मालूम पड़ता है। दस्त पतला और दर्द के साथ होता है। दस्त हो जाने पर भी आँत एवं कोष्ठ में दर्द होता ही रहता है। जिससे रोगी को बार-बार दस्त के लिये जोर लगाना पड़ता है। रोगी कींछने लगता है, काँच बाहर निकल आती है। दर्द का वेग इतना जोर का रहता है कि रोगी यदि विशेष कमजोर हुआ तो वह बेहोश भी हो जाता है। ऐसी हालत में अगस्ति सूतराज रस बहुत अच्छा काम करता है।

मूत्र (पेशाब) के साथ कभी-कभी छोटे-छोटे पत्थर के कण अथवा शर्करा जाने लगती है, मूत्राशय विकृत हो जाता है, फिर वेदना होने लगती है। कभी-कभी यह वेदना इतना उग्ररूप धारण कर लेती है कि रोगी परेशान हो जाता है। पेशाब भी खुलकर (साफ) नहीं आता। अतः बस्ति प्रदेश में भी दर्द होने लगता है। ऐसी हालत में इस तरह की ओषधि योजना करनी चाहिये, जिससे पत्थर

के कण या शर्करा गलकर सुविधानुसार निकल जाये और पेशाब भी खुलकर आने लगे। अतः सर्वप्रथम दर्द कम करने के लिये अगस्ति सूतराज रस का उपयोग करना चाहिये, परन्तु ध्यान रखें कि यह औषध ग्राही है। इसलिये इसका किसी मूत्रल (पेशाब लानेवाली) दवा जैसे यवक्षार या गोक्षुरादि चूर्ण आदि के साथ प्रयोग करें अन्यथा यह पेशाब कम कर देगा।

पित्तस्राव की कमी के कारण यकृत में रहनेवाला पित्त गाढ़ा होकर सूख जाता और छोटे-छोटे कण रूप में हो पथरी का रूप धारण कर लेता है। ये कण देखने में बाजरे के सदृश और अधिक संख्या में होते हैं, इनमें से यदि कोई कण वायु के द्वारा पित्त नलिका में होकर ग्रहणी में जाने लगता है, तब पेट में दर्द उत्पन्न होता है। चूंकि वायु के कारण ही यह उपद्रव होता है, अतः यह दर्द भी वात प्रधान ही होता है। किन्तु चिकित्सा करते समय पित्त बढ़ानेवाली दवा दें जिससे पित्त बढ़कर उस पित्त का स्राव होना शुरू हो जाय। ऐसी हालत में ताम्रभस्म, करेले के पत्ते के रस में मिलाकर दिया जाता है अथवा कुटकी चूर्ण के साथ देते हैं या स्वर्णप्रधान सूतशेखर रस भी देते हैं। परन्तु यदि दर्द ज्यादा हो और उस दर्द के मारे रोगी बहुत परेशान हो, तो सर्वप्रथम इसी उपद्रव को कम करने का प्रयत्न करें। इस दर्द को दूर करने के लिये अगस्ति सूतराज रस बहुत अच्छी दवा है, क्योंकि इसमें अफीम की मात्रा विशेष होने से उसका असर सर्वप्रथम वातवाहिनी नाड़ी पर होता है और इसीलिये यह वेदना शामक भी कहा गया है। अतः इस दवा से दर्द बहुत शीघ्र आराम हो जाता है। —औ० गु० ध० शा०

अग्निकुमार रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अग्नि पर फुलाया हुआ सुहागा १-१ तोला, शुद्ध बच्छनाग ३ तोला, कौड़ी भस्म और शंख भस्म २-२ तोला और काली मिर्च ८ तोला लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना उसमें भस्में और अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण

मिला जम्बीरी नीबू के रस में तीन दिन मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली जल के साथ दें। वर्षा ऋतु में होनेवाले दस्तों में तथा अग्निमांद्य में छाँछ (मट्ठे) के साथ दें। पान का रस या शहद के साथ भी यह अच्छा गुण करता है। पुराने अतिसार में चावल के धोवन के साथ देना चाहिये।

गुण और उपयोग—पाचक अग्नि के मन्द होने से हुये अजीर्ण, मन्दाग्नि, संग्रहणी कब्ज आदि रोगों में अग्निकुमार रस के सेवन से अच्छा लाभ होता है, आँतों में मल इकट्ठा होना, पेट में दर्द तथा पेट भारी रहना, पतली टट्टी होना आदि शिकायतें इसके सेवन से बहुत जल्दी मिट जाती हैं। अग्नि को प्रदीप्त करने के लिये तथा अजीर्ण को मिटाने के लिये यह रस अच्छा काम करता है।

इसका उपयोग कफ प्रधान और वात प्रधान या कफ-वात प्रधान अजीर्ण रोग में किया जाता है, और इसमें यह अच्छा गुण भी करता है। इसमें कालीमिर्च की मात्रा सबसे अधिक होने के कारण यह उष्ण वीर्य है। अतः पित्तजन्य अजीर्ण में इसका प्रयोग जहाँ तक हो नहीं करना चाहिये। पित्तजन्य अजीर्ण में प्रयोग करने से उल्टा ही फल होता है। अर्थात् पित्त की शान्ति न होकर वृद्धि हो जाती है जिससे पेट तथा हाथ-पाँव, आँख आदि में विशेष रूप से जलन होने लगती है, मन बेचैन हो जाना तथा जी मिचलाने लगना आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं।

अजीर्ण में—पेट और देह भारी मालूम पड़े, वमन होने की इच्छा हो, गाल और नेत्र सूज जाएँ, जैसा पदार्थ (खट्टा-मीठा) खाया हो वैसी ही डकारें आवें, तो ऐसी अवस्था में सर्वप्रथम रोगी को उपवास करा आमपाचन कराने के बाद, अग्नि कुमार रस देने से शीघ्र लाभ होता है। जिस अजीर्ण रोग में वायु की प्रधानता रहती है, उसमें बद्ध कोष्ठ होने के कारण दस्त कब्ज हो जाता है। ऐसी हालत में अग्नि कुमार रस छाछ (मट्ठा) या दही के पानी के साथ देने से विशेष लाभ करता है।

कफ प्रधान हैजा में बार-बार वमन होना, जी मिचलाना, पेट में दर्द होना, पेट भारी मालूम पड़ना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं, और अजीर्ण से उत्पन्न हैजा में कफ या पित्त के प्रकुपित होने पर वमन होता है। यह वमन पिच्छिल (चिकना) तथा बदबूदार होता है। पित्त से उत्पन्न हैजा में खट्टी और गर्म वमन होती है। कफ प्रधान हैजा में अग्निकुमार रस अर्क सौंफ के साथ देने से लाभ होता है। पित्त प्रधान हैजा में—शंख, कौड़ी या शुक्ति की भस्म अनार के रस के साथ दें और ऊपर से ठंढा पानी में अर्ककपूर ४-५ बूंद डालकर पिला दिया करें।

एक दूसरा कीटाणुजन्य (संक्रामक) हैजा भी होता है। इसमें कीटाणु नाशक ओषधियाँ यथा—संजीवनी वटी, विसूचिका नाशक वटी, लशुनादि वटी आदि का उपयोग करना चाहिये।

किसी-किसी की प्रकृति ऐसी होती है, कि बराबर प्रतिश्याय (जुकाम) बना ही रहता है जिससे मन्दाग्नि भी बनी रहती है। मन्दाग्नि होने के कारण अन्नादि का पचन ठीक से नहीं हो पाता। फिर पेट फूल जाना, खट्टी डकारें आना, बदन भारी मालम पड़ना, थोड़ा-थोड़ा शिर में दर्द भी होना, ये उपद्रव होते हैं। ऐसी अवस्था में अग्नि कुमार रस के उपयोग से मन्दाग्नि दूर हो जाती और प्रतिश्याय भी नष्ट हो जाता है। क्योंकि यह उष्णवीर्य होने के कारण पाचकाग्नि को प्रदीप्त कर पाचन क्रिया को सुधार देता है और इसी गुण के कारण प्रतिश्याय को भी मिटा देता है।

कास रोग में—श्वासवाहिनी नली में कफ के संचय हो जाने से श्वासोच्छ्वास में कठिनाई होती है, फिर खाँसी होने लगती है। इसमें कफाधिक्य के कारण अन्न पर अरुचि, मन्दाग्नि, पेट फूलना, अनपच के कारण जी मिचलाना, खट्टी और चटपटी चीजें खाने की विशेष इच्छा होना, दूध-दही आदि खाने की बिलकुल इच्छा न होना आदि लक्षण उपस्थित होने पर, अग्नि कुमार रस गर्म जल से देना अच्छा है। क्योंकि यह कफघ्न है अतः श्वासवाहिनी नली से कफ को निकाल कर साफ़ कर देता है जिससे श्वास लेने में तकलीफ नहीं होती।

साथ ही कफ वृद्धि के कारण जो आफरा आदि उपद्रव उत्पन्न हुए रहते हैं, उन्हें भी दूर कर रोगी को स्वस्थ कर देता है।

गुल्म रोग—कफजन्य गुल्म या वातजन्य गुल्म रोग में—अधो वायु की प्रवृत्ति नहीं हो; मुख और गला सूखने लगे; हृदय, पसली, कंधा और शिर में दर्द हो; पेट खाली रहने पर पेट में दर्द ज्यादा हो और खा लेने पर शान्ति बनी रहे ऐसे वात प्रधान उपद्रव होने पर तथा कफ प्रधान होने के कारण दिन में निद्रा ज्यादा हो, खाने की इच्छा नहीं हो आदि उपद्रव को शान्त करने के लिये अग्नि कुमार रस का सेवन करना अच्छा है। क्योंकि यह वात कफघ्न है। अतः वात और कफ के विकारों को दूर करता है। किन्तु फिर भी यह गुल्म नहीं पचा सकता है। इसके लिये अन्य दवा करनी चाहिये।

छर्दि (वमन) रोग में—कफ का संचय विशेष होने पर मन्दाग्नि हो जाती है जिससे पाचन क्रिया में गड़बड़ी होने के कारण खाना अच्छी तरह से हजम नहीं हो पाता। आमाशय में आम (कच्चे अन्न) का संचय होने से जी मिचलाने लगता है। वमन भी होने लगता है। वमन में कफ का ही भाग (झाग) विशेष रूप से निकलता है। पेट बराबर भारी बना रहता है, पेट कुछ-कुछ फूला हुआ भी रहता है। ऐसी हालत में अग्नि कुमार रस का प्रयोग अर्क अजवायन के साथ करने से बहुत फायदा करता है। क्योंकि यह पित्त को उत्तेजित कर मन्दाग्नि को दूर करता है और कफ विकार को भी नष्ट करता है। फिर पाचन क्रिया दुरुस्त हो अन्न का परिपाक भी ठीक से होने लगता है तथा वमनादि उपद्रव भी दूर हो जाते हैं। —औ० गु० ध० शा०

अग्नितुण्डी वटी (रस)

शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, शुद्ध विष, अजमोद, त्रिफला, सज्जीखार, यवक्षार, चित्रक-मूल की छाल, सेंधा नमक, जीरा भुना हुआ, काला नमक, समुद्र लवण, वायविडंग, सोंठ, छोटी पीपल, काली मिर्च

प्रत्येक समान भाग और सब दवाओं के समान भाग शुद्ध कुचला लें। प्रथम पारद और गंधक की कज्जली बना पीछे अन्य द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण मिला, जम्बीरी नीबू के रस में ३ दिन तक मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना सुखा कर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह दीपन, पाचन और वातनाशक है। इसमें कुचला का अंश विशेष है। अतः अधिक दिन तक लगातार इसका सेवन नहीं करना चाहिये। स्नायुमण्डल, वातवाहिनी और मूत्र पिण्ड पर इसका खास असर होता है। मन्दाग्नि, आध्मान, अजीर्ण, स्वप्नदोष और शूल पर इसका अच्छा प्रभाव होता है। यह हृदय को बल देती और बल की वृद्धि भी करती है। नवीन वात रोगों में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। इसके सेवन से कृमि रोग नष्ट होता तथा रोग छूटने के बाद में रही हुई कमजोरी को भी यह दूर करती है।

छोटे बच्चों और रक्त का दबाव बढ़े हुए रोगों में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। यह दवा सभी इन्द्रियों को उत्तेजित करती है। अतः किसी भी रोग में उत्तेजनार्थ इसका प्रयोग कर सकते हैं। वृद्धावस्था (बुढ़ापा) आ जाने से मनुष्य के शरीर और इन्द्रियों में शिथिलता आ जाती है; इसी तरह और भी कई तरह की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, ये सब इसके सेवन से नष्ट हो जाते हैं।

रसाजीर्ण में—अन्न खाने की इच्छा नहीं होती। पेट भारी मालूम पड़ता तथा कठोर हो जाता है, शरीर में आलस्य बना रहता है, किसी कार्य में मन नहीं लगता, डकारें बराबर आती रहती हैं, आँखों की ज्योति भी कुछ कम हो जाती है, जीभ का स्वाद नष्ट हो जाता है, खाना खा लेने पर तुरत वमन हो जाता है। वमन में मधुर रसयुक्त पानी तथा तत्काल खायी हुई चीज निकलती है। कफ की ज्यादे वृद्धि हो जाने के कारण आमाशय में पाचक पित्त की उत्पत्ति कम होती है। ऐसी दशा में अग्नितुण्डी बटी देने से बहुत फायदा होता है। क्योंकि यह दीपन-पाचन है। अतः

पाचकाग्नि प्रदीप्त हो अन्नादिक का पाचन ठीक से होने लगता है। और भी शेष कफादिक दोष इसके सेवन से शान्त हो जाते हैं।

मन्दाग्नि में—यकृत में कमजोरी आ जाने के कारण पित्तस्राव में भी कमी आ जाती है। जिससे पाचक पित्त में विकार उत्पन्न हो जाता है, जठराग्नि मन्द पड़ जाती है। फिर अन्न अच्छी तरह नहीं पचने से कोष्ठ में शिथिलता आ जाती है। अन्न अपक्व रह जाने के कारण पेट में दर्द तथा पतले दस्त होने लगते हैं और दस्त में अपचित अन्न गिरते हैं। ऐसी हालत में अग्नितुण्डी बटी—अर्क नीबू के साथ देने से बहुत लाभ करती है।

यकृत् वृद्धि—विशेषतः वात कफ प्रधान या यकृत् विकार में कफ प्रधान होने के कारण आँख, ओष्ठ, मुँह, नाखून आदि सफेद हो जाते हैं। गाल कुछ फूला हुआ-सा दिखाई पड़ने लगता है। यकृत के चारों तरफ का किनारा कठोर हो जाना, पेट भारी होना, आमाशय शिथिल हो जाना, पेट में थोड़ा-थोड़ा दर्द होना, बाजरे के आटे में जल मिले हुए के समान दस्त होना, मन्दाग्नि हो जाना, विचार शक्ति में कमी, और मन में अधिक बेचैनी होना आदि लक्षण उपस्थित होने पर अग्नितुण्डी बटी १ गोली, वज्रक्षार चूर्ण १ माशा में मिलाकर गर्म जल से दें। भोजनोपरान्त कुमार्य्यासव १ तोला बराबर जल के साथ देने से सब विकार नष्ट हो जाते हैं।

वृहदन्त्र (बड़ी आँत) में—वायु का संचार ठीक न होने से तथा पित्त (पाचक पित्त) में गर्मी हो जाने के कारण पाचनक्रिया में विघटन होने से आँतों में शिथिलता आ जाती है, जिससे भक्षित (खाया हुआ अन्न) जहाँ के तहाँ ही रुका हुआ और अपचित अवस्था में पड़ा रहता है, जिससे पेट में भारीपन बना रहना, कोष्ठ में मीठा-मीठा दर्द रहना, मन में अप्रसन्नता, पेट फूल जाना, उर्ध्ववायु (डकार) या अधोवायु की अच्छी तरह प्रवृत्ति न होना, जी मिचलाना, हरदम वमन करने की इच्छा रहना आदि लक्षण उपस्थित होने पर "अग्नि-तुण्डी बटी" अजवायन अर्क के साथ देने से बहुत शीघ्र फायदा करती है। क्योंकि इसमें कुचला का अंश विशेष है। अतः यह प्रधानतया

वायु शामक है। इसका प्रधान कार्य विकृत हुए वायु को शमन कर उसके उपद्रवों को शान्त करना है। इसीलिये यह इस रोग में विशेष फायदा करती है।

अन्त्रपुच्छप्रदाह (अपेण्डिसाइटिस) की प्रारम्भिक अवस्था में—अर्थात् पेट की दाहिनी पसली के आसपास पत्थर के समान कठोरता मालूम पड़ती है और जहाँ यह कठोरता मालूम पड़ती है, वहाँ पर कुछ ऊँचा भी उठा हुआ मालूम होने लगता है। कभी-कभी इसमें इतने जोर के दर्द उठते हैं कि रोगी बेचैन हो जाता है। वमन भी होने लगता है और थोड़ा-थोड़ा ज्वर भी मालूम होने लगता है। ऐसी दशा में अग्नितुण्डी बटी के प्रयोग से वहुत फायदा होता है।

कफ प्रधान उदर रोग में—हाथ-पैर, मुख आदि में सफेदी आ जाती है। पेट कठोर और आगे को कुछ वढ़ा हुआ मालूम पड़ने लगता है। पैर और हाथों में अधिक सूजन हो जाती है, पेट में थोड़ा जल संचय भी होने लगता है, हृदय की शक्ति कमजोर हो जाती तथा शरीर के सब अवयवों में शिथिलता आ जाने के कारण वे अपने-अपने कार्य करने में असमर्थ हो जाते हैं जिससे शरीर में आलस्य बना रहता है, कोई भी काम करने की इच्छा या उत्साह नहीं होता और मन में बराबर असन्तोष तथा भ्रम बना हुआ रहता है। ऐसी स्थिति में अग्नितुण्डी वटी के सेवन से लाभ होता है।

वातवाहिनी नाड़ियों का ह्रास हो जाने से हाथ-पैर आदि अङ्गों में आक्षेप होने लगता है। जिससे रोगी कोई भी वस्तु हाथ से उठाने में असमर्थ हो जाता तथा उन स्थानों में रक्त का संचार भी रुक जाता है। अतः हाथ-पैरों में झिनझिनी भरने लगती है तथा हाथ भारी और उसकी नसें सिकुड़ी हुई मालूम पड़ने लगती है। ऐसी दशा में अग्नितुण्डी बटी महारास्नादि क्वाथ या महारास्नादि अर्क के साथ १-१ गोली सेवन करने से फायदा होता है।

—औ० गु० ध० शा०

अग्निसन्दीपन रस

पीपल, पिपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, कालीमिर्च, पाँचों नमक, यवक्षार, सज्जीक्षार, सुहागे की खील, सफेद जीरा, काला जीरा, अजवायन, वच, सौंफ, भुनी हींग, चीते की छाल, जायफल, कूठ, जावित्री, दालचीनी, तेजपात, इलायची, इमली का क्षार, चिरचिरे का क्षार, शुद्ध बच्छनाग, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, वंग भस्म, अभ्रक भस्म, लौंग और हरड़ का चूर्ण प्रत्येक १-१ तोला, अम्लवेत २ तोला और शंख भस्म ४ तोला लें। प्रथम पारा और गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें कूट कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिला पंचकोल, चित्रक, अपामार्ग और खट्टे लोनियाँ के रस की ३-३ भावना तथा जम्बीरी नीबू-रस की २१ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना सुखाकर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली प्रातः सायं भोजन के बाद गर्म जल के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—इस रसायन से पाचकाग्नि की शिथिलता दूर हो पुनः उसमें चैतन्यता आ जाती है। अधिक भोजन या गरिष्ठ भोजन करने से अजीर्ण हो गया हो, तो अग्निसन्दीपन की २-३ गोली खा लेने से भोजन जल्दी पच जाता है। इसके सेवन से अम्ल पित्त में मुँह से खट्टा या कड़वा पानी आना बन्द हो जाता और अन्न का परिपाक भलीभांति होने लगता है, पेट के दर्द को कम करने के लिये अग्नि-सन्दीपन की गोली गर्म जल के साथ खा लेने से दर्द बन्द हो जाता है। यह मन्दाग्नि, अजीर्ण, अम्लपित्त, शूल और गोला आदि का शीघ्र नाश करता है।

अम्ल पित्त रोग में—विशेषतया उर्ध्वगत अम्लपित्त में—जब पित्त विकृत होकर हरा, पीला अथवा अत्यन्त खट्टा या मांसधोवन की तरह अत्यन्त पतला तथा कषाय रसयुक्त वमन के द्वारा निकलने लगे, खाना हजम न हो, मन्दाग्नि हो जाय और खाना खाते ही पेट फूल जाय, ऐसी दशा में अग्निसन्दीपन रस का सेवन दिन भर में

३ बार गर्म जल से करावें। अम्लपित्त पुराना होने पर पेट में दर्द बराबर होने लगता है। इस समय जी मिचलाता रहता और खाना खाते या पानी पीने के बाद ही वमन हो जाया करता है। जिससे रोगी धीरे-धीरे बहुत कमजोर होने लगता और उठने-बैठने में भी असमर्थ हो जाता है। ऐसी अवस्था में अग्निसन्दीपन रस अर्क सौंफ के साथ या अर्क अजवायन के साथ देने से लाभ करता है। क्योंकि इसमें अभ्रक भस्म पड़ी हुई है, जो अम्लपित्त रोग के लिये एक ही महौषधि है। साथ ही वंग और लौह भस्म भी शरीर में शक्ति उत्पन्न करनेवाली है।

गुल्म रोग में भी जब गुल्म में वेदना अधिक होती हो, खाना हजम न होता हो, अजीर्ण हो जाता हो, पेट फूला हुआ-सा मालूम पड़ता हो, पेट में बराबर दर्द बना रहता हो तो अग्निसन्दीपन रस, का सेवन गर्म जल से कराना चाहिये। यदि गोमूत्र के साथ इसका सेवन कराया जाय तो यह गुल्म को भी गला देता है। इसी तरह शूल और मन्दाग्नि आदि रोग में भी इसका प्रयोग किया जाता है और उसमें यह आशातीत लाभ भी करता है।

अजीर्णकण्टक रस

सुहागे की खील, पीपल, शुद्ध बच्छनाग और हिंगुल १-१ तोला, कालीमिर्च २ तोला, सब दवा को एकत्र कर कूटनेवाली दवा को कूट कर कपड़छान कर लें, फिर इसमें सिंगरफ और सुहागे की खील मिला जम्बीरी नीबू के रस में ३ दिन तक खरल कर मटर के बराबर गोलियाँ बना धूप में सुखा कर रख लें। —भा० प्र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली प्रातः सायं भोजन के बाद कागजी नीबू के रस के साथ अथवा ताजे जल के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—अधिक भोजन या गरिष्ठ, बासी आदि भोजन करने से उत्पन्न अजीर्ण, मन्दाग्नि, कब्जियत आदि इसके सेवन से नष्ट हो जाते हैं। यह मन्दाग्नि को नष्ट कर जठराग्नि को प्रदीप करता है। इसकी दो-तीन मात्रा खाने से ही भूख खूब खुल-

कर लगती है और भोजन भी ठीक-ठीक पचने लग जाता है। किसी तरह का भी अजीर्ण हो, उसे नष्ट करने के लिये इसका प्रयोग अवश्य करें।

अजीर्णारि रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक ४-४ तोला, बड़ी हरड़ ८ तोला, सोंठ, पीपल, मिर्च, सेंधानमक १२-१२ तोला, शुद्ध भांग १६ तोला, प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना फिर उसमें अन्य औषधियों का कूट, कपड़छन चूर्ण मिला, सात दिन तक जम्बीरी नीबू के रस में घोटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनाकर धूप में सुखा रख लें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-२ गोली भोजन के बाद गरम जल से दें।

गुण और उपयोग—यह जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाला है तथा अजीर्ण को पचाकर दस्त साफ लाता है। इसके सेवन से मन्दाग्नि, अजीर्ण, कब्जियत, पेट फूलना आदि रोग दूर हो जाते हैं। मात्रा से यदि अधिक भी भोजन कर लिया गया हो तो उसे भी यह पचा देता है। सब प्रकार के अजीर्ण के लिये यह उत्तम और गुण-कारी दवा है।

अर्द्धनारीश्वर रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक प्रत्येक १-१ तोला, शुद्ध विष २ तोला, शुद्ध जमालगोटा २ तोला और काली मिर्च का चूर्ण ८ तोला लें। पहले पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर शेष औषधियों को भी मिलाकर त्रिफले के काढ़े से मर्दन करें तथा ५ भावनाएँ उसी (त्रिफले के काढ़े) की देकर छाया शुष्क करके रख लें। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती तक जम्बीरी नीबू के रस में घिसकर जिस भाग में ज्वर हो, उस भाग में नस्य दें।

गुण और उपयोग—यह सन्निपात, तन्द्रा, निद्रा न आना, सिर-दर्द, कास, श्वास, मूर्च्छा, कफ की प्रबलता आदि में नस्य देने से शीघ्र लाभ करता है।

रत्नाकर औषध योग में लिखा है कि बकरी के एक थन से दूध निकालकर उस दूध से इस रस का नस्य दिया जाय तो जिस भाग के स्तन का दूध होगा शरीर के उसी आधे अंग का ज्वर उतर जायगा। यदि समस्त शरीर से ज्वर उतारना हो तो इसे अद्रक रस के साथ नस्य दें।

रसेन्द्र सार संग्रह में लिखा है कि केवल इस रस को एक ओर नाक के छिद्र में नस्य दें, तो शरीर के उस (आधे) भाग का ज्वर दूर हो जाता है। आधा ज्वर उतर जाने पर नासिका के दूसरे छिद्र में नस्य दें तो शेष (आधा) भी ज्वर उतर जाता है। इसका प्रयोग विषम ज्वर में ही अधिकतर करना चाहिये। सन्निपात में यदि प्रयोग करना हो तो मात्रा दूनी कर देने से लाभ होता है। परन्तु; नस्य अदरक के स्वरस में मिलाकर दें।

रसों की शक्ति अचिन्त्य है। इसकी शक्ति की विवेचना नहीं की जा सकती है। कुछ रस ऐसे भी हैं कि अपनी अलौकिक शक्ति द्वारा एक विचित्र प्रभाव दिखाकर बड़े-बड़े विद्वानों को मोह में डाल देते हैं।

इस रस में वही अलौकिक शक्ति है जिसके द्वारा शरीर में बढ़ी हुई ज्वर की गर्मी को खींचकर स्वाभाविक स्थिति पर ला देता है। इसका प्रभाव खासकर उन केन्द्रों में होता है, जहाँ शरीर की प्राकृतिक गर्मी को बढ़ाकर सम्पूर्ण शरीर में फैला दिया जाता है। अतः यह नस्यमात्र से ही ज्वर की गर्मी को दूर कर देता है।

स्वामी हरिशरणानन्दजी लिखते हैं कि "कुछ रसों में ऐसी भी शक्ति है कि मस्तिष्क के उत्तापोत्पादक केन्द्र के विचलन को ठीक कर देते हैं। इससे शरीर के उत्ताप की मात्रा नार्मल हो जाती है। हो सकता है कि इसका यही प्रभाव उक्त केन्द्र पर होता हो।"

अमर सुन्दरी वटी

सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, रेणुका, पीपलामूल, चित्रक, लोह भस्म, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, इलायची,

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, वायविडंग, अकरकरा, नागरमोथा प्रत्येक दवा १-१ तोला और गुड़ दूना (४० तोला) मिलाकर चने के बराबर गोलियाँ बनावें। —यो० चि०

नोट—गुड़ की चाशनी बनाकर कुटी हुई दवाओं का चूर्ण चाशनी में मिलाकर गोली बनाने में सुविधा रहती है। अन्यथा गोली पिघल जाती तथा गुड़ कभी ज्यादा कभी कम हो जाता है। जिससे गोली अच्छी नहीं बन पाती। अतः चाशनी बनाकर ही गोली बनावें।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ गोली तक गरम जल से दें।

गुण और उपयोग—यह अस्सी प्रकार के वात रोगों की प्रसिद्ध दवा है। उन्माद, मृगी, श्वास, खाँसी, बवासीर और सन्निपात में इस दवा के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। पेट में वायु भर जाने से पेट फूल जाता हो, उस समय इसकी २-३ गोली गरम जल के साथ देने से तत्काल लाभ होता है। मोतीझरा पर यह अच्छा लाभ करती है, सन्निपात में दशमूल क्वाथ से देने पर विशेष लाभ करती है।

वात रोग में—इसका उपयोग विशेषतः किया जाता है। प्रधानतया आक्षेपयुक्त वात रोग यथा—पक्षाघात, अर्दित (लकवा), अपतन्त्रक आदि में यह बहुत शीघ्र फायदा पहुँचाती है। क्योंकि शरीर में इसका असर वातवाहिनी नाड़ी पर सर्वप्रथम होता है और उपरोक्त रोग होने पर वातवाहिनी नाड़ी क्षुभित हो संकुचित हो जाती है। जिससे रक्त का संचार अच्छी तरह नहीं हो पाता और जहाँ रक्त का संचार नहीं होता है वहाँ अनेक तरह के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इन उपद्रवों को नष्ट करने तथा वातवाहिनी नाड़ी को सुधारने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है।

अमीर रस

सेंधानमक ५ छटाँक को खूब महीन पीसें। इसमें से ३ छटाँक नमक लेकर एक तवे पर ४ इञ्च गोलाकार में डालें। उस नमक पर सच्चे गोटे (चाँदी) का तार आधा तोला रखकर फिर उस पर रसकपूर १ तोला, रूमी सिंगरफ १ तोला, दाल चिकना १ तोला—ये तीनों चीजें छोटे-छोटे टुकड़े करके डाल दें। फिर उसके ऊपर

गोटे का तार आधा तोला डालकर चीनी मिट्टी के बड़े प्याले से ढक दें और पूर्व शेष दो छटाँक सेंधा नमक में कतीरा-गोंद आधी छटाँक मिलाकर पानी से पीसकर सन्धि बन्द कर दें। इस तवे को चूल्हे पर चढ़ाकर तीन पहर तक आँच दें। प्याले के ऊपरवाले भाग को भींगे हुए कपड़े रखकर ठण्डा रखें। फिर शीतल होने पर प्याले को उलटकर दवा को सुरक्षित रखें। इसमें कुछ कण पारे के होते हैं उससे डरना नहीं चाहिये। —आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान—१ या २ रत्ती, मुनक्का में भरकर रोगी को निगलवा दें, दाँत से न चबावे।

गुण और उपयोग—रस कपूर, दालचिकना और सिंगरफ इन तीन प्रधान चीजों के कारण अमीर रस आतशक और उसके उपद्रवों के लिये 'रामबाण' औषध है। यह तीव्र रक्त शोधक है, अतः यह आतशक के कीटाणुओं को नष्ट करता है। रक्तवाहिनी तथा वातवाहिनी के विक्षोभ को दूर करने के कारण यह अर्धाङ्ग और सन्धिगत वात को भी दूर करता है। वात और कफ प्रकृति के लोगों के सूजाक में भी इससे लाभ होता है। गर्मी (आतशक) की सभी दशाओं और उसके कारण से होनेवाले उपद्रवों के लिये यह बहुत ही अच्छी दवा है।

सूजाक व आतशक के कारण से होनेवाले गठिया या अन्य वात-विकारों में मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ अमीर रस का प्रयोग करना चाहिये। दवा सुबह-शाम दो बार सेवन करें। दाँतों से दवा न लगने पावे। अतः मुनक्का में रख कर इसे निगल जाना चाहिये।

पथ्य में दूध और चने की रोटी, मिश्री और हलुआ मात्र खाने को दें।

अमृतार्णव रस

हिंगुलोत्थ पारा और शुद्ध गंधक, लौह भस्म, सुहागे की खील, कचूर, धनियाँ, सुगन्धवाला, नागर मोथा. पाठा, जीरा और अतीस प्रत्येक १-१ तोला। प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बनावें और

उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिला कर बकरी के दूध से पीस कर १-१ माशे की गोलियाँ बना लेवें। —भैं० र०

मात्रा और अनुपान—१ गोली से ३ गोली दिन भर में धनियाँ और जीरे के काढ़े के साथ अथवा बकरी के दूध के साथ, शीतल जल अथवा भात के माँड़के साथ—इनमें से किसी एक चीज के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह अतिसार (पतले दस्त होना), संग्रहणी, बवासीर, अम्लपित्त और मन्दाग्नि आदि रोगों में बहुत लाभ करता है। यह गुल्म, कास आदि रोगों में भी फायदेमन्द है।

अतिसार में—कफज और वातज अतिसार में यह विशेष उपयोगी है। बार-बार पतले दस्त हों, और दस्त होने के समय अपान वायु का शब्द विशेष हो, मन्दाग्नि हो, पेट में भारीपन तथा आँत में दर्द भी होता हो, ऐसी हालत में इसका सेवन करना बहुत फायदेमन्द है।

बवासीर—जादे खून निकल जाने के कारण शरीर में रक्ताणुओं की कमी होकर पाण्डु के लक्षण दिखाई देते हैं। शरीर में थोड़ा भी रक्त का संचय होने पर उसका क्षय (नाश) हो जाना, पेट में आवाज होना, मन्दाग्नि रहना, भूख कम लगना, खून ज्यादे निकलने से शरीर रक्तहीन मालूम पड़ना, धीरे-धीरे कमजोर भी होते जाना, ऐसी हालत में इसकी १ गोली शीतल जल के साथ देने से लाभ होता है। इसी तरह गुल्म रोग में भी यह वेदना (दर्द) शामक गुण करता है।

अश्विनीकुमार रस

सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, अफीम, शुद्ध विष, पीपलामूल, लवंग, शुद्ध जमालगोटा, शुद्ध हरताल, सुहागे की खील, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, प्रत्येक १-१ तोला। प्रथम पारा और गन्धक की कज्जली बना, हरताल, बच्छनाग, जमालगोटा और सुहागा क्रमशः इन सबको मिलाने के बाद कूट कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिलाकर पहले गाय के आध सेर दूध के साथ खरल करें, फिर

आध-आध सेर भाँगरे के रस और गो-मूत्र के साथ खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना धूप में सुखाकर रख लें।

—अनुपान तरंगिणी

मात्रा—१ से २ गोली रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

रोगानुसार अनुपान

पित्त प्रमेह में हल्दी स्वरस के साथ और मूत्रकृच्छ्र नष्ट करने के लिये अजवायन के अर्क के साथ दें। नपुंसकता दूर करने के लिये मधु के साथ, और ज्वर नाशन के लिये—सोंठ को पत्थर पर घिस कर उसके साथ दें। सर्वसाधारण प्रमेह में—तुलसी पत्र के रस के साथ और मुख की दुर्गन्धि नष्ट करने के लिये तज के साथ दें। उष्णवात में—पान की खिल्ली में रख कर सेवन करें। शीतज्वर में—कपास की जड़ के स्वरस के साथ दें। ऐकाहिक (एकतरा) ज्वर में तुलसी पत्र स्वरस में सोंठ घिस कर मधु के साथ देना चाहिये। तृतीयकज्वर में काली मिर्च और जीरे का चूर्ण १ माशा में मिला कर तुलसी पत्र-स्वरस के साथ दें। प्रतिश्याय (जुकाम)में—पीपला मूल स्वरस के साथ दें। शिरदर्द में—नीबू के रस के साथ सेवन करें। प्लीहा वृद्धि तथा उदर रोग में—इन्द्रायण के रस के साथ दें। जीर्णज्वर में—अदरक रस के साथ और कास रोग में—सेंधानमक के साथ सेवन करें। बुद्धि बढ़ाने के लिये—ब्राह्मी रस के साथ दें। आमातिसार और रक्तातिसार में—जायफल के काढ़े के साथ और बल बढ़ाने के लिये बादाम के शर्बत के साथ दें। सूतिका रोग में—हल्दी स्वरस और घी के साथ देना चाहिये।

गुण और उपयोग—पेट की वायु बिगड़ने से होनेवाले उदर रोग में और जाड़ा देकर आनेवाले बुखार में तथा वायु के अन्य विकार में और पैत्तिक प्रमेह तथा मूत्रकृच्छ्र में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

छोटी आँत (पक्वाशय) और बड़ी आँत (मलाशय) में दोषों का संचय हो जाने से अनेक तरह के उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। पक्वाशय में दोष जब प्रकुपित होते हैं तो उस (पक्वाशय) में

शिथिलता आ जाती है। जिससे वह अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। परिणाम यह होता है कि खाये हुये अन्नादिक पदार्थ बिना पचे ही वहाँ इकट्ठे हो जाते हैं और उसमें से दूषित-विषाक्त-कीटाणु की उत्पत्ति होने लगती है। उन कीटाणुओं के विष रक्त-वाहिनी नाड़ियों द्वारा सम्पूर्ण शरीर में फैल कर शरीर के अनेक अवयवों को दूषित कर कई प्रकार के विकार उत्पन्न कर देते हैं। जिससे कोष्ठशूल, बहुमूत्र, पतला दस्त होना आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में अश्विनीकुमार रस के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। क्योंकि यह अन्त्रस्थ दोषों को सुधार कर पक्वाशय को उत्तेजित करता है और विषाक्त कीटाणुओं को भी नष्ट कर देता है।

कोष्ठबद्धता—दस्त की कब्जियत की हालत में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये, परन्तु मल संचय हो जाने से शरीर में जलीयांश की वृद्धि हो जाती है जिससे प्रतिश्याय (जुकाम), प्रमेहादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं, ऐसी अवस्था में अश्विनीकुमार रस के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है, क्योंकि इसमें जयपाल पड़ा हुआ है। अतः यह मल-संचय को दूर कर शरीर में बढ़ा हुआ जलीयांश भाग को भी दूर कर देता है।

पैत्तिक प्रमेह में भी इसका प्रयोग होता है। पित्त प्रमेह में पित्त प्रकुपित हो जाने के कारण पित्त का स्राव विशेष रूप में होने लगता है। यह स्राव काला, नीला, हरा आदि रूपों में होता है। तदनुसार ही प्रमेह रोग भी उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में पेशाब बहुत कम मात्रा में किन्तु कई बार होता है। पेशाब करने पर भी पेशाब होने की आशंका बनी रहती है। प्यास ज्यादा लगती है, विशेष कर शीतल जल या शीतल पदार्थ खाने-पीने की इच्छा होती है, हाथ और पाँव की हथेली और पगतली (तलवा) में विशेष रूप से जलन होती है। ऐसी अवस्था में—अश्विनीकुमार रस देने से विशेष लाभ होता है।

पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र में भी बार-बार पेशाब करने पर फिर पेशाब करने की हाजत बनी रहती है। इसमें पेशाब करने के समय

बहुत तकलीफ होती है। मूत्र नली में जलन तथा बहुत कोशिश करने (जोर लगाने-कौंछने) के बाद थोड़ा-सा पेशाब वह भी जलन के साथ होता है। ऐसी अवस्था में अश्विनीकुमार रस का सेवन करना लाभदायक है।

कोष्ठ में—दूषित मल संचय हो जाने के कारण कभी-कभी बुखार हो जाता है। यद्यपि इस बुखार की गर्मी ज्यादे बढ़ी हुई नहीं मालूम पड़ती किन्तु; रोगी के शरीर में आलस्य, कोई भी काम करने की इच्छा नहीं, भूख कम लगना, दिन प्रतिदिन कमजोरी बढ़ते जाना, अन्दरूनी मन्द-मन्द ज्वर बना रहना इत्यादि लक्षण उत्पन्न होने पर अश्विनीकुमार रस का सेवन करना बहुत हितकर है। इससे मल संचय दूर हो जाता और पाचन क्रिया भी ठीक हो जाती तथा बुखार भी नष्ट हो जाता है। —औ० गु० ध० शा०

अश्वकंचुकी रस

शुद्ध पारा और गन्धक, सुहागे की खील, शुद्ध विष सोंठ, पीपरि, मिर्च, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, शुद्ध हरताल, शुद्ध जमालगोटा प्रत्येक समभाग लेकर प्रथम पारा और गन्धक की कज्जली बना अन्य औषधियों का कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिला भाँगरे के रस में २१ भावना देकर खरल में घोटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। इन्हें छाया में सुखाकर रख लें। —र० रा० सु०

मात्रा और अनुपान—१ से ४ गोली, जल के साथ दें अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

रोगानुसार अनुपान

अश्वकंचुकी रस यथोचित अनुपान के साथ प्रयोग करने और उचित पथ्य-पालन करने से अनेक रोगों का नाश करता है।

वातजशूल—क्षय-खाँसी और श्वास में—अश्वकंचुकी रस की १ गोली मूली के रस के साथ या अदरख के रस, छोटी पीपल चूर्ण तथा शहद इन तीनों को एकत्र मिलाकर इनके साथ दें।

वलीपलित रोग में—शहद के साथ देने से लाभ होता है।

संहिजन (शोभांजन) की जड़ के रस और गाय के घी के साथ सेवन करने से शल और ज्वर का तथा छाछ (मट्ठा) के साथ सेवन करने से अजीर्ण रोग का और कमल के रस के साथ सेवन करने से शीत ज्वर का नाश होता है। पुनर्नवा के रस के साथ सेवन करने से पाण्डु रोग का नाश होता है। शक्कर (चीनी) और जीरे के चूर्ण के साथ सेवन करने से पित्तज्वर का शमन होता है। देवदारु, बच और कूठ के काढ़े से अस्थिगत वायु रोग का और जायफल के चूर्ण के साथ बवासीर का तथा त्रिकुटे के साथ सेवन करने से वातशूल का नाश होता है। गोमूत्र के साथ सेवन करने से पुरुषत्व उत्पन्न होता है। पुत्रजीवक (जीयापोता) के रस के साथ सेवन करने से बन्ध्यापन रोग दूर होता है। सर्पदंश में—नीबू के रस में पीस कर लेप करने से सर्प का विष नष्ट होता है। अजवायन और बच का चूर्ण १ माशा में १ गोली अश्वकंचुकी मिलाकर खाने से कटिशूल (कमर का दर्द) दूर हो जाता है। इसकी एक गोली को श्वास-कास रोग में शहद और बाँसा स्वरस के साथ दें। ज्वर में तुलसी रस के साथ, सब दिन आने वाले ज्वर में—ग्वारपाठा के रस के साथ देना चाहिये। त्रिफले के रस के साथ देने से उर्ध्वश्वास का नाश होता है। शिरदर्द, प्रतिश्याय तथा आधाशीशी में—जायफल चूर्ण १ माशे में मिला कर गरम जल के साथ, सूतिका रोग में तुलसी रस तथा शहद के साथ देना चाहिये। अतिसार में—अश्वकंचुकी रस दही या गोमूत्र के साथ देना चाहिये। ग्रहणी में—मट्ठा अथवा जायफल चूर्ण १ माशा के साथ दें। अग्निमान्द्य में—कसौंदी के रस और सुहागे के फूला (खील) के साथ देना। बुद्धि-वृद्धि के लिये ब्राह्मी-रस के साथ दें। शरीर की कान्ति बढ़ाने के लिये—पान के रस के साथ देना चाहिये। थूहर के दूध या निर्गुण्डी- रस के साथ सेवन करने से गुल्म का नाश होता है। सन्निपात में—अजवायन चूर्ण के साथ अदरक रस मिलाकर दें। वातव्याधि के लिये भाँगरे की जड़ का स्वरस या अजमोद और भाँग के चूर्ण के साथ अथवा त्रिफला चूर्ण और असगन्ध चूर्ण १ माशा में मिला शहद के साथ देना चाहिये।

धनुर्वात में—विष्णुक्रान्ता की जड़ का चूर्ण १ माशे के साथ अश्वकंचुकी १ गोली शहद में मिलाकर दें। प्रमेह के लिये पेठे के रस के साथ दें। धातुक्षीणता में—गोखरू चूर्ण ३ माशे में १ गोली मिला गो-दुग्ध के साथ दें।

शुक्र (धातु) बढ़ाने के लिये शतावरी चूर्ण में मिला धारोष्ण दूध के साथ दें। एरण्ड़ तैल के साथ अश्वकंचुकी १ गोली देने से विरेचन होता है। आमले का चूर्ण और मिश्री के साथ खाने से पित्त (बढ़ा हुआ पित्त) शान्त हो जाता है।

उदर रोग में त्रिफला चूर्ण और एरण्ड तैल के साथ देना चाहिये। भाँगरे की जड़ के रस या प्याज के रस के साथ सेवन करने से शोथ (सूजन) और करंज की जड़ की छाल के साथ सेवन करने से कृमि रोग नष्ट होता है। उष्णवात में जीरे का चूर्ण २ माशे के साथ शहद मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है। —अनुपान तरंगिणी

गुण और उपयोग—अश्वकंचुकी रस ही अश्वचोली, घोड़ाचोली आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। इसमें हरताल, जमालगोटा आदि ओषधियाँ (ये उग्र एवं उष्ण वीर्य हैं) पड़ने के कारण यह उष्ण वीर्य है। इसी उष्णता को शान्त करने के लिये इसमें भावना देने का विशेष विधान है। अर्थात् भाँगरे के रस की भावना जितने अधिक दिन तक दी जायगी, यह दवा उतनी ही सौम्य होगी तथा इसके रस की विशेष भावना देने से यकृत रोग के ऊपर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है और जमालगोटा एवं हरताल आदि की उग्रता शमन हो जाती है।

श्वास रोग में—दूषित जलवायु के कारण प्रकुपित कफ-श्वास रोग उत्पन्न कर देता है। यह श्वास वर्षा ऋतु के प्रारम्भ या अन्त में उत्पन्न होता है। इसमें कफ प्रधान के सब लक्षण होते हैं और यह श्वास प्रतिवर्ष वर्षा ऋतु में अपना प्रभाव दिखलाता है। इसमें सफेद रङ्ग का कफ अधिक मात्रा में और गाढ़ा-गाढ़ा निकलता है। श्वास के दौरे का असर ज्यादे नहीं मालूम पड़ता, भीतर ही भीतर इसका प्रकोप होता रहता है। अतः रोगी विशेष घबड़ाया हुआ

तथा बेचैन रहता है। छाती में अधिक कफ बैठने के कारण भारीपन मालूम होता है। अत्यधिक कफ-वृद्धि के कारण मन्दाग्नि हो जाती है। अतः भूख भी कम लगती तथा जो थोड़ा-बहुत खाया भी जाता है तो वह पचता नहीं। पेट फूल जाता है, शरीर में आलस्य तथा तन्द्रा अवस्था में रोगी पड़ा रहता है। ऐसी अवस्था में अश्वकंचुकी का प्रयोग करना बहुत लाभदायक है। क्योंकि यह कफघ्न है, अतः प्रकुपित कफ को शान्त कर श्वास रोग को दूर करता है तथा पित्त को जागृत कर पाचकाग्नि को भी प्रदीप्त करता है। अतः अन्नादि का पाचन भी अच्छी तरह होने लगता है। जिससे पेट फूलना आदि दूर हो भूख भी खूब लगने लगती है।

पसली चलना—छोटे-छोटे बच्चों को कफ ज्यादे हो जाने के कारण श्वास लेने में बहुत दिक्कत होती है, जिससे फुफ्फुस एकदम निर्बल हो कर अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। उस अवस्था में श्वास की गति बढ़ जाती है। यह गति इतनी बढ़ जाती है कि पसली तक चलने लगती है। बच्चे की साँस ज्यादे बढ़ जाने से उसे अधिक तकलीफ होती तथा बुखार भी हो जाता है। कफ की विशेष वृद्धि हो जाने के कारण गला रुका हुआ-सा रहता है। साँस लेने के साथ पसली में गड्ढे पड़ जाते हैं। ऐसी दशा में अश्वकंचुकी रस की आधी गोली माँ के दूध अथवा पान के रस के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। इसी तरह कफ की विशेष वृद्धि होने पर तथा ऐसी हालत में कहीं ठण्डी हवा भी लग गई तो बच्चों को बहुत जल्दी निमोनिया हो जाता है। इसमें भी श्वास की गति बढ़ जाती है तथा ज्वर बहुत तेज हो जाता है। खाँसी भी साथ-साथ होने लगती है। पसली में दर्द होने लगता है। ऐसी अवस्था में अश्वकंचुकी रस का प्रयोग मधु और अदरक रस के साथ किया जाता है। इसके सेवन से कफ छँट कर दस्त के साथ निकलने लगता है तथा मुँह के द्वारा भी कफ खाँसी के साथ निकल जाता है। जिससे कफ के जितने उपद्रव रहते हैं, वे अपने आप कम हो जाते हैं, फिर धीरे-धीरे रोगी भी स्वस्थ हो जाता है।

यकृत्-वृद्धि—यकृत् की बीमारी छोटे-छोटे बच्चों को अधिकतर होती रहती है, क्योंकि बाल्यावस्था में यकृत् एकदम मुलायम रहता है तथा यह परिपुष्ट नहीं होने की वजह से कमजोर (नाजुक) रहता है। अतः थोड़ा-सा भी अपथ्य होने पर इसमें खराबी उत्पन्न हो जाती है। यदि कफ प्रधानयुक्त यकृत्-वृद्धि हो अर्थात् प्रकुपित कफ के कारण यकृत् बढ़ गया हो तो इसमें आँखों की पलकें कुछ सूजी हुई रहना, निद्रा अधिक होना, बच्चा सुस्त बना रहना, सफेद दस्त होना, कास (खाँसी) होना, कंठ से घर-घर आवाज निकलना, हाथ-पैर कुछ सूजे हुए प्रतीत होना आदि लक्षण होते हैं। इस अवस्था में अश्वकंचुकी रस का उपयोग करने से बढ़ा हुआ कफ कम हो जाता है, तथा कफ-वृद्धि के कारण जितने उपद्रव होते हैं, वे सब शान्त हो जाते हैं। अश्वकंचुकी का प्रभाव यकृत् पर विशेषतया होता है, अतः यकृत् के भी विकार को दूर कर अपनी प्राकृतिक अवस्था पर ले आता है। फिर धीरे-धीरे बच्चा नीरोग हो जाता है।

प्लीहा-वृद्धि में भी इसका उपयोग किया जाता है। परन्तु एक बात का ध्यान रखे कि कफ प्रकोप जन्य बीमारी में ही इसका असर होता है। पित्त प्रधान रोग में यह फायदा न करके हानि ही करता है। अतः पित्त जन्य रोग में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

कोष्ठ शूल—कफ वृद्धि के कारण मन्दाग्नि हो जाने से क्रमशः आमाशय में कच्चे अन्न संचित होने लगते हैं। धीरे-धीरे यह संचय अधिक हो जाने से दस्त में कब्जियत हो कोष्ठ में शूल होने लगता है। यह उपद्रव ज्यादे बैठे रहनेवाले, आलसी, चिकने पदार्थ को अधिक सेवन करनेवाले तथा मांसाहारी लोगों को विशेषतया होता है। इस रोग में मल संचय होने के कारण आँत कमजोर हो अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाती है, फिर पाचक पित्त भी मन्द हो जाता है, जिससे पचन क्रिया में गड़बड़ी होने लगती है। परिणाम यह होता है, कि अच्छी तरह से रस-रक्तादि बन नहीं पाता। पेट कुछ बढ़ जाता है क्योंकि शरीर

में रक्त की वृद्धि न हो कर जल भाग की ही वृद्धि होने लगती है। अतः पेट बड़ा हो जाता तथा रोगी, शक्ति-क्षय के कारण कमजोर हो जाता और शरीर कान्तिहीन एवं रक्तकणों की कमी की वजह से पाण्डुवर्ण का हो जाता है। ऐसी अवस्था में अश्वकंचुकी रस के उपयोग से शीघ्र लाभ होता है। क्योंकि इसमें जमाल गोटा पड़ता है। अतः इसमें रेचकत्व धर्म होना स्वाभाविक है। इस दवा से संचित मल निकल जाते हैं। जिससे आँत पुनः सबल हो अपना कार्य करने लगती, तथा पित्त भी जागृत हो पाचकाग्नि को प्रदीप्त कर पचन क्रिया को सुधार देता है। रस-रक्तादि भी अच्छी तरह बनने लग जाते हैं। फिर रोगी क्रमशः स्वस्थ होने लग जाता है।

पुराने अतिसार में भी यह अच्छा काम करता है। अतिसार जब पुराना हो जाता है, तब सफेद और लसदार मल दस्त में आने लगते हैं। इसको—कोई-कोई मज्जा का गिरना कह देते हैं, और असाध्य कह कर चिकित्सा भी बन्द कर देते हैं। परन्तु वास्तविक बात यह है कि पुराने अतिसार में आँतों की श्लैष्मिक कला मोटी हो जाती है, तथा उसमें से बराबर स्राव होता ही रहता है। स्राव कफ प्रधान दोष के कारण होने से ही सफेद मलवाला दस्त होता है। अश्वकंचुकी रस के सेवन से श्लैष्मिक कला की मोटाई तथा बराबर होने वाला स्राव भी कम हो जाता है। फिर अन्य उपद्रव भी धीरे-धीरे कम हो जाते हैं।

इसमें यदि अग्नि-दीपन, पाचन, और स्तम्भन (दस्त बन्द करने वाली) दवा देंगे, तो कुछ भी लाभ नहीं होगा जब तक कि मूल कारण को आप दूर नहीं कर लेते हैं। दस्त बन्द करने वाली दवा देने से मल संचय में और वृद्धि होती जायगी और रोग भी बढ़ता ही जायगा। अतः प्रथम दोष जो रोग का मूल कारण है, उसे दूर करने के बाद ही यह रोग दूर हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसी तरह पुरानी संग्रहणी में—आँतों में जहाँ पर घाव (क्षत) हो जाते हैं, उस स्थान से श्लैष्मिक कला के साथ रक्त बरा-

बर निकलता रहता है, यह स्राव मल के साथ होता है। ऐसी अवस्था में एरण्ड तैल (केष्टर ऑयल) ५-७ बूंद पाव भर दूध में डाल कर पीवें और कोष्ठ शुद्धि करने के बाद ही दवा का प्रयोग करें। कोष्ठ शुद्धि करने के लिये —नाराच घृत भी काम में ले सकते हैं।

कोष्ठ में मलसंचय होने के कारण वात की वृद्धि हो जाती है। यह प्रकुपित वायु हृदय में जाकर दर्द उत्पन्न करता है। रोगी को एकाएक झटके (आक्षेप) आने लगते हैं जिससे रोगी वेहोश हो जाता, श्वास लेने में कष्ट होने लगता मूंह से कभी-कभी झाग आने लगती है और कंठ से कबूतर के कूजन समान आवाज आने लगती है। मल संचय के कारण पेट बहुत कठोर हो जाता है तथा कभी-कभी वायु के झटके इतने जोर के आते हैं कि रोगी का शरीर मुड़ जाता है। इसको शास्त्रकार ने अपतानक या अपतन्त्रक नाम से उल्लेख किया है। इस रोग में कोष्ठ शुद्धि करने के बाद ही चिकित्सा करने से लाभ होगा। अतः कोष्ठ शुद्धि के लिये अश्वकंचुकी का प्रयोग करना अच्छा है।

—औ० गु० ध० शा०

अर्शकुठार रस

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गंधक २ तोला, अभ्रक भस्म २ तोला, लौह भस्म, बेलगिरी, बड़ी हर्रे, चित्रकमूलकी छाल, सोंठ, मिर्च, पीपल, शुद्ध जमालगोटा प्रत्येक १-१ तोला, सुहागे की खील, सेंधा नमक और यवक्षार प्रत्येक ५-५ तोला लें। प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बनावें फिर काष्ठौषधियों को कूट-कपड़छान कर कज्जली मिला इन्हें ३२ तोले गोमूत्र तथा ३२ तोले सेहुंड़ के दूध में मन्दाग्नि पर पकावें। जब गाढ़ा हो जाय, तब चने के बराबर गोलियाँ बना कर रख लें।

—रसा० सार

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली तक, प्रातः-सायं, दस्तावर औषधियों के क्वाथ के साथ अथवा जल या गुलकन्द के साथ भी दिया जाता है।

गुण और उपयोग—अर्श (बवासीर) में इसके सेवन से अच्छा

लाभ होता है। यदि बवासीर ज्यादे दिन का न हो, तो मस्से सूख जाते हैं, बवासीर में—प्रायः कब्ज की शिकायत रहने से साफ दस्त होने में बहुत तकलीफ होती है। परन्तु इसके सेवन से कब्ज नहीं होने पाता, दस्त साफ होने लगता है।

अर्श (बवासीर) खूनी और बादी भेद से दो प्रकार का होता है। खूनी में तो मस्सों द्वारा खून निकलता रहता है और वादी में खून नहीं निकलता। मस्से में वायु भर जाने से मस्से फूल जाते हैं, और उसमें सूई चुभोने-सी पीड़ा होती रहती है। इसमें रोगी की परेशानी अधिक बढ़ जाती है। परन्तु दस्त कब्ज दोनों में हो जाता है। अतः जब तक दस्त साफ होता रहता है, बवासीर वाले को तब तक किसी प्रकार की विशेष तकलीफ नहीं होती। किन्तु दस्त कब्ज होते ही तकलीफ होने लग जाती है। इस कब्जियत को दूर करने के लिये ही अर्शकुठार रस का प्रयोग किया जाता है। इसके सेवन से कोष्ठ शुद्ध होकर मल संचय दूर हो जाता तथा प्रकुपित वायु भी शान्त हो जाती है। परन्तु यह जितना जल्दी गुण कफ या वात प्रधान अर्श में करता है, उतना रक्तज में नहीं। यदि रक्तार्श नवीन हो, तो उसमें भी यह गुण करता है। रक्तातिसार में इसको कुटजावलेह या कुटज छाल के क्वाथ के साथ देने से लाभ होता है।

वादी बवासीर में—गर्म जल के साथ या गुलकन्द के साथ देने से लाभ होता है। इससे दस्त साफ आता है तथा वायु का प्रकोप भी कम हो जाता है, जिससे मस्से में दर्द नहीं होता है।

आनन्दभैरव रस

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध बच्छनाग, सोंठ, पीपल, मिर्च, शुद्ध सुहागा, शुद्ध गन्धक सब द्रव्य समान भाग लें और महीन चूर्ण कर जम्बीर नीबू के रस में चार घंटे घोट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें, इसे धूप में सुखा कर सुरक्षित रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली तक अदरक का रस, पान

का रस और मधु के साथ, या कुटज (कुड़ा) की छाल के क्वाथ या अनार के शर्बत अथवा साधारण जल से दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से खाँसी, श्वास, अतिसार, ग्रहणी, सन्निपात, अपस्मार, वातरोग, प्रमेह, अजीर्ण और अग्निमान्द्य रोग नष्ट होते हैं।

कफ-विकार में—कफ की वृद्धि होकर शरीर में भारीपन होना, देह पसीने से भीगी हुई रहना, थोड़ा-थोड़ा बुखार होना, आलस्य, किसी भी काम में मन न लगना, जम्भाई आना, भूख नहीं लगना, उपवास करने पर भी खुल कर भूख न लगना, मन्दाग्नि, जी मिचलाना इत्यादि लक्षणों में आनन्द भैरव रस देने से विशेष फायदा होता है। क्योंकि इसका असर श्लैष्मिक कला पर विशेष होता है। अतः यह कफ का शोषण कर उसके उपद्रव को भी शान्त कर देता है।

यह पित्त को उत्तेजित करता है। अतः पित्तजन्य विकार या ज्वर में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। यदि प्रयोग करे तो किसी कफवर्द्धक दवा के साथ या इसी तरह के अनुपान के साथ। कफ-ज्वर में भी आम दोष पच जाने पर इसका प्रयोग करने से फायदा होता है।

प्रतिश्याय जनित कास (खाँसी) में— जुकाम होकर पक जाने पर कफज कास की उत्पत्ति होती है। इसमें खाँसी आने के बाद कफ अधिक मात्रा में निकलता है तथा कफ का रंग कुछ-कुछ पीलापन लिये हुए सफेद रहता है। शिर में थोड़ा-थोड़ा दर्द तथा भारीपन बना रहता है। श्वास लेने में भी दिक्कत होती है, ऐसी हालत में आनन्द भैरव रस का पान के रस के साथ या लगे हुए पान में रखकर देने से लाभ होता है। प्रारम्भिक प्रतिश्याय (जुकाम) में यह नहीं देना चाहिये। क्योंकि इसमें बच्छनाग पड़ा हुआ है, जो अपनी तेजी के कारण कफ को सुखा देता है, जिससे जुकाम रुक जाता और शिर में दर्द तथा कभी-कभी अर्धावभेदक एवं सूखी खाँसी भी उत्पन्न कर देता है, अतः फायदा के बदले रोगी को हानि उठानी पड़ती है।

कफ प्रधान श्वास रोग में—श्वास के दौरे के साथ-साथ कफ का भी प्रकोप विशेष रहता है। इसमें खाँसी के साथ कफ ज्यादे मात्रा में निकलता है तथा नवीन कफ भी बनता रहता है। श्वास नाभि तक न पहुँच कर हृदय तक ही रह जाता है, जिससे रोगी बेचैन हो जाता है। ऐसी अवस्था में आनन्द भैरव रस का प्रयोग करने से अच्छा लाभ होता है। क्योंकि इस रसायन से कण्ठ के भीतर श्वासमार्ग की श्लैष्मिक कला पर इसका असर होता है और यह कफ को निकालता है, जिससे श्वासनली साफ हो जाती है और श्वास लेने में असुविधा भी नहीं होती तथा नवीन कफ की भी उत्पत्ति बन्द हो जाती है।

कफजन्य अतिसार में—कफ की वृद्धि होने के कारण अन्न में अरुचि तथा पाचक पित्त की विकृति के कारण मन्दाग्नि हो अपच होने से अतिसार उत्पन्न हो जाता है। इससे पेट में भारीपन तथा आँतों की श्लैष्मिक कला में क्षोभ होकर पतला दस्त होने लगता है। अतः अपचित तथा झागदार दस्त होते हैं। ऐसे समय में कफ-वृद्धि को रोकने तथा आन्तरिक क्षोभ को दूर करने के लिये आनन्द भैरव रस का प्रयोग कुटज क्वाथ के साथ करने से अच्छा लाभ होता है। क्योंकि यह ग्राही है। अतः आँतों को सबल कर दस्त को रोकता और पित्तवर्द्धक होने के कारण पित्त को उत्तेजित कर जठराग्नि को प्रदीप्त करता है, जिससे अन्न का पचन ठीक से होने लगता है और अतिसार भी बन्द हो जाता है।

साधारण कोष्ठशूल—कफ बढ़ानेवाले पदार्थ का विशेष सेवन करने से कोष्ठवद्ध हो पेट में वायु भर जाता है, फिर पेट फूला हुआ तथा कड़ा मालूम पड़ने लगता है। पेट में थोड़ा-थोड़ा दर्द के साथ कोष्ठ में भी दर्द होने लगता है। दस्त पतले किन्तु थोड़ी ही मात्रा में बार-बार होते हैं, दस्त होने पर भी पेट में भारीपन बना ही रहता है एवं मीठा-मीठा दर्द भी होता है। ऐसी अवस्था में आनन्द भैरव रस का उपयोग करने से शीघ्र लाभ होता है। —औ० गु० ध० शा०

आनन्द भैरव रस दूसरा—शुद्ध हिंगुल, शुद्ध विष, सोंठ, फूला

हुआ सुहागा और जायफल प्रत्येक १-१ तोला, कालीमिर्च और छोटी पीपल २-२ तोला लेकर पृथक्-पृथक् इन्हें खूब महीन पीस कर वजन कर लेना चाहिये। पहले शुद्ध हिंगुल को खरल में डाल कर पीसने के बाद सभी चीजों को उसमें डालकर जम्बीरी नीबू के रस में घोटना चाहिये। अच्छी तरह घुट जाने पर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली प्रातः-सायं, अदरक रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह आनन्द भैरव रस सब तरह के बुखार मे दिया जा सकता है। साधारण ज्वर में इसकी १-१ गोली सुबह-शाम शहद के साथ देने से लाभ होता है। जब बुखार बहुत जोर का हो और कम न होनेके कारण रोगी घबराता हो तो आनन्द भैरव रस एक गोली, अदरक का रस १ तोला और १ तोला शहद मिला कर दिन रात में तीन बार देने से बढ़ा हुआ बुखार (टेम्प्रेचर) अवश्य कम हो जाता है। यदि बुखार कम नहीं करना हो तो सिर्फ शहद के साथ आनन्द भैरव रस प्रातः-सायं देना चाहिये। इससे बुखार धीरे-धीरे पचकर उतर जाता है।

आमवातारि रस

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, त्रिफला ३ तोला, चित्रकमूल की छाल ४ तोला और शु० गूगल ५ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर अन्य दवा मिला कर बारीक पीसकर अण्डी के पत्तों के रस के साथ खरल कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनाकर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली सुबह - शाम गरम जल के साथ देना चाहिये अथवा दशमूल या महारास्नादि क्वाथ या एरंड तैल के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से अति प्रबलतम वात दोष नष्ट हो जाता है। आमवात रोग में जिस समय हाथ-पैर में या

सारे बदन में सूजन हो गयी हो, उस समय इस दवाके प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। जब तक यह दवा सेवन करें तब तक वायु बढ़ाने वाले पदार्थ का सेवन करना छोड़ दें और गरम जल का ही व्यवहार करें।

आरोग्यवर्द्धनी वटी (रस)

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, लोह भस्म १ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला, ताम्र भस्म १ तोला, हर्रे, बहेड़ा, आँवला प्रत्येक २-२ तोला, शुद्ध शिलाजीत ३ तोला, शुद्ध गुग्गुलु ४ तोला, चित्रकमूल छाल ४ तोला, और कुटकी २२ तोला लें। प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बना उसमें अन्य भस्में तथा शुद्ध शिलाजीत और शेष द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण मिलावें। पीछे गुग्गुलु को नीम की ताजी पत्ती के रस में दो दिन तक भिगो हाथ से मसल, कपड़े से छान, उसमें अन्य दवा मिला कर मर्दन करें। नीम की ताजी पत्ती के रस में तीन दिन मर्दन कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली रोगानुसार जल, दूध, पुनर्नवादि क्वाथ या केवल पुनर्नवा का क्वाथ अथवा दशमूल क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन उत्तम पाचन, दीपन, शरीर के स्रोतों का शोधन करनेवाला, हृदय को बल देने वाला, मेद को कम करनेवाला और मलोंकी शुद्धि करनेवाला है। यकृत्-प्लीहा, वस्ति, वृक्क, गर्भाशय, अन्त्र, हृदय आदि शरीर के किसी भी अन्तरावयव के शोथ में, जीर्ण ज्वर, जलोदर और पाण्डुरोग में इस औषध से अधिक लाभ होता है। पाण्डुरोग में यदि दस्त पतले और अधिक होते हों, तो इसका प्रयोग न कर पर्पटी के योगों का प्रयोग करना चाहिये। सर्वाङ्ग शोथ और जलोदर में रोगी को केवल गाय के दूध के पथ्य पर रख कर इसका प्रयोग करना चाहिये। यकृत् की वृद्धि के कारण शोथ हो, तो पुनर्नवाष्टक क्वाथ में रोहेड़ा की छाल और शरपुंखामूल १-१ भाग अधिक मिलाकर उसके अनुपान से इसका प्रयोग करें।

यदि हृद्रोगजन्य शोथ हो तो आरोग्यवर्द्धनी के साथ "डिजिटेलिस पत्र" चूर्ण आधी से १ रत्ती और जंगली प्याज (वन पलाण्डु) का चूर्ण १-२ रत्ती मिलाकर पुनर्नवादि या दशमूल क्वाथ के साथ इसका प्रयोग करें। जीर्णफुफ्फुसधरा कलाशोथ में इसके साथ शृंग भस्म ४-८ रत्ती मिलाकर भारङ्गमूल, पुनर्नवा, देवदारु और अड़ूसा के क्वाथ के साथ इसका प्रयोग करें। मेद (चर्बी) कम करने के लिये रोगी को केवल गाय के दूध पर रख कर महामंजिष्ठादि क्वाथ के अनुपान से इसका सेवन करावें। —सि० यो० सं०

यही वटी वृहदन्त्र तथा लघु अन्त्र की विकृति को नष्ट करती है जिससे आन्त्र-विषजन्य रक्त की विकृति दूर होने से कुष्ठ आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। इससे पाचक रस की उत्पत्ति होती है और यकृत् बलवान होता है। अतः यह पुराने अजीर्ण, अग्निमांद्य और यकृत् दौर्बल्य में लाभ करती है। सर्वाङ्गशोथ में होने वाले हृदय दौर्बल्य को यह मिटाती है और मूत्र- मार्ग से जलांश को बाहर निकाल, शोथ को कम करती है। पाचन शक्ति को तीव्र करके धातुओं का समीकरण करने के कारण यह मेदोदोष में लाभदायक है। मलावरोध के लिये यह उत्तम औषध है। दुष्ट व्रण में वात-पित्त की अधिकता होने पर इसके सेवन से लाभ होता है। शरीर-पोषक ग्रन्थियों की कमजोरी या विकृति से शरीर की वृद्धि रुक जाती है और शरीर निर्जीव-सा हो जाता है। इस तरह जवानी आने पर भी स्त्री और पुरुष में पुंस्त्व चिह्न का उदय नहीं होता। ऐसी अवस्था में इस वटी के निरन्तर प्रयोग से लाभ होते देखा गया है। यह पुराने वृक्क-विकार में भी लाभ करती है। प्रमेह और कब्ज में अपचन होने पर भी यह लाभ करती है। हिक्कारोग में भी इसके प्रयोग से हिक्का नष्ट हो जाती है। परन्तु यह वटी गर्भिणी स्त्री, दाह, मोह, तृष्णा, भ्रम और पित्त प्रकोपयुक्त रोगी को नहीं देना चाहिये।

—र० वि०

कुष्ठ रोग की प्रारम्भिक अवस्था में—इसका उपयोग करने से शीघ्र लाभ होता है। पुराने कुष्ठ रोगों में अर्थात् जब रक्त और

मांस दूषित हो, मवाद-रूप में परिणत हो कर बहने लगे जैसे गलित कुष्ठ ; तो इसमें यह लाभ नहीं करती है। विशेषतया वात और कफ प्रधान या वात-कफ प्रधान कुष्ठ—जैसे—कपाल, मण्डल, विपादिका, चर्मदलादि और अलसक पर इसका प्रयोग करने से शीघ्र लाभ होता है। इस दवा के सेवन-काल में पथ्य में बराबर दुग्ध का ही सेवन करना चाहिये।

औदुम्बर कुष्ठ में शरीर की त्वचा विकृत और रूक्ष हो जाती है तथा स्पर्श-ज्ञान का लोप हो जाता है अर्थात् जहाँ धब्बे पड़ जाते हैं उसे स्पर्श करने से उसको छूने तक का ज्ञान नहीं होता है। ये धब्बे लाल और ऊपर उठे पके हुये गूलर-फल के समान होते हैं। उसमें से पसीना अधिक निकलता रहता है। ऐसी अवस्था में केवल आरोग्यवर्द्धनी न देकर गंधक रसायन के साथ इसे देना अच्छा है और भोजनोपरान्त खदिरारिष्ट १ तोला बराबर जल मिश्रित करके दोनों शाम देना चाहिये। इससे बहुत शीघ्र लाभ होता है।

कभी-कभी रक्तविकृति के कारण शरीर में लाल चट्ठे पड़ जाते हैं, उसमें खुजली चलती है तथा बाद में पूय पड़ जाता है। कभी खुजलाने पर लाल चट्ठे होकर मवाद भर जाता है। ऐसी अवस्था में आरोग्यवर्द्धनी वटी महामंजिष्ठादि अर्क के साथ या नीम की छाल के क्वाथ के साथ देने से विशेष लाभ होता है।

रक्त और मांस की विकृति के कारण त्वचा विकृत हो जाती है। इसमें कफ और वायु की प्रधानता रहती है। अतः जहाँ की त्वचा विकृत हो जाती, वहाँ की त्वचा रूक्ष हो कर फट जाती है और उसमें से थोड़ा-थोड़ा मवाद भी निकलने लगता है। खुजलाने पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ होकर पक जाती हैं। इसमें सूई कोचने-जैसी पीड़ा होती है। यह स्थान कठोर बन जाता है। ऐसी अवस्था में आरोग्य-वर्द्धनी वटी का उपयोग दूध के साथ करावें तथा ऊपर से सारिवा-द्यासव १ तोला बराबर जल मिला कर पिलावें। गन्धकरसायन से भी अच्छा लाभ होता है।

वात-पित्त-कफ दोषों से उत्पन्न ज्वरों में इसके प्रयोग

से लाभ होता है। इसी तरह बद्धकोष्ठ जनित ज्वर, आमाशय की विकृति से अपचन जनित ज्वर, बहुत दिनों तक बारबार आने वाला ज्वर और पित्त की विकृति से उत्पन्न होने वाले ज्वरों में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

मल संचय हो जाने के कारण कफ की वृद्धि हो मन्दाग्नि हो जाने पर जी मिचलाना, वमन होना तथा उसमें कफ का झाग (फेन) निकलना, भूख न लगना, पेट भारी हो जाना, भोजन करने के बाद ही जी मिचलाना तथा बमन होने की इच्छा होना, कभी-कभी बमन भी हो जाना, खाँसी, कफ सफेद तथा लसदार गिरना, ऐसी अवस्था में आरोग्य वर्द्धनी दें। इससे मल संचय दूर हो ; कफ के विकार दूर हो जाते हैं, और यह पित्त को बलवान बनाकर मन्दाग्नि को दूर करती है। जिससे अन्नादि का भी पचन ठीक से होने लगता है तथा कफ नष्ट हो जाने से बमनादि उपद्रव भी दूर हो जाते हैं।

यह गुटिका दीपन-पाचन भी है। अर्थात् पाचक पित्त की कमजोरी से अन्नादि की पाचन क्रिया में गड़बड़ी होने लगती है जिससे अपचन बराबर बना रहता है। आज-कल ऐसे रोगों की कमी नहीं है और इस रोग से छुटकारा पाने के लिये लोग अनेक प्रकार के खट्टे-मीठे तथा चरपरे-जायकेदार चूर्ण का भी सेवन करते रहते हैं। ऐसे चूर्णों के सेवन से तात्कालिक लाभ तो होता है, परन्तु बाद में रोग फिर जैसे का तैसा ही हो जाता है।

इसके लिये आरोग्यवर्द्धनी वटी का उपयोग करना बहुत श्रेष्ठ है। क्योंकि यह पाचक पित्त को सबल बना, पाचन शक्ति प्रदान करती है जिससे मन्दाग्नि दूर हो, अन्नादिक पचन क्रिया ठीक से होने लगती तथा भूख भी खुल कर लगने लगती है।

हृदय की निर्बलता में—मल संचय अधिक होने के कारण बद्ध-कोष्ठ हो जाता है। जिससे कफादि की वृद्धि हो जाती और मन्दाग्नि भी हो जाती है। फिर अन्नादिक का पचन ठीक से न होने के कारण रस-रक्तादि भी उचित परिमाण में नहीं बन पाता। अतः रक्तकणों की वृद्धि न हो कर शरीर में जल भाग की ही वृद्धि होती रहती है।

ऐसी अवस्था में सर्वाङ्ग में सूजन हो कर हृदय कमजोर हो जाता है, जिससे हृदय अपना कार्य करन में असमर्थ हो जाता है। ऐसे समय में आरोग्यवर्द्धनी वटी पुनर्नवादि क्वाथ के साथ देने से बहुत लाभ करती है।

प्राचीन-मलावरोध होने से आँत में मल चिपक जाता है। जिससे आँत में सेन्द्रिय विष की उत्पत्ति हो मल शुष्क हो जाता है। मल शुष्क होने से आँत की दीवारें सख्त (कठोर) हो जाती हैं। फिर आँतों की क्रिया में अन्तर पड़ जाता है और उसमें दर्द भी होने लगता है। यह दर्द साधारण चूरण-चटनी आदि से नहीं दबता जबतक कि मल की शुद्धि न की जाय। यह कार्य आरोग्यवर्द्धनी वटी त्रिफला क्वाथ के साथ अच्छी तरह कर देती है। इससे मल पिघल कर बाहर निकल आते हैं तथा आँत में कोमलता आ जाती है और वह अपने कार्य भी अच्छी तरह से करने लग जाती है।

—औ० गु० ध० शा०

इच्छाभेदी रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, काली मिर्च का चूर्ण प्रत्येक एक-एक तोला, सोंठ का कपड़ छान किया हुआ चूर्ण २ तोला और शुद्ध जयपाल (जमालगोटा) चूर्ण ६ तोला लें। पहले पारद-गन्धक की कज्जली बना उसमें अन्य दवाओं को मिला कर घोटें। फिर जम्बीरी निंबू के रस में १ दिन खूब घोट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें (कोई-कोई इस दवा का सिर्फ चूर्ण ही बना कर रखते हैं)।

—र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली (१ से २ रत्ती) प्रातः शीतल जल या चीनी के शर्बत के साथ दें।

गुण और उपयोग—रोगी की इच्छानुसार पेट को शुद्ध करने वाला यह तेज विरेचन है। यह कफ और वात को दूर करता है तथा आँतों में संचित विकार (मल) को निकालता और शूल को नष्ट करता है। रोगों की चिकित्सा करने से पहले पेट साफ कर लेना

आवश्यक रहता है। यह कार्य इसके सेवन से अच्छी तरह हो जाता है। परन्तु इसमें जमालगोटा है, वह पेट में गर्मी उत्पन्न करता एवं कभी-कभी ज्यादे दस्त भी ला देता है। अतः नाजुक स्त्री, पुरुष, बालक तथा गर्भवती स्त्रियों को नहीं देना चाहिये। इससे ज्यादे दस्त लगने पर गरम पानी पी लेना चाहिये। विरेचन के बाद खिचड़ी और दही खाना चाहिये।

जुलाब लेने की विधि—जब गोली खाने के बाद दस्त आना आरम्भ हो जाय, तो एक दस्त आने के बाद दो-तीन घूंट ठंढा जल पी लें। इसी प्रकार जितना घूंट ठण्ढा पानी पीया जायगा उतने ही दस्त आयेंगे। यही इस दवा में विशेषता है। जब दस्त बन्द करना हो तो थोड़ा-सा गर्म जल पी लेने से दस्त बन्द हो जाता है। बाद में दही-भात खायें। जुलाब लेने के एक दिन पहले घी मिली खिचड़ी खाकर कोष्ठ स्निग्ध कर लेना चाहिये। अत्यावश्यक होने पर बिना स्निग्ध कोष्ठ के भी ले सकते हैं, इसकी गोली को चूर्ण कर बराबर चीनी मिला कर भी दे सकते हैं।

यह रसायन रक्त-दोष, उपदंश, कुष्ठ, अजीर्ण, आमवृद्धि, मल-वृद्धि, कृमि, मलावरोध, कफप्रधान जलोदर आदि रोगों के नाश करने के लिये उत्तम है। कफ प्रधान जलोदर रोग में जल का शोषण करने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है।

कफवृद्धि के कारण कफवाहिनी स्रोतों का अवरोध हो जाता है और वायु की वृद्धि हो कर शरीर में आक्षेप जन्य बीमारी हो जाती है। जिससे अपतन्त्रक, अपतानक आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में कोष्ठ शोधन करने तथा कफ से अवरुद्ध (रुके हुये) स्रोतों का शोधन करने के लिये विरेचनीय औषधि की आवश्यकता होती है। इसके लिये इच्छाभेदी रस बहुत उपयोगी है।

पक्वाशय में मल संचय विशेष होने पर आँतें दूषित होने से ही सेन्द्रियविष उत्पन्न होता है। यह विष इतना उग्र होता है कि सम्पूर्ण शरीर में फैलकर रस-रक्तादि धातुओं को विकृत करके कुष्ठ सदृश रोग उत्पन्न कर देता है। इस रोग में समस्त शरीर पर काले

या लाल चकत्ते, खुजली सहित उत्पन्न होते हैं। जिससे रोगी अधिक बेचैन रहता तथा आँत में मीठा-मीठा दर्द भी होता रहता है। ऐसी अवस्था में इच्छाभेदी रस के उपयोग से विशेष लाभ होता है। —औ० गु० ध० शा०

उन्मत्त रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोंठ, पीपल, काली मिर्च प्रत्येक समान भाग लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना लें। फिर सोंठ, पीपल और मिर्च को कूट कपड़छानकर, चूर्ण बना, कज्जली में मिलाकर, धतूरे के पत्तों के रस में १ दिन मर्दन कर, छाया शुष्क करके रख लें। —रस संकेत कलिका

गुण और उपयोग—यह औषध खाने की नहीं है, नाक में नस्य के समान सुंघाने की है। सन्निपात ज्वर में संज्ञाहीन (बेसुध) होने पर तथा तन्द्रा अर्थात् आँख की झंपझंपी होने पर और अपस्मार आदि रोगों में संज्ञाहीन हो जाने पर इस नस्य के प्रयोग से लाभ होता है।

उन्मादगजकेशरी

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनसिल और धतूरे के बीज समान भाग ले कर चूर्ण करके वच के क्वाथ के और ब्राह्मी के रस की ७-७ भावना देकर रखें। —र० रा० सु०

मात्रा और अनुपान—२ से ४ रत्ती, घृत के साथ मधु अथवा पान के रस से दें।

गुण और उपयोग—यह वातादि (त्रिदोष) जन्य उन्माद (पागलपन) अपस्मार (मृगी) आदि की श्रेष्ठ दवा है। दिमाग की कमजोरी से होने वाले रोग—मूर्च्छा (बेहोशी), हिस्टीरिया, अनिद्रा आदि रोग इसके सेवन से नष्ट होते हैं। भूतोन्माद, प्रेत पिशाचादि जन्य पागलपन के लिये भी इसका प्रयोग करने से अच्छा लाभ होता है।

यह मन और बुद्धि को प्रसन्न तथा विकसित करता है और धातु

(रस-रक्तादि) की विषमता को दूर कर समता स्थापित करता है। वात वृद्धि के कारण त्वचा रूक्ष हो गयी हो, तथा शरीर दुबला और श्याम (काला) वर्ण का हो गया हो तो इस रसायन के देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। इससे वात की शान्ति होकर उससे उत्पन्न होने वाले विकार भी दूर हो जाते हैं। वात प्रधान रोग को शान्त करने के लिये ब्राह्मी रस के स्थान पर महारास्नादि क्वाथ के रस से भावना देने से उत्तम और शीघ्र लाभ पहुँचाता है।

एकांगवीर रस

रससिन्दूर, शुद्ध गन्धक, कान्त लौह भस्म, वंग भस्म, नाग भस्म, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, तीक्ष्ण लौह भस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल सब समान भाग लेकर चूर्ण करने योग्य दवा को कूट-कपड़छान चूर्ण कर भस्मादिक दवा मिला १ दिन तक खूब घोटें। फिर उसे त्रिफला, त्रिकुटा, संभालू, चित्रक, अद्रक, सहजना, कूठ, आँवला, कुचला, आक, धतूरा और अदरक के रस में यथाक्रम ३-३ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना कर रख लें। —वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली, प्रातः-सायं शहद अथवा वातनाशक क्वाथ के साथ देवें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से पक्षाघात (लकवा), अर्दित, गृध्रसी, एकाङ्गवात, अर्धाङ्ग वात, आदि वात विकारों में लाभ होता है। किन्तु पक्षाघात में इसका विशेष उपयोग किया जाता है। इस रस में कान्त लौह, नाग, अभ्रक भस्म आदि उत्तम तथा जल्दी फायदा करनेवाली दवाएँ पड़ी हुई हैं, अत यह दवा वात विकार में निश्चित रूप से लाभ पहुँचाती है। यह रसायन बहुत तीक्ष्ण है, अतः वातप्रधान या कफ वातप्रधान विकारों में विशेष गुणदायक है। साथ ही यह बृंहण, जीवनीय, विषघ्न और कीटाणु नाशक भी है।

शारीरिक अवयवों (हाथ-पाँव, आँख, कान, नाक आदि) की चेतना शक्ति और इसकी क्रिया (संचालनादि क्रिया) का नष्ट हो

जाना ही पक्षाघात कहलाता है। इन दोनों में से किसी एक का ह्रास हो जाने से अपूर्ण पक्षाघात तथा दोनों शक्ति का नाश हो जाने से सम्पूर्ण पक्षाघात कहा जाता है। कई कारणों से होने की वजह से इसके भेद भी अनेक होते हैं। जिनमें सबसे विशेष त्रासदायक उपदंशजन्य होता है, क्योंकि उपदंशजन्य पक्षाघात में रक्त और वात-वाहिनी दोनों नाड़ियाँ दूषित हो जाती हैं। अतः यह अधिक दिन तक कष्ट देता है। कभी-कभी विष की उग्रता के कारण अथवा शीत वायु या शीतप्रदेश और शीतकाल में ठंडी चीजों का सेवन विशेष करने से भी पक्षाघात हो जाता है। हृदय की निर्बलता के कारण मानसिक दुःख की वेदना सहन करने में असमर्थ मनुष्य को भी यह रोग होता है। ऐसे मनुष्य को जब विशेष मानसिक क्षोभ होता है, तो अकस्मात् सम्पूर्ण शरीर की वातवाहिनी और रक्तवाहिनी नाड़ियाँ दूषित हो जाती हैं और उनमें दूषित रक्त संचय होने के कारण पक्षाघात हो जाता है। रक्त-संचय की अधिकता से रक्तवाहिनी नाड़ियाँ उसका भार वहन करने में असमर्थ हो जाती है। अतः वे नाड़ियाँ फूट जाती हैं और उनमें से रक्तस्राव होने लगता है।

पक्षाघात की उत्पत्ति में जैसे साधारणतया इसके दो कारण (चेतना शक्ति का ह्रास तथा उसकी क्रिया का नाश होना) होते हैं। इसी तरह उसकी चिकित्सा में भी दो भेद होते हैं, एक तो विकृत रक्त को सुधारना और दूसरा दूषित रक्तवाहिनी नाड़ी के घावों का पूरण करना। ऐसी दशा में आयुर्वेदोक्त दूषित रक्त का सुधार करनेवाली प्रसिद्ध दवाइयाँ जैसे—शुद्ध शिलाजीत, ताप्यादि लौह, गुग्गुलु, स्वर्णमाक्षिकभस्म आदि के प्रयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है। इन दवाओं के सेवन से दोनों काम हो जाते हैं, दूषित रक्त भी सुधर जाता है और क्षत की पूर्ति भी हो जाती है। परन्तु बीच में कुपथ्य करने से इस रोग के झटके पुनः आने लगते हैं। जिससे रोगी को पुनः कष्ट होने लगता है। अतः इन झटकों को दूर करने के लिये अर्थात् स्थायी रूप से रोग निवृत्ति के लिये इसका उपाय करना चाहिये। यह कार्य्य तभी हो सकता है, जब दूषित

वायु का सुधार होगा, क्योंकि रक्तसंचालन क्रिया वायु के ऊपर निर्भर है। वायु जितनी तीव्र गति से उसे संचालित करता है, वह (रक्त) उतने जोरों से चलता है। अतः यदि वायु की गति में वृद्धि हो गयी हो तो उसे शान्त कर अपनी अवधि के अन्दर लाने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि वायु अपनी गति पर आ जायगा तो रक्त की गति भी मर्य्यादित हो जायगी। यह प्रकृतिसिद्ध बात है। क्योंकि इसका प्रभाव खासकर वातवाहिनी नाड़ी पर होता है। अतः यह उत्तेजित वायु को शान्त कर देता है तथा दूषित रक्त को भी सुधारता है। हृदय को बलबान बनाना भी इसका एक प्रधान कार्य्य है।

धनुर्वात—शरीर के किसी भाग में घाव हो जाय, और वह अधिक दिनों तक बहता ही रहे, उसकी चिकित्सा पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाय, तो धनुर्वात के उत्पादक कीटाणुओं का प्रवेश उसके द्वारा हो जाता है। यह कीटाणु रक्तवाहिनी और स्नायुस्थित वायु को दूषित कर शरीर को नवा (टेढ़ा कर) देता है। इसे ही धनुर्वात कहते हैं। इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में बार-बार झटके आते रहते हैं। ये झटके इतने जोर के आते हैं कि रोगी की आँखें मिच जाती हैं। कभी-कभी दर्द के मारे बेहोशी भी हो जाती है, दाँती बंध जाती है इत्यादि भयंकर लक्षण उपस्थित हो जाते हैं। इसकी उग्रावस्था में कालकूट रस से बहुत लाभ होता है। किन्तु; जब उग्रावस्था शान्त हो जाय तब एकांगवीर रस का सेवन करना उपयोगी है। —औ० गु० ध० शा०

कनक सुन्दर रस

शुद्ध गन्धक, शुद्ध सिगरफ, शुद्ध सुहागा, शुद्ध विष (बच्छनाग), कालीमिर्च, पिप्पली चूर्ण, और शुद्ध धतूरे के बीज समान भाग लेकर भाँग के रस से १ पहर मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखा कर रख लें। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली दिन भर में २ बार जल, मट्ठा, या सौंफ के अर्क से दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन अतिसार, संग्रहणी और ज्वरातिसार में विशेष उपयोगी है। छोटे-छोटे बच्चों को दाँत निकलने के समय जब पतले दस्त होने लगते हैं उस अवस्था के लिये यह बहुत श्रेष्ठ दवा है। यह अग्नि दीपक और वेदना शामक है। उष्ण वीर्य होने के कारण पित्त प्रधान रोगों में इसका उपयोग किसी सौम्य औषध के साथ करना चाहिये। संग्रहणी और अतिसार में यदि आम दोष न हो तो इसका उपयोग करना अच्छा है। इस रस के द्वारा शरीर स्थित वेदना दूर होती है और पाचक पित्त पर्य्याप्त मात्रा में बनता है।

छोटे-छोटे बच्चों के दाँत निकलते समय पतले दस्त होने लगते हैं, परन्तु यदि इसमें वात विशेष प्रकुपित हो जाता है, तो बच्चे की परेशानी बढ़ जाती है। इसमें—पतले और अपचित दस्त होने लगते हैं, दस्त में दूध फटा हुआ तथा छिछड़ेदार निकलता है। दस्त पीला और पानी-सा होता है। बच्चा दिन-प्रतिदिन दुर्बल होता चला जाता है। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। अधिक समय रोता ही रहता तथा एक जगह स्थिर न रहकर घूमने की इच्छा विशेष हो जाती है। ऐसा बच्चा घूमाने से बड़ा खुश रहता है। बच्चा बार-बार मसूड़े को दबाता रहता है और उसे नींद बहुत कम आती है। आँखों की पलकें सूजी हुई रहती हैं तथा थोड़ा बुखार भी हो जाता है। ऐसी दशा में कनक सुन्दर रस मधु में मिला कर देने से बहुत लाभ होता है। क्योंकि यह रसायन वात शामक है, अतएव यह वात को शमन कर देता है फिर इसके उपद्रव धीरे-धीरे अपने आप शान्त हो जाते हैं।

आँव मिश्रित संग्रहणी और ग्रहणी में आम को पचाने के लिये प्रथम दो एक रोज लंघन कराने के बाद ही इसका प्रयोग करना चाहिये। दस्त बार-बार और आँव मिश्रित थोड़ा रक्त के साथ गिरना, दस्त के समय पेट में, विशेष कर आँतोंमें मरोड़ जैसी वेदना होना, यह वेदना ज्यादे जोर से छींकने पर कम मालूम होना। ऐसी दशा में कितने वैद्य अफीमवाली दवा देकर उस वेदना को शमन करने की

निरर्थक चेष्टा करते हैं। अफीम स्तम्भक होने की वजह से आँतों में स्थित सूक्ष्म (छोटी) मांस पेशियाँ संकुचित हो, आँव और दूषित रक्त को रोक देती है। जिससे दस्त में तो कमी पड़ जाती, किन्तु यह दूषित रुकी हुई आँव और मल अवसर पाकर बहुत उग्र रूप धारण कर विशेष कष्ट देता है। अतः अफीमवाली दवा न दे कर कनक सुन्दर रस देने से विशेष लाभ होता है, क्योंकि इसमें भाँग का रस तथा धतूरे के वीज पड़े हुए हैं। ये दोनों वात शामक तथा पीड़ा नाशक हैं। अतः ये दोनों कार्य साथ-साथ ही हो जाते हैं।

वातातिसार में—दस्त बार-बार और थोड़े होते हों, दस्त में फेन भी आवे और आँव मिला हुआ दस्त हो, तो वातातिसार जानना। अतिसार में प्रधानतया आँतों की श्लैष्मिक कलाओंमेंसेस्राव होता है। ऐसी दशा में अफीम मिश्रित स्तम्भक ओषधियाँ देने से आँव रुक जाती है, किन्तु कुछ दिनों के बाद फिर वह प्रकुपित हो कर अतिसार उत्पन्न कर देती है। अतएव केवल दस्त बन्द करनेवाली दवा का प्रयोग न कर स्राव को भी जो रोक दे; ऐसी दवा का प्रयोग करना चाहिये। इसके लिये "कनक सुन्दर रस" बहुत उपयुक्त दवा है। क्योंकि इसमें धतूरे के बीज पड़े हुए हैं, जो स्राव को कम करने वाले हैं। और भाँग वात को शमन करते हुए दस्त को भी कम कर देती है। अतः इसका प्रयोग करना उत्तम है।

किसी गरिष्ठ (वायुकारक) पदार्थ के भोजन कर लेने से पेट फूल जाता हो तथा जलन के साथ डकारें आती हों और पतले दस्त भी लगते हों, कुछ-कुछ बुखार भी हो जाया करता हो, तो कनक सुन्दर रस देने से वायु का शमन हो जाता है और पाचक पित्त जागृत हो, सब आमजन्य विकार को पचा देता तथा दस्त भी कम हो जाते हैं।

अग्निमान्द्य—पाचक पित्त की कमी के कारण मन्दाग्नि हो जाती है और खायी हुयी चीजें अपचित रूप में ही आमाशय में पड़ी रह जाती है। आमाशय निर्बल एवं शिथिल हो अपने कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। पाचक पित्त की निर्बलता के कारण

आमाशय, पित्ताशय और अग्न्याशय कमजोर हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि अपचित (बिना पचे हुए) दस्त होना प्रारम्भ हो जाता है। ये दस्त पतले और बार-बार थोड़े-थोड़े होते रहते हैं। दस्त में बहुत बदबू आती है। ऐसी स्थिति में कनक सुन्दर रस के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। —औ० गु० ध० शा०

कर्पूर रस

कपूर, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध अफीम, नागर मोथा, जायफल, इन्द्रयव प्रत्येक समान भाग ले कर प्रथम कपूर और अफीम को जल के साथ घोंटें। उनके अच्छी तरह मिल जाने पर अन्य वस्तुओं का सूक्ष्म कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिला कर, ३ घण्टा जल से मर्दन कर, २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली, जल अथवा शहद या अनार के शर्बत के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन—कपूर और हिंगुल तथा अफीम के मिश्रण के कारण अतिसार में अच्छा लाभ करता है। पेचिस में दही के साथ देने से लाभ होता है। किन्तु इसके देने से पहले एरण्ड तैल से पेट की आँव निकाल दें।

आँव रहित दस्तों और खूनी दस्तों में इसका कार्य अच्छा होता है। संग्रहणी में भी कपूर रस का मिश्रण हितकर होता है। हैजा में भी इसके प्रयोग से लाभ होता है। कपूर और अफीम के मिश्रण होने की वजह से दस्त और वमन दोनों दूर हो जाते हैं। पित्तातिसार में यह विशेष लाभदायक है।

संग्रहणी रोग में भी इसका प्रयोग किया जाता है, किन्तु वातज और पित्तज संग्रहणी में यह विशेष फायदा करता है। वात-जन्य संग्रहणी में वात प्रकुपित हो कर जठराग्नि को मन्द कर देता है। जिससे अनपच और खट्टी डकारें आना, मुंह और कण्ठ से जलन, कमजोरी, आँखों के सामने अन्धकार छा जाना, पेट में दर्द, सन्धि (जोड़ों) में दर्द, हृदय निर्बल पड़ जाना, अरुचि, मुँह का स्वाद फीका

हो जाना, खाना थोड़ा-सा भी खाने के बाद पेट में दर्द, दस्त पतला और थोड़ा-थोड़ा बार-बार होना, टट्टी में देर तक बैठे रहना, दस्त की हाजत बराबर बनी रहे ऐसी हालत में कपूर रस के प्रयोग से विशेष और शीघ्र लाभ होता है, क्योंकि इसमें अफीम वेदना को दूर करती और जायफल आँतो में ग्राहक शक्ति उत्पन्न कर दस्त रोकने की क्षमता उत्पन्न करता है, फिर धीरे-धीरे रोग अच्छा हो जाता है। इसी तरह पैत्तिक संग्रहणी में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

—औ० गु० ध० शा०

कफकुठार रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, लौहभस्म, ताम्रभस्म सब बराबर ले कर, प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर काष्ठौषधियों को कूट, कपड़छान चूर्ण कर कज्जली के साथ छोटी कटेली के फलों के रस, कुटकी और धतूरे के पत्तों के स्वरस के साथ दो-तीन पहर तक घोटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

—र० रा० सुं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली पान के रस और मधु के साथ अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रस अत्यन्त तीक्ष्ण है। अतः पित्त से उत्पन्न होवाले रोग में इसका प्रयोग किसी सौम्य औषध के साथ करना चाहिये।

कफ विकार में—छाती में कफ संचय होकर खाँसी उत्पन्न हो गयी हो या खाँसी के साथ कफ कम निकलता हो, छाती पर कुछ बोझ-सा मालूम पड़े, खाँसने पर छाती में दर्द हो, साँस लेने में कष्ट हो, ऐसी दशा में कफ को पिघला कर बाहर निकालने के लिये कफ-कुठार रस का प्रयोग किया जाता है। क्योंकि इसमें लौह और अभ्रकभस्म होने से कफ पिघलकर निकलने लगता है। श्वास-नली के साफ हो जाने के कारण श्वासोच्छ्वास लेने में भी कष्ट नहीं होता है।

इसी तरह—जब कफ विशेष प्रकुपित होकर खाँसी उत्पन्न कर देता है, साथ में ज्वर और खाँसी के साथ कफ भी निकलता है, और नवीन कफ भी बनता रहता है, जिससे ज्वर और खाँसी नहीं रुकती। ऐसी बढ़ी हुई खाँसी को दबाने के लिये कितने वैद्य अफीम का प्रयोग कर बैठते हैं, किन्तु इससे सिवाय नुकसान के लाभ कुछ भी नहीं होता, क्योंकि अफ़ीम स्तम्भक है। अतः कुछ देर के लिये खाँसी को बन्द तो कर देती है, किन्तु यह संचित और दूषित कफ पुनः प्रकु-पित हो खाँसी और ज्वर को उत्पन्न कर देता है। ऐसी अवस्था में कफकुठार रस के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है, क्योंकि इसमें धतूरे के रस के अतिरिक्त कुटकी और कटेली फलों की रस की भावना देने से यह बढ़े हुए कफ का स्राव और श्वास कष्ट को भी शमन करता है।

कफज्वर में—कफ प्रकोप के कारण मन्द-मन्द ज्वर होना, नाड़ी की गति भी मन्द हो, शरीर गीला-सा बना रहना, भूख मन्द हो जाना निद्रा ज्यादे आना, पसीना चलते रहना, मुंह भारी मालूम पड़ना, आवाज में भी भारीपन रहना, पेशाब स्वच्छ तथा साफ होना, आलस्य बना रहना, खाँसी के वेग बढ़ने के साथ-साथ छाती में भी दर्द बढ़ते जाना, कफ निकलने पर वेदना कम होना—ऐसी स्थिति में कफकुठार रस का उपयोग करने से अच्छा लाभ होता है।

—औ० गु० ध० शा०

कफकेतु रस

शङ्खभस्म, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सुहागे की खील प्रत्येक १-१ तोला, शुद्ध बच्छनाग ५ तोला लेकर एकत्र कर खरल करके, अदरक रस की तीन भावना देकर, १-१ रत्ती की गोली बना, सुखाकर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली चार-चार घण्टे के बाद अदरक रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—कफजन्य बुखार, खाँसी, श्वास और जुकाम में इस दवा से बहुत लाभ होता है। कफ के विकारों में

शिरदर्द और कण्ठ में कफ जमा होने पर इसका सेवन करना बहुत उपकारी है।

कफचिन्तामणि रस

रससिन्दूर ३ तोला, शुद्ध हिंगुल, सुहागे की खील, इन्द्रजौ, भाँग के बीज और कालीमिर्च प्रत्येक १-१ तोला लेकर अदरक के रस में चार घण्टे तक घोट चने के बराबर गोलियाँ बना सुखाकर रख लें।

—र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१ गोली से ३ गोली तक, अदरक रस तथा मधु से या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से वात और कफ के रोग नष्ट होते हैं। कफ की विशेषता होने पर अन्य ओषधियों की अपेक्षा यह विशेष फायदा करता है, क्योंकि इसमें रससिन्दूर है। अतः यह कफ को शमन करता है। यह बाजीकर तथा पौष्टिक रसायन भी है।

कल्पतरु रस

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध मीठा तेलिया १ तोला, शो० मैनसिल १ तोला, विमल (रूपामक्खी) भस्म १ तोला, सुहागे की खील १ तोला, सोंठ, पीपल २-२ तोला तथा कालीमिर्च १० तोला लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना, फिर अन्य दवाओं का कूट कपड़छान चूर्ण कर कज्जली में मिला आठ घण्टें तक घोटें। जब सब दवा एकरस हो जाय तब शीशी में भरकर रख लें।

—भा० प्र०

मात्रा और अनुपान—१ रत्ती, अदरक रस और मधु के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान से दें।

गुण और उपयोग—यह रस खाने और सूंघने दोनों कामों में आता है। इस रसायन के सेवन से वात-कफ-ज्वर—अर्थात् दूषित वायु और कफ से उत्पन्न बुखार, खाँसी, श्वास, प्रतिश्याय (जुकाम) एवं बुखार में अंगों का जकड़ना तथा दर्द होना, मुख और नाक से

लार और पानी टपकना, अग्निमान्द्य, अरुचि आदि नष्ट हो जाते हैं। इसका नस्य देने से कफ और वायु से उत्पन्न शिरदर्द दूर होता है तथा मूर्च्छा (बेहोशी) प्रलाप, छींक की रुकावट आदि में इसका नस्य देने से बहुत लाभ होता है।

कल्याणसुन्दर रस

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, चाँदीभस्म, सोनाभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध सिंगरफ ये सब चीजें समान भाग ले कर चित्रक के क्वाथ में घोटें। फिर हस्तिशुण्डी के रस की सात भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली प्रातः-सायं गरम जल के साथ दें। फुफ्फुस विकारों में मधु और अदरक रस के साथ, धातु क्षीणता में धारोष्ण दूध के साथ तथा हृदय और मस्तिष्क के रोगों में सेव या आँवले के मुरब्बे के साथ देना चाहिये।

गुण और उपयोग—स्वर्ण, अभ्रक आदि उत्कृष्ट उपादानों के कारण यह उत्तम रसायन है। फेफड़े के विकारों पर इस रसायन का बहुत अच्छा प्रभाव होता है। न्यूमोनिया और उरस्तोय (फुफ्फुसावरण में प्रदाह होकर जल भर जाने) में संचित कफ और जल का शोषण करके यह सब उपद्रवों को नष्ट करता है। यह हृदय और मस्तिष्क को बल देता है तथा इनके विकार, शूल, भ्रम, मूर्च्छा, संन्यास आदि को दूर करता है। सूखी खाँसी, श्वास, अरुचि, मन्दाग्नि तथा मूत्रपिण्ड के विकार भी इससे नष्ट हो जाते हैं। प्रमेह, नपुंसकता और बलवृद्धि के लिये भी यह अच्छी दवा है।

कस्तूरीभैरव रस

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध बच्छनाग, सुहागे की खील, जायफल, जावित्री, कालीमिर्च, छोटी पीपल, कस्तूरी और कपूर ये सब दवा सम भाग लें। पहले पान के रस में शुद्ध हिंगुल और बच्छनाग मर्दन करें। पीछे कस्तूरी और कपूर मिलाकर मर्दन करें। बाद अन्य दवाओं का

कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिला, पान के रस में मर्दन कर १-१ रत्ती की गोली बना छाया में सुखाकर रख लें। —भै० र०, सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली पान के रस, मधु अथवा दूध में मिलाकर दें।

गुण और उपयोग—इसका उपयोग वात ज्वर, कफज्वर और वात-कफ प्रधान ज्वर तथा सन्निपात ज्वर में करें। सन्निपात ज्वर में जब पसीना अधिक हो कर शरीर ठण्डा होने लगे, हाथ-पाँव ठण्ढे हों और नाड़ी क्षीण होने लगे, तब इससे विशेष लाभ होता है। इस योग में यदि बच्छनाग के स्थान में शुद्ध कुचला और अम्बर एक-एक भाग डाल कर योग तैयार करें, तो यह नाड़ी, हृदय की दुर्बलता और वात रोगों में विशेष लाभ देता है और बाजीकर गुणयुक्त होता है।

वात श्लैष्मिक या पित्त श्लैष्मिक ज्वर की प्रथमावस्था में—खाँसी, सर्वाङ्ग में वेदना और ज्वर के तीव्र होने पर इसका सेवन कराया जाता है। सन्निपात ज्वर की प्रथमावस्था म जब उपद्रव कम हो, रोग दुःसाध्य न हो गया हो, तन्द्रा, सन्धियों में वेदना, पसलियों में दर्द, खाँसी आदि लक्षण हों, तो विशेष उपकार होता है। यह मस्तिष्क की ओर रक्त संचार को अधिक नहीं होने देता है। प्रसूत ज्वर में भी यह अच्छा काम करता है। यह रसायन होने के कारण कमजोरी को दूर कर शरीर में बल और वीर्य्य की वृद्धि करता है। पैत्तिक विकार में किसी सौम्य औषध के साथ देना चाहिये।

कस्तूरीभैरव रस (बृहत्)

कस्तूरी, कपूर, ताम्रभस्म, धाय के फूल, केवाँच के बीज, रौप्य भस्म, सुवर्ण भस्म, मोतीपिष्टी या भस्म, प्रवाल भस्म, लौह भस्म, पाठा, वायविडंग, नागरमोथा, सोंठ, खस, शुद्ध हरताल या माणिक्य रस, अभ्रक भस्म और आँवला ये सब द्रव्य समभाग लें। पहले वनस्पतियों का सूक्ष्म (कपड़छान) चूर्ण कर, भस्में मिला, आक के पत्तों के रस से दो दिन मर्दन करें। पीछे उसमें कस्तूरी और कपूर

डालकर एक दिन आक के पत्तों के रस से मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखा लें। —भै० र०, सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ गोली, अदरक रस या पान के रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रस सोना, मोती, प्रवाल, कस्तूरी आदि गुणकारी बहुमूल्य ओषधियों के योग से बनाया जाता है। अतः यह स्वल्प कस्तूरी भैरव रस से विशेष गुणकारी है। इस रस का सब प्रकार के सन्निपात ज्वरों में—अधिक पसीना, शीतांग (शरीर ठण्ढा हो जाना) प्रलाप (अक-बक बकना), तन्द्रा, नाड़ी की क्षीणता आदि लक्षणों में दोषों का बलाबल देख कर अदरक का रस, पान का रस और मधु इनमें से किसी एक के साथ दें। सूतिका ज्वर में देवदार्व्यादि क्वाथ के साथ दें। विषम ज्वर में—अदरक रस और मधु के साथ देना चाहिये।

नवीन वात पैत्तिक, वात श्लैष्मिक या पित्त कफ ज्वर यदि क्रमशः प्रबल होकर १०४ या १०५ डिग्री तक पहुंच जाय और उसमें तन्द्रा, कास, प्यास और अतिसार आदि लक्षण दिखाई दें, ज्वर का विराम न होकर ज्वर कष्टसाध्यावस्था में पहुँच रहा हो, तो इसका प्रयोग कराना चाहिए। तिजारी, चौथिया प्रभृति मलेरिया ज्वर जब दीर्घ काल का होकर पूरा शान्त होने के बाद वा पूरा शान्त न हुआ हो और उनमें अतिसार, खाँसी आदि उपद्रव और तापांश अचानक बढ़ जायं, तो इस रसायन का सेवन कराना चाहिये।

शीतांग सन्निपात आदि ज्वरों में भी असह्य दाह, पसीना, खाँसी, तन्द्रा, पार्श्वशूल, नाड़ी क्षीण होना, नाड़ी अपना स्थान छोड़ दे, ज्ञानहीनता, कम्प, देह शीतल हो जाना प्रभृति कष्टसाध्य लक्षण होने पर और कभी ज्वर का तापमान १०४ से १०५ तक हो, अथवा इससे भी न्यूनाधिक (९५-९६ तक आ जाय) हो जाय, अथवा निमोनियाँ वा प्लूरिसी के सम्पूर्ण लक्षण विद्यमान हों, तो रोग की वृद्धि के दिन तक इस रसायन का प्रयोग तीन-चार बार करें। परन्तु यदि रक्त का संचार मस्तिष्क की ओर अधिक हो रहा हो, और

उसी के कारण तापांस अत्यन्त बढ़ा हुआ हो, मूर्च्छा हो तथा श्वास भी प्रबल हो, तो इसका प्रयोग सावधानी से करें।

द्विदोषज वा मलेरिया और सन्निपात ज्वरों की निरामावस्था में जब लक्षण या उपद्रव कम हो रहे हों और ज्वर प्रतिदिन नियत समय पर बढ़ जाता हो, अथवा किसी भी समय पूरा न हटता हो, भूख न लगती हो, तो दिन में सिर्फ एक बार इसका प्रयोग करें।

इसी प्रकार सतत आदि धातुस्थ विषम ज्वरों में भी अथवा जब प्लीहावृद्धि के कारण होनेवाला ज्वर स्वभावतः ही वा किसी अपथ्य के कारण नवज्वर की तरह बढ़ जाय या दीर्घकालिक हो जाय और कभी ज्वर उतरता न हो, तो इस रसायन का सेवन करावें। सूतिकारोग की तरुणावस्था में भी पूर्ववत् ज्वराधिक्य तथा कास आदि उपद्रव होने पर अल्प मात्रा में इसका सेवन कराया जा सकता है।

विसूचिका में भी जब रोगी का श्वेत रंग का वमन और दस्त हो रहे हों, मत्रावरोध हो, मुख का वर्ण नीला और आँखें अन्दर को धँस गयी हों, नाड़ी क्षीण हो गयी हो, तो इस रसायन के सेवन कराने से लाभ होता है।

कस्तूरीभूषण रस

रससिन्दूर, अभ्रक भस्म, सुहागे की खील, कस्तूरी, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, दन्ती की जड़, भाँग के बीज,कपूर प्रत्येक सम भाग लेवें। प्रथम काष्ठौषधियों को कूट, कपड़छान चूर्ण बना लें, फिर भस्मों में मिला कर अदरकरस की सात भावनाएँ दें। बाद में अदरक के रस में कस्तूरी और कपूर को खूब घोटकर दवा में मिला, कुछ देर तक घोटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें।

—भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली, सुबह-शाम अदरकरस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—कफ-वातजन्य रोग, मन्दाग्नि, पित्तकफा-

धिक्य रोग, त्रिदोषज घोर कास, श्वास, क्षय, ऊर्ध्वजत्रुगत रोग, विषम ज्वर प्रभृति रोगों का नाशक है।

श्लैष्मिक या वातश्लैष्मिक ज्वर की प्रथमावस्था में तन्द्रा, कास, पार्श्वशूल आदि लक्षण हो, ज्वरताप अधिक हो, तो इसका सेवन करना चाहिये। इसी प्रकार श्लेष्म प्रधान या वातश्लेष्म प्रधान सन्निपात ज्वरों की प्रथमावस्था में कास, तन्द्रा, सिर-दर्द, सर्वाङ्गशूल और पार्श्वशूल आदि लक्षण हो, ज्वर १०३ डिग्री से ऊपर हो तो इसका सेवन करना चाहिये। त्रिदोष (सन्निपात ज्वर) में जिस समय हाथ-पैर ठण्ढे हो रहे हों या नाड़ी की गति क्षीण होती जा रही हो, उस समय कस्तूरी भूषण रस देने से नाड़ी की गति ठीक हो जाती है और पैर भी गरम होने लगते हैं। सन्निपात ज्वर में अवस्थानुसार दूसरी ओषधियों का तो प्रयोग करते ही रहना चाहिये, किन्तु साथ ही साथ कस्तूरी भूषण रस का भी प्रयोग करते रहने से सन्निपात ज्वर में नये उपद्रव नहीं बढ़ पाते हैं। शोथयुक्त विषम ज्वर में और कास-श्वास में भी इसके सेवन से लाभ होता है।

क्रव्याद रस

शुद्ध पारा ४ तोला, शुद्ध गन्धक ८ तोला, ताम्र भस्म १ तोला, लौह भस्म १ तोला, पहले पारा और गन्धक की कज्जली बना, फिर लौह और ताम्र भस्म डालकर खब महीन घोटना चाहिये। इसके बाद पर्पटी की तरह गला कर एरण्ड के पत्तों पर पर्पटी बना और इस पर्पटी का चूर्ण बना एक लोहे के पात्र में डालकर उसमें ५५ सेर जंबीरी नीबू का रस और डाल दें। यदि पात्र कलई किया हुआ हो तो और अच्छा, फिर इस रस को मन्द-मन्द आँच से जलाएँ। जब गाढ़ा हो जाय तब इसमें पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ के क्वाथ से पचास भावना दें, फिर अम्लवेत के क्वाथ से भी पचास भावना देकर सुखा कर रख लें। सूखने पर भुना सुहागा ७ तोला, विड्नमक ३।। तोला और काली मिर्च २४।। तोला इसमें कूट कपड़छान

चूर्ण बना, मिला दें। बाद में चणकाम्ल (चना के क्षार का पानी) की सात भावना देकर सुखा लें, इसे शीशी में भर कर सुरक्षित रख लें अथवा १-१ रत्ती की गोली बना कर रख लें। —र० र० स०

मात्रा और अनुपान—२ से ४ गोली तक सेन्धा नमक मिला हुआ मट्ठा (छाछ) या नीबू का रस, अथवा साधारण जल से भोजनोत्तर देना चाहिये।

गुण और उपयोग—अत्यन्त गरिष्ठ भोजन (देर से पचनेवाले) गेहूँ आदि घृत से बने भोज्य पदार्थ अति मात्रा में कण्ठ पर्यन्त खाकर, फिर एक गोली इसकी नमक मिली हुई छाछ (मट्ठा) के साथ पीने से खाया हुआ गरिष्ठ भोजन शीघ्र ही पच जाता है तथा अग्नि पुन: प्रदीप्त हो जाती और भूख भी लगती है।

यह रस संचित आँव को नष्ट करता तथा अनुपयुक्त उदर की वृद्धि (निकली हुई तोंद) और शरीर की स्थूलता को नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त अर्श, शूल, गुल्म रोग, प्लीहा, ग्रहणी, रक्तस्राव, वातिक ग्रन्थि आदि रोगों का यह नाशक है।

यह रस पाचक और अग्नि प्रदीपक है अर्थात् दीपन और पाचन के लिये यह बहुत प्रसिद्ध है। यह रस गरिष्ठ-से-गरिष्ठ भोजन को अधिक मात्रा में खा लेने पर भी ६ घण्टे में पचा देता है। इस रस के सेवन करनेवाले को दूध, फल वगैरह अधिक मात्रा में सेवन करना चाहिये। यह रस अग्निमान्द्य के साथ-साथ और भी अनेक रोगों को दूर करता है। उदर रोग, तिल्ली, जिगर और फेफड़े के रोगों में इससे बहुत लाभ होता है।

आम और कफ को पचा कर पाचक पित्त को यह सबल बना देता है। अजीर्ण, हैजा, गुल्म, आफरा और अरुचि में यह बहुत जल्दी लाभ करता है। भूख की शिकायत रहने वालों के लिये यह हितकर दवा है। जलोदर में भी इसका मिश्रण लाभदायक होता है।

पाचक पित्त की कमजोरी से जठराग्नि मन्द हो जाती है, जिससे खायी हुयी चीजें अच्छी तरह नहीं पचती है। क्रमश: आम-रस का संचय होने लगता है। आमसंचय विशेष रूप में होने से आमा-

जीर्ण, रसशेषाजीर्ण आदि विकारों की उत्पत्ति होती है। इसके अतिरिक्त पेट में दर्द, दस्त में कब्जियत, पतला दस्त होना आदि उपद्रव भी होने लगते हैं। ऐसी अवस्था में क्रव्याद रस को छाछ के साथ देने से दूषित आमरस पच कर बाहर निकल जाता है तथा इससे पाचक पित्त भी बलवान हो जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

अजीर्ण रोग पुराना हो जाने पर कोष्ठ में मल संचय होने लगता है। इस मल संचय से दूषित विष की उत्पत्ति होती है और यह विष आँतों में अधिक दिनों तक रह कर समस्त शरीर को दूषित बना देता है। जिससे हैजा, अलसक, विलम्बिका आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे समय में क्रव्याद रस का उपयोग करना चाहिये। क्योंकि यह संचित मल को ढीला करके निकाल देता और पित्त को जागृत करके पचनक्रिया को सुधार कर इससे होने वाले उपद्रव को भी रोक देता है।

विषमज्वर--मलेरिया बुखार अधिक दिन तक आने के बाद ज्वर छूटने पर भी प्लीहा बढ़ जाती है। साथ ही अग्नि भी मन्द हो जाती है। ज्वर भीतर-ही-भीतर बना रहता है, शरीर में आलस्य, भारीपन, कोई भी कार्य करने की इच्छा नहीं, शिर में भी दर्द बना रहना, रक्ताणुओं की कमी के कारण देह पाण्डु वर्ण का हो जाना, शरीर दुर्बल, अरुचि होना आदि लक्षण होते हैं। प्लीहा सख्त (कठोर) और बढ़ी हुई मोटी-सी मालूम पड़ती है। ऐसी अवस्था में क्रव्याद रस कुमार्यासव या लौहासव के साथ देने से लाभ करता है।

कफाधिक्य के कारण जठराग्नि मन्द होने से ग्रहणी-संग्रहणी आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यह कफजन्य होने के कारण इसके लक्षण भी कफज ग्रहणी के तरह ही होते हैं। ऐसी अवस्था में दीपन और पाचन ओषधि देने की आवश्यकता होती है। इस कार्य के लिये क्रव्याद रस गर्म जल के साथ देना अच्छा है।

श्वास रोग----मन्दाग्नि हो जाने की वजह से अजीर्ण हो जाता है, जिससे वायु की वृद्धि हो समूचे पेट में वायु भर जाता है और इस

वायु का निस्सरण नीचे से न हो कर ऊर्ध्वगामी हो जाता है। जिससे बार-बार डकारें आने लगती हैं। वायु की वृद्धि के कारण श्वास की भी गति में तेजी आ जाती है जिससे श्वास भी ज्यादे चलने लगती और हृदय निर्बल हो जाता है। फुफ्फुस के आस-पास बलगम (कफ) भर जाने के कारण फुफ्फुस भी बिगड़ जाता है। ऐसी अवस्था में क्रव्याद रस के प्रयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

—औ० गु० ध० शा०

क्रव्याद् रस (लघु)

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, लौह भस्म, पीपल, पीपलामूल, चित्रक, सोंठ और लौंग का चूर्ण प्रत्येक २-२ तोला, कालानमक १ तोला, सुहागे की खील २ तोला और काली मिर्च का चूर्ण २ तोला लें, प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बना लौह भस्म मिलावें, पश्चात् शेष दवाओं को कूट कपड़छान कर मिलाकर के जम्बीरी नीबू के रस की भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, इन्हें छाया में सुखा कर रख लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली, नमक, कालीमिर्च और जीरे का चूर्ण मिला हुआ मट्ठा अथवा गरम जल से दें।

गुण और उपयोग—यह भी गुण में वृहत् क्रव्याद रस के समान ही है। किन्तु उससे कुछ सौम्य है। यह अजीर्ण, मन्दाग्नि तथा अरुचि को दूर करता है, भोजन के बाद एक गोली गर्म जल के साथ अथवा वैसे ही निगल जाने से भोजन शीघ्र पचा देता है।

कृमिकुठार रस

शुद्ध कपूर ८ तोला, इन्द्रजौ, त्रायमाणा, अजमोदा, वायविडंग, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध बच्छनाग, केशर (या नागकेशर) प्रत्येक १-१ तोला लेकर चूर्ण करके एक दिन भाँगरे के रस में अच्छी तरह घोंटें, फिर पलाश-बीज-चूर्ण १५ तोला मिलाकर, ब्राह्मी और मूषाकर्णी के रस में घोटकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना सुखा कर रख लें।

—र० रा० सु०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली। बच्चों को आधी गोली सुबह और शाम खुरासानी अजवायन के क्वाथ से या शहद से अथवा सत्यानाशी की जड़ के क्वाथ या धतूरे के पत्तों के रस के साथ दें।

नोट—बच्चों को धतूरे के पत्ते का रस २-४ बूंद शहद से और बड़ों को ५-१० बूंद रस और १ तोला शहद के साथ देना चाहिये।

गुण और उपयोग—यह दवा कृमि रोग (पेट में कीड़े पड़ जाने) में बहुत गुणकारी है। बच्चों को विशेष कर यह रोग होता है, जिससे बच्चे पीले पड़ जाते हैं। उस समय इस दवा का प्रयोग करना चाहिये। पेट में कीड़े पड़ जाने के कारण पेट-दर्द, शिर-दर्द, पाण्डु रोग आदि उपद्रव को भी यह शान्त करता है।

पेट में कृमि हों और दस्त भी साफ होता हो तो ऐसी अवस्था में कृमि कुठार रस सिर्फ ७ रोज के सेवन से कीड़े मरकर पेट से बाहर निकल आते हैं। यदि दस्त साफ न होते हों, तो विडंगादि चूर्ण या कबीले का चूर्ण या एरण्ड तैल (कैष्टर आयल) इनमें से किसी एक का प्रयोग करा पहले जुलाब दें। बाद में कृमिकुठार रस देने से शीघ्र फायदा होता है, क्योंकि जुलाब देने से कीड़े कमजोर पड़ जाते और मर भी जाते हैं जिससे बड़ी सुविधा से बाहर निकल आते हैं। यदि पेट में कृमि अधिक हो गये हों तो तुरन्त निकालने की कोशिश करें। ऐसी हालत में रात के समय कृमि कुठार १ गोली सेण्टोनीन में मिलाकर देना और सुबह कैष्टर आयल (शु० अण्डी के तैल) १० बूंद पाव भर दूध में मिला कर पिला देना। इस उपाय से कृमि विकार नष्ट हो जायेंगे। बाद में कुछ रोज तक कुमार्य्यासव भोजन के बाद देते रहने से फिर कृमि रोग सर्वदा के लिये नष्ट होता है।

कृमिमुद्गर रस

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गंधक २ तोला, अजमोद ३ तोला, वायविडंग ४ तोला, शुद्ध कुचला ५ तोला, ढाक (पलास) के बीज ६ तोला लेकर सब को यथा विधि चूर्ण कर रख लें। —र० रा० सु०

मात्रा और अनुपान—२ से ३ रत्ती शहद के साथ दें, ऊपर से नागरमोथे का क्वाथ पियें। इसे ३ दिन तक सेवन करने के बाद चौथे दिन जुलाब लेना चाहिये।

गुण और उपयोग—कृमिमुद्गर रस—कृमिकुठार रस से तीक्ष्ण और उग्र वीर्य्य है। यह कफ संचय से होने वाले कृमियों को बहुत शीघ्र नष्ट करता है। कृमि रोग के कारण उत्पन्न होने वाले अरुचि, आफरा, वमन, पेट में दर्द आदि लक्षण उत्पन्न होने पर कृमि मुद्गर रस का सेवन करने से बहुत फायदा होता है, क्योंकि कफ से जो कृमि उत्पन्न होते हैं, वे प्रायः आमाशय में ही उत्पन्न होते और वहीं रहते भी हैं। कृमि मुद्गर रस अपनी तीक्ष्णता के कारण कफ को नष्ट कर पित्त को उत्तेजित करता है। जिससे आमाशय के विकार नष्ट हो जाते हैं।

आमाशय में जब कृमि उत्पन्न होते हैं तो आमाशय के चारों तरफ ये चक्कर लगाया करते हैं। ये कृमि—लाल, नीले, काले, सफेद आदि अनेक रूप के होते हैं। जब इनकी संख्या बढ़ जाती है, तो पेट में दर्द, अन्न में अरुचि, भूख नहीं लगना, वमन होना, हिचकी आना आदि लक्षण दोष-वृद्धि हो कर हो जाते हैं। ऐसे समय में शारीरिक धातु की वृद्धि भी नहीं होती, जिससे मनुष्य दुर्बल और कमजोर हो जाता है। फिर अनेक तरह के उपद्रव खाँसी, जुकाम आदि उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में कृमिमुद्गर रस के उपयोग करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

कोष्ठ (पक्वाशय) में कृमि उत्पन्न होने से दोष वृद्धि होकर—ज्वर, जी मिचलाना, देह में खुजली, कहीं-कहीं देह में खुजलाने से लाल चट्ठे पड़ जाना इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में कृमिमुद्गर रस के सेवन से अच्छा लाभ होता है।

यह दवा उत्तेजक होने के कारण कभी-कभी नुकसान भी कर जाती है। इसका कारण प्रथम तो यह होता है कि जब तक किसी भी दवा को जीवनीय शक्ति की सहायता नहीं मिलती है, गुण नहीं कर सकती। जीवनीय शक्ति की सहायता के लिये कोष्ठ को

मजबूत बनाना या उसका शोधन करना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि कोष्ठ के अवयवों की निर्बलता के कारण जीवनीय शक्ति का भी ह्रास हो जाता है। अतएव कृमिघ्न दवा देने के बाद जुलाब देना लिखा है, जिससे कृमिघ्न दवा जुलाब के साथ बाहर निकल जाय और कीड़े भी साथ-साथ नष्ट हो जायँ।

कामदुधा रस

मोती भस्म, प्रवाल भस्म, मुक्ताशुक्ति भस्म, कौड़ी भस्म, शंख भस्म, सोनागेरू और गिलोय का सत्त्व समान भाग लेकर सब को एकत्र खरल करें। जब एक जीव हो जाय तब शीशी में सुरक्षित रख लें। —र० यो० सा०

मात्रा और अनुपान—२ रत्ती जीरे का चूर्ण और मिश्री मिलाकर जीर्ण ज्वरादि में और आँवले के चूर्ण के साथ घृत मिला कर अम्लपित्त में दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन सौम्य होने से चंचल चित्त, चिन्ता-फिक्र करनेवाले, गर्भवती स्त्रियों और बच्चों के लिये अच्छा उपयोगी है। इस दवा से कभी गर्मी बढ़ने की सम्भावना नहीं रहती यह पित्त विकार, अम्ल पित्त, चक्कर आना, मस्तक शूल, दिमाग की कमजोरी, मूत्र विकार, मुँह आना, बवासीर, खून गिरना, दाह और जीर्णज्वर, मूर्च्छा, भ्रम, पागलपन, अपस्मार, उन्माद, अर्धाङ्ग वायु, कालीखाँसी, क्षय, दमा, उरःक्षत आदि में उपयोगी है।

यह रसायन शीतवीर्य प्रधान है। अतएव इसका असर रक्त-वाहिनी और वातवाहिनी नाड़ी तथा वृक्क (मत्राशय) पर विशेष होता है। अर्थात् पित्त की वृद्धि से रक्त में गर्मी आकर रक्त की गति में वृद्धि हो जाती है, जिससे रक्त का संचार बहुत तेज से होने लगता है। इसी तरह वात की वृद्धि हो कर शरीर में अनेक तरह के उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। मूत्राशय में भी पित्त की तेजी के कारण मूत्रकृच्छ्रादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में इन अवयवों में बहुत जलन होती है। इस जलन तथा उपद्रव को दूर करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

इसके अतिरिक्त मस्तिष्क विकार, आमाशय की निर्बलता तथा सामान्य रक्तस्राव जैसे—गर्मी की वजह से नाक फूटना, मुँह से रक्त आना आदि रक्तस्रावजन्य दोषों की शान्ति के लिये भी इसका प्रयोग करना चहिये।

किसी भी रोग से मुक्त होने के बाद शरीर में कैलसियम की कमी हो जाने से कमजोरी आ जाती है। इस रसायन के सेवन से वह कमजोरी दूर हो जाती है और शरीर पुष्ट हो जाता है। अधिक दिन तक ज्वर रहने से प्लीहा और यकृत् इनमें से एक या कभी-कभी दोनों बढ़ जाते हैं, जिससे शरीर में रक्त की कमी, ज्वर, मन्दाग्नि, देह में आलस्य बना रहना, पाण्डु वर्ण का शरीर हो जाना आदि उपद्रव होने पर कामदुधा रस का प्रयोग करने से बहुत फायदा होता है। क्योंकि इसमें शङ्ख और कौड़ी की भस्में पड़ी हुई हैं और ये दोनों भस्में अपनी तीक्ष्णता के कारण प्लीहा और यकृत् की वृद्धि को रोक देती हैं तथा मन्दाग्नि दूर कर जठराग्नि को भी प्रदीप्त कर पाचन क्रिया को सुधारती है, जिससे रस-रक्तादि धातु उचित परिमाण में बनने लगते हैं और शरीर भी नीरोग एवं पुष्ट हो जाता है।

आजकल मलेरिया रोकने के लिये कुनैन ही शर्तिया दवा मानी जाती है। अतएव कुनैन का प्रयोग भी आँख मूंद कर किया जाता है। परन्तु इस बात पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है कि यदि कुनैन का सेवन विशेष दिन किया जायगा तो इससे लाभ होने के बजाय अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे—कान से कम सुनाई पड़ना, दृष्टि में अन्तर पड़ जाना, मन्दाग्नि, कमजोरी, भ्रम, मूर्च्छा आदि। इन रोगों को दूर करने के लिये कामदुधा रस का प्रयोग करना अच्छा होता है।

रक्तपित्त में—पित्त प्रकुपित हो जाने से रक्त भी विकृत हो जाता है। फिर रक्तवाहिनियाँ कमजोर होकर जगह-जगह से फूटने लगतीं और उनमें से रक्त निकलना शुरू हो जाता है। इसमें —सम्पूर्ण शरीर में दाह, पित्त की तेजी के कारण चक्कर आना, चक्कर के बाद आँखों के सामने अन्धेरा छा जाना, हृदय निर्बल हो

जाना, पेशाब जलन के साथ होना, खून बहुत गर्म निकलना, ऐसी दशा में कामदुधा रस दूर्वा स्वरस अथवा शर्बत अनार के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ करता है।

पित्त प्रधान शिर दर्द में—रोगी बहुत तेज स्वभाव वाला हो जाता है। छोटी-छोटी बातों पर गुस्सा हो जाना, आँखें लाल हो जाना, शिर में दाह होना, ज्यादे जोर से हँसना, बोलना, किसी की बात अच्छी न लगना, विचार शक्ति का ह्रास हो जाना—ऐसी अवस्था में कामदुधा रस से बहुत लाभ होता है। क्योंकि यह पित्त की वृद्धि को शान्त कर साम्यावस्था में ला देता है। फिर इसके उपद्रव भी धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं।

धूप में अधिक चलने, आग के पास अधिक बैठने, ज्यादा मानसिक श्रम करने आदि कारणों से नेत्र कमजोर हो जाते हैं; साथ ही शिर में दर्द भी होने लगता है। विचार शक्ति का ह्रास होना और याददाश्त में भी कमी आ जाती है, ऐसी अवस्था में कामदुधा रस मक्खन या धारोष्ण दूध के साथ सेवन करने से अच्छा असर दिखलाता है।

अम्लपित्त में—जब आमाशयस्थ पित्त प्रकुपित हो जाता है, तो जलन के साथ खट्टी डकारें आने लगतीं हैं और पित्त जल जाने से कड़ुवा वमन होने लगता है। ऐसी अवस्था में कामदुधा रस, सूतशेखर रस के साथ आँवले का स्वरस और घी मिला कर देने से बढ़े हुये पित्त का शमन हो, पित्त अपनी प्राकृतिक अवस्था में आ जाता है। फिर सब कार्य्य अच्छी तरह से होने लग जाते हैं। इसमें गेरू पड़ा हुआ है, जो पित्त शामक और स्तम्भक है। अतएव यह बढ़े हुए पित्त का स्राव कम कर उसे सौम्य बना देता है।

अतिसार में—पित्तातिसार और रक्तातिसार में लघुअन्त्र (छोटी आँत) और बड़ी आँत की आभ्यन्तरिक त्वचा में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। इससे उदर में जलन, जल पीने की बार-बार इच्छा होना, जलन के साथ दस्त होना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में—कामदुधा रस के प्रयोग से उत्तम कार्य्य होता है।

उन्माद रोग में पित्त की विकृति के कारण पचन क्रिया में गड़बड़ी हो जाती है, जिससे अन्नादिक का पाचन ठीक-ठीक न होने से पेट में विषाक्त गैस उत्पन्न हो जाती है और यह गैस पित्तगुण-प्रधान होने से इस (गैस) का प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है जिससे उन्माद जैसा विकार उत्पन्न हो जाता है। ऐसी अवस्था में मन चंचल हो जाता है, असन्तोष, हृदय निर्बल हो जाना, जिससे बार-बार चक्कर आना, चक्कर आकर बेहोश हो जाना आदि लक्षण उपस्थित होने पर कामदुधारस २ माशे ब्राह्मीचूर्ण या शङ्खपुष्पीचूर्ण में मिलाकर मिश्री के साथ देना चाहिये और शिर में श्रीगोपाल तैल, महाचन्दनादि तैल, हिमसागर तैल आदि की मालिश करानी चाहिये। —औ० गु० ध० शा०

कामधेनु रस

रस सिन्दूर, अभ्रक भस्म, नाग भस्म, कपूर, सोनामक्खी भस्म, खर्परभस्म और चाँदीभस्म—ये सब समान भाग लेकर कमल के रस में खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम कसेरु के स्वरस और मधु अथवा न्यूनाधिक मात्रा में घी और मधु मिलाकर लें, ऊपर से दूध पिला दें।

गुण और उपयोग—यह बल-वीर्य-वर्धक, कामोद्दीपक तथा पौष्टिक रसायन है। इसके सेवन से प्रमेह, विशेष कर शुक्रमेह, ध्वजभंग आदि नष्ट होकर शरीर में कामशक्ति अधिक तादाद में उत्पन्न होती है। वीर्य की कमी से उत्पन्न नपुंसकता, इन्द्रिय की शिथिलता, सुस्ती आदि इससे बहुत जल्दी ठीक हो जाती है। यह शुक्र को गाढ़ा कर नव यौवन प्रदान करता है और जीर्णज्वर तथा राजयक्ष्मा को भी नाश करता है।

पचन-क्रिया में जब विकार उत्पन्न हो जाता है, अर्थात् पाचक पित्त की निर्बलता के कारण भोजन किया हुआ पदार्थ का ठीक-ठीक

पचन नहीं होने से रस-रक्तादि धातु अच्छी तरह नहीं बन पाती है। जिससे रस-रक्तादि धातुओं का क्रमशः क्षय होकर शरीर कमजोर होने लगता है। फिर अनेक उपद्रव खड़े हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में कामधेनु रस का प्रयोग किया जाता है।

जीर्णज्वर में—आयुर्वेद में लिखा है कि "त्रि सप्ताहव्यतीते तु जीर्ण ज्वर प्रोच्यते बुधैः" अर्थात् २१ दिन के बाद ज्वर, जीर्ण में परिणत हो जाता है। इसमें मन्दाग्नि होने से पाचन क्रिया ठीक-ठीक नहीं होती है। अतएव शरीर में रक्तकणों की कमी हो जाने से रक्त का क्षय हो जाता है। रक्तकणों की कमी के कारण शरीर कान्ति-हीन हो जाता है, तथा ज्वर, प्यास, जलन, चक्कर आना, मन में बेचैनी, नाड़ी की गति में वृद्धि इत्यादि लक्षण होते हैं। ऐसी अवस्था में कामधेनु रस का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

विषम ज्वर की तीव्र-अवस्था में कामधेनु रस का प्रयोग नहीं किया जाता है। किन्तु जब विषम ज्वर पुराना हो जाता है, तब ज्वर का विष रक्तादि धातु को दूषित करता है, ऐसी अवस्था में कामधेनु रस का प्रयोग करने से अच्छा फायदा होता है।

पैत्तिक प्रमेह में—बारबार ज्यादे मात्रा में पीतवर्ण का पेशाब होना, प्यास ज्यादा लगना, सम्पूर्ण शरीर में जलन, पसीना ज्यादा निकलना आदि लक्षण होने पर कामधेनु रस, शिलाजीत मिलाकर देने से लाभ करता है।

अम्लपित्त रोग में आमाशय की विकृति के कारण अन्न का पचन ठीक से न होकर आमाशय में ही अन्न अधिक काल तक पड़ा रहना, जिससे पेट में भारीपन, जी मिचलाना, मुँह का स्वाद नष्ट हो जाना, खाया हुआ अन्न कुछ समय में जलयुक्त दुर्गन्धमय होकर वमन के द्वारा बाहर निकल आना, खट्टी डकारें आना तथा अम्लपित्त की असाध्यावस्था में पानी तक नहीं पचता है। पानी पीने के बाद तुरन्त वमन हो जाता है। ऐसी अवस्था में कामधेनु रस देने से आमाशय में रहने वाला पित्त उत्तेजित होकर पाचन क्रिया को सुधार देता है जिससे अन्नादिक पचने में बाधा नहीं होती है।

कामलाहर रस

शुद्ध पारा ४ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला, त्रिफला चूर्ण १६ तोला, यवक्षार ८ तोला, शुद्ध सज्जीखार ८ तोला, नौसादर सत्त्व ८ तोला लेवें। प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बना, उनमें अन्य दवा मिला ३ घण्टे तक मर्दन करके शीशी में भर कर रख लें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ माशा दिन में ३ बार मक्खन निकाली हुई छाछ के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन कामला, पाण्डु, कुम्भकामला आदि रोगों में अच्छा लाभ करता है।

कामाग्निसंदीपन रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, शुद्ध हिंगुल और शुद्ध मैनसिल प्रत्येक ४-४ तोला लेकर, प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बना, फिर इसमें अन्य दवाओं का चूर्ण मिला, इन्हें धतूरे के बीज, अदरक, जयन्ती और भांगरे के रस में सात-सात भावना देकर सुखा लें। फिर इस कज्जली को आतसी शीशी में भरकर ६ दिन तक बालुका यन्त्र द्वारा पाक करें। स्वांग शीतल होने पर शीशी के गले में लगी हुई लाल रंग की रस सिन्दूर जैसी दवा लेकर रख लें। फिर इसके सेवनकाल में इसमें छोटी इलायची-बीज चूर्ण, जावित्री चूर्ण, शुद्ध कपूर, कस्तूरी, मिश्री, काली मिर्च और असगन्ध समान भाग लेकर चूर्ण बना मिलाकर सेवन करें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—३-३ रत्ती मक्खन, मलाई और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से ओज और बल की पुष्टि तथा काम की वृद्धि होती है। यह अत्युत्तम रसायन और समस्त इन्द्रियों को आनन्द देनेवाला है।

इस रसायन का असर वातवाहिनी और शुक्रवाहिनी नाड़ी पर विशेष होता है। यह उत्तेजक भी है, अतः रक्त को उत्तेजित करते

हुए मन में भी उत्तेजना पैदा करता है। इस रसायन के सेवन-काल में दूध और पौष्टिक पदार्थ तथा फल का विशेष सेवन करना चाहिये।

कामिनीविद्रावण रस

अकरकरा, सोंठ, लौंग, कसर, पीपल, जायफल, जावित्री, चन्दन प्रत्येक १-१ तोला, शुद्ध सिंगरफ, शुद्ध गंधक ३-३ माशा और अफीम ४ तोला लें। प्रथम सिंगरफ, गंधक और अफीम को एकत्र घोंट कर रखें। फिर शेष दवा को कूट कपड़छान चूर्ण कर शीतल जल या पान के रस में (मूल पाठ में जल या पान के रस का उल्लेख नहीं है) घोटकर १-१ रत्ती की गोली बना छाया में सुखाकर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली रात को सोने से एक घण्टा पूर्व गर्म दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह वीर्य्य को गाढ़ा कर स्तम्भन करता है। शीघ्र पतनवालों के लिये बहुत लाभदायक है। क्योंकि यह उत्तम वीर्य्यस्तम्भक है। यह ध्यान रखने की बात है कि इसमें अफीम का अंश विशेष है। इससे दस्त में कब्जियत हो तो सुबह गर्म दूध पीना चाहिये।

कालकूट रस

शुद्ध बच्छनाग विष १ तोला, शुद्ध पारद ३ तोला, शुद्ध गन्धक ५ तोला, शुद्ध मैनसिल ६ तोला, ताम्रभस्म ४ तोला, सुहागे की खील ६ तोला, शुद्ध हरताल (या हरतालभस्म) ९ तोला, चित्रकमूल ९ तोला, त्रिकटु १२ तोला, त्रिफला १० तोला, भूनी हींग १ तोला और वच १ तोला लें। प्रथम पारद-गंधक की कज्जली बनावें। फिर अन्य ओषधियों का कूट कपड़छान चूर्ण मिला मैनसिल, हरताल भस्म, सुहागे की खील, ताम्रभस्म आदि क्रमशः मिलाकर १-१ प्रहर अदरक, चितामूल, जम्बीरी नीबू, लहसुन, मकोय (काकमाची), आक की जड़, धतूरे की जड़, कलिहारी, संभालू, पान, अंकोल मूल, सहजन की जड़, पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) और पंच-

मूल इनके रस या क्वाथ में खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखा कर रख लें। —र० यो० सा०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम अदरक रस के साथ या मधु से दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन अत्युग्र सन्निपात, ग्रन्थिक सन्निपात, धनुर्वातादि किसी प्रकार का तीव्र वात विकार हो, विशेष कर बेहोशी, बकवाद, आँखों की तन्द्रा, श्वास, कफयुक्त खाँसी, कंप, हिचकी इत्यादि लक्षणयुक्त वात, कफ की अधिकता व सन्निपातज्वर में लाभदायक है।

यह रसायन अत्युग्र है। अतएव इसका प्रयोग बहुत सावधानी से करना चाहिये। सर्वसाधारण वैद्य या नवीन वैद्य अर्थात् जो इस दवा के प्रयोग करने के विधान से अपरिचित हों, ऐसे वैद्यों को खूब सोच-विचार कर प्रयोग करना चाहिये। अन्तिमावस्था में जब मकरध्वजादि दवाएँ नाकाम हो जाएँ, नाड़ी लुप्त हो रही हो, शरीर ठंढा हो रहा हो ; सिर्फ हृदय की चाल बनी हुई हो, तथा जब कभी थोड़ी बहुत श्वास की गति मालूम पड़ती हो, तो ऐसी विकट परिस्थिति में इसका प्रयोग करना चाहिये।

इस रसायन के सेवन से हृदय बलवान हो जाता है। फिर नाड़ी की गति में कुछ वृद्धि होने लगती है। इसके सेवन से रक्त का दबाव बढ़ जाता है, जिससे नेत्रों में लाली छाई हुई रहती है। ऐसी अवस्था होने पर यह दवा नहीं देनी चाहिये। क्योंकि यह तो वैसे ही अत्युग्र दवा है, इससे पित्त और भी प्रकुपित हो शरीर में दाह-प्यास आदि उपद्रव उत्पन्न कर देता है। कभी-कभी इसकी तीव्रता के कारण रक्तवाहिनियाँ फट भी जाती हैं जिससे रक्तस्राव होने लगता है।

कफोल्वण सन्निपात में—नाड़ी की गति क्षीण हो सम्पूर्ण शरीर में जड़ता, मस्तिष्क में भारीपन, दिमाग शून्य मालूम होना, विचार शक्ति का एकदम ह्रास हो जाना, ज्ञान शक्ति का नष्ट हो जाना, शिर में मन्द-मन्द दर्द बना रहना, नेत्र की पलकें भारी हो जाना, आँख

खोलने तथा मूँदने में भी परिश्रम मालूम पड़ना, प्रकाश में रहने की इच्छा, शीतल पदार्थ से द्वेष, आँख से कीचड़ बहना, नाक से कफ का स्राव होना, नासिका से कोई चीज सूंघने पर उसकी गंध का ज्ञान न होना, जिह्वा कुछ मोटी तथा सफेद मलयुक्त हो जाना, इत्यादि लक्षण उत्पन्न होने पर कालकूट रस का प्रयोग किया जाता है।

वात और कफजन्य विकार में श्वासोच्छ्वास तथा खाँसी में गम्भीरता आ जाती है। खाँसी के साथ सफेद रंग का लसदार तथा गठीला कफ निकलता है। श्वास लेने पर थोड़ा-थोड़ा कष्ट होता है। नाड़ी की गति मन्द और भारी हो जाती है। ऐसी हालत में कालकूट रस के सेवन से प्रकुपित वात और कफ शान्त हो जाते हैं तथा श्वास की गति में भी सुधार हो जाता है। यह रसायन हृदय में शक्ति उत्पन्न कर हृदय को बलवान बना देता है।

इन्फ्लुएन्जा ज्वर—इसमें प्रायः वात और कफ की वृद्धि होती है। अतः इसी के विकार (उपद्रव) उत्पन्न होते हैं। इस रोग के प्रारम्भ में सौम्य ओषधियों द्वारा चिकित्सा करने से उपद्रव बढ़ने नहीं पाता और शीघ्र अच्छा भी हो जाता है। किन्तु यदि इसकी उपेक्षा की गयी तो उपद्रव बढ़ते ही जाते हैं। इसमें वात के लक्षणों में दो भेद हो जाते हैं। प्रथम में —रोगी की ज्ञान शक्ति रहती है, पसीना खूब निकलता है, कण्ठ हिलने (काँपने) लगता है, रोगी कभी-कभी जोर से चिल्लाने लग जाता है इत्यादि लक्षण होने पर तो महावातविध्वंसन आदि रस देना ही ठीक है। दूसरे में—नाड़ी की गति मन्द हो जाय, रोगी सुस्त पड़ा रहे, बोले तक भी नहीं, थोड़ा-थोड़ा ज्वर बना ही रहे, तो ऐसी अवस्था में कालकूट रस अदरक रस के साथ देना आवश्यक है।

धनुर्वात रोग में भी इसका प्रयोग किया जाता है। यदि इसमें कफसंयुक्त वायु का प्रकोप हो तो यह रसायन बहुत जल्द लाभ पहुँचाता है। कभी-कभी प्रसूता स्त्री को बच्चा होने के बाद उचित व्यवस्था न होने से अथवा शीतल पदार्थ या ठण्डी हवा लग जाने से भी धनुर्वात हो जाता है।

प्रसूता को धनुर्वात रोग हो जाने से उसकी नसें खिचीं हुई-सी रहती हैं तथा नसों में विकृति उत्पन्न हो जाती है जिससे प्रसव के बाद रक्त का स्राव (जो दूषित रक्त रहता है) अच्छी तरह नहीं निकल पाता, जिससे और भी कष्ट बढ़ जाता है। ऐसी अवस्था में कालकूट रस के सेवन से अच्छा लाभ होता है, क्योंकि यह अपनी तीक्ष्णता के कारण वात दोष को दूर करते हुए दूषित रक्त को भी बाहर निकाल देता है,जिससे प्रसूता में फिर नवजीवन आ जाता है।

नोट—यह रसायन अत्यन्त तीक्ष्ण है। अतः गर्भवती स्त्रियों तथा सुकुमार स्त्री-पुरुषों और नाजुक बच्चों को यह नहीं देना चाहिये। इसके अतिरिक्त बवासीर, मुँह आना, खून गिरना, गर्म मिजाज और अतिशय कमजोरी में भी नहीं देना चाहिये।

कालारि रस

शुद्ध पारद ६ माशा, शुद्ध गंधक १५ माशा, शुद्ध बच्छनाग ६ माशा, छोटी पीपल ३० माशा, लौंग १२ माशा, शुद्ध धतूरे के बीज ६ माशा, सुहागे की खील ६ माशा, जायफल १५ माशा, काली मिर्च १५ माशा और अकरकरा ६ माशा लें। प्रथम पारद-गंधक की कज्जली कर उसमें अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण मिला, करीर, अदरख स्वरस और नीबू इन प्रत्येक के रस में ३-३ दिन मर्दन करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —यो० चि०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली अदरक का रस, तुलसी का रस, ७ से २१ लौंग का अर्धावशेष क्वाथ, इनमें से किसी एक अनुपान से वात ज्वर, कफ ज्वर और कफ-वाताधिक्य सन्निपात में दें। सन्निपात ज्वर की प्रथमावस्था में तगरादि क्वाथ के साथ या ७ लौंग, ३ माशा ब्राह्मी की ताजी पत्ती, ३ माशा जटामांसी और तीन माशा शंखाहुली के क्वाथ के अनुपान से दें। विषम ज्वर में—जायफल चूर्ण १।। माशे के साथ देकर ऊपर से दूध पिला दें। अथवा नीम के पत्तों के स्वरस की भावना दी हुई गोदन्ती भस्म के साथ दे सकते हैं।

गुण और उपयोग—यह रसायन साधारण ज्वर, सन्निपातज्वर और विषमज्वर में भी दिया जाता है। विषम ज्वर में तो कुनैन

की जगह इसका प्रयोग करना चाहिए। सन्निपात में उत्पन्न श्वास-कास-हिक्का प्रलाप आदि शमन करने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। वात-कफ को शमन करते हुए ज्वर के उपद्रवों को भी यह दूर करता है।

कासकुठार रस

शुद्ध सिंगरफ, काली मिर्च, शुद्ध गंधक, त्रिकुटा और सुहागे की खील प्रत्येक समान भाग लेकर (अदरक के रस से) १ दिन मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना सुखा कर रख लें।

—र० रा० सु०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, सुबह-शाम अदरक रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन पानी से ज्यादा भीग जाने अथवा अन्य शीतोपचार से उत्पन्न सन्निपात ज्वर, शीतांग सन्निपात अथवा कफ प्रधानजन्य ज्वरों में विशेष फायदा करता है। जिस ज्वर में—अङ्ग जकड़ जाता है, सम्पूर्ण शरीर में दर्द होता रहता है उसमें इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। किन्तु जिस ज्वर में कफ ज्यादा हो, खाँसी अधिक होती हो और खाँसी के साथ कफ ज्यादे निकलता हो, तो ऐसी अवस्था में कासकुठार के सेवन से अच्छा लाभ होता है। कफ-दोष से उत्पन्न शिरःशूल जिसमें वेदना अधिक होती हो, शिर भारी मालूम पड़ता हो, ऐसी अवस्था में कासकुठार रस देने से शीघ्र लाभ करता है। क्योंकि इसमें गंधक पड़ा हुआ है जो जंतुघ्न है और त्रिकुट (सोंठ, पीपर, मिर्च) दीपन-पाचन है। यह दवा उष्ण व वीर्य प्रधान है, अतः कफ-विकार और रोगबर्द्धक कीटाणुओं का नाशक है। —औ० गु० ध० शा०

कुमारकल्याण रस

रस सिन्दूर, मोती भस्म, स्वर्ण भस्म, अभ्रक भस्म, लौह भस्म और सोनामक्खी भस्म बराबर-बराबर लेकर घी कुमारी के रस में घोंट कर मूँग के समान गोलियाँ बना लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—बच्चों के लिए आधी गोली, माता के दूध अथवा बच तथा शहद के साथ दें। पूरी उम्र वालों के लिए १ गोली, रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—स्वर्ण, मोती, रस सिन्दूर आदि कीमती चीजों से तैयार किए गए इस रस का नाम के अनुसार ही गुण भी है। हृदय, फुफ्फुम, मस्तिष्क, ज्ञानेन्द्रिय, यकृत, उदर, मूत्र पिण्ड आदि सभी अंगों के विकारों को नष्ट कर शरीर को यह पुष्ट बनाता है। बालकों के सभी रोग कास, श्वास, क्षय, संग्रहणी, डब्बा, वमन आदि पर यह सुन्दर कार्य्य करता है। स्वस्थ बच्चों को भी यदि एक सप्ताह तक इसका सेवन कराया जाय तो उन्हें यह पुष्ट बना देता और चेचक तथा मोतीझरे की बीमारी से बचाता है।

बच्चों की तरह यह बड़ों को भी दिया जा सकता है। उत्तम रसायन होने के साथ ही यह रस योगवाही भी है। शारीरिक शक्ति की रक्षा के लिये दूसरी ओषधियों के साथ इसका प्रयोग किया जाता है।

कुमुदेश्वर रस

ताम्र भस्म २ तोला और वंग भस्म १ तोला लेकर इसे मुलेठी के स्वरस की भावना देकर, सुखा, शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लें।

—र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती, चन्दनादि क्वाथ* के साथ दें।

गुण और उपयोग—तृषा (प्यास), वमन, पित्त प्रकोपादि विकारों में इस रसायन का प्रयोग किया जाता है। विशेष कर प्यास शान्त करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है। वह

---

* चन्दनादि क्वाथ—चन्दन, सारिवा, नागरमोथा, छोटी इलायची और नागकेशर समान भाग तथा सब के बराबर धान की खील, १६ गुने पानी में पकावें जब आधा पानी शेष रहे तो उतार कर छान लें और ठण्डा होने पर उसमें ३ माशे मिश्री और ३ माशे शहद मिलाकर पिलावें। —भा० भै० र०

प्यास, आमाजीर्ण के कारण हो या पित्त वृद्धि के कारण अथवा मधुमेह या प्रमेहजन्य, सबमें इसका प्रयोग किया जाता है।

शुक्रविकार में—ज्यादा शुक्रक्षरण से वायु कुपित होने के कारण मन्दाग्नि हो जाती है, जिससे अन्नादिक का पचन ठीक-ठीक नहीं हो पाता। पाचनक्रिया में गड़बड़ी होने से शुक्रस्राव में वृद्धि हो जाती है। ऐसी दशा में रोगी का चेहरा उदास हो जाता व कमजोरी ज्यादे हो जाती है। रोगी अपने जीवन से उदास होने लगता है, किसी भी काम में मन नहीं लगता और हर समय मानसिक चिन्ता में डूबा रहता है। ऐसे समय में कुमुदेश्वर रस के सेवन से लाभ होता है। क्योंकि इसमें वंग और ताम्रभस्म पड़ी हुई है। वंग शुक्र के विकार को नष्ट करती है और ताम्र यकृत तथा पित्त विकार को। जैस—पाचक पित्त को प्रदीप्त कर पाचनक्रिया ठीक कर देती है, जिससे अन्नादिक ठीक-ठीक पचने लग जाते और रसादि धातु भी उचित परिमाण में बनकर शुक्रपुष्ट हो जाता है।

कुष्ठकुठार रस

रस सिन्दूर, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, ताम्र भस्म, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, शुद्ध कुचला, चीता, गुग्गुलु और शुद्ध शिलाजीत प्रत्येक ४-४ तोले; करंज के बीज का चूर्ण और ताम्र भस्म १६-१६ तोले लेकर सबको यथाविधि मिलावें। गुग्गुलु को पानी में गला कर मिलावें, सब दवा को एकत्र कर खरल में खूब घोटें, जब अच्छी तरह दवा घुट जाय, तब इसमें घी मिलावें। बाद में घी से कम शहद मिलाकर एक चिकने वर्तन में रख दें। —रसेन्द्र चिन्तामणि

मात्रा और अनुपान—४-८ रत्ती तक सुबह-शाम जल से दें।

यदि इसके सेवन से अत्यधिक ताप हो तो पाताल गरुड़ी की जड़, गुड़हल फूल और धनिये का चूर्ण १ तोला परिमाण में लेकर, मिश्री मिला, सेवन करावें अथवा नागबला की जड़ का चूर्ण और शहद एवं शहद से कम घी मिला कर सेवन करावें।

गुण और उपयोग—कुष्ठरोग विशेषतः असाध्य ही होते हैं किन्तु

रोग निवारण के लिये उपाय करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। कुष्ठ जैसी बीमारी के लिये जरूरी है कि अधिक समय तक दवा सेवन की जाय। किन्तु प्रायः देखा जाता है कि कुष्ठरोगी थोड़े दिन तक दवा खाकर फायदा नहीं होने से, रोग से निराश हो, दवा का सेवन करना बन्द कर देते हैं किन्तु ; यह उचित नहीं। कुष्ठ रोगी को कम से कम ४१ दिन तक दवा नियमपूर्वक सेवन करना चाहिए।

इस रसायन का प्रयोग विशेष कर गलितकुष्ठ में—अंगुलियाँ, कान, नाक आदि सड़ गये हों, देह से दुर्गन्ध निकलती हो, मक्खियाँ चारों तरफ भिनकती हों, ऐसी हालत में किया जाता है।

कुष्ठरोग में—रक्त-मांस-त्वचा आदि विकृत हो जाते हैं। इसमें त्वचा सड़ी हुई मालूम पड़ती है। गलित कुष्ठ में अंगुलियों के पर्व (पोर) गल कर गिर जाते हैं, फिर भी दर्द कम नहीं होता। इसमें चींटी काटने की-सी मन्द-मन्द वेदना होती रहती है। जहां से अंगुलियाँ गल कर गिर जाती हैं वहाँ से लसीका का स्राव होने लगता है। शरीर में आलस्य इतना बढ़ जाता है कि हाथ-पाँव उठाने और रखने में भी दिक्कत मालूम पड़ती है। जिस करवट से रोगी पड़ा हुआ रहता है, उसे बदलने की इच्छा नहीं होती। शरीर की त्वचा फटी हुई-सी हो जाती है। घाव में से दुर्गन्ध मवाद निकलता है। स्पर्शज्ञान एकदम नष्ट हो जाता है। ऐसी अवस्था में कुष्ठकुठार रस का सेवन करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

इसमें—रससिन्दूर योगवाही और रसायन है। गन्धक—त्वचागत दोष को नाश करनेवाला तथा रक्तशोधक है। लौह-भस्म शक्तिवर्धक तथा रक्तप्रसादक है। ताम्रभस्म—यकृत् को उत्तेजित करनेवाली और पित्त स्रावक तथा ग्रहणी के विकारों को नष्ट करनेवाली है। गुग्गुलु—रसायन, योगवाही, वातशामक व कोष्ठशोधन करनेवाला है। त्रिफला—रसायन और मृदु विरेचक है। कुचला—यकृत को उत्तेजित करनेवाला, वात-वाहिनी नाड़ी को उत्तेजित कर शक्ति बढ़ानेवाला तथा संज्ञावाहिनी में पुनः शक्ति प्रदान करनेवाला है। शिलाजीत—धातु परि-

पोषणक्रम को सुधारनेवाला है। करंजबीज—रक्तप्रसादक, संशोधक व त्वचागत कुष्ठ के दोषों को शमन करने वाला है। अभ्रक-भस्म—धातु परिपोषणक्रम को व्यवस्थित करती है और मानसिक आघात (क्षोभ) जन्य दोष को नष्ट करनेवाली और शारीरिक अवयवों में शक्ति बढ़ानेवाली, जीवनीय और बल्य है। इस तरह से यह औषध गलित कुष्ठ में लाभकारी है। —औ० गु० ध० शा०

खंजनिकारि रस

मल्लसिन्दूर, रौप्यभस्म, और शुद्ध कुचले का कपड़छान चूर्ण प्रत्येक सम भाग लें। प्रथम मल्लसिन्दूर को खूब महीन पीसें। पीछे उसमें अन्य दवा मिला; अर्जुन वृक्ष की छाल के क्वाथ की ७ भावनाएँ देकर मूँग के बराबर गोलियाँ बना, छाया में सुखा लें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-२ गोली सबेरे और शाम गाय के दूध या दशमूल क्वाथ के अनुपान से दें।

गुण और उपयोग—मल्लसिन्दूर, रौप्य और कुचला का यह उत्तम योग अत्यन्त उग्र एवं उष्ण वीर्य है। इसके सेवन से पक्षाघात (लकवा), धनुष्टंकार, गठिया आदि पुराने से पुराने वातरोग आराम होते हैं। आतशक, सूजाक आदि के उपद्रव से पैदा हुए वातरोगों के लिये भी रामबाण तुल्य काम करता है। वात और कफ सम्बन्धी कास-श्वास, न्यूमोनिया, उरस्तोय, डब्बा, शीताङ्ग, सन्निपात आदि में यह लाभदायक है। पित्तज विकारों में इसका प्रयोग किसी सौम्य औषध के साथ करना चाहिये।

गंगाधर रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, अभ्रक भस्म, कुड़े की छाल, अतीस, लोध, बेलगिरी और धाय के फूल सब समान भाग लें। प्रथम पारा-गंधक की कज्जली करें। तत्पश्चात् उसमें अन्य औषधियों का कूट-कपड़छान चूर्ण मिलाकर ३ दिन तक पोस्त के डोडे के क्वाथ में घोट कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर रख लें।

—र० का०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, सुबह-शाम छाछ के साथ, रक्तातिसार में कुड़े की छाल के क्वाथ से, आमातिसार में नागरमोथा के रस या क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन अतिसार, आमातिसार तथा रक्तातिसार में बहुत लाभ करता है। इसमें अतीस पड़ी हुई है। अतएव आमातिसार में विशेष गुणदायक है।

गण्डमालाकण्डन रस

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गंधक आधा तोला, ताम्र भस्म १॥ तोला, मण्डूर भस्म ३ तोला, सोंठ, मिर्च, पीपल २-२ तोला, सेंधा नमक आधा तोला, कचनार की छाल का चूर्ण और गुग्गुलु १२-१२ तोला लें। पहले पारा और गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य ओषधियों का कूट-कपड़छान चूर्ण मिला, (गुग्गुलु में गोघृत मिला कूट कर नरम करें, फिर सब ओषधियों और गुग्गुलु को एकत्र मिला अच्छी तरह कूट कर) २-२ रत्ती की गोलियाँ बना कर रख लें। —वृ० यो० त०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, सुबह-शाम कचनार की छाल के क्वाथ से या ताजे जल से दें।

गुण और उपयोग—गलगण्ड, गण्डमाला (कण्ठबेल-घेघ) अपची और गाँठवाले फोड़ा-फुन्सियों पर इस दवा का अच्छा प्रभाव होता है। गण्डमाला रोग की यह उत्तम दवा है।

यह रस कफप्रकृति वाले को बहुत शीघ्र लाभ पहुँचाता है। गण्डमालावालों को अक्सर बद्धकोष्ठ हो जाता है, उनके लिये भी यह रस बहुत उत्तम है। यह मन्दाग्नि को दूरकर पाचक पित्त को जागृत करता है।

गण्डमाला या गलगण्ड की ग्रन्थियाँ शरीर में सर्वदा विद्यमान रहती ही हैं। ये ग्रन्थियाँ दोनों काँख (वंक्षण), गले के नीचे और कण्ठ में होती हैं। इनमें जब कफ दूषित होकर मिल जाता है और साथ में वायु भी मिला होता है, तब इन ग्रन्थियों की वृद्धि होने लगती

है। इसकी वृद्धि-काल में गाँठ में दर्द होता तथा थोड़ा बुखार भी हो जाता है। मन्दाग्नि और बद्ध कोष्ठता तो हो ही जाती है। अतः कमजोरी भी बढ़ने लगती है। हाथ-पैर में भी टटैनी होने लगती है। कभी-कभी ये गाँठें पक कर फूट भी जाती हैं, फिर भी दर्द कम नहीं होता। फूटने पर ये वहने लगती हैं। उचित उपचार करने पर भर भी जाता है, कभी नहीं भी भरता। स्राव बराबर होता रहता है और यह बहुत दिन में जाकर भरता है। अतः यह व्याधि बहुत कठिन होती है। इसमें चिकित्सा की उपेक्षा करने पर इसकी जड़ बहुत मजबूत हो जाती है। फिर लाचार हो शस्त्र क्रिया ही करनी पड़ती है। ऐसे भयंकर रोग से बचने के लिये यह रस दिया जाता है। क्योंकि इस औषधि में—कज्जली योगवाही तथा रसायन है। ताम्रभस्म ग्रन्थि और मेदा को पचाने वाली है। मण्डूर—रक्त कण को बढ़ाने वाला व शक्ति प्रदान करने वाला है। काँचनार की छाल अपने प्रभाव से गण्डमाला के विष को नष्ट करने वाली है। त्रिकटु—पाचक तथा रसायन है। संधानमक—पाचक है। गुग्गुलु—रक्त को प्रसादन करने वाला व शोथ को नष्ट करने वाला है। —औ० गु० ध० शा०

गन्धक रसायन

गाय के दूध से ३ बार शुद्ध किया हुआ गंधक ६४ तोला लें। उसको पत्थर के खरल में डाल, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची और नागकेशर, इन प्रत्येक का कपड़छान चूर्ण समान भाग में लेकर, इस चूर्ण को रात में द्विगुणित जल में भिगो दें। सबेरे हाथ से मसलकर कपड़े से छाने हुए जल से, ताजी गिलोय के स्वरस से, हर्रे और बहेड़े के क्वाथ से, आँवला, भांगरा और अदरख इनके स्वरस से ८-८ दिन मर्दन करें, अर्थात् प्रत्येक के जल, क्वाथ या स्वरस में ८-८ दिन भावना दे इस तरह कुल ८० भावना दे। प्रत्येक भावना में ३ से ६ घण्टा मर्दन करके छाया में सुखाने के बाद दूसरी भावना दे। अन्त में सुखाकर उसमें समान भाग मिश्री का चूर्ण मिलाकर शीशी में भर लें। —सि० यो० सं०

मात्रा—४-८ रत्ती सबेरे-शाम जल, दूध, मंजिष्ठादि क्वाथ, महातिक्त घृत के कल्क द्रव्यों का क्वाथ अथवा खदिरारिष्ट के अनुपान से दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से कुष्ठ, रक्त विकारजन्य फोड़ा-फुँसी, चकत्ते का पड़ना, आतशक (गर्मी) के सब उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। धातु क्षय, प्रमेह, मन्दाग्नि और उदर शूलादि में भी यह लाभदायक है। यह बल-वीर्य्यवर्द्धक, पौष्टिक एवं अग्निदीपक है तथा कफ और आमाशय के रोगों में भी लाभदायक है।

इस रसायन का प्रधान कार्य—किसी भी कारण से हुए दूषित रक्त तथा दूषित चर्म को सुधारना है।

रक्त की अशुद्धि से इससे आगे जो बनने वाली धातुएँ हैं, वे भी अच्छी तरह नहीं बन पातीं तथा वे धीरे-धीरे निर्बल होती चली जाती हैं। इस रसायन के सेवन से शुद्ध रक्त बनने लगता है और रक्त शुद्ध बनने पर इससे बननेवाली धातुएँ भी परिशुद्ध तथा पुष्ट बनने लगती हैं एवं अशुद्ध रक्त जनित विकार भी नष्ट हो जाते हैं।

पित्त प्रधान रोगों में इस रसायन का विशेष उपयोग होता है। यथा दाह होना, जलन के साथ पेशाब होना, हाथ-पैर में जलन होना, मस्तिष्क के भीतर कण्ठ-जिह्वा आदि में जलन होना, शीतल जल से स्नान करने की इच्छा होना या शीतल पदार्थ खाने की इच्छा होना इत्यादि लक्षण पित्त की दुष्टि से उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में गन्धक रसायन के प्रयोग से ये सब शान्त हो जाते हैं।

शरीर में छोटी-छोटी फुंसियाँ होना, खुजली ज्यादे होना, दस्त कब्ज हो जाना, खुजलाने पर थोड़ा-बहुत रक्त भी निकल जाना, ऐसी अवस्था में गन्धक रसायन देने से बहुत फायदा होता है।

उपदंश, सूजाक आदि विषाक्त रोगों के पुराने हो जाने पर शरीर में इस रोग के विष व्याप्त हो जाते हैं। इस विष के प्रभाव से वातवाहिनी नाड़ियाँ विकृत हो, वात-सम्बन्धी अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिससे शरीर के भीतरी अवयव कमजोर हो कर अपने कार्य करने में असमर्थ हो जाते हैं। विशेषकर आँतें कमजोर हो

जातीं हैं जिससे बद्धकोष्ठता हो जाती है। ऐसी अवस्था में पहले स्नेहन वस्ति का प्रयोग करें, फिर गंधक रसायन सेवन करावें।

उपदंश रोग जब पुराना हो जाता है, तो जोड़ों में सूजन, मसूड़ों से स्राव होना, शरीर में कभी-कभी गाँठे पड़ जाना, कमजोरी विशेष मालूम होना, हाथ-पाँव काँपने लगना, बदन में दर्द होना, छोटी-छोटी फुंसियाँ निकल आना आदि लक्षण प्रकट होते हैं। इनमें गंधक रसायन के सेवन से अच्छा लाभ होता है।

इसी तरह सूजाक जब पुराना हो जाता है, तो सम्पूर्ण शरीर में जलन होने लगती है : जैसे—मूत्र (पेशाब) करते समय जलन होना, जननेन्द्रिय को दबाने से दर्द होना, थोड़ा-थोड़ा मवाद भी निकलना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी अवस्था में गंधक रसायन ४ रत्ती प्रवाल पिष्टी १ रत्ती में मिलाकर सुबह-शाम तथा दोपहर को मधु के साथ मिश्री मिलाकर देने से लाभ होता है।

बद्धकोष्ठ में नीम के पंचांग का चूर्ण १ माशा, गंधक रसायन २ रत्ती मिलाकर त्रिफला के क्वाथ के साथ दें। खुजली, दद्रुमण्डल, कुष्ठ तथा छोटी-छोटी फुंसियों के लिये गंधक रसायन शक्कर (चीनी) और घी में मिलाकर दें। धातु-विकार में दूध के साथ दें। कच्चा पारा या शरीर में प्रवेश किये हुए किसी धातु के विष व उष्णता-दोष को दूर करने के लिये गंधक रसायन ३ रत्ती आँवले के मुरब्बे के साथ दें।

गर्भ चिन्तामणि रस

रससिन्दूर, चाँदी भस्म और लौह भस्म प्रत्येक १-१ तोला, अभ्रक भस्म ३ तोला, कपूर, वंग भस्म, ताम्र भस्म, जायफल, जावित्री, गोखरू, शतावर तथा खरेंटी और कंघी की जड़ का चूर्ण प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम रससिन्दूर को महीन पीस लें, फिर अन्य सब भस्में मिला कर एकत्र करके खूब घोटें। बाद में काष्ठौषधियों का महीन चूर्ण बना, भस्म में मिला, शतावर के क्वाथ से २ दिन तक लगातार घोटाई करने के बाद, २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली, सुबह-शाम, मधु अथवा दूध में मिलाकर दें,

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से गर्भपात, गर्भावस्था में होनेवाला ज्वर तथा दाह आदि उपद्रव दूर होते हैं। सन्निपात हो जाने पर और बच्चा पैदा होने के बाद प्रसूतिज्वर में गर्भ चिन्तामणि रस का प्रयोग करना चाहिये। इससे बुखार उतर कर गर्भिणी स्वस्थ हो जाती तथा आगे कोई भी उपद्रव नहीं हो पाता है। इसके निरन्तर सेवन से गर्भस्थ शिशु बलवान होता है। गर्भावस्था में कभी-कभी रक्त भी आने लगता है। इसके सेवन से वह भी दूर हो जाता है।

गर्भपाल रस

शुद्ध सिंगरफ, नागभस्म, बंगभस्म, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, सोंठ, पीपल, मिर्च, धनियाँ, स्याहजीरा, चव्य (चाव), मुनक्का और देवदारु प्रत्येक १-१ तोला, लौहभस्म आधा तोला लेकर सबको कोयल (सफेद अपराजिता) के रस में ७ दिन घोटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। —र० चं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली सुबह-शाम; गुडूची-सत्त्व और मधु से या धारोष्ण दूध के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—नाग, वंग और हिंगुल के प्रधान उपादान से बना हुआ यह रस सगर्भा स्त्री के समस्त विकारों को नष्ट करता है। सूजाक, आतशक अथवा दूध-दोष के कारण गर्भपात होने की सम्भावना में मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ इसका सेवन करना चाहिये। गर्भिणी के अतिसार, ज्वर, पाण्डु, मन्दाग्नि, मलावरोध, शिरःशूल, अरुचि आदि विकारों में आवश्यकतानुसार इसका प्रयोग किया जाता है।

गर्भपाल रस गर्भिणी रोग की प्रसिद्ध दवा है। अतएव यह गर्भाशय की अशक्ति या बार-बार गर्भस्राव अथवा गर्भपात होना आदि विकारों में मुख्यतया उपयोग किया जाता है।

जिस स्त्री को गर्मी या सूजाक होने के कारण गर्भाशय कमजोर हो, गर्भ धारण करने में असमर्थ हो, गर्भस्राव या पतन की सम्भावना रहे, उसे गर्भपाल रस के उपयोग से अच्छा लाभ होता है। इसमें रक्तशोधक ओषधि के साथ गर्भपाल रस देना चाहिये।

मानसिक चिन्ता या हिस्टीरिया आदि दोषों के कारण भी गर्भपात या गर्भस्राव हो जाता है। ऐसी स्थिति में मुनक्का-क्वाथ के साथ गर्भपाल रस दें।

उपदंश के कारण गर्भाशय दूषित हो, गर्भ धारण करने में सर्वथा असमर्थ हो जाने से बन्ध्यापन दोष आ गया हो, तो गर्भपाल रस के साथ अप्टमूर्ति रसायन या वंगेश्वर रस मिला कर देने से उक्त दोष मिट जाते हैं। स्त्री की बीजवाहिनी शक्ति कमजोर हो जाने से अथवा जननेन्द्रिय की विकृति से गर्भ धारण नहीं होता हो या गर्भ-स्थापना ही न होती हो, तो ऐसी स्थिति में वंग भस्म या त्रिवंग भस्म के साथ गर्भपाल रस के सेवन से गर्भ धारण या गर्भस्थापन में सहायता मिलती है।

कभी-कभी गर्भवती स्त्री को गर्भ धारण से लेकर प्रसवावस्था पर्यन्त अनेक तरह के उपद्रव होते रहते हैं। जैसे—भोजन करते ही वमन हो जाना, पेट में अन्न नहीं रहना, चक्कर आना, घबड़ाना, कमर में दर्द होना आदि लक्षण होने पर गर्भपाल रस के साथ कामदुधा रस, प्रवाल या स्वर्णमाक्षिक भस्म के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

किसी-किसी स्त्री को गर्भ धारण होकर प्रसव भी अच्छी तरह हो जाने के पश्चात् प्रसूतिगृह में ही अथवा प्रसूतिगृह से बाहर होने पर दो-चार महीने बाद सन्तान की मृत्यु हो जाती है, और यह मृत्यु एक तरह के आदत के रूप में परिणत हो जाती है, जिससे बार-बार सन्तान की मृत्युजन्य कष्ट स्त्री को भुगतना पड़ता है। यह दोष रज-वीर्य्य की विकृति के कारण अथवा माता के दुग्ध-दोष से यकृत या उदर विकार होने पर होता है। चाहे किसी भी दोष से यह

विकृति क्यों न हो, गर्भपाल रस के सेवन से सब दोष दूर हो जाते हैं।

इसमें—हिंगुल योगवाही तथा रसायन है। नाग और वंग भस्म गर्भाशय पुष्ट करनेवाली है। त्रिजात, जीरा तथा मुनक्का ये तीनों पित्त शामक, बल्य और कोष्ठके क्षोभ को दूर करनेवाले हैं। लौह भस्म बलदायक और गर्भाशय की विकृति को नष्ट कर पुष्ट करनेवाली है। सफेद अपराजिता—वातवाहिनी नाड़ी को सुधारती है तथा गर्भ स्थापनकर गर्भाशय को पुष्ट करती है और मूत्र प्रवर्तक तथा शीतवीर्य है। —औ० गु० ध०शा०

ग्रहणीकपाट रस

शुद्ध पारा २ तोला, शुद्ध गन्धक १० तोला, शुद्ध अफीम ४ तोला, कौड़ी भस्म ७ तोला, शुद्ध बच्छनाग विष १ तोला, काली मिर्च ८ तोला और शुद्ध धतूरे का बीज २० तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली करें, फिर सब औषधियों को एकत्र मिला खूब खरल कर सुरक्षित रख लें। —र० का०

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती, सफेद जीरे का चूर्ण १ माशा और मधु के साथ दें।

नोट—इसी चूर्ण में यदि भाँग का रस अथवा पोस्त-डोडे के क्वाथ की भावना देकर खरल करके १-१ रत्ती की गोली बना लें, तो बहुत सुविधा रहती है।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से भयंकर अतिसार, संग्रहणी और पुराने अतिसार दूर हो जाते हैं तथा आमविकार नष्ट हो अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। संग्रहणी की सब अवस्था में चाहे वह वातज, पित्तज या कफज जिस दोष से उत्पन्न हुई हो इसका प्रयोग किया जाता है। विशेष कर जिसमें पेट में दर्द हो, बार-बार दस्त लगे और जलन के साथ दस्त हो, दस्त में आँव का अंश आवे तथा मरोड़ के साथ दस्त हो, थोड़ा खून भी मिला हुआ हो तथा दस्त बहुत थोड़ा हो, ऐसी अवस्था में ग्रहणी कपाट रस अच्छा काम देता है। इसके सेवन से आँव का पाचन हो, अग्नि प्रदीप्त हो जाती है जिससे पाचन क्रिया ठीक से होने लगती और रक्ताणुओं की वृद्धि हो जलीयांश

भाग सूखने लगता है। इस रसायन में धतूर बीज और अफीम ये दोनों वेदना शामक तथा ग्राही होने के कारण शीघ्र लाभ पहुंचाते हैं।

ग्रहणीकपाट रस (दूसरा)

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अतीस, बड़ी हर्रे, अभ्रक भस्म, यवक्षार, सज्जीखार, सुहागे की खील, मोचरस, बच और शुद्ध भाङ्ग समान भाग लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना उसमें शेष दावाओं का चूर्ण मिला जम्बीरी नीबू के रस के साथ खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर रख ले। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली शहद, शंख भस्म, घी और मिर्च के चूर्ण के साथ या छाछ के साथ दें। बच्चों को आधी गोली दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन सब प्रकार के अतिसार, ग्रहणी, ज्वर, शूल, अग्निमांद्य, अरुचि और आमवात रोग को नष्ट करता है। यद्यपि संग्रहणी तथा ग्रहणी रोग के लिये अनेक दवाओं का वर्णन है। उनमें पुरानी ग्रहणी या संग्रहणी के लिये तो पर्पटी कल्प का उपयोग करना उत्तम बतलाया गया है, किन्तु नयी ग्रहणी में तीन प्रकार की दवाओं का उपयोग किया जाता है यथा—१ कज्जली (पारा गंधक) योग, २—कज्जली-हिंगुल (पारा-गन्धक-हिंगुल) योग और ३—केवल सिंगरफ योग। इन तीनों में से आन्त्र दोष को दूर करने को कज्जली और सिंगरफ योग तथा केवल आमाशय के विकार को नष्ट करने के लिये सिंगरफ प्रधान योगों का प्रयोग किया जाता है।

इस रसायन का उपयोग विशेषकर बच्चों के कफ जन्य अतिसार में किया जाता है। जैसे—दस्त झाग (फेन) दार और सफेद हो, दस्त में अपचित अन्न गिरे, दस्त की मात्रा अधिक हो, आँत और गुदा की अवलियाँ कमजोर हो जाएँ, जिससे अनजान में भी दस्त हो जायँ, कभी-कभी वमन भी हो जाये, ऐसी दशा में ग्रहणी कपाट रस देने से शीघ्र लाभ होता है।

किसी विशेष कारण से मानसिक आघात पहुँचने पर पाचक पित्त विकृत हो जाता है, जिससे अन्नादिक ठीक तरह से नहीं पचता, ऐसी अवस्था में दस्त पतले होने लगते हैं। इसको शास्त्र में शोकातिसार के नाम से कहा गया है। ऐसा मनुष्य कहीं भी चैन से नहीं बैठ सकता। बार-बार उसकी मानसिक चिन्ताएँ बढ़ती ही जाती हैं तथा अतिसार रोग में भी वृद्धि होती रहती है। ऐसी अवस्था में ग्रहणी कपाट रस से बहुत फायदा होता है।

इस रसायन में—कज्जली-जन्तुघ्न (कीटाणुनाशक), रसायन तथा योगवाही है। अतीस बल को बढ़ानेवाला, यकृत के पित्त को स्राव करनेवाला, पाचक और ज्वरघ्न है। अभ्रक शक्ति-वर्द्धक, रसायन और मानसिक विकार को नष्ट करनेवाला है तथा क्षय (राजयक्ष्मा) में भी हितकर है। तीनों क्षार पाचक और यकृत को उत्तेजित करनेवाले हैं। मोचरस संग्राही और स्तम्भक व भाँग संग्राही, दीपक तथा पाचक है। —औ० गु० ध० शा०

ग्रहणीगजकेसरी रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, शुद्ध हिंगुल, लौह भस्म, जायफल, बेलगिरी, मोचरस, शुद्ध बच्छनाग, अतीस, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, धाय के फूल, भाँग, हर्रे, कैथ का गूदा, नागरमोथा, अजवायन, चित्रक, अनार की छाल, सुहागे की खील, इन्द्रजौ, शुद्ध धतूरे के बीज और करंज की गिरी प्रत्येक दवा समान भाग तथा अफीम इन सब के चौथाई भाग लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना लें, तत्पश्चात् उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर धतूरे के पत्र-स्वरस में खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली जायफल का पानी और मधु के साथ अथवा छाछ के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से रक्त-शूल और आम युक्त ग्रहणी, पुराना अतिसार और पीड़ायुक्त भयंकर विसूचिका (हैजा) नष्ट होती है।

संग्रहणी की प्रकोपावस्था में इस रसायन का उपयोग किया जाता है। विशेष कर वातज संग्रहणी में—दर्द के साथ बारंबार अधिक दस्त होना, अन्न ठीक से न पचना, अन्न का पाक खट्टा होना, शरीर की त्वचा रूक्ष हो जाना, कण्ठ और मुख सूखना, दष्टिमांद्य, कानों में शब्द (साँय-साँय आवाज) होना, पसली, जंघा और पेडू में दर्द होना, कभी-कभी दस्त की वृद्धि के साथ वमन भी होने लगना, जिससे लोगों को हैजे की सम्भावना हो जाय, हृदय में दर्द हो, शरीर दुर्बल हो जाय, जीभ का स्वाद जाता रहे, गुदा में कतरन जैसी पीड़ा उत्पन्न हो, सब पदार्थ खाने की इच्छा हो, मन में ग्लानि, अन्न पचने के बाद पेट फूल जाय, और भोजन करने पर मन की स्वास्थ्यता का अनुभव हो, पेट में गोला-सा अनुभव हो, प्लीहा-वृद्धि की आशंका हो, आदि लक्षण उपस्थित होने पर ग्रहणीगजकेसरी रस का उपयोग करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

गुल्मकालानल रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, टंकण भस्म, ताम्र भस्म, शुद्ध हरताल, प्रत्येक २-२ तोला, यवक्षार १० तोला, नागरमोथा, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, गजपीपल, हर्रे, बच और कूठ का चूर्ण प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना पश्चात् अन्य ओषधियाँ मिला कर पित्तपापड़ा, नागरमोथा, सोंठ, अपामार्ग और पाठे के क्वाथ की पृथक्-पृथक् १-१ भावना देकर खरलमें खूब घोंटे। फिर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली सुबह शाम हर्रे के क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन गुल्म-रोग में प्रयोग किया जाता है। वात प्रधान गुल्म रोग में तो इससे आश्चर्यजनक लाभ होता है।

गुल्म के कई भेद होते हैं—यथा रुग्णावस्था में आँतों के भीतर मलों का ग्रन्थि रूप में हो जाना तथा आँत के भीतर वायु भर कर कभी

ऊपर तो कभी नीचे की ओर गाँठ सदृश बन कर संचार करना—यह भी गुल्म का ही एक भेद है। पेट के अन्दर पतली-पतली मांसल नसों का एक दूसरे से मिल कर गाँठ रूप में बन जाना या केवल आफरा आदि के कारण गाँठ उत्पन्न होने को भी गुल्म कहते हैं। यही गुल्म विशेष प्रचलित है और गुल्म रोग में प्राय: लोग इसी गाँठ का अनुभव भी करते हैं। इसके अतिरिक्त एक "रक्तगुल्म" भी होता है, जो अक्सर स्त्रियों को होता है और इसका उत्पत्तिस्थान बीजाशय या गर्भाशय है। अतएव इसकी चिकित्सा के लिये शास्त्रकारों की आज्ञा है कि "मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्य:" अर्थात् दशम मास बीतने पर इसकी चिकित्सा करें। इसके सब लक्षण प्राय: पैतिक गुल्म की तरह होते हैं।

यह रसायन वातिक (वात प्रधान) गुल्म में अच्छा काम करता है। वातज गुल्म में गुल्म की गति कभी नाभी की ओर तो कभी वस्ति की तरफ होती है और कभी नाभी पसली की तरफ भी होती है। गुल्म कभी बड़ा कभी छोटा मालूम होना, दर्द भी कभी कम कभी ज्यादा, मलावरोध, अपानवायु का भी अवरोध होना, गला और मुख का सूखना, शरीर का वर्ण नीला अथवा लाल हो जाना, शीत ज्वर, हृदय, पसली, कंधा और मस्तिष्क में पीड़ा होना, खाली पेट में गुल्म (गाँठ) का प्रकोप होना, और भोजन करने पर शान्त हो जाना इत्यादि लक्षण होते हैं। ऐसी अवस्था में गुल्म कालानल रस का प्रयोग गोघृत के साथ करने से फायदा होता है।

पित्तगुल्म की प्रारम्भिक अवस्था में अर्थात् जब तक ज्वर, प्यास, मुख और अंगों में लालीपन आदि की उत्पत्ति न हुई हो, तब तक दूषित पित्त को मल द्वारा निकालने के लिये विरेचन रूप में इस रसायन का प्रयोग किया जाता है।

इसमें कज्जली योगवाही और रसायन है। ताम्र भस्म तीक्ष्ण, उष्ण वीर्य्य और क्षार गुण के कारण कफघ्न है। यवक्षार कफघ्न और वातानुलोमक है। नागरमोथा आम पाचक है। पिप्पली रसायन और पाचक है। सोंठ व मरीच दीपक-पाचक है। हरीतकी सूक्ष्म विरेचक है। पाठा मूत्रल और कफघ्न है। —औ० गु० ध० शा०

गुल्मकुठार रस

नागभस्म, वंगभस्म, अभ्रकभस्म, कान्तलौह भस्म प्रत्येक समान भाग और ताम्र भस्म सबके बराबर लें, इन्हें जम्बीरी नीबू के रस में घोट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखा कर रख लें।
—यो० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली, सुबह-शाम अदरकस्वरस, सज्जीखार, यवक्षार चूर्ण के साथ अथवा शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन गुल्म, आमजन्य विकार, हृदय के दर्द, पसली के दर्द और उदर शूल आदि रोगों को नष्ट करता है। यद्यपि इसमें पारद नहीं है, किन्तु रासायनिक भस्मों के यौगिक प्रयोग होने से इसका रसप्रकरण में पाठ है।

ज्यादा शोक चिन्ता आदि करने या मन में आघात पहुँचने से पाचक पित्त कमजोर हो जाता है और पचन-क्रिया में गड़बड़ी होने लगती है। फिर मन्दाग्नि हो जाती है। मन्दाग्नि हो जाने से वात प्रकुपित हो गुल्म रोग उत्पन्न कर देता है। इसमें स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाना, किसी से बात करने की इच्छा न होना, मानसिक चिन्ता में वृद्धि, शरीर कान्तिहीन हो जाना, अपनी जिन्दगी से निराश हो जाना, दुर्बलता, मुख की कान्ति बदल जाना आदि लक्षणों से युक्त रोगी को इस रस का प्रयोग करना चाहिये।

पित्त प्रधान गुल्म में—ज्वर, प्यास की अधिकता, जल पीने पर तुरन्त फिर जल पीने की इच्छा बनी रहे, मुख और सम्पूर्ण देह में लाई, पसीना ज्यादा आना, भोजन पचने की अवस्था में दर्द होना, गुल्म को छूने से विशेष दर्द होना, कभी-कभी गुल्म के दर्द से बेहोश हो जाना इत्यादि उपद्रव होने पर गुल्मकुठार रस को नागकेशर, इलायची, सोंठ और पीपल के क्वाथ के साथ दें। इससे पित्त की शान्ति हो उसके उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं और गुल्म भी गल जाता है।

रक्तज गुल्म में भी इस रसायन का प्रयोग किया जाता है। रक्तज गुल्म नवीन प्रसूता स्त्री के अपथ्य करने अथवा अपक्व गर्भपात

होने या ऋतु काल के समय अपथ्य भोजन करने से वायु प्रकुपित हो कर उस स्त्री के रक्त (जो ऋतु समय में निकलने वाला था) को गुल्मरूप (गाँठ के रूप) में बना देता है। इसके सब लक्षण पैत्तिक गुल्म की तरह ही होते हैं। विशेष कर—यह गुल्म एक जगह स्थिर रहता है। मुख से पानी निकलना, मुँह पीला पड़ जाना, स्तन का अग्रभाग काला हो जाना, इत्यादि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं जिससे गर्भ का संदेह होने लगता है। क्योंकि गर्भावस्था में भी उपरोक्त लक्षण उत्पन्न होते हैं, किन्तु गर्भ में निम्नलिखित लक्षण विशेष होने से गर्भज्ञान हो जाता है। यथा—गर्भ चार-पाँच महीने बाद इधर-उधर चलने लगता है और गुल्म एक जगह स्थिर रहता है तथा गुल्म वस्ति के समीप एक जगह चिपका हुआ रहता है। इन भेदों से गुल्म और गर्भ के अन्तर में परीक्षा करने पर बहुत-कुछ सहायता मिलती है। रक्तगुल्म का निर्णय हो जाने पर गुल्मकुठार रस का प्रयोग करना बहुत लाभप्रद होता है।

रक्त गुल्म की चिकित्सा दस माह बीतने पर करने को बताया है। कोई इसका आशय गर्भ से समझते हैं, किन्तु; यह समझना उचित नहीं है; क्योंकि कभी-कभी ग्यारह महीने बाद भी प्रसव होते देखा गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सिर्फ गर्भ के समय व्यतीत करने के आशय से ही ऐसा नहीं लिखा गया है। इसका आशय यह है कि गुल्म जब पक्वावस्था में आ जाये, तब दवा दें। इसमें गुल्म-कुठार रस किसी सौम्य औषध उशीरासव, सारिवाद्यासव अथवा अन्य सौम्य अनुपान के साथ प्रयोग करने से बहुत फायदा होता है।

पैत्तिक अम्लपित्त में—जब पेट में गुड़-गुड़ आवाज हो, डकारें खट्टी आती हो, जलन हो, मलावरोध, बार-बार अम्लपित्त के उपद्रव हों, ऐसी हालत में गुल्मकुठार रस का सेवन अदरक रस और शहद तथा सज्जीखार एवं यवक्षार के साथ करना चाहिये।

इस रसायन में—नागभस्म बलदायक और रक्त प्रसादक है। वंग भस्म गर्भाशय को बल देती है तथा गर्भाशय में दूषित रक्तादि को अनुलोमन करके बाहर निकालती है। अभ्रक भस्म—सब धातुओं

का परिपोषण करती और रसायन व योगवाही है। कान्तलोह भस्म धातुओं को नियमित करती है तथा रक्त प्रसादक और शक्तिवर्द्धक है। ताम्रभस्म तीक्ष्ण, व्यवायी (शरीर में शीघ्र फैलनेवाली) और विकाशी है। जम्बीरी नीबू का रस—दीपक-पाचक तथा सूक्ष्मस्रोतोऽनुगामी है। —औ० ग० ध० शा०

चतुर्मुख रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म और अभ्रक भस्म ४-४ तोला तथा स्वर्णभस्म १ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना उसमें अन्य भस्में मिला घृतकुमारी रस तथा त्रिफला क्वाथ, गिलोय, नागरमोथा, ब्राह्मी, जटामाँसी, लौंग, पुनर्नवा और चित्रकमूल इनके क्वाथ या स्वरस इनमें (जो मिल जाएँ) घोटकर गोला बना, धूप में सुखा, एरण्ड-पत्र म लपेट, सूत से बाँध कर, धान की कोठी में तीन दिन तक रहने दें। चौथे दिन उसमें से निकालकर महीन पीसकर १-२ रत्ती की मात्रा में व्यवहार करें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-२ रत्ती सुबह-शाम त्रिफला चूर्ण १॥ माशे से ३ माशे और शहद ६ माशे से १ तोला में मिलाकर सेवन करें।

गुण और उपयोग—स्वर्ण, अभ्रक, कज्जली आदि के योग से बननेवाली यह दवा वातज रोग के लिये बहुत फायदेमन्द है। मूर्च्छा, हिस्टीरिया, मृगी और उन्माद रोग पर इस दवा का अच्छा असर होता है। हृदय की बीमारियों को दूर करके हृदय को मजबूत करना इस रसायन का खास गुण है। क्षय, खाँसी, अम्लपित्त, पाण्डु और प्रसूतज्वर या प्रसूत के बाद होनेवाली कमजोरी में इस दवा का प्रयोग करके लाभ उठाना चाहिये। यह पौष्टिक और रसायन भी है। इसलिये किसी बीमारी के बाद की कमजोरी या साधारणतया होने वाली कमजोरी में इस दवा से अच्छा लाभ होता है।

क्षय रोग की सब अवस्था में—चतुर्मुख रस का उपयोग किया

जाता है। क्षय रोग में जब ज्वर की गर्मी बढ़ी हुई रहती है, तब क्षय रोगनाशक दवा देने में कुछ विचार भी करना पड़ता है कि कहीं गर्मी और भी न बढ़ जाय, किन्तु चतुर्मुख रस के लिये यह प्रश्न ही नहीं उठता है। ज्वर की गर्मी बढ़ी हुई हो या मन्द हो गयी हो प्रत्येक अवस्था में इसका प्रयोग कर सकते हैं। क्योंकि इसमें स्वर्ण क्षयोत्पादक कीटाणुओं को नाश करनेवाला तथा अभ्रक धातुओं की निर्बलता दूर कर बलवान बनानेवाला है। यही दो गुण इस रसायन में प्रधान हैं। लौह आदि शक्तिवर्द्धक पदार्थों का भी सम्मिश्रण इसमें है।

चतुर्मुख रस का सबसे विशेष प्रभाव ग्रहणी, आन्त्र, बड़ी आँत और आमाशय आदि स्थानों पर होता है। अतएव क्षयोत्पादक कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न विषाक्त गैस से जब आँतें दूषित हो निर्बल होने लगतीं और अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाती हैं तब चतुर्मुख रस के प्रयोग से लाभ होता है। इस रसायन का प्रधान कार्य शारीरिक निर्बलता दूर कर रस-रक्तादि धातुओं को पुष्ट करते हुए शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाना है।

अधिक शोक-चिन्ता आदि कारणों से मानसिक क्षोभ हो जाता है। इससे पाचक पित्त कमजोर होकर मन्दाग्नि तथा आमाशय की क्रिया शिथिल हो जाती है। ऐसी हालत में जो कुछ भी खाया-पिया जाता है सब आमाशय में यथावत् रह जाता है। भूख भी नष्ट हो जाती है, पेट भारी बना रहता है, अन्न में अरुचि, जी मिचलाना, पेट में थोड़ा-थोड़ा दर्द होना, शरीर कमजोर हो जाना, रस-रक्तादि धातु क्रमशः क्षीण होना आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी हालत में चतुर्मुख रस १ गोली, बड़ी हर्रे का चूर्ण ३ माशे के साथ मिलाकर शहद (मधु) से दें। क्योंकि इसका असर पचनेन्द्रियों पर पड़ता है। अतः यह सर्वप्रथम पाचकपित्त को उत्तेजित कर मन्दाग्नि दूर करते हुए उसे प्रदीप्त करता है, जिससे अन्नादिकों की पचन क्रिया ठीक होने से रस-रक्तादि धातु भी अच्छी तरह बन, शरीर क्रमशः हृष्ट-पुष्ट हो जाता है।

जठराग्नि मन्द हो जाने से अन्नादिक का पचन अच्छी तरह नहीं होता। इसका प्रभाव पक्वाशय पर भी पड़ता है। पक्वाशय शिथिल हो अपना कार्य्य करने में असमर्थ हो जाता है जिससे अन्नादिक का जल भाग और किट्ट भाग का विभाजन भी ठीक-ठीक नहीं हो पाता। ऐसी अवस्था में पेट भारी मालूम पड़ना, जी मिचलाना, पेट में थोड़ा-थोड़ा दर्द, कुछ ज्वर भी हो जाना, भोजन करने की इच्छा न होना, अन्न में अरुचि तथा यकृत अशक्त होने से पित्तोत्पत्ति भी कम होती है। कभी-कभी अतिसार भी हो जाता है। रोगी कान्तिहीन हो जाता है और उसे बोलने की शक्ति भी घट जाती है, इत्यादि पित्तजन्य लक्षणों में चतुर्मुख रस के उपयोग से बहुत फायदा होता है।

कभी-कभी आँतों की कमजोरी से अन्न सम्यक् रूप से पचित न होकर कुछ अपचित रूप में शेष रह जाता है। यह अपचित अन्न क्रमशः संचित होने लगता और इसकी वजह से अनेक तरह के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे पेट में थोड़ा-थोड़ा दर्द होना, पेट भारी बना रहना, बद्ध कोष्ठता, अपान (अधो) वायु का रुक जाना, रोगी का उदास और बेचैन रहना—ऐसी अवस्था में भी इस रसायन का उपयोग करना चाहिए।

पाचक पित्त की निर्बलता के कारण अन्नादिकों का पाचन ठीक से न होने पर रसादि धातु भी अच्छी तरह से नहीं बन पाती और धीरे-धीरे रस-रक्तादि धातु कमजोर होने लगते हैं। ऐसी हालत में रोगी कमजोर, कान्ति हीन तथा उदास रहने लगता है। इन दोषों को दूर कर धातु पुष्टि करने के लिये चतुर्मुख रस का उपयोग करना अच्छा है।

क्षय रोग की प्रारम्भिक अवस्था में—पित्त प्रकोप के कारण आँख, हाथ, पैर, छाती तथा पसली आदि में जलन होना, शरीर में दर्द, तथा सर्वाङ्ग में दाह आदि लक्षण होने पर चतुर्मुख रस बहुत कम मात्रा में प्रयोग करना चाहिये। साथ में प्रवाल चन्द्रपुटी का भी सम्मिश्रण कर देने से बहुत उत्तम और शीघ्र लाभ होता है।

प्रमेह रोग में—मन्दाग्नि होने के कारण, ज्यादे आराम से बैठने, परिश्रम नहीं करने, बराबर बैठे रहने आदि कारणों से प्रमेह रोग होता है। इसके प्रारम्भ में मूत्र (पेशाब) अधिक होता, प्यास ज्यादा लगती, पानी पी लेने पर तुरत फिर पानी पीने की इच्छा होती है, कमजोरी बढ़ने लगती है, हाथ-पैरों में जलन, पसीना बहुत आना, आदि लक्षणों में चतुर्मुख रस का उपयोग करने से शीघ्र ही लाभ होता है।

इस रसायन में—कज्जली योगवाही और रसायन है। लौह और अभ्रक शक्तिबर्द्धक तथा धातुओं को पुष्ट करने वाला है, सुवर्ण राजयक्ष्मा के कीटाणुओंको नाश करनेवाला, शक्ति वर्द्धक, एवं रक्त को प्रसन्न करने वाला है। भावना वाले जितने द्रव्य हैं, वे प्रायः अग्नि-दीपक, पाचक, बलबर्द्धक, रसायन और पुष्टिकर हैं।

—औ० गु० ध० शा०

चन्द्रकला रस

शुद्ध पारा, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म १-१ तोला, शुद्ध गंधक २ तोला, मोती पिष्टी २ तोला, कुटकी, गिलोयसत्त्व, पित्तपापड़ा, खस, छोटी पीपल, श्वेत चन्दन, अनन्त मूल, प्रत्येक का कपड़छन चूर्ण १-१ तोला लेवें। प्रथम पारा-गंधक की कज्जली करें, पीछे उसमें भस्में तथा अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिला कर नागरमोथा, मीठा अनार, दूब, केवड़ा, कमल, सहदेई, शतावर, पित्तपापड़ा, इनमें जो मिल जायँ उनका क्वाथ या स्वरस बना, प्रत्येक की १-१ भावना और मुनक्का क्वाथ की ७ भावनाएँ दें। प्रत्येक भावना में १-१ दिन मर्दन करें और छाया में सुखाकर पुनः दूसरी भावना दें। अन्त में एक तोला कपूर मिला, चने के बराबर गोलियाँ बना छाया में सुखाकर रख लें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली सुबह-शाम, ठंडा जल, उशीरासव, अशोकारिष्ट या पेठे के स्वरस से दिन में दो बार दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन—समस्त पित्तज और वात-

पित्तज रोगों का नाशक तथा आन्तरिक एवं वाह्यदाह को शान्त करने वाला है। शरद् ऋतु तथा ग्रीष्म ऋतु में यह विशेष उपयोगी है।

यह रस ज्वर, घोर सन्ताप, भ्रम, मूर्च्छा, स्त्रियों का श्वेत प्रदर, रक्त प्रदर, रक्त पित्त, रक्त की वमन और मूत्रकृच्छ्र रोग को नाश करता है।

चन्द्रकला का विशेष प्रभाव रक्तवाहिनी नाड़ी तथा रक्त संचालिनी क्रिया पर होता है। रक्त में जब दूषित पित्त मिल जाता है; तब रक्त का दबाव बढ़ जाने से भीतर जलन होना, शरीर के ऊपरी भाग में भी गर्मी मालूम पड़ना, चक्कर आना, मूर्च्छा होना—रक्त विकृति तथा रक्तवाहिनी नाड़ियाँ कमजोर हो अनेक प्रकार के उपद्रव पैदा कर देती हैं; ऐसी अवस्था में रक्तवाहिनी नाड़ी, दूषित पित तथा रक्त को सुधारने के लिये चन्द्रकला रस का उपयोग करना बहुत गुणकारी है।

पैत्तिक (पित्त जन्य) मूत्रकृच्छ्र या मूत्राघात में—जलन के साथ थोड़ा पेशाब होना, पेडू में दर्द, मूत्रनली में दाह तथा अन्तर्दाह होना ऐसी स्थिति में चन्द्रकला रस का उपयोग यवक्षार और मिश्री चूर्ण के साथ करने से विशेष लाभ होता है। मन्दाग्नि के कारण आमाशय में कच्चा अन्न (अपरिपक्व अन्न) रह जाने से कुछ दिनों के बाद उसमें से विषाक्त गैस उठती है, और इसका उर्ध्वगमन होता है। अतएव मस्तिष्क में भी इसके विकार का असर पहुँचता है जिससे कभी-कभी चक्कर आ जाना, बेहोशी आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। यह विषाक्त गैस (वाष्प) रक्त को दूषित कर ज्वरादिक उपद्रव भी उत्पन्न कर देती है। इन उपद्रवों को दूर करने के लिये चन्द्रकला रस का उपयोग किया जाता है।

रक्तचाप (रक्त दबाव) में—जब पित्त की तीक्ष्णता के कारण रक्त में उफान उत्पन्न होता है, तब रक्त ऊपर की ओर चलता है जिसमें निम्नलिखित लक्षण होते हैं। यथा—दोनों आँखें लाल हो जाना, मुँह लाल वर्ण और कुछ गंभीर-सा हो जाना, मस्तिष्क की शिराएँ विशेष कर कपार पर रक्त की मोटी-मोटी शिराएँ उभर

आना, दाह और चक्कर उत्पन्न होना, अण्ट-सण्ट बोलना, ज्वर हो जाना, रक्तवाहिनी शिराओं का मोटा हो जाना आदि। इस तूफानी रक्त के दौरा को चन्द्रकला रस बहुत सरलता के साथ नीचे उतार देता है तथा पित्त को शान्त करते हुए दूषित रक्त को भी सुधार देता है।

पित्तोल्वण (पित्ताधिक्य) सन्निपातज्वर में—ज्वर की गर्मी इतनी बढ़ जाती है कि रोगी बर्दास्त नहीं कर सकता। कभी-कभी इससे रोगी बेहोश भी हो जाता है। आँखें सुर्ख (लाल) हो जाती हैं, कपाल की नसें तन जातीं और उसमें खून उभर आने से दर्द होने लगता है जिससे रोगी बार-बार गर्दन चलाता रहता है। बार-बार गर्दन चलाने से कुछ आराम अनुभव होता है। शिर का दर्द इतना तेज होता है मानो कोई हथौड़ा से मारता हो या भाला से खोद रहा हो। रोगी व्याकुलता से बोलने में भी असमर्थ हो जाता है। ऐसी भयंकर अवस्था में सन्निपात की जो उचित दवा हो वह तो करें ही; किन्तु उसके साथ चन्द्रकला रस भी देते रहने से ये बढ़े हुए दोषों को शीघ्र शान्त कर देता है।

रक्तस्राव—शरीर में गर्मी विशेष बढ़ जाने से देह में जलन, शिर में दर्द तथा आँखें लाल होकर नाक-मुँह आदि से रक्त स्राव होने लगता है। गर्मी के कारण रक्त बिल्कुल पतला हो जाता है। कभी-कभी यह स्राव रुकना कठिन हो जाता है। ऐसे लक्षण होने पर—चन्द्रकला रस १ गोली, पीपल की लाख १ रत्ती, प्रवाल चन्द्र पुटी १ रत्ती, मिश्री १।। माशे में मिला, दूध के साथ दें। ऊपर से उशीरासव या सारिवाद्यासव बराबर जल मिलाकर पिलावें।

राजयक्ष्मा की दूसरी अवस्था में खाँसी विशेष हो, ज्वर की मात्रा भी अधिक हो, रक्त-वमन हो, छाती में दर्द, कमजोरी बराबर बढ़ती ही जाय—ऐसी अवस्था में रक्तस्राव को रोकना तथा केवल रोगी की शक्ति की रक्षा करना प्रथम कर्त्तव्य होता है। इसके लिये चन्द्रकला रस १ गोली, प्रवाल चन्द्रपुटी १ रत्ती, गिलोयसत्त्व ४ रत्ती में मिलाकर दाड़िमावलेह अथवा शर्बत अनार के साथ देने से पूर्ण फायदा होता है।

रक्तपित्त में—पित्त की तीक्ष्णता के कारण रक्तवाहिनी नाड़ियों की श्लैष्मिक कला विकृत होकर फूट जाती है, फिर उसके द्वारा रक्त बहने लगता है। यह रक्त मुँह और नाक के मार्ग से निकलता है। यह रोग कभी स्वतन्त्र रूप से और कभी उपद्रव रूप से भी हो जाता है। यदि इस रोग के साथ उदर में वेदना, दर्द होकर वमन द्वारा रक्त गिरना, साथ ही देह में जलन, प्यास, पेट में जलन आदि पित्त प्रकोपजन्य लक्षण हों तो चन्द्रकला रस का उपयोग अवश्य करें, इससे बहुत फायदा होता है।

रक्तप्रदर में—जैसे पुरुष वर्ग में आजकल प्रतिदिन प्रमेह तथा शुक्र-विकार की वृद्धि होती जा रही है, उसी प्रकार स्त्री वर्ग में भी रक्त-प्रदर श्वेत प्रदर, अत्यार्तव, रजःकृच्छ्रता आदि व्याधियों की बाढ़-सी आ गयी है। स्त्रियों के गर्भाशय, बीजकोष या अपत्यपथ (योनि) में किसी प्रकार की विकृति के कारण दर्द के साथ मासिकधर्म होने या विशेष तादाद में रजःस्राव होने से रक्त प्रदर आदि रोगों की उत्पत्ति हो जाती है। इसमें भी पित्त की तीक्ष्णता के कारण रक्त विकृत हुआ रहता है। अतः हाथ-पाँव में जलन, शरीर कमजोर होते जाना, उठने-बैठने में आँखों के सामने चिनगारियाँ छूटना, भूख कम लगना आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी स्थिति में चन्द्रकला रस अशोक की छाल के क्वाथ अथवा अशोकारिष्ट के साथ (बराबर जल मिलाकर) देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

पैत्तिक (पित्तजन्य) प्रमेह में—पित्त से उत्पन्न होनेवाले अथवा पित्त प्रधान प्रमेह कई तरह के होते हैं। उनमें कालमेह—जिसमें काला पेशाब होता है। नीलमेह—जिसमें नील वर्ण का पेशाब होता है। हारिद्र मेह—जिसमें हल्दी के रंग के समान पीला पेशाब होता है। इन रोगों में पित्त की तीक्ष्णता से सर्वाङ्ग दाह, प्यास की अधिकता, बार-बार जल पीने पर भी तृषा की निवृत्ति नहीं होती, पेशाब की मात्रा में कमी, किन्तु पेशाब अधिक बार होना, कण्ठ सूखना आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी दशा में चन्द्रकला रस आँवले के स्वरस के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। इससे पित्त की तीक्ष्णता

कम होकर रक्तस्थित और त्वचास्थित दाह कम हो जाती है और धीरे-धीरे इससे होनेवाले उपद्रव भी शान्त होने लगते हैं।

इस रसायन में—कज्जली विकाशी-व्यवायी (फैलनेवाली) और रसायन है। ताम्र—पित्तसारक और पित्तस्थान को शक्ति प्रदान करने वाला तथा यकृत में से अधिक पित्तस्राव को रोकनेवाला है, अभ्रक—रसायन एवं सूक्ष्म स्रोतों में प्रवेश करनेवाला, पित्तशामक और वातवाहिनी नाड़ियों के क्षोभ को नाश करनेवाला तथा वात-शामक है। नागरमोथा—आम को पचानेवाला तथा मूत्र लाने-वाला है। केवड़ा—मूत्रल और दाह शान्त करनेवाला है। शता-वरी—शक्तिवर्द्धक और मूत्र लानेवाली है। कुटकी—पित्तस्राव करानेवाली और यकृत को शक्ति देनेवाली तथा ज्वरनाशक है। गुडूची (गिलोय) सत्व—पित्त और दाह-शामक तथा मूत्र लाने-वाली है। पिप्पली—रसायन ह। चन्दन—मूत्रल और दाह-नाशक है। मुनक्का—पित्त शामक, हृदय को बल देनेवाला, शक्ति बढ़ानेवाला तथा दाह नाशक है। —औ० गु० ध० शा०

चन्द्रकान्त रस

रससिन्दूर—अभ्रक भस्म, तीक्ष्ण लौह भस्म, ताम्र भस्म, शुद्ध गन्धक सब समान भाग लेकर एक दिन स्नुही (सेहुण्ड) के दूध में घोटकर छाया में सुखाकर रख लें अथवा २-२ रत्ती की गोली बना लें। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—२ रत्ती सुबह-शाम, गोदन्ती, हरताल भस्म और मधु के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—रससिन्दूर, अभ्रक, लौह, ताम्र आदि भस्मों के योग से बने इस रस के सेवन से वात-पित्त-कफादि किसी भी दोष से उत्पन्न शिरोरोग दूर हो जाता है। अर्धावभेदक (आधा शीशी), सूर्यावर्त्त (सूर्य के साथ घटने-बढ़नेवाला सिर-दर्द) में इसके सेवन से निश्चय लाभ होता है।

चन्द्रशेखर रस

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गंधक २ तोला, मिर्च २ तोला, सुहागे की खील २ तोला, मिश्री ७ तोला, इन सबको एकत्र कर रेहू मछली के पित्त के साथ ३ दिन खरल में घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, अदरक रस और मधु अथवा ठण्ढे जल के साथ दें। रक्त-पित्त में आँवले के मुरब्बे से और बच्चों को माता के दूध से दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से जीर्ण ज्वर, रक्त-पित्त, श्वास-खाँसी आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। बच्चों की खाँसी, ज्वर, पसली चलना आदि बीमारी में इसका उपयोग बहुत लाभदायक है।

इस रसायन का विशेष उपयोग पित्तश्लेष्म ज्वर में—शरीर में दाह, तन्द्रा, अरुचि, कभी किसी अंग में दाह हो और कभी किसी अंग में ठंढ लगे आदि लक्षण उत्पन्न होने पर होता है। इस ज्वर में कफ रुक जाता है और पित्त पतला होकर कफ से मिल जाता है। ये दोनों आमाशय के स्रोतों को रोक देते हैं जिससे अमाशय का पित्त मन्द होकर ज्वर उत्पन्न कर देता है। ऐसे ज्वर में चन्द्रशेखर रस बने से तुरत लाभ होता है। क्योंकि इसमें सुहागे की खील कफघ्न होने की वजह से दूषित कफ को निकाल कर आमाशयस्थ पित्त को जागृत कर देता है। फिर यह जागृत जठराग्नि अपना कार्य करने में समर्थ हो जाती और ज्वरादि भी कम होने लग जाते हैं।

इस रसायन में—कज्जली कीटाणुनाशक, रसायन और विकाशी है। मिर्च—तीव्र पाचक और उत्तेजक है। सुहागा—आक्षेप-नाशक, पाचक, कफ पतला करने वाला और हृदय को प्रसन्नकारक है। —औ० गु० ध० शा०

चन्द्रामृत रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, लोह भस्म, अभ्रक भस्म १-१ तोला,

सुहागे की खील ८ तोला, सोंठ, पीपर, काली मिर्च, आँवला, हर्रें, बहेड़ा, चव्य, धनिया, जीरा, सेंधानमक प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बना उसमें अन्य भस्म मिला कर घोंटे। फिर बनौषधियों का कूट-कपड़छान चूर्ण बना, मिलाकर, अडूसे के पत्तों के स्वरस की तीन भावनाएँ दें। फिर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ गोली शहद में मिलाकर चटावें और ऊपर से बकरी-दूध, गोजिह्वादि क्वाथ, द्राक्षारिष्ट या शर्बत यूफा पिलावें। यदि खाँसी में कफ के साथ रक्त आता हो तो १ गोली, ५ रत्ती नागकेशर का चूर्ण और ५ रत्ती खूनखराबे के चूर्ण के साथ मिलाकर १ तोला लाल कमल के स्वरस के साथ देवें। खाँसी के साथ श्वास भी हो तो लाल कमल के स्वरस के साथ देवें। खाँसी के साथ श्वास भी हो तो १ गोली के साथ ५-७ रत्ती सोमलता का चूर्ण मिलाकर शहद से देवें।

गुण और उपयोग—यह पाँचों प्रकार की खाँसी के लिये लाभदायक है। जिस खाँसी में खून आता हो तथा खाँसते-खाँसते दाह, प्यास एवं मूर्च्छा आ जाती हो, उस हालत में इस दवा का अच्छा असर होता है। यदि जीर्णज्वर के साथ खाँसी आती हो और मन्दाग्नि; कास आदि की भी शिकायत हो तो इस रसायन का प्रयोग अवश्य करें।

चन्द्रांशु रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, अभ्रक भस्म, लौह भस्म, वंग भस्म प्रत्येक दवा समान भाग लेकर, प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बना, अन्य भस्में भी मिलाकर घृत कुमारी रस में घोटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, जीरा-क्वाथ, गौ-दुग्ध, जटामाँसी-क्वाथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से गर्भाशय-दोष,

योनिशूल, योनि में पीड़ा एवं दाह होना तथा योनि की स्थानभ्रष्टता (अपने स्थान से टलजाना, विकृत हो जाना आदि), योनि में खाज चलना, हिस्टीरिया आदि विकार शीघ्र दूर हो जाते हैं। इससे गर्भाशय बलवान हो जाता और उसमें गर्भधारण की शक्ति पैदा होती है।

चन्द्रोदय रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक ; वंगभस्म, अभ्रकभस्म प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें फिर उसमें वंगभस्म और अभ्रक भस्म मिलाकर जम्बीरी नीबू के रस में घोट, गोला बना, सम्पुट में बन्द कर, साधारण गजपुट में फूंक दें। इस प्रकार जम्बीरी नीबू के रस में घोटकर ७ पुट दें। फिर घीकुमारी और चित्रक स्वरस की पृथक्-पृथक् ७-७ भावना देकर २-२ रत्ती की गोली बना, छाया में सुखाकर रख लें। —र० रा० सु०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, जीरे के चूर्ण और गुड़ के साथ, जीर्णज्वर में घृत कुमारी रस के साथ, कास-श्वास में—त्रिफला-क्वाथ के साथ, उन्माद में गुर्च (गिलोय) क्वाथ के साथ और धनुर्वात में दशमूल क्वाथ के साथ देने से विशेष लाभ होता है।

गुण और उपयोग—यह चन्द्रोदय रस स्वर्णमिश्रित चन्द्रोदय रस से पृथक् है। अतएव इसके गुण में भी अन्तर है। यह चन्द्रोदय वंग और अभ्रक कल्प का यौगिक रसायन है। इसका उपयोग शुक्र-क्षय-विकार में उत्पन्न होनेवाले अग्निमांद्य, वद्धकोष्ठ, जीर्णज्वर आदि में होता है।

विषम ज्वर में—कभी-कभी विषम ज्वर अधिक दिन तक हैरान करता है जिससे दोष और दूष्य दोनों निर्बल हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि शरीर में रोग-निरोधक शक्ति नहीं रहती जिससे अनेक तरह के अन्य रोग भी उपद्रव रूप में उत्पन्न होने लगते हैं। इसमें शुक्रक्षय भी होता है। अतः मन्दाग्नि हो जाती तथा पाचन-शक्ति कमजोर हो जाती है। इन कारणों से शरीर कमजोर और दुबला-

पतला हो जाता है, रस-रक्तादि धातु की कमी के कारण शरीर का रंग पीला हो जाने पर चन्द्रोदय रस देने से विशेष लाभ होता है। इसके सेवन से ज्वर, मन्दाग्नि और धातु क्षय आदि दोष नष्ट होते हैं।

कभी-कभी विशेष शुक्रक्षय होने से श्वासवाहिनी और फुफ्फुस अशक्त हो खाँसी तथा श्वास की वृद्धि हो जाती है। ऐसे कास-श्वास को दूर करने और रोगी को स्वस्थ बनाने के लिये चन्द्रोदय रस का उपयोग करना चाहिये।

विशेष काल काम शास्त्र का अध्ययन करने या स्त्री विषयक दूषित भावनाओं का बराबर विचार-मनन-चिन्तन आदि करने के सिवाय कुछ काम नहीं करना; ऐसे विचार मनन करनेवाले कामोन्मत्त हो जाते और उनके सामने चाहे कोई भी स्त्री सुन्दर वेष में आ जाय तो उसके प्रति उनका विचार दूषित ही उठने लगता है और कभी-कभी यह दूषित विचार प्रकट भी हो जाता है। इस तरह की दूषित भावना अधिक दिन तक रहने से कामेच्छा प्रबल हो जाती किन्तु, इसकी पूर्ति न होने से मन और शरीर दोनों दूषित हो जाते हैं। बार-बार इच्छा करने पर इसकी पूर्ति नहीं होने से मानसिक आघात हो उन्माद हो जाता है। यूनानियों ने इसका नाम 'प्रेमोन्माद'' रखा है।

इसमें रोगी को मनोविभ्रम हो जाता और बराबर स्त्री-विषयक ही बातें करता रहता है। कभी खूब हँसता और कभी रोने-चिल्लाने लगता है। बार-बार चुम्बन करने की चेष्टा करता। यदि कभी शुक्र स्राव हो जाता तो रोगी बहुत व्याकुल (बेचैन) हो जाता है। इस रोग का मूल कारण किसी सुन्दर स्त्री को देखना या रास्ते चलते औरतों को देखकर अधिक चिन्तन करना है। ऐसी हालत में चन्द्रोदय रस बहुत अच्छा काम करता है।

हिस्टीरिया में—जब दौरे बार-बार होते हों, स्त्री कमजोर और दुबली होती जाती हो, ऐसी दशा में चन्द्रोदय रस देने से हिस्टीरिया के आक्षेप (झटके-दौरा) बन्द हो जाते हैं तथा शारीरिक शक्ति भी बढ़ने लगती है।

धनुर्वात में—जो धनुर्वात शारीरिक अभिघात अर्थात् शरीर में किसी प्रकार की चोट लगने अथवा अत्यन्त रक्तस्राव होने के कारण उत्पन्न होता है ऐसे धनुर्वात में विशेषतया इसका उपयोग शोणित-स्थापन या शोणित-स्तम्भन के लिये किया जाता है।

चन्द्रोदय रस मानसिक दोषनाशक, आक्षेप को नष्ट करने-वाला और वायु की गति को नियमित करनेवाला तथा शुक्रक्षय-विकार को नष्ट करनेवाला है।

इस रसायन में—कज्जली रसायन व कीटाणुनाशक है। वंग शुक्र-दोषनाशक, रसायन, वलवर्द्धक तथा मनोदोष शामक है। अभ्रक रसायन, वातावाहिनी नाड़ी-शामक और धातुओं को पुष्ट करने वाला तथा उन्माद रोग-नाशक है। जम्बीरी नीबू का रस पाचक तथा दीपक है। ग्वारपाठा जीवनीय, रसायन, मृदु, विरेचक व शोणित को प्रसन्न करनेवाला है। चित्रक रक्त का दबाव नियमित करनेवाला और वातवाहिनी नाड़ी-शामक तथा तीक्ष्ण व पाचक है। —औ० गु० ध० शा०

चिन्तामणि रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, अभ्रक भस्म, लौह भस्म, वंगभस्म, शिलाजीत और अम्बर प्रत्येक १-१ तोला, स्वर्ण भस्म चौथाई तोला, मोती पिष्टी और रौप्य भस्म प्रत्येक आधा-आधा तोला लें। प्रथम पारा-गंधक की कज्जली कर उसमें अम्बर, शिलाजीत तथा अन्य भस्में मिलाकर चित्रक की जड़ के क्वाथ में तथा भाँगरे के स्वरस में १-१ दिन मर्दन करें। पीछे अर्जुन वृक्ष की छाल के क्वाथ में सात दिन मर्दन करके १-१ गुंजा (रत्ती) की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर शीशी में रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम शहद में चटा कर ऊपर से बला (बरियार) की जड़ का क्वाथ पिलावें।

गुण और उपयोग—सब प्रकार के हृदय रोग, हृदय शूल और हृदय की बढ़ी हुई गति में अत्यन्त लाभदायक है। वातवाहिनियों

की निर्बलता, हिस्टीरिया आदि में इसका प्रयोग करना उत्तम है। हृदय रोग के साथ , यकृत शोथ और उदर-रोग हो तो इसके साथ आरोग्य वर्द्धिनी वटी मिला कर देना चाहिये। इससे अच्छा लाभ होता है।

जयमङ्गल रस

हिंगुलोत्थ पारा, शुद्ध गंधक, सुहागे की खील, ताम्र भस्म, वंग भस्म, सोनामाखी भस्म, सेंधा नमक, काली मिर्च प्रत्येक एक-एक तोला, स्वर्ण भस्म २ तोला, कान्तलौह भस्म तथा चाँदी भस्म १-१ तोला। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना फिर उसमें अन्य भस्में तथा कूट-कपड़छान किया हुआ काष्ठौषधियों का चूर्ण मिला सबको एकत्र घोंट कर धतूरे के पत्ते का रस, हरसिंगार के पत्तों का रस, दशमूल का क्वाथ और चिरायते के क्वाथ की ३-३ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा, सुरक्षित रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली जीरे के चूर्ण और शहद या गुडूची स्वरस और शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग—स्वर्ण, लौह , वंग और ताम्र जैसे प्रधान उपादानों के कारण यह रस बहुत प्रसिद्ध है। पुराने बुखार के लिये तो यह बहुत प्रसिद्ध दवा है। यह त्रिदोषघ्न है और ज्वर तथा सेन्द्रिय विष-विकार को शरीर से बाहर निकाल, दिल और दिमाग में शान्ति पहुँचाता है। हृदय, मस्तिष्क फुफ्फुस, मूत्रपिण्ड आदि सभी शारीरिक अंगों पर इसका अच्छा प्रभाव होता है। सभी प्रकार के पुराने बुखार, बिगड़े हुए ज्वर, धातुगत ज्वर और ज्वरों के उपद्रव इसके सेवन से शान्त हो जाते हैं। अनुपान भेद से सभी विकारों में इस रसायन का उपयोग किया जाता है। यह बल-वीर्य की वृद्धि कर शरीर को पुष्ट करता है। किसी रोग के कारण हुई कमजोरी में इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है।

जीर्णज्वर में—शरीर में अधिक दिन तक ज्वर रह जाने के कारण रस-रक्तादि धातु तथा दोष-दूष्य आदि निर्बल हो जाते हैं। फिर

इनमें रोगों के उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं को रोकने की शक्ति नहीं रहती तथा हृदय कमजोर हो जाता है। अतः विष प्रधान दवा देने में संशय होता रहता है। ऐसी अवस्था में जयमंगल रस बहुत शीघ्र लाभ करता है।

कभी-कभी अचानक इतने जोर से आदमी डर जाता है, कि उसके कारण बुखार आ जाता है। इसमें हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। वातवाहिनी नाड़ियाँ अस्थिर हो जाती हैं, जिससे शरीर काँपने लगता और मन चंचल हो जाता है। कभी-कभी तो उन्माद-सा हो जाता है। ऐसी भयंकर परिस्थिति में जयमंगल रस के उपयोग से अच्छा लाभ होते देखा गया है।

जलोदरारि रस

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनसिल, हल्दी, शुद्ध जमालगोटा, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, चीते का चूर्ण प्रत्येक २-२ तोला लेवें। प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बना मैनसिल मिला कर रख लें, फिर अन्य ओषधियों के कूट-कपड़छान किये हुए महीन चूर्ण मिला, दन्तीमूल, सेहुंड और भाँगरे के रस की सात-सात भावनाएँ देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना कर रख लें।

—भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली ऊँटनी के दूध, पुनर्नवारस अथवा दशमूल-क्वाथ के साथ दें। उदर तथा यकृत रोग में घृतकुमारी रस के साथ दें।

गुण और उपयोग—कज्जली, मैनसिल और जमालगोटे के प्रधान योगों के कारण यह रस परम संशोधक और तीव्र रेचक है। जलोदर में संचित जल को यह बाहर निकालता है और सुखाता भी है, साथ ही जिस कारण जल संचय होता है, उस कारण को भी नष्ट कर देता है। यकृत-विकार और उदर रोगों में इसका अच्छा प्रभाव होता है।

दूसरा—पीपल, ताम्रभस्म और हल्दी का चूर्ण १-१ भाग तथा

शुद्ध जमालगोटे के बीज सबके बराबर ले कर सब को एक दिन थहर (सेहुंड) के दूध में घोंट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —र० का० धे०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली, गर्म जल से दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन तीव्र विरेचक है। इसकी एक गोली लेने से ही अत्यन्त पतले दस्त होने लगते हैं जिससे जलोदर कम हो जाता है। शरीर अत्यन्त दुर्बल होना, हृदय में दर्द, दस्त पतले होना, पेट फूलना, सर्वाङ्ग शोथ होना, इन लक्षणों से जलोदर हो जाने की आशा की जाती है, या जलोदर हो ही जाता है। ऐसी अवस्था में पेट में संचित जल तथा सर्वाङ्ग शोथ दूर करने के लिये इस रस का प्रयोग करना अच्छा है।

पहले यकृत व प्लीहा की वृद्धि हो, जलोदर उत्पन्न हो जाता है और वह जलोदर कफ प्रधान हो तो इनमें निम्न लक्षण होते हैं—पेट में भारीपन, सर्वाङ्ग में जड़ता, पेशाब हो, किन्तु सफेद और चिकना, मलावरोध, सूजन विशेषकर पाँव में—आदि लक्षण होने पर जलोदरारि रस का सेवन करना चाहिये। इससे (दस्त) जुलाब होकर सूजन कम हो जाती तथा जल निकल जाने से पेट भी छोटा हो जाता है।

इस रसायन में—पिप्पली कटुरसात्मक, पाचक और सूक्ष्म स्रोतोनुगामी है। ताम्र तीव्र, पाचक, यकृत-पित्तस्रावककारक और यकृत तथा प्लीहा-वृद्धि कम करता है। हल्दी—रक्त प्रसादक, हृदय को प्रसन्न करनेवाला और कुछ स्तम्भक है। सेहुंड—शोथहर, तीव्र-रेचक, तीक्ष्ण, उष्ण और व्यवायी है। जयपाल—तीव्र रेचक है। —औ० गु० ध० शा०

जवाहर मोहरा

माणिक्यपिष्टी २ तोला, पन्नापिष्टी २ तोला, मुक्तापिष्टी २ तोला, प्रवालपिष्टी २ तोला, संगेयशवपिष्टी ४ तोला, कहरवापिष्टी २ तोला, वरक चाँदी १ तोला, वरक सोना १ तोला, दरियाई नारि-

यल का चूर्ण ४ तोला, रेशम कतरा हुआ २ तोला, मृगशृङ्गभस्म ४ तोला, जदवार (निर्विषी) का चूर्ण २ तोला, कस्तूरी १ तोला तथा अम्बर २ तोला लें। इन्हें खूब उत्तम पत्थर के खरल जो घिसने वाला न हो—ऐसे खरल में प्रथम सब पिष्टियाँ और चूर्ण डाल कर उसमें सोने और चाँदी के वरक एक-एक करके मिलावें और मर्दन करते रहें—जब सब वरक मिल जाएँ तब अर्क गुलाब थोड़ा-थोड़ा डालकर १४ दिन तक बराबर मर्दन करें। १५ वें दिन उसमें कस्तूरी और अम्बर मिला एक दिन अर्क-गुलाब में मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली दिन में २ बार शहद या खमीरे गावजवाँ के साथ दें। ऊपर से दूध या केवड़ा या गावजवाँ अथवा वेदमुश्क का काढ़ा या गावजवाँ के फूलों का अर्क पिला दें।

गुण और उपयोग—यह हृदय को बल देनेवाला उत्तम योग है। दिल की घबराहट, हृदय की धड़कन, हृदय की दुर्बलता से थोड़ा भी चलने पर दम भर जाना और दिल की धड़कन आदि में इससे बहुत फायदा होता है।

ज्वरांकुश

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग प्रत्येक १-१ तोला, धतूर-बीज ३ तोला, सोंठ, पीपल और मिर्च प्रत्येक ४-४ तोला लेकर, प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बना लें। फिर शेष ओषधियों को कूट-कपड़छान कर, महीन चूर्ण बना, कज्जली में मिला कर, अदरक और जम्बीरी नीबू के रस से १-१ दिन मर्दन कर, २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली अदरक स्वरस और मधु से दें। कफ-ज्वर में पीपल-चूर्ण और मधु से देवें। पित्त-ज्वर में सितोपलादि चूर्ण के साथ, मलेरिया में सुदर्शन अर्क अथवा क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन ज्वर में होने वाली वेदना को नाश करता और वात-पित्त-कफ द्वन्दज तथा मलेरिया से उत्पन्न होने वाले ऐकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक ज्वर, सन्तत और सतत ज्वर, ज्वर के साथ होने वाले पतले दस्त, अनपच, पेट में वायु भर जाना तथा पेट फूल जाना आदि विकारों को दूर करने के लिये बहुत प्रसिद्ध दवा है।

वात प्रधान ज्वर में—ज्वर कभी कम तथा कभी ज्यादा होना, निद्रा न होना, शरीर जकड़ जाना, हाथ-पैर में दर्द होना तथा जोड़ों में विशेष पीड़ा होना, शरीर काँपना, माथा में दर्द, देह में आलस्य बना रहना, दाँती बंध जाना, बार-बार रोंगटें खड़े हो जाना (रोमाँच होना), मुँह का स्वाद नष्ट हो जाना, बद्ध कोष्ठ (दस्त नहीं होना), पेशाब का रंग लाल-काला होना, पेट में दर्द तथा वायु भर जाना, सूखी खाँसी आना, अण्ट-सण्ट बोलना आदि लक्षण उपस्थित होने पर ज्वरांकुश रस देने से अच्छा लाभ होता है।

कफ प्रधान ज्वर में—शरीर जकड़ जाना, ज्वर भीतर-ही-भीतर बना रहना, शरीर में आलस्य, अंग टूट रहा है—ऐसा अनुमान होना, कपड़ा हटाने पर ठण्ढ मालूम पड़ना, जी मिचला कर मुँह में पानी भर आना, पेट में भारीपन बना रहना, वमन होना, आग के पास या सूर्य की रोशनी में रहने की इच्छा हो आदि लक्षण होने पर ज्वरांकुश रस देने से कफ विकार दूर हो कर उससे उत्पन्न होनेवाले उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं।

कफ-वात ज्वर में—शरीर गीला बना रहना, संधियों (जोड़ों) में दर्द होना, निद्रा ज्यादा, देह भारी, मस्तक भारी हो जाना, नाक से पानी गिरना, खाँसी होना, पसीना न निकलना तथा शरीर में दाह आदि लक्षण होने पर यह रसायन देने से बहुत शीघ्र लाभ करता है।

इसी तरह संतत और सतत ज्वर तथा विषम ज्वर एवं जीर्ण ज्वरादि में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

इस रसायन में—कज्जली कीटाणु नाशक, कोष्ठ-दोषनाशक और योगवाही है। बच्छनाग—ज्वर नाशक, नाड़ी की बढ़ी हुई

गति को शमन करने वाला और वेदना (पीड़ा) शामक है। धत्तूर-बीज—वेदना (पीड़ा) शामक, वात नाशक और आँतों के पिच्छिल स्राव को रोकनेवाला तथा कफघ्न है। त्रिकटु—पाचक, अग्नि-प्रदीपक, कुछ पसीना लानेवाला और उत्साह बढ़ानेवाला है। अतएव यह आलस्य को नाश करता तथा अग्नि-प्रदीपक भी है।

—औ० गु० ध० शा०

(महा) ज्वरांकुश

पारद, गंधक, ताम्र भस्म, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध हरिताल, लौह भस्म, वंग भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, खर्पर भस्म, मैनसिल, अभ्रक भस्म सोना, गेरू, शुद्ध सुहागा, स्वर्ण भस्म और चाँदी भस्म प्रत्येक समान भाग लें। इन्हें एकत्र खरल कर जम्बीरी नीबू, तुलसी, चित्रक, भाँग और तिन्तिड़ीक के रस से पृथक्-पृथक् ३-३ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर सुरक्षित रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, प्रातः-सायं पिप्पली चूर्ण और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रस पुराने सविराम विषम ज्वरों में या बारी-बारी से आनेवाले मलेरिया ज्वरों में जब ज्वर का वेग शान्त होता है, उस समय देते हैं। ज्वर आने के चार घंटा पूर्व या दो-एक घंटा पूर्व देने से यह ज्वर के वेग को रोक देता है।

अन्येद्युष्क, तिजारी, चौथिया इन विषम ज्वरों में वात-पित्त या वात-कफ के प्रबल होने पर, विशेषतः मध्याह्न से सायंकालपर्यन्त १०० से १०१ पर्यन्त दो-एक घंटे के लिये ज्वर का वेग हो कर ज्वर उतर आता हो, तिल्ली और जिगर में थोड़ी-सी वृद्धि दिखाई दे, अन्नाहार सह्य हो, ज्वर-वेग हटने पर रोगी अपने को स्वस्थ अनुभव करे और ज्वर पुराना (३ मास से ऊपर का) हो गया हो, ऐसी स्थिति में इसका प्रयोग अर्क सुदर्शन या अमृतारिष्ट अथवा लोहासव के साथ कराने से शीघ्र लाभ होता है। इसी प्रकार मलेरिया ज्वर में भी ज्वर के समय शीत, दाह, कम्प और प्यास हो, तो इसका सेवन कराना चाहिए।

ज्वरमुरारि रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, नाग भस्म, लोह भस्म, अभ्रक भस्म ताम्र भस्म प्रत्येक १-१ तोला, सोंठ का चूर्ण ६ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, फिर उसमें अन्य भस्में मिला कर कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण मिला अदरक के रस में १ दिन घोंट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।—वृ० यो० त०

मात्रा और अनुपान १-१ गोली सुबह-शाम अदरक-रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—ज्वर में अजीर्ण, अपचन और कब्जियत हो तो इस रस का उपयोग करना चाहिये। इसके उपयोग से विरेचन होकर आमाशय दोष रहित हो जाता है जिससे ज्वर भी छूट जाता तथा शरीर की ऐंठन आदि भी अच्छी हो जाती है। गुल्म, आमवात और उदर रोग में भी इसका उपयोग किया जाता है।

इस रसायन का विशेषतया उपयोग—आम जनित ज्वर और लगातार ज्यादे दिन तक बराबर आने वाले ज्वर के कारण धातुओं की निर्बलता दूर कर ज्वर-दोष को मिटाने के लिये तथा रस-रक्तादि धातुओं में लीन ज्वर-दोष, अर्थात् रस-रक्तगत ज्वर, विषम ज्वर तथा जीर्ण ज्वरादि में प्रयोग किया जाता है। यह रसायन जीर्ण ज्वर को दूर कर धीरे-धीरे धातुओं की पुष्टि करता है।

पित्त-वृद्धि के कारण—प्यास ज्यादे लगना, पतले दस्त होना, सर्वाङ्ग में जलन, हाथ-पैर के तलवों में जलन तथा ऐंठन, कफ के साथ रक्त आना, साधारणतया थूक में भी रक्त आना, वमन, चक्कर, बेहोशी, प्रलाप, शरीर के जोड़ों में दर्द होना आदि लक्षण उपस्थित होने पर ज्वरमुरारि, अडूसा के क्वाथ या दूर्वा स्वरस के साथ अथवा शंखाहुली चूर्ण के साथ देने से बहुत फायदा करता है।

इसी तरह सम्पूर्ण बदन में दर्द होना, श्वास की गति में वृद्धि, गर्मी से मन में बेचैनी, पतले दस्त और वमन होना, नाड़ी की गति क्षीण और शरीर में कमजोरी विशेष होना ; आदि लक्षण होने पर

ज्वरमुरारि रस, प्रवालपिष्टी और शृङ्गभस्म के साथ दें। अनुपान में कटसरैया (पियावांसा) का स्वरस या क्वाथ दें।

पुराने विषम ज्वर में—विशेष कर पारी से आने वाले ज्वर में या जो ज्वर कभी शाम, कभी दोपहर, कभी रात में आवे, उपद्रव का भी कोई ठीक न हो ऐसे विषम ज्वर में और जिसमें—ज्वर आने पर प्यास ज्यादा लगे, समूचे बदन में दर्द हो तथा ज्वर के वेग कम होने पर रोगी फिर स्वस्थ हो जाय इत्यादि लक्षणयुक्त विषम ज्वर में रोगी निर्बल तथा कान्तिहीन हो जाता है, मलावरोध और मन्दाग्नि हो जाती तथा पचन क्रिया में भी गड़बड़ी हो जाती है। ऐसी दशा में ज्वरमुरारि रस, अर्क सुदर्शन के साथ देने से तथा शरीर में लाक्षादि तैल की मालिश करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

इस रसायन में—कज्जली कीटाणुनाशक व रसायन है। नागभस्म बल्य और रसायन है। ताम्रभस्म—यकृतपित्त स्रावक, पाचक, आक्षेप को दूर करनेवाला, अधिक दिन की सूजन दूर करनेवाला और आभ्यन्तरीय अवयवों के क्षोभ को कम करनेवाला है। अभ्रक—शक्तिवर्द्धक, रसायन, मानसिक विकार तथा वातवाहिनी नाड़ी को शमन करने वाला और धातुओं को परिपोषण कर आभ्यन्तरीय अवयवों के क्षोभ को दूर करनेवाला है। बच्छनाग—ज्वरघ्न (ज्वर नाशक), नाड़ी की बढ़ी हुई गति को शमन करनेवाला, पसीना लानेवाला, मूत्र प्रवर्त्तक, रक्त के दबाव को शान्त करनेवाला तथा वेदना (दर्द) शामक है। —औ० गु० ध० शा०

ज्वरारि-अभ्र

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, प्रत्येक १-१ तोला धतूर बीज २ तोला और त्रिकुटा ५ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, फिर कपड़छान किये हुए अन्य ओषधियों के महीन चूर्ण को मिला कर अदरक के रस में घोंट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम दें। जीर्णज्वर और विषमज्वर में हरसिंगार के पत्तों के रस में मधु मिलाकर अथवा तुलसी के पत्तों का रस और मधु या गिलोय का रस और मधु से दें। लीवर या तिल्ली में —शरपुङ्खा की जड़ के क्वाथ से दें। मन्दाग्नि में —नीबू के रस मिलाये हुए जल से, शोथ में—पुनर्नवा-रस और मधु से, श्वास-कास में—वासा (अडसा) स्वरस के साथ मधु मिलाकर देना चाहिये।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से वातज्वर, पित्तज्वर, कफ-ज्वर, सन्निपातज्वर, विषमज्वर, धातुगत विषमज्वर, प्लीहा, यकृत्, गुल्म, शोथ, हिचकी, श्वास-कास, अग्निमान्द्य और अरुचि आदि रोग नष्ट होते हैं।

वात-पित्त या कफ के प्रकोप से या सन्निपात से होने वाले ज्वर में यह दवा बहुत फायदेमन्द है, पुरान ज्वर, धातुगत ज्वर और विषम-ज्वर में यह दवा फायदेमन्द है। तिल्ली, लीवर, मन्दाग्नि, श्वास-कास और सूजन में भी इसके सेवन से लाभ होता है।

ज्वरसंहार रस

रससिन्दूर या शुद्ध हिंगुल १ तोला, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, कुटकी, नीम की छाल, कूठ, नागरमोथा, सफेद सरसों, इन्द्रजौ, सुहागे की खील, रक्तचन्दन, अतीस, ममीरी (अभाव में काली जीरी) प्रत्येक २-२ तोला लें। प्रथम रससिन्दूर को बारीक पीस लें, पीछे अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर, अदरक, तुलसी और निर्गुण्डी के पत्तों के रस में ३-३ दिन मर्दन कर के २-२ रत्ती की गोलियाँ बनाकर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, गोदन्तीभस्म के साथ मिला कर जल या किसी ज्वरघ्न कषाय के अनुपान से दें।

गुण और उपयोग—ज्वरसंहार रस अनुपान विशेष से सब प्रकार के ज्वरों में विशेषतः कफ और वात ज्वर में अधिक लाभ करता है। इसको गोजिह्वादि क्वाथ के अनुपान के साथ देने से कफ ज्वर में कफ पक कर ज्वर शीघ्र उतार देता है और जुकाम तथा

खाँसी भी जल्दी अच्छी हो जाती है। कफज्वर में पार्श्वशूल हो तो इसके साथ २ से ४ रत्ती मृगश्रृङ्ग भस्म और श्वसनकज्वर (न्यूमोनिया) हो तो इसके साथ श्रृङ्गभस्म २ रत्ती, अभ्रकभस्म १ रत्ती मिलाकर दें और ऊपर से गोजिह्वादि कषाय या भार्ग्यादि कषाय में थोड़ा-सा नौसादर और यवक्षार मिलाकर दें। ज्वरसंहार रस का तरुण और जीर्ण दोनों प्रकार के ज्वरों में प्रयोग कर सकते हैं।

ज्वरकेसरी रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, हर्रे, बहेड़ा, आँवला और शुद्ध जमालगोटा प्रत्येक दवा समान भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, फिर उसमें अन्य ओषधियों का चूर्ण मिला, भाँगरे के रस में एक दिन बराबर घोट कर १-१ रत्ती की गोली बना, सुखा कर रख लें। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली मिश्री के साथ सेवन करने से पित्त ज्वर, कालीमिर्च के चूर्ण के साथ देने से सन्निपात ज्वर और पीपल तथा जीरे के चूर्ण के साथ देने से दाहयुक्त ज्वर नष्ट होता है।

गुण और उपयोग—इस रसायन में जमालगोटा की मात्रा विशेष है। अतएव बद्धकोष्ठजन्य विकार (ज्वर-मन्दाग्नि) आदि में इसका उपयोग विशेषतया किया जाता है।

तारकेश्वर रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, वंगभस्म, अभ्रकभस्म, धमासा, यवाक्षार, गोखरू और हर्रे सब दवा सम भाग ले कर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना लें, फिर उसमें अन्य ओषधियों का कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण मिला कर सबको एक दिन पेठे के रस में और तृण पंचमूल के क्वाथ तथा गोखरू के क्वाथ में एक दिन घोटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, शहद में मिलाकर दें। ऊपर से गूलर के पके फलों का चूर्ण १ तोला शहद में मिला कर सेवन करावें।

गुण और उपयोग—बहुमूत्र की बीमारी में जब पेशाब अधिक होने लगे अथवा पेशाब के साथ चीनी या धातु जाने लगे, तो उस समय तारकेश्वर रस के सेवन से जल्दी लाभ होता है। यह वंग, लौह आदि के योग से तैयार की जाती है। अतएव यह वीर्यवर्द्धक है और मूत्रकृच्छ्र की शिकायतों को दूर करती है।

तालकेश्वर रस

शुद्ध हरताल, शुद्ध सोनामक्खी, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध पारा, सेंधानमक और सुहागा १-१ तोला तथा शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म प्रत्येक २-२ तोला लेकर, प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, पश्चात् उसमें अन्य ओषधियों का चूर्ण मिलाकर पाँच दिन तक जम्बीरी नीबू के रस में घोटकर, टिकिया बना, सुखा, मूषा में बन्दकर भूधर पुट में पकावें। पुट के स्वाँगशीतल होने पर औषध को निकाल, पुनः जम्बीरी नीबू के रस में घोट, टिकिया बना कर पुनः पुट दें। ऐसे छः पुट देने के बाद इस औषध में ८ तोला ताम्रभस्म और १६ तोला लौहभस्म मिला, एक दिन जम्बीरी नीबू के रस में घोटकर, टिकिया बना, सुखाकर संपुट में बन्द कर के लघुपुट में फूंक दें। स्वांगशीतल होने पर औषध निकाल कर —औषध के ३० वाँ भाग शुद्ध बच्छनाग मिला, महीन खरल करके शीशी में भर कर रख लें। —भा० प्र०

मात्रा और अनुपान—२ से ३ रत्ती सुबह-शाम। बावची चूर्ण १॥ माशे और मधु तथा घृत न्यूनाधिक मात्रा में मिलाकर इसके साथ देना चाहिये। ऊपर से खदिरारिष्ट या मंजिष्ठादि क्वाथ या अर्क पिलाना चाहिये।

गुण और उपयोग—यह रस सब प्रकार के कुष्ठरोग की महौषधि है। कुष्ठ जैसी भयंकर बीमारी में जल्दी कोई दवा असर नहीं करती। अतएव इस रोग में दवा सेवन-काल में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये। लगातार महीनों दवा सेवन करने से लाभ होता है। केवल औषधसेवन मात्र से ही इस रोग में लाभ नहीं होता, क्योंकि इस रोग का कारण अनेक दूषित विरुद्ध पदार्थों का

सेवन करना है तथा पूर्वजन्मकृत महापापों का फल है। अतएव ओषधि-सेवन के साथ-साथ उचित आहार-विहार का पालन करते हुए देवोपासना (पूजा-पाठ आदि) करना परमावश्यक है। उपरोक्त नियम का पालन करते हुए अगर तालकेश्वर रस का सेवन किया जाय तो अवश्य ही कुष्ठ रोग से छुटकारा मिल सकता है।

त्रिपुरभैरव रस

शुद्ध बच्छनाग १ तोला, सोंठ २ तोला, पीपल ३ तोला, कालीमिर्च ४ तोला, ताम्रभस्म ५ तोला और शुद्ध हिंगुल ६ तोला लेकर सबको अदरक के रस में घोटकर, ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा, रख लें। —भा० प्र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह, दुपहर तथा शाम मधु के साथ देना चाहिये।

गुण और उपयोग—साधारण—नवीन ज्वर के लिये यह बहुत लाभकारी औषध है। कफ और वातजन्य ज्वर के लिये तो यह बहुत उपयोगी दवा है। नवीन ज्वर में—ज्वर दोष पचाने के लिये इसका उपयोग किया जाता है। प्रतिश्याय (जुकाम) होने पर शिर-दर्द, बुखार, सर्दी मालूम पड़ना आदि विकारों में त्रिपुर भैरव रस, अदरक रस या पान के रस और मधु के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

त्रिभुवनकीर्ति रस

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध बच्छनाग, त्रिकुटा (सोंठ, पीपल, कालीमिर्च), सुहागे की खील (फूला) और पीपरामूल इन सब को समान भाग ले, कूट कपड़छान कर महीन चूर्ण बना, तुलसी, अदरक और धतूरे के रस की ३-३ भावना दे, १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा, रख लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—इसकी १-१ गोली दिन में तीन-चार बार अदरक रस और मधु के साथ या तुलसी और बिल्वपत्र के फाण्ट के साथ अथवा किसी ज्वरघ्न क्वाथ के अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह उष्ण वीर्य और ज्वरघ्न रस सब तरह के ज्वरों में, विशेषत: वात तथा कफज ज्वरों के लिये अच्छी ओषधि है। यों तो वात, कफ के सभी विकारों में इसका प्रयोग हो सकता है, लेकिन बुखार उतारने के लिये इसका ज्यादा उपयोग होता है। बढ़े हुए तापमान को कम करके हृदय और नाड़ी की तेजी को कम करता और पसीना लाकर बुखार को उतार देता है। पित्त प्रधान प्रकृतिवाले को इसकी ज्यादा मात्रा नहीं देनी चाहिये। अत्यन्त आवश्यकता होने पर किसी सौम्य एवं हृदय को बल देनेवाली प्रवाल-पिष्टी, अभ्रक, माक्षिक जैसी सौम्य दवा के साथ मिलाकर देनी चाहिये। शरीर में संचित विकार को भी यह निकालता है। त्रिभुवनकीर्ति रस में शुद्ध बच्छनाग पड़ा हुआ है। अतएव इसका प्रभाव नाड़ी पर बहुत शीघ्र होता है। नाड़ी की अति क्षीण हालत में इसका उपयोग सावधानी से करना चाहिये। बच्छनाग की वजह से यह उग्रवीर्य है। इसीलिये नाड़ी मन्द हो जाती है। बच्छनाग के इस प्रभाव को शमन करने के लिये त्रिकुटा, पीपलामूला तथा तुलसी स्वरसादि का भी सम्मिश्रण किया गया है। फिर भी बच्छनाग की उग्रता कुछ-न-कुछ मौलिक रूप में रहती ही है।

इस रसायन का प्रभाव—हृदय, मूत्रपिण्ड, त्वचा आदि पर होता हुआ स्वेदवाहिनी ग्रन्थियाँ जागृत हो कर बहुत शीघ्र भीतर से बाहर पसीना निकाल देती हैं। शरीर में जलभाग की वृद्धि हो पेशाब की मात्रा बढ़ जाती है। हृदय की गति और नाड़ी तथा श्वासोच्छ्वास की क्रिया में भी कमी आ जाती है। ये सब कार्य इस रसायन के उपयोग से होते हैं।

नवीन ज्वर में—लङ्घन (उपवास) कराकर आमदोष पच जाने पर इस रसायन का उपयोग होता है। इस ज्वर में निम्न-लिखित उपद्रवों में से यथा—नाड़ी की गति कभी तेज, कभी कम किन्तु नाड़ी बलवती बनी रहती है, शिर में दर्द होना, शरीर काँपने लगना, सर्दी विशेष होने से छींके ज्यादे आना, पीठ और छाती में भी दर्द होना, यह दर्द चलने पर ज्यादा मालूम होना, गर्म पदार्थ खाने की

इच्छा, मुँह का स्वाद बिगड़ जाना, सूखी खाँसी होना , कण्ठ में दर्द, कण्ठ की ग्रन्थि (उपजिह्वाटॉन्सिल) बढ़ जाने से बोलने और पानी पीने तक में भी दर्द होना, शरीर के जोड़ों में विशेष दर्द होना आदि कोई भी उपद्रव होने पर त्रिभुवनकीर्ति रस के उपयोग से अच्छा लाभ होता है।

कफ-प्रधान ज्वर में—ज्वर का वेग कम हो, शरीर में आलस्य, चलने-फिरने की इच्छा न हो, निद्रा ज्यादा हो, थोड़ी-थोड़ी पीड़ा समूचे शरीर में हो, नाक और मुँह से पतला कफ निकलना, हाथ-पाँव में ऐंठन, गर्दन में दर्द, इत्यादि लक्षण उपस्थित होने पर यह रसायन देने से विकृत कफ दूर हो जाता है और कफ-विकार से उत्पन्न उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं।

न्यूमोनिया में—इस रसायन के साथ अभ्रकभस्म, शृङ्गभस्म और चन्द्रामृत रस मिला कर देने से बहुत लाभ होता है। आन्त्रिक सन्निपात में —पित्त प्रधान होने पर यदि इस रस का उपयोग करना हो तो किसी सौम्य औषधि यथा—प्रवाल चन्द्रपुटी, गिलोय सत्त्व आदि के साथ करना चाहिये। इससे पित्त की तीक्ष्णता बहुत शीघ्र शान्त हो जाती है।

इन्फ्लुएंजा में—यदि पैत्तिक लक्षण दाह, घबराना आदि न हो, सिर्फ कफ के लक्षण यथा—शरीर में थोड़ा-थोड़ा दर्द होना, हाथ-पैरों की अंगुलियों के जोड़ों (सन्धियों) में दर्द होना, पहले जुकाम होकर कफ सूख गया हो और सूखी खाँसी हो, कण्ठ में दर्द हो तथा इस खाँसी के कारण फुफ्फुस के आसपास में शोथ हो गया हो तो त्रिभुवनकीर्ति रस के उपयोग से अच्छा लाभ होता है।

छोटी माता (चेचक) में—सब फुन्सियाँ एक बार ही नहीं निकल जाती हैं अतएव यह बहुत कष्टदायक होती हैं; क्योंकि इसकी विषाक्त गैस अन्दर रहने से अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न कर देती हैं। इसमें रोगी को साधारणतया—आँखों से पानी निकलना, सर्दी मालूम होना, जुकाम होना, ज्वर, मुँह पर लाल-लाल दाने उग आना, बेचैन रहना इत्यादि उपद्रव होते हैं। ऐसी स्थिति

में–इस रोग की विषाक्त गैस को अन्दर से निकालने और कफ-दोष को शान्त करने के लिये त्रिभुवनकीर्ति रस का उपयोग करना अच्छा है।

इस रसायन में—हिंगुल—कीटाणु और कफ-दोष नाशक तथा पतले कफ को गाढ़ा कर शोथ कम करनेवाला है। बच्छनाग—ज्वरघ्न, पसीना लानेवाला और शोथ नाशक है। पिप्पली और पीपलामूल उत्तेजक, पाचक और दीपक है। सोंठ—स्वेद (पसीना) लानेवाला, ज्वरनाशक और अग्निदीपक है। तुलसी—पसीना लानेवाला और उत्तेजक है। धत्तूर रस—वेदना (दर्द) नाशक, शोथघ्न, ज्वरनाशक तथा पसीना लानेवाला है। सुहागा—आक्षेपघ्न, कफ नाशक, कफ को पतला करने तथा आँतों में से विषाक्त गैस को बाहर निकालने वाला है। —औ० गु० ध० शा०

त्रिमूर्ति रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और लौहभस्म समान भाग लेकर तीनों की कज्जली बना कर उसे १ दिन सम्भालू के पत्तों के रस और १ दिन मूसली के क्वाथ में घोट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, लोध्र चूर्ण और शहद के साथ दें। त्रिकटु, चव्य, चित्रक तथा पीपलामूल के चूर्ण के साथ देने से शोथ रोग और त्रिफला-चूर्ण के साथ देने से आमवात रोग अच्छा होता है।

गुण और उपयोग—इस रसायन के उपयोग से आमवात, शोथ-रोग, कफ-विकार और अग्निमान्द्य दोष नष्ट होते हैं।

त्रिविक्रम रस (अश्मरी)

ताम्रभस्म २० तोला को २० तोला बकरी दूध में मन्दाग्नि पर पकावें। जब सब दूध सूख जाय तब २० तोला पारा और २० तोला शुद्ध गन्धक डाल, कज्जली बना, सब को १ दिन सम्भालू के पत्तों के रस में घोंट कर गोला बना, सुखा कर सम्पुट में बन्द कर दें। इस सम्पुट को बालुका यन्त्र में रख कर १ पहर तीव्राग्नि (तेज आँच) देकर

पकावें, जब स्वांगशीतल हो जाय तो औषध को निकाल कर पीस कर के रख लें। —र० रा० सु०

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती, प्रातः सायं हजरुलयहूद की भस्म ३ रत्ती मिला मधु के साथ दें। ऊपर से बिजौरा नीबू की जड़ ६ माशा लेकर २।। तोला पानी में पीस कर पिला दें।

गुण और उपयोग—पथरी की बीमारी हो जाने के कारण पेशाब करने में बहुत तकलीफ होती है तथा गुर्दों में दर्द होने लगता है। ऐसी हालत में त्रिविक्रम रस के सेवन से पथरी गलकर नष्ट हो जाती और गुर्दों का दर्द सदा के लिये बन्द हो जाता है।

त्रिविक्रम रस (संग्रहणी)

शुद्ध सिंगरफ, अफीम और टंकण क्षार तथा हीराबोल प्रत्येक समभाग लेकर एकत्र खरल करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —र० यो० सा०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली मधु से सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन स्तम्भक, संग्राही और रक्तातिसार तथा आंवयुक्त संग्रहणी आदि विकारोंके लिये हितकरहै।

पुरानी संग्रहणी में—दिन भर में अनेक बार टट्टी जाना पड़ता है। प्रत्येक बार बहुत थोड़ी-थोड़ी टट्टी होती है। विशेष जोर लगाने से पेट में मरोड़ उठती है जिससे रोगी कराहने लगता तथा बहुत दर्द के बाद थोड़ी-सी आँव मिले हुए खून के साथ टट्टी होती है। थोड़ा-थोड़ा ज्वर भी हो जाता और पेट दुखने लगता है। ऐसी हालत में त्रिविक्रम रस देने से पीड़ा बन्द हो जाती तथा आँव और रक्त के साथ मिला हुआ दस्त न आकर केवल मल के ही दस्त आने लग जाते हैं। क्योंकि इसमें अफीम पड़ी हुई है अतः यह दर्द शामक है और आँव के साथ खून जाने को भी रोकती है।

इससे कुछ नवीन संग्रहणी में—पेट में दर्द हो, दस्त आँव सहित हो, दस्त अधिक तादाद में बार-बार हो, ऐसी हालत में भी त्रिविक्रम रस देने से लाभ होता है।

रक्तातिसार में भी—जब मल के साथ रक्त भी आवे, तब इस रसायन का सेवन किया जाता है।

इस रसायन में—सिंगरफ कीटाणुनाशक, रसायन, आँतों में दूषित आम-संचय को दूर करता है। अफीम—दर्द नाशक और स्तम्भक है। टंकणक्षार—आक्षेपघ्न, पाचक और आँतों के विकार को नष्ट करता है। रक्त बोल—संग्राही, रक्त स्तम्भक विशेषकर रक्त वाहिनी सूक्ष्म-नाड़ियों द्वारा जो रक्त स्राव होता है, उसे रोकता है। —औ० गु० ध० शा०

त्रैलोक्यचिन्तामणि रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, हीरा भस्म, सुवर्ण भस्म, चाँदी भस्म, ताम्र भस्म, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, मोती भस्म, शंख भस्म, प्रवाल भस्म, हरताल भस्म और शुद्ध मैनसिल प्रत्येक समभाग लेकर प्रथम पारद-गंधक की कज्जली बना फिर अन्य औषधियाँ मिलाकर सबको सात दिन चित्रक की जड़ के क्वाथ में और ३-३ दिन आक के दूध, सभालू के रस, सूरण (जिमीकन्द) के रस तथा सेहुण्ड के दूध में घोंट कर, लुगदी बना, उसे पीली कौड़ियों में भर दें, फिर सुहागे को आक के दूध में पीसकर उससे कौड़ियों का मुख बन्द कर दें। पश्चात् इन्हें सम्पुट में बन्द कर कपड़मिट्टी करके सुखा कर गजपुट में फूंक दें। स्वांगशीतल होने पर निकाल कर कौड़ी सहित पीसकर दवा के बराबर रससिंदूर और उससे चौथाई वैक्रान्त भस्म मिलाकर सहिजन मूल के छाल के क्वाथ की सात भावना तथा, चित्रक मूल के क्वाथ की २१ भावना और अदरक रस की ७ भावना दें। सूखने पर चूर्ण बना उसमें दवा की चौथाई सुहागे की खील, शुद्ध बच्छनाग और काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर सबको एकदिन बिजौरा नीबू और अदरक के रस में घोटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, वात रोग—गठिया, लकवा, पक्षाघात आदि रोगों में रास्नादि क्वाथ या दशमूल क्वाथ के साथ मधु मिलाकर दें, कफ विकार में अदरक रस और मधु

से दें, पित्त विकार में मिश्री और घी के साथ दें। स्नायविक दुर्बलता एवं कमर-दर्द में असगन्ध और चोपचीनी के क्वाथ के साथ मधु मिलाकर दें।

गुण और उपयोग—हीरा, स्वर्ण, मोती, लौह आदि बहुमूल्य ओषधियों के संयोग से निर्मित यह त्रिदोष-नाशक, बल-वीर्य्यबर्द्धक और पौष्टिक रसायन है। इसके सेवन से वात रोग, स्नायविक दुर्बलता, पागलपन, विष, खाँसी, क्षय, श्वास, वातविद्रधि, पाण्डु, शूल, शोथ, संग्रहणी, रक्तातिसार, प्रमेह, तिल्ली, जलोदर, अश्मरी, तृषा, हलीमक, उदर रोग, भगन्दर, ज्वर, अर्श और कुष्ठादि भयंकर रोग भी नष्ट हो जाते हैं। इस रसायन का नियम पूर्वक अधिक दिनों तक सेवन करते रहने से पलित (बाल सफेद होने) का नाश होकर शरीर पुष्ट और बलवान हो जाता है।

यह रसायन शरीर में बहुत शीघ्र बलवृद्धि करता है। अतएव इस दृष्टि से यह ओज बढ़ानेवाला, जीवनीय तथा बलवर्द्धक है। इसका प्रभाव शरीर के अन्तरावयवों पर विशेष कर हृदय, फुफ्फुस, रक्तवाहिनी तथा वातवाहिनी नाड़ियों पर होता है। पित्त-प्रधान दोष में अथवा पित्तानुगामी विकारों में इससे विशेष लाभ नहीं होता है। पित्तविकार में यदि देना ही हो तो किसी सौम्य औषध के साथ दें। क्योंकि यह उष्णवीर्य्य और तीक्ष्ण भी है। कफ वातात्मक विकारों में यह बहुत अच्छा लाभ करता है। श्लैष्मिक-सन्निपात, श्लेष्म वृद्धि, श्वसनक (न्यूमोनियाँ) ज्वरादि में विशेष रूप से फायदा करता है। सन्निपात में इस रसायन के प्रयोग से उत्तेजक कार्य्य होता है। इसके सेवन से नाड़ी एवं हृदय की गति क्षीण नहीं हो पाती। क्योंकि यह रक्तवाहिनी और वातवाहिनी नाड़ियों को बल देता है। इसीलिये यह हृदय और नाड़ी की गति में क्षीणता (कमी) नहीं आने देता है। हृदयशूल होने पर भी इसका उपयोग करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। हृदयशूल में भी रक्त का दबाव तथा वातवाहिनी की विकृति रहती है। इन दोषों को दूर करने के लिये त्रैलोक्यचिन्तामणि रस का प्रयोग करना अच्छा है।

न्यूमोनियाँ या इन्फ्लुएञ्जा ये दोनों स्वतन्त्र रूप में हों या किसी रोग के उपद्रव यथा—कफ वातज्वर, कफज्वर या आन्त्रिक सन्निपातादि रोगों के उपद्रव रूप में उत्पन्न हुए हों, इसका प्रधान कारण छाती में कफ संचय और फुफ्फुसावरणों में शोथ होना है। इस रोग के लक्षण बहुत भयानक होते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में तो इसका पता लगाना कठिन हो जाता है कि इसमें कौन दोष प्रधान हैं, किन्तु लक्षण उत्पन्न होने से स्पष्ट हो जाता है। कफ संचय होने के कारण श्वासवाहिनी नली रुक जाती है, जिससे फुफ्फुस में जितनी वायु जानी चाहियें उतनी नहीं जाती और रक्तवाहिनी नाड़ियों द्वारा रक्त का संचार (वायु की कमी के कारण) ठीक तरह से न होने से हृदय भी कमजोर हो जाता है जिससे रोगी की हालत दिन-प्रतिदिन और भी चिन्ताजनक होती चली जाती है। ऐसी अवस्था में त्रैलोक्य चिन्तामणि रस के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

वर्षा ऋतु में अधिक ठण्डी हवा के सेवन अथवा ज्यादे ठण्ढी चीजों के सेवन से या छाती में अधिक कफ-संचय हो जाने या किसी तरह के मानसिक आघात पहुँचने के कारण हृदय में एकाएक दर्द होने लगता है। इसमें सम्पूर्ण शरीर भारी मालूम पड़ता, हाथ-पाँव में शून्यता, समूची देह में झिनझिनाहट, मन्दाग्नि, जी मिच-लाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, ऐसी हालत में त्रैलोक्य चिन्तामणि रस के उपयोग से बहुत लाभ होता है।

यह रसायन—पाचक पित्त (जठराग्नि) को जगानेवाला है। जठराग्नि जगाने के लिये जितने पाचक चूर्ण (हिंग्वष्टक, भास्कर आदि) के प्रयोग किये जाते हैं, उनका असर अस्थायी होता है अर्थात् जबतक दवा का असर रहता है तभी तक अग्नि भी प्रदीप्त रहती है, असर कम हो जाने पर फिर मन्दाग्नि हो जाती है। किन्तु त्रैलोक्य चिन्तामणि रस द्वारा अग्नि प्रदीप्त होने पर स्थायी रह जाती है। क्योंकि इसका कार्य आमाशय, अग्न्याशय, यकृत, ग्रहणी और आँतों पर विशेषतया होता है। यह रस-रक्तादि धातुओं के निर्माण में

भी सहायता देता है। यदि कफ-वृद्धि के कारण मन्दाग्नि हो, तो इस रसायन के उपयोग से शीघ्र लाभ होता है।

यह रसायन ओजवर्द्धक भी है। इसी सोमात्मक ओज के ऊपर शरीर निर्भर है। यह ओज हृदय में रहकर सम्पूर्ण अवयवों को पुष्ट करता रहता है। इसकी क्षीणता होने पर शारीरिक क्रिया में अन्तर पड़ने लगता है। ऐसी हालत में ओजःशक्ति को बढ़ाने के लिये त्रैलोक्य चिन्तामणि रस का उपयोग किया जाता है। इसीलिये यह हृदयोत्तेजक भी कहा जाता है।

यह रसायन हृदय को बल देनेवाला, ओजःशक्तिवर्द्धक, पाचक क्रिया को सुधारनेवाला, बल-वृद्धिकारक, अति वीर्य्यवान, धातुओं की विषमता दूरकर साम्यता स्थापित करनेवाला, कफ प्रधान या कफवात-प्रधान विकारों पर इसका असर बहुत अच्छा होता है।

इस रसायन में—कज्जली—कीटाणुनाशक, रसायन और हृदय को उपकारक है। हीरा भस्म—हृद्य, वातवाहिनी नाड़ियों को उत्तेजना देनेवाली, रक्त प्रसादक तथा रसायन है। सुवर्ण भस्म—विषघ्न, रक्त प्रसादक, हृदय व मन में प्रसन्नताकारक है। रौप्य भस्म—पाचक, दीपक और यकृत-पित्त स्रावक है। तीक्ष्ण लौह भस्म—रक्त प्रसादक, शक्तिदायक व रक्ताणुबर्द्धक है। अभ्रक भस्म—मनः प्रसन्नकारक, वातनाशक और धातुओं का पोषण करनेवाला है। मुक्ता भस्म—दाह-नाशक, आह्लादजनक और पित्तशामक है। शंख भस्म—पाचक, दीपक, माधुर्योत्पादक व पित्त शामक है। प्रवाल—पित्त शामक, दाह शामक और शक्तिदायक है। हरिताल भस्म—कफ संरोधनाशक, तीक्ष्ण वीर्य्य और दूषित रक्त-सुधारक है। मैनसिल—रसायन, बल्य, ज्वरघ्न व श्वास-कास नाशक है।

—औ० गु० ध० शा०

दन्तोद्भेदगदान्तक रस

अभ्रक भस्म, लौह भस्म, शंख भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, पीपल, पीपला मूल, सोंठ, चव्य, चित्रक, अजमोद, अजवायन, हल्दी, मुलैठी,

देवदारु, दारु हल्दी, बायबिडंग, इलायची, नागकेशर, नागरमोथा, कचूर, काकड़ासिंगी, विडनमक प्रत्येक समान भाग लेकर कूट कपड़-छान कर, महीन चूर्ण बना, बकरी के दूध में घोटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली माता के दूध या जल के साथ दें। इन्हें पानी या दूध में घिसकर बालक के मसूढ़ों पर मलने से दाँत निकलने में विशेष कष्ट नहीं होता है।

गुण और उपयोग—बच्चों के दाँत निकलते समय अनेक प्रकार के उपद्रव हो जाते हैं, जैसे—हरे-पीले या पतले दस्त होना, दूध की उल्टी होना, रोना-चिल्लाना, पेट में दर्द, अपच, अरुचि, ज्वर आदि। इस रस के सेवन से उक्त उपद्रव दूर होकर, बिना किसी तकलीफ के, बच्चों के दाँत आराम से निकल आते हैं।

दुर्जलजेता रस

शुद्ध बच्छनाग २ तोला, कौड़ी भस्म ५ तोला, काली मिर्च का चूर्ण ६ तोला, सबको कूट कपड़छान चूर्ण बना करके एकत्र मिला, अदरक-रस में घोंटकर मूँग के बराबर गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली प्रातः, दोपहर और शाम, पान के रस और मधु या अदरक रस और मधु अथवा गर्म जल से दें।

गुण और उपयोग—दूषित जल से उत्पन्न विकार या दूषित वायु से पैदा होनेवाले रोग तथा मौसम परिवर्तन के समय उत्पन्न विकार—इनमें इस रसायन का उपयोग होता है। सर्दी, ज्वर, अजीर्ण, आफरा, कब्ज, शूल, श्वास, खाँसी आदि रोगों में भी यह लाभदायक है।

नोट—भोजन के पहले सोंठ, राई और हर्रे की चटनी खाने से अथवा महार्द्रक (वन अदरक) और यवक्षार का चूर्ण गर्म पानी के साथ लेने से भिन्न-भिन्न देशों के पानी का दूषित असर नहीं होता।

कफ प्रधान मलेरिया ज्वर—अधिक वर्षा होने के कारण ज्यादे

दिन तक गीली रहने की वजह से पृथ्वी दूषित हो जाती है, जिससे शरीर में कफ-वृद्धि होकर बुखार हो जाता है। इस ज्वर के प्रारम्भ में—शरीर गीला रहना, मुँह में कफ मिला हुआ-सा मालूम पड़ना तथा मुंह का स्वाद मीठा होना, शरीर में दर्द, चेहरा भारी हो जाना, पीठ में—विशेषकर कमर में अधिक दर्द होना, शिर म दर्द आदि लक्षण होते हैं। ऐसी स्थिति में दुर्जलजेता रस के उपयोग से पृथ्वी जन्य दूषित विष नष्ट हो जाता और कफ का ह्रास हो, ज्वर दूर हो जाता है।

कफ वृद्धि—शरीर में जब कफ की अधिकता हो जाती है, तो सबसे पहले भूख कम हो जाती है, क्योंकि बढ़ा हुआ कफ आमाशय में रहनेवाली अग्नि को ढक देता है, अर्थात् उसकी शक्ति नष्ट कर देता है जिससे पाचन क्रिया में गड़बड़ी होने लगती है। फिर मन्दाग्नि, पेट भरा हुआ-सा ज्ञात होना, खाने की इच्छा न होना, पेट में थोड़ा-थोड़ा दर्द, जी मिचलाना आदि लक्षण उपस्थित होने पर दुर्जलजेता रस का व्यवहार करना चाहिये, क्योंकि यह दीपक और पाचक भी है।

इस रसायन में बच्छनाग—ज्वर नाशक, पसीना लानेवाला तथा बढ़ी हुई नाड़ी की गति को ठीक करने वाला है। कौड़ी भस्म—पाचक, दीपक और स्तम्भक है। काली मिर्च—दीपक, पाचक और पसीना लानेवाला है। —औ० गु० ध० शा०

नवज्वरेभसिंह रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, लौह भस्म, ताम्र भस्म, नाग भस्म, काली मिर्च, सोंठ और पीपल १-१ तोला तथा शुद्ध बच्छनाग आधा तोला लेकर प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बनावें। तत्पश्चात् उसमें अन्य ओषधियों का कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण मिलाकर २ दिन अदरक-रस में घोंट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली अदरक रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन ज्वर की प्रत्येक अवस्था में दिया जाता है। किन्तु, ज्वर की प्रारम्भिक अवस्था (नवज्वर) में इसके उपयोग से अधिक लाभ होते देखा गया है। धातुगतज्वर और ग्रहणी विकार में भी यह बहुत फायदा करता है।

ज्वर की प्रारम्भिक अवस्था में लंघन (उपवास) कराने के बाद दोष पाचन के लिये गुडूच्यादि क्वाथ आदि का उपयोग न करके इस रसायन का ही उपयोग किया जाय तो बहुत अच्छा लाभ होता हैं, विशेष कर कफ-वात प्रधान ज्वर में तो बहुत ही लाभ करता है।

नष्टपुष्पान्तक रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, लौह भस्म, वंग भस्म, सुहागे की खील, चाँदी भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म प्रत्येक ४-४ तोला लेकर, प्रथम पारा-गंधक की कज्जली कर उसमें अन्य औषधियों का कपड़-छान चूर्ण मिला उसे गिलोय (गुर्च), त्रिफला, दन्ती, हरसिंगार, छोटी कटेली, मकोय, देवदारु, जीवन्ती, कूठ, बड़ी कटेली, हल्दी, तालीसपत्र, वेत की कोंपल, गोखरू, वासक (अडूसा) और खरैंटी के स्वरस या क्वाथ की पृथक्-पृथक् तीन-तीन भावना दें। तत्पश्चात् सेंधानमक, मुलैठी, दन्तीमूल, लौंग, वंसलोचन, रास्ना, गोखरू प्रत्येक ३-३ माशे लेकर कूट कपड़छान चूर्ण बना उपरोक्त औषध में मिलाकर उसे १-१ दिन जयन्ती और तुलसी-रस में घोटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली सुबह-शाम, तिल के क्वाथ में गुड़ मिलाकर दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन उग्र और उष्ण वीर्य्य है। जब मासिक धर्म रुक गया हो या दर्द के साथ थोड़ा-थोड़ा होता हो अथवा पूरी उम्र होने पर भी रजो दर्शन नहीं हुआ हो, तो इसका प्रयोग करें।

नृपतिवल्लभ रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, ताम्र भस्म, लोह भस्म, अभ्रक भस्म,

सुहागे की खील, जायफल, लौंग, नागरमोथा, दालचीनी, छोटी इलायची, भुनी हींग, जीरा, तेजपात, अजवायन, सोंठ, सेंधा नमक प्रत्येक ४-४ तोला और काली मिर्च ८ तोला लें। प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बना, उसमें अन्य भस्मों और वनस्पतियों के महीन चूर्ण मिला आँवलेके स्वरस या बकरी के दूध के साथ घोटकर आधी-आधी रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली गर्म जल या मट्ठा (छाछ) के साथ दें। संग्रहणी में—भुना हुआ जीरा का चूर्ण मधु के साथ दें। आँव के दस्तों में नागरमोथा का रस और मधु के साथ दें। अतिसार (पतले दस्तों) में—जायफल को पानी में घिस कर मधु के साथ, और मन्दाग्नि में नींबू के रस और ताजे जल के साथ देने से विशेष लाभ होता है।

गुण और उपयोग—संग्रहणी रोग के लिये यह रसायन बहुत श्रेष्ठ दवा है। इसके सेवन से मन्दाग्नि, ज्वर, आँव के दस्त, अतिसार, हृदय का दर्द, बवासीर आदि रोग अच्छे हो जाते हैं। कमजोर हुई ग्रहणी कला को फिर से सबल बना, उसकी क्रिया को ठीक करने के लिये यह बहुत ही उत्तम दवा है।

नाराच रस

शुद्ध पारा, सुहागे की खील, काली मिर्च का चूर्ण प्रत्येक १-१ तोला, शुद्ध गन्धक और पीपल २-२ तोला तथा शुद्ध जमालगोटा ६ तोला लें। प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य ओषधियों के चूर्ण मिला, खरल कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती चावल के पानी के साथ प्रातः ४ बजे देना चाहिये।

नोट—इस रस को खाने के बाद थोड़ा-थोड़ा ठंडा पानी पीने से सुखपूर्वक विरेचन होता है। यदि इस रसायन के सेवन से पेट में दाह एवं जलन हो, तो भी ठंडा ही पानी पीना चाहिये। विरेचन हो जाने के बाद दिनान्त में मूँग की खिचड़ी खा लेनी चाहिये।

गुण और उपयोग—यह रसायन गुल्म, कब्ज, प्लीहा आदि उदर विकारों में विरेचन के लिये अच्छा है। जमालगोटे का मिश्रण होने के कारण यह एक तेज जुलाब है। यह पेट में जमे हुए दूषित मल को निकाल कर पेट साफ करता है। गर्भवती स्त्रियों और बच्चों को देने के पहले उनकी शारीरिक अवस्था देखकर सेवन कराना चाहिये।

इस रसायन में—कज्जली—दूषित कीटाणुनाशक व रसायन है। त्रिकटु—पाचक-दीपक और कफघ्न है। सुहागे की खील—कफ निकालने वाली, और बढ़े हुए गुल्म को घटाने वाली है तथा कुछ पाचक भी है। जैपाल (जमालगोटा) तीव्र विरेचक और मल को पतला कर ज्यादे तादाद में दस्त द्वारा निकालने वाला है।

—औ० गु० ध० शा०

नागार्जुनाभ्र रस

सहस्रपुटी वज्राभ्रक भस्म को ७ दिन अर्जुन की छाल के रस में घोटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें।

—र० चं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से हृदय रोग, सब प्रकार के शूल, अर्श, हृल्लास, छर्दि, अरुचि, अतिसार, अग्निमांद्य, रक्तपित्त, क्षत, क्षय, शोथ, उदर रोग, अम्लपित्त और विषम ज्वरादि रोग नष्ट होते हैं। यह रसायन भी है, अतः वीर्यवर्द्धक है।

यह रसायन सहस्रपुटी अभ्रक भस्म में अर्जुन की छाल के क्वाथ की अनेक भावनाएँ देकर बनायी जाती है। अतएव यह हृदय रोगों के लिये बड़ी अच्छी दवा है। इससे हृदय की कमजोरी, धड़कन, हृदय में दर्द होना आदि हृद्रोग अच्छे हो जाते हैं। हृदय की अनियमित गति को नियमित करने के लिये इसका सेवन बहुत लाभदायक है। मन्दाग्नि, सूजन, अम्लपित्त, रक्तपित्त और विषम ज्वर आदि रोगों में भी यह औषध अच्छा काम करती है। बल, वीर्य्य, कान्ति और शक्ति बढ़ाने में भी इसका उपयोग किया जाता है।

नित्यानन्द रस

सिंगरफ से निकाला हुआ पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, काँस्य भस्म, वंग भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध तूतिया, शंखभस्म, कौड़ीभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, लौहभस्म, बायबिडंग, पाँचो नमक—(सेंधा, सौंचर, विड्नमक, समुद्र नमक, काच नमक), चव्य, पीपलामूल, हाऊबेर, बच, कचूर, पाठा, देवदारु, इलायची, विधारा, निसोथ, चीता और दन्ती—ये सब दवा समान भाग लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियों का कूट-कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण मिला सबको हर्रे के क्वाथ की एक भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली सुबह-शाम शीतल जल या गो-मूत्र के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह श्लीपद (फीलपाँव) की सर्वोत्तम औषधि है। इसके अलावा कफ और वात-जनित रोग अर्बुद (देर से बढ़ने तथा न पकनेवाली मांस की गाँठ), गण्डमाला, भयंकर वात रक्त, अन्त्र वृद्धि (आँत उतरना) आदि रोगों में भी यह फायदेमन्द है। फीलपाँव की यह खास दवा है। अतएव इसका उपयोग इस रोग में विशेषतया होता है।

श्लीपद (फीलपाँव)—यह रोग दूषित जल-वायु से उत्पन्न होने के कारण कफ-वात प्रधान होता है। इस रोग के प्रारम्भ में शरीर के किसी भी मांसल हिस्से में सूजन हो जाती है—साथ ही थोड़ा ज्वर भी रहने लगता है। जैसे-जैसे ज्वर का वेग बढ़ता जाता है—वैसे-वैसे सूजन भी बढ़ती जाती है। ज्वर का वेग कम होने पर सूजन भी कम होने लगती है, फिर सूजन मिट जाती है। जब धीरे-धीरे यह रोग शरीर के अन्दर पूर्ण रूप से अपना अधिकार जमा लेता है, तब प्रकट होता है। विशेषकर पाँव में ही इसका प्रकोप होता है। कभी-कभी हाथ, ओष्ठ (होठ), अण्डकोष, लिङ्ग आदि स्थानों में भी

शोथ हो जाता है। इस रोग में त्वचा का रंग काला हो जाता है और उसमें दर्द भी होता है। ज्वर, खुजली, पैर की जड़ मोटी हो जाना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी स्थिति में इस रसायन का अधिक दिन तक सेवन करने तथा सूजन पर तैल आदि की मालिश करने से लाभ होता है।

इस रसायन में—कज्जली कीटाणु नाशक, योगवाही और रसायन है। ताम्र—यकृत्-पित्त स्रावक और कफ-नाशक है। वंग—कृमिघ्न, कफ तथा मेदनाशक है। हरताल—कफनाशक, कीटाणु-नाशक, किंचित् विरेचक और शोथहर है। कौड़ी—मधुरता उत्पन्न करनेवाली और पित्तस्रावक है। काँस्य—योगवाही और रसायन है। त्रिकटु—पाचक और दीपक है। त्रिफला— रसायन है। लौह—शक्तिवर्द्धक और रक्त बढ़ानेवाला है। वायविडंग—कृमिघ्न। पंचलवण—पाचक है। चव्य और पीपलामूल—पाचक तथा दीपक है।

निद्रोदय रस

रस सिन्दूर, वंशलोचन, शुद्ध अफीम प्रत्येक ६-६ माशा, धाय के फूल और आँवले का कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण २-२ तोला लेकर सबको खरल में डाल भाँग की पत्तियों के रस में ३ दिन घोटें। फिर इसमें १२ तोला मुनक्का पीसकर मिला दें और १-१ माशे की गोलियाँ बनावें। —र० यो० सा०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली रात को सोते समय जल या दूध अथवा मलाई में मिलाकर दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन में अफीम पड़ी हुई है। अतएव इसका प्रभाव सर्वप्रथम संज्ञावाहिनी नाड़ियों पर तथा हृदय और मांसपेशियों पर ज्यादा होता है। यह पीड़ाशामक तथा कुछ स्तम्भक भी है। निद्रा लाना इसका खास गुण है। यदि किसी रोग अथवा मानसिक कष्ट या दर्द के मारे निद्रा नहीं आती हो, रोगी बराबर छटपटाता और परेशान होता हो, तो ऐसी स्थिति में निद्रोदय रस के सेवन से पीड़ा (दर्द) दूर होकर निद्रा आती है।

नीलकण्ठ रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, शंख भस्म, शुद्ध नीलाथोथा समान भाग लें। सबकी कज्जली बना, उसे वन्दाल के रस की २१ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। —र० का० धे०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, जम्बीरी नीबू के रस के साथ दें।

गुण और उपयोग—वमन रोकने के लिये इस दवा का प्रयोग किया जाता है। दूषित कफ-पित्त के कारण उत्पन्न हुए वमन को यह बहुत शीघ्र दूर करती है।

पंचवक्त्र रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, शुद्ध बच्छनाग, काली मिर्च, सुहागे की खील और पीपल ; ये सब चीजें समान भाग लेकर प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य ओषधियों का कूट-कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण मिला, सबको १ दिन धतूरे के रस में घोट, १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, मधु के साथ अदरक रस मिलाकर दें। इसे केवल शहद के साथ देकर ऊपर से आक की जड़ की छाल के क्वाथ में सोंठ, पीपल, मिर्च का महीन चूर्ण मिलाकर पीने से सन्निपात तथा कफ रोगों में बहुत फायदा करता है।

अग्निवृद्धि के लिये—अर्क (आक) मूल के रस या क्वाथ और शहद में मिलाकर इसका सेवन करें। वातज्वर में—दही के पानी के साथ और भयंकर सन्निपात में अदरक रस के साथ दें। अजीर्ण ज्वर में—जम्बीरी नीबू के रस के साथ तथा विषम ज्वर में जीरे के चूर्ण और गुड़ के साथ दें।

महाघोर—तीव्र ज्वर में पूर्ण युवा पुरुष को इसकी ३ गोली, स्त्री, बालक, वृद्ध और कमजोरों को २ गोली और अत्यन्त दुर्बल तथा छोटे बच्चे को आधी से १ गोली देनी चाहिये।

गुण और उपयोग—यह रसायन वात, कफ प्राधान्य ज्वर, सन्निपात ज्वर, इन्फ्लुएंजा, तन्द्रा, आलस्य, सर्वाङ्ग में दर्द आदि रोगों में अत्यन्त उपयोगी है। यह रस भयंकर नवीन ज्वर को १ प्रहर में, मध्य ज्वर और अजीर्ण ज्वर को तीन दिन में तथा सन्निपात ज्वर को सात दिन में दूर कर देता है।

तीक्ष्ण और उष्ण वीर्य्य होने के कारण पित्त प्रधान ज्वरों में इस रस का उपयोग नहीं किया जाता। कफ और वातप्रधान ज्वर, सन्निपात व इन्फ्लुएंजा आदि रोगों में इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है। इस रसायन का प्रभाव मूत्रपिण्ड पर भी पड़ता है। किन्हीं कारणों से पेशाब रुक जाने अथवा खुलकर पेशाब न होने से पेड़ू में दर्द होने लगता है। इस दर्द को दूर करने तथा खुलकर पेशाब लाने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है।

शरीर में विशेष कफ संचय हो जाने से—नाड़ी की गति भारी हो जाती तथा नाड़ी कुछ तेज चलने लगती है। हृदय की धड़कन कम हो जाना, हाथ-पैरों में दर्द होना, शिर इधर-उधर पटकना, श्वास और कास की वृद्धि होना, खाँसी के साथ सफेद और चिकना कफ गिरना, कफ गिरने पर कुछ शान्ति मिलना, शरीर में भारीपन, तन्द्रा आदि लक्षण उपस्थित होने पर इस रसायन का उपयोग करना चाहिये।

कफ-वात प्रधान सन्निपात में भी निर्भय पूर्वक इसका उपयोग करना चाहिये। परन्तु यदि सिर्फ कफ प्रधान ही सन्निपात हो, तो मल्लसिन्दूर, समीरपन्नग रस, हेमगर्भ रस तथा त्रैलोक्यचिन्तामणि रसादि का प्रयोग करें।

न्यूमोनिया में—कफ और वायु दूषित होकर ज्वर उत्पन्न कर देता है, इससे पसली (पाँजर) में पीड़ा होना, श्वासोच्छ्वास में कष्ट तथा दर्द, दर्द के मारे चलने में असमर्थ होना, गर्म उपचार (सेंकादि) या दबाने से पसली का दर्द कम मालूम पड़ना, शरीर के जोड़ों में दर्द, कभी-कभी बेहोश हो जाना, प्रलाप, नींद न आना आदि लक्षणों की उपस्थिति में इस रसायन के उपयोग से प्रकुपित कफ और वायु

शान्त हो जाते हैं। फिर दर्द कम होकर धीरे-धीरे रोग भी अच्छा हो जाता है। इस ज्वर के प्रारम्भ होते ही दवा का उपयोग करना चाहिये।

इस रसायन में—कज्जली—कीटाणु नाशक तथा रसायन है। बच्छनाग—पीड़ा को नाश करनेवाला तथा ज्वर नाशक है। कालीमिर्च पाचक और दीपक है। सुहागे की खील—आक्षेपघ्न तथा दूषित कीटाणुनाशक है। पिप्पली—रसायन, दीपन और पाचन है। धतूरा—दर्द नाशक है। —औ० गु० ध० शा०

पञ्चामृत रस

पारद भस्म (या रस सिन्दूर), अभ्रक भस्म और लौह भस्म, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध बच्छनाग और गुर्च तथा त्रिफला के क्वाथ में शुद्ध किया हुआ गूगल और नैपाली ताम्र भस्म प्रत्येक १-१ तोला लेकर सबको एकत्र घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —र० र० स०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, बनतुलसी के रस और दूध के साथ अथवा मधु के साथ दें या पिप्पली चूर्ण ४ रत्ती, मरिच चूर्ण ४ रत्ती और घृत १ तोला के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन का उपयोग क्षय रोग में जब ज्वर विशेष मात्रा में बढ़ा हुआ रहता है तब किया जाता है। क्षयरोग की प्रारम्भिक अवस्था में ज्वर कम रहने पर यदि इस रसायन का प्रयोग करना हो तो उसमें प्रवाल, गुर्चसत्त्व आदि सौम्य दवाओं का सम्मिश्रण कर लेना आवश्यक है।

क्षयरोग की द्वितीय या तृतीयावस्था में क्रमशः रस-रक्तादि धातुओं की क्षीणता होने लगती है, जिससे रोगी दुर्बल तथा कमजोर हो जाता एवं कफ की भी वृद्धि हो जाती है। ऐसी स्थिति में इस रसायन का उपयोग करने से बहुत शीघ्र फायदा होता है।

ज्यादा शुक्रपात होने के कारण शरीर में रस-रक्तादि धातुओं की भी क्षीणता होने लगती है जिससे शरीर कमजोर हो, ज्वरादिक

उपद्रव के साथ राजयक्ष्मा रोग से रोगी ग्रसित हो जाता है। इसी तरह स्त्रियों को अधिक दिन तक प्रदर की शिकायत रहने के कारण शरीर कमजोर होकर राजयक्ष्मा रोग हो जाता है। इसमें रोगिणी बहुत कमजोर हो जाती, मन्दाग्नि हो जाती, ज्वर का वेग बढ़ा हुआ रहता है, रोगिणी अपनी जिन्दगी से निराश हो जाती है, शरीर रक्ताणुओं की कमी के कारण पाण्डुवर्ण का हो जाता तथा रोगिणी चलने-फिरने में भी असमर्थ रहती है। ऐसी दशा में पंचामृत रस के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

इस रसायन में—पारद भस्म—रसायन और कीटाणु नाशक है। अभ्रकभस्म—धातुओं का परिपोषक तथा व्यवस्थित करनेवाली है। लौह—शक्तिवर्द्धक तथा रक्ताणुओं को बढ़ाकर रक्त को पुष्ट करनेवाला है। शिलाजीत—रसायन, प्रमेह नाशक, योगवाही तथा धातुओं को पुष्ट करनेवाला है। बच्छनाग—ज्वरघ्न और गुग्गुलु—वातनाशक, रसायन तथा योगवाही है। —औ० गु० ध० शा०

प्रतापलंकेश्वर रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, शुद्ध बच्छनाग १-१ तोला, काली मिर्च का चूर्ण ३ तोला, लौहभस्म ४ तोला, शंखभस्म ८ तोला और अरने उपलों (बनगोंइठा) की भस्म १६ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियों का कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण मिलाकर सबको एकत्र घोटकर सुरक्षित रख लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—२ से ४ रत्ती सुबह-शाम अदरक स्वरस के साथ देने से प्रसूतवात और भयंकर सन्निपात दूर होता है। शुद्ध गूगल, गिलोय का रस तथा त्रिफला-क्वाथ के साथ देने से यह वात-व्याधि, अर्श तथा कफरोग नष्ट करता है।

गुण और उपयोग—प्रसूत रोग के लिये यह रसायन अमृत के समान है। इस रसायन के सेवन से प्रसूत रोग और उससे पैदा होने वाली अनेक तरह की शिकायतें नष्ट हो जाती हैं। प्रसूतज्वर,

खाँसी, धनुर्वात, दन्तबन्ध (दाँती लगना) उन्माद रोग, भयंकर सन्निपात, अतिसार, संग्रहणी आदि रोग में यह विशेष लाभप्रद है। इसके प्रयोग से गर्भाशय में दूषित व संचित रक्त का स्राव होकर गर्भाशय शुद्ध हो जाता है।

प्रसूतज्वर—प्रसूता स्त्रियों के लिये यह ज्वर बहुत भयंकर और कष्टदायक होता है। जिस प्रसूता स्त्री को यह ज्वर पकड़ लेता है उसकी हालत बहुत खराब हो जाती है। इतना ही नहीं इस ज्वर के साथ और भी अनेक तरह के उपद्रव खड़े हो जाते हैं। अतएव इस ज्वर से सर्वदा सावधान रहना चाहिये।

यह ज्वर अधिकतर सूतिकागृह की गन्दगी एवं मूर्ख दाइयों की अज्ञानता से होता है। प्रसव हो जाने के बाद गर्भाशय में से दूषित जल, रक्त, लसीका आदि का स्राव होना आवश्यक है। इससे गर्भाशय परिशुद्ध हो जाता तथा वह पुनः पूर्वस्थिति में आ जाता है। यदि कदाचित् यह स्राव होने में किसी तरह की गड़बड़ी हुई तो वह दूषित गर्भजल और रक्तादि पेट में सेन्द्रिय विष की उत्पत्ति कर देते हैं। फिर प्रसूतज्वर हो जाता है। यह विष क्रमशः समस्त शरीर में फैल कर अपना प्रभाव दिखलाता है और साथ ही ज्वर की भी वृद्धि करता रहता है।

प्रसूतावस्था में वात और कफ की प्रधानता रहती है। अतएव इसके लक्षण भी वात-कफात्मक ही होते हैं। प्रसूतज्वर होने से पूर्व शरीर में जाड़ा (ठण्ड) लगता है। फिर बुखार हो जाता है। इसमें नाड़ी की गति तेज और भारी हो जाती है। रोगिणी बेचैन रहती है, मुँह सूखने लगता तथा ज्वर के विशेष तेजी के कारण रोगिणी बेसुध हो जाती है। कभी-कभी अण्ट-सण्ट भी बक देती है। शिर में दर्द बना रहता, कभी-कभी वात-प्रकोप विशेष हो जाने पर दाँती बँध जाती अर्थात् दाँतों के दोनों जबड़े बैठ जाते हैं। इस लक्षण में प्रतापलंकेश्वर अदरक स्वरस के साथ दें और ऊपर से दशमूलारिष्ट १। तोला बराबर पानी मिला कर देने से बहुत शीघ्र फायदा होता है। क्योंकि प्रतापलंकेश्वर का प्रभाव खास कर गर्भाशय

और वातवाहिनी नाड़ी पर होता है। अतएव यह गर्भाशय को पूर्व स्थिति में लाकर प्रकुपित वात को शान्त कर देता है।

प्रसूतावस्था में कफ संचय विशेष हो जाने पर ज्वर की उत्पत्ति होती है। यह ज्वर धीरे-धीरे न्यूमोनियाँ में परिवर्तित हो जाता है, प्रसूता के लिये न्यूमोनियाँ बहुत भयंकर व्याधि है। क्योंकि एक तो वैसे ही कमजोरी रहती है। दूसरे न्यूमोनियाँ होने से और भी कष्ट बढ़ जाता है। इसमें—ज्वर होना, कास (खाँसी), पार्श्व-पीड़ा, मन्दाग्नि, अरुचि आदि लक्षण होते हैं। ऐसी स्थिति में प्रताप-लंकेश्वर देने से संचित कफ कम हो जाता तथा बुखार भी कम होने लगता है। धीरे-धीरे रोगिणी भी स्वस्थ हो जाती है।

वात प्रकोप होने पर—धनुर्वात, गृध्रसी, खल्ली, विश्वाची आदि रोगों को दूर करने के लिये भी प्रताप लंकेश्वर देना अधिक हितकर है। साथ ही दशमूल क्वाथ पीने के लिये तथा दशमूल तैल मालिश के लिये प्रयोग करना चाहिये।

प्रसूतावस्था में अधिक मानसिक चिन्ता या किसी प्रकार के आकस्मिक (अचानक) शोक-समाचार सुनकर विशेष शोकित होने से रोगिणी की वातवाहिनी नाड़ी क्षुभित हो जाती है, जिससे श्वास की गति बढ़ जाती और वह धीरे-धीरे वातज श्वास में परिणत होकर, वातज श्वास के लक्षण उत्पन्न कर देता है। ऐसी अवस्था में वात-वाहिनी नाड़ी को शमन तथा श्वास-गति को नियमित करने के लिये प्रताप लंकेश्वर का प्रयोग करना श्रेष्ठ है।

गर्भाशय में दूषित जल या रक्तादि रह जाने से गर्भाशय दूषित हो जाता है जिससे शरीर भारी होना, भूख नहीं लगना, मन्द-मन्द ज्वर रहना, जी मिचलाना, कम्प होना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ये लक्षण रोग प्रारम्भ होने पर होते हैं। क्रमशः जब यह रोग पुराना हो जाता है, तब सम्पूर्ण शरीर में फैल कर निम्न लक्षण प्रकट करते हैं। यथा—सम्पूर्ण शरीर सूज जाना, पेट में दर्द, पतले दस्त बार-बार और अधिक परिमाण में आना आदि। ऐसी स्थिति में लोग पर्पटी देने का विचार करते हैं, किन्तु इसमें पर्पटी न

देकर प्रताप लंकेश्वर देने से बहुत लाभ होता है। क्योंकि इस रोग की उत्पत्ति का कारण गर्भाशय की अशुद्धि है। अतएव गर्भाशय शोधन के लिये इसका प्रयोग करना चाहिये।

इस रसायन में—कज्जली योगवाही, रसायन और हृद्य (हृदय को बल देनेवाला) है। अभ्रक—मानसिक चिन्ता को दूर करनेवाला तथा रक्तगत दोषों को शमन करने वाला है। लौह—गर्भाशय का शोधन कर दूषित रक्त को निकालने वाला तथा गर्भाशय में शक्ति प्रदान करने वाला है। शंखभस्म—कोष्ठ शोधक और दीपक-पाचक है। काली मिर्च कफ नाशक है। बच्छनाग—ज्वरघ्न और वेदना (दर्द) नाशक है। उपलों की राख (भस्म) गर्भ-कोष्ठ शोधक है। —औ० गु० ध० शा०

प्रदरान्तक रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, वंगभस्म, चाँदीभस्म, खपरिया (अभाव में यशदभस्म) कौड़ी भस्म प्रत्येक ३-३ माशे, लौहभस्म ३ तोला लेकर प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधें मिलाकर सबको १ दिन ग्वारपाठे (घीकुमारी) के रस में घोट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम—दूब के रस या आँवला स्वरस और मधु के साथ अथवा गुड़हल (जपा) पुष्प को पाव भर पानी में रात को भिगोकर सुबह मसल-छान कर उस पानी के साथ मिश्री मिलाकर दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से स्त्रियों के नये-पुराने, सफेद या लाल किसी भी प्रकार के प्रदर हो, नष्ट हो जाता और दुर्बल, रोगिणी स्त्रियों को यह रस सबल (स्वस्थ) बना देता है। इससे प्रदर रोग में उत्पन्न हुई शिकायतें जैसे कमर और पेडू में दर्द होना, हाथ-पैरों के तलवे और आँखों में जलन होना, मन्द-मन्द ज्वर रहना, भूख नहीं लगना आदि समस्त विकार मिट जाते हैं। इसके अतिरिक्त गर्भाशय सबल होकर गर्भ धारण करने में पुनः समर्थ हो जाता है।

पुरुषों के लिये प्रमेह और स्त्रियों के लिये प्रदर ये दोनों व्याधि बहुत खतरनाक हैं। ये ऐसे दारुण रोग हैं कि जवानी में ही बुढ़ापा लाकर शरीर को जर्जर बना देते हैं, जीवित रहते हुए भी मनुष्य मुर्दा (निर्जीव) सा बन जाता है। इस रोग की प्रकोपावस्था में शरीर कान्तिहीन हो जाता तथा खून की कमी होने से शरीर का रंग पीला हो जाता है। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाना, किसी की भी बात अच्छी नहीं लगना, अग्निमांद्य, हाथ-पैर और आँखों में जलन, थोड़ा भी चलने पर हृदय की गति बढ़ जाना, पेट में भारीपन, स्राव गर्म और जलसदृश पतला होना आदि लक्षण होने पर प्रदरान्तक रस के सेवन मे बहुत लाभ होता है। इसके साथ मधुकाद्यवलेह दूध के साथ देने से और भी विशेष लाभ होता है।

प्रदररिपु रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, नागभस्म प्रत्येक १-१ तोला, रसौत ३ तोला, लोध्र चूर्ण ६ तोला लें। प्रथम पारा तथा गंधक की कज्जली बनावें फिर उसमें अन्य औषधियाँ मिलाकर सबको एक दिन वासा-रस में घोट कर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम खून खराबा १ माशा और मधु से चटा कर ऊपर से चावल का पानी या अशोक की छाल का क्वाथ पीना चाहिये।

गुण और उपयोग—जैसे पुरुष को शुक्रपात विशेष होने से शुक्र पानी जैसा पतला होकर बहने लगता है। वैसे ही स्त्रियों को भी अधिक दिनों तक प्रदर की शिकायत होने से रज पानी जैसा हो, पतला स्राव होने लगता है और यह स्राव असावधानी में भी हो जाता है। जैसे—निद्रावस्था में या कहीं बैठे-बैठे ही अथवा ज्यादे चलने-फिरने आदि से भी। इसमें गर्भाशय बहुत कमजोर हो जाता है। बद्धकोष्ठता होने से पेट में मल संचय हो जाता है। ऐसी अवस्था में इस रसायन के साथ नागभस्म मिलाकर देने से शीघ्र लाभ होता है।

बद्धकोष्ठता दूर करने के लिये कुमार्य्यासव या पतङ्गासव १। तोला बराबर जल मिला कर देना चाहिये। बढ़े हुए प्रदर में अर्थात् जिस समय रक्त का प्रवाह जोरों से हो उस समय इसका प्रयोग करना चाहिये।

प्रमेहगजकेसरी रस

वंग भस्म, सुवर्ण भस्म, कान्त लौह भस्म, पारदभस्म, या (रस-सिन्दूर), मोती भस्म या मोती पिष्टी, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर का चूर्ण समान भाग लेकर सबको एकत्र मिला, घृतकुमारी के रस में घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —र० सा० सं०

दूसरा—लौह भस्म, नाग (सीसा) भस्म, वंग भस्म प्रत्येक १-१ तोला, अभ्रक भस्म ४ तोला, शुद्ध शिलाजीत ५ तोला और गोखरू ६ तोला ले, सबको एकत्र मिलाकर, नीबू के रस में ७ दिन खरल कर, १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —र० वि०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली दिन में दो बार जल या गुड़मार बूटी के क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन प्रमेह, मधुमेह, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और दाह आदि को नष्ट करता है। शुक्रस्राव को केवल ३ दिन में ही रोक देता है। इसके सेवन से मधुमेह में शर्करा की मात्रा कम हो जाती है। इसके द्वारा अग्न्याशय की विकृति जन्य पाचन क्रिया की न्यूनता से शारीरिक धातु-उपधातुओं की विकृति दूर हो जाती है और अग्न्याशय सबल होने पर शर्करा की अधिक उत्पत्ति नहीं होती है।

मधुमेह में होनेवाले अधिक पशाब, प्यास, मुह सूखना, भूख अधिक न लगना, आँखों के सामने अंधेरा छा जाना, भ्रम होना, कानों में आवाज होना, बेचैनी, सिर दर्द आदि लक्षण होने पर यह रस बहुत फायदा करता है। मधुमेह में वात प्रकोप के कारण सर्वाङ्ग में दर्द, रक्तवाहिनी नाड़ियों में वात प्रकोप होना, कलाय खंज

(लङ्गड़ापन), चलने में पाँव काँपना, शरीर में सन्धियों की शिथिलता तथा उसमें अधिक दर्द होना। इस रोगों में इस दवा के उपयोग से बहुत फायदा होता है।

पुराने मूत्रकृच्छ्र रोग में इसका उपयोग किया जाता है। इसमें मूत्र का वेग तो मालूम पड़ता है किन्तु, मूत्राशय से लेकर मूत्रनली के बीच किसी चीज की रुकावट हो जाने से पेशाब खुल कर न होकर कठिनता से थोड़ी-थोड़ी मात्रा में होता है। कठिनता से पेशाब होने के कारण ही इस रोग का नाम "मूत्रकृच्छ्र" पड़ा है। पुराने सूजाक वाले रोगियों को अक्सर यह रोग हो जाया करता है। इसमें सुवर्ण वंग के साथ इस रसायन का प्रयोग करने से फायदा होता है।

प्रवाल पंचामृत रस

प्रवाल पिष्टी या भस्म २ तोला, मोती पिष्टी या भस्म, शंख भस्म, मुक्ता शुक्ति भस्म या पिष्टी, कौड़ी भस्म प्रत्येक १-१ तोला लेकर सबको एकत्र मिलाकर उसमें सब के बराबर (५ तोले) आक का दूध डाल कर १ दिन घोटकर गोला बना, सराबसम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक दें। स्वाँग शीतल होने पर उसमें से भस्म को निकाल, पीस करके सुरक्षित रख लें। —यो० र०

नोट—आक (अर्क) दुग्ध के पुट देने से इसमें कुछ उग्रता आ जाती है। अतएव कोई वैद्य इसे गो-दुग्ध में खरल करने की सलाह देते हैं।

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती सुबह-शाम। गुल्म तथा उदर रोगों में पुनर्नवा क्वाथ के साथ दें। पित्त प्रधान रोगों में सितोपलादि चूर्ण और मधु अथवा गुलकन्द या आँवले के मुरब्बा के साथ तथा कास श्वास में अदरक रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—पित्ताशय, क्लोम, यकृत और प्लीहा के कार्यों पर इसका खास प्रभाव पड़ता है। यह उष्ण और शीत वीर्य्य है। अतः कफ और पित्तजन्य रोगों में अधिकतर उपयोग किया जाता है। इस रसायन के सेवन से गुल्म, प्लीहा, आनाह (पेट

फूलना), उदर रोग, खाँसी, श्वास, अग्निमान्द्य, कफ और वातज रोग, अजीर्ण, डकारें ज्यादा आना, हृद्रोग, ग्रहणीविकार, अतिसार, प्रमेह, मूत्र दोष, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी आदि रोग नाश होते हैं।

यह पित्त के विकारों को ठीक करता है और उसकी विकृति से उत्पन्न होनेवाले उपद्रवों—आन्त्र प्रदाह, गले में जलन, जलन के साथ दस्त होना, आँव से पैदा हुई संग्रहणी आदि को भी यह नष्ट करता है। इसके सेवन से हृदय और मस्तिष्क को बल मिलता तथा फुफ्फुस में रुके हुए दोष भी निकल जाते हैं।

जहाँ कहीं मन्दज्वर के साथ शुष्क—साधारण कास (खाँसी) हो अथवा ज्वरादिक किसी प्रकार के उपद्रव न होते हुए भी शरीर दिन-प्रतिदिन दुर्बल हो रहा हो तो ऐसी अवस्था में यह रसायन बहुत फायदा करता है। ज्वर बराबर रहता हो; साथ में शुष्क कास-श्वास, पसली में दर्द आदि लक्षण हों तो प्रवाल पंचामृत मृगश्रृङ्ग भस्म १ रत्ती के साथ प्रयोग किया जाता है। यक्ष्मा में—अधिक ज्वर रहना, खाँसी भी अधिक होना, कफ दुर्गन्धयुक्त निकलना, पसीना ज्यादा आना, विशेषकर प्रातःकाल पसीना ज्यादे आना, प्यास ज्यादा, कमजोरी आदि लक्षणों में गुडूची सत्त्व १ रत्ती, सुवर्ण भस्म चौथाई रत्ती के साथ इस रसायन का सेवन करना चाहिये। प्रसव के बाद स्त्रियों की दुर्बलता दूर करने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है।

कफ प्रकोपजन्य मूत्रकृच्छ्र में इस रसायन का उपयोग चावल के धोवन (पानी) के साथ करना चाहिये। बद्धकोष्ठ में आँतों की कमजोरी के कारण ही प्रायः मलबन्ध हो जाया करता है। ऐसी दशा में रससिन्दूर १ रत्ती, कुटकी चूर्ण ४ रत्ती, आठ नग दाख, हरीतकी चूर्ण १ माशा के साथ इसे मिलाकर गर्म जल या गर्म दूध के साथ सेवन करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। मूत्रकृच्छ्र रोग में—गोखरू क्वाथ के साथ बहुत फायदा होता है। रात्रि में अधिक पसीना आने पर मधु के साथ दिन भर में ३ बार इसके सेवन से लाभ होता है। बच्चों की तेज खाँसी में अभ्रकभस्म आधी रत्ती,

रससिन्दूर चौथाई रत्ती,कंटकारि चूर्ण १रत्ती में मिला कर मधु के साथ देने से लाभ होता है। छोटे-छोटे बालकों के ज्वर, कास अथवा श्वास अर्थात् 'ब्रांको न्यूमोनिया' में इस रसायन को अभ्रक भस्म आधी रत्ती, रससिन्दूर चौथाई रत्ती, कायफल का चूर्ण १ रत्ती में मिलाकर मधु के साथ देने से फायदा होता है। कास-श्वास में—इस रसायन को रससिन्दूर १ रत्ती तथा बंशलोचन चूर्ण २ रत्ती में मिलाकर आँवले के मुरब्बे के साथ देना चाहिये।

पाचक पित्त की विकृति के कारण अन्नादिक पाचनक्रिया ठीक से नहीं होती है। जिससे खट्टी डकारें आने लगती हैं। पेट फूला हुआ तथा भारी मालूम पड़ता है। पेट में मन्द-मन्द दर्द होना, शरीर में आलस्य, किसी भी काम में मन न लगना आदि लक्षण होने पर प्रबाल पंचामृत जम्बीरी नीबू-रस के साथ देने से बहुत शीघ्र गुण करता है।

पित्त प्रधान यकृत वृद्धि में त्वचा, आँखें, नाखूने, मूत्र आदि सब पीले हो जाते हैं। पैर में कुछ सूजन आ जाती है, पेट कुछ बढ़ जाता, यकृत का किनारा कुछ मोटा हो जाता है, घबराहट, बेचैनी, हाथ-पैरों में जलन आदि लक्षण होने पर दही के पानी के साथ प्रवाल पंचामृत रस के प्रयोग से बढ़ा हुआ पित्त शान्त हो जाता है, साथ ही यकृत वृद्धि में भी कमी होने लगती है।

पित्त प्रकुपित होकर अतिसार हो गया हो और फिर वही अतिसार संग्रहणी का रूप धारण कर लिया हो तो ऐसी स्थिति में पर्पटी का उपयोग न कर प्रवाल पंचामृत का प्रयोग करना श्रेष्ठ है। क्योंकि पर्पटी कज्जली योग से बनने के कारण कुछ उष्णवीर्ययुक्त होती है। अतएव यह पित्त को शान्त न कर कुछ बढ़ा ही देती है और प्रवाल पंचामृत-पर्पटी की अपेक्षा सौम्य और पित्तशामक है। अतः इसके उपयोग से पित्त शान्त हो जाता तथा पित्त से उत्पन्न हुए उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं।

इस रसायन में—प्रवाल—पित्तशामक और मूत्रल है। मोती—दाह और पित्तशामक, मूत्रल तथा रक्त प्रसादक है।

शंख, शौक्तिक व कौड़ी-पाचक, अग्नि प्रदीपक और स्तम्भक है।

—औ० गु० ध० शा०

पांडुपंचानन रस

लौहभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, प्रत्येक ४-४ तोला, सोंठ, मिर्च, पीपल, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, दन्तीमूल, चव्य, कालाजीरा, चित्रकमूल, हल्दी, दारुहल्दी, निसोथ, मानकन्द, इन्द्रजौ, कुटकी, देवदारु, वच, नागरमोथा प्रत्येक का कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण १-१ तोला और सब चूर्ण से दुगुना शुद्ध मण्डूर तथा मण्डूर से अठगुना गो-मूत्र में मण्डूर चूर्ण डालकर पकावें। जब पाक गाढ़ा हो जाय, तो उसे ठण्ढा कर उसमें लौह भस्मादि का उपरोक्त चूर्ण डालकर मिला दें और ३-३ रत्ती की गोलिया वना लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, गरम जल अथवा गोमूत्र के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन का उपयोग पाण्डु, कामला, हलीमक आदि रोगों में किया जाता है। इसके प्रयोग से यकृत-विकार, तिल्ली का बढ़ना, स्थायी कब्ज आदि रोग नाश होकर पाचकाग्नि की वृद्धि होती है। कुछ दिनों तक लगातार सेवन करने से पाण्डुजनित समूचे शरीर का शोथ (सूजन) और पीलापन दूर हो कर बल, वीर्य, कान्ति और रक्त की वृद्धि होती है।

पाशुपत रस

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, तीक्ष्ण लौहभस्म ३ तोला और शुद्ध बच्छनाग ६ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली वना, फिर अन्य औषधें मिला, सबको एक दिन चित्रकमूल के क्वाथ में घोटें। फिर धतूरे के बीजों की भस्म ३२ तोला, सोंठ, पीपल, मिर्च, लौंग, इलायची ३-३ तोला, जायफल और जावित्री आधा-आधा तोला, पाँचों नमक (समभाग) २।। तोला तथा सेहुण्ड, आक, एरण्डमूल, तिन्तड़ीक, अपामार्ग (चिरचिरा) और पीपल वृक्ष का क्षार, हर्रे, यवक्षार, सज्जीक्षार, भूनी हुई हींग, जीरा और सुहागे की खील १-१

तोला लेकर सबका बारीक चूर्ण करके उपरोक्त कज्जली में मिलाकर सबको एक दिन नीबू के रस में घोटकर १-१ रत्ती की गोली बना, सुखा कर रख लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम। इसे उदर रोगों में तालमूली के रस के साथ, अतिसार में मोचरस के साथ, संग्रहणी में सेंधानमक मिश्रित तक्र (छाछ) के साथ, शूल में सेंधा नमक, सोंठ और पीपल के चूर्ण के साथ, वातव्याधि में —सोंठ और सोंचर नमक के साथ, पित्तज रोगों में मिश्री और धनिया के चूर्ण के साथ और कफज रोगों में पीपल-चूर्ण और शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रस समस्त उदर-विकारों के लिये रामबाण है। इसके सेवन से अग्नि प्रदीप्त होकर खाया हुआ पदार्थ अच्छी तरह हजम हो जाता है। अनुपान भेद से यह उदर रोग, मन्दाग्नि, शूल, संग्रहणी, अतिसार, बवासीर आदि को नष्ट करता है और हैजा में भी लाभदायक है।

पीयूषवल्ली रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, चाँदीभस्म, लौहभस्म, सुहागे की खील, रसौत, माक्षिकभस्म, जावित्री, अजवायन, लौंग, श्वेतचन्दन, नागरमोथा, पाढ़, जीरा, धनिया, लजवन्ती, अतीस, लोध, कुड़ाकी छाल, इन्द्रजौ, दालचीनी, जायफल, बेलगिरी, नीम की पत्ती, शुद्ध धतूरे की बीज, दाड़िम का छिलका, हरड़, धाय के फूल और कूठ प्रत्येक समभाग लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य भस्में तथा औषधों का सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण मिलाकर भाँगरे के रस में सात दिन घोट कर चने बराबर गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली सुबह-शाम, अतिसार, संग्रहणी और बवासीर में इसबगोल के लुआब या भुना हुआ बेल और समान भाग गुड़ अथवा भुना जीरा और मधु के साथ दें। आँव, गुल्म, तिल्ली, पाण्डु, कामला आदि में कुमारी रस या धान्य

पंचक-काढ़ा के साथ दें। जलन, प्यास, वमन आदि में धनिया, एवं लौंग को औटाये हुए जल से अथवा अनार के रस से देना चाहिये।

गुण और उपयोग—यह रस कठिन-से-कठिन संग्रहणी, प्रबल अतिसार, बवासीर, आमशूल आदि रोगों का नाशक है। पेट में संचित आँव तथा काला-पीला रक्तमिश्रित दस्तों में लाभदायक है। तिल्ली, गुल्म, पाँडु रोग, कामला, भोजन में अरुचि, जलन, प्यास की अधिकता, वमन आदि रोगों में अनुपान भेद से यह बहुत लाभ करता है। संग्रहणी और अतिसार की प्रबलता में इसका उपयोग सर्वथा सफल होता ह।

पुटपक्क विषमज्वरान्तक रस

हिंगुल से निकाला हुआ शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, दोनों को खरल में एकत्र मिला, ऊपर से थोड़ा पानी के छींटे देकर उसमें पारद के सूक्ष्म कण भी न दीखें ऐसी कज्जली बनावें। पीछे उस कज्जली की रसपर्पटी के विधान से पर्पटी बना लें। बाद पर्पटी को खरल में डालकर मर्दन करें। जब सूक्ष्म हो जाय तब उसमें सोने की भस्म या वर्क चौथाई तोला, लौहभस्म २ तोला, अभ्रकभस्म २ तोला, ताम्रभस्म २ तोला शुद्ध सुहागा ६ माशा, सोनागेरू, ६ माशा, वंगभस्म, प्रवालभस्म ६-६ माशे, मोतीपिष्टी, शंखभस्म, मुक्ताशुक्तिभस्म ३-३ माशे, सबको एकत्र करके सम्भालू की पत्ती, धतूरे की पत्ती और कालमेघ इन तीनों के स्वरस में एक-एक दिन मर्दन करके उसका (दो सीपों के बीच में रह सके ऐसा चिपटा) गोला बनावें। फिर दो सीप बराबर माप की लेकर उसके दोनों किनारों का सम्पुट ठीक बने ऐसा घिस, बीच में गोले को रख, ऊपर से एक कपड़ा लपेट दें। बाद उस कपड़े के ऊपर पानी में अच्छी तरह मसली हुई मिट्टी का दो अंगुल मोटा लेप करें। लेप थोड़ा सूखने पर सम्पुट को निधूम कंडों की आँच में रखें। जब ऊपर की मिट्टी कुछ लाल हो जाय या भीतर से गन्धक की गन्ध आने लगे तब

उसको अग्नि से बाहर निकाल कर स्वांगशीतल होने दें। पीछे मिट्टी हटा, सम्पुट में से दवा निकाल, खरल में खूब बारीक पीस कर, शीशी में भर कर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती मधु से।

गुण और उपयोग—इसका उपयोग जीर्णज्वर, यकृत और प्लीहावृद्धियुक्त ज्वर, राजयक्ष्मा, पाण्डुरोग और प्रमेह में गिलोय के स्वरस या क्वाथ के साथ, कास और श्वास में अडूसे के स्वरस के साथ तथा आमदोष और ग्रहणी रोग में भुने हुए जीरे का चूर्ण १ माशा और मधु ३ माशे के साथ दें।

पुष्पधन्वा रस

पारदभस्म (या रससिन्दूर), नागभस्म, लौहभस्म, वंगभस्म, अभ्रकभस्म प्रत्येक समभाग लें। इन्हें शुद्ध धतूरे के बीज, भाँग (कोई विजयसार लेते हैं), मुलैठी, सेमल की मूसली और नागर वेल (पान) के रस की एक-एक भावना देकर, १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम , न्यूनाधिक मात्रा में मिलाये हुए शहद और घी या औटाये हुए मिश्री मिला हुआ दूध अथवा मक्खन-मिश्री आदि के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन कामोत्तेजक, बल, वीर्य और शक्तिवर्द्धक एवं उत्तम वाजीकरण है। इसके नियमित सेवन से वीर्यस्राव , रजःस्राव, निर्बलता, वीर्य-विकार, ध्वजभंग, वंध्यत्व आदि रोग नष्ट होते हैं। यह रस स्त्रियों के बीजाशय के योग्य विकास न होने से उत्पन्न बन्ध्यात्व दोष और पुरुषों के शुक्रस्राव की दुर्बलता से पैदा हुई नपुंसकता की अव्यर्थ औषधि है।

ज्यादे स्त्री प्रसंग करने से शुक्र (वीर्य) पतला हो जाता है। ऐसे समय में उत्तेजना (काम की इच्छा) होने पर शिर में दर्द होने लगता है और यह दर्द तब तक होता रहता है ; जबतक वीर्यस्राव नहीं हो जाता अथवा किसी प्रेमी को अपनी प्रेमिका से सम्मिलन

न होने के कारण उसका चित्त विभ्रम (उन्माद) हो गया हो तो इन दोनों अवस्थाओं में पुष्पधन्वा रस के उपयोग से बहुत लाभ होता है। क्योंकि यह रस वीर्यवाहिनी शिरा में शक्ति प्रदान कर उसे वीर्य धारण करने में समर्थ बनाता तथा जननेन्द्रिय की नसों में रक्त का संचार कर उसकी शिथिलता दूर कर उन्हें पुष्ट करता है। स्तम्भक और वृष्य होने से यह शुक्रधारक तथा शक्तिवर्द्धक भी है।

जैसे पुरुषों को कभी मनोव्याघात या और भी किसी आकस्मिक दुर्घटना के कारण स्त्री प्रसंग करने की इच्छा नहीं होती, उसी तरह कभी-कभी स्त्रियों को भी यह शिकायत हो जाती है। यदि उक्त समय में पुरुष संगम की इच्छा नहीं होती हो अथवा युवावस्था आने पर भी उचित अंगों के विकास न होने से समागम की इच्छा नहीं होती हो, तो ऐसी अवस्था में पुष्पधन्वा रस के उपयोग से मानसिक क्षोभ दूर हो जाते और स्त्रियोचित अंगों की पुष्टि होने लगती तथा बाद में कामोत्तेजना भी होने लगती है।

गर्भाशय—सूजाक या उपदंश के विष के कारण दूषित हो गया हो, जिससे योनिमार्ग से पतला और बदबूदार स्राव भी होता हो, तो इस दूषित विष तथा स्राव को रोक कर गर्भाशय को शोधन करने के लिये इस रसायन का उपयोग किया जाता है। इससे बहुत शीघ्र लाभ होता है।

इस रसायन में—रससिन्दूर—बलवर्द्धक, उत्तेजक और योगवाही है। नागभस्म—स्तम्भक, बल्य और मेहनाशक है। अभ्रकभस्म—मानसिक कष्ट से उत्पन्न हुए मनोविकार नाशक, धातुओं को परिपुष्ट करनेवाला, योगवाही और रसायन है। वंग—मेह (प्रमेह) नाशक, वृष्य, बल्य तथा स्तम्भक है। लौहभस्म—रक्त बढ़ानेवाला और बलवर्द्धक है। धतूरा—दर्दनाशक, आह्लाद-जनक और वृष्य है। सेमरछाल—वृष्य व शुक्र उत्पन्न करनेवाला तथा स्तम्भक है। मुलैठी—जीवक, बल्य और रसायन है।

—औ० गु० ध० शा०

पूर्णचन्द्र रस

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, शुद्ध शिलाजीत, वायविडंग, स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक समान भाग ले कर, इन्हें घृत और मधु में खरल करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ गोली प्रातः और १ गोली रात को सोते समय मक्खन, मलाई या मिश्री मिला, गर्म दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—रात्रि में ज्यादा पेशाब होने और स्वप्नदोष के लिए यह अत्यन्त हितकर है। पेट में कृमि हो, आध्मान (पेट फूलना), निद्रा पूरी न आती हो, बुरे स्वप्न दिखाई दे और इसी हालत में वीर्य्य स्राव हो जाय ; ऐसी हालत में यह रस विशेष फायदा करता है। दुर्बल पुरुषों को यह पुष्टि के लिये दिया जाता जाता है।

इसके सेवन से सब प्रकार के धातु-रोग निर्मूल हो जाते हैं तथा शरीर में नया खून और नया जोश उत्पन्न होता है। दिल और दिमाग में ताकत आ जाती है। स्तम्भक शक्ति और काम शक्ति की जागृति होती है। बाजीकरण के लिये इसका प्रयोग अधिक लाभदायक है।

पूर्णचन्द्र रस (वृहत्)

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक २-२ तोले, लौहभस्म, अभ्रकभस्म ४-४ तोले, चाँदी और वंगभस्म २-२ तोले, स्वर्णभस्म (या वर्क), ताम्र-भस्म, कांस्य भस्म, जायफल, लौंग, इलायची, जीरा, भृंगराज, कपूर, फूलप्रियंगू और नागरमोथा प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बनावें, फिर उसमें काष्ठौषधियों का कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिला, ग्वारपाठा, शतावरी और एरण्ड मूल के रस की पृथक्-पृथक् एक-एक भावना देकर, एरण्ड के पत्तों में लपेटकर अनाज के ढेर में दबा दें। फिर २४ घण्टे बाद पत्तों में से औषध को निकाल कर खरल करके चने के बराबर गोलियाँ बना लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम। मधु, मक्खन,

मिश्री एवं मलाई के साथ दें या लगे हुए पान में रखकर सेवन कर।

गुण और उपयोग—यह रस बल्य, रसायन एवं बाजीकरण है तथा अष्ठीला, खाँसी, श्वास, अरुचि, आमशूल, कटिशूल, हृच्छूल, पित्तजन्य शूल, अग्निमांद्य, अजीर्ण, पुरानी संग्रहणी, आमवात, अम्लपित्त, भगन्दर, कामला, पाण्डु रोग, प्रमेह और वातरक्त नाशक है।

इस रसायन के सेवन से मेधा और वाक्शक्ति की वृद्धि होती है तथा मनुष्य अत्यन्त बलवान, कान्तियुक्त व रूपवान हो जाता है। यह रस स्त्री, पुरुष तथा दुर्बल रोगियों के लिये अत्यन्त हितकर है।

यह सभी प्रकार के रोगों में फलप्रद है। किन्तु इसका सबसे ज्यादा प्रयोग प्रमेह,नपुंसकता तथा जननेन्द्रिय के विकारों में होता है। यह रसायन शुक्राणुओं की नवीन रचना करता है तथा रजाणुओं के उत्पत्तिक्रम को ठीक करता है। अति मैथुन या मैथुन से थके हुए पुरुषों में यह फिर से नवीन ताकत लाता है। शुक्रस्राव, श्वेत प्रदर तथा बहुमूत्र को यह अति शीघ्र ठीक करता है। मस्तिष्क में धारण शक्ति बढ़ने से हृदय को बल मिलता तथा वीर्यवाहिनी नाड़ियों में चेतना आती है। किसी भी रोग से उत्पन्न कमजोरी इससे दूर हो जाती है। सन्निपात, ग्रहणी, क्षय आदि की कठिन दशा में इसका मिश्रण हृदय को शक्ति देता है।

वसन्तकुसुमाकर रस

प्रवाल भस्म या पिष्टी, चन्द्रोदय या रससिन्दूर, मोती पिष्टी या भस्म, अभ्रक भस्म प्रत्येक ४-४ तोला, रौप्य (चाँदी) भस्म, सुवर्ण भस्म २-२ तोला, लौहभस्म, नागभस्म और वंगभस्म प्रत्येक ३-३ तोला लेकर सबको पत्थर के खरल में डालकर अडूसे की पत्ती का रस, हल्दी का रस, गन्ने का रस, कमल के फूलों का रस, मालती के फूलों का रस, शतावरी का रस, केले के कन्द का रस और चन्दन भिगोया हुआ जल, प्रत्येक की सात-सात भावना दें। प्रत्येक भावना

में ३-६ घण्टा मर्दन करना चाहिये। अन्त की भावना के समय उसमें २ तोला अच्छी कस्तूरी मिला ३ घण्टा मर्दनकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा लें। इस योग में यदि २ तोला अम्बर भी मिला दें तो यह विशेष गुणकारक होता है। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम। नपुंसकता और वीर्य स्राव में धारोष्ण गोदुग्ध, मस्तिष्क के विकारों में आँवले के मुरब्बे, रक्त पित्त और रक्त प्रदर में वासा रस और मधु के साथ, कास-श्वास और क्षय में चौंसठ प्रहरी पीपल के साथ मधु मिलाकर दें। अम्लपित्त में कूष्माण्ड अवलेह के साथ, हृदय रोग में अर्जुन छाल के क्वाथ से, प्रमेह में गुडूची स्वरस और मधु के साथ तथा मधु-मेह में जामुन की गुठली का चूर्ण और शिलाजीत के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह हृद्य, बल्य (बलवर्द्धक), उत्तेजक, वृष्य, बाजीकरण और रसायन है। स्वर्ण, मोती, अभ्रक, रससिन्दूर आदि बलवर्द्धक द्रव्यों के संयोग से बनने के कारण यह सभी रोगों के लिये बहुत फायदेमन्द है। स्त्री-पुरुषों के जननेन्द्रिय सम्बन्धी विकारों पर इसका बहुत अच्छा और तात्कालिक प्रभाव पड़ता है। मधुमेह, बहुमूत्र और हर तरह के प्रमेह, नामर्दी, सोमरोग, श्वेतप्रदर, योनि तथा गर्भाशय की खराबी, वीर्य का पतला होना या गिरना व वीर्य सम्बन्धी शिकायतों को जल्दी नष्टकर शरीर में नयी स्फूर्ति पैदा करता है। वीर्य की कमी से होनेवाले क्षयरोग की यह बहुत उत्तम दवा है। हृदय और फेफड़े को इससे बल मिलता है। हृदय की कमजोरी, शूल तथा मस्तिष्क की निर्बलता, भ्रम, याददाश्त की कमी, नींद न आना आदि विकारों को दूर करता है। पुराने रक्त-पित्त, कफ, खाँसी, श्वास, संग्रहणी, क्षय, रक्तप्रदर, खून की कमी और बुढ़ापे तथा रोग छूटने के बाद की कमजोरी में इस रसायन का प्रयोग बहुत लाभदायक है। अनुपानभेद से यह अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट करता है। मधुमेह रोग को यह प्रसिद्ध औषध है।

छोटी आयु में अप्राकृतिक ढंग (हस्तमैथुन, गुदामैथुन आदि) से वीर्य का नाश करने से अथवा ज्यादा स्त्री प्रसंग (मैथुन) करने से

वीर्य पतला हो जाता है, ऐसे मनुष्य का स्त्री विषयक चिन्ता करने मात्र से वीर्य पतन हो जाता है। ऐसी स्थिति में वसन्त कुसुमाकर के सेवन से बहुत शीघ्र फायदा होता है क्योंकि यह रसायन और वृष्य होने के कारण वीर्यवाहिनी शिरा तथा अण्डकोष में ताकत पहुँचाता है जिससे वीर्यवाहिनी शिरा में वीर्य धारण करने की शक्ति उत्पन्न होती है।

पुराने नकसीर रोग में इसका उपयोग किया जाता है। किसी-किसी मनुष्य की आदत-सी हो जाती है कि अधिक गर्म पदार्थ के सेवन या धूप में विशेष चलने-फिरने आदि से नाक फूटकर रक्त निकलने लगे, इसे भाषा में नकसीर या नक्की छूटना कहते हैं। इसमें भी इसको शर्बत अनार या गुलकन्द के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है। साथ ही दूर्वादि घृत की मालिश भी शिर में करनी चाहिये।

जिस स्त्री को समय से ज्यादे दिन तक और अधिक मात्रा में रजःस्राव होता हो उसके लिये भी यह दवा बहुत उपयोगी है। शरीर में खून (रक्त) ज्यादा पतला हो जाने से ही ऐसा होता है। ऐसी स्त्री को शरीर के किसी अंग में जरा-सा कट जाने या खुर्च जाने अथवा सूई आदि लग जाने से बहुत खून निकलता है, जो बहुत देर में बन्द होता है। ऐसी स्थिति में रक्त गाढ़ा करने के लिये वसन्त कुसुमाकर का उपयोग करना लाभप्रद है।

बुढ़ापे में सब इन्द्रियाँ प्रायः शिथिल हो जाती हैं, किन्तु सबसे ज्यादा शरीर के अन्तरावयवों में आँतों की शिथिलता होने से यह अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाती है, जिससे अन्नादिकों का पचन कार्य ठीक से नहीं हो पाता। इसका प्रभाव हृदय और फुफ्फुसों पर विशेष पड़ता है। फिर कास और श्वास की उत्पत्ति होती है। यह वृद्धों के लिये बहुत भयंकर व्याधि है। इसमें वसन्त कुसुमाकर का प्रयोग जादू-सा असर करता है। —औ० गु० ध० शा०

वसन्ततिलक रस

लौहभस्म, वंगभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, स्वर्णभस्म या वर्क, अभ्रकभस्म, प्रवालभस्म, चाँदीभस्म, मोतीभस्म, जायफल, जावित्री,

दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर—इनका कूट-कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण और भस्म प्रत्येक दवा समान भाग लेकर, सबको एकत्र मिला, त्रिफला के क्वाथ में घोटकर, ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम मधु मिले हुए गिलोय के रस अथवा शतावरी के रस से दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से वातज-पित्तज और कफज तथा सान्निपातिक अनेक रोगों का नाश होता है। विशेषतया वातव्याधि, अपस्मार, विसूचिका, उन्माद और शरीर की स्तब्धता तथा प्रमेह का नाश होता है।

लौह, वंग, स्वर्ण, मोती आदि बहुमूल्य वृष्य और धातु पौष्टिक ओषधियों के योग से बना हुआ यह रस सब प्रकार के प्रमेह रोगों में उपयोगी है। यह वाजीकरण और वीर्यवर्द्धक भी है। बहुमूत्र और चीनी की बीमारी (डायाबेटीज) में इसका अच्छा प्रभाव होता है। अपस्मार (मृगी) के लिये भी यह बहुत फायदेमन्द है।

बहुमूत्रान्तक रस

रससिन्दूर, लौहभस्म, वंगभस्म, शुद्ध अफीम, शुद्ध जमालगोटा, गूलर-फल के बीज, बेल की जड़ की छाल और तुलसी समान भाग लेकर, सबको कूट-कपड़छानकर. महीन चूर्ण बना, गूलर के फलों के रस में सबको घोटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—बहुमूत्र, मधुमेह (पेशाब में चीनी आने) में जामुन की गुठली और गुड़मार का चूर्ण १-१ माशा, गूलर का रस और मधु के साथ १-१ गोली सुबह-शाम दें। प्रमेह में गुर्च के रस और मधु से दें। नपुंसकता-नामर्दी और शीघ्रपतन-दोष दूर करने के लिये मिश्री मिला, खूब औटाये दूध के साथ दें।

नोट—यदि इसके सेवन से प्यास अधिक लगे, तो सारिवा, मुलैठी, मुनक्का दाभ (कुश), चीड़ का बुरादा, लालचन्दन, हर्रे का बक्कल, महुआ के फूल,

सब समान भाग लेकर, काढ़ा बना, ठण्डा करके पिलाना चाहिये। अथवा इन चीजों को रात में पानी में भिगो दें और प्रातःकाल छानकर पिलावें।

गुण और उपयोग—यह रसायन मधुमेह और बहुमूत्र तथा सोमरोगों के लिये बहुत उपयोगी है। प्रमेह और शीघ्रपतन, वीर्य की कमी आदि में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

वड़वानल रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, पीपल, पाँचो नमक, कालीमिर्च, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सज्जीखार, जवाखार और सुहागा—इन सबका कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण १-१ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, फिर अन्य सभी दवाओं का चूर्ण मिलाकर, खरल करें। फिर निर्गुण्डी के रस में एक दिन भावना दे, खरलकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली दिन में दो बार दें। जम्बीरी या कागजी नीबू का रस जल में मिलाकर उसके साथ सौंफ का अर्क अथवा अर्क अजवायन के साथ देना चाहिये।

गुण और उपयोग—यह रसायन अजीर्ण, मन्दाग्नि, गुल्म, शूल आदि के लिये उत्तम है। इसके सेवन से खाया हुआ पदार्थ अच्छी तरह से पच जाता है और अग्नि की भी वृद्धि होती है।

वातचिन्तामणि रस (बृहत्)

स्वर्णभस्म १ तोला, चाँदीभस्म २ तोला, अभ्रकभस्म २ तोला, मोती भस्म या पिष्टी ३ तोला, प्रवालभस्म या पिष्टी ३ तोला, लौह-भस्म ३ तोला, काकोली चर्ण १ तोला, अम्बर १ तोला और चन्द्रोदय ७ तोला लें। प्रथम चन्द्रोदय को खूब महीन पीसें, फिर उसमें काकोली का चूर्ण और अम्बर डालकर सब दवा को ग्वारपाठे के रस में मर्दनकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया, में सुखाकर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली यथावश्यक दिन में तीन-चार बार मधु (शहद) से दें।

गुण और उपयोग—आयुर्वेद में वात रोग के लिये इस ओषधि की बहुत प्रशंसा है। इसके सेवन से सब प्रकार के वात और पित्त सम्बन्धी रोग जड़मूल से नष्ट हो जाते हैं। नींद न आना, मस्तिष्क की ज्ञानवाहिनी नाड़ियों के दोष से उत्पन्न होनेवाली बीमारी और हिस्टीरिया आदि में इसके सेवन से बड़ा लाभ होता है।

यह रस हृदय और मस्तिष्क के लिये उत्तम बलकारक, वात-कफ नाशक व बाजीकरण है। सब प्रकार के वात रोगों में इसका प्रयोग किया जाता है। आक्षेपक और हिस्टीरिया में मांस्यादि* क्वाथ के अनुपान से दें। सन्निपातज्वर में जब प्रलाप, मोह, नाड़ी की क्षीणता, हाथ-पाँव काँपना, पसीना अधिक होकर शरीर ठण्ढा पड़ जाना इत्यादि लक्षण हों तो इसके प्रयोग से लाभ होता है। प्रलापावस्था में तगरादि† क्वाथ के साथ इसका प्रयोग करें।

वातकुलान्तक रस

कस्तूरी, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, नागकेसर, हर्रे, बहेड़ा, जायफल, छोटी इलायची, और लौंग प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, उसमें कस्तूरी डालकर ब्राह्मी के रस में ३ घण्टा मर्दन करें, फिर शेष दवाओं का कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिला, ब्राह्मी के रस में एक दिन मर्दन करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —सि० यो० सं०

---

* **मांस्यादि क्वाथ**—जटामांसी १ तोला, असगन्ध चौथाई तोला, खुरासानी अजवायन के बीज १॥ माशा—इनको जौ कूटकर १० तोला जल में पका, ४ तोला जल बाकी रहने पर कपड़े से छानकर दें।

† **तगरादि क्वाथ**—तगर (यूनानी आसारून), पित्तपापड़ा, अमलतास का गूदा, नागरमोथा, कुटकी. जटामांसी, असगन्ध, ब्राह्मी, मुनक्का, लालचन्दन, दशमूल, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी (सरिवन-पिठवन). छोटा गोखरू, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, अरणी, खम्भारी, सोनापाठा, पाटला (पाढ़लछाल), बेल-छाल) और शंखाहुली ये सब द्रव्य समान भाग लेकर जौकूट (अधकचरा-दरदराकूट) कर रख लें। इसमें से १ तोला दवा को १६ तोला जल में पकावें। जब ४ तोला जल बाकी रहे तब कपड़े से छानकर रोगी को दें।

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली दिन में तीन-चार बार, ब्राह्मी, शङ्खपुष्पी, लौंग और जटामांसी क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन—अपस्मार, मूर्च्छा (बेहोशी), हिस्टीरिया, आक्षेपक आदि वातरोग और सूतिकारोगजन्य वातरोग आदि को नष्ट करता तथा मन को प्रसन्न करता और सन्निपात ज्वर में उपद्रव रूप से उत्पन्न प्रलाप (अक-बक करना), चित्तविभ्रम आदि उपद्रवों को दूरकर अच्छी नींद लाता है।

इस रसायन का सबसे अधिक प्रभाव मस्तिष्क और वातवाहिनी नाड़ियों पर होता है। अतएव मानसिक आघात से उत्पन्न होनेवाले रोगों में इसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसी तरह आक्षेप जन्य विकारों में अर्थात् वातवाहिनी नाड़ियों की विकृति से रक्त का संचार ठीक-ठीक नहीं होने से शिराओं में खिंचावट पैदा होने लगती तब धनुर्वात आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में वात-कुलान्तक रस के उपयोग से ये सब दोष नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि यह वातवाहिनी नाड़ियों की विकृति को दूर करता है जिससे रक्त का संचार ठीक तरह होने लग जाता है।

वातगजांकुश रस

पारदभस्म (रससिन्दूर), लौहभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, हर्रे, काकड़ासिंगी, शुद्ध बच्छनाग, सोंठ, मिर्च, पीपल, अरनी की जड़ की छाल व सुहागा प्रत्येक समान भाग लें। प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बना लें फिर, उसमें कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण कज्जली में मिला कर मुण्डी और सम्भालू के रसमें १-१ दिन घोट कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम मजीठ के क्वाथ में पीपल चूर्ण मिलाकर अथवा रास्नादि क्वाथ या दशमूल क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग—आयुर्वेद शास्त्र में इस रसायन की प्रशंसा

करते हुए लिखा है कि "सप्ताहाद् गृध्रसीं हन्ति दारुणं सान्निपातिकम्" अर्थात् यह रसायन दारुण सन्निपातज गृध्रसी को भी ७ दिन में ही नष्ट कर देता है। इस रसायन की उत्तमता इसी से ज्ञात हो जाती है कि यह कोष्टु शीर्षक, अवबाहुक, मन्यास्तम्भ, उरुस्तम्भ, हनुस्तम्भ और पक्षाघात आदि रोगों में भी विशेष फायदा करता है।

बात और कफ से उत्पन्न वातरोगों में इसका प्रभाव बहुत अच्छा होता है। मेदस्वी (जिनकी चर्बी बढ़ी रहती है) पुरुषों के लिये तो यह बड़ी अच्छी दवा है, क्योंकि यह वातविकारों के साथ मेदोरोग को भी नष्ट करता है।

वातरक्तान्तक रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध गुग्गुल, बायविडङ्ग, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, समुद्रफेन, पुनर्नवा की जड़, देवदारु, चित्रक, दारुहल्दी और सफेद कोयल (अपराजिता) की जड़ प्रत्येक समान भाग ले कर पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण मिला, सबको एकत्र मिलाकर त्रिफला और भाँगरे के रस की ३-३ भावना देकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, नीम के पत्ते, फूल और छाल के समभाग का महीन चूर्ण बना, १ माशे में मिला कर न्यूनाधिक मात्रा में शहद (मधु) और घी के साथ चटा दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से अत्यन्त कठिन और सभी तरह के वातरक्त रोग नष्ट होते हैं। वात-रक्त रोग की किसी भी अवस्था में इस रसायन का प्रयोग किया जा सकता है। रक्त के दूषित हो जाने से शरीर में खाज, खुजली, फोड़े-फुन्सी आदि उत्पन्न हो जाने पर भी इससे लाभ होता है।

वान्तिहृद् रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, शंखभस्म, प्रत्येक समान

भाग ले कर सबको एकत्र कज्जली बनावें, पश्चात् घृतकुमारी, धतूरा तथा चाँगेरी के रस की १-१ भावना दे, गोला बना, सराबसम्पुट में बन्द कर, ७ बार कपड़मिट्टी कर, सुखा, भूधरपुट में २ सेर कण्डे की आँच में फूंक दें। स्वाँगशीतल हो जाने पर दवा निकाल, खरल करके रख लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—२ से ४ रत्ती। दिन भर में ३ बार शहद के साथ अथवा अजमोदा और वायविडङ्ग का समान भाग किया हुआ चूर्ण १ माशे में शहद के साथ दें।

नोट—वमन में यदि प्यास लगे, तो पीपल की छाल को जला, पानी में बुझाकर, वही पानी पिलाना चाहिये।

गुण और उपयोग—इस रसायन का उपयोग सब प्रकार के वमन नष्ट करने के लिये किया जाता है। विशेष कर पैत्तिक विकार से उत्पन्न वमन में जिसमें कण्ठ में जलन हो, खट्टी डकारें आती हों, पेट फूला हुआ रहता हो, खाने के बाद तुरत वमन हो जाना आदि लक्षण होते हों, ऐसी स्थिति में दूषित पित्त को सुधारने के लिये वान्तिहृद् रस का उपयोग किया जाता है।

पैत्तिक परिणामशूल—अर्थात् पित्त के दूषित हो जाने से जो शूल होता है, उसमें होने वाला वमन अथवा अन्नद्रव शूल में होने वाला वमन तथा अम्लपित्त में होने वाला वमन या खाना खाते समय किसी घृणित पदार्थ के देखने, स्पर्श या भोजन के साथ किसी तरह भूल से पेट में चले जाने से मन बिगड़ जाता है जिससे उल्टियाँ होने लग जाती हैं, आदि किसी भी प्रकार का वमन क्यों न हो; सब में इस रसायन से लाभ होता है।

वातविध्वंसन रस

शुद्धपारा, शुद्धगंधक, नागभस्म, वंगभस्म, लौहभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, पीपल, सुहागे की खील, सोंठ, पीपल, काली मिर्च और सोंठ प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, फिर उसमें अन्य ओषधियों का कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण मिला, सबको १ पहर तक घोटें। फिर उसमें शुद्ध बच्छनाग का चूर्ण

४।। तोला मिलाकर त्रिकटु के क्वाथ, त्रिफला के क्वाथ, चीते के क्वाथ, भाँगरे के रस, कूठ के क्वाथ, संभालू के रस, आक के दूध (अभाव में पत्र स्वरस) आमले के रस, अदरक के रस और नीबू के रस की ३-३ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम माँस्यादिक्वाथ में मधु मिला कर या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से वातसम्बन्धी होने वाले रोग, शूल, (पेट दर्द), कफ से होने वाले रोग, ग्रहणी, सन्निपात, मूढ़वात और सूतिका रोग तथा मन्दाग्नि एवं गर्भाशयजन्य विकार आदि रोगों का नाश होता है।

इस रसायन का प्रधान कार्य वातवाहिनी नाड़ियों पर होता है। प्रकुपितवात के कारण जब वातवाहिनी नाड़ियाँ दूषित हो, अनेक प्रकार के आक्षेप सहित वातरोगों को जैसे—पक्षाघात, अपतन्त्रक, अपतानक आदि व्याधियाँ तीव्र वेदना के साथ उत्पन्न कर देती हैं। अथवा और किसी कारणवश वातवाहिनी नाड़ी दूषित होने पर, शरीर के किसी भी भाग में तीव्र (सूई चुभाने के सदृश) वेदना होने लगती हो या शरीर में प्रकुपितवात के लक्षण दिखाई पड़ते हों, तो इन अवस्थाओं में वातविध्वंसन रस के उपयोग से बहुत शीघ्र सफलता मिलती है। क्योंकि यह रसायन प्रकुपितवात तथा वातजन्य किसी भी प्रकार के दर्द को शान्त करने में विचित्र प्रभाव दिखलाता है।

सन्धिवात (जोड़ों में दर्द होना) तथा आम वात में—जब रोगी दर्द के मारे बेचैन हो, सूजन हो, बिच्छू काटने की-सी पीड़ा हो, तो ऐसे भयंकर रोग में संचित आम को दूर करने तथा भयंकर वेदना को नष्ट करने के लिये वातविध्वंसन रस का उपयोग करना अति हितकर है। इस रोग की यह श्रेष्ठ औषध है।

वातज सिर दर्द में—अचानक सिर में दर्द उत्पन्न होता है। यह दर्द बहुत भयंकर होता है, मालूम पड़ता है कि सिर में कोई लोहे की कील ठोक रहा है। रोगी इस दर्द के मारे परेशान हो जाता है।

रात्रि में यह दर्द विशेष बढ़ जाता है। दर्द झटके के साथ होता है। दर्द कुछ सेकेण्ड के लिये कम हो जाता है, परन्तु, फिर उग्ररूप में होने लगता है। सिर के दाहिनी तरफ यह दर्द अधिक होता है। दर्द के मारे रोगी रोने-चिल्लाने लगता है। कहीं चैन नहीं मिलती।

इसी तरह कभी-कभी अचानक पाँजर (पसली), कोष्ठ (कोख) तथा छाती में भी भयंकर वेदना होने लगती है। इसमें भी झटके के साथ दर्द होता है। रोगी को मालूम होता है कि कोई भाला या बर्छी आदि शस्त्र अन्दर घुसेड़ रहा है। इसमें भी रोगी पागल हो जाता तथा रोने लगता है। इन दोनों अवस्थाओं में वात विध्वंसन रस के उपयोग से अपूर्व फायदा होता है।

वात प्रकोप के कारण हृदय में दर्द, आक्षेप (झटके) के साथ हो और यह दर्द छाती तथा पीठ की ओर बढ़ रहा हो, तो वात विध्वंसन रस का सेवन करावें। इसमें भी वात प्रकोप से तीव्र दर्द होता है। रोगी बेचैन हो जाता है। परन्तु यदि दर्द की गति बायीं तरफ हो तथा पसीना भी ज्यादा आवे तो ऐसी हालत में सिर्फ वातविध्वंसन रस न देकर पित्तशामक ओषधियाँ—प्रवालपिष्टी, मुक्तापिष्टी आदि के साथ इसका प्रयोग करें, क्योंकि वात विध्वंसन रस पित्तशामक नहीं है। अतएव इसमें पित्तशमनार्थ प्रवाल तथा मुक्ता जैसी दवाओं का सम्मिश्रण आवश्यक हो जाता है।

सन्निपात में प्रकुपित वातदोष से रोगी अण्ट-सण्ट बोलने लगता है और बेचैन भी रहता है। सिर को एक जगह नहीं रखकर इधर-उधर पटकता रहे, चेहरा, विशेष कर आँखों की पलकें कुछ भारी मालूम पड़े, जीभ काली और काँटेदार हो, आदि लक्षण उत्पन्न होने पर वात दोष को शमन करने के लिये वात विध्वंसन रस का सेवन कराना चाहिये।

बच्चा पैदा होने के बाद प्रसूता स्त्री में वात-प्रधान लक्षण विशेष देखने में आते हैं। इसमें कभी-कभी पेट में दर्द, सिर में दर्द तथा कोष्ठ में दर्द होने लगता है। यह दर्द भी झटके के साथ होता है। प्रसूता के लिये यह दर्द बहुत भयंकर होता है। क्योंकि एक तो

वह वैसे ही कमजोर रहती है, दूसरे इस दर्द से खाना-पीना सब छूट जाता है, जिससे कमजोरी और बढ़ जाती है। ऐसी दशा में वात-दोष को शान्त करने के लिये वात विध्वंसन रस का उपयोग करना अच्छा है। —औ० गु० ध० शा०

दूसरा—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागे की खील, पाषाण भेद, शुद्ध बच्छनाग, कौड़ी भस्म, शुद्ध हरताल और त्रिकुटे का कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण प्रत्येक सम भाग लेकर, प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, फिर उसमें अन्य औषधियाँ डाल कर धतूरे के रस में घोंट कर, १-१ रत्ती की गोली बनावें। —र० रा० सु०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से सन्निपात, वात और कफ विकार तथा सर्दी से होने वाले विकार एवं मन्दाग्नि, श्वास, कास आदि रोगों में लाभ होता है।

वातेभकेसरी रस

शुद्ध संखिया, काली मिर्च, लौंग चूर्ण, शुद्ध बच्छनाग, छुहारे की गुठली, जायफल और करीर की कोंपल प्रत्येक १-१ तोला, अफीम और मिश्री २-२ तोला लें। सबको बड़ के दूध में मर्दन कर, सरसों प्रमाण की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —सि० भै० म०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली, आवश्यकता पड़ने पर तीन बार भी दे सकते हैं।

गुण और उपयोग—न्यूमोनिया में इसे मिश्री के साथ देने से तत्काल लाभ होता है। कफ प्रधान कास, श्वास और सन्निपात में शहद के साथ देते हैं। मूर्च्छा में सफेद कत्था १ रत्ती, अकरकरा १ रत्ती में मिला कर देने से फायदा होता है। रोगी शीघ्र ही होश में आकर बोलने लग जाता है। हिक्का में मूली बीज के साथ, अतिसार में छोटी हर्रें, सौंफ और जीरे के साथ दें। रक्तप्रदर में शहद या घी के साथ प्रयोग करें। सिर दर्द में नकछिकनी के महीन चूर्ण में मिला,

नस्य रूप में प्रयोग करें। पेट फूलने पर अदरक रस के साथ सेवन करें और चूहे की मिंगनी का लेप नाभि पर करें। पारी से आने वाले ज्वर में गुड़ के साथ दें। पैत्तिक ज्वर में चीनी के साथ, नामर्दी में घी, मलाई अथवा दूध-मिश्री के साथ दें। सूजाक में गुलकन्द के साथ, बाजीकरण में जायफल चूर्ण और कस्तूरी के साथ मिला कर देने से अच्छा काम करता है। —र० वि०

बालचन्द्र रस

स्वर्ण भस्म १ तोला, शुद्ध सोना गेरू ३ तोला, मुक्तापिष्टी १२ तोला लें। इन तीनों को एकत्र मिला, अच्छी तरह खरल कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ रत्ती दिन में ३-४ बार मक्खन-मिश्री, सतगिलोय, शर्बत अनार तथा दाड़िमावलेह के साथ दें।

गुण और उपयोग—राजयक्ष्मा रोग में होने वाले उपद्रवों—वमन, जी मिचलाना, अतिसार (पतले दस्त आना), श्वास, जुकाम, सूखी खाँसी और रक्त-पित्त आदि को दूर करता है और कृत्रिमविष तथा दूषित विषजनित दाह आदि का शमन करता है। यह रक्तगत कीटाणु और विष का नाशक है। मस्तक और वातवाहिनियों पर शामक असर पहुँचाता है तथा पचन स्थानगत सेन्द्रिय विष को नष्ट करता है। —र० वि०

बालज्वरांकुश

पारद भस्म (रससिन्दूर), अभ्रक भस्म, वंग भस्म, चाँदी भस्म १-१ तोला, ताम्र भस्म और फौलाद भस्म तथा सोंठ, मिर्च, पीपल, बहेड़ा, कसीस भस्म २-२ तोला लेकर, सब का महीन चूर्ण करके, उसे पान के रस की कई भावनाएँ देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन का उपयोग विशेषत: कफजन्य बीमारियों में किया जाता है। छोटे-छोटे बच्चों को सर्दी (कफ)

के कारण ज्वर-बुखार, पतले दस्त, कभी-कभी दूध पीना भी बन्द कर दे, कफ के मारे बच्चा परेशान रहे, ऐसी हालत में इस रसायन के उपयोग से बहुत फायदा होता है।

कफ वृद्धि के कारण दूध का पचन ठीक तरह से न होना, उल्टी हो जाना, दस्त सफेद-पतला तथा फटा हुआ होना, ज्वर रहना, खाँसी, श्वास फूलना आदि कारणों की उपस्थिति होने पर भी इस रसायन के उपयोग से लाभ होता है।

बाल-रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक ४-४ तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म २ तोला लेकर, तीनों को एकत्र कर, खरल में घोंट, महीन कज्जली बना लें। फिर उसे लोहे के खरल में काले भाँगरे और सफेद भाँगरे तथा संभालू के पत्तों का रस एवं मकोय, ग्रीष्मसुन्दर, हुलहुल, पुनर्नवा, मण्डूकपर्णी और सफेद अपराजिता के स्वरस की १-१ भावना देकर उसमें २ तोला काली मिर्च का चूर्ण मिला कर १ प्रहर तक पत्थर के खरल में घोंट कर सरसों के बराबर गोलियाँ बना कर धूप में सुखा लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम माँ के दूध अथवा मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन बच्चों के भयंकर सन्निपात ज्वर, खाँसी आदि रोगों को नष्ट करता है।

छोटे-छोटे बच्चों को दूध के दोष से अथवा सर्दी (कफ) बढ़ जाने से खाँसी हो जाती है, ज्वर बना रहना, खाँसी में नवीन कफ निकलना, पसली चलना, आँखें लाल, साँस लेने में कठिनता, अधिकतर रोते ही रहना, कभी-कभी दूध भी पीना बन्द कर दे आदि लक्षण होने पर बाल रस का उपयोग किया जाता है। इससे बढ़ा हुआ कफ-दोष शान्त हो जाता तथा कफ से होने वाले उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं।

कभी-कभी बच्चों को कफ-वृद्धि के कारण ज्वर हो कर धीरे-धीरे न्यूमोनियाँ रूप में परिणत हो जाता है। बच्चों को न्यूमोनिया होते देर नहीं लगती। परन्तु छुटने में बड़ी दिक्कत होती है। इस

रोग में बच्चा बहुत परेशान हो जाता है। बच्चों के लिये यह बहुत दुःसाध्य बीमारी है। इसमें भी बालरस के प्रयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

बालपञ्चभद्र रस

यशद भस्म ६ माशा, रससिन्दूर १ तोला, गोरोचन १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला और गोदन्ती भस्म ८ तोला लें। सब को एकत्र कर खरल में घोंट कर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—२ से ४ रत्ती शहद में मिलाकर चटावें और ऊपर से गाय का दूध पिला दें।

गुण और उपयोग—छोटे-छोटे बच्चों को बराबर ज्वर रहने के कारण शरीर में रक्त की कमी हो जाने से शरीर दुर्बल और पाण्डु वर्ण का हो जाता है, जिससे शरीर पीला दीखता है। बच्चों की हड्डियाँ उभर आती हैं। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, अधिक काल रोता ही रहता, सिर के बाल भी उड़ जाते हैं, श्वास लेने में भी कष्ट होता है। दस्त फटे हुए पीले तथा मूत्र भी पीला होता है। ऐसी स्थिति में बाल पंचभद्र रस के उपयोग से फायदा होता है।

सूखा रोग—आजकल इस रोग का प्रचार बच्चों में बहुत जोरों से है। बच्चे इस विकराल रोग के पंजे में असमय में ही पड़ कर अपनी जीवन लीला सदा के लिये समाप्त कर देते हैं। इस दुष्ट रोग ने न जाने कितने भारतीय होनहार बच्चों को विलखती हुई माता की गोद से बलात् खींच कर उनकी गोद खाली कर दिया है। न जाने कितने घरों के चिराग गुल कर उस घर में अन्धकार का साम्राज्य उपस्थित कर दिया है। न जाने कितनी माता-पिताओं की भावी आशा को धूल में मिला, उनलोगों को धूल फँका-फँका कर इस संसार में भटकाया है। ,ऐसे कठिन रोग से अपनी सन्तानों की रक्षा करना प्रत्येक के लिये आवश्यक है।

इस रोग का प्रारम्भ कफ प्रकुपित हो कर ज्वर के साथ होता है। इसमें ज्वर की गति बराबर तेज ही बनी रहती है। कफ भी

बढ़ता रहता है। बच्चा सूखता जाता है। अस्थियों में चूने (कैल्सियम) की कमी के कारण हड्डियाँ कमजोर हो जातीं, विशेषत: कमर से नीचे की हड्डियाँ तो बिल्कुल नरम हो जाती हैं जिससे बच्चा खड़ा होकर चल-फिर भी नहीं सकता। आँखें नीचे धँस जातीं, गालों में गड्ढे पड़ जाते, कान की पाली (लौ) मोटी हो जातीं, इसे दवाने से दर्द नहीं होता, चूतड़ की खाल लटकने लग जाती है। पतले दस्त होने लगते, शरीर कान्तिहीन तथा एक ढाँचा-सा दिखाई पड़ने लगता है। ऐसी भयंकर स्थिति में—इस रसायन के उपयोग से बहुत फायदा होता है। क्योंकि इस रोग में कैल्सियम की पूर्ति करना आवश्यक रहता है, जो इस दवा से अच्छी तरह हो जाता है। यह दवा कफ और ज्वर को भी दूर कर शरीर में नवीन रक्त उत्पन्न करके, रोगी को स्वस्थ कर देती है।

बालार्क रस

शुद्ध खपरिया या यशदभस्म, प्रवालभस्म या पिष्टी, मृगश्रृङ्ग भस्म, शुद्ध हिंगुल, गोरोचन, कचूर और केशर प्रत्येक सम भाग लेकर ब्राह्मी स्वरस में १ दिन मर्दन करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर शीशी में भर लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली दिन भर में २-३ बार शहद या जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन बालकों के वात-कफ के विकार अतिसार, कृमिविकार, ज्वर, वमन, और आक्षेपक में अत्यन्त लाभप्रद है।

विद्याधराभ्र रस

शुद्ध पारद ११ माशे २ रत्ती, शुद्ध गन्धक १ तोला, लौह या मण्डूर भस्म १६ तोला, अभ्रक भस्म ४ तोला, बायबिडङ्ग, नागरमोथा, हर्रे, ब्रहेड़ा, आँवला, गिलोय, दन्ती मूल, निसोथ, चित्रक, सोंठ, मिर्च और पीपल प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की

कज्जली बना, फिर उसमें अन्य भस्में तथा कपड़छान किया हुआ काष्ठौ-षधियों का चूर्ण मिला, खरल कर के सुरक्षित रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—२ से ३ रत्ती, दिन में दो बार शहद के साथ अथवा गोदुग्ध या शीतल जल के साथ देना चाहिये।

गुण और उपयोग—यह रसायन पेट सम्बन्धी सभी तरह के रोगों के लिये बहुत गुणकारी है। इसके सेवन से परिणाम शूल (भोजन पचने के समय पेट में दर्द होना), पेट में दर्द होना, बहुत दिनों की मन्दाग्नि, अम्लपित्त, संग्रहणी आदि रोग आराम होते हैं। जीर्णज्वर, रक्तपित्त और राजयक्ष्मा में भी इसके सेवन से लाभ होता है।

परिणाम शूल में—वात कुपित हो कर कफ और पित्त को मन्द करके इस रोग को उत्पन्न करता है। इसमें—पेट फूलना तथा पेट में गुड़गुड़ आवाज होना, मलावरोध होना, शरीर में कुछ कम्प होना अथवा भोजन के बाद प्यास ज्यादे लगना, पेट में जलन होना, पसीना निकलना या वमन होना, पेट फूल जाना, थोड़ी-थोड़ी वेदना होना आदि लक्षण होने पर इस रसायन के प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है। क्योंकि यह वातशामक, अग्निदीपक एवं पाचक है। इसी तरह अम्लपित्त और संग्रहणी आदि रोगों में भी यह पाचक और दीपक तथा वातशामक गुण प्रधान होने के कारण लाभ करता है। मन्दाग्नि होने पर पाचक पित्त को उत्तेजित कर मन्दाग्नि-दोष दूर करता है।

त्रिश्वतापहरण रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, शुद्ध कुचला, शुद्ध जमालगोटा, हर्रे, पीपल, कुटकी, निशोथ प्रत्येक सम भाग लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें फिर उसमें अन्य औषधियों का महीन चूर्ण मिला, १ दिन धतूर के रस में घोंट कर, २-२ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखा कर रख लें। —वै० जी०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली दिन में २ बार, मधु या अदरक स्वरस या मिश्री के शर्बत के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन सब प्रकार के ज्वर जैसे—वात-पित्त और कफ जनित ज्वर, धातु—(रस-रक्तादि) गत ज्वर, जाड़ा देकर आने वाला विषमज्वर—(मलेरिया ज्वर), अधिक दिन तक ठहरने वाले ज्वर और यकृत्-प्लीहा-वृद्धि के कारण आनेवाले ज्वरों को दूर करता है।

इस रसायन का विशेष उपयोग मलेरिया से होनेवाले ज्वरों में होता है। लोगों का विश्वास है कि मलेरिया के लिये कुनैन से बढ़ कर दूसरी कोई भी दवा नहीं है, परन्तु कुनैन के अधिक दिन तक लगातार सेवन करने से कई तरह के उपद्रव हो जाते हैं—जैसे—शरीर पीला हो जाना, कान से कम सुनना, रोशनी (आँख की) कम हो जाना, भूख नहीं लगना, कमजोरी अधिक, रक्त दूषित होकर फोड़ा-फुन्सी आदि हो जाना, किन्तु इस दवा को आप कितने ही दिनों तक क्यों न सेवन करें कोई हानि नहीं होगी। बल्कि भूख बढ़ेगी और पाचन शक्ति में वृद्धि होगी। ज्वर तो सदा के लिये चला जायगा। यह रसायन ज्वरघ्न होते हुए दीपक-पाचक भी है।

विसूचो विध्वंसन रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, सुहागे की खील, सोंठ, स्वर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध अफीम प्रत्येक १-१ तोला और शुद्ध सिंगरफ सब दवाओं के बराबर (७ तोला) लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, उसमें सिंगरफ तथा अन्य दवा मिला कर कुछ देर तक घोंटे। बाद में जम्बीरी नीबू का रस डाल कर पत्थर की खरल में ६ घण्टा तक घोट, सरसों बराबर गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन हैजा के लिये बहुत प्रसिद्ध है। विसूचिका की उस अवस्था में जब कि रोगी के हाथ-पैर ठंढे हो गये हों, नाड़ी लुप्त हो गयी हो, ऐसी स्थिति में इसका उपयोग किया जाता है।

वेताल रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, काली मिर्च, शुद्ध हरताल और स्वर्ण माक्षिक भस्म समान भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियों को मिलाकर सब को अच्छी तरह खरल करें। बाद में अदरक के रस में घोट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना कर रख लें। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, अदरक रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन का विषम ज्वर और घोर सन्निपात ज्वर में प्रयोग किया जाता है। रोगी की मृतप्राय अवस्था में भी इसके प्रयोग से लाभ होता है।

वेदनान्तक रस

शुद्ध अफीम ३ माशे, खुरासानी अजवायन का महीन चूर्ण ६ माशे और रससिन्दूर ६ माशे लें। प्रथम रससिन्दूर को खूब महीन पीस कर उसमें अजवायन का कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिला, अफीम को पानी में घोल कर मिला दें, फिर भाँग की पत्तियों का रस मिला कर घोटें, गाढ़ा होने पर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —र० वि०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली प्रातः सायम्, गर्म जल अथवा दूध या सोंठ अथवा अदरक रस के साथ दें।

गुण और उपयोग—शरीर के किसी भी भाग में कितना भी दर्द क्यों न हो रहा हो, इसके सेवन से नष्ट हो जाता है। इस रसायन का प्रभाव विशेषतया वातवाहिनी नाड़ी पर होता है। अतएव वातजन्य विकारों में इसका उपयोग अधिक किया जाता है। वात-प्रकोप के कारण, वातवाहिनी नाड़ियाँ विकृत हो जाती है, जिससे रक्त का संचार ठीक से नहीं होता, फिर वहाँ की नसों में खिंचाव पैदा होने से दर्द प्रारम्भ हो जाता है। यह दर्द बहुत भयंकर तथा सर्वाङ्गव्यापी होता है। इसमें रोगी दर्द के मारे परेशान

हो जाता, खून जम जाने के कारण दर्द में कमी नहीं होती, बल्कि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, दर्द का वेग बढ़ता ही जाता है। अथवा कभी हाथ, पाँव, पीठ आदि इन स्थानों में ही वायु प्रकोप के कारण दर्द शुरू हो जाता है। ऐसी स्थिति में यह रसायन जादू-सा असर दिखाता है। पेट दर्द, शिर दर्द, कमर दर्द आदि में भी यह बहुत शीघ्र लाभ करता है।

यह रसायन अफीम और रससिन्दूर के संयोग से बनने के कारण स्तम्भक और वीर्य पुष्टकारक भी है। नियमपूर्वक दूध-मिश्री मिला कुछ रोज तक सेवन करने से, पतला शुक्र पुष्ट हो जाता है और शरीर बलवान तथा सुन्दर बन जाता है। निद्रा लाने के लिये यह परमोत्तम रसायन है। वातिक उन्माद रोग में भी इसका उपयोग थोड़ी मात्रा में करते रहने से लाभ होता है।

बोलवद्ध रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सत्व गिलोय १-१ तोला लेकर कज्जली बनावें। फिर उसमें ३ तोला बोल (हीरादोखी—खून-खराबा) का कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण मिला कर, सब को एक दिन सेमल की छाल के रस या क्वाथ में घोट कर रख लें। —वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—२-३ रत्ती सुबह-शाम मिश्री मिला कर शहद के साथ देने से अम्लपित्त रोग दूर होता है। प्रमेह में इसे पीपल चूर्ण और शहद से दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन अम्लपित्त, रक्तप्रदर, रक्त-पित्त, खूनी बवासीर, रक्तप्रमेह, वातरक्त, विद्रधि, भगन्दर तथा पित्तजनित विकारों में फायदेमन्द है। नाक-मुँह-गुदा और योनि-मार्ग आदि किसी भी भाग से गिरता हुआ रक्त इसके प्रयोग से बन्द हो जाता है।

रक्त प्रदर में नियत समय से अत्यधिक दिन तक रज:स्राव होने पर स्त्री दुर्बल और कमजोर हो जाती हैं। इसका असर गर्भाशय पर भी पड़ता है, जिससे गर्भाशय कमजोर हो, गर्भ धारण करने

में असमर्थ हो जाता है। मन्दाग्नि हो जाती है, भूख नहीं लगती तथा हाथ-पाँव एवं नेत्रों (आँखों) में जलन होने लगती है। ऐसी स्थिति में बोलबद्ध रस के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है। क्योंकि यह दवा रक्त को बन्द करने वाली तथा ठंढी है। गर्भाशय को भी बलवान कर गर्भ-धारण शक्ति प्रदान करती है।

कभी-कभी खाने-पीने में गड़बड़ी हो जाने से पाचक पित्त कमजोर हो जाता है, फलस्वरूप अन्नादि का पाचन ठीक से नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में किसी-किसी स्त्री को वात-प्रकोप के कारण प्रदर में वृद्धि हो, सर्वाङ्ग में दर्द होना, अतिसार (पतले दस्त आना), पेट फूल जाना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे समय में बोलबद्ध रस के सेवन से अच्छा फायदा होता है। साथ में भास्कर चूर्ण खाना-खाने के बाद गर्म जल के साथ देते रहने से प्रकुपित वायु का शमन हो कर, पचन क्रिया ठीक से होने लगती है।

कफ प्रकोप के कारण कास और श्वास की गति में वृद्धि हो गयी हो और साथ ही गर्भाशय की कमजोरी या शिथिलता की वजह से श्वेत प्रदर की भी शिकायत हो तो ऐसी हालत में बोलबद्ध रस के उपयोग से संचित कफ दूर हो जाता तथा श्वेत प्रदर की भी शिकायत नष्ट हो, गर्भाशय बलवान हो जाता है। इस रसायन का प्रभाव मूत्रेन्द्रिय, पचनेन्द्रिय और रस-रक्तादि धातुओं के विकारों पर विशेष होता है।

वंगेश्वर रस (वृहत्)

वंग भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, चाँदी भस्म, शुद्ध कपूर, अभ्रक भस्म १-१ तोला, स्वर्ण भस्म और मोती भस्म, ३-३ माशे लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियाँ मिलाकर सब को भाँगरे के रस में खरल कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम मधु के साथ दें। ऊपर से गाय का दूध या बकरी का दूध पिला दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन वंग भस्म, स्वर्ण भस्म, चाँदी भस्म आदि के योग से तैयार होता है। इसके सेवन से नये-पुराने, सब प्रकार के प्रमेह अच्छे होते हैं। मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र, मूत्रमेह, मूत्रातिसार, वीर्य की क्षीणता, टट्टी-पेशाब के रास्ते से वीर्य जाना, स्वप्नदोष और शुक्रक्षय से उत्पन्न मन्दाग्नि, आमदोष, अरुचि, हलीमक, रक्तपित्त, ग्रहणीदोष, मूत्र और वीर्यदोष आदि सभी विकार नष्ट होते हैं। यह रसायन बाजीकरण, आयु, बल, वीर्य, कान्तिवर्द्धक और दुर्बलता नाशक है।

वंगेश्वर रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्णभस्म, वंगभस्म, मोतीभस्म और स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक समान भाग लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य औषधियाँ मिलाकर सबको घृतकुमारी के रस में घोटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम शहद से दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन रक्तमूत्र में अत्यन्त उपयोगी है। इसके सेवन से उदकमेह, मूत्रातिसार, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, क्षय, कास, कुष्ठ, पाण्डु, हलीमक, शूल, श्वास, ज्वर, हिचकी, अग्निमान्द्य और अरुचि का नाश होता है तथा अग्नि, आयु और कान्ति की वृद्धि होती है।

मकरध्वज रसायन

स्वर्णभस्म या वर्क २ तोला, वंगभस्म, कान्तलौहभस्म, मोती भस्म, जावित्री, जायफल, चाँदीभस्म, काँस्यभस्म, रससिन्दूर, प्रवालभस्म, कस्तूरी, शुद्ध कपूर और अभ्रकभस्म १-१ तोला तथा स्वर्ण-सिन्दूर ४ तोला लेकर, एकत्र कर, खरलकर रख लें।

—भै० र०

मात्रा और अनुपान—२-२ रत्ती सुबह-शाम। मधु और अदरक रस के साथ अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन पौष्टिक, वीर्यवर्द्धक, उत्तेजक तथा शरीर में स्फूर्ति बढ़ानेवाला और बाजीकरण है। शुक्र सम्बन्धी सभी प्रकार के रोगों में सेवन करने से विशेष लाभ होता है। शुक्र-दोष या वीर्यवाहिनी नाड़ियों की कमजोरी से उत्पन्न नामर्दी के रोग इसके सेवन से बहुत जल्दी अच्छे हो जाते हैं। इसका प्रभाव वीर्य-वाहिनी नाड़ी तथा वातवाहिनी नाड़ियों पर विशेष होता है। किसी रोग से छुटकारा पाने के बाद शारीरिक दोष (वात, पित्त और कफ) तथा दूष्य (रस-रक्तादि) की कमजोरी के कारण शरीर कमजोर हो गया हो, शारीरिक अवयव कमजोर हो कर अपने कार्य्य करने में असमर्थ हो गये हों तो इस रसायन का सेवन अवश्य करना चाहिये। कुछ दिन तक गो-दुग्ध या मक्खन अथवा मलाई के साथ सेवन करने से यह शरीर को सुन्दर, कान्तिमान और हृष्ट-पुष्ट बना देता है। कूपीपक्व मकरध्वज से कुछ ही कम गुण इसमें है।

मन्मथाभ्र रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक ४-४ तोला, अभ्रकभस्म २ तोला, शुद्ध कपूर १ तोला, वंगभस्म १ तोला, ताम्रभस्म ६ माशे, लौहभस्म १ तोला, विधारा की जड़, जीरा, विदारीकन्द, शतावर, तालमखाना, बलामूल, कौंच के बीज, अतीस, जावित्री, जायफल, लौंग, भाँग के बीज, राल सफेद और अजवायन प्रत्येक ३-३ माशे लेकर, जल से घोट कर, २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली; गाढ़ा करके औटाया हुआ गो-दुग्ध के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से नपुंसकता, नामर्दी, शीघ्रपतन आदि नष्ट होकर काम-शक्ति की वृद्धि होती है। यह रसायन सब के सेवन करने योग्य है, क्योंकि इसमें अफीम जैसी मादक द्रव्य नहीं है। विलासी पुरुषों के लिये जो हमेशा स्तम्भक (बाजीकरण) सम्बन्धी दवाओं की तलाश में घूमते रहते हैं। यह बहुत काम की चीज है। यह बलवर्द्धक और रसायन भी है।

वीर्यवाहिनी नाड़ियों की कमजोरी (शिथिलता) से जिनका वीर्य समागम-काल में बहुत शीघ्र गिर जाता हो, उन्हें इस रसायन का सेवन अवश्य करना चाहिये। यह शुक्र विकार (वीर्य का पतलापन) दूर कर वीर्य को गाढ़ा कर देता है तथा बीजवाहिनी नाड़ियों में खून का संचार कर उसमें दृढ़ता उत्पन्न करता है।

विलासी पुरुष अपने क्षणिक आनन्द के लिये कभी-कभी बहुत त्रासदायक काम कर बैठते हैं, जिससे उनकी जिन्दगी बर्बाद हो जाने की सम्भावना रहती है। ये लोग आवेश में आकर विषाक्त तिला (लेप) या ऐसी ही कोई दवा आदि खाकर वीर्य्य-स्तम्भन (बाजीकरण) करने की व्यर्थ चेष्टा कर बैठते हैं। कभी-कभी तो ऐसा देखा गया है कि तिला लगाने से जननेन्द्रिय (लिंग) में फफोले (छाले) पड़ जाने से रोगी महीनों तकलीफ में पड़े रहते हैं। किसी-किसी को ऐसी दवा खाने से रक्त दूषित हो, शरीर में फोड़े निकल जाते हैं। ये फोड़े शीघ्र अच्छे होनेवाले नहीं होते। ऐसे लोगों के लिये यह रसायन नियम-पूर्वक रात को सोने से एक घण्टा पूर्व गर्म दूध के साथ खाकर, पान खा लेने के बाद स्त्रीप्रसंग करने से अपूर्व आनन्द मालूम होता है और किसी प्रकार का नुकसान भी नहीं होता।

शरीर को पुष्ट बनाने तथा शक्ति बढ़ाने के लिये भी इस रसायन का प्रयोग किया जाता है। इसके सेवन से शुक्र बहुत जल्दी बनता तथा शरीर में रक्त की वृद्धि हो, शरीर कान्तिमान और पुष्ट हो जाता है। —औ० गु० ध० शा०

मधुमालिनी वसन्त

खर्परभस्म (अभाव में यशदभस्म) ८ तोला, सफेद मिर्च ४ तोला, शुद्ध हिंगुल ८ तोला लेकर, सबको एकत्र करके २ तोले मक्खन के साथ घोटें। जब एक जीव हो जाय, तब १०० जम्बीरी नीबुओं का रस निकाल, छानकर, इसमें ५-६ दिन तक लगातार घोटें। मक्खन की चिकनाई दूर हो जाने पर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। —आ० क० मि०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली मधु (शहद) सफेद जीरे का चूर्ण या दुग्ध से दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन शीतवीर्य और कफ तथा पित्त प्रकोप को शमन करने वाला है। इसके सेवन से पुराने विषमज्वर, अधिक दिन से आने वाला पुराना ज्वर तथा रस-रक्तादि धातुगत ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

यदि मलेरिया ज्वर को दूर करने के लिये ज्यादे कुनैन खा ली हो, जिससे शरीर पीला व दुर्बल हो गया हो, पेट, आँख, शिर आदि में जलन होती हो, प्यास ज्यादे लगती हो, पसीना अधिक आता हो, रात में कुछ हरारत भी हो जाती हो, भूख कम लगती हो, शरीर में खून की कमी आदि उपद्रव होने पर इस रसायन के प्रयोग से बहुत लाभ होता है। यह शीतवीर्य तथा पित्त शामक होने के साथ-साथ ज्वरघ्न भी है। प्रमेह, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, अर्श, श्वास, पुराना अतिसार तथा राजयक्ष्मा के विषैले कीटाणुनाशक एवं बल-वीर्यवर्द्धक भी है। इसके अतिरिक्त गर्भिणी और बच्चों के सूखा रोगों के लिये भी यह बहुत श्रेष्ठ दवा है।

जीर्णज्वर में—अधिक दिन तक लगातार ज्वर रहने से दोष (वात-पित्त, कफ), धातु (रस-रक्तादि) में मिलकर उसे निर्बल करते हुए ज्वर उत्पन्न कर देते हैं। ऐसी दशा में रोगी निर्बल और कान्तिहीन हो जाता, भूख नहीं लगती, मन्दाग्नि हो जाती तथा धातु कमजोर हो जाते हैं। इन लक्षणों के उपस्थित होने पर मधुमालिनी वसन्त के प्रयोग से फायदा होता है। इसका प्रधान कार्य रसवाहिनी नाड़ियों तथा लसीका ग्रन्थियों पर होता है। रक्तकण की वृद्धि में यदि कुछ वाधा देखने में आवे तो इस रसायन में मण्डूर भस्म मिलाकर देना अच्छा है। साथ-साथ अमृतारिष्ट या लौहासव भी देते रहें।

छोटे-छोटे बच्चों की शारीरिक शक्ति बढ़ाने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। कफ वृद्धि के कारण मन्दाग्नि हो जाना, रुचिपूर्वक दूध नहीं पीना, मन्द-मन्द ज्वर भी बना रहना, धीरे-धीरे कमजोरी बढ़ते जाना, शरीर में खून की कमी, कमजोरी के कारण

अथवा हड्डियों की कमजोरी की वजह से चलने में असमर्थ होना, आदि लक्षणों में —मधुमालिनी वसन्त का प्रयोग करने से स्थायी लाभ होता है। क्योंकि यह कफ और ज्वरादि को दूर करता है। किन्तु; सबसे बड़ा काम, यह करता है कि कैल्सियम की वृद्धि कर, हड्डियों को मजबूत बनाता तथा स्नायुओं की दुर्बलता को नष्ट कर देता है जिससे बच्चे पुष्ट हो, चलने-फिरने लग जाते हैं।

वात और कफ की विकृति से जठराग्नि मन्द हो जाती है। फलस्वरूप अन्नादिक का अच्छी तरह से पचन नहीं हो पाता। फिर वायु का प्रकोप विशेष हो जाने से पतले दस्त आने लग जाते हैं। इसमें थोड़ा ज्वर होना, शरीर में दर्द, कुछ रोज के लिये दस्त कम भी हो जाते परन्तु; फिर वही पुरानी रफ्तार शुरू हो जाती है। दस्त थोड़ी मात्रा में होना, कमजोरी, जी मिचलाना, थोड़ा भी भोजन करने पर नहीं पचना, खट्टी डकारें आना आदि लक्षण होने पर इस रसायन का प्रयोग करना चाहिये। इससे प्रकुपित वात और कफ शान्त हो जाते तथा जठराग्नि की वृद्धि हो कर पचनक्रिया भी ठीक-ठीक होने लगती है। फिर धीरे-धीरे पतले दस्त भी आने बन्द हो जाते हैं।

रस-रक्तादिगत ज्वरों में भी इसका उपयोग किया जाता है। आयुर्वेद का ऐसा सिद्धान्त है कि ज्वर के जैसे दोषों (वात, पित्त, कफ) में मिलकर वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर आदि लक्षणयुक्त प्रकट होते हैं, वैसे ही दूष्यों (रस-रक्तादि) में भी मिलकर रसगत ज्वर, रक्तगत ज्वर आदि लक्षणों के साथ उत्पन्न होते हैं। इन ज्वरों में धातुगत ज्वर (जिसे आयुर्वेद में भी असाध्य कहा गया है) को छोड़ और सभी अवस्था के ज्वरों में इसका प्रयोग करने से अभूतपूर्व सफलता मिलती है।

यह रसायन गर्भिणी के ज्वर को दूर करता है तथा गर्भाशय एवं गर्भस्थ शिशु की भी रक्षा करता है। अधिक रजःस्राव या प्रदर आदि रोगों के कारण गर्भाशय कमजोर हो जाता; जिससे वह अपना काम अच्छी तरह नहीं कर पाता। परिणाम यह होता है कि प्रथम तो गर्भाशय में बीज नहीं रुकता है। यदि कदाचित् संयोग

से ठहर गया तो मुश्किल से दो-तीन महीने तक किसी तरह रुका रहता, बाद में गर्भ नष्ट हो जाता है। किन्हीं-किन्हीं स्त्रियों को तो इसकी आदत-सी पड़ जाती है। यदि गर्भ जादे दिन तक रहा तो गर्भिणी को बुखार आने लगता है। ऐसी अवस्था होते हुए भी यदि बच्चा पैदा हुआ तो कमजोर, दुर्बल, अल्पायु और रक्तहीन पैदा होता है। इन उपद्रवों से रक्षा करने के लिये मधुमालिनी वसन्त का उपयोग अवश्य करना चाहिये। क्योंकि इस रसायन के सेवन करने से गर्भाशय के सब दोष मिट जाते हैं तथा गर्भिणी का ज्वर दूर हो जाता है और बच्चा हृष्ट-पुष्ट हो जाता है।

—औ० गु० ध० शा०

महागंधक

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दोनों समान भाग लेकर कज्जली बना, उसे मन्दाग्नि पर पिघला, पर्पटी बना लें, फिर उसमें जायफल जावित्री, लौंग, नीम के पत्ते, सम्भालू के पत्ते और छोटी इलायची के बीज का चूर्ण १-१ तोला मिला कर सब को पानी की सहायता से घोटकर पिण्डाकार (लुगदी) बना लें, फिर उसे दो सीपियों में बन्द कर उस पर केले का पत्ता लपेट कर डोरा से बाँध, ऊपर मिट्टी का एक अंगुल मोटा लेप कर दें। फिर उसे लघुपुट में पकावें, जब ऊपरवाली मिट्टी लाल हो जाय तो उसे अग्नि से बाहर निकाल लें और ठण्डा होने पर उसके भीतर की औषध को निकाल, पीस कर रख लें।

—भै० र०

मात्रा और अनुपान—२ से ४ रत्ती सुबह-शाम। भुना हुआ जीरा और मधु के साथ या जल अथवा मीठे दाड़िम का रस और चावल के पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन स्त्री, पुरुष और बच्चों के लिये बहुत प्रभावशाली है। इसके सेवन से ज्वर नष्ट होता, अग्नि प्रदीप्त होती है और बल-वर्ण की वृद्धि होती है। यह रस दुःसाध्य संग्रहणी, प्रवाहिका, प्रसूत रोग, श्वास, अतिसार, बच्चों के

हरे-पीले और पतले दस्त, ज्वर आदि रोगों को नष्ट करने के लिये रामबाण है। स्त्रियों के प्रदर रोग में मौलश्री की छाल का चूर्ण ६ माशे या इसी के क्वाथ के साथ देने से यह निश्चय लाभ करता है।

संग्रहणी की प्रकोपावस्था में इस रसायन का प्रयोग किया जाता है। आँतों में शब्द होना, शरीर में दर्द, दुर्बलता, दस्त पतला, चिकना तथा कुछ ठण्डा होना, दस्त होते समय कमर में दर्द अथवा बीच में दो-चार दिन कम होकर पुनः आँव के साथ दर्द सहित दस्त होना आदि लक्षणयुक्त संग्रहणी रोग में महागंधक रस के प्रयोग से लाभ होता है। इस रसायन का असर आँतों पर ज्यादा पड़ता है तथा यह पाचक और अग्नि प्रदीपक होने से बहुत शीघ्र फायदा करता है। अतिसार और प्रवाहिका रोग में भी आँतों को सबल बनाने तथा पाचक पित्त को उत्तेजित करने के लिये इस रसायन का उपयोग किया जाता है।

प्रसूत रोग की जीर्णावस्था में—वायु प्रकुपित हो कर जठराग्नि को मन्द कर देता है, जिससे भूख कम लगती तथा अन्नादिक पचने में गड़बड़ी होने लगती—फिर पेट फूलना, पेट में गुड़गुड़ आवाज होना, कफ की वृद्धि होना, ज्वर और कास होना, शरीर दुर्बल तथा कान्तिहीन हो जाना, रक्त की कमी से देह पाण्डुवर्ण का हो जाना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में महागन्धक रसायन के प्रयोग से अपूर्व सफलता मिलती है। यह प्रकुपित वात को शान्त कर आँतों को सबल बना, अग्नि प्रदीप्त करता है।

महामृत्युञ्जय रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध मैनसिल, तुत्थभस्म, ताम्रभस्म, सेंधा नमक का चूर्ण, कौड़ीभस्म, बावची चूर्ण, काला नमक, शंख भस्म, चित्रकमूल, हींग, कुटकी, जवाखार, सज्जीखार, कायफल, रसौत, जयन्ती और सुहागे की खील—प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर शेष

काष्ठौषधियों का कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण और भस्में मिलाकर अदरक रस और गिलोय के रस में घोटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना कर रख लें। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, मधु और अदरक-रस या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन का उपयोग नये-पुराने ग्रन्थिक सन्निपात ज्वर तथा विषम ज्वर मे किया जाता है। यह हृदय को उतेजना देना, ग्रन्थियों एवं रक्त मे रहे कीटाणुओं को नष्ट कर प्लेग को दूर करना, आम और कफ का शोषण कर मल और मूत्रावरोध को नष्ट करता है।

मृत्युञ्जय रस

शुद्ध विष, काली मिर्चचूर्ण, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध गंधक, शुद्ध सुहागा, प्रत्येक १-१ तोला, शुद्ध शुद्ध हिंगुल (सिगरफ) २ तोला लेकर सबको खरल मे डाल अदरक स्वरस से १ दिन घोटकर, मूँग के दाने के बराबर गोलियाँ बना, छाया मे सुखाकर रख ले। —र० सा० स०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, मधु के साथ इसे देने से सब प्रकार के ज्वर दूर हो जाते है। वातज्वर मे दही के पानी से दे, सन्निपातज्वर मे अदरक रस के साथ दें। अजीर्ण-जनित ज्वर मे —जम्बीरी नीबू के रस से दें, विषमज्वर नष्ट होने के लिये जीरे का चूर्ण और शहद के साथ मृत्युजयरस देना अच्छा है।

गुण और उपयोग—ज्वर का वेग बढा हुआ हो, और रोगी भी बलवान हो तब इसकी पूरी मात्रा देनी चाहिये। इसकी पूरी मात्रा ४ गोली तक है। स्त्री, बालक, वृद्ध और दुर्बलों को इसकी आधी मात्रा अर्थात् सिर्फ २ गोली ही दें। दुर्बल और कमजोर बच्चों को चौथाई मात्रा में दे। यह नवीन ज्वर का वेग एक पहर के अन्दर ही कम कर देता है। मध्यम ज्वर तथा जीर्णज्वर को दो-तीन दिन में नाश करता है। सन्निपात और अजीर्ण ज्वर को एक सप्ताह में दूर करता है।

वात-पित्त ज्वर में—ज्वर की गति तीव्र हो, देह में जलन ज्यादा हो, प्यास ज्यादा हो, मूर्च्छा, चित्त विभ्रम, शिर दर्द, कण्ठ और मुँह का सूखना, वमन, रोमांच होना, अरुचि, आँखों के सामने अन्धेरा छा जाना, जोड़ों में दर्द होना, आदि लक्षण उपस्थित हों और रोगी बलवान हो तथा कफ की वृद्धि भी नहीं हो तब मिश्री या नारियल-जल के साथ मृत्युंजय रस देने से बहुत शीघ्र फायदा होता है।

सन्निपात ज्वर की प्रथमावस्था में तथा बारी-बारी से आनेवाले ज्वरों में—जब ज्वर का ताप (टेम्प्रेचर) बढ़ा हुआ हो, सिर भारी हो या सिर में दर्द हो, तो दिन भर में तीन बार इस रसायन का प्रयोग करना चाहिये। यदि कोष्ठबद्धता हो तो अनुपान में केले के कोसे का रस अथवा अदरक रस और मधु से दें; पान के रस और मधु के साथ भी दे सकते हैं। यदि सन्निपात में श्वास और हिक्का की तेजी ज्यादा हो, तो इसका प्रयोग नहीं कराना चाहिये। बच्चे, गर्भिणी और राजयक्ष्मा से आक्रान्त रोगी को इस रसायन का सेवन नहीं कराना चाहिये।

मध्यम ज्वर में या जब ज्वर उतर नहीं रहा हो, भूख खूब नहीं लगती हो, शरीर भारी मालूम पड़े, तो ऐसी स्थिति में पिप्पली चूर्ण और मधु के साथ मृत्युंजय रस का प्रयोग करने से शीघ्र लाभ होता है। जीर्ण ज्वर और विषम ज्वरों में यदि टेम्प्रेचर ज्यादा न हो, पाचनक्रिया ठीक हो, शरीर में कहीं सूजन न हो, तब इसका प्रयोग पिप्पली चूर्ण और मधु के साथ करना चाहिये।

न्यूमोनिया में—रोग प्रारम्भ होने के पहले या दूसरे दिन जब कि ज्वर बहुत तीव्र हो, रोगी का मुखमण्डल लाल दिखायी देता हो और भयंकर कष्टदायक कास (खाँसी) के साथ श्वास की गति अधिक हो तो इस रसायन के प्रयोग से वेग कुछ कम हो जाता है।

हृदयावरण में शोथ के कारण अथवा अन्य किसी शारीरिक भीतरी अङ्गों में शोथ से होनेवाले ज्वरों की प्रथमावस्था में इस रस के प्रयोग से शीघ्र ही उनके प्रभाव शान्त हो जाते हैं।

औपसर्गिक मेह—अर्थात् सूजाक की प्रथमावस्था में जब इन्द्रिय

के अग्र भाग में अधिक शोथ और लालिमा के साथ तीव्र दाह और दर्द होता हो, तो मृत्युंजय के प्रयोग से अभूतपूर्व लाभ होता है।

महालक्ष्मीविलास रस

अभ्रकभस्म ४ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, शुद्ध पारा ६ माशे, वंगभस्म १ तोला, शुद्ध हरताल ६ माशे, ताम्रभस्म ३ माशे, कपूर ६ माशे, जावित्री और जायफल प्रत्येक ६-६ माशे, विधारे के बीज और धतूरे के बीज प्रत्येक १-१ तोला तथा सोनाभस्म ३ माशे लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, शेष भस्में मिला कर फिर कपड़छान किया हुआ काष्ठौषधियों का चूर्ण मिला; घोटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम। क्षयरोग में चौंसठ पहरी पीपल और मधु के साथ, हृदय रोग में अर्जुनछाल के क्वाथ से, प्रमेह, नपुंसकता, शुक्रस्राव और श्वेत प्रदर में दो रत्ती शिलाजीत और दूध के साथ, सन्निपात में पान के रस के साथ, वात-व्याधि में रास्नादि या दशमलक्वाथ के साथ, संग्रहणी, प्रवाहिका और जीर्णातिसार में सोंठ के चूर्ण और मधु के साथ, उदर-विकार में पुनर्नवा के रस के साथ, बल-वीर्य की वृद्धि के लिये मक्खन-मिश्री के साथ तथा अजीर्ण और मन्दाग्नि में भूना हुआ जीरा और मधु के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

गुण और उपयोग—यह सन्निपात जैसे भयंकर ज्वरों तथा वातज और पित्तज रोगों को नष्ट करता है। सब प्रकार के कुष्ठ और प्रमेह रोगों का भी यह नाशक है। नासूर, घोरव्रण, गुदारोग, भयंकर भगन्दर, अधिक दिनों से उत्पन्न श्लीपद (फीलपाँव) रोग, गले की सूजन, अन्त्र-वृद्धि, भयंकर अतिसार, खाँसी, पीनस, राजयक्ष्मा, बवासीर, स्थूलता, देह से दुर्गन्धयुक्त पसीना निकलना, आमवात, जिह्वास्तम्भ, गलग्रह, अर्दित, गलगण्ड, वात-रक्त, उदररोग, कर्णरोग, नाक के रोग, आँख के रोग, मुख की विरसता, सब प्रकार के शूल, सिर दर्द, स्त्री-रोग इन सब रोगों को यह नष्ट करता है।

इस रसायन का प्रभाव विशेषतया हृदय और रक्तवाहिनी शिराओं पर होता है। किसी भी कारण से हृदय में दर्द होना, हृदय की गति में कमी-बेसी हो जाना, हृदय धड़कना या हृदय कमजोर हो अपने कार्य में असफल होना आदि उपद्रव होने पर इस रसायन के प्रयोग से अति शीघ्र लाभ होता है।

न्यूमोनिया और एन्फ्लुएंजा में फुफ्फुस विकृत हो जाता है, फिर खाँसी, श्वास, ज्वर, हृदय के वेग में गति बढ़ जाना, नाड़ी तीव्र चलना आदि उपद्रव हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में इस रसायन के उपयोग से फुफ्फुस विकार नष्ट होकर हृदय और नाड़ी की गति में भी सुधार हो जाता है और कास, श्वास तथा ज्वरादिक रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

आँतों के विकारों को शमन करने के लिये भी इसका प्रयोग किया जाता है। पाचनक्रिया में गड़बड़ी होने से आँतें कमजोर और शिथिल पड़ जाती हैं, फिर ज्वर उत्पन्न हो जाता है। क्रमशः यह ज्वर, सन्निपात रूप में प्रकट हो, आन्त्रिक सन्निपात में परिणत हो जाता है। इसमें हृदय शिथिल हो जाना, समूचे बदन में दर्द, शरीर कान्तिहीन, सिर में दर्द, खाँसी आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी भयंकर अवस्था में हृदय को ताकत देने एवं आँतों को सुधारकर उपद्रव सहित ज्वर को नष्ट करने के लिये महालक्ष्मी विलास रस का प्रयोग किया जाता है।

कभी-कभी आन्त्रिक सन्निपात अधिक दिन तक रह जाने से रोगी बिलकुल कमजोर हो जाता है। उसकी जीवनीय शक्ति निर्बल हो जाती है, हृदय की गति शिथिल तथा नाड़ी भी शिथिल चलने लगती है। रोगी का अस्थिमात्र ही शेष रह जाता है और वह अपने जीवन से निराश हो जाता तथा शरीर का खून बिलकुल कम हो जाता है। ऐसी स्थिति में महालक्ष्मी विलास रस के प्रयोग से बहुतों को लाभ होते देखा गया है।

वात-कफ ज्वर में—शरीर गीला रहना, सन्धियों (जोड़ों) में दर्द होना, निद्रा, देह भारी हो जाना, सिर में भारीपन, शरीर में

दाह, स्नायुओं की विकृति, अंगुलियाँ शून्य हो जाना, नाड़ी की गति क्षीण आदि उपद्रव होने पर महालक्ष्मी विलास रस के प्रयोग से बहुत लाभ होता है, क्योंकि यह प्रकुपित वात तथा कफ दोष को दूरकर उनके उपद्रवों को शान्त कर देता है और हृदय को बलवान बना, नाड़ी की गति भी सुधार देता है।

हृदय रोग में—कमजोर मनुष्य को अधिक चिन्ता या शोक अथवा मानसिक परिश्रम करने से हृदय में एक प्रकार की घबराहट उत्पन्न होती है। इसमें—नाड़ी की गति क्षीण हो जाना, सम्पूर्ण शरीर पसीना से तर रहना, माथे पर ज्यादे पसीना चलना, शरीर में कुछ-कुछ कम्प, हृदय की धड़कन में वृद्धि, रक्तवाहिनी शिराओं में शिथिलता, जिससे रक्त के आवागमन में बाधा पड़कर शरीर शिथिल हो जाना, कुछ काल के लिये देह का रंग विशेषकर मुँह काला हो जाना, कमजोरी के कारण चक्कर आना, नींद न आना, आलस्य बना रहना, रुक-रुक कर श्वास आना, छिन्न श्वास के लक्षण उपस्थित हो जाना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी दशा में महालक्ष्मी विलास रस के उपयोग से हृदय की निर्बलता तथा रक्तवाहिनी शिरा की शिथिलता दूर हो, सम्पूर्ण शरीर में रक्त का संचार हो, नयी स्फूर्ति उत्पन्न हो जाती है।

वातजन्य कास (खाँसी) में—यह खाँसी पुरानी होने पर सूखी खाँसी के रूप में परिणत हो जाती है। रोगी बहुत कमजोर हो जाता, थोड़ा-सा भी परिश्रम करने पर खाँसी का प्रकोप हो जाता, श्वास की गति तेज हो जाती, साथ ही खाँसी भी होने लगती है जिससे रोगी घबरा जाता है और बेचैनी बनी रहती, हृदय की गति भी बढ़ जाती है। कभी-कभी हाथ-पैरों में सूजन भी आ जाती है। ऐसी परिस्थिति में महालक्ष्मी विलास-रस के प्रयोग से उत्तम लाभ होता है।

कफ प्रकोप के कारण जठराग्नि मन्द हो जाना, मुँह का स्वाद मधुर तथा मुँह के अन्दर कफ लिपा हुआ-सा बना रहना, अन्न में अरुचि, शरीर में सुस्ती, किसी भी काम करने की इच्छा न होना,

कमजोरी अधिक मालूम होना, शरीर में दर्द होना, मन्द-मन्द ज्वर रहना, मन्दाग्नि और अपचन के कारण पतले दस्त होना, दस्त होते समय पेट में मरोड़ उठना, हाथ-पैर में दर्द, नाड़ी कमजोर हो जाना आदि लक्षण उपस्थित होने पर महालक्ष्मीविलास रस के प्रयोग से प्रकुपित कफ शान्त हो जाता और पाचक पित्त (जठराग्नि) प्रदीप्त होकर अन्नादिक पचाने में समर्थ हो जाता है।

जलोदर में—यकृत् और प्लीहा की वृद्धि होकर पेट में जल-संचय होते-होते यह रोग उत्पन्न होता है। इसमें हृदय एकदम कमजोर हो जाता और मन घबराता रहता है। पसीना आना, थोड़े से ही परिश्रम से थकावट, पेट में दर्द, रक्त की कमी, हाथ-पैर में सूजन, शिर भारी और दर्द होना आदि लक्षण होने पर महालक्ष्मी-विलास रस पुनर्नवाष्टक या केवल पुनर्नवा के क्वाथ के साथ देने से अधिक लाभ होता है। —औ० गु० ध० शा०

मुक्तापञ्चामृत रस

मोती पिष्टी ८ तोला, मूंगा पिष्टी ४ तोला, वंग भस्म २ तोला, शंख और मुक्ताशुक्ति भस्म १-१ तोला ले, सबको एकत्र मिला, दो पहर तक ईख के रस में घोट कर गोला बना, सुखा, सराब-सम्पुट में बन्द कर लघु-पुट (२ सेर कंडों की आँच में) में फूंक दें। इसी प्रकार गाय के दूध, तुलसी, विदारीकन्द, घृतकुमारी, शतावरी और हंसराज के रस में खरल करके पाँच-पाँच पुट देने से अच्छी भस्म तैयार हो जाती है। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—२ से ४ रत्ती पीपल के चूर्ण में मिला कर ३-४ माह की व्याई हुई गाय के दूध अथवा मधु से दें।

गुण और उपयोग—जीर्ण ज्वर, राजयक्ष्मा, क्षययुक्त कास (खाँसी) और अन्यान्य राजयक्ष्मा के उपद्रवों में यह लाभ करता है। इसके साथ स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती मिला कर प्रयोग करने से और भी विशेष गुण करता है।

मूत्रकृच्छ्रान्तक रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और जवाखार—प्रत्येक समान भाग ले, कज्जली बनाकर सुरक्षित रख लें। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—२ से ४ रत्ती, मिश्री के साथ ठंडे जल या दूध की लस्सी ऊपर से पिला दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र और मूत्र विकार को नष्ट कर पेशाब साफ लाता है।

मृगांक पोटली रस

शुद्ध पारा ४ तोला, सोने का वर्क ४ तोला, दोनों को खूब घोटें। जब पारद में स्वर्ण मिल जाय तो उसे १-१ दिन कचनार, हुल-हुल और कलिहारी के रस में घोटकर उसमें एक तोला सुहागा और ८ तोला मोती का चूर्ण (पिष्टी) तथा १७ तोला शुद्ध गन्धक डाल कर खरल करें, फिर उसका गोला बना, धूप में सुखा लें। इस गोले को एक सम्पुट में बन्द कर ३-४ कपड़मिट्टी करके सुखा लें। फिर इस सम्पुट को सेंधानमक के बारीक चूर्ण से भरी हुई हाण्डी में नमक के बीच में दवा दें और हाँडी के मुख पर सकोरा से ढक कर सन्धि बन्द कर दें, और उसे सुखा कर गजपुट में फूंक दें। स्वांगशीतल होने पर गजपुट से औषध को निकाल, उसमें ४ तोला शुद्ध गन्धक मिला, पूर्वोक्त रसों में पुनः १-१ दिन खरल कर और उसी प्रकार सराब-सम्पुट में बन्द कर उसे नमक की हाँड़ी में रख गजपुट की आँच में रख दें। स्वांगशीतल होने पर रस को निकाल, खरल में महीन पीस कर सुरक्षित रख लें। —र० का० धे०

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती सुबह-शाम। ७ कालीमिर्च के चूर्ण या ३ पीपल के चूर्ण के साथ मिलाकर दोषानुसार घी या शहद में मिला कर सेवन करें।

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से क्षय, ग्रहणी, कफ, खाँसी, अरुचि, दुर्बलता और कमजोरी दूर होती है। यह हृदयोत्तेजक,

बलवर्द्धक, रक्तप्रसादक तथा धातुवर्द्धक है। क्षय रोग की दूसरी और तीसरी अवस्था में इस रसायन का उपयोग किया जाता है। जब ज्वर के साथ खाँसी रहे, नाड़ी की गति क्षीण हो, खून मिला हुआ कफ निकले, पसीना रात में अधिक आवे, अग्निमान्द्य होने, शरीर दुर्बल और कमजोर हो, उठने-बैठने की शक्ति नहीं रहे—ऐसी हालत में इस रसायन के प्रयोग से जल्दी लाभ होता है। इससे क्षय रोग के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, फिर ज्वरादिक उपद्रव भी क्रमशः कम होने लगते हैं। धीरे-धीरे धातुओं की वृद्धि हो, शरीर बलवान हो जाता है।

ग्रहणी दोष—इसमें आँतों में खराश हो जाने से घाव हो जाते हैं। अतएव आँतें कमजोर और शिथिल पड़ जाती हैं। दस्त के समय आँतों में दर्द होना, दस्त अपच होकर पतला और झागदार होना, कमर में दर्द होना, पेट मे ऐंठन बहुत जोर से उठना, मन्दाग्नि, आँतों की कमजोरी से दस्त असमय में होना, अनजान में भी कभी-कभी दस्त होकर धोती खराब हो जाना आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी दशा में आँतों को सबल बनाने तथा जठराग्नि को जागृत करने और पाचन क्रिया को सुधार कर दस्त को गाढ़ा करने के लिये इस रसायन का उपयोग करना श्रेष्ठ है।

बीमारी छूटने के बाद की शारीरिक कमजोरी को दूर करने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है। अथवा रसरक्तादि धातुओं की कमजोरी से शरीर दुर्बल और कमजोर हो गया हो, रक्त की कमी हो गयी हो, मन्दाग्नि, खायी हुई चीजों का ठीक से न पचना, धातु क्षीणता आदि विकारों को शान्त करने के लिये यह रसायन बहुत लाभदायक है। —औ० गु० ध० शा०

मृगांक रस

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, मोती पिष्टी २ तोला, सुवर्णभस्म १ तोला, और सुहागे की खील ३ माशे; इन सब चीजों को काँजी में घोट कर गोला बना, सुखा कर मूषा में बन्द करके एक

घड़े में नमक नीचे रख उसमें मूषा रखकर ऊपर से आधे बचा हुआ नमक डाल दें। इस घड़े को चार पहर आग से पकावें। स्वांग-शीतल होने पर घड़े में से दवा निकाल कर रख लें।

—आरोग्य कोश

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती सुबह-शाम, १० पीपल चूर्ण अथवा १० काली मिर्च चूर्ण और शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह राजयक्ष्मा के लिए बहुत प्रसिद्ध दवा है। इसके सेवन से पुराना ज्वर, पुरानी खाँसी, श्वास और हृदय के रोगों में बहुत लाभ होता है। यह फुफ्फुस और श्वासयन्त्रों की खराबी दूर कर उनकी क्रिया को ठीक करता है। क्षय के कीटाणु इसके सेवन से नष्ट होते हैं, तथा फेफड़े और हृदय को बल मिलता है।

मृतसंजीवनी रस

शुद्ध हिंगुल ४ तोला, शुद्ध जमालगोटा ३ तोला, सुहागे की खील २ तोला, शुद्ध बच्छनाग १ तोला लेकर १ प्रहर तक अच्छी तरह खरल करके महीन चूर्ण बना अदरख के रस में घोटकर सुरक्षित रख लें।

—भै० र०

मात्रा और अनुपान—२ रत्ती सुबह, दोपहर और शाम। इसे सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रक और सेंधा नमक के चूर्ण में मिलाकर अदरक-रस के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से सन्निपात, विषम ज्वर, आँव के दस्त, वातशूल, गुल्म, प्लीहा, जलोदर, शीतपूर्व और दाहपूर्व ज्वर तथा अग्निमांद्य व वायु का नाश होता है।

इस रसायन का उपयोग वात-कफात्मक विकारों में अधिक होता है। सन्निपात ज्वर में वात दोष के अधिक होने पर—शरीर में दर्द होना, प्रलाप और सिर भारी, पेट में आफरा होना, बद्धकोष्ठ आदि में इस रसायन के प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है। यह त्रिदोष शामक और ज्वर को नष्ट करने वाला है। इसमें जमालगोटा की मात्रा

विशेष होने से यह दूषित (संचित) मल को निकालकर दूर करता है जिससे ज्वर की गर्मी कम होकर शरीर कुछ हलका हो जाता है।

विषम ज्वर—पुराना होने पर दूसरे-तीसरे दिन किसी न किसी समय जाड़ा देकर बुखार आ जाता हो, नाड़ी की गति भी तेज तथा ज्वर की गर्मी बढ़ी हुई मालूम पड़े, शरीर खून की कमी के कारण पाण्डु वर्ण का हो जाय, कमजोरी, मन्दाग्नि, दस्त में कब्जियत आदि अनेक उपद्रवयुक्त विषम ज्वर में यह रसायन बहुत फायदा करता है, परन्तु ज्वर आने से २ घण्टे पहले ही इसे खिला दें अन्यथा ज्वर और दवा की गर्मी से रोगी परेशान हो जाता है।

आमवात में—जोड़ों में सूजन के साथ दर्द हो, शरीर जकड़ा हुआ, हाथ-पाँव फैलाने और सिकोड़ने में अधिक तकलीफ हो, दस्त साफ न होते हों, पेट में वायु भर जाने के कारण पेट भारी मालूम पड़े, रक्त का संचार अच्छी तरह न होने के कारण शरीर सुन्न-सा मालूम हो, ऐसी हालत में इससे बहुत फायदा होता है। इसमें बच्छनाग का मिश्रण होने से वातवाहिनी तथा रक्तवाहिनी नाड़ियों पर इसका प्रभाव अधिक होता है। यह रसायन विकृत वात-वाहिनी नाड़ी को सुधारकर रक्त का संचार अच्छी तरह करा देता है। फिर धीरे-धीरे दर्द और सूजन आदि भी दूर हो जाते हैं।

—औ० गु० ध० शा०

याकूती-रसायन

माणिक्यपिष्टी, पन्नापिष्टी, मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी, कहरबा-पिष्टी, चन्द्रोदय, सोने का वर्क, अम्बर, कस्तूरी, अबरेशम कतरा हुआ, और केशर प्रत्येक २-२ तोला, बहमन सफेद, बहमन लाल, जायफल, लौंग और सफेद मिर्च प्रत्येक का कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण १-१ तोला लें। प्रथम चन्द्रोदय को खूब महीन पीसें—पीछे उसमें अन्य द्रव्य तथा सोने का वर्क मिला—उत्तम गुलाब के अर्क में २१ दिन मर्दनकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। कस्तूरी और अम्बर आखिरी (२१ वें) दिन मिलाना चाहिए।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम अर्क पोदीना में मिलाकर दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से हृदय की दुर्बलता, सन्निपात ज्वर आदि में नाड़ी-क्षीणता और शरीर ठण्डा पड़ना, स्वेदाधिक्य, हृदय की दुर्बलता से थोड़ा-सा भी चलने से दम भर जाना और हृदय का ज्यादा स्पन्दन (धड़कन) आदि रोगों का नाश होता है।

योगेन्द्र रस

रससिन्दूर २ तोला, स्वर्णभस्म, कान्तलौह भस्म, अभ्रकभस्म, मोती भस्म और वंगभस्म प्रत्येक १-१ तोला लेकर सबको एक दिन घृतकुमारी के रस में घोटकर गोला बनावें—फिर एरण्ड के पत्तों में लपेट, डोरा से बाँध, धान के ढेर में ३ दिन तक दबाकर छोड़ दें। पश्चात् निकालकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें और छाया में सुखाकर सुरक्षित रख लें। —ध० नि०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम; मधु और अदरक रस के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें। पित्त-विकार में त्रिफला-जल और मिश्री के साथ, हिष्टीरिया में मिश्री मिले जटामांसी के क्वाथ से, हृदय रोग में अर्जुन-छाल के क्वाथ से और ताकत के लिये दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह उन्माद, मूर्च्छा, हिस्टीरिया, वातज-पित्तज रोग, पक्षाघात, शरीरेन्द्रिय की दुर्बलता आदि के लिये बड़ी अच्छी दवा है। स्वर्ण, कान्त, मोती, वंग आदि उत्तम धातुभस्मों के योग से बना हुआ यह रसायन हृदय, प्रमेह, शूल, अम्लपित्त और राजयक्ष्मा के लिये बहुत उपकारी है। यह बल, वीर्य, स्मृति-वर्द्धक तथा अनेक रोग नाशक है। बीमारी के बाद की कमजोरी और साधारण कमजोरी को दूर कर बल बढ़ाने के लिये इस रसायन का उपयोग अधिकतर किया जाता है।

इस रसायन का प्रभाव वातवाहिनी नाड़ियों, मन, मस्तिष्क और

रक्तवाहिनी नाड़ियों पर विशेष रूप से होता है। यह प्रकुपित वात को शान्त करता तथा मूत्रपिण्ड पर भी इसका प्रभाव होता है। पित्त प्रकोप जन्य दाह, बेचैनी, अनिद्रा इआदि को भी यह दूर करता है।

हृदय के रोगों में भी इसके प्रयोग से बहुत सफलता मिलती है। यह रस-रक्तादि धातुओं को पुष्टकर शरीर को बलवान बनाता है और वीर्यदोष, स्वप्नदोष, वीर्य का पतलापन, शीघ्र पतन आदि दोषों को दूर करता है तथा पाचकपित्त को उत्तेजित कर पाचन क्रिया को सुधारता है।

वात-पित्त प्रधान पक्षाघात रोगी के लिये यह सर्वोत्तम दवा है। यह रोग वातवाहिनी और रक्तवाहिनी शिराओं की विकृति से होता है। इस रोग के प्रकोपावस्था में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। रोग पुराना हो जाय या मध्यमावस्था में रहे तो इस रसायन के उपयोग से बहुत फायदा होता है।

रक्तपित्त कुलकण्डन रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, प्रवालभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, नाग-भस्म, वंगभस्म प्रत्येक १-१ तोला लेकर प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियाँ मिलाकर सबको चन्दन, कमल, मालती की कलियाँ, वासक के पत्ते, धनियाँ, गजपीपल, सतावर, सेमल की छाल, बट-जटा इनके क्वाथ या स्वरस की एक-एक भावना देकर खरल में घोटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, शहद और वासक के रस या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन रक्तपित्त रोग के लिये बहुत गुणदायक है। रक्तपित्त के लिये इससे अच्छी दूसरी दवा नहीं है। नया-पुराना कैसा भी रक्तपित्त हो इसके सेवन से शीघ्र लाभ होता

है। इसके अतिरिक्त रजःस्राव, रक्तप्रदर, राजयक्ष्मा आदि में भी इसका उपयोग होता है।

यह रसायन सौम्यगुण प्रधान होने के कारण पित्तशामक और रक्तप्रसादक है। रक्तस्थित दूषित कीटाणु तथा यक्ष्मा के कीटाणुओं को भी नष्ट करता है और गर्भाशय को बल देता है।

रत्नगर्भपोटली रस

रससिन्दूर, हीराभस्म, स्वर्णभस्म, चाँदीभस्म, नागभस्म, लौह-भस्म, ताम्रभस्म, मोतीभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, प्रवालभस्म, शंख-भस्म, शुद्ध तूतिया प्रत्येक समान भाग लेकर एकत्र मिला, सात दिन तक चित्रक के क्वाथ में घोटे; फिर उसे छाया में सुखा कर बड़ी-बड़ी कौड़ियों में भर दें और सुहागे को आक के दूध में घोट कर उससे उन कौड़ियों का मुँह बन्द कर दें; फिर उसे सराब-सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूंक दें। स्वांगशीतल होने पर सम्पुट से दवा निकाल कर उसे (कौड़ी सहित) पीस लें। फिर उसमें सम्भालू और अदरक के रस की ७-७ तथा चित्रक क्वाथ की २१ भावना देकर सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ रत्ती सुबह-शाम, पीपल, काली-मिर्च, घी तथा शहद से दें। खाँसी, क्षय और श्वास में चौंसठ प्रहरी पीपल के साथ मधु मिला कर दें। अतिसार-संग्रहणी में भुने हुए जीरे का चूर्ण और मधु से दें। वात व्याधि में—रास्नादि क्वाथ के साथ तथा अश्मरी और प्रमेह में—गोखरू क्वाथ के साथ दें। भगन्दर और कुष्ठ रोग में खदिर का काढ़ा या मंजिष्ठादि क्वाथ में मधु मिला कर दें। बवासीर (अर्श) रोग में आँवले का जल या ज़ीमीकन्द के चूर्ण के साथ दें। क्षीण धातुओं को पुष्ट करने के लिये च्यवनप्राश के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

गुण और उपयोग—हीरा, स्वर्ण, मोती आदि बहुमूल्य ओष-धियों द्वारा निर्मित यह रसायन क्षय (राजयक्ष्मा) खाँसी, श्वास, संग्रहणी आदि भयंकर रोगों का नाशक है। यह त्रिदोषघ्न और

दीपन-पाचन तथा शक्तिवर्धक रसायन है। वातव्याधि, अश्मरी, कोढ़, प्रमेह, कुष्ठ रोग, भगन्दर, बवासीर आदि महारोगों में इसका सेवन करना बहुत लाभदायक है। ज्वर, अतिसार और सन्निपातादि रोगों में नाड़ी की गति क्षीण हो जाने पर यह अपना अद्भुत गुण दिखाता है। यह क्षीण रस-रक्त-बल-वीर्य आदि सप्त धातुओं का पोषण कर शरीर को सबल एवं कान्तियुक्त बनाने में श्रेष्ठ है।

रत्नगिरि रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म और स्वर्ण भस्म प्रत्येक ४-४ तोला, लौह भस्म २ तोला, वैक्रान्त भस्म १ तोला लेकर प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य ओषधियाँ मिलाकर, सबको भाँगरे के रस में घोटकर पर्पटी के समान बनावें (घृत लिप्त करछी में मन्दाग्नि पर उक्त कज्जली को पिघला कर गाय के गोबर पर बिछे हुए केले के पत्ते पर डाल दें, और उसके ऊपर दूसरा केला पत्ता रख कर गोबर से दबा दें, जब शीतल हो जाय तो पर्पटी निकाल लें) फिर उसे बारीक कर सहिंजन के रस, वासा के रस, संभालू के रस, बच के रस, चित्रक-क्वाथ, भाँगरें और गोरखमुण्डी के क्वाथ तथा द्राक्षा, गिलोय, जयन्ती, अगस्ति, ब्राह्मी, पटोल और घृतकुमारी के रस की पृथक्-पृथक् तीन-तीन भावना देकर सराब-सम्पुट में बन्द कर बालुका यन्त्र द्वारा ४ घण्टे की आँच से पकावें। जब स्वांगशीतल हो जाय, तो निकाल, पीस कर सुरक्षित रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—आधी रत्ती से १ रत्ती, सुबह-शाम या ज्वर के अवस्थानुसार पीपल और धनियाँ के चूर्ण के साथ मधु में मिला कर दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन नये बुखार को उतारने में बड़ा अच्छा काम करता है। वात-पित्त और कफ दोष से उत्पन्न नूतन ज्वर इसके सेवन से छूट जाता है। बलकारक भस्मों के योग से बने होने के कारण यह रसायन बुखार से उत्पन्न हुई दुर्बलता को नष्ट कर रोगी को पूर्ण शक्ति प्रदान करता है।

जो ज्वर बराबर बना रहता हो, कफ प्रधान हो, पित्त भी अनुगामी हो, (इस तरह का ज्वर अधिकतर बच्चों को होता रहता है) इसके लिये यह रसायन बहुत उपयोगी है। इससे ज्वर की गर्मी कम हो जाती तथा पित्त भी शान्त हो जाता है।

ज्वर उतारने के लिये पसीना लाना आवश्यक रहता है। यह काम इस रसायन द्वारा बहुत शीघ्र होता है। यह रसायन धनियाँ के हिम (फाण्ट) के साथ देने से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है।

रसकपूर

शुद्ध पारद, गेरू मिट्टी, ईंट का चूर्ण, खड़िया मिट्टी, फिटकरी, सेंधा नमक, बल्मीक मृत्तिका (वामी की मिट्टी), खारा नमक और बरतन रंगनेवाली लाल मिट्टी, ये सब समान भाग लेकर पारे के अतिरिक्त अन्य समस्त ओषधियों को कूट-कपड़छान चूर्ण बना लें। फिर उस चूर्ण में पारद मिलाकर एक प्रहर तक खरल करें, अब इस चूर्ण को कपड़मिट्टी की हुई एक हाण्डी में भरकर ऊपर उसी के बराबर दूसरी हाण्डी उलटी करके ढक दें और दोनों के जोड़ को कपड़मिट्टी से बन्द कर दें। एक कपड़मिट्टी सूख जाने पर दूसरी बार फिर कपड़मिट्टी करें, इस प्रकार तीन बार कपड़मिट्टी लगाकर जोड़ को अच्छी तरह बन्द करें। तदनन्तर इसे सुखाकर यन्त्र को चूल्हे पर चढ़ा दें और निरन्तर चार दिन तक पकावें। पश्चात् आँच बन्द कर के चौबीस घण्टे तक यन्त्र को अंगार पर ही रहने दें। तत्पश्चात् हाण्डी के स्वांगशीतल होने पर जोड़ को सावधानी पूर्वक खोलकर ऊपर की हाण्डी में लगे हुए कपूर के सदृश रस को निकाल लें। —भा० प्र०

मात्रा और अनुपान—१ रत्ती से २ रत्ती, कैपसूल में रखकर निगल जायँ।

गुण और उपयोग—इसे लौंग, सफेद चन्दन, कस्तूरी और केसर के चूर्ण के साथ खाने से उपद्रवयुक्त फिरंग रोग (उपदंश) नष्ट होता है तथा अग्नि, बल, वीर्य और कामशक्ति की वृद्धि होती है। (रसकपूर का सेवन किसी सुयोग्य वैद्य की देख-रेख में करना चाहिये)

रस पीपरी

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, सोंठ, मिर्च, पीपल, काकड़ासिंगी, अतीस, नागरमोथा, मोचरस, जायफल, जावित्री, सुहागे की खील, छोटी पीपल प्रत्येक दवा समान भाग लें। प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बना शेष काष्ठौषधियों का कपड़छान चूर्ण मिलाकर पारे से चतुर्थांश कस्तूरी मिला, जल के संयोग से मूंग के बराबर गोलियाँ बना लें अथवा महीन पीसकर कपड़छान कर रख लें। —आरोग्यप्रकाश

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती। चार-चार घण्टे बाद अदरक का रस और मधु से दें। पतले दस्त होने पर जायफल को पानी में घिस कर उसके साथ देना चाहिये।

गुण और उपयोग—यह औषध बच्चों के लिये अमृत तुल्य गुणकारी है। अनुपान भेद से इससे बच्चों के अनेक रोग आराम होते हैं। सर्दी, जुकाम, कफ, खाँसी, बुखार, कमजोरी, वमन, पतली टट्टी आदि बाल रोगों में—यह दवा अच्छा काम करती है। माता की तरह यह बच्चों की रक्षा करती है।

इस दवा का उपयोग बिहार प्रान्त में घर-घर बच्चों के लिये किया जाता है। वहाँ की साधारण जनता भी इस दवा से इतना परिचित है, कि बच्चों को किसी तरह की बीमारी होने पर इसे निर्भयतापूर्वक दिया करती है और इससे फायदा भी होता है।

रसराज रस

रससिन्दूर ४ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, सुवर्णभस्म, मोती पिष्टी, प्रवालभस्म या पिष्टी ६-६ माशे, लौह भस्म, रौप्यभस्म, वंगभस्म, असगंध, लौंग, जावित्री, जायफल, काकोली प्रत्येक ३-३ माशे लें। प्रथम रस सिन्दूर को खूब महीन पीस कर उसमें अन्य भस्में तथा वनस्पतियों का कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिला, एक दिन ग्वारपाठे और मकोय के रस में मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम मधु से चाट कर ऊपर से गाय का दूध पीवें।

गुण और उपयोग—यह शक्तिदायक और त्रिदोषनाशक है। वात रोगों में—विशेषतया पक्षाघात, अर्दित, अपतन्त्रक, आक्षेपक, कान में आवाज होना, शिर में चक्कर आना आदि कठिन से कठिन वात रोगों में यह रामबाण की तरह अचूक काम करता है। रक्त प्रसादक गुण के कारण यह ब्लडप्रेसर में भी अच्छा काम करता है। हृदय तथा मस्तिष्क के सभी विकारों तथा स्त्री-पुरुषों के जननेन्द्रिय के रोगों में और फुफ्फुस की खराबी में भी इस रसायन से लाभ होता है। प्रमेह, नपुंसकता और गुर्दे की कमजोरी को दूर करके यह नयी शक्ति पैदा कर देता है। अधिक विषय भोग के कारण पैदा हुये सभी विकारों में इसका प्रयोग करना चाहिये। हृदय को बलवान बनाकर बल, बुद्धि और कान्ति बढ़ाने के लिये यह अच्छी दवा है।

पक्षाघात, अर्दित आदि वात रोगों में इस रसायन का विशेष उपयोग होता है। इन रोगों में वातवाहिनी नाड़ियों की विकृति होने से रक्त का संचार अच्छी तरह नहीं होता, यह विकृति यदि सम्पूर्ण शरीर की नसों में व्याप्त हो जाती है तो सर्वाङ्ग वात, यदि शरीर के किसी एक भाग की ही नसें विकृत हो गईं, तो विकृत भाग क्रमशः शक्तिहीन व अकार्यक होने लगता है। यह विकार शरीर के किसी भी अंग में उत्पन्न हो सकता है। इस रोग में रसराजरस के प्रयोग से वातवाहिनी नाड़ियों के विकार का शमन हो जाता तथा रक्त का भी अच्छी तरह संचार होने लगता है।

वीर्य विकार—शरीर में वीर्य की कमी, वीर्य अधिक पतला हो जाने और वीर्यवाहिनी नाड़ियों की कमजोरी से वीर्य का शीघ्र पतन हो जाना अथवा लड़कपन में अप्राकृतिक ढंग (हस्तमैथुनादि) से शुक्र का नाश हो जाने से नपुंसकता हो गई हो तो रसराजरस का प्रयोग मक्खन, मलाई, मिश्री या दूध के साथ करने से बहुत शीघ्र फायदा होता है। यह शुक्रवर्द्धक होने के कारण वीर्य बढ़ा कर शरीर पुष्ट व वीर्य को गाढ़ा करता है, इसका प्रभाव वीर्यवाहिनी शिरा पर भी पड़ता है। अतएव

उसकी कमजोरी दूर कर शुक्र धारण करने की शक्ति उत्पन्न करता है।

मूत्रपिण्ड या वृक्क पर भी इसका प्रभाव होता है। वृद्धावस्था में शारीरिक अवयवों में शिथिलता आ जाने से बार-बार पेशाब होने लगता है। युवा मनुष्यों को भी रस-रक्तादि धातुओं की कमी की वजह से शरीर कमजोर होने पर उक्त शिकायत हो जाती है। इस विकार को दूर करने के लिये रसराज रस का उपयोग किया जाता है। यह पाचन क्रिया को सुधार कर अग्निप्रदीप्त करता जिससे अन्नादिकों का पाचन ठीक से होने लगता है, फिर रस-रक्तादि धातु भी अच्छी तरह बनने लगते और धीरे-धीरे रोगी भी पुष्ट हो जाता है। इसी तरह वृद्धों के लिये भी यह शरीर में शक्ति पैदा कर मूत्र पिण्ड की शिथिलता दूर कर देता फिर पेशाब उचित परिमाण में होने लगता है।

रक्तचाप (ब्लडप्रेसर)—आजकल यह रोग बहुत देखने में आता है। इस रोग के रोगी की आँखें तथा मुँह लाल बने रहते हैं। जब यह रोग तीव्रावस्था में पहुँचता है, तब रक्त का प्रवाह ऊपर की तरफ चलता है। उस समय रोगी का चेहरा तमतमाया हुआ-सा अर्थात् मुखमण्ड़ल लाल और कपार में लाल-लाल नसें तनी रहती हैं। आँखें सुर्ख हो जाती हैं, शिर में चक्कर आने लगता है, रोगी का टेम्प्रेचर बहुत बढ़ जाता है, प्यास ज्यादे लगने लगती है, ठंढा पानी पीने से कुछ देर के लिये शान्ति मिल जाती परन्तु फिर पूर्ववत् ही हो जाता है। इस तूफानी दौरा को कम करने के लिए इसका प्रयोग करना बहुत उपयोगी है।

रसादि रस (चूर्ण)

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गंधक २ तोला, कपूर ३ तोला, शिलाजीत ४ तोला, खस ५ तोला, काली मिर्च ६ तोला, मिश्री ७ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य ओषधियों का कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण

मिला, सबको अच्छी तरह खरल में घोट कर रख लें। (यदि इसकी गोली बनानी हो तो पानी में खरल कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें) —यो० र०

मात्रा और अनुपान—३-३ रत्ती दिन में तीन बार मधु से दें। यदि गोली हो तो मुँह में रख कर चूसें।

गुण और उपयोग—यह रसायन सौम्य वीर्य और पित्त शामक तथा दाह नाशक है। कभी-कभी बुखार का टेम्प्रेचर (गर्मी) इतनी बढ़ जाती है, कि रोगी प्यास और दाह से बचैन हो जाता है। शिर व आँखों में जलन, आँखें सूर्ख (लाल) हो जाना, मुँह पर लालामी, बार-बार करवट बदलना, पानी पीने के लिये बहुत जोर करना, दाह के कारण जमीन पर लेटने का प्रयत्न करना, आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी हालत में इस रसायन के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है। यह रसायन बढ़े हुए पित्त को शमन करता तथा सौम्य गुण होने से तृषा (प्यास) को शान्त करता है। इस दवा के साथ-साथ बकरी-दूध की पट्टी पेट और कपार पर करीब १५-२० मिनट तक देते रहने से बहुत शीघ्र ही उपरोक्त उपद्रव कम हो जाते तथा बुखार की गर्मी कम होकर रोगी शान्तिपूर्वक सो जाता है।

रामबाण रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, लौंग का चूर्ण प्रत्येक १-१ तोला, काली मिर्च का चूर्ण २ तोला, जायफल का चूर्ण ६ माशे लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें फिर उसमें अन्य औषधें मिलाकर सबको पकी इमली के रस में घोंट कर मूँग के बराबर गोलियाँ बना लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम। ज्वर में मधु के साथ, आम-विकार में उष्ण जल या छाछ के साथ, कास-श्वास में अदरक रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन पाचक, अग्नि दीपक और ग्राही है। मूत्र और पसीने के साथ अन्दरूनी विकार निकालता है।

आमवात, अतिसार, संग्रहणी, कास-श्वास और ज्वर में इससे अच्छा लाभ होता है।

पाचक पित्त की विकृति के कारण मन्दाग्नि हो जाने पर अन्नादि का पाचन ठीक-ठीक न होने से आम संचित होने लगता है। पेट में दर्द, दस्त में कब्जीयत, पेट भारी रहना, जी मिचलाना आदि लक्षणों में इस रसायन के सेवन से बहुत लाभ होता है।

लघ्वानन्द रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, शुद्ध विष, अभ्रकभस्म प्रत्येक १-१ तोला, काली मिर्च-चूर्ण ८ तोला, शुद्ध सुहागा ४ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, फिर अन्य द्रव्य मिला कर मर्दन कर, भाँगरा तथा अम्लवेंत के रस से पृथक्-पृथक् सात-सात भावना देकर, दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना रख लें।

—र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम पान में रख कर; सेवन करें।

गुण और उपयोग—यह रसायन पाण्डु रोग, अरुचि, वात रोग, भ्रम, मन्दाग्नि, ग्रहणी तथा वात-कफ ज्वरों का नाश करता है।

लक्ष्मीनारायण रस

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, सुहागे की खील, कुटकी, अतीस, पीपल, इन्द्रजौ, अभ्रकभस्म, सेंधा नमक—प्रत्येक समभाग लेकर सबको एकत्र खरल करके दन्तीमूल और त्रिफला के रस में पृथक-पृथक ३-३ दिन घोट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम अदरक रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से वात-पित्त और कफात्मक ज्वर, हैजा, विषम ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, रक्तातिसार आम-शूल, सूतिका रोग और वातव्याधि का नाश होता है।

यह रसायन पसीना लाकर ज्वर को उतारता है तथा रक्तादि धातुओं में से दूषित कीटाणुओं को निकाल देता है। अधिक दिनों तक ज्वर रहने पर दोष-धातु (रस-रक्तादि) में लीन होकर धातु-गत ज्वर उत्पन्न करता है। ऐसी अवस्था में लक्ष्मीनारायण रस के उपयोग से रसादिधातुगत ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

इसका प्रभाव वातानुबन्धी अर्थात् वात विकार से उत्पन्न हुए ज्वरों पर भी पड़ता है। जैसे पक्षाघात, अपतन्त्रक—अर्दित आदि रोगों में होने वाले ज्वर को भी यह शीघ्र दूर करता है।

बच्चों के धनुष्टंकार रोग—इसमें रह-रह कर वायु के आक्षेप (झटके) आते रहते हैं। झटके आने पर बच्चा बेहोश हो जाता तथा मुट्ठी बंध जाती, साँस रुक जाती, शरीर की नसें कभी ढीली और कभी कड़ी हो जाती हैं। यह रोग बच्चों के लिये बहुत खतरनाक है। ज्वर का टेम्प्रेचर (गर्मी) १०४ से १०५ तक होते देखा गया है। सैकड़े ७५ बच्चे की मृत्यु इस रोग से हो जाती है। ऐसे भयंकर रोग के लिये यह रसायन बहुत उपयोगी है। इस दवा से प्रकुपित वात की शान्ति होकर रक्त-संचार ठीक से होने लगता है और धीरे-धीरे वात के झटके भी कम होने लगते हैं। झटके की अवधि १२-२४ घंटे तक है। झटके कम होने पर २-४ रोज में बुखार भी कम हो जाता है।

स्त्रियों को बच्चा पैदा होने के बाद ठण्ढी हवा लग जाने से वात प्रकुपित हो कर ज्वर हो जाता है। यदि शीघ्र ही इसका प्रतिकार नहीं किया गया तो शिर में दर्द, प्यास ज्यादा, सम्पूर्ण शरीर में दर्द, ज्वर की गर्मी बहुत बढ़ी हुई तथा कभी-कभी कमजोरी से भयंकर बेहोशी आदि लक्षण उपस्थित हो जाते हैं। ऐसी स्थितिमें इस रसायन के सेवन से बहुत शीघ्र लाभ होता है। इस रसायन के सेवन-काल में दशमूल क्वाथ या दशमूल-अर्क अथवा दशमूलारिष्ट भोजनोत्तर पीने को अवश्य दें। शरीर में दशमूल तैल या नारायण तैल की मालिश करावें। इससे प्रकुपित वात शान्त हो जाता तथा शरीर में नवीन रक्त की वृद्धि होती है।

पाचनक्रिया में गड़बड़ी होने के कारण आँतें खराब हो जाती हैं जिससे ज्वर, अतिसार आदि रोगों की उत्पत्ति होती हैं। आँतों की विकृति से उत्पन्न ज्वर में लक्ष्मीनारायण रस के प्रयोग से बहुत शीघ्र फायदा होता है। यदि उपेक्षा की गयी तो—यही ज्वरअन्त्रिक सन्निपात या अतिसार में परिणत हो जाता है जिससे रोगी को अत्यन्त कष्ट होता है। अतिसार होने पर रोगी की शक्ति बहुत जल्दी क्षीण होने लग जाती है। दस्त बहुत पतला और दुर्गन्धमय होता है। दस्त एक बार में साफ न होकर बार-बार होता है। ऐसी हालत में लक्ष्मीनारायण रस का उपयोग करने से लाभ होता है।

कभी-कभी आन्त्रिक ज्वर के बाद संग्रहणी हो जाया करती है। इसमें आमसहित दस्त होता है। दस्त होने के समय आँतों में दर्द, दस्त में खून मिला हुआ (कभी रक्त नहीं भी आता है) मल थोड़ा-थोड़ा करके आना, साथ में ज्वर भी रहना आदि लक्षण होते हैं। इसमें भी लक्ष्मीनारायण रस के उपयोग से लाभ होता है। क्योंकि इसका प्रभाव विशेषतः आन्त्र, यकृत् तथा ग्रहणी पर होता है।

—औ० गु० ध० शा०

लक्ष्मीविलास रस

अभ्रकभस्म ४ तोला, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा २—२ तोला, कपूर, जावित्री, जायफल, विधारे के बीज, शुद्ध धतूरे के बीज, भाँग के बीज विदारीकन्द, शतावर, नागबला, (गंगेरन), अतिवला (कंघी), गोखुरू, हिज्जल-(इज्जर) बीज प्रत्येक एक-एक तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें फिर उसमें अन्य औषधियों का बारीक चूर्ण मिलाकर सबको पान के रस में घोंट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना सुखाकर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम। अदरक-रस और मिश्री के साथ देने से जीर्णज्वर और भयंकर वातज रोग नष्ट होते हैं। निरामज्वर में पीपल चूर्ण और शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह सब प्रकार के क्षय, खाँसी, श्वास, पाण्डु, शोथ, शूल, प्रमेह, बवासीर आदि रोगों को नष्ट कर शरीर को बलवान बनाता है।

लीलाविलास रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म और लौहभस्म प्रत्येक समान भाग लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य भस्में मिलाकर सबको आँवले और बहेड़े के रस या क्वाथ में तीन दिन तक घोंट कर एक दिन भाँगरे के रस की भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना ले। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम शहद, कुष्माण्डावलेह या स्वरस और दुर्वा-स्वरस या फटे हुए दूध के पानी के साथ अथवा आँवले का रस या च्यवनप्राश के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन पित्त की तीव्रता और अम्लता को कम कर, अम्लपित्त को शान्त करता है। तृष्णा (प्यास), वमन, हृदय-दाह, कृमि, पाण्डु, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र और नेत्रदाह के लिये उत्तम है। गुण-धर्म के हिसाब से यह रस उदर और यकृत् की क्रिया को ठीक कर पाचक रस को बढ़ाता है और शरीर में बल-वृद्धि भी करता है।

लोकनाथ रस

शुद्ध बुभुक्षित पारा २ तोला तथा शुद्ध गन्धक २ तोला लेकर कज्जली बनावें। फिर इसको ८ तोले कौड़ी लेकर उसमें भर दें। बाद में १ तोला सुहागा को गाय के दूध में पीस कर उससे कौड़ियों का मुख बन्द कर दें, फिर भीतर की तरफ चूना पुते हुए सराब में ८ तोला शंख के छोटे-छोटे टुकड़े और ये कौड़ियाँ भर कर उस पर उसी प्रकार का दूसरा सराब रख कर दोनों की सन्धि बन्द कर दें और कपड़मिट्टी करके सुखा लें। फिर इसे गजपुट में रख कर फूंक दें। स्वाँग-शीतल होने पर सम्पुट से औषधि को निकाल, कौड़ियों को शंख समेत पीस कर रख लें। —शा० सं०

मात्रा और अनुपान—४ से ६ रत्ती सुबह-शाम। वात रोग में—कालीमिर्च का चूर्ण और घृत के साथ, पित्त रोग में—मक्खन के साथ और कफ रोग में—मधु के साथ देना चाहिये। धनिया को छिलका दूर कर के भून लें, फिर इसे पीस कर चूर्ण बना, मिश्री मिला, २माशा चूर्ण में लोकनाथ रस ६ रत्ती मिलाकर पानी के साथ लेने से अरुचि नष्ट होती है। धनिया और गिलोय (गुर्च) के क्वाथ के साथ लोकनाथ रस २ रत्ती मधु के साथ देने से ज्वर नाश होता है या मधु-पिप्पली के साथ दें। रक्तपित्त, कफ, कास, श्वास—इन रोगों के लिये अडसा और सुगन्धबाला में मधु तथा मिश्री मिलाकर लोकनाथ रस २ रत्ती की मात्रा में मधु से चाट उक्त क्वाथ पीने से अच्छा लाभ होता है। निद्रा नहीं आती हो और अतिसार, संग्रहणी, मन्दाग्नि आदि रोग हों तो लोकनाथ रस ६ रत्ती, आग में भुनी हुई भाँग आधी रत्ती दोनों को मधु में मिला कर चटावें। शूल और अजीर्ण रोग नाश करने के लिये काला नमक, छोटी हरड़ और पीपल का महीन चूर्ण २ माशे, लोकनाथ रस ६ रत्ती गरम जल के साथ दें। प्लीहा, वमन, अर्श और रक्तपित्त के लिये—लोकनाथ रस ६ रत्ती अनार के रस या शर्बत अनार के साथ देने से लाभ होता है। नकसीर के लिये—दूर्वा-रस में मृगश्रृङ्ग को घिस कर इसके साथ लोकनाथ रस देना चाहिये। वमन और हिचकी रोग के लिये—मोर-पङ्ख की भस्म, बेर की मींगी, मिश्री और मधु के साथ लोकनाथ रस ६ रत्ती की मात्रा में मिला कर दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन अतिसार, संग्रहणी, अरुचि, मन्दाग्नि, गुल्म, यकृत्, प्लीहा विकार एवं कास-श्वास में लाभदायक है। कफ प्रधान रोगों में कफ शोषण या निकालने के लिये इस रसायन का विशेषतया उपयोग किया जाता है।

पुराने कफातिसार में—मन्दाग्नि, भूख न लगना, दस्त सफेद और पतला कई बार होना, चेहरा फीका हो जाना, शरीर कान्ति-हीन दिखाई देना आदि लक्षण होने पर लोकनाथ रस के उपयोग से विशेष लाभ होता है। यह कफ-दोष को नष्ट कर तथा पाचक

पित्त को जागृत करके मन्दाग्नि दूर करता है जिससे अन्नादि का पाचन ठीक-ठीक होने लगता है। यह आँतों को भी सबल बना देता है। फिर धीरे-धीरे दस्त की मात्रा कम हो कर रस-रक्तादि की वृद्धि होती तथा शरीर कान्तिमान हो जाता है।

कफ प्रकोप के कारण फुफ्फुस में शिथिलता आ गई हो और वह अपने कार्य करने में असमर्थ हो गया हो, साथ ही मन्दाग्नि, अन्न में अरुचि, जी मिचलाना, गला भारी हो जाना आदि लक्षणों की उपस्थिति होने पर लोकनाथ रस के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है।

प्रकुपित कफ के कारण मन्दाग्नि हो जाने से आम का संचय होने लगता है, फिर आँतें कमजोर हो जातीं और पतले दस्त आने लगते हैं। इसमें दुर्गन्धयुक्त आँव मिला हुआ कफ के समान दस्त होता है। किन्तु; दस्त ज्यादा नहीं होता। दस्त के समय आँतों में मरोड़ उठती है तथा बहुत किछने (काँखने) पर थोड़ा-सा आँवसहित दस्त होता है। इसमें मल भाग कम रहता है। रोगी बराबर चिन्ता में मग्न रहता है। पेट में भारीपन, भूख न लगना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी परिस्थिति में लोकनाथ रस के उपयोग से कफ-दोष कम हो जठराग्नि तेज हो जाती है और आँत भी मजबूत हो, अपना काम ठीक तरह से करने लग जाती है। जिससे आँव बनना बन्द हो जाता है। फिर धीरे-धीरे दस्त भी कम होने लगते हैं।

ग्रन्थिवाले रोग—जैसे ग्रन्थिकक्षय, ग्रन्थिक सन्निपात (प्लेग), गला, काँख आदि में गाँठ होने पर इसका उपयोग अधिकतर किया जाता है। क्योंकि इन में कफ-दोष ही प्रधान रहता है और इसी कारण गाँठें होती हैं। यदि पेट में ग्रन्थि (गाँठ) हो गयी हो और ज्वर भी हो गया हो तो पहले उदर शोधन कराकर इस रसायन का प्रयोग करना चाहिये। आजकल गले में गाँठ हो जाने की बहुत चलन है। इससे चेहरा बिलकुल खराब हो जाता है। यह गाँठ पित्ताधिक्य होने से लाल, कफाधिक्य होने से सफेद दिखायी पड़ती है। इसी दोषानुसार जलन, गला भारी हो जाना, आवाज में भारीपन, गला फूला हुआ

होना आदि लक्षण होते हैं। इस रोग में लोकनाथ रस बहुत फायदा करता है। क्योंकि यह कफशोषण करता है तथा गले में संचित दोषों को बाहर निकालता है।

कफ प्रधान कास-श्वास तथा गुल्म रोग, यकृद्विद्रधि और वृक्क विद्रधि की अपक्वावस्था एवं वाह्य विद्रधि की पक्वावस्था में यह अच्छा कार्य करता है।

प्रसूता स्त्रियों को कफ बढ़ जाने के कारण खाँसी, जुकाम, मन्दाग्नि, अरुचि आदि के साथ ज्वर हो तो लोकनाथ रस देने से बहुत फायदा होता है। —औ० गु० ध० शा०

शक्रवल्लभ रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, चाँदीभस्म, स्वर्णभस्म और स्वर्णमाक्षिक भस्म ३-३ माशे, वंशलोचन १ तोला और भाँग के बीजों का चूर्ण ४ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य औषधियों का कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण मिला कर सब को भाँग के रस में खरल करके ४—६ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम; मिश्री मिला हुआ गर्म दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन समस्त वीर्य-विकारजन्य रोगों के लिये अमृत के समान गुणकारी है। अप्राकृतिक मैथुन (हस्तमैथुन) आदि दुष्कर्मों से अथवा विषय भोग की अधिकता से जिन पुरुषों की इन्द्रिय (जननेन्द्रिय) में शिथिलता आ गयी हो तथा शारीरिक बल का ह्रास हो गया हो, उनके लिये इस रसायन का उपयोग परम उपयोगी है। शीघ्रपतन, नपुंसकता-नामर्दी आदि वीर्य की कमी से पैदा होने वाले रोग इसके सेवन से नष्ट होते हैं। इसके सेवन से शरीर में पुनः यौवन शक्ति पैदा हो जाती है। यह रसायन अत्यन्त स्तम्भक, बाजीकरण और स्त्रियों के मद को नष्ट करनेवाला है।

शंकर लौह

उत्तम कान्त लौहभस्म ६४ तोला को त्रिफला-क्वाथ में घोटकर छोटी-छोटी टिकिया बना, सुखा कर, सराब सम्पुट में बन्दकर गजपुट में फूंक दें। इसी प्रकार अदरख, सफेद भाँगरा, काला भाँगरा, मानकन्द, भिलावा, चीता, जिमीकन्द, हस्तिकर्ण, पलाश इनके रस और थूहर के दूध में घोटकर प्रत्येक की १-१ भावना देकर गजपुट दें।

फिर त्रिफला ६८ तोला को अठगुने पानी में पका, अष्टमाँश पानी शेष रहने पर छानकर उस क्वाथ में इस भस्म को मिला दें और ३२ तोला घी भी इसी में मिलाकर ताँबे के बर्तन में रख, चूल्हे पर चढ़ा, लोहे की करछी से चलाते रहें। जब घी स्वच्छ हो कर ऊपर आ जाये तो मृदु-मध्य तथा तीव्र अग्नि से पका कर रख लें।

—भा० भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती सुवह-शाम मधु से अथवा गाय या बकरी के दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन वात-पित्त, कुष्ठ, विषमज्वर, गुल्म, नेत्र-रोग, पाण्डु रोग-विकृत निद्रा (अधिक निद्रा), आलस्य, अरुचि, शूल, परिणाम शूल, प्रमेह, अपबाहुक, शोथ, विशेषतया रक्त-स्राव, अर्श और बलीपलित रोगों के लिये अत्युत्तम है।

यह बल, कान्ति व वीर्यवर्द्धक है और शरीर को स्वस्थ एवं पुष्ट कर के पुत्रोत्पादन-शक्ति प्रदान करता है।

रक्तार्श (खूनी बवासीर) रोग के लिये यह अमृततुल्य गुण करता है। इसकी परीक्षा अनेकों बार करके देख चुके हैं। रक्तार्श के लिये इससे अच्छी प्राय: दूसरी दवा और कोई नहीं है।

रक्तार्श में—मस्से लाल अथवा वट-अंकुर के समान होते हैं और पित्तजन्य बवासीर के लक्षणों से युक्त होते हैं। दस्त उतरने में तकलीफ और मस्से दबने से उसमें से गर्मागर्म रक्त निकलता है। यह रक्त अधिक निकलने से शरीर पीले वर्ण का हो जाना, त्वचा कठोर हो जाती, नाड़ी की गति धीमी पड़ जाती, खट्टी वस्तु तथा शीत

(ठण्डा) पदार्थ खाने की विशेष इच्छा, बल और शारीरिक शक्ति का ह्रास होना, मन में बेचैनी, मल (दस्त) का रंग काला-रूक्ष और कठोर होना, अधोवायु न खुलना अर्थात् वायु का अधोमार्ग से गति न होना इत्यादि लक्षण होते हैं। इसमें यह रसायन अमृत के समान गुण करता है। क्योंकि इस रसायन का प्रभाव आँतों पर विशेष होता है। आँतों में पहुँच कर यह कुछ मलबन्ध अवश्य उपस्थित कर देता; किन्तु विशेष मलबन्ध नहीं होता। क्योंकि इस रसायन में विरेचक द्रव्य—त्रिफलादि द्वारा भावना दी जाती है और इसका अनुपान भी पित्त विरेचक पदार्थ ही रहता है। जैसे आँतों के लिये यह मलबन्धक है, वैसे ही शरीर से होनेवाले रक्तस्राव के लिये भी ग्राही है। अतएव इसे रक्तार्श में प्रयोग करने से शीघ्र लाभ होता है।

लौह आँतों की अन्तः कला द्वारा रक्त में प्रवेश करता और वहाँ से यकृत् में पहुँचता है। यकृत में इसके कुछ ऐसे ऐन्द्रिक संयोग बनते हैं, जो शरीर में लीन हो जाते हैं। यह संयोग रक्त के रंजक द्रव्य से बहुत कुछ मिले-जुले होते हैं। और सम्भवतः वही संयोग हिमोग्लोबिन में बदल जाते हैं। अतएव इस रोग में इस रसायन के प्रयोग से रक्ताणु और रंजक द्रव्य की वृद्धि हो जाने से शरीर के प्रत्येक अंगों में स्फूर्त्ति बढ़ जाती है और वे अवयव अपने-अपने कार्य करने में भी समर्थ हो जाते हैं। —औ० गु० ध० शा०

शंखोदर रस

शंख भस्म ४ तोला, शुद्ध अफीम १ तोला, जायफल और सुहागे की खील १-१ तोला लेकर, सब को एकत्र मिला, अत्यन्त बारीक खरल कर के रख लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—½ रत्ती से १ रत्ती तक सुबह-शाम मक्खन के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन का अतिसार (पतले दस्त) तथा आमजनित शूल में उपयोग किया जाता है। इसके सेवन से अजीर्ण-विकार नष्ट हो जाता है। यह रक्तातिसार (खूनी अतिसार)

और रक्तार्श (खूनी बवासीर) में भी लाभदायक है। इसमें अफीम होने की वजह से यह वेदना-शामक भी है। अतएव दस्त के साथ होनेवाले दर्द को यह दूर करता है। इस रसायन का उपयोग आमातिसार और संग्रहणी की प्रारम्भिक अवस्था में नहीं करना चाहिये; क्योंकि इसमें अफीम पड़ी हुई है जो अपने स्तम्भक गुण के कारण संचित आँव को रोक देती है फिर शरीर में शोथ आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। यह शोथ प्रथम हाथ-पाँव आदि में होते हैं। आन्त्र में किसी विशेष कारणों से शिथिलता आ गई हो, तो इस दवा के सेवन से आँतें सबल हो अपने-अपने कार्य में समर्थ हो जाती हैं।

नोट—इस रसायन में अफीम है। अतएव सावधानी से इसका प्रयोग करें। छोटे-छोटे बच्चों, सगर्भा स्त्री एवं जिसे अफीम का नशा ज्यादे चढ़ती हो तथा कमजोर रोगी को इस दवा का सेवन नहीं करावें। यदि आवश्यकतानुसार देना ही पड़े तो थोड़ी मात्रा में दें।

शशिशेखर रस

लौह भस्म, अभ्रक भस्म और रससिन्दूर प्रत्येक समान भाग लेकर, एकत्र कर, घृतकुमारी के रस में घोट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम एरण्ड मूल-क्वाथ और सोंठ-चूर्ण अथवा बड़ी हर्रे के क्वाथ और शहद से दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से अण्डकोषों का बढ़ना और अन्त्र-वृद्धि रोग आराम होते हैं। रोग के प्रारम्भ होते ही यदि पथ्य-परहेज के साथ इसका नियमित रूप से कुछ दिनों तक सेवन किया जाय तो अवश्य ही लाभ होगा।

शृङ्गाराभ्र रस

कृष्णाभ्रक भस्म ८ तोले, कपूर, जावित्री, नेत्रवाला, गजपीपल, तेजपात, लौंग, जटामाँसी, तालीस पत्र, मोचरस, नागकेशर, कूठ, धाय के फूल ३-३ माशे, हर्रे, आँवला, बहेड़ा, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च

प्रत्येक १॥-१॥ माशे, इलायची के बीज और जायफल ६-६ माशे, शुद्ध गन्धक १ तोला एवं शुद्ध पारा ६ माशे लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य काष्ठौषधियों के कपड़छान किये हुए महीन चूर्ण तथा भस्म को एकत्र मिला, पानी के साथ घोंट कर चना (उबले हुये चने) प्रमाण की गोलियाँ बना (छाया में सुखा) सुरक्षित रख लें। —र० चं०

मात्रा और अनुपान—१-२ गोली सुबह-शाम। श्वास, कास, और कफ के दर्द में अदरख-रस के साथ मधु मिलाकर, अम्लपित्त में परवल के पत्ते का रस या आँवले के स्वरस अथवा क्वाथ से, ज्वर और मन्दाग्नि में पान के रस और मधु के साथ, शरीर में ताकत बढ़ाने के लिये मधु के साथ चाट कर ऊपर से दूध पीना चाहिये।

गुण और उपयोग—इस दवा के सेवन से फुफ्फुस और श्वास-यन्त्रों की बीमारी में बहुत लाभ होता है। श्वास, कफ, खाँसी, छाती या पसली में दर्द होना, ज्वर होना, शोथ आदि रोग इसके सेवन से नष्ट हो जाते हैं। अभ्रक का मिश्रण होने से यह अम्ल पित्त, पाण्डु और आमवात में भी लाभदायक है। वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषों की विकृति में इसका अच्छा प्रभाव होता है। यह बल्य (बल बर्द्धक) वृष्य और रसायन है।

कफ-वात प्रधान रोगों में इसका प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। इसमें कफाधिक्य से खाँसी विशेष होना, खाँसी के साथ कफ सफेद तथा चिकना और अधिक मात्रा में निकलना, मुँह और शिर भारी मालूम पड़ना, शिर में दर्द, छाती में कफ जमा हो जाना, फुफ्फुस में शिथिलता आ जाना, श्वास लेने में तकलीफ होना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी स्थिति में इस रसायन के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है। साथ ही बढ़ा हुआ कफ और खाँसी भी कम हो जाती है।

श्वासकुठार रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, सुहागे की खील, शुद्ध मैनसिल प्रत्येक १—१ तोला, कालीमिर्चें ८ तोला तथा सोंठ, मिर्च

ग्रौर पीपल २-२ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना लें, फिर उसमें अन्य ग्रोषधियों का कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिला, अच्छी तरह घोंट कर रख लें। —भा० प्र०

मात्रा ग्रौर अनुपान—४-५ रत्ती चार-चार घंटा बाद, कास-श्वास में अदरक के रस या पीपल चूर्ण ग्रौर मधु के साथ तथा शिरोरोग में पान के रस ग्रौर मधु या दूध के साथ दें।

गुण ग्रौर उपयोग—यह रसायन खाने ग्रौर सूंघने दोनों कार्यों में लिया जाता है। बेहोशी, मृगी, हिष्टीरिया ग्रौर सन्निपात में इसके सूंघने से रोगी को चेतना आती है। पित्तज कास-श्वास को छोड़कर यह सभी प्रकार के कास-श्वास में लाभ करता है। शिरो-रोग में यदि वात-कफ प्रधान हो, तो यह बहुत शीघ्र लाभ करता है। आधा शीशी, जुकाम, स्वर भेद, क्षय आदि रोगों में भी इससे अच्छा लाभ होता है।

श्वास रोग स्वतन्त्र रूप से हो या उपद्रव रूप से, दोनों तरह के श्वास रोग में यह अच्छा काम करता है। किन्तु जिस रोग में हृदय कमजोर हो गया हो ग्रौर साथ-साथ श्वास भी उपद्रव रूप में हो तो ऐसे रोगों में इस रसायन का उपयोग नहीं करना चाहिए। क्योंकि यह अपनी उग्रता क कारण हृदय को ग्रौर कमजोर बना देता है।

श्वास रोग की प्रारम्भिक अवस्था में यदि उचित ग्रौषधादि की व्यवस्था नहीं की जाय तो वह जवानी में ही बुढ़ापा ला देता है। किसी-किसी को तो आदत-सी हो जाती है या यों समझें कि प्रकृति ही ऐसी हो जाती है, कि जरा-सी ठंढी हवा या शीतोपचार होने, वर्षा-ऋतु या जाड़े की ऋतु प्रारम्भ होने, सूर्य की प्रचण्ड किरणों की गर्मी लगने तथा खटाई या मधुर पदार्थ के सेवन करने आदि से श्वास का दौरा शुरू हो जाता है। जब यह दौरा शुरू होता है तब मनुष्य (रोगी) यदि खड़ा रहता है तो असावधान ही में बैठ जाता या किसी के सहारे खड़ा हो जाता है। मन बेचैन हो जाता है। कफ निकालने की अनेक व्यर्थ चेष्टाएँ करता है, किन्तु कफ नहीं निकलता। कफ निकालने के लिए मिश्री की डली, जेठी मधु आदि कफनिःसारक

दवा मुँह में रख कर चबाने पर भी चैन नहीं पड़ती। ऐसी भयंकर स्थिति में यह रसायन जादू-सा असर करता है। इससे बढ़ा हुआ कफ शान्त हो कर श्वास का वेग कम हो जाता है जिससे रोगी को शीघ्र ही शान्त्वना मिल जाती है।

श्वास-कास चिन्तामणि रस

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, लोहभस्म ४ तोला, अभ्रकभस्म २ तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ तोला, मोतीभस्म ६ माशे, सुवर्णभस्म १ तोला, इन सबको एकत्र खरल कर, कटेरी के रस, अदरक के रस और बकरी के दूध तथा मुलैठी के क्वाथ और पान के रस से क्रमशः ७-७ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम। श्वास-रोग में बहेड़े की मींगी का चूर्ण और मधु के साथ, कास-श्वासरोग में पीपल-चूर्ण और मधु के साथ, कास (खाँसी) में अदरक का रस और मधु के साथ तथा बल-वृद्धि के लिये मलाई के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—यह रसायन हृदय को बल देने वाला, हितकर और शक्ति बढ़ानेवाला है। फेफड़े पर इसका बहुत अच्छा प्रभाव होता है। संचित विकारों को निकालना और फेफड़े को सबल बनाना इसका प्रधान कार्य है। नये-पुराने सभी प्रकार के श्वास-रोग में इससे बहुत लाभ होता है। दमे के जिन रोगियों को रात-दिन परेशानी रहती है, उन्हें इसका सेवन अवश्य करना चाहिये। कठिन और पुराने कास (खाँसी) में इसका सफल प्रयोग होता है। यह आँत, यकृत, मूत्राशय तथा हृदय की क्रिया को ठीक करता एवं वीर्य को पुष्ट करता है। इसका अधिक प्रयोग श्वास रोग में ही किया जाता है और इससे उचित लाभ भी होता है। इंजेक्शन आदि से हताश रोगी भी इससे शीघ्र अच्छे हो जाते हैं। बच्चों की कुकुरखाँसी और शोष-रोग भी इससे ठीक हो जाते हैं।

शिरःशूलादि वज्र रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, ताम्र भस्म प्रत्येक ४-४ तोले, शुद्ध गुग्गुल १६ तोले, त्रिफला चूर्ण ८ तोले तथा मुलैठी, पीपल, सोंठ, गोखरू, वायविडङ्ग और दशमूल, प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें फिर उसमें अन्य ओषधियों का चूर्ण मिला कर दशमूल-क्वाथ में घोटें और हाथ में घी लगा कर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें।—भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली सुबह-शाम। १ माशा गोदन्ती हरिताल भस्म और मिश्री मिला कर बकरी या गाय के दूध के साथ अथवा जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से वातज-पित्तज और कफज सब प्रकार के शिर दर्द नष्ट होते हैं।

शिर दर्द—स्वतन्त्र अथवा किसी रोग के उपद्रव रूप से दो तरह के होते हैं। स्वतन्त्र रूप से आयुर्वेद में ११ प्रकार के शिर दर्द बताएँ गए हैं। यथा—वात, पित्त, कफ, सन्निपात और रक्त के प्रकोप से, क्षय व कृमि से, सूर्यावर्त्त, अनन्तवात, अर्धावभेदक, शंखक इस तरह सब ११ हैं। इसके अतिरिक्त प्रायः देखा जाता है कि कोई भी रोग क्यों न हो; शिर दर्द उसमें होता ही है। ऐसा क्यों होता है? सम्पूर्ण शरीर का केन्द्रस्थान शिर है, यहीं से शरीर रूपी दुनियाँ का संचालन होता है। अतएव शरीर के किसी भी अवयव में तकलीफ होते ही उसका असर प्रथम मस्तिष्क पर पड़ता है। अतः जब तक वह अंग स्वस्थ नहीं हो जाता, शिर दर्द होता ही रहता है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि रात में विशेष जागरण, अधिक परिश्रम, मानसिक चिन्ता, जुकाम आदि कारणों से भी सिर दर्द होने लगता है। क्योंकि; उक्त सब कारण वातप्रकोपक हैं। अतः इन कारणों से वातप्रकुपित हो, शिर में दर्द होने लगता है। किन्तु इसमें दवा की उतनी आवश्यकता नहीं होती। ये दर्द तो प्रायः उपचार मात्र से ही ठीक हो जाते हैं। इनमें वात शमन

करनेवाला उपचार करना पड़ता है। इनमें यदि शिरःशूलादि वज्र रस का उपयोग किया जाय, तो बहुत सफलता मिल सकती है क्योंकि; इस रसायन में गुग्गुल की मात्रा विशेष होने से इसका प्रभाव वात और रक्तवाहिनी नाड़ियों पर विशेष होता है। गुग्गुल वात प्रशमन के लिये प्रसिद्ध है और दर्द बिना वात के होता नहीं। अतएव यह रसायन हर प्रकार के शिरदर्द में फायदा करता है।

—औ० गु० ध० शा०

शिवताण्डव रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, रससिंदूर, शुद्ध हरताल, प्रत्येक १-१ तोला, काली मिर्च का कपड़छान किया हुआ चूर्ण ४ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर शेष औषधियों को मिला कर अदरक स्वरस के साथ मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —र० वि०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम। अदरक-रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन तीक्ष्ण और उष्णवीर्य प्रधान है। सन्निपात की उग्रावस्था में जब दाँती बंध गयी हो, शरीर ठंडा पड़ गया हो, पसीना ज्यादा आता हो, कफ की वृद्धि हो रही हो, रोगी की पुतलियाँ तथा नेत्र टेढे हो गयें हो, नाड़ी की गति बहुत मन्द हो गयी हो, ऐन्द्रिक (इन्द्रियों की) शक्तियाँ क्षीण हो गयी हों—ऐसी भयंकर परिस्थिति में इस रसायन के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है। क्योंकि यह अपनी तीक्ष्णता के कारण कफदोष नष्ट कर पित्त को जागृत करता और फिर जागृत पित्त खून में मिलकर सम्पूर्ण शरीर में दौड़ता है जिससे सारा शरीर गर्म हो जाता और शिथिल हुए अवयवों में भी ताकत आ जाती है। फिर वे अपनी क्रिया करने में समर्थ हो जाते हैं।

शीतज्वरारि रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध हरताल, ताम्बे की भस्म, शुद्ध तूतिया प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की

कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधें मिलाकर सब को त्रिफला के क्वाथ में खरल कर गोला बना, सराबसम्पुट में बन्द कर लघुपुट में फूंक दें। स्वाँगशीतल होने पर औषध को निकाल आक और थूहर (सेहुण्ड) के दूध तथा दन्तीमूल और काली निशोथ के क्वाथ की सात-सात भावना देकर उड़द के बराबर गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। —शा० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली ज्वर आने से १ घंटा पहले तक ३-४ गोली काली मिर्च के चूर्ण ४ रत्ती, गुड़ १ माशा और तुलसी-पत्र-चूर्ण १ माशे में मिला कर सेवन करें।

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से शीत पूर्व (जाड़ा देकर आने वाला) ज्वर, दाह पूर्व ज्वर, विषम ज्वर, ऐकाहिक, त्रितीयक और चातुर्थिक ज्वर, सतत, सन्तत आदि विषम ज्वर नष्ट होते हैं।

शीतभंजी रस

शुद्ध तूतिया १ तोला, क्षुद्रशंख २ तोला और शुद्ध हरताल ४ तोला लेकर सब को एकत्र खरल कर के घृतकुमारी के रस में घोट, गोला बना लें। इसे सराब-सम्पुट में बन्दकर गजपुट में फूंक दें। स्वाँगशीतल होने पर औषध निकाल कर खरल करके शीशी में सुरक्षित रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—आधी-आधी रत्ती सुबह-शाम मिश्री के साथ आवश्यकतानुसार पान या तुलसी-पत्र-रस और मधु अथवा सप्तपर्ण (छतिवन) और कटकरंज के रस के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन शीतज्वर, ठंड लगकर आने-वाले बुखार (मलेरिया बुखार) की उत्तम दवा है। इसे उक्त अनुपान के साथ सेवन करने से शीतज्वर, पारी का बुखार, इकतरा, तिजारी चौथैया आदि ज्वर नष्ट हो जाते हैं। मलेरिया बुखार में कुनैन की जगह इस दवा का उपयोग करना उत्तम है। ज्वर छुटने के बाद कुनैन की तरह इससे कोई विशेष नुकसान भी नहीं होता।

शूलगजकेसरी रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, कौड़ी भस्म, जवाखार, सेंधानमक, पीपल और सोंठ समान भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिला, पान के रस में घोट कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।

—यो० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम गर्म जल या सोंठ घिस कर मधु में मिलाकर दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन सब प्रकार के शूल—परिणाम शूल (अन्नपाक के समय पेट में दर्द होना), कृमि, कुष्ठ, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, मन्दाग्नि, संग्रहणी, अम्लपित्त आदि रोगों को नष्ट करता है इस औषध के सेवन के थोड़ी देर बाद भुनी हींग, सोंठ, जीरा, बच और काली मिर्च का चूर्ण ३ माशा से ६ माशा तक गरम पानी के साथ खाने से अधिक फायदा होता है। अरुचि और आफरा में भी इसका सेवन कराया जाता है। वात, पित्त, कफ या किसी दोष से उत्पन्न शूल को यह शीघ्र नष्ट कर देता है।

यह रसायन वात-कफ शामक तथा पित्त को जागृत करने वाला है। इसका प्रभाव आँतों पर विशेष पड़ता है। यह यकृत् और ग्रहणी-विकार को भी नष्ट करता है।

प्रकुपित कफ—पित्त को आच्छादित कर मन्दाग्नि पैदा कर देता है। फिर पाचन क्रिया ठीक-ठीक न होने से अजीर्ण होने लगता है और शूल रोग प्रायः अजीर्ण से ही उत्पन्न होता है। आमाशय में आमान्न (कच्चा अन्न) ज्यादे संचय (इकट्ठा) हो जाने से आतों पर दवाब पड़ता है। फिर पेट में भयंकर दर्द, गुड़-गुड़ आवाज होना, जी मिचलाना, शरीर में आलस्य, छाती में भारीपन, खट्टी डकार, दस्त होना आदि लक्षण उपस्थित होने पर इस रसायन के प्रयोग से प्रकुपित कफ-दोष शान्त हो, पित्त उत्तेजित हो कर जठराग्नि जागृत हो जाती है। और पाचन क्रिया में सुधार होने से सब उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

अम्लपित्त में—रोग की प्रकोपावस्था प्रारम्भ होने से पूर्व भोजन के बाद ही पेट में दर्द होना प्रारम्भ हो जाता है। यह दर्द ही इसकी उग्रावस्था का सूचक है। क्रमशः यह दर्द यहाँ तक बढ़ जाता है कि रोगी का खाना तक बन्द हो जाता है, दूध आदि लेने लग जाता है, तथापि मन्दाग्नि होने के कारण आमाशय में इतनी शिथिलता आ जाती है कि वह दूध को भी नहीं ठहरने देता। जब तक वमन होकर वह दूध बाहर नहीं निकल जाता रोगी को शान्ति नहीं मिलती है। यह अवस्था बहुत भयंकर होती है, रोगी कमजोर और परेशान हो जाता है, ऊर्ध्ववायु के प्रकोप से डकारें बहुत जोर-जोर से आने लगती हैं। ऐसी अवस्था में शूलगजकेसरी के प्रयोग से अति शीघ्र लाभ होता है। यह प्रकुपित वात को शान्त कर पाचक-अग्नि को प्रदीप्त करता है, जिससे अन्नादि का पाचन होने लगता है और आमाशय सबल हो, अपना कार्य करने में समर्थ हो जाता है, तथा दर्द भी बन्द हो जाता है।

वृक्कशूल और पित्तशूल—इनमें भी इसका उपयोग किया जाता है। पित्तशूल—यकृत से एक नली पक्वाशय में गई है। उसी नली द्वारा यकृत् से पित्त निकलकर पक्वाशय में जाता और भोजन को पचाने में सहायता करता है। कभी-कभी यह पित्त सूख कर पत्थर जैसा कठिन हो जाता है और यकृत् के मुँह या नली में आकर रुक जाता है। इससे बहुत भयंकर दर्द होता है। इस दर्द के साथ जी मिचलाना, पित्त का वमन द्वारा निकलना, प्यास ज्यादे लगना, मुँह सूखना, शरीर में जलन, मन बेचैन रहना ये उपद्रव होते हैं। ऐसी अवस्था में गर्म जल में घृत मिलाकर (इस अनुपान के साथ) यह दवा देने से अच्छा लाभ होता है।

वृक्कशूल में भी इसी तरह जो नली वृक्क (गुर्दे) मूत्राशय में गयी है उसमें भी पथरी हो कर भयानक दर्द होता है। यह दर्द वृक्क स्थान से लेकर जननेन्द्रिय तक होता है। इसमें भी वमन होना, पेशाब में जलन, दस्त की शंका बना रहना, पेशाब जरा-जरा-सा होना

आदि लक्षण होते हैं। इस रोग में भी पथरी नाशक दवा के साथ-साथ इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है। —श्री० गु० ध० शा०

शूलकुठार रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागे की खील, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, शुद्ध हरताल, शुद्ध बच्छनाग, ताम्रभस्म, शुद्ध जमालगोटा समान भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य ओषधियों का महीन चूर्ण मिला कर भाँगरे के रस में घोट कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें।

—वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम काली मिर्च या अदरक-रस के साथ दें।

गुण और उपयोग—वात-प्रकोप, अजीर्ण अथवा अन्य किसी भी कारण से उत्पन्न पेट-दर्द इससे शीघ्र आराम हो जाते हैं। यह रसायन रेचक है अतः इसके सेवन से दस्त भी होता है। विष्टब्ध और अजीर्ण जन्य शूल में इसका विशेष उपयोग होता है।

इस रसायन में जमालगोटे का मिश्रण होने से विष्टब्धाजीर्ण में विशेष रूप से उपयोग किया जाता है। मन्दाग्नि होने से पेट में मल-संचय होने लगता है, फिर पेट में शूल, पेट फूलना, आँतों में मरोड़ उठना, मल बंध, अधोवायु का अवरोध आदि लक्षण होने पर इसके उपयोग से मल संचय दूर हो, अधोवायु का भी निष्कासन होने लगता है और अग्नि प्रदीप्त हो कर अन्नादिक का पचन भी ठीक तरह से होता है।

शूलनाशन रस

रससिंदूर, शङ्खभस्म, शुद्ध गन्धक, सोंठ, पीपल, सेंधानमक, अम्लवेत और सफेद जीरा प्रत्येक सम भाग ले, मिर्च २ तोला और सब औषधों के आधा कुचला चूर्ण लेकर सबको एकत्र खरल में डाल कर अदरक और सहिजन के रस के साथ मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —र० वि०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम गर्मजल अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन दीपन-पाचन होने के कारण अग्निमांद्य, अतिसार, ग्रहणी तथा विसूचिका रोग को नष्ट करता है। पाचक पित्त को बढ़ाने के कारण यह शारीरिक शक्ति बढ़ाता और कान्ति को सुन्दर बनाता तथा शारीरिक अवयवों में ताकत उत्पन्न करता है। इसके कुछ दिनों तक लगातार प्रयोग करने से गुल्मरोग नष्ट हो जाता है। वातजन्य शूल, विशेषकर उदर शूल के लिये यह उत्तम परीक्षित औषध है।

सन्निपातभैरव रस

शुद्ध हिंगुल ४।। तोला, शुद्ध गंधक २ तोला, शुद्ध बच्छनाग २ तोला, शुद्ध धत्तूर बीज ३ तोला २ माशा, सुहागे की खील १ तोला १ माशा इन सबको एकत्र मिला जम्बीरी नीबू के रस में खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम अथवा रोगी के अवस्थानुसार अदरक रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन सन्निपात ज्वर के लिये बहुत उत्तम है। सन्निपात ज्वर की प्रत्येक अवस्था में इसका उपयोग किया जाता है, किन्तु पित्ताधिक्य अर्थात् जिस सन्निपात में पित्त दोष बढ़ा हुआ हो और पित्तजनित उपद्रव भी बढ़े हुए हों, यथा—मुँह सूखना, प्यास लगना, शिर में चक्कर आना, देह में जलन, हाथ-पाँव और आँखों में भी जलन, पतला दस्त होना, ज्वर का टेम्प्रेचर बहुत बढ़ा हुआ आदि लक्षण हों, तो इस दवा का उपयोग नहीं करना चाहिये। यदि देना ही हो तो किसी सौम्य गुणयुक्त औषधियों के साथ प्रयोग करें।

वात-कफ प्रधान दोषों में यह विशेष फायदा करता है। अर्थात् जिस सन्निपात में—देह व शिर में दर्द, खाँसी, कफ की अधिकता, कभी निद्रा आवे और कभी नहीं भी, शिर को इधर-उधर ज्यादे

पटकना, जीभ काले या सफेद वर्ण का हो जाना, मुँह का जायका मीठा, तन्द्रा, पसीना चलना आदि उपद्रव हों, तो उसमें यह रसायन बहुत शीघ्र लाभ करता है।

समीरगजकेसरी रस

शुद्ध नवीन अफीम, शुद्ध कुचला चूर्ण और कालीमिर्च चूर्ण प्रत्येक समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। —र० रा० सु०

मात्रा और अनुपान—१ गोली सुबह खाकर बाद में पान खाना चाहिये।

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से कुब्जता (कुबड़ापन) खंजवात (लंगड़ापन), गृध्रसी, अपबाहुक, शोष, कम्प, अपतानक, विसूचिका, अरुचि और अपस्मार रोग नष्ट होते हैं।

यह रसायन अति-उग्र और उष्ण वीर्य है तथा प्रबल वात-कफ नाशक है। वातवाहिनी नाड़ियों पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है। वात प्रकोप के कारण विकृत स्नायुओं पर भी इसका कार्य उत्तम होता है। वात जनित आक्षेपवाले रोगों में यह अधिक फायदा करता है।

नोट—इसमें कुचला और अफीम का मिश्रण है। अतएव इस दवा का प्रयोग सोच-समझ कर करना चाहिये। अति दुर्बल, गर्भवती स्त्री, छोटे बच्चों तथा जिनका हृदय कमजोर हो या हृदय सम्बन्धी कोई बीमारी हो ऐसे रोगियों को यह दवा नहीं देनी चाहिये।

सर्वतोभद्र रस

अभ्रक भस्म २ तोला, शुद्ध गंधक १ तोला, हिंगुलोत्थ पारा ६ माशा, कपूर, केशर, जटामांसी, तेजपात, लौंग, जायफल, जावित्री, छोटी इलायची, गजपीपल, कूठ, तालीशपत्र, धाय के फूल, दालचीनी, नागरमोथा, कालीमिर्च, सोंठ, हर्रे, बहेड़ा, आँवला और पीपल प्रत्येक ३-३ माशा लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना उसमें अभ्रक-भस्म और केशर डाल कर पान के रस में केशर अच्छी तरह मिल जाय,

इतना घोटे। पीछे अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिला, पान के रस में मर्दन-कर, ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-२ गोली, सुबह-शाम। पानी, कच्चे नारियल का जल, मीठे दाड़िम का रस या चन्दनादि अर्क के साथ दें

गुण और उपयोग—विदग्धाजीर्ण, तृषा, आमदोष, विसूचिका, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, मूर्च्छा, ग्रहणी रोग, वमन, अम्लपित्त, शीतपित्त और रक्त पित्त इन रोगों में सर्वतोभद्र रस का प्रयोग किया जाता है। पित्त प्रकृति वालों के लिये पाचन की खराबी में इससे अच्छा लाभ होता है।

सर्वाङ्गसुन्दर रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर कज्जली बना, पर्पटी-विधान से बनाई हुई पर्पटी २ तोला लें। फिर जायफल, जावित्री, लौंग, निम्बपत्र, निर्गुण्डी के पत्ते और छोटी इलायची के दाने १-१ तोला लेकर चूर्ण बना लें। पर्पटी को खूब महीन पीसकर काष्ठौषधियों का कपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण मिला, पानी के साथ बारह घण्टे तक खरल कर, गोला बना मोतीसीप (मुक्ताशुक्ति) में बन्दकर कपड़मिट्टी करके लघुपुट में रख दें। स्वांग शीतल होने पर सम्पुट निकाल मिट्टी ऊपर से हटाकर दवा निकाल खरल में महीन पीसकर सुरक्षित रख लें। —र० च०

मात्रा और अनुपान—१-२ रत्ती सुबह-शाम। बच्चों को इसकी चौथाई मात्रा में दें। बच्चों के लिये माता का दूध या मधु के साथ देना अच्छा है। रक्तस्राव सम्बन्धी विकारों में वासा-रस और मधु के साथ, अतिसार और संग्रहणी में सोंठ चूर्ण और मधु के साथ दें। रक्तप्रदर में मौलसरी की छाल के क्वाथ के साथ देने से यह बहुत शीघ्र रक्त को बन्द कर देता है।

गुण और उपयोग—यह रसायन अग्निदीपक, बलवर्द्धक और बालकों का परम हितकारक है। बालग्रह, ज्वर, अतिसार, दूषित दूध के विकार आदि सभी बाल रोगों में यह बहुत अच्छा लाभ करता है।

बच्चों के हरे-पीले दस्त, अपच, संग्रहणी, वमन और शोष रोगों में इसका मिश्रण बहुत उपकारक है। बच्चों की तरह ही स्त्री-पुरुषों के अतिसार, ज्वरातिसार, आमानुबन्ध संग्रहणी और उसके उपद्रव इससे ठीक हो जाते हैं। पित्तातिसार, प्रदाह, अम्लपित्त, रक्तप्रदर, शिरोभ्रम, अंशुघात, नेत्रदाह, प्रवाहिका तथा रक्तस्राव सम्बन्धी रोगों में इसका प्रयोग किया जाता है। प्रसूतातिसार और प्रसूता की संग्रहणी में भी इससे बहुत लाभ होता है।

यह रसायन वात-कफ शामक और रक्त निरोधक है। कफ-प्रधान रोगों में इसके प्रयोग से बहुत लाभ होता है।

आयुर्वेद के मतानुसार बच्चों में कफ की वृद्धि होने से उसकी प्रकृति भी कफात्मक ही होती है। अतएव कफ सम्बन्धी रोग बच्चों को अक्सर हो जाया करते हैं। कभी-कभी कफ बढ़ जाने के कारण बच्चे को पतले दस्त होने लगते हैं। दस्त पतले सफेद रंग के और फटे हुए-से बार-बार होना, वमन होना, पेशाब ज्यादा और सफेद होना आदि उपद्रव उत्पन्न होने पर सर्वाङ्ग सुन्दर रस से बहुत फायदा होता है। इससे बढ़ा हुआ कफ दस्त के रास्ते निकल जाता है और आँतों की विकृति दूर होकर, आँत निर्दोष और सबल हो जाती है जिससे दस्त भी गाढ़े होने लगते हैं और फिर धीरे-धीरे कमजोरी दूर हो, बच्चा स्वस्थ हो जाता है।

ज्वरातिसार के प्रारम्भ में हरे-पीले रंग के दस्त होने के साथ-साथ ज्वर भी होने लगता है और धीरे-धीरे यह ज्वर १०२–१०३ डिग्री तक पहुँच जाता है। इसमें प्यास ज्यादा लगना, बेचैनी तथा वमन आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। रोग की उग्रावस्था में दूध भी नहीं पचता, ज्वर की गर्मी के मारे बच्चा ठण्डा जल पीने या पृथ्वी पर सोने की इच्छा करता है, ऐसे समय में दूध बन्द कर मोसम्बी, अनार या अंगूर के रस या ग्लूकोज पानी में डालकर अथवा बकरी के दूध में मिलाकर देने से अच्छा लाभ होता है। बार्ली भी दे सकते हैं। साथ-साथ सर्वाङ्ग सुन्दर रस भी थोड़ी-थोड़ी मात्रा में देते रहें, तो बहुत शीघ्र लाभ होता है।

संग्रहणी की पुरानी अवस्था में जब मल के साथ रक्त भी आता हो, और आँव का अंश कम हो, आँतों में दर्द व मरोड़ उठती हो, दस्त बार-बार होते हों, ऐसी हालत में सर्वाङ्ग सुन्दर रस शर्बत अनार या कुटजावलेह में मिलाकर देने से अवश्य फायदा होता है।

अतिसार होने पर यदि समुचित चिकित्सा नहीं हुई तो यह रोग प्रवाहिका के रूप में बदल जाता है। इसमें दस्त बहुत और अनेक बार होते हैं। आँतों की कमजोरी एवं गुदावलियों की शिथिलता से दस्त नहीं रुकता, वेग आने पर तुरत ही बाहर निकल आता है जिससे कपड़े भी खराब हो जाते हैं। इसकी उग्रावस्था में काँच भी निकलने लगती है। ऐसी अवस्था में आँतों को सबल बनाने तथा जठराग्नि प्रदीप्त करने और दस्त को बाँधने के लिये सर्वाङ्ग सुन्दर रस का उपयोग किया जाता है। (भाँग की पोटली बना, कडुए तेल में डुबोकर पोटली को जरा गर्म कर गुदमार्ग को सेंकने से काँच निकलना बन्द हो जाता है)।

बच्चों के पारिगर्भिक रोग में---आयुर्वेद-शास्त्र के मतानुसार गर्भवती माता के दूध पीने से बच्चे को यह रोग होता है। क्योंकि यह दूध भारी होने की वजह से गुरुपाकी होता है, जिसे छोटे बच्चे हजम नहीं कर सकते। परिणाम यह होता है कि दूध पेट में ज्यों का त्यों पड़ा रहता है। इसमें पेट बढ़ जाता और हाथ-पाँव सूखकर पेट आगे निकल आता है। आँखें सफेद हो जातीं, भूख नहीं लगती, पतले दस्त होते, ज्वर भी होता, खाने की इच्छा न होते हुए भी खाने के लिये रोते रहना, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाना, कान्तिहीन आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में सर्वाङ्गसुन्दर रस प्रवालचन्द्र पुटी के साथ देने से बहुत लाभ होता है। माता का दूध बन्द कर बकरी या गाय का दूध देना हितकर है।

रक्तप्रदर, यदि किसी दवा से अच्छा होता हुआ न दीखे तो मौलसरी की छाल का चूर्ण १ तोला के साथ सर्वाङ्गसुन्दर रस देने से २-४ रोज में ही आश्चर्यजनक लाभ करता है। यह कई बार का परीक्षित है।

सर्वाङ्गसुन्दर रस (यक्ष्मा)

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक १-१ तोला, सुहागे की खील २ तोला, मोतीपिष्टी, प्रवालभस्म, शङ्खभस्म प्रत्येक १-१ तोला, सुवर्णभस्म ६ माशे लें, प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, उसमें अन्य दवा मिला, नीबू के रस में खरल कर गोला बना, सराब-सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक दें। स्वांग शीतल होने पर निकालकर, उसमें लौहभस्म ६ माशे, शुद्ध हिंगुल ३ माशे मिलाकर खूब महीन खरल कर सुरक्षित रख लें। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ रत्ती, शहद, पिप्पली-चूर्ण या अदरक-रस के साथ दें।

गुण और उपयोग—यक्ष्मा, पुरानी खाँसी और दमा में इस दवा से बहुत लाभ होता है। खाँसी चाहे कैसी भी हो इसके सेवन से अवश्य दूर हो जाती है। राजयक्ष्मा की यह प्रसिद्ध औषध है।

स्वच्छन्दभैरव रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग २-२ तोला और जायफल का चूर्ण १ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमें कपड़छान किया हुआ पीपल चूर्ण ३।। तोला मिला, खरल कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—आधी-आधी रत्ती सुबह-शाम, पान का रस अदरक रस या गूमा-रस के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन के सेवन से जाड़ा देकर आनेवाला ज्वर, नवीन ज्वर, विषम ज्वर, हैजा, पीनस, प्रतिश्याय (जुकाम), जीर्ण ज्वर, अग्निमांद्य, वमन और शिरदर्द अच्छे हो जाते हैं।

यह रसायन उष्णवीर्य प्रधान है। इसका प्रभाव श्लैष्मिक कलाओं पर विशेष पड़ता है, साथ ही यह वात-शामक भी है। यह दोष और दूष्य दोनों को पचाता व अग्नि प्रदीप्त करता है।

ज्वर रोग की यह प्रधान दवा है। नवीन ज्वर में उपवास

कराने के बाद ज्वर और दोष का पाचन करना आवश्यक रहता है ; उस स्थिति में इसके प्रयोग से ये दोनों काम हो जाते हैं। यदि ज्वर बढ़ता ही गया या वह विषमज्वर में बदल गया, तब भी इससे बहुत लाभ होता है।

ज्वर में मन्दाग्नि हो जाना स्वाभाविक बात है। किसी-किसी को ज्वर छूट जाने पर भी मन्दाग्नि दोष दूर नहीं होता जिससे भूख नहीं लगती, कमजोरी बनी रहती, शरीर में आलस्य तथा रक्त की कमी, अन्न पर अरुचि आदि उपद्रव बने रहते हैं। ऐसी अवस्था में इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है। यह रसायन दोष को पाचन करते हुए अग्नि को भी प्रदीप्त करता है, जिससे भूख लग कर अन्न पर रुचि होती और धीरे-धीरे कमजोरी भी दूर हो जाती है, इसके साथ सुदर्शन अर्क और बढ़ा देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। जुकाम दूर करने के लिये भी इस रसायन का उपयोग किया जाता है।

जीर्णज्वर में—शरीर कमजोर हो गया हो, हृदय की गति कमजोर हो गयी हो, बुखार नहीं छूटता हो तो इसे देना चाहिये।

स्वर्णवसन्त मालती

स्वर्ण भस्म या वर्क १ तोला, मोती पिष्टी या भस्म २ तोला, शुद्ध हिंगुल ३ तोला, काली मिर्च का कपड़छान किया हुआ चूर्ण ४ तोला, खर्पर भस्म या यशद भस्म ८ तोला लें। प्रथम हिंगुल को पीस कर यदि सुवर्ण की भस्म ली हो तो सब द्रव्यों को एक साथ मिला कर तीन घण्टा मर्दन करें। यदि सोने के वर्क लिये हों, तो उसमें अन्य द्रव्य मिला कर पीछे सोने का वर्क एक-एक करके मिलाते जायँ, जब तक सोने का वर्क अच्छी तरह मिल न जाय मर्दन करते रहें। फिर उसमें २ तोला गाय के दूध से या छाछ से निकाला हुआ मक्खन मिला कर एक दिन मर्दन करें। (यद्यपि शास्त्रीय विधान कलांश मक्खन देने का मिलता है, परन्तु इसमें प्रायः चतुर्थांश अथवा इतना मक्खन मिलावें, जिससे आटा गुंदे हुए जैसा हो जाय)। पीछे कागजी नीबू का कपड़े से छना हुआ रस मर्दन योग्य

डाल कर (एक दिन में जितना रस सूखे उतना ही डालें) प्रति दिन मर्दन करें। जब तक मक्खन की चिकनाई दूर न हो जाय बराबर घोंटते रहें। सामान्यतः मक्खन की चिकनाई दूर करने के लिये मध्यम आकार के ९५ नीबू का रस आवश्यक होता है। फिर एक-एक रत्ती की टिकिया बना, छाया में सुखा कर रख लें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—एक से दो रत्ती सुबह-शाम। छोटी पीपल का चूर्ण दो रत्ती मधु के साथ देकर ऊपर से गाय का दूध दें। अथवा सितोपलादि चूर्ण एक माशा मधु के साथ दें। जीर्णज्वर, जीर्णकास-श्वास और क्षय रोग में चौंसठ पहरी पीपल और मधु के साथ अथवा च्यवनप्राशावलेह के साथ दें। धातुक्षीणता, प्रमेह, प्रदर, बहुमूत्र और सोम रोग में दो रत्ती शिलाजीत, एक रत्ती वसंत-मालती, धारोष्ण दूध के साथ दें। मन्दाग्नि विकार में भुने हुए जीरे का चूर्ण और मधु मिला कर दें।

इसका उपयोग अभ्रक भस्म एक रत्ती, प्रवाल पिष्टी एक-दो रत्ती, हरिण शृङ्गभस्म चार रत्ती, गूडूचीसत्व एक माशा और सितोपलादि चूर्ण एक माशा के साथ मिला कर मधु और दूध के अनुपान से किया जाता है।

१—गाय के दूध दस तोला, उतना ही पानी मिला कर उसमें एक छोटी पीपल और ६ माशे मिश्री डाल कर दूध औटावें, जब पानी जल कर दूध मात्र शेष रहे, तब उबले हुए पीपल में एक रत्ती वसन्त मालती मिला कर सेवन करें और ऊपर से दूध पी लें।

२—पित्त प्रकृति वाले को सफेद जीरे का चूर्ण और मिश्री या जीरा और गुड़ या आँवले के मुरब्बे के साथ दें।

३—कफ प्रकृति वाले को ६ माशे शहद में पीपल का चूर्ण दो रत्ती, वसन्त मालती डेढ़ रत्ती मिला कर सुबह-शाम दें। इससे जीर्ण ज्वर, कास, दमा, अग्निमांद्य और कफ रोग दूर हो जाते हैं।

४—ज्वर न हो किन्तु स्वप्नदोष हो, तो ३ माशे शहद, ६ माशे मक्खन, ६ माशे मिश्री, १ रत्ती वसन्त मालती मिला कर दें।

५—यदि दूध हजम होता हो, तो पाव भर गाय के धारोष्ण दूध में मिश्री १ तोला और गाय का घी ६ माशे मिला कर दें।

६—स्त्रियों के रक्तप्रदर में चावल धोवन के साथ देना लाभदायक है।

७—यदि पित्त जन्य दाह हो और पेशाब लाल हो, तो गिलोय का सत्त्व २ रत्ती एवं वसन्त मालती १ रत्ती का मिश्रण मिश्री और शहद के साथ दें।

गर्भवती स्त्रियों व बच्चों को उक्त विकार हो, तो आधी मात्रा में दें। धातु क्षय वाले यदि इस दवा को नियमपूर्वक २१ दिन तक सेवन करें तो धातु पुष्ट हो जाता है।

गुण और उपयोग—यह रसायन—जीर्ण ज्वर तथा सप्तधातु-गत ज्वर, राजयक्ष्मा, रोग छूटने के बाद की कमजोरी, स्त्रियों का श्वेत रक्त-प्रदर, पाण्डुरोग, ग्रहणीरोग, अग्निमांद्य, गण्डमाला, अन्त्रक्षय, फुफ्फुस कला का शोथ, बाल शोष (सूखा रोग) इन रोगों में विशेष लाभ करता है। यह जठराग्नि और धात्वग्नि की परिपाक-क्रिया को सुधार कर उनकी विकृति से होनेवाले सब रोगों को दूर करता और शरीर को बल-वर्णयुक्त तथा पुष्ट करता है। मस्तिष्क में स्फूर्ति और बल पैदा करना इसका खास कार्य है। स्त्री-पुरुष और बालकों के लिये सब ऋतुओं में यह फायदा करता है।

आयुर्वेद शास्त्रकारों का यह कहना कि "सर्व रोगे वसंतः" अर्थात् सब रोगों के लिये वसन्तमालती अच्छी दवा है यह सर्वथा युक्तिसंगत और सत्य बात है। यह शरीर के प्रत्येक अंगों को बल देती तथा अनेक रोगों को नाश करती है। इस रसायन द्वारा जो बल प्राप्त होता है वह स्थायी होता है। यद्यपि कुचला भी उत्तेजक और बलप्रद है। किन्तु इसके द्वारा जो बल मिलता है वह उतनी ही देर के लिये, जब तक की उत्तेजना का प्रभाव रहता है। बाद में पुनः पूर्ववत् ही हो जाता है। इसका कारण यह है कि कुचला से जो बल मिलता है वह धातुओं की विकृति को दूर न करते हुए बल देता है परन्तु बसन्तमालती प्रत्येक धातुओं की विकृति को दूर

करते हुए बल प्रदान करती है। इसीलिये इसके द्वारा मिला हुआ बल स्थायी रहता है। क्योंकि ऐसा नियम है कि पूर्व धातु से पर धातु की पुष्टि होती है। पूर्व धातु जितना पुष्ट रहेगा पर धातु उतना ही बलवान होगा। यथा—रस जितना अच्छा, परिपुष्ट तथा विशुद्ध रहेगा, रक्त उतना ही सुन्दर तैयार होगा। इसी तरह आगे भी समझें। धातुओं की पुष्टि के ऊपर ही त्रिदोष (वात-पित्त-कफ) का भी बल निर्भर है, और त्रिदोष शरीर की भित्ति है। अतः इसे भी सबल बनाना परमावश्यक है। त्रिदोष में किसी एक में गड़बड़ी होने पर शरीर के प्रत्येक अवयवों में कुछ न कुछ विकार आ ही जाता है। इन सब कामों को अच्छी तरह सम्पादन करने के लिये वसन्तमालती का उपयोग किया जाता है और उसके द्वारा शरीर के प्रत्येक अवयव सबल और पुष्ट हो जाते हैं।

यह रसायन पाचक और दीपक होने से मन्दाग्नि के लिये भी प्रयोग किया जाता है। किसी भयंकर व्याधि से मुक्त होने के बाद धातु अति क्षीण हो जाने से शरीर बहुत कमजोर हो जाता है, भूख नहीं लगती, मन्दाग्नि बनी रहती, जो थोड़ा बहुत कुछ खाया भी गया, तो पाचक रस की उत्पत्ति न होने के कारण अजीर्ण-सा बना रहता है जिससे रस-रक्तादि धातु भी पुष्ट नहीं हो पाती। ऐसी अवस्था में वसन्त मालती के प्रयोग से बहुत लाभ होता है। क्योंकि यह जठराग्नि को प्रदीप्त कर अजीर्ण-दोष को नष्ट करती है, तथा पाचन क्रिया को सुधार कर रस-रक्तादि धातुओं को बल प्रदान करती है। यह शरीर के वर्ण को निखार देती है। धीरे-धीरे कमजोरी दूर हो, रोगी स्वस्थ और कान्तिवान् हो जाता है।

सुवर्ण कीटाणु नाशक है, अतएव राजयक्ष्मा में उत्पन्न कीटाणुओं को नाश करने की शक्ति इसके द्वारा प्राप्त होती है। राजयक्ष्मा की प्रारम्भिक अवस्था में सूखी-खाँसी, ज्वर, विशेषकर रात को ज्वर की गर्मी बढ़ जाना, प्रातः पसीना आना, तथा रस-रक्तादि धातुओं की क्रमिक क्षीणता के कारण शरीर का धीरे-धीरे कमजोर होता जाना ऐसी परिस्थिति में वसन्त मालती के उपयोग से बहुत लाभ होता

है। अनुपान में प्रवाल चन्द्रपुटी, गुर्च सत्व १-१ रत्ती मिला कर आँवले के मुरब्बे के साथ दें। इससे कफ ढीला होकर निकलने लगता है और बुखार की गर्मी भी क्रमशः कम होने लगती है। सबसे प्रधान कार्य्य यह होता है कि शारीरिक बल का नाश नहीं होता।

मलेरिया ज्वर में—जाड़ा देकर बुखार आता है। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि अनेक प्रकार की सिद्धौषधियाँ—कुनैन, सोमल कल्प आदि दिये जाने पर भी यह बुखार नहीं रुकता है, रोगी दवा लेने से भी घबराने लगता है, प्लीहा वृद्धि भी हो जाती है, शरीर दुर्बल और पाण्डुवर्ण का हो जाता है, अन्न में अरुचि, अग्निमांद्य आदि लक्षण हो जाते हैं, ऐसी अवस्था में यह रसायन अपना अपूर्व चमत्कार दिखलाता है। सुवर्ण और मोती के मिश्रण की वजह से इसमें रोग प्रतिकारक अपूर्व शक्ति है। यह अपनी शक्ति द्वारा रोग की शक्ति को कम कर उस पर विजय प्राप्त करके रोगी को सब उपद्रवों से मुक्त कर देता है। इस दवा के सेवन के साथ ही प्लीहा नाश करने के लिये लौहासव, रोहितकारिष्ट आदि दवाओं का सेवन करना चाहिये।

रक्तस्राव—स्त्रियों को अधिक रजःस्राव होने या बच्चा होने के समय ज्यादा रक्त निकल जाने पर अन्य धातुओं की भी क्षीणता होने लगती है, जिससे शरीर कमजोर तथा कान्ति हीन हो जाता है, अग्निमांद्य व वात प्रकोप के कारण सम्पूर्ण शरीर में दर्द, हाथ-पैर और आँखों में जलन, भूख नहीं लगना, निरुत्साह, स्वभाव चिड़चिड़ा, गुस्सा ज्यादा, रक्त की कमी से शरीर पीला हो जाना आदि लक्षण होने पर वसन्तमालती देने से अच्छा लाभ होता है। कभी-कभी इन लक्षणों के साथ शरीर सूज जाता है प्रधानतया दोनों पैर और मुख पर सूजन होती है, ऐसी स्थिति में मण्डूर या लौह भस्म के साथ वसन्त मालती देना अच्छा है। साथ में दशमूलारिष्ट या अश्वगंधारिष्ट का भी सेवन करना बहुत लाभदायक होता है।

स्त्रियों के श्वेतप्रदर में भी इसका प्रयोग किया जाता है। इस रोग के प्रारम्भिक अवस्था में यह बहुत शीघ्र और अच्छा फ़ायदा

करता है। यह गर्भाशय और योनि स्थित श्लैष्मिक-कला को बल देता है, जिससे स्राव अपने आप रुक जाता है। इसी तरह पुरुषों की धातु क्षीणता में—अत्यधिक स्त्री प्रसंग या अप्राकृतिक ढङ्ग से शुक्र का नाश करने या स्वप्नदोष आदि कारणों से शुक्र धातु का ह्रास हो जाने से शरीर कमजोर, मन्दाग्नि, भूख न लगना, विचार और स्मरण शक्ति का नाश हो जाना, किसी कार्य में उत्साह न होना, किसी से बोलने की भी इच्छा न होना, एकान्त प्रिय होना, मस्तिष्क शून्य मालूम पड़ना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इसका कारण यह है कि शुक्र की क्षीणता होने से अन्य धातुएँ भी निर्बल हो जातीं तथा शरीर के अन्तरावयव भी कमजोर हो जाते हैं। इन सब की कमजोरी को दूर करने तथा शुक्र को पुष्ट करने के लिये वसन्त मालती का प्रयोग किया जाता है।

जीर्ण ज्वर के लिये तो यह प्रसिद्ध औषध है, परन्तु पुराने अतिसार तथा पुरानी संग्रहणी में बल और मांस क्षीण होने पर शक्ति का नाश हो जाता है। इस अवस्था में शारीरिक शक्ति की रक्षा करने के लिये इस दवा का उपयोग करने से बहुत लाभ होता है।

—औ० गु० ध० शा०

स्मृतिसागर रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल और ताम्र-भस्म ये सब समान भाग लेकर प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य औषधियाँ मिला कर बच के क्वाथ की २१ भावना और ब्राह्मी क्वाथ की २१ भावना देकर सुखा लें। फिर माल कांगनी तैल की १ भावना दे १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुरक्षित रख लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम घी के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिये परमोपयोगी है। इसके सेवन से स्नायविक दुर्बलता मिटती है। मस्तिष्क की कमज़ोरी से पैदा होने वाले रोग—मूर्च्छा, उन्माद,

मृगी, हिष्टीरिया आदि में इसका प्रयोग करना बड़ा लाभदायक है। ज्ञानवाहिनी नाड़ियों को इसके सेवन से बल और चेतना प्राप्त होती है।

इस रसायन का विशेष उपयोग मानसिक रोगों में होता है। मनोविभ्रम के कारण होने वाले उन्माद रोग में यह बहुत काम करता है। यह रोग मानसिक चिन्ता, दुःख, शोक, भय, कार्य में दिन-रात लिप्त रहने, गाँजा, भांग, शराब आदि का अधिक व्यवहार करने, अति स्त्री प्रसंग, माथे में चोट लगने तथा पुराने आतशक आदि कारणों से उत्पन्न होता है। इन कारणों में प्रधान कारण मानसिक विकृति या ज्ञानवाहिनी नाड़ी की शिथिलता (कमजोरी) है। पित्त की वृद्धि हो रक्त में एकाएक गर्मी बढ़ जाती है, फिर यह गर्मी मस्तिष्क की ओर जाकर वहाँ की नाड़ियों को कमजोर बना देती है जिससे—दिमाग ठीक-ठीक काम न करना, भूल पर भूल होना, जरूरी काम भी भूल जाना, चित्त अस्थिर—चंचल, चंचलता के कारण किसी काम में मन न लगना, आलस्य, नींद न आना, कम खाना, विशेष चिन्ता ये लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। किसी-किसी मनुष्य की प्रकृति ही ऐसी होती है कि वह किसी की भी बात नहीं सुनता, असहनशीलता बहुत बढ़ जाती है। यह रोग मानसिक और शारीरिक दोष-भेद से—दो प्रकार के होते हैं। दोषात्मक के अनेक लक्षण शास्त्र में वर्णित हैं। इसके अतिरिक्त देव और पितृग्रह सम्बन्धी भी होते हैं। कोमल प्रकृति वालों को यह रोग बहुत शीघ्र हो जाता है। इसीलिये स्त्रियाँ इस रोग से शीघ्र ही आक्रान्त हो जाती हैं।

हिष्टीरिया (गर्भाशयोन्माद)—यह रोग प्रायः जवान लड़कियों को जिनकी संभोग इच्छा की तृप्ति नहीं होती उन्हीं को अधिकतर होता है। बड़ी आयुवाली स्त्री को प्रायः यह रोग कम होता है। इनमें भी जो लड़कियाँ अधिक चंचल, ज्यादे गुस्सा वाली तथा सहनशक्ति की कमीवाली हों, उन पर इस रोग का बहुत शीघ्र प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त अधिक चिन्ता, शोक, भय, पारिवारिक कष्ट, आकस्मिक मानसिक आघात, प्रसूत रोग, मासिक धर्म की

गड़बड़ी आदि कारणों से होता है। कहीं-कहीं पति से विद्वेष होने के कारण भी यह रोग उत्पन्न होते देखा गया है।

हिस्टीरिया रोग का दिमाग से घनिष्ठ सम्बन्ध है। दिमाग अधिक परेशान होने पर रोग विशेष रूप से प्रकट होता है। यदि दिमाग की परेशानी मामूली रही, तो रोग भी मामूली ही हालत में रहता है। अतः रोग परीक्षा करते समय दिमाग की तरफ खूब ध्यान रखना चाहिये। दिमाग; ज्ञान और चैतन्यता का केन्द्र है। दिमाग की गड़बड़ी के कारण ही ज्ञानेन्द्रियों में भी गड़बड़ी पैदा होती है। अतएव इस रोग में—देखने-सुनने, सूंघने, बोलने, या छूने में विकार पैदा हो जाता है। किसी-किसी हिस्टीरिया रोग में दृष्टि मारी जाती है, तो किसी में सामने देखने में फर्क मालूम पड़ता है, कोई ऊँचा सुनता है; तो कोई बिलकुल नहीं सुनता, किसी-किसी की बोली बन्द हो जाती, किसी को स्पर्श-ज्ञान का इतना ह्रास हो जाता है, कि सूई चुभोने पर भी जल्दी मालूम नहीं देता और किसी की सूंघने की शक्ति ही मारी जाती है।

हिस्टीरिया रोग का प्रधान लक्षण मूर्च्छा या बेहोशी का दौरा है। यह दौरा २४ घण्टे से ४८ घण्टे तक निरन्तर होता देखा गया है। अनेक रोगियों में निरन्तर और बार-बार जल्दी-जल्दी दौरा होते देखा गया है। ऐसी अवस्था में होश आते ही पुनः दौरा आ जाता है। बेहोशी की हालत में दाँत बैठ जाते, शरीर अकड़ जाता, रोगिणी हाथ-पैर पटकती है, कभी-कभी मृगी रोगी की तरह मुँह से फेन भी निकलने लगता है किन्तु; हिस्टीरिया रोग में मृगी रोग की तरह शरीर का नीलापन होना तथा आँखों की पुतलियाँ फिर नहीं जाती और न ज्ञान-शक्ति का एकदम लोप ही हो जाता, रोगिणी को भीतरी ज्ञान कुछ-कुछ बना ही रहता है। इस रोग में स्मृतिसागर-रस के उपयोग से अच्छा लाभ होता है।

नोट—आज कल उन्माद रोग के लिये सर्पगन्धा का विशेष उपयोग किया जाता है और फल भी अच्छा मिलता है। मैंने पटना में ऐसे दो उन्माद रोगी को सर्पगन्धा से अच्छा किया, जिसको डाक्टर भी जबाब दे दिया था। अतएव स्मृतिसागर रस के साथ सर्पगन्धा के चर्ण का भी अवश्य प्रयोग करना चाहिये।

हिस्टीरिया में यदि पित्त की अधिकता के कारण चक्कर आना, दाह होना, कमजोरी के कारण आँखों के सामने अन्धेरा छाना ; आदि लक्षण हों, तो स्वर्णमाक्षिक भस्म के साथ स्मृतिसागर रस मिश्री मिला कर देने से अच्छा लाभ होता है।

यदि प्रकुपित कफ और मासिक धर्म की गड़बड़ी के कारण यह रोग हो, तो केवल स्मृतिसागर का ही प्रयोग करना चाहिये।

बच्चों के धनुष्टंकार रोग में भी इस रसायन का उपयोग किया जाता है। इस रोग में बार-बार दौरा होता है, दौरे के समय बच्चा बेहोश हो जाता, श्वास की गति धीमी पड़ जाती, नाड़ी क्षीण, शरीर ठंडा, वायु के झटके से हाथ-पैर अथवा सम्पूर्ण शरीर चलायमान हो जाना आदि लक्षण होते हैं। इस हालत में 'स्मृतिसागर रस' के सेवन कराने से लाभ होता है। इससे प्रकुपित वात शान्त हो जाता है। बच्चों के लिये यह बहुत भयंकर रोग है। अतः इसमें खूब सावधानी से चिकित्सा करनी चाहिये।

इसी तरह अधिक शीत लगने, ठंडी हवा अथवा गीली जगह में सोने, ज्यादे देर तक पानी में भींगने या गीले वस्त्र अधिक देर तक पहनने से वात प्रकुपित हो शरीर के एक भाग के अंग को विकृत कर देता है। इसमें—शरीर में चिनचिनी-सी होना, उस भाग के इन्द्रियांश शिथिल और अकर्मण्य हो जाना, बोलने में भी कष्ट होना आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी स्थिति में 'स्मृतिसागर रस' के उपयोग से वातवाहिनी नाड़ी की बिकृति धीरे-धीरे दूर होने लगती है और रक्त का संचार भी होने लगता है। फिर क्रमशः हाथ-पाँव आदि में भी ताकत आ जाती है।

आक्षेप जनित वात रोगों में या संज्ञावाहिनी शक्ति की क्षीणता (ह्रास) होने अथवा मस्तिष्क सम्बन्धी कोई भी बीमारी हो, तो स्मृति-सागर 'का उपयोग किया जाता है।

किसी-किसी मनुष्य में स्वस्थ रहते हुए भी उसकी स्मरण शक्ति बिलकुल कम होती है। ऐसे लोगों में कफ-वृद्धि अवश्य रहती है, क्योंकि स्मृति (स्मरण) शक्ति को नाश करनेवालों में कफ का सबसे

प्रधान हाथ रहता है। कफाधिक्य के कारण चेतना-शक्ति आच्छादित हो जाती, फिर विचारने या किसी चीज को स्मरण करने की शक्ति ही लुप्त हो जाती है। इस शक्ति को सबल और सचेष्ट बनाने के लिये स्मृतिसागर रस का उपयोग करना लाभदायक है।

—औ० गु० ध० शा०

सिद्धप्राणेश्वर रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, अभ्रक भस्म ४-४ तोला, तथा सज्जीखार, सुहागे की खील, यवक्षार, पाँचो नमक (सेंधा, काला, बिड् नमक, काच और सामुद्र नमक), हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, इन्द्रजौ, सफेद जीरा, काला जीरा, चित्रकमूल, अजवायन, हींग, वायविडंग और सोया इनका चूर्ण १-१ तोला लेकर प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण कपड़छान किया हुआ मिला अच्छी तरह खरल कर सुरक्षित रख लें।

—भै० र०

मात्रा और अनुपान—२ से ३ रत्ती चार-चार घण्टे बाद दें। दिन में चार बार तक दें। पान के रस और मधु के साथ चाट कर ऊपर से गर्म जल पिला दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन पाचक, दीपक, कोष्ठगत वातनाशक और जीर्ण ज्वर नाशक है। ज्वरातिसार, पेट में कैंची से काटने की तरह दर्द, बार-बार अपचित और पतला दस्त होना, नाड़ी की गति क्षीण होना, सम्पूर्ण शरीर में दर्द, अन्न में अरुचि, तन्द्रा, अन्न और पानी की इच्छा न होना, ऐसी अवस्था में यकृत् कमजोर होकर अपना काम करने में असमर्थ हो जाता है। इस हालत में सिद्धप्राणेश्वर रस का उपयोग करने से लाभ होता है।

इस रसायन में—कज्जली योगवाही, रसायन और आन्त्रिक विष को दूर करनेवाली है। अभ्रक भस्म—रसायन और रस-रक्तादि धातुओं को पुष्ट करने वाली है। सज्जीखार—यकृत् को शक्ति देनेवाला और पाचक है। जीरा—पाचक और वातघ्न है। पाँचों नमक—पाचक और यकृत्-शक्ति वर्द्धक है। हींग—

वातहर और शूलघ्न है। इन्द्रयव—यकृत से पित्तस्राव कराता है, अतएव यकृत्-शक्तिवर्द्धक है। चित्रकमूल—पाचक और दीपक है।

—औ० गु० ध० शा०

सिन्दूरभूषण रस

रस सिन्दूर २ तोला, स्व भस्म या वरक ६ माशे, अफीम ६ माशे, शुद्ध कपूर ६ माशे, छोटी इलायची-बीज-चूर्ण १ तोला, वंशलोचन चूर्ण १ तोला लेकर सबको एकत्र खरल में नागरमोथा के क्वाथ के साथ खरल कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

—र० वि०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम मधु या छाछ (मट्ठा) के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन वातनाशक, संग्राही तथा आन्त्रिक विकारों को नाश करनेवाला है। पुराना अतिसार और संग्रहणी के लिए यह बहुत उत्तम है। यह बलवर्द्धक और शरीर के किसी भी हिस्से में उत्पन्न दर्द को नाश करनेवाला है।

सुधानिधि रस (शोथ)

मण्डूर भस्म १० तोला, धनियाँ, सुगन्धवाला, नागरमोथा, सोंठ, और सेंधानमक का चूर्ण १-१ तोला लें, सबको एकत्र मिलाकर गोमूत्र, भाँगरा, पुनर्नवा, काला भाँगरा, संभालू और मण्डूकपर्णी इनके रस की पृथक्-पृथक् १४-१४ भावना देकर खरल में खूब महीन घोटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, मट्ठा या भांगरे के रस के साथ सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग—किसी भी कारण से पैदा हुए नये-पुराने शोथ (सूजन) रोग हों, उसकी यह उत्तम दवा है। नमक छोड़ कर मट्ठे के साथ में इसका व्यवहार करने से कुछ ही दिनों में सूजन जड़ से मिट जाती है। विशेषतः पाण्डु, कामला, जीर्णज्वर तथा संग्रहणी से उत्पन्न शोथ में यह अत्यन्त लाभदायक है।

शोथ रोग—स्थानिक और सार्वाङ्गिक भेद से दो तरह के होते हैं। स्थानिक शोथ—हाथ, पैर, पेट, मुख आदि शरीर के किसी भाग में होता है। सम्पूर्ण शरीर में एक साथ सूजन हो जाने को सार्वाङ्गिक शोथ (सूजन) कहते हैं। जहाँ सूजन होती है—वह स्थान नरम और पिलपिला-सा हो जाता है; क्योंकि वहाँ के रक्त में जल भाग विशेष हो जाने से त्वचा नरम हो जाती तथा वह स्थान फूल भी जाता है। यह सूजन कारण भेद से विशेष स्थानों पर भी होती है। यथा—हृदय की बीमारी के कारण होनेवाली सूजन पहले जांघ और हाथों पर होती है। तिल्ली और जिगर के कारण से उत्पन्न होनेवाली सूजन पहले पेट पर होती है। मल संचय से उत्पन्न होनेवाली सूजन पहले पैर और मुंह पर होती है। रज की खराबी से उत्पन्न स्त्रियों की सूजन पहले हाथ-पैर और मुंह पर होती है। सूजन के साथ अरुचि, प्यास, ज्वर, दुर्बलता, शरीर की त्वचा शुष्क होना आदि लक्षण भी होते हैं।

इस रसायन का प्रधान कार्य—रक्तस्थित जल भाग को सुखा कर रक्ताणु की वृद्धि करना है। शोथ-रोग में रक्ताणुओं की कमी होकर, जलीय भाग बढ़ जाते हैं। अतएव जलीय भाग को शुष्क कर रक्ताणुओं को बढ़ाने के लिये ही इस रसायन का उपयोग किया जाता है। साथ ही यह दीपन-पाचन भी है। यह जठराग्नि को दीप्त कर पाचन क्रिया को सुधारता है तथा हृदय को ताकत देता और शारीरिक बल को बढ़ाता है।

सुधानिधि रस (रक्त-पित्त)

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, स्वर्ण माक्षिक भस्म, लौह भस्म प्रत्येक समान भाग लेकर सबको एकत्र मिला, त्रिफला के क्वाथ में खरल कर मूषा में बन्द कर भूधर पुट में पकावें, स्वांग शीतल होने पर दवा निकाल सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ रत्ती सुबह-शाम, दूर्वा के रस या कमल के पत्तों का रस १ तोला और मधु १ तोला से दें। इस

दवा के सेवन काल में भोजन के बाद उशीरासव १।। तोला में बराबर जल मिला कर पिलावें ।

गुण और उपयोग—इस रसायन का उपयोग विशेषतः रक्त-पित्त में किया जाता है। नाक, मुँह, गुदा, मूत्रेन्द्रिय आदि कहीं से रक्त निकलता हो, उसमें यह बहुत लाभ पहुँचाता है। जिन लोगों की नाक से खून गिरता है ; उसके लिये बहुत लाभदायक है। इस रसायन के सेवन के समय गोदुग्ध को लौह पात्र में गरमकर रात्रि में सोते समय लें। यह रसायन पित्त-शामक तथा रक्त-रोधक है।

रक्त-पित्त में प्यास ज्यादे लगना, मुँह सूखना, ज्वर, देह में जलन आदि उपद्रव होते हैं। इसमें सुधानिधि रस के उपयोग से बहुत लाभ होता है, क्योंकि इसमें स्वर्णमाक्षिक और लौह भस्म का संमिश्रण होने से यह रक्त को रोकता है तथा रक्ताणुओं की वृद्धि करते हुए शरीर में बल भी बढ़ाता है।

नकसीर—(नक्की छूटने) में—किसी-किसी को ग्रीष्म ऋतु में गर्म पदार्थ के सेवन से यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इसमें भी पित्त की वृद्धि ही प्रमुख है, अतएव सुधानिधि रस का प्रयोग किया जाता है और इसका फल भी अच्छा ही होता है।

सूतशेखर रस (स्वर्णयुक्त)

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुवर्णभस्म, रौप्यभस्म, शुद्ध सुहागा, सोंठ, मिर्च, पीपल, शुद्ध धतूरे के बीज, ताम्रभस्म, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर, शंखभस्म, बेलगिरी और कचूर प्रत्येक समभाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, शेष दवाओं का कपड़छान चूर्ण मिला २१ दिन भाँगरे के रस में मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —र० च०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम। शहद १।। माशा, गाय का घी ३ माशे, मीठे वेदाने या दाड़िम का रस या शर्बत अथवा लाजमण्ड के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन के उपयोग से अम्लपित्त,

वमन, संग्रहणी, खाँसी, गुल्म, मन्दाग्नि, पेट फूलना, हिचकी आदि रोग नष्ट होते हैं। श्वास तथा राजयक्ष्मा में भी इसका प्रयोग किया जाता है। यह रसायन पित्त और वातजन्य विकारों को शान्त करता है। विशेषतया—पित्त की विकृति जैसे अम्लता या तीक्ष्णता या आमाशय अथवा पित्ताशय में पित्त कमजोर हो, अपना कार्य करने में असमर्थ हो गया हो, तो उसे सुधारता है। अतएव इसका प्रयोग अम्लपित्त में खट्टी वमन, कोष्ठ में दर्द होना, उदावर्त्त आदि पित्त-विकृत रोग में प्रायः अधिक किया जाता है। यह पित्त-दोष नाशक होते हुए हृदय को बल देने वाला तथा संग्राही (दस्त को बाँधने वाला) भी है। इसीलिये राजयक्ष्मा की प्रथम तथा द्वितीया-वस्था में तथा संग्रहणी और अतिसार आदि वात प्रधान-रोगों में दस्त कम करने तथा हृदय को बल पहुँचाने के लिये इसे देते हैं। सूखी खाँसी—जिसमें कफ नहीं निकलता हो और रात में खाँसी का प्रकोप ज्यादा होता हो, तो सूतशेखर रस के उपयोग से यह खाँसी दूर हो जाती है।

यह पाचक पित्त की विकृतिको दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त करता है और कोष्ठ में होने वाले दर्द को दूर करता है। क्योंकि यह वेदना-शामक भी है, परन्तु यह अफीम की तरह शीघ्र ही वेदना (दर्द) को शमन नहीं करता, क्योंकि यह अफीम जैसा तीक्ष्णवीर्य प्रधान नहीं है। यद्यपि इसका प्रभाव दर्द में धीरे-धीरे होता है; परन्तु स्थायी होता है। यह उपद्रव को शान्त करते हुए मूल रोग को नष्ट करता है। जैसे—अम्लपित्त में वात प्रकोप से दर्द होता है और पित्त प्रकोप के कारण खट्टा वमन होता है, ये लक्षण प्रधानतया देखने में आते हैं। सूतशेखर रस वात-पित्त शामक गुण के कारण उपरोक्त दोनों विकार को नष्ट करते हुए अम्लपित्त रोग को भी नष्ट कर देता है। इसीलिये इसका प्रभाव धीरे-धीरे स्थायी होता है।

सूतशेखर रस का प्रभाव वातवाहिनी और रक्तवाहिनी शिराओं पर भी होता है। रक्त की गति में वृद्धि हो जाने के कारण हृदय और नाड़ी की गति में वृद्धि हो जाती है, इसको सूतशेखर रस कम

कर देता है। इस रसायन से रक्तवाहिनी नाड़ी कुछ संकुचित हो जाती है जिससे बढ़ी हुई रक्त की गति अपने आप रुक जाती है। रक्त की गति कम होने पर हृदय की गति भी ठीक रूप से चलने लगती है जिससे हृदय को कुछ शान्ति मिल जाती है। अतएव यह हृद्य है।

आन्त्रिक सन्निपात में—पित्ताधिक्य होने पर शिर में दर्द, अण्ट-सण्ट बोलना, नींद न आना, प्यास, पीलापन लिये और जलन के साथ दस्त होना, रक्त की गति में वृद्धि होना, सूखी खाँसी, पेशाब में पीला-पन आदि लक्षण होते हैं। ऐसी अवस्था में सूतशेखर रस ; प्रवाल चन्द्र पुटी और गिलोय सत्त्व में मिला कर देने से पित्त की शान्ति हो जाती तथा बढ़ी हुई रक्त की गति कम हो जाती है। फिर धीरे-धीरे रोगी अच्छा होने लग जाता है।

शरीर में वात और पित्त की वृद्धि से रक्त दूषित हो जाने पर रक्त का संचार सीधा न हो कुछ टेढ़ा-मेढ़ा होकर होने लगता है। यह संचार माथे की तरफ ज्यादा होता है। जिससे शरीर में चक्कर आने लगता है, रोगी को मालूम होता है कि समस्त संसार घूम रहा है। रोगी बैठा हुआ भी रहे तो उसे मालूम होता है कि मैं चल रहा हूं या ऊपर-नीचे आ-जा रहा हूँ। इसमें आँखें बन्द हो जाती हैं, माथा शून्य और कानों में सनसनाहट होने लगती है, हृदय की गति शिथिल हो जाती, रोगी कभी-कभी घबराने भी लगता है। ऐसी अवस्था में सूतशेखर रस, शंखपुष्पी चूर्ण १ माशा और यवासाचूर्ण १ माशा के साथ मिश्री मिला, गो-दुग्ध या ठंडे जल के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

आक्षेप जन्य वायु रोग—जैसे धनुष्टंकार, अपतन्त्रक (हिस्टी-रिया), अपतानक, धनुर्वात आदि रोगों में भी इसका उपयोग होता है, परन्तु, ये रोग वात-पित्तात्मक होने चाहिए।

कभी-कभी स्त्रियों को बच्चा पैदा होने के बाद अथवा मासिक धर्म खुल कर न होने, या दर्द के साथ होने पर चक्कर आने लगता है, यह चक्कर रह-रह कर आता है। इसमें गर्भाशय में दर्द होना,

कोष्ठ में दर्द होना, घबराहट और कमजोरी बढ़ते जाना, थोड़ा-थोड़ा वमन होना, बेचैनी ; वमन होने के बाद पेट में दर्द होना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी हालत में सूतशेखर रस के उपयोग से वातजन्य आक्षेप तथा पित्तज दोष शान्त हो जाते हैं।

वातज सिर दर्द में—सिर में कील ठोंकने के समान पीड़ा होने से रोगी व्याकुल हो जाना, सम्पूर्ण माथे में दर्द होना, दर्द के मारे रोगी का पागल-सा हो जाना, रोना, चिल्लाना आदि लक्षण होते हैं, और पित्तज शिर-दर्द में —शिर में जलन के साथ दर्द होना, कफ और मुँह सूखना, वमन होना आदि लक्षण होते हैं। इसमें सूतशेखर रस बहुत फायदा करता है।

आमाशय की श्लैष्मिक कला में सूजन के साथ छोटे-छोटे पतले व्रण हो जाते हैं, फिर इसमें कड़े अन्न का संयोग होने से दर्द होने लगता है और वह अन्न वहाँ पर रह कर सड़ने लग जाता है और जब वमन के साथ वह अन्न निकल जाता है तब कुछ शान्ति मिलती है—ऐसी अवस्था में सूतशेखर रस देने से आमाशय के व्रण का रोपण हो जाता तथा पित्त का स्राव भी नियमित रूप से होने लगता और अपचन आदि विकार भी नष्ट होकर दर्द भी नहीं होता है। —औ० गु० ध० शा०

सूतशेखर रस (स्वर्णरहित)

शुद्ध पारा (रससिंदूर) ६ माशे, सोंठ का चूर्ण ६ माशे और सोनागेरू ४ तोला लें। प्रथम रससिंदूर को खूब महीन पीस लें, फिर इसमें कपड़छान किया हुआ सोंठ का चूर्ण और गेरू मिला, पान के रस में ४ प्रहर तक घोंट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —र० यो० सा०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, शक्कर अथवा मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—अम्लपित्त, भ्रमरोग (चक्कर आना), मूत्रकृच्छ्र, सूर्यावर्त्त रोग, रक्तपित्त, मुँह के छाले आदि पित्त जनित रोग इस रसायन के सेवन से नष्ट हो जाते हैं।

यह रसायन यद्यपि लघु है, किन्तु लघु होते हुए भी इसमें अपूर्व चमत्कारिक गुण हैं। यह प्रकुपित वात को शान्त करता तथा पित्तविकृति के कारण उत्पन्न होने वाले रोगों को नाश करता है। अम्लपित्त, उन्माद, चक्कर आना आदि पित्त जनित रोगों में इससे बहुत लाभ होता है।

पित्त प्रकोप के कारण नींद न आना, गला सूखाना, जलन होना, आँखों में दाह होना, सम्पूर्ण शरीर घूमते हुए मालूम होना, पेट में जलन आदि रोगों में यह रसायन बहुत फायदा करता है। यह रक्त स्तम्भक तथा रक्त प्रसादक और बलवर्द्धक भी है।

सूतिकारि रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म १-१ तोला ले कर सब को एकत्र मिला कर मण्डूकपर्णी के रस में १ दिन खरल कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम त्रिकटु चूर्ण मिला हुआ दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—स्त्रियों के बच्चा पैदा होने के बाद ज्वर, हाथ-पाँव में जलन, खाँसी, प्यास, की अधिकता, भोजन में अरुचि; सूजन, मूत्रमार्ग से धातु जैसा सफेद पदार्थ का निरन्तर स्राव होना आदि अनेक प्रकार के उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे स्त्रियाँ बहुत कमजोर हो जातीं। ऐसी स्त्रियों का दूध भी दूषित हो जाता है जिसके पीने से बच्चा भी रोगी हो जाता है। बच्चे को तरह-तरह के रोग आ घेरते हैं। इस रसायन के सेवन से प्रसूता के सब उपद्रव नष्ट हो कर अग्नि तथा बल की वृद्धि होती है। प्रसूत रोग के लिये यह उत्तम औषध है।

सूतिकाविनोद रस (बृहत्)

अभ्रक भस्म ६ माशे, शुद्ध तूतिया २ तोला, सोंठ १ तोला, काली मिर्च २ तोला, पीपल ३ तोला, जावित्री २ तोला सब को एकत्र मिला कर १ प्रहर सम्भालू के रस में घोट कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम ; मधु या गोदुग्ध से अथवा दशमूल क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग—प्रसूत रोग की यह प्रसिद्ध दवा है। इसके सेवन से प्रसूत ज्वर, शूल, विष्टम्भ, अजीर्ण आदि वात रोगजन्य विकार नष्ट हो जाते हैं।

सोमनाथ रस

लौहभस्म १ तोला, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, छोटी इलायची, तेजपात, हल्दी, दारुहल्दी, जामुन की छाल, खस, गोखरू, बायविडंग, जीरा, पाठा, आँवला, अनार की छाल, सुहागे की खील, सफेद चन्दन, शुद्ध गुग्गुल, लोध, शाल वृक्ष की छाल, अर्जुन की छाल और रसौत इनका चूर्ण ६-६ माशे लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियों का कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिला, बकरी के दूध में खरल करके ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली शहद या बकरी के दूध से सुबह-शाम दो बार दें।

गुण और उपयोग—यह स्त्रियों के सोम-रोग की प्रसिद्ध दवा है। इस रोग में सफेद रंग का ठंडा दुर्गन्ध-रहित निर्मल पेशाब बार-बार होता है। शरीर धारण करने वाली धातु पेशाब के साथ निकलती रहती है जिससे स्त्रियों की शक्ति का धीरे-धीरे ह्रास हो कर शरीर अत्यन्त दुर्बल हो जाता है। हमेशा प्यास बनी रहती है। मस्तिष्क सुन्न हो जाने के कारण मूर्च्छा (बेहोशी), प्रलाप (अक्-बक् बकना) आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। इस रसायन के सेवन से सोम-रोग और उससे उत्पन्न होने वाली सभी प्रकार की शिकायतें दूर हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त रक्तप्रदर, योनि का दर्द, कोष्ठशूल, बहुमूत्र आदि रोग भी इससे अच्छे होते हैं।

हरिशंकर रस

पारद भस्म (रस सिंदूर) तथा अभ्रक भस्म दोनों समान भाग लेकर एक सप्ताह तक आँवला और हल्दी-स्वरस में घोंट कर, सुखा कर के शीशी में सुरक्षित रख लें। —र० र० स०

मात्रा और अनुपान—३-४ रत्ती सुबह-शाम, ५ तोले चावल के पानी में १।।-३ माशे वकायन के बीज को पीस कर ६ माशे घी मिलाकर इसके साथ दें।

गुण और उपयोग—पूय प्रमेह (सूजाक) में यह दवा विशेष फायदा करती है। पेशाब में जलन होना, पेशाब से खून आना अथवा पीव निकलना तथा बस्ति प्रदेश आदि में जलन होना आदि को दूर करता है। प्रमेह रोग के लिये भी यह बहुत उत्तम रसायन है।

हिंगुलेश्वर रस

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध बच्छनाग-चूर्ण और पिप्पलीचूर्ण २-२ तोला लें, इन सब को एकत्र कर खरल में जल के साथ मर्दनकर १-१ रत्ती गोलियाँ बना, छाया में सुखा, सुरक्षित रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम शहद के साथ अथवा अदरक-रस में शहद मिला कर दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन आमवात शामक और वातज्वर नाशक है। तीव्र ज्वर, देह-दर्द तथा सन्धिस्थान (जोड़ों) के तीव्र वेदनायुक्त आमवात में यह रसायन बहुत लाभ करता है। वात ज्वर में जाड़ा देकर बुखार आना, शरीर काँपना, शरीर में ऐंठन, शिर में अधिक दर्द, आदि लक्षणों की उत्पत्ति होने पर हिंगुलेश्वर के उपयोग से बहुत फायदा होता है।

नवज्वर में—आमदोष-पाचन के लिये इस रसायन का उपयोग किया जाता है। इसके द्वारा दोष पाचनकार्य अच्छी तरह होता है। इसके अतिरिक्त बार-बार आने वाले विषम ज्वर में ज्वर रोकने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। जीर्ण ज्वर में भी इसके उपयोग से अच्छा लाभ होता है, परन्तु हृदय की कमजोरी होने

पर इस दवा का उपयोग नहीं करना चाहिये। क्योंकि इसमें बच्छनाग का मिश्रण है जो हृदयावसादक है।

हिरण्यगर्भ पोट्टली

शुद्ध पारद १ तोला, स्वर्णभस्म २ तोला, मोतीभस्म ४ तोला, शंख भस्म ६ तोला, शुद्ध गन्धक ३ तोला, कौड़ीभस्म ३ तोला, सुहागे की खील चौथाई तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियाँ मिला कर सब को नीबू के रस में घोंट कर गोला बना, सुखा, मूषा में बन्द कर, कपड़मिट्टी करके सुखा कर, गज पुट में फूँक दें। स्वाग शीतल होने पर संपुट में से दवा निकाल कर पीस कर के सुरक्षित रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-२ रत्ती सुबह-शाम, घी और शहद तथा काली मिर्च के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन–अग्निमान्द्य, संग्रहणी, विषम-ज्वर, अर्श, पीनस, श्वास, कास, अतिसार, पाण्डु, शोथ, उदर-रोग, यकृत् और प्लीहा विकार नाशक है। यह एकदोषज, द्विदोषज और सान्निपातिक रोगों में अमृत के सामान गुण करता है। वात-कफजन्य रोगों में इसके उपयोग से विशेष लाभ होता है।

अग्निमांद्य—कफ की वृद्धि होने पर जठराग्नि मन्द हो जाती है, जिससे भूख न लगना, अन्न में अरुचि, जी मिचलाना, कब्जियत, शरीर में आलस्य आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इसमें हिरण्यगर्भ पोट्टली के उपयोग से शरीर में कफ की वृद्धि रुक जाती और जठराग्नि प्रदीप्त हो कर शेष उपद्रव भी नष्ट हो जाते हैं।

वात-कफात्मक संग्रहणी और अतिसार रोग में भी इस रसायन का उपयोग करने से लाभ होता है—क्योंकि इस रसायन का प्रभाव आन्त्र पर काफी होता है। यह रसायन आँतों को सबल बना, दस्त को बाँधता है।

यह रसायन हृदय को बल देने वाला तथा शरीर में जीवनीय शक्ति को बढ़ा कर शरीर को सबल बनाने वाला है। शीतांग

सन्निपात में जब शरीर बिल्कुल ठंडा पड़ गया हो, नाड़ी लुप्त हो रही हो, हृदय की गति धीमी चल रही हो—तब यह रसायन अमृत के समान काम करता है। संग्रहणी या अतिसार के कारण शरीर बिल्कुल खोखला हो गया हो, निर्बलता ज्यादे आ गई हो, संग्रहणी (दस्त) किसी तरह रुकती नहीं हो—ऐसी भयंकर दशा में यह रस रामबाण की तरह काम करता है। राजयक्ष्मा में सूखी खाँसी और ज्वर दोनों वृद्धि पर हों, दिनानुदिन उपद्रव बढ़ते ही जाते हों, शारीरिक शक्ति का भी नाश होता जाता हो, तो इस रसायन के सेवन से शीघ्र लाभ होता है।

हृदयार्णव रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और ताम्रभस्म १-१ तोला लेकर तीनों को एकत्र कज्जली बना, १-१ दिन त्रिफला और मकोय के रस में मर्दन कर चना प्रमाण की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें।

—भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम मकोय का फल १। तोला और त्रिफला चूर्ण ५ तोला को ४० तोला जल में पकावें। पाँच तोला जल शेष रहने पर मल कर छान लें, बाद को इस क्वाथ के अनुपान से दें।

गुण और उपयोग—इस रसायन का प्रभाव हृदय-रोग पर बहुत होता है। हृदय की कमजोरी, हृदय की अधिक धड़कन, हृदय-दर्द आदि रोग अच्छे हो जाते हैं। इस रसायन के सेवन से हृदय की गति नियमित हो जाती तथा हृदय सबल हो जाता है।

हृत्पिण्ड में रोग होने से छाती में दर्द और हृदय सर्वदा धक्-धक् करता रहता है। यद्यपि छाती में अन्य बीमारी या चोट के कारण भी दर्द उत्पन्न हो जाता है, किन्तु ; उनके लक्षण भिन्न होते हैं। इसमें थोड़ा-सा परिश्रम करने से ही हृदय की धड़कन बढ़ जाना, मन चंचल, मृत्यु का भय और मूर्च्छा होने के लक्षण, निद्रा की कमी, पसली और छाती में दर्द, नाड़ी की गति तेज होना

आदि लक्षण होते हैं। इसमें हृदयार्णव रस का उपयोग करने से बहुत लाभ होता है।

अधिक व्यायाम (कसरत), भय, शोक, अत्यन्त गर्मी आदि कारणों से भी हृदय दूषित हो जाता है। हृदय की गति बन्द होने से तत्काल मृत्यु हो जाती है जिसको "हार्ट फेल" कहते हैं। कभी-कभी हृदय में इतने जोर का दर्द उठता है, कि रोगी बेचैन हो जाता है। यदि यह शूल कुछ और बढ़ा, तो रोगी की मृत्यु हो जाती है। ऐसी भयंकर परिस्थिति में भी मृगश्रृंगभस्म के साथ हृदयार्णव रस देने से अच्छा लाभ होता है।

हृद्‌रोगी को विश्राम की अधिक आवश्यकता रहती है अतः परिश्रम बिल्कुल बन्द कर देना चाहिये। यदि रोगी अधिक दुर्बल हो, तो ज्यादा चलने-फिरने न दें, अन्यथा हृदय की कमजोरी से रोगी की तुरन्त मृत्यु हो सकती है। हृदय की कमजोरी में मकरध्वज, मुक्तापिष्टी, सोना भस्म आदि ताकत पहुंचाने वाली दवाओं का भी सेवन करें।

हेमगर्भ पोटली रस

शुद्ध पारा ४ तोला और सुवर्ण भस्म या वर्क १ तोला लें। यदि भस्म न लेकर वर्क लिये हों, तो पारा व वर्क को एकत्र मिलाकर खरल करें। जब स्वर्ण-वर्क पारा में मिल जाय तो उसमें १० तोला शुद्ध गन्धक डाल कर कज्जली बनावें, और उसे कचनार की छाल के रस में खरल कर गोला बना, सुखा कर, शराब-सम्पुट में बन्द कर ३-४ कपड़मिट्टी लगा, ३ दिन भूधर यन्त्र में पकावें। स्वांग शीतल होने पर दवा निकाल कर उसके बराबर शुद्ध गन्धक डाल, अदरक रस और चित्रक-स्वरस की १-१ भावना देकर खरल करके बड़ी-बड़ी पीली कौड़ियों में भर दें। फिर समस्त ओषधियों के आठवां भाग सुहागा और सुहागे से आधा शुद्ध विष लेकर दोनों को सेहुंड (थूहर) के दूध में घोंट कर उससे उन कौड़ियों का मुख बन्द कर दें। फिर इन्हें चूना पुते हुए सराब-सम्पुट में बन्द कर उस पर तीन-चार

कपड़मिट्टी कर गजपुट में पकावें। जब स्वांगशीतल हो जाय, तो दवा को निकाल कर पीस लें। —र० का० धे०

दूसरा—स्वर्णभस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, गंधक १ तोला, और रससिन्दूर ३ तोला, इन सब द्रव्यों को चित्रक-रस में दो पहरतक खरल करके कौड़ी में भर कर, सुहागे से कौड़ी का मुँह बन्द कर, हाँड़ी में रख, गजपुट में फूंक दें। स्वांगशीतल होने पर निकाल कर रख लें। —आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान—चौथाई से १ रत्ती, सुबह-शाम मधु, मिश्री, मक्खन, मलाई आदि के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन दीपन, पाचन, त्रिदोषनाशक तथा अग्निवर्धक है। इस रसायन के सेवन से राजयक्ष्मा, संग्रहणी, हृद्रोग, श्वास-कास आदि कठिन रोग अच्छे होते हैं। वात-कफ के विकार, पुराना अतिसार, पाण्डु, सूजन आदि रोगों में भी इससे बहुत लाभ होता है,। यह शरीर की जीवनीय शक्ति को बढ़ाता और पुष्ट करता है। शीतांग सन्निपात में सम्पूर्ण अङ्ग ठंडा हो जाने पर यह शरीर में गर्मी लाता और सन्निपात के उपद्रवों को नष्ट करता है। सन्निपात के लिये तो यह रामबाण है। पुराने से पुराने भयंकर संग्रहणी रोग में भी इसका प्रयोग किया जाता है। रस-रक्त और वीर्य को बढ़ाने तथा शरीर को नीरोग करने के लिये यह पुष्टि-कारक दवा है। राजयक्ष्मा में इसका उपयोग अधिक किया जाता है।

यदि इस रसायन के सेवन-काल में वमन होने लगे तो, शहद और गिलोय का क्वाथ मिला कर पिलावें। यदि कफ का प्रकोप हो तो, गुड़ और अदरक मिला कर खिलावें। दस्त आने लगे तो भुनी हुई भाँग दही में मिला कर सेवन करावें।

हेम गर्भ रस

शुद्ध पारद ४ तोला में सोने के वरक ४ तोला लेकर एक-एक करके मर्दन करें। जब सब वरक मिल जाय, तब उसमें १२ तोला शुद्ध

गंधक मिलाकर कज्जली करें। पीछे उसमें १६ तोला अच्छे बसराई मोती का कपड़छान चूर्ण, २४ तोला शंख का कपड़छान चूर्ण तथा १ तोला शुद्ध सुहागा मिला एक दिन पके नीबू के रस में मर्दन कर चिपटा गोला बना लें। गोला जब सूख जाय, तब उसको दो मिट्टी के सकोरों में रख, उसकी सन्धि पर सात कपड़मिट्टी करके सुखा लें। अच्छी तरह सूखने पर एक मिट्टी के घड़े में दो अंगुल पिसे हुए सामुद्र या सेंधानमक का चूर्ण बिछा, उसपर सम्पुट को रख, घड़े के बाकी हिस्से को नमक के चूर्ण से भर, घड़े के मुँह पर उलटा सिकोरा रख, दोनों की सन्धि कपड़मिट्टी से बन्द कर दें। फिर उस घड़े को चूल्हे पर चढ़ा कर ३ दिन-रात मध्यम आँच दें। जब घड़ा स्वांग शीतल हो जाय, तो उसके भीतर से सम्पुट को निकाल, कपड़मिट्टी हटा कर गोले को निकाल लें। जब गोला पक कर कुछ गुलाबी रंग लिये श्वेतवर्ण का हो जाय, तो उसको खरल में १ दिन घोट कर शीशी में भर लें। गोला यदि श्याम वर्ण का हो, तो पूर्वोक्त विधि से एक दिन फिर पकावें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-२ रत्ती, चौथाई तोला गाय के घी में मिला कर चटावें।

गुण और उपयोग—खाँसी, दमा, क्षय, संग्रहणी, जीर्णज्वर, ग्रहणी और अपची में इसका प्रयोग करें। यह मृगांकरस से विशेष गुणप्रद है। अतः इसका प्रयोग करना अच्छा है।

हेमनाथ रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, स्वर्णभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म १-१ तोला तथा लोहभस्म, कपूर, प्रवालभस्म और वंग भस्म ६-६ माशे लेकर सबको एकत्र मिला खरल करें। कज्जली हो जाने पर उसे अफीम के पानी, केले के फूलों के रस और गूलर के रस की सात-सात भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम गुडूची स्वरस, मधु तथा जामुन की गुठली का चूर्ण और शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन प्रमेह रोग के लिये बहुत उत्तम है। मूत्राशय, वृक्क और वीर्यवाहिनी नाड़ियों की दुर्बलता को दूर कर उनकी क्रिया को ठीक करता है। पेशाब के साथ वीर्य-स्राव को रोकता है। स्त्रियों का सोमरोग एवं श्वेत-प्रदर इस रसायन से बहुत शीघ्र ठीक हो जाता है। बहुमूत्र, प्रमेह, नपुंसकता, शीघ्र-पतन, वीर्य का पतलापन, कमर का दर्द, पैरों की हड़कन (टटैनी), स्वप्नदोष, मधुमेह और दुर्बलता दूर करने के लिये इसका प्रयोग विशेषतया किया जाता है।

क्षयान्तक रस

लौह भस्म और रस सिन्दूर १-१ तोला, मोती भस्म और स्वर्ण भस्म प्रत्येक ३-३ माशे, गुर्च का सत्त्व १ तोला, केशर ३ माशे और कस्तूरी १ माशा लेकर सबको एकत्र मिलाकर ३ दिन वासा (अडूसा) के रस में खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —र० च०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, मधु (शहद) या घी के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन पौष्टिक, शक्तिवर्द्धक, हृदय को बल देनेवाला तथा रक्त कणों की वृद्धि कर जीवनीय शक्ति प्रदान करनेवाला है। इसके सेवन से राजयक्ष्मा, पाण्डु, शिर दर्द, जीर्ण ज्वर, प्रमेह, उदर रोग, अग्निमांद्य, सोमरोग, धातु विकार, वात और कफजन्य रोगों का नाश होता है। क्षय रोग के लिये यह बहुत प्रसिद्ध औषध है।

क्षुद्बोधक रस

सोंठ, पीपर, मिर्च १-१ तोला, सेंधा नमक २ तोला, शुद्ध गन्धक ३ तोला लेकर सबको एकत्र मिला, नीबू के रस में खरल कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —र० रा० सु०

मात्रा और अनुपान—१-४ गोली सुबह्-शाम, गर्म जल से दें।

गुण और उपयोग—यह रसायन दीपन-पाचन है। किसी भी कारण से अग्नि मन्द होकर भूख न लगती हो, अन्न में अरुचि हो, जी मिचलाता हो, पेट भारी रहता हो, वमन की इच्छा या वमन हो जाता हो, अपच दस्त होते हों, या कब्ज रहता हो आदि उपद्रव होने पर यह रसायन अद्भुत कार्य करता है।

क्षुधासागर रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, शुद्ध मीठा विष, सोंठ, मिर्च, पीपर, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सेंधा नमक, काला नमक, सामुद्र लवण, विड लवण, काच लवण, यवक्षार, सज्जीखार, सुहागे की खील प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, शेष औषधियों का कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिला, पानी के साथ ३ दिन तक खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम—लौंग का चूर्ण ४ रत्ती मिलाकर गर्म जल के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—यह रसायन कफ और वातजन्यविकार में विशेष फायदा करता है। कफ बढ़ जाने या वात प्रकोप के कारण आमाशय कमजोर हो गया हो, जिससे आम संचय होकर जठराग्नि मन्द हो गयी हो, भूख न लगती हो, अपच होकर दस्त होते हों, पेट फूला हुआ हो, दस्त पतला और फेनयुक्त होते हों, पेट में आवाज हो, इन रोगों में इसका उपयोग होता है।

गुटिका-वटी प्रकरण

वटको मोदकः पिण्डी गुड़ो वर्तिस्तथा वटी।
वटिका गुड़िका चेति संज्ञावान्तर भेदतः ॥

अर्थात्—वटक, मोदक, पिण्डी, गुड़, वर्त्ति, वटी और वटिका तथा गुटिका इनकी बनावट एक ही प्रकार की है। केवल आकार और परिमाण में भेद होता है। इन औषधों में प्रधान भाग काष्ठौषधियों का रहता है।

गुटिका-वटी का परिचय—औषधियों के महीन चूर्ण को मधु, गुड़, खाण्ड आदि चाशनी में मिलाकर अथवा औषधियों को जल, स्वरस या क्वाथ आदि में पीसकर या पाक करके जो गोलियाँ बनाई जाती हैं उन्हें गुटिका या वटी कहते हैं।

भावना विधि—जितने द्रव पदार्थ से औषध अच्छी तरह भींग जाय उतना ही द्रव पदार्थ लेकर भावना देनी चाहिए, अथवा जिस चीज के क्वाथ से भावना देनी हो, वह भाव्य (जिसे भावना देनी है) द्रव्य के बराबर लेकर अठ गुने पानी में पकावें और आठवाँ भाग शेष रहने पर छानकर उससे भावना दें।

यदि गोलियों को सुखाने के लिये धूप में लिखा हो, तो धूप में अन्यथा छाया में सुखाना चाहिये। क्योंकि धूप और छाया के प्रभाव से भी दवाओं के गुण में अन्तर पड़ता है।

स्वादिष्ट, हाजमा करने वाली गोलियाँ भोजन के बाद और रोगनाशन के लिये सुबह-शाम उचित अनुपान के साथ लेनी चाहिये। जिन वटियों में कुचला या अफीम हो उनकी मात्रा (खुराक) १ गोली से ज्यादे नहीं होनी चाहिये। जायकेदार और पाचक गोलियाँ बिना अनुपान के भी मुँह में रखकर चूसते रहना चाहिये। मात्रा जितनी लिखी हो उससे कम-ज्यादे करने से नुकसान होता है। कम खाने से गुण नहीं करती और ज्यादे खाने से शरीर में लाभ के बदले नुकसान करती हैं। बच्चों को आयु के अनुसार या चौथाई मात्रा में दवा देनी चाहिये।

गोलियों पर वर्क चढ़ाना—यदि गोलियों पर वर्क (सोना-चाँदी आदि के) चढ़ाने हों तो पहले उन्हें मुगलई वेदना के लुआब में अच्छी तरह तर कर लें, फिर उन पर सोने या चाँदी के, जैसी आवश्यकता हो, वर्क डाल कर हाथ से मल दें और चीनी के चौड़े मुंह वाले बरतन में डाल कर तेजी के साथ उस बरतन को गोल कायदे में चक्की के समान चारों ओर घुंमाना चाहिए। इस क्रिया से गोलियाँ सुन्दर बन जाती हैं।

गोली सेवन करते समय गोलियों को महीन पीसकर अनुपान के साथ मिलाकर सेवन किया जाय, तो जल्दी असर होता है। कठिन गोलियों को बिना पीसे नहीं खावें अन्यथा कभी-कभी ये गोलियाँ ज्यों की त्यों ही दस्त के साथ निकल आती हैं।

अग्निवर्द्धक वटी

काला नमक, नौसादर, गोलमिर्च और आक के फूलों की लौंग (आक के फूलों के भीतर जो चतुष्कोणाकार होता है, उसी को आक के फूलों की लौंग कहते हैं)—इन चारों के समभाग लेकर कूट-कपड़छान किया हुआ चूर्ण को जल के साथ घोटकर चने बराबर गोलियाँ बना, धूप में सुखा कर रख लें। —सि० भै० म० मा०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली दिन-रात में ४ गोली तक गर्म जल से दें या मुंह में डाल कर चूसें।

गुण और उपयोग—यह अत्यन्त स्वादिष्ट और पाचक रस उत्पन्न करने वाली है। इससे भोजन पच कर भूख खूब लगती और दस्त साफ आते हैं। एक-दो गोली खाते ही मुंह का बिगड़ा हुआ स्वाद ठीक हो जाता है। यह गोली मन्दाग्नि, अरुचि, भूख न लगना, पेट फूल जाना, पेट में आवाज होना, दस्त कब्ज रहना, खट्टी डकारें आना आदि दोषों को दूर कर जठराग्नि प्रदीप्त करती है और भूख बढ़ाती है। जिन्हें बार-बार भूख कम लगने की शिकायत हो, उन्हें यह गोली अवश्य लेनी चाहिये।

अजीर्ण की शिकायत अधिक दिन तक बनी रहने पर पित्त

कमजोर हो जाता और कफ तथा आँव की वृद्धि हो जाती है। इसमें हृदय भारी हो जाना, पेट में भारीपन बना रहना, शरीर में आलस्य, किसी भी काम करने में उत्साह नहीं होना, हृदय की गति और नाड़ी की चाल मन्द हो जाना आदि लक्षण होने पर यह वटी देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। यह पित्त को जागृत कर, कफ और आँव दोष को पचाकर बाहर निकाल देती है और पाचक रस की उत्पत्ति कर भूख जगा देती है।

अपतन्त्रकारि वटी (हिस्टीरियाहर वटी)

घी में सेंकी हुई हींग १ तोला, कपूर १ तोला, गाँजा १ तोला, खुरासानी अजवायन के बीज या पत्ती २ तोला, तगर (यूनानी आसारून) २ तोला, सबका कपड़छान चूर्ण कर जटामांसी के फाण्ट में पीस कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—२ गोली एक बार में देकर ऊपर से मांस्यादि क्वाथ पिलावें। ऐसे दिन में ३-४ बार आवश्यकतानुसार दें।

गुण और उपयोग—अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) वटी का प्रभाव वातवाहिनी नाड़ी और मस्तिष्क पर विशेष होता है।

अपतन्त्रक (हिस्टीरिया)—आयुर्वेदीय मतानुसार—रूक्षादि कारणों से प्रकुपित वायु अपने स्थान को छोड़ कर हृदय में जाकर पीड़ा उत्पन्न करता है। इसमें मस्तक और कनपटी में पीड़ा होती है, शरीर को धनुष के समान नवा कर मूर्छित (बेहोश) कर देता है। रोगी कष्ट के साथ साँस लेता, नेत्र पथरा जाते या बन्द हो जाते हैं तथा कबूतर के समान कूजने की-सी आवाज निकलती है।

बेहोशी का दौरा २४ घण्टे से ४८ घण्टे तक निरन्तर होते देखा गया है। बहुतों को तो बार-बार और जल्दी-जल्दी दौरा होता है। ऐसी दशा में रोगी को कुछ होश आते ही तुरत मूर्च्छा हो जाती है। बेहोशी की हालत में दाँती बंध जाती, शरीर अकड़

जाता, रोगी हाथ-पैर पटकने लगता आदि लक्षण होते हैं। इसमें अपतन्त्रकारि वटी के प्रयोग से बहुत शीघ्र फायदा होता है। यह वटी वायु नाशक होते हुए मनोवाहिनी शिरा को भी चैतन्य शक्ति प्रदान करती है। यदि निरन्तर नियमपूर्वक २४ दिन तक इस गोली का सेवन कराया जाय तो फिर हिस्टीरिया आने का कभी सन्देह ही नहीं रहता है।

अर्शोघ्नी वटी

निबोली (नीम के फल की मींगी) २ तोला, बकायन के फल की मींगी २ तोला, खून खराबा (यूनानी-दमउल् अखवेन) २ तोला, तृणकान्त (यूनानी कहरवा) का अर्क और गुलाब से बनाई हुई पिष्टी १ तोला, शुद्ध रसौत (दारुहल्दी का घन) ६ तोला लें। प्रथम निबौली और बकायन की मींगी को खूब महीन पीसें। पीछे अन्य द्रव्य मिला घोट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम। दिन में तीन-चार बार मट्ठे से या ठण्डे पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह दोनों प्रकार के बवासीर (खूनी-बादी) के लिये उत्तम दवा है। खूनी बवासीर में जब जोरों का रक्तस्राव हो रहा हो, तो इस वटी के प्रयोग से बहुत शीघ्र रक्त बन्द हो जाता है। नियमित रूप से इस बटी का सेवन करने से बवासीर जड़-मूल से नष्ट हो जाता है। वादी के बढ़े हुए और कठोर मस्से सूख जाते हैं। यह दस्तावर, वायु नाशक और रक्तरोधक है।

आनन्ददा वटी

शुद्ध अफीम १ तोला, कस्तूरी उत्तम ३ माशे, कपूर ३ माशे, काली मिर्च के चूर्ण १ तोला, रससिन्दूर १ तोला, जायफल चूर्ण, जाविश्री चूर्ण, केशर, शुद्ध हिंगुल प्रत्येक ६-६ माशे लेकर सबको एकत्र खरल में डाल कर भांग के पत्तों के रस की ३ भावना दें। जब गोली बनाने योग्य हो जाय, तब २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —र० वि०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली रात में सोने से एक घण्टा पूर्व, मलाई, दूध या पान के बीड़े में रख कर खायें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से शरीर में बल, वीर्य, वर्ण तथा पाचक अग्नि की वृद्धि होती है। मैथुन से १ घण्टा पूर्व १ गोली मलाई के साथ सेवन कर पुरुष मदमस्त स्त्रियों के साथ इच्छानुसार रमण कर सकता है। वीर्यस्तम्भन और बलवृद्धि के लिये मलाई या दूध के साथ इस वटी का कुछ रोज तक सेवन करने से अच्छा लाभ होता है।

आदित्य गुटिका

बच, सोंठ, जीरा, काली मिर्च, शुद्ध बच्छनाग, हींग भूनी, चित्रक की छाल प्रत्येक दवा समान भाग लेकर, महीन चूर्ण करके भाँगरे के रस में घोट कर, चने प्रमाण गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —वै० जीवन

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम गर्म जल से दें।

गुण और उपयोग—इस वटी के सेवन से सब प्रकार के शूल, अग्निमांद्य, पेट फूलना, अजीर्ण आदि रोग नाश होते हैं।

इस गुटिका का असर वातवाहिनी नाड़ी तथा पाचक पित्त पर विशेष होता है। किसी कारण से प्रकुपित वायु जठराग्नि को मन्द कर पाचक पित्त को कमजोर बना देता है। जिससे मन्दाग्नि और उदर में अन्य कई तरह की वात सम्बन्धी रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे—भूख न लगना, अजीर्ण, पेट भारी मालूम पड़ना, दर्द होना, आलस्य बना रहना, बद्ध कोष्ठ आदि। ऐसी दशा में इस गुटिका के सेवन से अच्छा लाभ होता है। यह दीपक-पाचक और वायु शामक है तथा पाचक पित्त को उत्तेजित करने से अग्नि प्रदीपक भी है।

आमवातारि वटी

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, तूतिया, सुहागे की खील, सेंधा नमक प्रत्येक दवा १-१ तोला तथा शुद्ध गगल

१४ तोला, निशोथ की जड़ और चित्रक की जड़ ३।।-३।। तोले लें। प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बना, उसमें अन्य औषधियों का कपड़छान चूर्ण मिला, एकत्र कर, घी के साथ घोट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम रास्नादि क्वाथ या अंडी (एरण्ड) की जड़ के क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह औषध पाचक, भेदक तथा आमवात, गुल्म, शूल, उदर रोग, यकृत्, प्लीहोदर, अष्ठीला, कामला, पाण्डु, अरुचि, ग्रन्थिशूल, शिर दर्द, वातरोग, गृध्रसी, गलगण्ड, गण्डमाला, क्रिमि, कुष्ठ, भगन्दर, विद्रधि, अन्त्र-विद्रधि, बवासीर और गुदा के समस्त रोगों का नाशक है।

एलादि वटी

छोटी इलायची, तेजपात, दालचीनी प्रत्येक ६-६ माशे, पीपल २ तोला, मिश्री, मुलैठी, पिण्ड खजूर, मुनक्का ४-४ तोला। प्रथम मुनक्का और पिण्ड खजूर को खूब महीन पीसकर उसमें अन्य दवाओं का कपड़छान चूर्ण मिला कर सबको शहद में मिला छोटी बेर के बराबर गोलियाँ बना कर रख लें। —च० द०

मात्रा और अनुपान—१ से ४ गोली दिन भर में चूसें या दूध के साथ लें।

गुण और उपयोग—इस गोली से सूखी-खाँसी, क्षय की खाँसी, रक्तपित्त, मुँह से खून गिरना, बुखार, वमन, मूर्च्छा, प्यास, जी घबराना, स्वरभेद और पित्त के विकारों में बहुत लाभ होता है।

यह पित्त शामक और कफदोष दूर करने वाली है। सूखी खाँसी में कफ बैठ कर छाती में चिपका हुआ रहता है; जिससे श्वास लेने अथवा खाँसी आने पर विशेष तकलीफ होती है। खाँसी में कफ नहीं निकलने से छाती और शिर दर्द करने लगता है। कभी-कभी तो रक्त भी आना शुरू हो जाता है। ऐसी अवस्था में इस गोली से बहुत फायदा होता है। यह पित्त को शमन कर कफ

को पिघला करके बाहर निकाल देता तथा इसके सेवन से एक तरह की तरी बनी रहती है, जिसके वजह से खाँसी नहीं उठती है। इस गोली को चूसने से ही विशेष लाभ होता है।

कफघ्नी वटी

कपूर ६ माशे, कस्तूरी ६ माशे, लौंग २ तोला, काली मिर्च, पीपल, बहेड़ा, कुलिंजन प्रत्येक २-२ तोला, अनार के फल के वक्कल ४ तोला, और खैरसार सब दवा के समान भाग लेकर पानी में खरल करके मूंग के बराबर गोलियाँ बना कर छाया में सुखा कर रख लें। —वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-दोपहर और शाम को चूसें या गर्म जल से लें।

गुण और उपयोग—नवीन कफ में इसका उपयोग विशेष किया जाता है। सर्दी-जुकाम की वजह से कफ की वृद्धि होकर ज्वर होना, शिर में दर्द, आँखों से पानी चलना, खाने की इच्छा न होना, दस्त में कब्ज आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी अवस्था में इस वटी के सेवन से विशेष लाभ होता है। यह वटी विकृत कफ को दूर करती तथा कफ सम्बन्धी उपद्रवों को भी दूर कर आरोग्य प्रदान करती है।

कृमिघातिनी गुटिका

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गंधक २ तोला, अजमोद ३ तोला, वायविडंग ४ तोला, ढाक के बीज ५ तोला, शुद्ध कुचला ६ तोला लेकर सबको एकत्र कूट कपड़छान चूर्ण कर शहद में मिलाकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —र० रा० सु०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली (बच्चों को आधी या चौथाई गोली) शहद या ताजे पानी से सुबह-शाम दें। प्यास लगने पर नागरमोथा का क्वाथ या मूषाकर्णी का काढ़ा पीना चाहिये।

गुण और उपयोग—इस वटी के सेवन से सब प्रकार के कृमि-विकार—जैसे ज्वर, मन्दाग्नि, अतिसार, वमन, पेट फूलना, अजीर्ण आदि रोग दूर होते हैं। कृमि रोग विशेषकर बच्चों को होता

है, जिससे बच्चा सूखने लगता है। पेट में दर्द होना, ज्यादे रोना, पतला दस्त होना, पेट कड़ा रहना तथा ज्वर इत्यादि लक्षण इस रोग में होते हैं। ऐसी हालत में कृमिघातिनी गुटिका सेवन कराने से कृमि नष्ट हो जाता है और साथ ही इसके उपद्रव भी दूर हो जाते हैं। बालक, तरुण और वृद्ध सभी को इस दवा से फायदा होता है।

कांकायन वटी (अर्श)

हरड़ का वक्कल २० तोला, काली मिर्च, जीरा और पीपल ४-४ तोला, पीपरामूल ८ तोला, चव्य १२ तोला, चीता १६ तोला, सोंठ २० तोला, शुद्ध भिलावा ३२ तोला, जिमीकन्द ऽ१, यवक्षार ८ तोला और गुड़ सबसे दूना लेकर यथा विधि १-१ माशे की वटक बना लें। —वंगसेन

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम मट्ठा के साथ दें।

गुण और उपयोग—खूनी और बादी दोनों प्रकार के बवासीर के लिये यह बहुत अच्छी दवा है। इसके सेवन से बवासीर के मस्से सूख जाते हैं और बवासीर में कब्जी रहने के कारण टट्टी के समय जो तकलीफ होती है वह भी मिट जाती है। बवासीर के साथ उपद्रव रूप में होनेवाले अग्निमांद्य तथा पाण्डु रोग आदि भी अच्छे हो जाते हैं।

कांकायन वटी (गुल्म)

कपूर कचरी, पुहकर मूल, दन्ती, चीता, अरहर, अदरक, वच, निसोथ प्रत्येक ४-४ तोला, हींग १२ तोला, जवाखार १० तोला, अम्लवेत ८ तोला, अजवायन, जीरा, कालीमिर्च और धनियाँ प्रत्येक १-१ तोला, कलौंजी और अजमोद २-२ तोला सबका चूर्ण करके बिजौरे नीबू के रस में घोट कर गोलियाँ बनावें। —चक्रदत्त

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम और दोपहर, गर्म जल, घृत या गो-दूध के साथ सेवन करें। गोमूत्र के साथ सेवन करने से पुराना कफज गुल्म, दूध के साथ सेवन करने से पित्तज गुल्म

और मद्य तथा कांजी के साथ सेवन करने से वातज गुल्म नष्ट होता है। त्रिफला के क्वाथ या गोमूत्र के साथ सेवन करने से सन्निपातज गुल्म और ऊंटनी के दूध के साथ सेवन करने से स्त्रियों का रक्त गुल्म नष्ट होता है।

गुण और उपयोग—यह वटी गुल्म रोग की प्रसिद्ध दवा है। अनेकों बार के अनुभूत भी है। गुल्म रोग के अतिरिक्त बवासीर, और हृदय रोग तथा कृमि रोग के लिये भी उपयोगी है।

कासकर्तरी गुटिका

वंगभस्म १ तोला, पीपल २ तोला, हरड़ का बक्कल ३ तोला, यवक्षार ४ तोला, वासा ५ तोला, भारंगी ६ तोला, पखरा कत्था २१ तोला लेकर सब को यथाविधि चूर्ण बना, बबूल के क्वाथ की ७ भावना देकर चना प्रमाण की गोलिया बना लें।—वृ० यो० त०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, दिनभर में ४ बार मुंह में रख कर चूसें या गर्म जल के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—खाँसी, श्वास, यक्ष्मा की खांसी तथा हिक्का (हिचकी) में बहुत फायदा करती है।

यह वटी श्वासनली में से कफ को निकालने तथा फुफ्फुस में यदि किसी तरह के विकार न हुए हो, तो इससे बहुत शीघ्र लाभ होता है।

पित्त की अधिकता से कफ सूख कर सूखी खाँसी होने लगती है। जिससे मुंह सूखना, जलन होना, आँख और हाथ-पैरों में भी जलन होना, खाँसी में कफ नहीं निकलना आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। ऐसी हालत में पित्त प्रकोप को शान्त करने के लिये इसका प्रयोग करना अच्छा है। यह दूषित (चिपका हुआ) कफ को बाहर निकाल कर खाँसी रोक देती है।

कुटजघन वटी

कुड़ा के मूल की या वृक्ष की ताजी-हरी छाल ला, उसको जल से धो कर जौकुट कर १६ गुने जल में पकावें। जब आठवाँ हिस्सा

जल बाँकी रहे, तब उसको नीचे उतार कर ठण्डा होने पर स्वच्छ और मजबूत कपड़े से छान लें। फिर प्रारम्भ में मध्यम और पीछे मन्द अग्नि पर पकावें और लकड़ी के कोंचे से चलाते रहे, जब क्वाथ गाढ़ा होकर कोंचे (लकड़ी) में लगने लगे तब नीचे उतार कर सूर्य की धूप में गाढ़ा हो तब तक सुखावें। पीछे उसमें अतीस का चूर्ण गोली बनने योग्य मिला, ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—२-४ गोली दिन में ३-४ बार ठण्डे जल के अनुपान से दें।

गुण और उपयोग—अतिसार, ग्रहणी और ज्वर में जब पतले दस्त आते हों, तब इसके उपयोग से अच्छा लाभ होता है।

खदिरादि वटी

खैरसार, पोहकरमूल, काकड़ासिंगी, कायफल, ब्रह्मदण्डी, हरड़, लौंग, त्रिकुटा, अतीस, कलौंजी, धमासा, गिलोय, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, और बहेड़ा प्रत्येक २-२ तोला लेकर महीन चूर्ण बनावें। फिर इस चूर्ण के बराबर कत्था का चूर्ण मिला कर उसे अनार की छाल, छोटी कटेली, खैर, अदरख, बबूल की छाल व पत्ते और अडूसे के पत्तों के क्वाथ की ७-७ भावना देकर चना प्रमाण गोली बना, सुखा कर सुरक्षित रख लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—एक-एक गोली करके दिन-रात में ४-५ गोली चूसना चाहिये।

गुण और उपयोग—मुंह में छाले पड़ने और पक जाने पर इस वटी को मुंह में रख कर धीरे-धीरे चूसना चाहिये। स्वरभंग में भी इसके चूसने से लाभ होता है। इसके अतिरिक्त दन्त तथा ओष्ठ रोग, जिह्वा विकार और तालु आदि रोगों में फायदेमन्द है। इसको मुख में रखने से मुंह का जायका ठीक हो जाता है, मुंह सूखता नहीं तथा कफ पिघल कर निकल आता है।

खर्जूरादि वटी

खजूर (छुहारा या पिण्ड खजूर), मुनक्का, मुलेठी, खाँड़ प्रत्येक ४-४ तोला, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात प्रत्येक २-२ तोला ले कर कूट कपड़छान चूर्ण बना, शहद के साथ झड़बेर के बराबर गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली मुंह में रख कर चूसें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से पिपासा, पित्त प्रकोप और रक्त-पित्त का नाश होता है। यह भी एलादि वटी के समान ही गुण-कारी है। विशेषतया रक्त-पित्त में—जब पित्तप्रकोप के कारण रक्त में खलबली मचती है और रक्तवाहिनी शिराएँ भी जगह-जगह पर फट जाती हैं, जिससे रक्त निकलना शुरू हो जाता है। यह रक्त कभी-कभी नीचे मार्ग से भी निकलने लगता है। विशेष प्रकोप होने पर, रोम-छिद्रों द्वारा भी रक्त बहने लग जाता है। ऐसी दशा में खर्जूरादि वटी देने से पित्त शमन हो, रक्त का बहना बन्द हो जाता है। साथ ही खाँसी होना, मुंह सूखना, प्यास, जलन आदि उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं।

राजयक्ष्मा की खाँसी में भी इसका बहुत उपयोग होता है। यह ज्वर की बढ़ी हुई गर्मी को कम कर देती तथा खाँसी को बिल्कुल बन्द कर देती है।

गन्धक वटी

शुद्ध गन्धक २ तोला, सोंठ का महीन चूर्ण ४ तोला, सेंधा नमक २ तोला, इन तीनों का महीन चूर्ण कर जम्बीरी नीबू के रस में तीन दिन तक मर्दन कर चने बराबर गोलियाँ बना लें। —आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान—भोजन के बाद १-१ गोली गर्म जल के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—यह वटी दीपन-पाचन तथा जायकेदार होने से बहुत प्रसिद्ध है। अजीर्ण रोग को नाश करने के लिये यह बहुत प्रसिद्ध है। भोजन के बाद २-४ गोली जल के साथ लेने से अन्न

अच्छी तरह हजम हो जाता है और दस्त भी साफ निकलता है। अरुचि, अजीर्ण, पेट-दर्द, पेट में वायु का जमा होना, आँव की शिकायतें, कब्जियत, रक्त-विकार, अम्ल पित्त आदि रोगों में यह वटी बहुत फायदा करती है। जो लोग भोजन अच्छी तरह पचने के लिये सोडावाटर का व्यवहार करते है उनके लिये यह अमृत के समान गुणकारी है। इससे भोजन अच्छी तरह पच कर भूख खुल कर लगती है और चित्त हमेशा प्रसन्न रहता है। इसके नियमित सेवन से किसी देश के जल का बुरा प्रभाव शरीर पर नहीं पड़ता। इसमें यह विचित्र और अद्भुत शक्ति है। अमीर-गरीब सभी के योग्य, उत्तम गुणदायक यह दवा है। हैजा मे भी इसके उपयोग से अच्छा लाभ होते देखा गया है।

गुडूचीघन वटी (संशमनी वटी)

अंगूठे जितनी मोटी अच्छी ताजी हरी गिलोय लाकर पहले उसको जल से अच्छी तरह धो ले। पीछे उसके ४-४ अंगुल के टुकड़े करके कूट लें। बाद भीतर से खूब साफ की हुई लोहे की कढाई या पीतल के कलईदार वर्तन मे चौगुने पानी में डाल कर चतुर्थांश शेष क्वाथ करें। क्वाथ ठण्डा होने पर अच्छे स्वच्छ वस्त्र से दो-तीन बार छान, कलईदार बरतन मे डाल कर जब तक हलुवा जैसा गाढ़ा न हो, तब तक पकावे, पीछे अग्नि पर से उतार कर गोली बनने योग्य हो, तबतक धूप में सुखा, २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—५ से १० गोली दिन में ४-५ बार जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—हर प्रकार के ज्वर में इसे निर्भयता पूर्वक दे सकते हैं। जीर्णज्वर और राजयक्ष्मा के ज्वर में इसका अच्छा उपयोग होता है। प्रमेह, श्वेतप्रदर, मन्दाग्नि, दौर्बल्य और पाण्डु रोग में भी इससे अच्छा लाभ होता है। यह बलकारक और रसायन गुणयुक्त है। इसी घन में चतुर्थांश अतीस का चूर्ण मिला कर

दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लें। इसमें से ५-१० गोली जल के साथ देने से विषम ज्वर में भी बहुत लाभ होता है।

गुडूच्यादि मोदक

उपरोक्त विधि से गुडूची का घन सत्व बना, उसमें खस, अडूसे के फूल या मूल की छाल, तेजपात, कूठ, आँवला, सफेद मूसली, छोटी इलायची, गुलशकरी, केशर, मुनक्का, नागकेशर, कमलकन्द, कपूर, श्वेत चन्दन, मुलैठी, बरियार के मूल या बीज, अनन्तमूल, वंशलोचन, छोटीपीपल, धान का लावा (खील), असगन्ध, शतावर, छोटा गोखुरू, कवाँच के बीज, जायफल, कवाब चीनी, रससिन्दूर, अभ्रक-भस्म, वंगभस्म और लौहभस्म प्रत्येक १-१ तोला और गुडूची घन सत्व—इन दवाओं के समान भाग लें। प्रथम पत्थर के खरल में रससिन्दूर को खूब महीन पीस लें पश्चात् उसमें भस्म तथा अन्य द्रव्यों का कपड़छान चूर्ण मिला, एक दिन मर्दन कर शीशी में भर लें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१॥ से ३ माशा तक चूर्ण, मिश्री, गाय का घी या शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग—क्षय, रक्तपित्त, हाथ-पाँव की जलन, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह और जीर्ण ज्वर में इसका प्रयोग कर अनेक बार लाभ उठाते हुए रोगी को देखा है।

चन्दनादि वटी

श्वेत चन्दन का बुरादा, छोटी इलायची के बीज, कवाबचीनी, सफेद राल, गन्धाबिरोजा का सत्व, कत्था और आँवला प्रत्येक ४-४ तोला, गेरू २ तोला और कपूर १ तोला ले कपड़छान चूर्ण बना, उसमें ५ तोला उत्तम चन्दन तैल (इत्र) तथा गोली बन सके इतनी रसोत मिला कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—२-४ गोली दिन में ३-४ बार ठंडे जल से दें।

गुण और उपयोग—यह पेशाब की जलन व पेशाब में मवाद जाने की उत्तम दवा है। सूजाक या मूत्रकृच्छ्र हो जाने पर पेशाब में भयंकर जलन, कड़क एवं वेदना होती है और मूत्र मार्ग से मवाद जाने लगता है। ऐसी अवस्था में इसके प्रयोग से सब उपद्रव दूर हो जाते हैं तथा अन्दर के घाव भी अच्छे हो जाते हैं और गिरता हुआ मवाद रुक जाता है।

सूजाक—इस रोग के जहर शरीर में घुसते ही अथवा दो-तीन दिन बाद ही रोग के लक्षण प्रगट हो जाते हैं। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में मूत्र-नलीका मुँह सुरसुराता और खुजलाता है, पेशाब गर्म और लाल होता है। उसमें कुछ जलन होती है और मवाद भी आने लगता है। इसके बाद सूजाक की असल अवस्था शुरू होती है। जिससे पेशाब करते समय भयानक यन्त्रणा होती है। हरा, पीला या सफेद मवाद भी आने लगता है, रात को सोते समय जननेन्द्रिय उत्तेजित हो जाती है, जिसके कारण रोगी को अत्यन्त कष्ट होता है। जननेन्द्रिय के अग्र भाग में सूजन और अण्डकोष तथा पेड़ू में प्रदाह होता है, जिससे मवाद आता रहता है। ऐसी दशा में चन्दनादि वटी के प्रयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है, क्योंकि इसका असर सीधे मूत्र-नली पर पड़ता है तथा मूत्र-विकारनाशक और व्रण-रोपक होने की वजह से इस रोग में बहुत शीघ्र फायदा करती है।

मूत्रकृच्छ्र में—इसका प्रयोग पेशाब साफ और खुल कर लाने के लिये किया जाता है—क्योंकि यह शीत वीर्य्य प्रधान तथा मूत्र-नली के शोधक होने की वजह से इस रोग में भी बहुत लाभ करती है।

चन्द्रकला वटी

छोटी इलायची के बीज, कपूर, शिलाजीत, आँवला, जायफल, केशर, सेमल के मूल, रससिन्दूर, वंगभस्म और अभ्रकभस्म समान भाग लें। प्रथम रससिन्दूर को खरल में खूब महीन पीसें। पीछे उसमें शिलाजीत, भस्में तथा अन्य द्रव्यों का कपड़छान चूर्ण मिला, हरी गिलोय तथा सेमल-मूल के स्वरस में ३-३ दिन मर्दन कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें।—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-२ गोली शहद में मिला कर दें और ऊपर से गाय का दूध या प्रमेहनाशक क्वाथ पिलावें।

गुण और उपयोग—यह बीसों प्रकार के प्रमेह को नष्ट करती है विशेषतः शुक्रमेह और स्वप्नदोष में इसका प्रयोग करने से अधिक लाभ होता है। यह रसायन पौष्टिक तथा बल-वीर्यवर्द्धक है।

इसका प्रभाव वातवाहिनी और शुक्रवाहिनी शिराओं पर ज्यादा होता है। इनकी कमजोरी से ही स्वप्नदोष या पेशाब के साथ शुक्र निकलने लगता है। मर्ज पुराना होने पर शरीर कमजोर, दुर्बल, कान्तिहीन और आँखें निस्तेज हो जाती हैं। शरीर में रक्त की कमी की वजह से शरीर पाण्डु वर्ण का हो जाता है, भूख नहीं लगती, मन्दाग्नि और अजीर्ण रहने लगता है। इस दवा के उपयोग से ये सब विकार दूर हो जाते हैं तथा शरीर भी सबल और सुन्दर बन जाता है।

चन्द्रप्रभा वटी

कपूरकचरी, बच, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय, देवदारु, हल्दी, अतीस, दारुहल्दी, पिपरामूल, चित्रकमूल-छाल, धनिया, बड़ी हर्रे, बहेड़ा, आँवला, चव्य, बायविडङ्ग, बड़ी पीपल, छोटी पीपल, सोंठ, काली मिर्च, माक्षिकभस्म, सज्जीखार, यवक्षार, सेंधानमक, सोंचरनमक, सामुद्रलवण, छोटी इलायची के बीज, कवाबचीनी, गोखुरू और श्वेतचन्दन प्रत्येक ३-३ माशे, निशोथ, दन्तीमूल, तेजपात, दालचीनी, छोटी इलायची, बंशलोचन प्रत्येक १-१ तोला, लौह भस्म २ तोला, मिश्री ४ तोला, शिलाजीत और शुद्ध गूगल ८-८ तोला लें। प्रथम गूगल को साफ करके लोहे के इमामदस्ते में कूटें, जब गूगल नरम हो जाय, तब उसमें शिलाजीत और भस्में तथा अन्य द्रव्यों का कपड़छान चूर्ण क्रमशः मिला तीन दिन गिलोय-स्वरस में मर्दन कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना कर रख लें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम धारोष्ण दूध,

गुडूची क्वाथ, दारुहल्दी का रस, बिल्वपत्र-रस, गोखुरू-क्वाथ या केवल मधु से दें।

गुण और उपयोग—यह वटी मूत्रेन्द्रिय और वीर्य-विकारों के लिये सुप्रसिद्ध है। यह बल को बढ़ाती तथा शरीर का पोषण कर शरीर की कान्ति बढ़ाती है। प्रमेह और उनसे पैदा हुए उपद्रवों पर इसका धीरे-धीरे स्थायी प्रभाव होता है। सूजाक, आतशक आदि के कारण मूत्र और वीर्य में जो विकार पैदा होते हैं, उन्हें यह नष्ट कर देती है। टट्टी-पेशाब के साथ वीर्य का गिरना, बहुमूत्र, श्वेतप्रदर, वीर्य दोष, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी, भगंदर, अण्डवृद्धि, पाण्डु, अर्श, कटिशूल, नेत्ररोग तथा स्त्री-पुरुषों के जननेन्द्रिय-विकारों में चन्द्रप्रभा वटी से बहुत लाभ होता है। पेशाब में जाने वाला एल्ब्यूमिनियम इससे जल्दी बन्द हो जाता है। पेशाब की जलन, रुक-रुक कर देर में पेशाब होना, पेशाब में चीनी आना (मधुमेह), मूत्राशय की सूजन और लिंगेन्द्रिय की कमजोरी इससे ठीक हो जाती है। यह नवीन शुक्र कीटों को उत्पन्न करती है और रक्ताणुओं का शोधन तथा निर्माण करती है। थके हुए नौजवानों को इसका सेवन अवश्य करना चाहिये।

मूत्राशय में किसी प्रकार की विकृति होने से मूत्र दाहयुक्त होना, पेशाब का रंग लाल, पेडू में जलन, पेशाब में दुर्गन्ध अधिक हो, पेशाब में कभी-कभी शर्करा भी आने लगे, ऐसी हालत में चन्द्रप्रभा वटी बहुत उत्तम कार्य करती है क्योंकि इसका प्रभाव मूत्राशय पर विशेष होने से वहाँ की विकृति दूर होकर पेशाब साफ तथा जलनरहित आने लगता है।

वृक्क (मूत्रपिण्ड) की विकृति होने पर मूत्र की उत्पत्ति बहुत कम होती है, जिससे मूत्राघात सम्बन्धी भयंकर रोग वातकुण्डलिका आदि उत्पन्न हो जाते हैं। मूत्र की उत्पत्ति कम होने या पेशाब कम होने पर समस्त शरीर में एक प्रकार का विष फैल कर अनेक तरह के उपद्रव उत्पन्न कर देते हैं। जब तक ये विष पेशाब के साथ निकलते रहते हैं, शरीर पर इसका बुरा प्रभाव नहीं होता।

ऐसी दशा में चन्द्रप्रभा से काफी लाभ होता है। साथ में लोध्रासव या पुनर्नवासव आदि का भी प्रयोग करते रहें। चन्द्रप्रभा का प्रभाव मूत्रपिण्ड पर होने की वजह से विकृति दूर हो जाती तथा मूत्रल होने के कारण यह पेशाब भी साफ और खुल कर लाती है।

पुराने सूजाक में भी इसका उपयोग किया जाता है। सूजाक पुराना होने पर जलन आदि तो नहीं होती, किन्तु मवाद थोड़ी मात्रा में आता रहता है। यदि इसका विष रस-रक्तादि धातुओं में प्रवेश हो उसके विकार शरीर के ऊपरी भाग में प्रगट हो गये हों, यथा—शरीर में खुजली चलना, छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाना, लिंगेन्द्रिय पर चट्ठे पड़ जाना आदि, तो ऐसी दशा में चन्द्रप्रभा वटी—चन्दनासव अथवा सारिवाद्यासव के साथ देने से बहुत अच्छा लाभ करती है। यह रस-रक्तादि गत विषों को दूर कर धातुओं का शोधन करती तथा रक्त शोधन कर उससे होनेवाले उपद्रव को शान्त करती है। इसके सेवन से पेशाब शीघ्र खुल कर आने लगती है।

यह गर्भाशय को भी शक्ति प्रदान कर उसकी विकृति को दूर करके शरीर नीरोग बना देती है। अधिक मैथुन या जल्दी-जल्दी सन्तान होने अथवा सूजाक, उपदंश आदि रोगों से गर्भाशय कमजोर हो जाता है जिससे स्त्री की कान्ति नष्ट हो जाती, शरीर दुर्बल और रक्तहीन हो जाता, भूख नहीं लगती, मन्दाग्नि, वातप्रकोप के कारण समूचे शरीर में दर्द होना, कष्ट के साथ मासिक धर्म होना, रजःस्राव कभी-कभी १०-१२ रोज तक बराबर होते रहना आदि उपद्रव होने पर चन्द्रप्रभा अशोक घृत के साथ दें। अथवा फल-घृत के साथ देने से भी लाभ होता है।

अधिक शुक्र क्षरण या रजःस्राव हो जाने से (स्त्री-पुरुष) दोनों की शारीरिक कान्ति नष्ट हो जाती है। शरीर कमजोर हो जाता, शरीर का रंग पीला पड़ जाता, मन्दाग्नि, थोड़े से परिश्रम से हाँफना, आँखें नीचे धँस जाना, बद्ध कोष्ठता, भूख खुल कर नहीं लगना आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे समय में चन्द्रप्रभा

का उपयोग करने से रस-रक्तादि धातुओं की पुष्टि होती है तथा वायु का भी शमन होता है।

स्वप्नदोष या अप्राकृतिक ढंग से छोटी आयु में वीर्य का दुरुपयोग करने से वातवाहिनी तथा शुक्रवाहिनी नाड़ियाँ कमजोर हो शुक्र धारण करने में असमर्थ हो जाती हैं। परिणाम यह होता है कि स्त्री-प्रसंग के प्रारम्भकाल में ही पुरुष का शुक्र निकल जाता है। अथवा स्वप्नदोष हो जाता है या किसी नवयुवती को देखने या उससे वार्तालाप करने मात्र से ही वीर्य निकल जाता है। ऐसी दशा में चन्द्रप्रभा वटी गुर्च के क्वाथ के साथ खाने से बहुत लाभ करती है।

वात-पैत्तिक प्रमेह में इसका अच्छा असर पड़ता है। वात-प्रकोप के कारण बद्धकोष्ठ हो जाने पर मन्दाग्नि हो जाती है, फिर अजीर्ण, अपच, भूख नहीं लगना, अन्न पर अरुचि, कभी-कभी प्यास ज्यादे लगना, शरीर शक्तिहीन मालूम पड़ना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस अवस्था में चन्द्रप्रभावटी के प्रयोग से प्रकुपित वायु शान्त हो कर इससे होने वाले उपद्रव भी शान्त हो जाते तथा प्रमेह-विकार भी दूर हो जाते हैं।

चित्रकादि वटी

चित्रकमूल की छाल, पीपलामूल, सज्जीखार, यवक्षार, सेंधा नमक, सोंचर नमक, काला नमक, समुद्र नमक, साँभर नमक, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, घी में सेंकी हुई हींग, अजमोद, चव्य प्रत्येक समान भाग ले कर कूट कपड़छान चूर्ण बना, बिजौरा या दाड़िम के रस में ३ दिन मर्दन कर चने बराबर गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।

—च० सं०

मात्रा और अनुपान—२-४ गोली जल के साथ भोजन के बाद दें।

गुण और उपयोग—आमाशय के बिगड़ जाने पर अन्न ठीक से हजम नहीं होता हो, अर्थात् खाये हुए पदार्थ का अच्छी तरह से परिपाक न होने पर आँवयुक्त कच्चा मल दस्त के साथ निकलता हो

(इसकी चिकित्सा जल्दी नहीं करने से संग्रहणी हो जाती है) तो जल के साथ सुबह-शाम इसका सेवन करने से अग्नि प्रदीप्त हो जाती और भूख खुल कर लगने लगती है। अन्न का अच्छी तरह से परिपाक होने पर आँव का बनना बिल्कुल बन्द हो जाता है और पाचन-शक्ति ठीक हो जाती है।

छर्दिरिपु वटी

कपूर कचरी का सूक्ष्म कपड़छान किये हुए चूर्ण को ३ घण्टे तक चन्दनादि अर्क या गुलाब जल में घोंट कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-२ गोली केवल या उसके साथ मयूर पिच्छ भस्म २ रत्ती, जहरमोहरा पिष्टी २ रत्ती मिलाकर लाज मण्ड या चन्दनादि अर्क के साथ या पोदीना अर्क के साथ दें।

गुण और उपयोग—सब प्रकार के छर्दि (वमन) में यह वटी उपयोगी है। विशेष कर पित्तप्रकोप जन्य छर्दि में इसका असर बहुत शीघ्र होता है। हैजे की छर्दि में भी इसका उपयोग किया जाता है।

जम्बीर-लवण वटी

जम्बीरी या कागजी नीबू का रस १२० तोला, सेंधा नमक १२ तोला, सोंठ २।। तोला, अजवायन २।। तोला, सज्जीखार २।। तोला, छोटी पीपल २।। तोला, घी में सेंकी हुई हींग २।। तोला, करंज के फल को थोड़ा सेंक कर निकाला हुआ मगज २।। तोला, काली मिर्च २।। तोला, छिला हुआ लहसुन २।। तोला, सफेद पुनर्नवा के मूल २।। तोला, पीली सरसों २।। तोला, सफेद जीरा भुना हुआ २।। तोला, अतीस २।। तोला और समुद्र लवण २।। तोला लें। स्वच्छ-सफेद कपड़े से छाने हुए जंबीरी या कागजी नीबू के रस को काँच के बर्तन में डाल, उसमें सेंधानमक का चूर्ण मिला, बरतन के मुँह पर सफेद कपड़ा बांध कर उसको ४ दिन तक दिन में कड़ी धूप में रखें और रात को घरमें रखदें, पाँचवें दिन उस रस को मजबूत मिट्टीके बर्तन में डाल

कर मन्दी आँच पर पकावें और लकड़ी से चलाते रहें, जब गाढ़ा हो जाय, तब उसमें अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण मिला, नीचे उतार कर ठंडा होने पर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-२ गोली ठंडे पानी के साथ भोजन के बाद या आवश्यकतानुसार दिन में ३-४ बार दे।

गुण और उपयोग—यह गोली उत्तम दीपन-पाचन है। मन्दाग्नि, अरुचि, पेट का दर्द, अजीर्ण और अफारे में इससे अच्छा लाभ होता है। यह स्वादिष्ट, पाचक तथा रुचि को बढाने में अपूर्व काम करती है।

जयन्ती वटी

शुद्ध बच्छनाग, पाठा, असगन्ध, बच, तालीसपत्र, काली मिर्च, पीपल और नीम की छाल का समान भाग चूर्ण ले कर सबको बकरी के मूत्र म घोंट कर चने के बराबर गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख ले। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम। पित्त ज्वर में—गो-दुग्ध के साथ दें। सन्निपात ज्वर में इस वटी को काली मिर्च के चूर्ण और शहद के साथ दें। विषमज्वर में घृत के साथ और सब प्रकार के ज्वरोंमे त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मिर्च) चूर्ण के साथ दें। ज्वर-युक्त रक्त-पित्त में—चन्दन के काढ़े के साथ दें। खाँसी मे—शहद के साथ, पाण्डु और शोथ में दूध के साथ तथा पथरी और भयंकर मूत्रकृच्छ्र में—चावलों के पानी के साथ दें। कुष्ठ मे—गो मूत्र के साथ देना चाहिये। प्रमेह मे केतकी की जड़ के साथ दे अथवा—लोध, मोथा, हर्रे और कायफल के क्वाथ में शहद डाल कर पिलाने से भी प्रमेह रोग नष्ट होता है। त्रिदोषजगुल्म में आनन्दभैरव रस या जयन्ती वटी को गुड़ मिला कर गर्म जल के साथ देने से त्रिदोषजगुल्म नष्ट होता है। भगन्दर रोग मे सोंठ के साथ ग्रहणी में छाछ के साथ और त्रिदोषज रक्त-पित्त में शीतल जल के साथ प्रयोग करना चाहिये।

जया वटी

शुद्ध बच्छनाग, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), नागरमोथा, हल्दी, नीम के पत्ते और बायबिडंग का चूर्ण समान भाग लेकर बकरे के मूत्र में १२ घंटे तक घोट कर चने के बराबर गोलियाँ बनावें। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—रसेन्द्रसारसंग्रहकार ने इन दोनों (जया और जयन्ती वटी) का अनुपान तथा गण एक-सा ही लिखा है। और वैद्य लोग इसी अनुपान के अनुसार प्रयोग करके लाभ भी उठा रहे हैं। इन दोनों प्रयोगों में बच्छनाग आया है, जो एक खास और विलक्षण गुण रखता है। बच्छनाग विष का प्रभाव प्रकुपित वात तथा ज्वर पर बहुत होता है।

यह वटी वात और पित्त को शमन करनेवाली है अतएव शरीर में किसी प्रकार का दर्द होने पर इसका प्रयोग किया जा सकता है। यह विषम-ज्वर को भी नष्ट करती है। यदि दस्त में कब्जियत हो तो जयन्ती वटी का ही प्रयोग करना चाहिये। इससे बद्धकोष्ठता दूर होकर दस्त साफ आने लगता है और बुखार भी उतर जाता है।

जातीफलादि वटी (संग्रहणी)

अभ्रक भस्म, शुद्धपारद, शुद्ध गन्धक ४-४ माशे लेकर कज्जली बना लें। फिर उसमें जायफल, मोचरस, मोथा, सुहागा, अतीस, सफेद जीरा और काली मिर्च प्रत्येक ३-३ माशे, शुद्ध बच्छनाग १ माशा, सब को एकत्र मिला खूब खरल करें। इसके बाद इसमें निर्गुण्डी, भाँग, जामुन, जयन्ती, दाड़िम, केशराज, भाँगरा और पाठा, इनके रस की एक-एक भावना देकर जंगली बेर की गुठली के बराबर गोली बना सुखा कर रख लें। —र० सा० सं०

दूसरा—जायफल, खजूर (छुहारा) और अफीम समान भाग

लेकर पान के रस में घोंट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —बृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम मट्ठा (छाछ) के साथ दें।

गुण और उपयोग—कफ-वात प्रधान संग्रहणी, अतिसार आदि में इसका उपयोग किया जाता है। दस्तों के साथ आँव आता हो, अथवा दस्त आने के समय पेट में दर्द होता हो, पेट में मरोड़ उठती हो, दस्त पतला और ज्यादे परिमाण में होता हो तथा कभी-कभी रक्त भी आने लगता हो, साथ ही पेट में भारीपन, तथा अपचन आदि हो, तो ऐसी दशा में इस रसायन का सेवन करना बहुत लाभदायक है।

जातीफलादि वटी (स्तम्भक)

जायफल, आक की जड़, अकरकरा, लौंग, सोंठ, कंकोल, केशर पीपल और मलयागिरि चन्दन प्रत्येक १-१ तोला, अफीम ६ तोला, अभ्रकभस्म १८ तोला और सब दवा के समान भाग शक्कर लेकर सब को एकत्र मिला कर महीन चूर्ण कर के शहद के साथ घोट कर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —बृ० यो० त०

मात्रा और अनुपान—रात को सोने से पूर्व १ गोली खाकर गो-दुग्ध पीना चहिये या मधु अथवा घृत के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—वीर्यस्तम्भन करने वाली जितनी भी दवाइयाँ होती हैं, वे प्रायः स्नायु संकोचक हुआ करती हैं। इसका प्रभाव वातवाहिनी और शुक्रवाहिनी नाड़ियों पर विशेष होता है। इसी कारण यह वीर्य को जल्दी क्षरण नहीं होने देती है। वीर्य स्खलन उसी हालत में होता है, जब स्नायु ढीली पड़ जाती है। इस दवा के प्रभाव से जब तक स्नायु कड़ी रहती है, तब तक वीर्य रुका रहता है और इसका प्रभाव दूर हो जाने पर शुक्र निकल जाता है।

नोट—इस दवा का प्रयोग बहुत होशियारी के साथ करना चाहिये क्योंकि, इसमें अफीम की मात्रा अधिक है। दूसरी बात—इस दवा के सेवन करने के बाद तीन रोज तक दूध, मलाई, रबड़ी आदि स्निग्ध पदार्थों का

खूब सेवन करना चाहिये। अन्यथा क्षणिक आनन्द के लोभ में पड़ कर बहुत बड़ा नुकसान उठाना पड़ता है। खुश्की बढ़ जाती है, कमजोरी तथा शक्ति की कमी, किसी कार्य में मन नहीं लगना, शरीर की कान्ति नष्ट हो जाना, किसी की बात अच्छी न लगना आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। कारण यह होता है, कि जितनी देर में वीर्य निकलता है, उतना ही ज्यादे परिमाण में वीर्य गिरता है—जिसकी पूर्ति तुरत होना कठिन हो जाता। यह पूर्ति दूध, मलाई आदि स्निग्ध तथा पौष्टिक पदार्थों से शीघ्र हो जाती है। बुद्धिमान और सत् पुरुषों को इन दवाओं से बच करके ही रहना चाहिये।

तक्र वटी

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक १-१ माशा, शुद्ध बच्छनाग २ माशा, ताम्रभस्म ४ माशा, पीपल और मण्डूर भस्म १-१ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना लें, फिर अन्य ओषधियों का चूर्ण मिला कर सबको ७ दिन तक काले जीरे के रस में घोट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम—तक्र (छाछ) के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—पुरानी से पुरानी ग्रहणी जब किसी भी दवा से अच्छी न हो रही हो, रोगी दिन-प्रतिदिन कमजोर होता जा रहा हो, दस्त की मात्रा तथा तादाद बढ़ती ही जाती हो, पेट की गड़बड़ी तथा आँतों की कमजोरी के कारण पचन क्रिया बिल्कुल मन्द पड़ गयी हो, तब इस वटी का उपयोग किया जाता है। यदि कल्प-रूप से इस दवा का उपयोग किया जाय, तो बहुत शीघ्र लाभ होता है। इस दवा का कल्प प्रारम्भ करते हुए इसके सेवन काल में लवण और पानी एकदम बन्द कर दें—पानी की जगह केवल छाछ (मठ्ठा) पीने को दें। आहार में लघुपाकी तथा हल्का अन्न दें। इस क्रम से दवा सेवन कराने से दु:साध्य ग्रहणी रोग अच्छा हो जाता है।

त्रैलोक्य विजया वटी

भाँग का घन सत्त्व ३ तोला और बंशलोचन चूर्ण ३ तोला, दोनों को एकत्र खरल में जल के साथ मर्दन कर अच्छी तरह सावधानी से १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —र० वि०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम मधु से देना चाहिये।

गुण और उपयोग—इस वटी के सेवन से प्रलाप, उन्माद और वृक्कशूल नष्ट होता है। माहवारी के समय होने वाले रजः कष्ट-जन्य शूल को यह दूर करती है तथा राजयक्ष्मा की खाँसी को मिटाती है। इसके सेवन से पुरातन अतिसार नष्ट हो जाता है और स्वप्नदोष बन्द हो जाता है।

इस वटी का प्रभाव वातवाहिनी नाड़ियों पर विशेष होता है। दूध या मलाई के साथ सेवन करने से यह बाजीकर भी है—क्योंकि इसका प्रभाव जननेन्द्रिय एवं शुक्रवाही शिराओं पर भी होता है। शरीर में कहीं भी किसी तरह की पीड़ा हो, इस वटी के सेवन से तुरत लाभ होता है। रजःकृच्छ्रता अर्थात् कष्ट से माहवारी होने पर, इसका कार्य बहुत अच्छा होता है। यह दस्त को भी रोकता है—परन्तु यह अफीम की तरह मलबन्धक नहीं है। इसकी थोड़ी मात्रा में सेवन करने से कुछ नशा आ जाने के कारण यह थकावट को भी दूर करती है।

दाड़िमादि वटी

अनार दाने का चूर्ण ८ तोला, गुड़ ३२ तोला, सोंठ, पीपर, मिर्च, प्रत्येक ५-५ तोला लेकर सबका चूर्ण बना, कपड़छान करके एकत्र घोट कर चने प्रमाण की गोलियाँ बना लें। —वा० भ०

मात्रा और अनुपान—१-४ गोली जल से या वैसे ही दिन भर मुख में रख कर चूसते रहें।

गुण और उपयोग—ये गोलियाँ रोचक, दीपक, स्वर को सुधारने-वाली और पीनस, खाँसी तथा श्वासनाशक हैं।

कभी-कभी कफ की वृद्धि या मल संचय के कारण मुँह का स्वाद फीका हो जाता है तथा कफ की वृद्धि से मुँह में कफ लिपटा हुआ मालूम पड़ता है। अन्न में अरुचि, भूख न लगना, मन्दाग्नि, जी मिचलाना, देह में आलस्य बना रहना, निरुत्साह आदि लक्षण हो जाते हैं। ऐसी हालत में इस वटी से बहुत शीघ्र लाभ

होता है, क्योंकि इसमें अनारदाना की मात्रा विशेष होने की वजह से यह पाचक, अग्निदीपक तथा अरुचिनाशक है।

शौक से भी कितने आदमी इस गोली को लिया करते हैं, क्योंकि इसका जायका अच्छा होता है। अजीर्ण, पेट दर्द, भूख नहीं लगना आदि विकारों में भी इसका सेवन किया जाता है।

द्राक्षादि गुटिका

धोकर बीज निकाला हुआ मुनक्का और हर्रे के छिल्के का चूर्ण दोनों सम भाग लेकर, शक्कर इससे दूनी मिला सबको एकत्र कर १-१ माशे की गोलियाँ बना लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम शीतल जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह वटी पित्त और वात शामक है। प्रकुपित पित्त के कारण उत्पन्न हुए रोगों में इसका उपयोग किया जाता है। यह अम्लपित्त, कण्ठ और हृदय की दाह, तृष्णा, मूर्च्छा, भ्रम, मन्दाग्नि और आमवातनाशक है।

दुग्ध वटी (शोथ)

शुद्ध बच्छनाग, शुद्ध धतूरे के बीज, शुद्ध सिंगरफ समान भाग लेकर तीनों दवाओं को एक प्रहर धतूरे के पत्तों के रस में घोटकर मूँग के बराबर गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—सूजन (शोथ) की बीमारी में जब किसी दवा से आराम न होता हो, तब दुग्धवटी का सेवन करना चाहिये। संग्रहणी, मन्दाग्नि, पाण्डु रोग और विषमज्वर में भी इस दवा से लाभ होता है।

दुग्ध वटी (संग्रहणी)

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, शुद्ध विष, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध हिंगुल, सेमर का क्षार और अफीम

प्रत्येक समान भाग लेकर दूध में घोट कर आधे जौ के बराबर गोलियाँ बना सुखाकर रख लें। —आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम दूध के साथ अथवा संग्रहणी में भाँग के क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग—आँव सम्बन्धी विकार, अतिसार, संग्रहणी, प्रवाहिका, और आमातिसार में इससे बहुत लाभ होता है। आँतों की सूजन को दूर करके उनमें ग्राही शक्ति उत्पन्न करती है। संग्रहणी के साथ शोथवाले रोगी पर इसका प्रभाव बहुत अच्छा होता है।

संग्रहणी के रोग में कभी-कभी हाथ-पाँव और मुंह भी सूज जाते हैं। यह सूजन वात-कफात्मक होती है। पेट में आँव का संचय होने से भी सूजन हो जाती है। आँव का संचय भी उपरोक्त कारणों से ही होता है। यह वटी वात-कफनाशक है। अतएव संग्रहणी को दूर करते हुए सूजन को भी यह दवा नष्ट करती है।

पथ्य में—केवल दूध-भात देना चाहिये। नमक एकदम बन्द कर दें। प्यास लगने पर भी दूध ही देना चाहिए। यदि दूध देने पर भी प्यास न बुझे तो नारियल का पानी दें।

धनंजय वटी

सफेद जीरा, चित्रक, चव्य, सुगंधतृण, बच, दालचीनी, इलायची, कचूर, हाऊबेर, कलौंजी, नागकेशर प्रत्येक १-१ तोला, सौंफ ६ माशा, अजवायन, पीपलामूल, सज्जीखार, हर्रें, जायफल, लौंग प्रत्येक २-२ तोला, धनियाँ और तेजपात ३-३ तोला, पीपल और सांभर नमक ४-४ तोला, काली मिर्च ७ तोला, निशोथ ८ तोला, समुद्र लवण, सेंधा नमक और सोंठ १०-१० तोले, चूक या अम्लवेत ३२ तोले, पकी इमली १६ तोले—सबको कूट कपड़छान चूर्ण कर नींबू के रस में ३ दिन घोट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—१ से ३ गोली दिन में गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह वटी दीपन-पाचन-अग्निवर्धक, अजीर्ण,

शूल, मन्दाग्नि, बद्धकोष्ठ, पेट फूलना, अपचन, पेट का दर्द, आमाजीर्ण तथा विष्टब्धाजीर्ण को दूर करती हैं।

अजीर्ण रोग ३ प्रकार के होते हैं। यथा—कफ-दोष से आमाजीर्ण, पित्त-दोष से विदग्धाजीर्ण और वात-दोष से विष्टब्धाजीर्ण ऐसे तीन भेद हैं। इनके अतिरिक्त रस शेषाजीर्ण भी होता है। इनमें दोषानुरूप चिकित्सा होने से जल्दी लाभ होता है। यथा—कफ से उत्पन्न आमाजीर्ण में कफ-दोषनाशक तथा पित्त-दोष से उत्पन्न विदग्धाजीर्ण में पित्त-दोषनाशक और वायु से उत्पन्न विष्टब्धाजीर्ण में वात-दोषनाशक दवा का उपयोग करने से लाभ होता है।

यह वटी वात और कफ-दोषनाशक है। अतएव विष्टब्धाजीर्ण और आमाजीर्ण में इसका विशेष उपयोग किया जाता है। सामान्यतया जिस अजीर्ण रोग में—पेट में वायु भरा रहना, दर्द होना, विबंध, पेट में भारीपन और दर्द विशेष हो, ऐसी दशा में धनंजय वटी देने से बहुत लाभ होता है। यह प्रकुपित वात और कफ-दोष को शान्त कर पक्वाशय में पाचक-रस की उत्पत्ति कर अजीर्ण दोष को मिटा देती है जिससे वायु का संचार होकर दस्त साफ होने लगता तथा भूख भी खुलकर लगती है।

नवज्वर हर वटी

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, शुद्ध बच्छनाग, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, शुद्ध जमालगोटा प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बनावें फिर अन्य दवाओं का कपड़छान चूर्ण मिला सबको एक दिन गूमा के रस में घोट कर उड़द के बराबर गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भा० प्र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह वटी दीपन-पाचन है। ज्वर की प्रारम्भिक अवस्था में उपवास करने के बाद दोष-पाचन के लिये क्वाथ आदि देने की आवश्यकता होती है। इसमें दोष-पाचन के लिये इस वटी का प्रयोग करने से दोष-पाचन भी हो जाता तथा ज्वर

भी धीरे-धीरे कम होने लगता है। यह साधारण रेचक भी है क्योंकि इसमें जमालगोटा पड़ा हुआ है। अतः बद्ध कोष्ठता को भी दूर करने के लिये इसका प्रयोग करना चाहिए।

पंचतिक्तघन वटी

सप्तपर्ण (छतिवन) के वृक्ष की हरी ताजी छाल, करंज की हरी पत्ती, गुर्च (हरी), कालमेघ और कुटकी सब समभाग लें। इन सबको तथा कुटकी को भी अलग-अलग धोकर काढ़ा बनाने योग्य जौकुट करें,। पीछे सबको अच्छे कलइदार बर्तन में अठगुने जल में पकावें। जब अष्टमांश जल बाकी रहे, तब नीचे उतार कर ठंडा होने दें।

ठंडा होने पर अच्छे कपड़े से उसको दो बार छान कर कलईदार बर्तन में पुनः पकावें, पकाते-पकाते क्वाथ जब कलछी में लगने लगे अर्थात् इतना गाढ़ा हो जाय, तब वर्तन को नीचे उतार कर धूप में रख कर सुखावें। पीछे उसमें थोड़ा अतीस का चूर्ण मिला ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुरक्षित रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—२-२ गोली, दिन भर में ४ गोली गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—विषम ज्वर (मलेरिया) के लिये अच्छी दवा है। पारी का बुखार जब किसी दवा से नहीं रुकता हो, तब इसका उपयोग करना चाहिये। इसमें एक विशेषता यह है कि कुनैन की तरह अधिक सेवन करने पर भी नुकसानदायक नहीं है।

प्राणदा गुटिका

सोंठ १२ तोला, काली मिर्च १६ तोला, पीपल ८ तोला, चव्य ४ तोला, तालीसपत्र ४ तोला, नागकेशर २ तोला, पीपलामूल ८ तोला, तेजपात ६ माशे, छोटी इलायची १ तोला, दालचीनी ६ माशे और गुड़ १२० तोला लेकर गुड़ की चासनी में अन्य समस्त ओषधियों का कूट-कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिला, १-१ माशे की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-२ गोली, दिन में दो बार दूध या ठण्डे जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह खूनी, बादी और प्राकृतिक दोष से उत्पन्न बवासीर के लिये सर्वोत्तम दवा है। इसके नियमित सेवन से बवासीर में खून गिरना बन्द हो जाता है और बवासीर के मस्से सूखने लगते है। पाण्डु, कृमि, पेट-दर्द, गुल्म, श्वास खाँसी आदि रोगों में इस औषध से अच्छा लाभ होता है।

यह वटी मूत्रकृच्छ्र, वातरोग, गलग्रह, विषमज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डु, कृमि, हृद्रोग, गुल्म, श्वास और खाँसी से पीड़ित रोगियों के लिये भी समान गुणकारी है।

नोट:—यदि अर्श के साथ मलावरोध भी हो, तो इस योग में सोंठ के स्थान पर हर्रे डालनी चाहिये, और यदि पित्तार्श में सेवन कराना हो, तो गुड़ के स्थान में समस्त चूर्ण से चौगुना शक्कर डालनी चाहिये। गोलीयाँ गुड़ या शक्कर की चासनी बना, उनमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिला कर बनानी चाहिये।

प्लीहारि वटी

एलुवा, अभ्रकभस्म, कसीस, और लहसुन, प्रत्येक समान भाग लेकर सबको तीन पहर गूमा के रस में घोट कर ६-६ रत्ती की गोलियाँ बना कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से ४ गोली, दिन मे गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—प्लीहा (तिल्ली) के लिए यह अच्छी दवा है। इसके सेवन से पेट की बढ़ी हुई तिल्ली कट जाती है और तिल्ली के बढ़ जाने से होने वाले ज्वर, खाँसी, सूजन, तथा मन्दाग्नि आदि रोग भी अच्छे हो जाते हैं। यकृत् विकार (लीवर बढ़ कर अपने कार्य में असमर्थ हो जाना), गुल्म, मन्दाग्नि, सूजन आदि में भी यह औषध फायदेमन्द है।

बालजीवन गुटिका

गोरोचन ३ माशे, एलुवा (मुसब्बर) ६ माशा, उसारे रेबन्द, केशर, कटेरी छोटी, जीरा, यवक्षार, सत्यानाशी के बीज प्रत्येक १-१

तोला लेकर, महीन चूर्ण कर अदरक के रस में ६ घण्टे घोट कर मूंग के बराबर गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —ध०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली आवश्यकतानुसार शहद या माता के दूध से दें।

गुण और उपयोग—यह बच्चों की पसली (डब्बा रोग) चलना, कब्जियत, आफरा, श्वास, कास, पेशाब रुकना आदि को दूर करती तथा बच्चे को हृष्ट-पुष्ट बनाती है।

अक्सर बच्चों को कफ वृद्धि के कारण दस्त कब्ज हो जाता है। जिससे बच्चे का पेट फूल जाता, दस्त नहीं होता, बच्चे अधिकतर रोते ही रहते, बच्चे का मुँह भरा हुआ-सा मालूम पड़ता, कफ-वृद्धि के कारण श्वास लेने में भी दिक्कत होती तथा नाक का श्वास बन्द हो जाने से मुँह से ही साँस लेना पड़ता है, आदि उपद्रव होने पर यह वटी देने से प्रकुपित कफ शान्त हो जाता और दस्त खुल कर होने लगते हैं तथा दस्त के साथ ही कफ भी निकल जाता है।

बालवटी

सफेद जीरा, छाया में सुखाया हुआ पोदीना, हर्रे, बायबिडंग, लौंग, अतीस, सौंफ, जायफल, भाँग, रूमीमस्तगी, कच्छपास्थि-भस्म (कछुए की पीठ की भस्म), अपराजिता के बीज, जहरमोहरा की पिष्टी और केशर, सम भाग लेकर कपड़छान चूर्ण कर प्रत्येक दवा ग्वारपाठे के रस में पीस १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर शीशी में रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम माँ के दूध अथवा शहद में मिला कर चटा दें।

गुण और उपयोग—बच्चे को विकृत दूध अथवा कफ वृद्धि के कारण दूध नहीं पचता है। दूध पीने के बाद थोड़ी ही देर में उगल देता है अथवा पच भी गया तो अच्छी तरह से हजम न होने के कारण फटे-फटे दस्त होने लगते हैं। रात में नींद नहीं आती, बराबर तो नहीं, किन्तु अधिक देर तक जागता और रोता ही रहता है।

सर्दी जोर की हो जाती है, साथ-साथ खाँसी भी आने लगती है—इन उपद्रवों को दूर करने के लिये इस वटी का उपयोग करना सर्वोत्तम है।

बोलादि वटी

हीरा बोल (मुरमकी) २ तोला, शुद्ध सुहागा १ तोला, कसीस १ तोला, घी में सेंकी हुई हींग और मुसब्बर १-१ तोला, सबको जटामांसी के क्वाथ में पीस कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—२-२ गोली, सुबह-शाम—भोजन के आध घण्टा बाद जल से दें।

गुण और उपयोग—स्त्रियों के मासिक धर्म की गड़बड़ी में इसका उपयोग किया जाता है। यह गर्भाशय को शक्ति प्रदान करती तथा मासिक धर्म सम्बन्धी उपद्रवों को भी दूर करती है।

व्योषादि वटी

सोंठ, पीपल, मिर्च, अम्लवेत, चव्य, तालीसपत्र, चित्रकमूल, सफेद जीरा और इमली का गूदा १-१ तोला, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची का चूर्ण ६-६ माशे, सबको एकत्र कूट-कपड़छान चूर्ण कर २० तोला गुड़ मिलाकर एक-एक माशे की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —शा० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, दिन भर में चार गोली गरम जल से दें।

गुण और उपयोग—सर्दी की यह प्रसिद्ध दवा है। इसका उपयोग अधिकतर सर्दी, जुकाम, पीनस, नजला आदि रोगों में किया जाता है। यह नवीन कफ को बाहर निकालता तथा बढ़े हुए कफ को शमन करता है। साथ ही सर्दी से होने वाले उपद्रवों में यथा—शिर में दर्द होना, शिर भारी रहना, भूख नहीं लगना आदि उपद्रवों को भी दूर करता है।

प्रतिश्याय—ज्यादे वर्षा में भींगने, ठण्ढ लगने, कड़ी धूप में

घूमने, रात्रि जागरण, दिवास्वप्न, अजीर्ण, एकाएक पसीना बन्द हो जाने आदि कारणों से जुकाम हो जाता है। कस्बे या शहरों मे आजकल धुआँ तथा धूलमिश्रित वायु में ही अधिक काल रहना पड़ता है। अतएव स्वच्छता के अभाव में यह रोग उत्पन्न हो जाता है। यही कारण है कि देहातों की अपेक्षा कस्बे तथा शहरों में इस रोग का प्रसार विशेष देखने मे आता है।

उक्त अपथ्य के कारण जुकाम उत्पन्न हो जाता है। नासा और गले की श्लैष्मिक कला मे शोथ (सूजन) होने से सर्दी और ज्वर दोनों हो जाते है। जुकाम होने पर बेचैनी, सम्पूर्ण शरीर मे दर्द, अगड़ाई आना, नाक और आँखों से जल बहना, छीक आना, शिर-दर्द, शिर का भारीपन, खुश्क-खाँसी, स्वरभंग, अरुचि आदि विकार उत्पन्न होते है। अगर समय पर इसका उचित उपचार न हुआ तो जुकाम से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते है। इनमे मन्द-मन्द ज्वर, अरुचि, कफ, खाँसी, बलगम गिरना, नाक से दुर्गन्ध आना तथा दुर्गन्धयुक्त स्राव होना, शिर-दर्द आदि प्रधान उपद्रव उत्पन्न होते है। ऐसे भयंकर रोग को नाश करने के लिये व्योषादि वटी का उपयोग गरम जल से करना चाहिये।

वृद्धिवाधिका वटी

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, ताम्रभस्म, कांस्यभस्म, वगभस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध तूतिया, शङ्खभस्म, कौड़ीभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, चव्य, बायबिडंग, विधारामूल, कचूर, पीपरामूल, पाठा, हपुषा, वच, इलायची के बीज, देवदारु, सेंधानमक, काला नमक, विड्लवण, समुद्र लवण और काच लवण प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य औषधियों का कपड़छान चूर्ण तथा भस्में मिला कर हर्रे के क्वाथ में घोट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—एक-एक गोली सुबह-शाम, ताजा पानी या बड़ी हरीतकी के क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह नये-पुराने सभी तरह के अण्ड-वृद्धि रोग को दूर करती है। अन्त्र वृद्धि (हार्नियाँ) में भी इस वटी से लाभ होता है। अण्डकोष में वायु भर जाना, दर्द होना तथा नये दूषित रस का उतरना, रक्त एवं जल भरना आदि सभी प्रकार के अण्डकोष के विकारों में यह दवा गुण करती है। किन्तु प्रारम्भिक अवस्था की अपेक्षा पुरानी अवस्था में—जब अण्डकोष में जल भर गया हो तब विशेष लाभ नहीं करती है। अतएव अण्ड-वृद्धि का आभास होते ही यह दवा शुरू कर देनी चाहिये ताकि आगे वृद्धि न हो, साथ ही कदम्ब पत्र पर घी का लेप कर उसे सेंक कर अण्डकोष पर लपेट लगोंटा से कस देना चाहिये। इससे प्रारम्भिक अवस्था में बहुत लाभ होता है।

ब्राह्मीवटी (स्वर्णघटित)

अभ्रकभस्म, संगेयशव की भस्म या पिष्टी, अकीक की भस्म या पिष्टी, माणिक्यभस्म या पिष्टी, चन्द्रोदय, प्रवालभस्म या पिष्टी, कहरवा पिष्टी, स्वर्णभस्म या वर्क, मोती पिष्टी या भस्म प्रत्येक ६-६ माशे, जायफल, लौंग, कूठ, जावित्री, स्याह जीरा, छोटी पीपल, दालचीनी, अनीसून, असगन्ध, अकरकरा, धनिया, बंशलोचन, छोटी इलायची के बीज, शंखाहुली, श्वेत चन्दन, सौंफ, तेजपात, नागकेशर, रूमीमस्तगी, पीपलामूल, चित्रकमूल की छाल और कुलिंजन प्रत्येक ४-४ माशे और कस्तूरी, अम्बर, ब्राह्मी, निशोथ, अगर और केशर प्रत्येक डेढ़-डेढ़ तोला लें। प्रथम चन्द्रोदय, केशर, कस्तूरी तथा अम्बर को खूब महीन पीसें, उसमें अन्य भस्में और पिष्टियाँ मिला कर सोने का वर्क एक-एक करके मिलावें, पीछे अन्य द्रव्यों का कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिला एक दिन ब्राह्मी के स्वरस में मर्दन कर, २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर शीशी में रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-२ गोली दिन में २-३ बार, आवश्यकतानुसार मक्खन, मलाई, दूध आदि के साथ दें। शीतांग, सन्निपात

में—दो-दो घण्टे बाद या आवश्यकतानुसार पान के रस या मधु से दें। मियादी बुखार में पान के रस और मधु से दें। मूर्च्छा और पागलपन आदि वात-विकार में दशमूल काढ़ा के साथ तथा अनिद्रा-रोग में मांस्यादि क्वाथ के साथ देना चाहिये।

गुण और उपयोग—यह वटी स्नायविक दुर्बलता को दूर करने तथा स्मरण शक्ति और बुद्धि बढ़ाने के लिये आयुर्वेद में बहुत प्रसिद्ध है। इसके उपयोग से ज्ञानवाहिनी नाड़ियों की शक्ति बढ़ती है। शीतांग सन्निपात में बेहोशी और नाड़ी की गति क्षीण हो जाने पर इससे बड़ा लाभ होता है। दिमाग की कमजोरी, हृदय की दुर्बलता, अनिद्रा, हिस्टीरिया, मूर्च्छा, पागलपन, स्मरण शक्ति का अभाव आदि मस्तिष्क-विकारों में यह वटी बहुत फायदेमन्द है। मोतीझरा और मियादी बुखार की बेचैनी, प्रलाप आदि में वैद्यगण इसका प्रयोग कर अपूर्व यश लाभ करते हैं। जीर्णज्वर के बाद की निर्बलता या किसी भी दीर्घ रोग से मुक्त होने के बाद की कमजोरी इस वटी से बहुत शीघ्र दूर हो जाती है।

दूसरी—५ तोला रस सिन्दूर, अभ्रकभस्म, वंगभस्म, शुद्ध शिलाजीत, कालीमिर्च, पीपल, बायबिडंग प्रत्येक १-१ तोला लेकर कूट-कपड़छान चूर्ण बना, ब्राह्मी के क्वाथ में घोट कर चना बराबर गोलियाँ बना, सुखा कर सुरक्षित रख लें।

यह वटी उपरोक्त वटी से गुण में किंचित् न्यून है। फिर भी ताकत और स्मरण शक्ति की वृद्धि तथा कमजोरी दूर करने के लिये बहुत उपयोगी है।

भागोत्तर गुटिका

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गंधक २ तोला, छोटी पीपल ३ तोला, हर्रे ४ तोला, बहेड़ा ५ तोला, अडूसा की जड़ की छाल या छाया में सुखाये हुए फूल ६ तोला, भारंगी की जड़ ७ तोला और मुलैठी ८ तोला लें। प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बनाकर बाद में उसमें अन्य द्रव्यों का कपड़छान चूर्ण मिला बबूल के अन्तर्छाल के क्वाथ की

२१ भावना दे, २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, मधु के साथ अथवा गोजिह्वा क्वाथ, या द्राक्षारिष्ट अथवा शर्बत जूफा* के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह खाँसी और दमा की उत्तम दवा है। विशेषकर वात-पित्त प्रधान सूखी खाँसी में जब कफ नहीं निकलता हो, कफ सूखकर छाती में बैठ गया हो, खाँसी ज्यादा जोर पर हो, मुँह सूखना, आँखें लाल हो जाना, प्यास लगना, बुखार का भी कुछ-कुछ सन्देह होना, शरीर में दर्द, दम फूलना आदि लक्षण होने पर यह वटी शर्बत जूफा के साथ देने से बहुत लाभ करती है। यह दवा प्रकुपित वात और पित्त को शान्त कर उससे होने वाले उपद्रवों को भी शान्त कर देती है। छाती में जमे हुए कफ को पिघला कर बाहर निकालती और श्वासनली को साफ करती है।

मकरध्वज वटी

स्वर्ण भस्म २ तोला, वंगभस्म, चाँदीभस्म, लौहभस्म, कस्तूरी, मोतीभस्म, जावित्री, जायफल प्रत्येक १-१ तोला, कांस्यभस्म, रस सिन्दूर, कपूर, प्रवालभस्म, अभ्रकभस्म प्रत्येक १-१ तोला और

* **शर्बत जूफा**—मुनक्का ३० तोला, उन्नाव २० तोला, लहसोड़े के पके और सूखे फल २० तोला, सूखे अंजीर २० तोला, सोसन की जड़ २० तोला, मुलैठी २० तोला, सौंफ की जड़ २० तोला, कपास की जड़ १० तोला, जूफा १० तोला, हंसराज १० तोला, विहीदाना ५ तोला, अनीसून ५ तोला, सौंफ ५ तोला, जौ छिले हुए २ तोला, अलसी ३ तोला, जटामांसी ५ तोला, खतमी के बीज ५ तोला, सबको लेकर जौकुट करके तीन गुने जल में रात को भिगो दें। सबेरे मन्दी आँच पर पकावें। जब एक तिहाई जल रह जाय, तब ठण्डा करके कपड़े से छान लें। पीछे उसमें ६ सेर चीनी मिलाकर पकावें। जब शहद जैसी चाशनी हो जाय, तब नीचे उतारकर ठण्डा होने दें। जब ठण्डा हो जाय, तब कपड़े से छानकर बोतल में भरकर रख लें। —सि० यो० सं०

स्वर्ण सिन्दूर ४ तोला लें। सबको एकत्र करके जल के साथ खरलकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम अदरक रस और मधु या मिश्री-मक्खन-मलाई या दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—अनुपान भेद से यह अनेक प्रकार के रोगों को नाश करती है। वायु, पित्त, कफ, त्रिदोष विकार, प्राकृतिक विकृति, द्वन्द्वज, उन्माद, मोह और मूर्च्छा आदि रोग इसके सेवन से नष्ट होते हैं। यह कान्तिवर्द्धक और पुष्टिदायक भी है।

यह दिल और दिमाग को पुष्टिकारक, शीघ्र पतननाशक, स्तम्भन शक्ति बढ़ाने वाली एवं नपुंसकता और नामर्दी को मिटाकर बल-वीर्य बढ़ाने में श्रेष्ठ है। इसके सेवन से क्षीण हुए धातु पुष्ट हो जाते हैं, तथा शरीर का वजन बढ़ जाता है। बिना नशीली वस्तु के स्तम्भन शक्ति के लिये यह उत्तम दवा है। ढलती उमर में संभोग शक्ति बनाये रखने के लिये इसका प्रयोग करना उत्तम है। गाढ़ी निद्रा और मानसिक बल के लिये भी यह बहुत ही उत्तम योग है।

मधुकाद्य गुटिका

मुलैठी, महुआ, मुनक्का, पीपल, बंशलोचन, दालचीनी, तेजपात और इलायची प्रत्येक १-१ तोला, खाँड़ ८ तोला, मुनक्का, मुलैठी, खजूर ४-४ तोला लेकर कूटने योग्य औषधियों को कूट कर महीन (कपड़छान) चूर्ण बना लें। शेष चीजों को पत्थर पर पीस कर महीन कर लें। फिर सबको शहद में मिला १-१ माशे की गोली बना, सुखा कर रख लें। —बंगसेन

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, सुबह-दोपहर और शाम, बकरी के दूध के साथ या मधु से दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से रक्तपित्त, खाँसी, छर्दि, अरुचि, मूर्च्छा, हिचकी, भ्रम, क्षतक्षय, स्वरभंग, पुरानी वातव्याधि, थूक में रक्त जाना, हृदय और पसली की पीड़ा, तृष्णा तथा ज्वर का नाश होता है।

यह दवा पित्त-प्रकोपजन्य उपद्रवों को नाश करती है। विशेष कर रक्त-पित्त में यह अधिक उपयोगी है। रक्त-पित्त की किसी भी अवस्था में इसका प्रयोग करने से आशातीत लाभ होता है। यह राजयक्ष्मा की खाँसी में भी काफी लाभ करता है। इसके सेवन से साधारण खाँसी भी अच्छी हो जाती है।

मरिचादि वटी

काली मिर्च, पीपल, पाठा, यवक्षार, सोंठ, इलायची, तेजपात, दालचीनी, हर्रे, सेंधा नमक और अम्लवेत समान भाग लेकर कूट-कपड़छान चूर्ण बना, शहद में मिलाकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना रख लें। —ग० नि०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, दिन-रात में ५-६ गोली मुँह में रखकर चूसें।

गुण और उपयोग—खाँसी के लिये मरिचादि वटी बहुत प्रसिद्ध दवा है। इससे सब तरह की खाँसी दूर हो जाती है। यह स्वर-भंग, गले की खराबी, सर्दी, जुकाम, खाँसी आदि में फायदा पहुँचाती है।

कफ-वृद्धि के कारण कभी-कभी गले में दर्द होने लगता है, अथवा गलसुण्डिका बढ़ जाती है—जिसे अंग्रेजी में "टान्सिल" कहते हैं। इसके बढ़ जाने से खाना-पीना कठिन हो जाता है। गले में इतना दर्द बढ़ जाता है कि पानी तक नहीं पीया जाता साथ ही गले के भीतर सूजन हो जाती, तथा श्वासनली कफ से भरी हुई रहती है। कभी-कभी बुखार भी हो जाता है। ऐसी दशा में इस मरिचादि वटी को गर्म जल के साथ देने से बहुत लाभ होता है। नई सर्दी (जुकाम) में भी इसे गर्म जल के साथ देना लाभदायक है।

महाभ्र वटी

अभ्रकभस्म, शुद्ध मैनसिल, ताम्रभस्म, लोहभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागे की खील, यवक्षार, हर्रे, बहेड़ा, आँवला प्रत्येक ४-४ तोला, शुद्ध विष ४ माशा और कालीमिर्च का चूर्ण ४ तोला

लेकर सबको एकत्र मिला, गूमा, वासक और पान—इनके रस में पृथक्-पृथक् १-१ दिन घोट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें।
—र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, सुबह-शाम दशमूल-क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग—यह वटी प्रसूत रोग के लिये बहुत उपयोगी है। बच्चा पैदा होने के बाद रस-रक्तादि धातु तथा वात-पित्त और कफादि दोष निर्बल हो जाते हैं। ऐसी हालत में थोड़ा भी कुपथ्य होने से अनेक प्रकार के रोग आक्रमण कर देते हैं। फिर मन्दाग्नि; भूख न लगना, अन्न पर अरुचि, उठने-बैठने में तकलीफ मालूम होना आदि उपद्रव प्रारम्भिक अवस्था में उत्पन्न होते हैं। ऐसी हालत में यह वटी अमृत समान गुण करती है। इसके सेवन से ज्वर शीघ्र छूट जाता है। यह वटी गर्भाशय को भी शक्ति प्रदान करती तथा शरीर में रक्त की वृद्धि करती है।

महाशंख वटी

सेंधा नमक, काला नमक, सामुद्र नमक, सांभर नमक, नौसादर, घी में सेंकी हुई हींग, शंख भस्म, इमली का क्षार, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, शुद्ध बच्छनाग प्रत्येक समभाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना उसमें अन्य दवाओं का कपड़छान चूर्ण मिला चित्रकमूल और अपामार्ग के क्वाथ तथा नीबू के रस की एक-एक भावना दें, फिर अम्लवर्ग में घोट कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें।
—भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली भोजन के बाद गर्मजल के साथ दें।

गुण और उपयोग—अजीर्ण और वायु के कारण उत्पन्न हुये पेट दर्द तथा परिणाम शूल की उत्तम दवा है। इसके सेवन से अजीर्ण की शिकायत मिटती है। भोजन का परिपाक बहुत अच्छी तरह से होता है। मन्दाग्नि की समस्त शिकायतों को नष्ट कर यह जठ-

राग्नि को प्रदीप्त करती है। इससे भूख खुल कर लगती है और अधिक गरिष्ठ चीज खा लेने या अधिक भोजन करने पर जो अचानक अजीर्ण हो जाता है, उसे मिटाने के लिये यह बहुत अच्छी दवा है।

मुक्तादि वटी

मोती पिष्टी २ तोला, सोने का वरक ६ माशे, चाँदी का वरक १ तोला, नाग केशर २ तोला, कमल के फूलों के अन्दर का केशर १ तोला, जीरा गुलाब (गुलाब के पुष्प का केशर) १ तोला, केशर आधा तोला, कपूर चौथाई तोला, कहरवा १ तोला, जहर मोहरा खताई १ तोला, संगेयशब १ तोला, गोरोचन १ तोला और गोदन्ती-भस्म सब दवा के बराबर लें। दोनों वरकों को छोड़ सबका कपड़छान चूर्ण करके पीछे उसमें वरक १-१ करके मिलावें। फिर अच्छे गुलाब के अर्क में आठ दिन मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, गाय या माता के दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—बच्चों के लिये यह वटी अमृत समान लाभदायक है। बालकों के जीर्णज्वर, बालशोष (सूखा रोग), दूध न पचकर अपच ही दस्त हो जाना या उल्टी होना और खाँसी आदि रोगों के लिये रामबाण दवा है। इस वटी के सेवन से बच्चे हृष्ट-पुष्ट और नीरोग हो जाते हैं।

मेहमुद्गर वटी

रसौत, बायबिडंग, देवदारु, बेलगिरी, गोखुरू, अनारदाना, चिरायता, पीपलामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला और निशोथ प्रत्येक का कपड़छान किया हुआ चूर्ण १-१ तोला, लौहभस्म सब दवा के बराबर तथा शुद्ध गूगल ४ तोला लेकर सबको एकत्र कूटें और आवश्यकतानुसार घी डाल कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, प्रातः-सायं ताजे जल के साथ या बकरी के दूध से दें।

गुण और उपयोग—इस वटी के सेवन से प्रमेह रोग और पेशाब के साथ वीर्य निकलना, स्वप्नदोष आदि वीर्य सम्बन्धी सभी शिकायतें मिट जाती हैं। मूत्रकृच्छ्र (जलन और तकलीफ के साथ रुक-रुक कर पेशाब होना), पेशाब का रुक जाना, पथरी आदि मूत्राशय सम्बन्धी रोगों के लिये भी यह बहुत फायदेमन्द है। कामला, पाण्डु, धातुगत ज्वर, रक्तपित्त, ग्रहणी, आमदोष, अग्निमांद्य और अरुचि आदि रोग भी इसके सेवन से नष्ट हो जाते हैं।

रजःप्रवर्त्तिनी वटी

एलुआ, सुहागे की खील, हीराकसीस, भुनी हींग प्रत्येक समान भाग लेकर घृतकुमारी के रस में घोट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम—मासिकधर्म होने के एक सप्ताह पहले से गरम जल के साथ दें। अथवा उलट-कम्बल के क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग—स्त्रियों के मासिक धर्म रुक जाने पर कमर और पेड़ू में दर्द होना, हाथ-पैर के तलुओं तथा आँखों में जलन होना, हरारत रहना आदि विकारों को दूर करने के लिये यह चमत्कारिक दवा है। यह दवा रुके हुए मासिक धर्म को खोलने के लिये बहुत प्रसिद्ध है। इसके सेवन से मासिक धर्म खुल कर आने लगता है, इसमें जरा भी संदेह की बात नहीं है। मासिक धर्म की खराबी से उत्पन्न होने वाले उपद्रव को यह तुरत दूर करती है।

यह स्त्रियों के बीजायश (डिम्ब कोष) तथा गर्भाशय की अशक्ति को दूर कर गर्भ धारण करने की शक्ति प्रदान करती है।

रविसुन्दर वटी

शुद्ध बच्छनाग, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, अम्लवेत, सोंठ, पीपल, काली मिर्च और शुद्ध धत्तूर बीज, प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम

पारा-गंधक की कज्जली बना, फिर उसमें अन्य दवाओं का कपड़छान चूर्ण मिला सबको एकत्र कर स्नुही (सेहुण्ड) के दुग्ध की ३ भावना और दन्तीमूल, चित्रक, धत्तूर, निशोथ तथा अदरख इनके रस की ७-७ भावना देकर मूंग के बराबर गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।
—र० रा० सु०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, सुबह-शाम भोजन के बाद गर्म जल से दें।

गुण और उपयोग—यह वटी वात व कफजन्य मन्दाग्नि, अजीर्ण, आमाजीर्ण, रसशेषाजीर्ण, पेट-दर्द, पेट में वायु भर जाना, अपच दस्त होना आदि रोगों में बहुत शीघ्र कार्य करती है।

अजीर्ण—कफ वृद्धि के कारण जठराग्नि मन्द हो जाती है। फिर पाचक रस की उत्पत्ति न होने से अन्नादिक का पचन ठीक तरह से नहीं हो पाता, जो कुछ भी खाया जाता है, सब आमाशय में जमा होता रहता है। इसमें—पेट फूलना, पेट भारी हो जाना, जी मिचलाना आलस्य, अपच होकर दस्त होना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी दशा में रविसुन्दर वटी का उपयोग करना बहुत लाभकर होता है। यह बढ़े हुए कफ-दोष को शान्त कर पाचक पित्त (जठराग्नि) को प्रदीप्त करता है, जिससे अन्नादिक का पचन ठीक से होने लगता है और धीरे-धीरे सब उपद्रव भी दूर हो जाते हैं।

रेचन वटी

हर्रे का कपड़छान किया हुआ चूर्ण ५ तोला; शुद्ध जमालगोटा १ तोला दोनों को सेहुण्ड (थूहर) के दूध में घोट कर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —र० चि० म०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली रात को सोते समय गर्म जल या दूध से दें।

गुण और उपयोग—इस वटी के सेवन से सुख पूर्वक १-२ दस्त साफ हो जाते हैं। कदाचित् यदि रेचक वटी हजम भी हो जाय तो यह किसी प्रकार का नुकसान नहीं करती है। विशेष कर आम-संचय को यह बहुत शीघ्र नष्ट करती है।

मन्दाग्नि के कारण आमाशय की शिथिलता से पेट में विशेष आम-संचय हो जाता है ; जिससे मलवद्ध हो जाता, दस्त खुल कर नहीं होता ; पेट भारी तथा शरीर में आलस्य बना रहता है। ऐसी अवस्था में आमदोष को दूर करने के लिये इस वटी का उपयोग करना चाहिये।

लवंगादि वटी

लौंग ८ तोला, बहेड़ा ४ तोला, छोटी पीपल ४ तोला, शक्कर तिगाल ४ तोला, काकड़ासिंगी २ तोला, अनार का सूखा छिलका १ तोला, दालचीनी २ तोला, खैरसार या कत्था १० तोला, सत-मुलेठी २० तोला, मुनक्का १० तोला, आक के फूल ५ तोला, नौसादर २ तोला, कपूर १ तोला और सुहागे की खील १ तोला लें। प्रथम मुनक्का और आक के फूल को कूट कर चौगुने जल में क्वाथ करें, जब चौथाई जल बाकी रह जाय तब कपड़े से छान कर उसमें मुलेठीसत्त्व, नौसादर, कपूर और सुहागे की खील मिलावें। पीछे अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण मिला, मटर बराबर गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें।—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, दिन भर में ५-७ गोली मुँह में रख कर चूसें।

गुण और उपयोग—खाँसी का दौरा रोकने के लिये यह वटी बहुत उपयोगी है। कफ नहीं निकलता हो, पुरानी ठसी हो, अधिक देर तक खाँसने पर जरा-सा पीला कफ का टुकड़ा निकल जाता हो, छाती में दर्द हो, शिर में भी दर्द हो, ऐसी हालत में इस वटी को मुँह में रख कर चूसने से कफ निकल आता है और श्वासनली साफ हो जाती है। खाँसी भी बन्द हो जाती है।

दूसरी—लौंग, काली मिर्च, बहेड़े के फल का छिलका १-१ भाग तथा खैरसार (कत्था) सबके बराबर लेकर यथाविधि कपड़छान चूर्ण बना, बबूल की छाल के क्वाथ में घोटकर चने बराबर गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —वैद्य जीवन

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली करके दिन भर में ५-७ गोली चूसना चाहिये।

गुण और उपयोग—खाँसी के लिये यह बहुत प्रसिद्ध वटी है। सूखी और गीली सभी तरह की खाँसी में लाभ करती है। गोली चूसने से गले की खराबी से उत्पन्न खाँसी में बड़ा फायदा होता है। मुँह में छाले पड़ जाने पर भी इससे लाभ होता है।

लवण वटी

पाँचो नमक (सेंधा नमक, काला नमक, सामुद्र नमक, सोंचर नमक, काच नमक), यवक्षार, सज्जीखार, पीपल, काली मिर्च, सोंठ, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, अजवायन और भुनी हींग—प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण बनावें। फिर उसे बिजौरे नीबू के रस या बेर अथवा अनार के रस में घोट कर गोलियाँ बना लें।

—वा० भ०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली गर्म जल से भोजन के बाद दें।

गुण और उपयोग—यह अग्निदीपक तथा पाचक है। आमाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्ण जो क्रमशः कफ-वात-दोष से उत्पन्न होते हैं उनमें यह बहुत फायदा करती है। यह संग्रहणी तथा आमातिसार में भी गुण करती है।

लशुनादि वटी

छिलका निकाला हुआ लशुन २ तोला, जीरा दोनों, शुद्ध गन्धक, सेंधानमक, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, घी में भुनी हुई हींग प्रत्येक १-१ तोला, इन सबको यथाविधि कूट-कपड़छान चूर्ण बना नीबू के रस में ३ दिन तक घोट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना सुखा कर रख लें। —वैद्य जीवन

मात्रा और अनुपान—१ से ४ गोली—भोजन के बाद गर्म जल से दें।

गुण और उपयोग—यह पेट में वायु भर जाने की उत्तम दवा है। इसके सेवन से मन्दाग्नि, उदर-वायु, पेट-दर्द आदि शीघ्र अच्छे हो जाते हैं। यह दीपन-पाचन तथा वायुनाशक है। अजीर्ण और विसूचिका (हैजा) आदि रोगों में बहुत फायदा करती है। अजीर्ण के कारण पेट में वायु भर जाता है, जिससे डकार आने लगती हैं। इस वायु को पचाने तथा डकारों को वन्द करने के लिये यह वटी बहुत उपयोगी है।

शम्बूकादि वटी

क्षुद्र शंख (शम्बूक-घोंघा) भस्म, काली मिर्च, पाँचो नमक प्रत्येक समभाग लेकर करमी (कलम्बी) शाक के रस में १ दिन घोट कर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली गर्म जल से सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग—यह आम को पचाती तथा अजीर्ण, मन्दाग्नि, पेट-दर्द, परिणाम शूल, पित्तज शूल आदि रोगों को नाश करती है।

शिलाजतु वटी

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक ४-४ तोला लेकर कज्जली बनावें। फिर इसे लाल कमल के रस और कुटज की छाल के क्वाथ में २-२ दिन घोट कर सुखा लें। फिर उसमें ३२ तोला शिलाजित और ३२ तोला शक्कर तथा बंशलोचन, पीपल, आँवला, काकड़ा सिंगी, कटेली की जड़, कटेली के फल, दालचीनी, इलायची और तेजपात का चूर्ण प्रत्येक ४-४ तोला मिला खरल करें। फिर चार तोला शहद डाल कर उड़द के बराबर गोलियाँ बना लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह शाम। अनार का रस, दूध अथवा जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह पाण्डु, कुष्ठ, ज्वर, प्लीहा, अर्श, भगन्दर, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, शुक्रदोष आदि रोग नाशक है। इसके सेवन से वीर्य की क्षीणता, इन्द्रिय शिथिलता, स्वप्नदोष, टट्टी और

पेशाब के साथ वीर्य का जाना आदि शुक्र सम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं। यह बल-वीर्य वर्धक भी है।

शिलाजत्वादि वटी

त्रिवंग भस्म ३ तोला, छाया में सुखाई हुई नीम की पत्ती तथा गुड़मार की पत्ती का चूर्ण १०-१० तोला और शिलाजित १५ तोला लें। प्रथम शिलाजित में त्रिवंगभस्म मिलावें, पीछे अन्य चूर्ण मिलाकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बनावें। यदि इस योग को विशेष गुणशाली बनाना हो, तो इसमें आधा तोला सुवर्णभस्म मिला. गोलियाँ बना कर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनपान—४-४ घण्टे से ३-३ गोली करके दिन भर में १२ गोलियाँ ठण्डे जल के अनुपान से दें।

गुण और उपयोग—बहुमूत्र और मधुमेह में इस योग से अच्छा लाभ होता है।

शुक्रमातृका वटी

गोखुरू, त्रिफला, तेजपात, इलायची-बीज, रसौत, धनिया, चव्य, जीरा, तालीस पत्र, सुहागे की खील और अनार दाना प्रत्येक २-२ तोला, शुद्ध गुग्गुल १ तोला, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, लौहभस्म प्रत्येक ४-४ तोले लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियों के चूर्ण मिला कर सबको खरल कर रख लें (या पानी के साथ ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना लें)।
—भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, अनार के स्वरस, बकरी के दूध या जल से सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग—इस वटी का प्रभाव वातवाहिनी नाड़ी तथा वृक्क (मूत्र-पिण्ड) एवं वीर्यवाहिनी शिराओं पर विशेष होता है। इसके सेवन से वीर्यस्राव और वातज, पित्तज तथा कफज स्वप्नदोष, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी आदि रोग आराम होते हैं तथा वीर्य शुद्ध और गाढ़ा हो जाता है। यह रक्ताणुओं की वृद्धि कर माँस-ग्रन्थियों को सुदृढ़ बनाती है। इससे मानसिक शक्ति भी बढ़ती है।

शूलवज्रिणी वटी

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म प्रत्येक २-२ तोला, शुद्ध सुहागा, भुनी हुई हींग, ताम्रभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, कचूर, दालचीनी, इलायची, तेजपात, तालीसपत्र, जायफल, लौंग, अजवायन, जीरा और धनिया प्रत्येक १-१ तोला लेकर सबको एकत्र मिला कूट-कपड़छान चूर्ण बना बकरी के दूध में घोट कर १-१ माशे की गोलियाँ बना सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम। बकरी का दूध या ठंडे पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से आठ प्रकार के शूल, प्लीहा, गुल्म रोग, अम्लपित्त, आमवात, कामला, पाण्डु, शोथ, गलग्रह, वृद्धि रोग, श्लीपद, भगन्दर, कास, श्वास, व्रण, कुष्ठ, कृमि, हिचकी, अरुचि, अर्श, ग्रहणी रोग, अतिसार, विसूचिका, कण्डू, अग्निमान्द्य, पिपासा, पीनस और अन्य भी वातज, पित्तज तथा कफज रोग नष्ट होते हैं।

शूल रोग पर इस रसायन का बहुत उपयोग होता है। हमारा अनुभव भी है कि जिस रोगी को मन्दाग्नि के कारण मन्द-मन्द पेट में दर्द बना रहता हो, उसे यह दवा विशेष लाभ करती है। हम भोजन के बाद इस गोली को अर्क अजवायन या गर्म पानी के साथ देते हैं।

सर्पगंधाघन वटी

सर्पगन्धा १० सेर, खुरासानी अजवायन की पत्ती या बीज २ सेर, जटामांसी १ सेर और भाँग १ सेर। इनका जौकुट दरदरा चूर्ण करके उसको अठगुने पानी में मन्दी आँच पर पकावें और लकड़ी के कोंचे से चलाते रहें। जब अष्टमांश जल बाकी रहे, तब ठंडा होने पर दो बार कपड़े से छान कर फिर मन्दी आँच पर पकावें। जब क्वाथ कलछू या लकड़ी के कोंचे में लगने लगे, इतना गाढ़ा हो जाय, तब उसको नीचे उतार कर धूप में सुखावें। जब गोली बनने योग्य हो जाय तब उसमें १०-२० तोला पीपलामूल चूर्ण मिलाकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली रात्रि को सोते समय दूध या जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से मस्तिष्क को आराम मिलता है और निद्रा आती है। अतएव यह उन्माद में भी लाभदायक है। डाक्टर लोग भी "सर्पिना टेबलेट" के नाम से इसकी गोलियों का प्रयोग करते हैं। यह बहुत कटु और उष्णवीर्य है। अतएव पित्त प्रकृति वालों को कभी-कभी इसके सेवनोपरान्त पसीना छूटने लगता है। मूर्च्छा तक भी कभी-कभी आ जाती है—परन्तु वातानुलोमन करने में इसका प्रयोग अच्छा होता है। अतएव यह हाई ब्लडप्रेसर को घटाती और निद्रा भी अच्छी लाती है। स्वेदन गुण विशिष्ट होने से स्रोतसों को खोलती और नरम करती है। यदि इसे दूध के साथ उपयोग किया जाय तो पित्तवर्द्धक गुण भी कम हो जाता है।

इसके सेवन से अनिद्रा, अपतन्त्रक (हिस्टीरिया), उन्माद, अपस्मार, रक्त चाप (ब्लड प्रेसर) आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। इससे नींद भी अच्छी आती है।

सवीर वटो

सवीर,* केशर, लौंग का चूर्ण, श्वेतचन्दन का चूर्ण प्रत्येक

---

* **सवीर बनाने की विधि**—फिटकरी, कलमी शोरा, नौसादर, कसीस, सेंधानमक, नीलाथोथा और लोबान प्रत्येक ४-४ तोला, और पीला संखिया २ तोला ले कर सब को खरल में पीसे। पीसने से सब गीला हो जायगा, तब उसे लोहे के तवे में डाल अग्नि पर सुखा लें, फिर खरल में डालकर उसमें ३० तोला पारा मिला ३ दिन मर्दन कर ७ बार कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भर कर बालुका यन्त्र में पकावें। प्रारम्भ में जबतक शीशी में जल युक्त वाष्प निकलती रहे, तबतक शीशी का मुँह खुला रखें। जब जलांश रहित श्वेत वर्ण का धुआँ आने लगे, तब शीशी के मुँह को मुलतानी या खड़िया मिट्टी की डाट लगा, ऊपर से चूना और गुड़ या प्लास्टर ऑफ पेरिस लगा दें। इसके बाद ६ घंटा और आँच दें। स्वांग शीतल होने पर शीशी को बाहर निकाल तोड़ कर गले में लगा हुआ श्वेत वर्ण का सवीर (रस कपूर) निकाल लें।

—सि० यो० सं०

४-४ तोला और कस्तूरी ६ माशे लें। प्रथम सवीर को खूब महीन पीसें, फिर उसमें केशर और कस्तूरी मिलाकर पान के रस में घोटें, जब खूब घुट जाय तब अन्य दवाओं का चूर्ण मिला पान के रस में १ दिन मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखा कर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-२ गोली, सुबह-शाम निगल कर ऊपर से मिश्री मिला हुआ गाय का (गरम करके पीने योग्य ठण्डा किया हुआ) दूध पिलावें।

गुण और उपयोग—फिरंगोपदंश के विष से होने वाले सब प्रकार के रोगों में इसके सेवन से अच्छा लाभ होता है।

पथ्य—इस गोली के सेवन काल में—खटाई, मिर्च, हींग, राई, आदि गरम मसाले तथा करेला, बैंगन, सरसों, मूली, एरण्ड-खरबूजा इनका शाक नहीं खाना चाहिये।

सुखविरेचन वटी

जमालगोटे के बीज को फोड़कर उसके मगज (मींगी) की दो दाल कर लें। ऐसी २६ दाल को रात को एक कलईदार पात्र में उबलते हुए पानी में डाल कर रात भर ढँक कर रख दें। सबेरे उस दाल को हाथ से मसल कर जल से धो लें, पीछे खरल में डाल उनको खूब घोटें। दाल अच्छी तरह पिस जाने पर उसमें २ तोला सोंठ का कपड़छान चूर्ण मिला जल से ३ घंटा मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखा कर रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ गोली, रात को सोते समय शीतल जल के साथ लें।

गुण और उपयोग—इसकी १ गोली लेने से ही प्रातः दस्त बगैर कष्ट के खूब साफ आता है, परन्तु इस गोली के सेवन करने से पहले मूंग की खिचड़ी घी मिलाकर खिला दें, ताकि पेट स्निग्ध)चिकना) हो जाय। इस क्रिया के बाद रेचन की गोली लेने से काफी फायदा होता है। रेचन के बाद पथ्य में दही-भात खाने को दें।

संचेतनी वटी

सोंठ, पीपलामूल, बायबिडंग, चित्रक, दालचीनी, तेजपत्र, जावित्री, शुद्ध कुचला, शुद्ध बच्छनाग, मल्लभस्म, ताम्रभस्म, कस्तूरी प्रत्येक दवा समान भाग लेकर भाँगरे के रस में १२ घण्टे तक खरल कर चने बराबर गोलियाँ बना सुखा कर रख लें। —ध०

मात्रा और अनुपान——१-१ गोली २-२——३-३ घण्टे के बाद गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग——यह वटी हृदय, मस्तिष्क तथा वातवाहिनी नाड़ियों को चेतना देनेवाली है तथा रक्त में गर्मी पैदा कर नाड़ी की गति को संचालन करती है।

सन्निपात में बेहोशी की हालत में इस वटी के उपयोग करने से शीघ्र लाभ होता है। कफ-वातप्रधान सन्निपात में इसका असर ज्यादा होता है। अन्तिमावस्था में——जब सर्वाङ्ग शरीर शीतल हो गया हो, नाड़ी की गति धीमी पड़ गयी हो, चेतना शक्ति क्षीण हो गयी हो, ऐसी भयंकर परिस्थिति में इस वटी के उपयोग से थोड़ी देर के लिये समस्त शरीर में गर्मी उत्पन्न होकर हृदय, नाड़ी तथा मस्तिष्क को उत्तेजित कर रोगी में चैतन्यता आ जाती है। ऐसी दशा में हृदय को बल देने वाला मकरध्वज, मोतीभस्म, स्वर्णभस्म हंसपोटली रस आदि का भी उपयोग करने से मृत्युमुख से रोगी निकल आता है।

संजीवनी वटी

बायबिडङ्ग, सोंठ, छोटी पीपल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, वच, गिलोय, शुद्ध भिलावा, शुद्ध बच्छनाग प्रत्येक सम भाग लेकर प्रथम बच्छनाग और भिलावे को गोमूत्र में खूब महीन पीसें, पीछे अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण मिला गोमूत्र में मर्दन करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना सुखा कर रख लें। —शा० सं०

मात्रा——१-२ गोली अदरक रस या मधु के साथ देना चाहिये।

अनुपान——अजीर्ण से होनेवाले ज्वर में और कफवात प्रधान

ज्वर में अदरक के रस और मधु के साथ और सन्निपात ज्वर में ३-७ लवंग और १०-२० ब्राह्मी की ताजी पत्ती पीस २-४ तोला जल में मिला कर उस जल के साथ दें। ज्वर में पतले दस्त होते हों तो ५ रत्ती दवा और जायफल को जल में घिस कर उसके साथ देना चाहिये।

गुण और उपयोग—यह वटी पसीना लानेवाली, पेशाब साफ करनेवाली तथा सर्प-विष, कीटाणु एवं ज्वरनाशक है। यह आमदोष को भी पचाती है और उससे उत्पन्न होनेवाले उपद्रव—ज्वर, विसूचिका आदि रोगों को भी नाश करती है। यह बच्छनाग प्रधान दवा है, अतएव यह कुछ उष्ण, स्वेदल तथा मूत्रल है। इन्हीं गुणों के कारण ज्वर में इसका प्रयोग करने से यह पसीना लाकर स्वेद मार्ग से तथा पेशाब लाकर मूत्र मार्ग से ज्वर-दोष को निकाल कर ज्वर को दूर करती है।

मन्दाग्नि के कारण पेट में आम संचय होने पर ज्वर हो जाता है। इसमें ज्वर होना, पेट में भारीपन, अपचित दस्त भी थोड़ा-थोड़ा होना, ज्वर की गर्मी बढ़ी हुई, पसीना बन्द रहना, बेचैनी, शिर में दर्द, पेट में भी दर्द बना रहना आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी हालत में संजीवनी वटी के उपयोग से विशेष लाभ होता है क्योंकि यह आम दोष का पाचन करके ज्वर को भी दूर करती है तथा पसीना द्वारा भीतर के मल-दोष को भी बाहर निकाल देती है।

अधिक खा लेने या अभूख की दशा में फिर खा लेने अथवा दूषित पदार्थ आदि के सेवन से पाचन क्रिया में गड़बड़ी हो, अपचन हो जाता है। फिर पेट में दर्द, पेट भारी हो जाना, पतला और अपचित दस्त होना, पेशाब कम मात्रा में होना, कै होना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी हालत में—आरम्भिक अवस्था में १-१ गोली २-२ घण्टे पर देना चाहिये। यदि वमन और दस्त की अवस्था बढ़ती हुई नजर आवे तो २-२ गोली १-१ घण्टे पर दें। इससे भी उग्रावस्था में ४-४ गोली आधा-आधा घण्टा पर देने से अवश्य लाभ होता है। यह आम जन्य दोष को पचाते हुए वमन और दस्त को रोकती है तथा पेशाब साफ और खुलकर लाती है, जो इस

रोग में विशेष कष्ट देनेवाले होते हैं, साथ ही पाचक पित्त को जागृत कर अपचन दूर करती है।

सारिवादि वटी

सारिवा, मुलैठी, कूठ, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेसर, फूलप्रियंगू, नीलोत्पल, गिलोय, लौंग, हर्रे, बहेड़ा, आँवला इनका चूर्ण १-१ तोला और अभ्रकभस्म, लौहभस्म १४-१४ तोला लेकर सबको एकत्र मिला भाँगरे के रस, अर्जुन के क्वाथ, जवाखार के पानी, मकोय के रस और गुंजा (चोंटली-करजनी) की जड़ के क्वाथ की १-१ भावना देकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

—भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली प्रातःकाल धारोष्ण दूध या शतावर का रस अथवा लालचन्दन के क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह वटी कर्णरोग, प्रमेह, रक्तपित्त, क्षय, श्वास, नपुंसकता, जीर्णज्वर, अपस्मार, अर्श, हृद्रोग, स्त्री रोग आदि रोगों को नष्ट करती है।

इस वटी का उपयोग कर्णरोग में किया जाता है। कान का बहना, कान में साँय-साँय आवाज होना आदि को दूर करता है। किसी भी कारण से मस्तिष्क में उष्णता पहुँचने पर अथवा वातवाहिनियों में विकृति होने से कान बहरा हो गया हो, या कान में दर्द होता हो, तो इसके सेवन से दूर हो जाता है। कान के रोगों के लिये यह उत्तम दवा है।

सौभाग्य वटी

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध सिंगिया विष, लौंग, त्रिकुटा, कूठ, नागरमोथा, भुनी हुई हींग, बड़ी इलायची, जायफल, कायफल, त्रिफला, सफेद जीरा, काला जीरा, सज्जीखार, यवक्षार, सेंधा नमक, काला नमक, सांभर नमक, समुद्र नमक और सांगा नमक ये २७ दवाएँ सम भाग लेकर पहले पारा-गंधक की कज्जली बनावें, फिर शेष २५ दवाओं का चूर्ण मिला कर निर्गुण्डी, गूमा,

अपामार्ग, अदरक और पान के रस की एक-एक भावना देकर चने के बराबर गोलियाँ बना लें। —आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम दशमूल क्वाथ, दूध या जल से दें।

गुण और उपयोग—यह नुस्खा शास्त्रोक्त नहीं आनुभविक है, किन्तु ; रस पीपरी की तरह इसका भी नाम बिहार प्रान्त में सर्वसाधारण से लेकर पढ़े-लिखे तक में सबकी जबान पर रहता है। प्रसूत रोग की तो यह खास दवा है। बहुत-सी स्त्रियाँ ऐसी होती हैं जिन्हें साल भर में एक या दो सप्ताह इस दवा का सेवन करना परमावश्यक हो जाता है।

क्षार वटी

शुद्ध बच्छनाग १ तोला, अभ्रकभस्म २ तोला, शंखभस्म ४ तोला, इमली क्षार ८ तोला, ताम्रभस्म १६ तोला, त्रिकुटा चूर्ण ३१ तोला लेकर सबको एकत्र मिला तुलसी, भांगरा, विजौरा नीबू और अदरक इनके स्वरस की पृथक्-पृथक् सात-सात भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —र० र० स०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम गर्म जल से दें।

गुण और उपयोग—यह वटी तीक्ष्ण और दीपन-पाचन है। ग्रहणी, गुल्म, शूल, अग्निमांद्य, अर्श, रक्त गुल्म और अरुचिनाशक है।

इस वटी का प्रयोग अग्निमांद्य, गुल्म और शूल रोगों में विशेष किया जाता है। यह अपनी तीक्ष्णता के कारण गुल्म को बहुत शीघ्र पचा देती है और जठराग्नि को प्रदीप्त कर मन्दाग्नि दूर कर पाचन क्रिया को सुधार देती है।

क्षुधावती गुटिका

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, अभ्रकभस्म, अजवायन, सोंठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, सोया, चव्य, जीरा, काला जीरा, पुनर्नवा, वच, दन्तीमूल, घण्टाकर्ण, दण्डोत्पलामूल, निशोथ, अनन्तमूल प्रत्येक का कूटकपड़छान किया हुआ महीन चूर्ण १-१ तोला और मण्डूरभस्म २

तोला लें। इन्हें अदरक के रस से मर्दन कर ४-४ रत्ती की गोली बना लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान——१-१ गोली सुबह-शाम गर्म जल या काँजी से दें।

गुण और उपयोग——यह गुटिका——अम्लपित्त, प्लीहा, पेट फूलना, भूख न लगना, आमवात, परिणाम शूल, अजीर्ण आदि रोगों के लिये अच्छी है। भोजन के बाद १-२ गोली खा लेने से मन प्रसन्न हो जाता और भूख खूब लगती है। जी मिचलाना, मुँह का स्वाद खराब होना; कब्जियत तथा अनपच के लिये यह वटी बहुत फायदेमन्द है।

अम्लपित्त में——जब दर्द के साथ वमन होता हो, अन्न या पानी तक भी न पचता हो, शरीर दुर्बल और कमजोर हो गया हो, खट्टी डकारें आती हों, ऐसी अवस्था में इससे बहुत फायदा होता है। यह पित्त को शमन करते हुए जठराग्नि को दीप्त कर देती है, जिससे अन्नादिक का पचन ठीक से होने लगता है। फिर धीरे-धीरे रोगी अच्छा हो जाता है।

———

पर्पटी प्रकरण

रसायन कल्प में पर्पटी का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। आन्त्रिक-विकार में जब किसी अन्य दवा से लाभ नहीं होता हो उस समय पर्पटी कल्प से आशाजनक लाभ होने के कई उदाहरण मिले हैं, परन्तु ; यह लाभ तभी हो सकता है जब शास्त्रोक्त विधि से पर्पटी तैयार की गयी हो।

पर्पटी का प्रयोग विशेषतया ग्रहणी और मन्दाग्नि रोग में किया जाता है। क्योंकि यह आँतों की कमजोरी तथा विकृति को दूर करती है, आँतों में से दुष्ट मलादि को बाहर निकाल फेंकती है और आँतों की शिथिलता दूर कर उसमें शक्ति उत्पन्न करके उसे अपने कार्य करने में समर्थ बनाती है। पारद-गंधक की कज्जली से यह एक अपूर्व ही चमत्कारी दवा तैयार होती है। इसका असर पक्वाशय और वृहदन्त्र में विशेष रूप से होता है।

पर्पटी निर्माण विधि

पहले हिंगुलेत्थ पारद को जैत, एरण्ड मूल तथा मकोय-रस के साथ १-१ दिन मर्दन कर गरम जल से धोकर साफ करें, फिर शुद्ध गंधक को भाँगरे के रस की ७ भावना देकर सुखा लें। अब इस गन्धक को भीतर घी से पुती हुई लोहे की छोटी कढ़ाई में रख कर बेर के कोयलों की अग्नि में पिघला कर भाँगरे के स्वरस में बुझावें। इस प्रकार शुद्ध गंधक और पूर्वोक्त विधि से तैयार किया हुआ शुद्ध पारा दोनों समभाग लेकर अच्छी तरह कज्जली बना लें। अब इस कज्जली को एक लोहे की चमची (कलछी) में डाल इसे कोयलों की अग्नि पर रखकर पिघलावें, जब यह (कज्जली) पिघल कर कीचड़ की भाँति गीली-सी हो जाय तो गोबर के ऊपर बिछे हुए केले के पत्ते पर डाल दें, डालते ही एक दूसरे केले के पत्ते से (हाथ में गोबर लेकर केले के पत्ते पर डालकर) इसे दबाते हुये ढक दें, और अच्छी

तरह शीतल होने तक इसी तरह रहने दें। इस प्रकार केले के पत्ते से दबाने पर इसकी पपड़ी बन जाती है, इसीलिये इसे पर्पटी कहा जाता है।

नोट—कज्जली को लोहे के चम्मच में डालने से पूर्व चम्मच में थोड़ा-सा घी लगा लेना चाहिये, जिससे द्रव्य उसमें चिपका न रह जाय और अग्नि से गन्धक जलने न पावे।

पर्पटी के पाक—मृदु (कोमल), मध्य तथा खर भेद से तीन तरह के होते हैं। इनमें मृदु तथा मध्य पाकयुक्त पर्पटी का औषध रूप में प्रयोग करना चाहिये। खर पाक पर्पटी सेवन योग्य नहीं होती।

पाक के लक्षण—मृदु पाकवाली पर्पटी तोड़ने पर कुछ मुड़कर टूट जाती है। मध्य पाकवाली बहुत आसानी से टूट जाती है। किन्तु खर पाक में वह पपड़ी बन कर कुछ लाल वर्ण का-सा चूर्ण हो जाता है।

पर्पटी के भेद—इसके मुख्यत: ७ भेद होते हैं जैसे—१—रस पर्पटी, २—ताम्र पर्पटी, ३—सुवर्ण पर्पटी, ४—लौह पर्पटी, ५—पंचामृत पर्पटी, ६—बोल पर्पटी, और ७—विजय पर्पटी इत्यादि। ये पर्पटियाँ विशेषत: योगवाही होने से इनमें जिन-जिन पदार्थों को मिलाया जाता है, उनके गुण विशेष रूप से इनमें पाये जाते हैं। परन्तु इनके स्वाभाविक गुण कम नहीं होते। जैसे—रसपर्पटी में स्वाभाविक पर्पटी के गुणों के अतिरिक्त पारद का गुण भी रहता है। स्वर्णपर्पटी में स्वर्ण का गुण, ताम्र पर्पटी में ताम्र का गुण एवं पंचामृत पर्पटी में लोहा और अभ्रक का गुण विशेष देखा जाता है।

रस सिन्दूर कल्प और पर्पटी कल्प में गुण विषयक भेद इस तरह है कि रस सिन्दूर, स्वर्ण सिन्दूर या मकरध्वज सेवन करने के पश्चात् जब वे आमाशय से अन्तड़ियों (पक्वाशय) में पहुँचते हैं तब उनमें बहुत कुछ रूपान्तर हो जाता है। रूपान्तर न होते हुये उनका कार्य पक्वाशय में ठीक-ठीक होने के लिये पर्पटी कल्प सहायक होता है। पर्पटी कल्प विशेषत: पक्वाशय और ग्रहणी विकार में ही उपयोगी होता है। पक्वाशय के विकारों पर तो पर्पटी कल्प बहुत

ही उपयोगी है। पुराना अतिसार, ज्वर, ग्रहणी, प्रवाहिका आदि रोगों पर इसके समान आशुफलप्रद औषध दूसरी कोई नहीं है ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। सिन्दूर कल्प के समान इसका वियोजन आमाशय में नहीं होता। बल्कि पक्वाशय और ग्रहणी में होता है।

पर्पटी कृमिनाशक, पाचक, व्रण शोधक, व्रण रोपक और शक्ति-बर्द्धक है। संग्रहणी-विकार में दही या मट्ठा के साथ पर्पटी का उपयोग बहुत ही अच्छा कार्य करता है।

पर्पटी सेवन के नियम—प्राय: सभी पर्पटियों की सेवनीय मात्रा १ से २ रत्ती है। नियमानुसार १-१ रत्ती प्रति दिन बढ़ाते हुए इसे खाना चाहिये। अर्थात् प्रथम दिन १ रत्ती, दूसरे दिन २ रत्ती, तीसरे दिन ३ रत्ती, इस क्रम से ७ रत्ती तक बढ़ावें। फिर प्रति दिन उसी क्रम से एक-एक रत्ती कम कर इसका सेवन बन्द कर दें। यदि आवश्यकता हो तो पुन: क्रम बाँध कर बढ़ावें और घटावें। अधिक आवश्यकता पड़ने पर इसका सेवन सुबह-शाम (दोनों समय) किया जा सकता है।

अनुपान—रोग और रोगी के अनुकूल दूध, छाछ, दही का पानी, मलाई, मक्खन, और शहद आदि के साथ दें।

पथ्य—पर्पटी सेवन करने वाले मनुष्य को अत्यन्त तीक्ष्ण तथा विदाही पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये। हो सके तो नमक भी नहीं खाना चाहिये। यदि नमक खाना आवश्यक हो तो बहुत थोड़ी मात्रा में आग पर भुना हुआ खायें। यदि ज्वर, खाँसी आदि उपद्रव न हो, तो पर्पटी सेवनकाल में तक्र का सेवन बहुत अच्छा लाभ करता है। इस समय रोगी केवल छाछ का ही सेवन करे। छाछ गाय की होनी चाहिये। यदि केवल छाछ पर नहीं रहा जाय, तो उसके साथ पुराने चावलों का भात दें। अगर तक्र या छाछ अनुकूल न पड़े तो दूध का सेवन करें। जहाँ तक हो सके जल बहुत कम पीना चाहिये। यदि बिलकुल ही जल न पीया जाय, तो और अच्छा। अत्यन्त प्यास लगने पर अनार का रस, सन्तरा, मीठा

नीबू या ईख का रस थोड़ा-थोड़ा पीवें। हरे या कच्चे नारियल का पानी भी पी सकते हैं।

प्रसूता स्त्री के शरीर में यदि सूजन हो और वह संग्रहणी रोग से ग्रसित हो तो बहुत सावधानी पूर्वक उसे पर्पटी सेवन करानी चाहिये। यद्यपि पर्पटी शोथ और संग्रहणी की अव्यर्थ औषध है तथापि यह उस प्रसूता स्त्री के लिये फायदेमन्द नहीं, जिसका जरायु क्षेत्र क्लेद-युक्त है, योनि मार्ग से दुर्गन्धयुक्त जल बहा करता है या जिसके पेडू (बस्तिप्रदेश) में पीड़ा या भार-सा मालूम होता है।

नोट—इस प्रकरण में अक्षर क्रम से पर्पटियों के नाम नहीं लिखे गये हैं।

रस पर्पटी

पूर्वोक्त विधान से शुद्ध किए हुए पारद और गन्धक ५-५ तोला लेकर कज्जली बना लें। जब उसमें पारद के छोटे-छोटे कण न दीखें और चूर्ण सुरमे के समान सूक्ष्म हो जाय, तब उसको घी से पोती हुई छोटी लोहे की कलछी या कढ़ाई में डाल अग्नि पर एक लोहे का तवा रख उस पर एक अंगुल मोटा बालू का स्तर बिछा कर उस पर कढ़ाई रखें। जब कज्जली गरम होने लगे तब उसको बीच-बीच में लोहे के छूरे से हिलाते रहें। जब सारी कज्जली अच्छी तरह से द्रव (पतली) हो जाय तब उसे जमीन पर गोबर बिछा उसके ऊपर केले का अखण्ड पत्ता रख दें और तुरन्त ही उस पर केले का दूसरा पत्ता रख गोबर से दबा दें। जब पर्पटी ठण्ढी हो जाय तब निकाल कर शीशी में भर कर रख लें। ---सि० यो० सं०

नोट—सब प्रकार की पर्पटियाँ इसी विधि से बनानी चाहिये। सेवन करते समय पर्पटी को खूब महीन पीस कर उपयोग में लाना चाहिये।

मात्रा और अनुपान—एक-एक रत्ती की मात्रा बढ़ा कर ७ या १० रत्ती तक रोग और रोगी का बलाबल देख कर देवें। रोग अच्छा होने तक यही मात्रा देते रहें। जब रोगी रोग-मुक्त हो जाय तब प्रतिदिन १-१ रत्ती की मात्रा घटा कर औषध छुड़ा दें।

आचार्य यादवजी का कहना है कि "मैंने एक दिन में एक बार १० रत्ती तक की मात्रा न देकर दिन में दो-तीन बार में १ से ३ रत्ती

तक की मात्रा देकर प्रयोग किया है और इससे अच्छा लाभ होते देखा गया है।" सामान्यतः पर्पटी का प्रयोग ४० दिन का है।

उन्माद रोग में—रस पर्पटी २ रत्ती, रास्नामूल चूर्ण १ माशा, गोघृत में मिला कर सेवन करना चाहिये।

अपस्मार रोग में—रस पर्पटी दो रत्ती को ब्राह्मी स्वरस के साथ सेवन करें।

संग्रहणी रोग में—रस पर्पटी २ रत्ती, सफेद जीरे का चूर्ण १ माशा, हींग आधी रत्ती मिला कर मठा के साथ देने से लाभ होता है।

उदरशूल में—एरण्ड तेल के साथ सेवन करें।

शोथयुक्त पाण्डु रोग में—शुद्ध गुग्गुल चूर्ण के साथ सेवन करें।

अर्श रोग में—रस पर्पटी २ रत्ती गोमूत्र के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

कुष्ठ रोग में—निम्ब का पंचांग, बावची और भांगरे का चूर्ण समान भाग २ माशे, पर्पटी २ रत्ती मिला शहद के साथ दें।

वातज्वर में—रस पर्पटी २ रत्ती दशमूल क्वाथ के साथ दें।

कफजन्य खाँसी में—१ माशे त्रिकटु चूर्ण के साथ २ रत्ती रस पर्पटी का सेवन कराना गुणदायक है।

गुण और उपयोग—पारद-गन्धक की कज्जली का यह पर्पटी कल्प पाचक, दीपक, जन्तुघ्न, शोधक और परम रसायन है। मन्दाग्नि, संग्रहणी, रक्त की कमी, पुराना अतिसार, पाण्डु, अर्श तथा पेट के सभी विकारों में रस पर्पटी का प्रयोग किया जाता है। यकृत्-विकार को ठीक करके यह पर्पटी पाचक रस उचित मात्रा में पैदा करती है। आँतों के व्रणों को भरने और उसमें से संचित विष को बाहर निकालने में पर्पटी सबसे अच्छी दवा है। ग्रहणी कला की दुर्बलता इससे ठीक हो जाती है और आँतों में पचाने की शक्ति बढ़ती है। पाचन शक्ति इतनी मात्रा में बढ़ जाती है कि पाव भर दूध हजम न करने वाला आदमी रोज १०-१५ सेर दूध पचा जाता

है। इससे विदग्ध पित्त के उपद्रव दूर हो जाते हैं और रक्त शोधन व प्रसादन दोनों कार्य होते हैं। अतएव शोथ, कुष्ठ, जलोदर आदि रोगों में यह विशेष फायदा करती है।

पक्वाशय में कृमिजन्य विकार के कारण होने वाला अतिसार अथवा अन्न जब अपरिपक्वावस्था में ही आँतों में पड़ा रहने से दाह और दुर्गन्धयुक्त अतिसार प्रारम्भ होता है, ऐसी अवस्था में ध्यान रखना चाहिये कि यकृत् विशेष बिगड़ा हुआ नहीं होता है। अतएव यकृत् को उत्तेजित करने वाली या यकृत् विकार को नष्ट करने वाली कोई दवा नहीं देनी चाहिये, केवल आँतों में रहने वाले स्थानीय विकार को शमन करने के लिये औषध देने की आवश्यकता है। ऐसी हालत में विशेष लक्षण यह होता है कि रोगी की जीभ मटमैले रङ्ग की हो जाती है, इसीसे जान लेना चाहिये कि रोगी के आन्त्रस्थित दोष बिगड़े हुए हैं और उसकी पाचनक्रिया ठीक नहीं है। ऐसी अवस्था में रस पर्पटी देनी चाहिये।

बच्चों के अतिसार में 'रसराज रस' देने की राय कई वैद्यों की होती है, परन्तु सब बालकों के लिये यह अनुकूल नहीं पड़ता। आप इसे चाहे जितनी कम मात्रा में दें, फिर भी बच्चों के पेट में दाह (जलन) मरोड़ आदि विकार उत्पन्न हो ही जाते हैं। अतएव इसे न दे कर रस-पर्पटी थोड़ी मात्रा में देने से बहुत लाभ होता है।

दूसरा अन्तर इन दोनों दवाओं में यह है कि जो अतिसार अत्यन्त तीव्र स्वरूप का होता है, जिसमें बार-बार एकदम उष्ण जल के समान अधिक परिमाण में या अल्प परिमाण में पतले दस्त होते हों, साथ ही पेट में कैंची से काटने की-सी पीड़ा हो, ज्वर से रोगी बेचैन हो, इस प्रकार के अतिसार में रसराज तो अच्छा काम करता है; किन्तु छोटे-छोटे बच्चों को इस प्रकार का अतिसार नहीं होता, उन्हें प्रायः श्वेत (सफेद) हरे-पीले वर्ण के पतले-पतले दस्त ज्यादे परिमाण में होते हैं। कभी-कभी उन्हें अशान्ति भी होती है। जिह्वा मटमैली रहती है, कभी ज्वर रहता, कभी नहीं भी रहता, ऐसी दशा में रसराज की अपेक्षा रस-पर्पटी विशेष गुणदायक होती है। पर्पटी पहले कम मात्रा में

दें, फिर क्रमशः मात्रा बढ़ाते जाएँ। बच्चों के लिये ४ रत्ती से ज्यादा नहीं दें; अन्यथा हानि होगी।

अतिसार-विकार में कई बार कृमि का अनुबन्ध रहता है, ऐसी अवस्था में प्रथम कृमि नाशक दवा दे कर एरण्ड-तेल के समान कोई हल्का जुलाब देने के पश्चात् रस पर्पटी देने से अच्छा लाभ होता है। कृमि रहने से पर्पटी का प्रभाव अच्छी तरह नहीं पड़ता है। अतः कृमि दूर करना आवश्यक है।

रस पर्पटी में शोथनाशक तथा पाण्डु नाशक शक्ति भी पाई जाती है। तीव्रातिसार में कई कारणों से आन्त्र में प्रायः शोथ हो जाया करता है जिसके कारण अतिसार की तीव्रता और भी बढ़ जाती है। इस प्रकार की तीव्रावस्था में "रसपर्पटी" का उपयोग पहले न करें, तो अच्छा है। तीव्रावस्था की समाप्ति पर इसका उपयोग दाह और पित्त-शामक ओषधियों के साथ करने से शोथ एकदम नष्ट होकर अतिसार दूर हो जाता है।

आँतों की ग्राहक शक्ति बढ़ाने में "रसपर्पटी" अद्वितीय औषध है। प्रायः जीर्णातिसार में आँतों की ग्राहक शक्ति नष्ट हो जाती है। ऐसी स्थिति में अनाड़ी लोग अफीम या अन्य स्तम्भक औषधों का सेवन कराकर आँतों में नाम मात्र की क्षणिक स्थायी शक्ति पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु अफीम सदृश ओषधियों से आँतों की शक्ति तो बढ़ती नहीं, हाँ! कुछ काल के लिये स्तम्भकता उत्पन्न कर देती है, जिससे ऐसा मालूम होता है कि अतिसार कम हो गया, किन्तु पश्चात् अतिसार का प्रकोप पुनः दुगुना हो जाता है तथा आँतें और भी शिथिल हो, शक्तिहीन हो जाती हैं। ऐसी अवस्था में इस प्रकार की ओषधि देनी चाहिये, जो आँतों में चिरस्थाई शक्ति पहुँचावे। "रस पर्पटी" इस कार्य के लिये उत्तम है।

उपदंश के कई रोगियों को एक विचित्र त्रासदायक अतिसार शुरू हो जाता है। ऐसी स्थिति में केवल अतिसार की चिकित्सा करने से काम नहीं चलता, उस अतिसार के मूल कारण जो उपदंश का विष

है ; उसे भी नष्ट करना आवश्यक हो जाता है। ये दोनों कार्य "रस पर्पटी" द्वारा बहुत अच्छा होता है।

आँतों में शोथ हो जाने से प्राय: एक प्रकार का विषैला ज्वर उत्पन्न हो जाया करता है। इसमें समान वायु का कोप विशेष रूप से होता है। ज्वर की प्रकोपावस्था में शोथ कम होकर व्रण रूप में परिणत हो जाता है, साथ ही अतिसार का भी प्रकोप होता है। इसमें रोगी को भयंकर कष्ट और पीड़ा होती है। यह अवस्था प्राय: ३ से ६ सप्ताह तक रहती है और इस ज्वर का लक्षण आन्त्रिक सन्निपात से मिलता है। इसमें दस्त सफेद या पीले वर्ण के बार-बार होते हैं। पेट में पीड़ा बहुत होती है। ऐसी परिस्थिति में "रस पर्पटी" के प्रयोग से बहुत लाभ होता है। यह शोथ दूर करती, व्रण भरती, उदर तथा आँतों की भयंकर पीड़ा को शमन करती, पाचनक्रिया को सुधारती और रोग के मूल कारण समान वायु को शमन करती है।

रस पर्पटी—कई मनुष्यों को अनुकूल नहीं पड़ती। जिन रोगों में पित्त की अधिकता हो तथा पित्त प्रकृतिवाले रोगी को रस पर्पटी सहन नहीं होता। इससे पित्त की और वृद्धि हो जाती है। अतएव रोग और रोगी का बल-स्वभाव देख कर ही इसका प्रयोग करना चाहिये। —औ० गु० ध० शा०

ताम्र पर्पटी

ताम्रभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक प्रत्येक ३-३ तोला, शुद्ध बच्छनाग का चूर्ण १ तोला लें। प्रथम पारा-गंधक की कज्जली कर पीछे अन्य द्रव्य मिला कर १ दिन मर्दन कर, बाद में उपरोक्त (पर्पटी) विधि से पर्पटी बना लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१-३ रत्ती प्रात:-सायं, छोटी इलायची और भुने हुये जीरे के चूर्ण के साथ सेवन करने से पुरानी ग्रहणी को त्रिफला चूर्ण और मधु के साथ लेने से प्रमेह और पाण्डु रोग को,

एरण्ड तैल के साथ लेने से शूल रोग को, बावची चूर्ण के साथ सेवन करने से दाद और श्वित्र-कुष्ठ को दूर करती है।

अतिसार में—बिल्वादि चूर्ण के साथ दें। ग्रहणी और पाण्डु रोग में यदि मुख-पाक भी हो तो शतपत्रादि चूर्ण के साथ दें। यदि साथ में रोगी को अर्श (बवासीर) भी हो, तो नागकेशर चूर्ण के साथ दें। यदि रोगी को अम्लपित्त हो, तो रसादि वटी और जहरमोहरा पिष्टी के साथ अथवा द्राक्षादि चूर्ण के साथ ताम्र पर्पटी दें।

गुण और उपयोग—यह नये-पुराने अतिसार-संग्रहणी, यकृत् तथा प्लीहा-विकार की प्रसिद्ध दवा है। उदरविकार, प्रमेह, शूल, कुष्ठ, दाद, पाण्डु, अम्लपित्त आदि रोगों में भी यह अच्छा कार्य करती है।

इस पर्पटी में ताम्र के गुण विशेष पाये जाते हैं। केवल ताम्र-भस्म का सेवन करना कठिन हो जाता है, अतएव कज्जली बना कर उसकी पर्पटी सेवन करने का विधान है। ताम्र तीक्ष्ण द्रव्य होने से इसका असर आभ्यन्तरिक पिच्छिल त्वचा में बहुत गहराई तक पहुँचता है और चिरकाल तक इसका असर बना रहता है।

ताम्र का मुख्य उपयोग यकृत्, प्लीह तथा मूत्रपिण्ड के विकारों पर होता है। यदि यकृत्-विकार के कारण अतिसार हो गया हो, तो ताम्र पर्पटी के सेवन से अधिक लाभ होता है। यकृत् वृद्धि की अन्तिमावस्था में कई रोगियों को बहुत कष्टदायक अतिसार शुरू हो जाता है। इस अवस्था में ताम्र पर्पटी के सेवन से यकृत-वृद्धि भी कम हो जाती है तथा यकृत्-वृद्धि से उत्पन्न अतिसार का भी शमन हो जाता है। इसी प्रकार प्लीहाजन्य अतिसार में भी इसका अच्छा असर होता है। मूत्रपिण्ड में शोथ हो जाने पर कई रोगियों को कष्टदायक अतिसार का सामना करना पड़ता है। उस दशा में ताम्र पर्पटी उसकी अच्छी सहायता करती है। सारांश यह कि पित्तविभजन क्रिया में बाधा पड़ने से जो अतिसार उत्पन्न होता है, उसका निवारण ताम्र पर्पटी द्वारा बहुत अच्छी तरह हो जाता है।

स्वर्णपर्पटी

अच्छे पत्थर के खरल में ४ तोला शुद्ध पारा और उसमें १ तोला सोने का वर्क एक-एक करके मिलावें, फिर उसमें कागजी नीबू का रस डालकर एक दिन मर्दन करें। पीछे उसको गर्म जल से धोकर उसमें चार तोला शुद्ध गंधक डालकर कज्जली बना कर, रस पर्पटी विधान से पर्पटी बना लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से ३ रत्ती सुबह-शाम मधु में मिला कर दें। ऊपर से दूध पिला दें। क्षय रोग में चौंसठ प्रहरी पीपल और शहद से दें। बकरी-दूध के साथ देने से यह बहुत शीघ्र लाभ करती है।

गुण और उपयोग—इसमें स्वर्ण और कज्जली का रासायनिक संस्कार होता है। अतएव इस पर्पटी में स्वर्णभस्म के प्रायः सभी गुण विद्यमान रहते हैं। यह पाचक, दीपक, रस-रक्तादि धातु बर्द्धक, वृष्य, योगवाही, जन्तुघ्न, त्रिदोष नाशक और बल-वीर्य बर्द्धक तथा उत्तम रसायन है। संग्रहणी और क्षय के अस्थि-चर्मा-वशेष रोगी भी इससे अच्छे हो जाते हैं। संग्रहणी की कठिन अवस्था में इसके द्वारा आँतों को काफी बल मिलता है। पाचक रस अधिक बनता और हृदय को ताकत मिलती है। इसका प्रभाव प्रत्येक अङ्ग पर होता है। आँतों की शुद्धि कर दिल और दिमाग को भी शुद्ध करती है। इसके सेवन से नष्ट हुए रक्ताणुओं की वृद्धि काफी संख्या में होती है जिससे शरीर में एक तरह की नवीन स्फूर्ति पैदा हो जाती है और शरीर का एक नया ही कल्प हो जाता है। पाण्डु, प्रमेह और दमे में भी इससे बहुत लाभ होता है।

वैसे तो सब पर्पटियों के सेवन काल में पथ्य-परहेज की आवश्यकता है, किन्तु स्वर्ण पर्पटी में पथ्य-परहेज पर और भी विशेष ध्यान देने की जरूरत है। इसमें इतना हल्का आहार होना चाहिये, जिससे कि आँतों में किसी प्रकार की बाधा न पहुँच सके, प्रत्युत उसकी पाचन-क्रिया आमाशय में ही बहुत अंशों में हो जाय। स्वर्ण पर्पटी के सेवन-काल में गो-दुग्ध सेवन करना सर्वोत्तम है।

स्वर्ण पर्पटी से कई मरणासन्न रोगियों के प्राण बचे हैं। यह उस अतिसार में अपूर्व काम करती है, जो बहुत पुराना होने के साथ कष्टदायक भी हो, और जिसमें रोगी के पेट में विशेष पीड़ा न होते हुए, जिस प्रकार किसी नल की डाट खोल देने से पानी बहने लग जाता है, उसी प्रकार रोगी को पतले दस्त होते हों, रोगी को कुछ भी काँखना वगैरह न पड़ता हो। यद्यपि इस में रोगी को ५-६ बार ही पाखाना जाना पड़ता है, किन्तु पाखाने इतने अधिक परिमाण में होते हैं, कि रोगी की अंतड़ियों की शक्ति बिल्कुल नष्ट हो जाती है। उसका अस्थि-पञ्जर मात्र ही शेष रह जाता है। कभी-कभी वमन भी होने लगती है, परन्तु ज्वर नहीं होता। ऐसी संग्रहणी या अतिसार रोग में स्वर्ण पर्पटी एक-एक रत्ती के अनुसार से बढ़ाते हुए देना चाहिये। निर्जन्तुक क्षय रोग की सामान्यावस्था में स्वर्ण पर्पटी अच्छा काम करती है। किन्तु क्षय की विशेषावस्था में यथा—उरःक्षत, मुख से रक्तस्राव होना, और पित्त-विकृति में इसका उपयोग ठीक-ठीक नहीं होता है।

स्वर्ण पर्पटी सेवन करने से पूर्व रोगी की मानसिक अवस्था की ओर ध्यान देना आवश्यक है। अविकृत मानसिक अवस्था में स्वर्ण पर्पटी जितना अच्छा काम करती है, उतना विकृत मानसिक अवस्था में नहीं। वात-प्रकोप के कारण अतिसार हुआ हो, तो यह पर्पटी विशेष काम नहीं करती। पैत्तिक विकार में भी इसका उपयोग विशेष नहीं किया जाता है।

अतिसारयुक्त कास-श्वास, पाण्डु, अशक्तता, हिक्का आदि विकारों में इस पर्पटी का उपयोग बहुत अच्छा होता है। यद्यपि शास्त्रकारों ने स्वर्ण पर्पटी के लिये "ज्वरापहा" ऐसा लिखा है, किन्तु अनुभव से पता लगा कि ज्वरावस्था में इसका असर कुछ भी नहीं होता है।

लौह पर्पटी

शुद्ध पारा १ तोला, तीक्ष्ण लौह भस्म १ तोला, शुद्ध गंधक २ तोला। प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बना, उसमें लौहभस्म

मिलाकर १ दिन मर्दन करें। पीछे रसपर्पटी में कही हुई क्रिया की तरह पर्पटी बना लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती दिन भर में २-३ बार दें। जीरे का चूर्ण और छाछ (मठा), दूध या फलों के रस के अनुपान से दें। ५-७ दिन के अन्दर १-१ रत्ती बढ़ाते हुए छः रत्ती तक की मात्रा में सुबह-शाम शंख भस्म, हींग १ रत्ती और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—संग्रहणी, अम्लपित्त, मन्दाग्नि, पाण्डु रोग तथा यकृत् की बीमारियों में और खून की कमी में लौह पर्पटी से बहुत लाभ होता है। संग्रहणी और आँव के दस्तों की तो यह रामबाण दवा है। पुराने अतिसार और कष्टसाध्य संग्रहणी में इसके कल्प से आशाजनक लाभ होता है।

लौह पर्पटी में लौह के गुण विशेष पाये जाते हैं। जिनके शरीर में रक्त की कमी हो गयी हो या रक्त में जल भाग विशेष बढ़ कर शोथ हो गया हो उनके लिये लौह पर्पटी बहुत हितकारी है। यह पर्पटी विशेष कर उस अतिसार या संग्रहणी में, जिसमें शोथ, पाण्डु, कामला आदि उपद्रव उत्पन्न हो गये हों ; यकृत-वृद्धि के कारण या पाकस्थली की विकृति से उत्पन्न संग्रहणी या अतिसार रोगों पर अच्छा काम करती है। यह रक्त को गाढ़ा कर उसकी वृद्धि करती है।

पञ्चामृत पर्पटी

शुद्ध पारद, लौहभस्म, अभ्रकभस्म और ताम्रभस्म १-१ तोला, तथा शुद्ध गंधक सब के समान भाग (चार-तोला) लें। प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बना, पीछे अन्य भस्में मिला एक दिन मर्दन करके रस पर्पटी में लिखे विधान के अनुसार पर्पटी बना लें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से ३ रत्ती दिन में २-३ बार दें। भुने हुए जीरे का चूर्ण और शहद के साथ चटाकर ऊपर से दूध, छाछ या दाड़िम आदि फलों के रस के साथ देना चाहिये।

श्रीयुत यादवजी त्रिकमजी आचार्य सिद्धयोग संग्रह में लिखते

हैं—"मैंने पञ्चामृत पर्पटी में १-१ भाग वंग और यशद भस्म मिलाकर सप्तामृत पर्पटी बनाई है। पञ्चामृत पर्पटी से यह अधिक गुणकारक है। आन्त्रक्षय में सप्तामृत पर्पटी या केवल स्वर्ण पर्पटी के साथ मिलाकर देने से विशेष लाभ होते देखा गया है।"

गुण और उपयोग—यह संग्रहणी रोग की प्रसिद्ध औषध है। इसके अतिरिक्त अतिसार, पाण्डु, अरुचि, मन्दाग्नि, अम्लपित्त, शूल और दमा में भी यह खूब लाभ करती है। संग्रहणी में मन्दाग्नि हो जाने पर यह दवा अग्नि को चैतन्य कर क्षुधा की वद्धि करती है। संग्रहणी रोग में अन्न का परिपाक अच्छी तरह नहीं होता, रोगी के शरीर में नया खून भी नहीं पैदा होता, शरीर रक्तहीन होकर अत्यन्त दुर्बल हो जाता है, भूख मारी जाती है, कमजोरी के कारण मन्द-मन्द ज्वर भी आने लगता है और शरीर क्रमशः क्षीण होने से अन्त में यक्ष्मा तक हो जाता है, ऐसी अवस्था में पञ्चामृत पर्पटी का सेवन अमृत के समान लाभ करता है। कठिन संग्रहणी में केवल दूध या मठा के आधार पर पर्पटी सेवन करायी जाती है। साधारण संग्रहणी या आँव के दस्त में हल्के अन्न का भोजन, मीठे फलों का रस, दूध, दही, मठा आदि का भोजन करते हुए भी पर्पटी सेवन की जा सकती है।

पर्पटियों में पञ्चामृत पर्पटी सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि; अन्य पर्पटियाँ अपना कार्य शरीर के किसी विशेष अवयवों में ही करती हैं। किन्तु पञ्चामृत पर्पटी का कार्य कोष्ठान्तर्गत पचनेन्द्रियों पर शक्तिदायक, दोष-नाशक एवं कीटाणु-नाशक भेद से तीन प्रकार के होते हैं। इस पर्पटी का वियोजन पक्वाशय, ग्रहणी और वृक्क आदि स्थानों में विशेष होता है। उण्डूक तथा वृक्कों में इसका कुछ भाग शोषित होकर वहाँ के उपताप को शोषित करता है। कुछ भाग पक्वाशय में शोषित होकर वृक्क सम्बन्धी धमनियों के द्वारा यकृत् में पहुँचता है। इसमें जो ताम्र भस्म है वह यकृत् में अपना विशेष कार्य करती है। लौहभस्म पक्वाशय में शक्तिदायक और स्तम्भन कार्य करती है। पारे की कज्जली और लौह का वियोजन ग्रहणी में उत्तम लाभ-

दायक होता है। इसीसे ग्रहणी की शिथिलता दूर होकर, दोषरहित हो जाती है। इसमें जो अभ्रक का भाग है, उसका कार्य आँतों अथवा पचनेन्द्रियों की अपेक्षा श्वसनेन्द्रियों पर तथा श्वासवह स्रोतों पर विशेष उपयुक्त होता है।

पित्तजन्य विकारों पर ताम्र पर्पटी के अतिरिक्त अन्य पर्पटियाँ काम नहीं देतीं, किन्तु पञ्चामृत पर्पटी पित्त के विकारों पर भी अच्छा काम करती है। पञ्चामृत पर्पटी में ताम्र का योग होने से पित्त का निःसरण उत्तम प्रकार से होता है। ताम्रभस्म यकृत् को शक्ति प्रदान कर पित्त भाग की रुकावटों को दूर करती है। ताम्रभस्म तीव्र होने के कारण इसे अलग न देकर इसके द्वारा बनी दवाएँ यथा—पञ्चामृत पर्पटी, ताम्र पर्पटी, तथा सूतशेखरादि औषधों के सेवन से विशेष सुविधा मिलती है।

चिरकालीन संग्रहणी, अतिसार और अम्लपित्तादि रोगोत्पन्न अतिसारादि पर पञ्चामृत पर्पटी बहुत लाभदायक है। इस पर्पटी के साथ दूध या तक्र पूर्ण मात्रा में दे सकते हैं।

पुराना अतिसार जिसमें क्षयजन्य विष का प्रायः अनुबन्ध रहता है, उसके शमनार्थ भी पञ्चामृत पर्पटी एक अव्यर्थ औषध है। क्योंकि इसमें अभ्रकभस्म का जो संमिश्रण है वह क्षयजन्य विष को नष्ट करने वाली है।

पुराने अतिसार में स्वर्ण पर्पटी और पञ्चामृत पर्पटी दोनों देना चाहिये। किन्तु; प्रश्न यह होता है, कि स्वर्ण पर्पटी और पञ्चामृत पर्पटी ये दोनों किस अवस्था में देनी चाहिये। यद्यपि सुवर्ण पर्पटी शक्ति-दायक और कीटाणुनाशक है, तथापि ज्वर की हालत अर्थात् ज्वरातिसार या ज्वरातिसारक्षय में सुवर्ण पर्पटी विशेष लाभदायक नहीं है। ऐसी अवस्था में पञ्चामृत पर्पटी ही विशेष उपयोगी है। स्वर्ण पर्पटी कीटाणुनाशक होने पर भी पञ्चामृत पर्पटी के समान शोधक या शोधनगुणयुक्त नहीं है।

पञ्चामृत पर्पटी में यकृत-दोषशोधक ताम्र तथा क्षय दोषघ्न एवं फुफ्फुसों के शक्तिदायक अभ्रक होने से जिस क्षय-विकार में

फुफ्फुस, यकृत, आँतें आदि अवयव दूषित हो गये हों, उसमें सुवर्ण पर्पटी की अपेक्षा पञ्चामृत पर्पटी ही विशेष उपयोगी सिद्ध हुई है। हाँ, यदि क्षय का विकार सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त नहीं हुआ हो, शरीर कृश हो और बलवान अतिसार हो, अर्थात् केवल अंतड़ियाँ ही क्षय के विकार से विकृत हो गई हों, तो स्वर्ण पर्पटी का उपयोग करना लाभदायक है।

क्षय-विकार के अतिरिक्त अनुलोमक्षय या पुरानी प्रवाहिका में शरीर के अन्दर विशेषत: मुख से लेकर गुदावलि तक तथा आँतों की पिच्छिल (श्लैष्मिक—चिकनी) त्वचा पर छोटे-छोटे व्रण हो जाते हैं। ये व्रण विशेष कष्टदायक और जलन देने वाले नहीं होते, परन्तु इनकी वजह से रोगी को सफेद रंग का दस्त जलन सहित होता है। किसी-किसी को मुख पाक (मुँह में छाले पड़ जाना), लार बहना आदि लक्षण भी प्रगट हो जाते हैं। यह लक्षण कभी-कभी वर्षों बना रहता है, फिर जैसे-जैसे मुख पाक कम होने लगता है, वैसे-वैसे दस्त भी कम आने लगते है। ऐसी स्थिति में पञ्चामृत पर्पटी देने से विशेष लाभ होता है।

यकृत्-विकार में यकृत् से उचित परिमाण में पित्त का स्राव न होने या आँतों में पित्त उचित परिमाण में न पहुँचने से अनुलोमक्षय की उत्पत्ति हो जाती है। अतएव इसकी उत्पत्ति रोकने तथा यकृत् से पित्त का स्राव नियमित रूप में कम करने के लिये पञ्चामृत पर्पटी का उपयोग किया जाता है।

पंचामृत पर्पटी का सबसे अच्छा उपयोग बालग्रह में होता है, जिसमें बच्चे चौंकने लगते, हाथों की मुट्ठियाँ बँध जातीं, कभी-कभी दाँत भी बैठ जाते हें और एक तरह का दौरा-सा होता है, उसमें इस पर्पटी को छुहारे की गुठली पानी में घिस कर उसके साथ आधी रत्ती की मात्रा में देने से तुरन्त लाभ होता है।

आमवात के कारण यदि भयंकर शिर-दर्द हो तो पलास की जड़ के स्वरस के साथ पंचामृत पर्पटी देने से लाभ होता है।

उपदंश-विकार में भी पंचामृत पर्पटी शहद के साथ देने से अच्छा लाभ होता है।

बोलपर्पटी

पारा और शुद्ध गंधक समान भाग लेकर कज्जली बना उसमें बोल (हीरादोखी—खूनखराबा) का कपड़छान किया हुआ चूर्ण कज्जली के बराबर मिला, एकत्र घोटकर पर्पटी विधान से पर्पटी तैयार कर लें। —र० चं०

मात्रा और अनुपान—२-३ रत्ती, सुबह-दोपहर-शाम शहद और मिश्री के साथ दें, या मक्खन अथवा हरी दूब के स्वरस से दें।

गुण और उपयोग—यह पर्पटी रक्तपित्त, गुदामार्ग से रक्तस्राव होने तथा योनि द्वारा रक्तस्राव, (रक्तप्रदरादि), खूनी बवासीर और खून के प्रवाह इत्यादि को नाश करती है। इसके सेवन से शरीर के किसी भी स्थान से होता हुआ रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

कृष्णबोल के योग से बनी हुई बोलपर्पटी का कार्य पित्तोत्सर्जन के लिये ठीक होता है, यदि यकृत् में पित्त संचय के कारण विकार उत्पन्न हुआ हो, तो काला बोल की पर्पटी का सेवन करना चाहिये।

यकृत् की कमजोरी अथवा यकृत्-वृद्धि से जो अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं, उन पर भी यह पर्पटी विशेष उपयोगी है।

कृष्णबोल पर्पटी का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य गर्भाशय को शक्ति पहुँचाना है, गर्भाशय की विकृति तथा नष्टार्तव, पीड़ितार्तव आदि विकारों में यह अच्छा काम करती है। मासिकधर्म के समय स्त्री के पेट में या गर्भाशय में जो तीव्र वेदना होती है, उसके निवारणार्थ अनेक प्रकार की पेटेण्ट ओषधियाँ दी जाती हैं, उन सब में प्रायः कृष्णबोल की योजना अवश्य रहती है।

रक्तबोल पर्पटी के योग से निर्मित बोलपर्पटी का उपयोग रक्तवाहक नाड़ियों को संकुचित करता है। रक्त-पित्त, उरःक्षत आदि विकारों में रक्त का अधिक परिमाण में स्राव होता है। उन विकारों पर रक्तबोल पर्पटी का विशेष उपयोग होता है। गर्भाशय और योनि मार्ग से अनेक कारणों से कभी-कभी रक्तस्राव होना आरम्भ हो जाता है, जिसे रक्त प्रदर कहते हैं। इस रोग को दूर करने के लिये यह पर्पटी बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है।

नोट—बोल लाल और काला भेद से दो प्रकार का होता है। काले बोल को एलिया—एलुवा और मुसब्बर तथा लाल बोल को हीराबोल कहते हैं। इनमें काला बोल (मुसब्बर—एलुवा) बहुत काम में आता है। दोनों के वर्ण; रूप; गन्ध और स्वाद में भिन्नता है। काला बोल (एलुवा) ग्वारपाठे के रस से तैयार किया जाता है। आजकल ओषधियों में विशेषतः इसी का उपयोग होता है। यह विरेचक है और लाल बोल स्तम्भक है। काले बोल से यकृत् से पित्त का स्राव अधिक होता है। किन्तु लाल बोल से यह कार्य नहीं होता। काले बोल से गर्भाशय के विकृत द्रव्य और रक्त साफ होकर बह जाते हैं। अतएव प्रसूता को भी यह दिया जाता है।

प्रसूती होने पर दूषित रक्त साफ हो जाना चाहिये, परन्तु कभी-कभी रुक भी जाता है। दूषित रक्त अन्दर रहकर अनेक तरह की व्याधियाँ उत्पन्न कर देता है। ऐसी अवस्था में उस दूषित रक्त को बाहर निकालने की आवश्यकता होती है। इसके लिये कुछ लोग कपास की जड़ काम में लाते हैं, यद्यपि इससे गर्भाशय को उत्तेजना मिल कर गर्भकोष्ठ तो शुद्ध हो जाता है, परन्तु फिर स्राव जो जारी होता है, वह अपने-आप बन्द नहीं होता। परिस्थिति ऐसी हो जाती है कि रक्त-प्रवाह जोरों से होने लगता है, जिसका रोकना मुश्किल हो जाता है। यह बात एलुवा में नहीं पाई जाती है। एलुवा के उपयोग से पहले दूषित रक्त बाहर निकल कर बाद में रक्त प्रवाह स्वयं बन्द हो जाता है। इस रक्त प्रवाह को रोकने के लिये काले बोल से बनी पर्पटी काम में लाना अत्युपयोगी है। अतएव रक्त रोधन के लिये रक्त बोल द्वारा निर्मित पर्पटी और गर्भाशय शोधनादि के लिये एलुवा द्वारा निर्मित पर्पटी उपयोग में लेना चाहिये।

विजयपर्पटी

शुद्ध गन्धक ४ तोला, शुद्ध पारद २ तोला, रौप्यभस्म १ तोला, स्वर्णभस्म ६ माशा, वैक्रान्तभस्म तथा मुक्तापिष्टी दोनों ३-३ माशे लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, उसमें अन्य भस्में मिलाकर एक दिन मर्दन करें, फिर पर्पटी विधान से पर्पटी बना लें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से ३ रत्ती, दिन में २-३ बार दूध, छाछ, मीठे दाड़िम, मोसम्बी और मीठे अंगूर के रस—इनमें से किसी एक के साथ दें।

गुण और उपयोग—कृच्छ्रसाध्य ग्रहणी रोग, उपद्रव सहित राजयक्ष्मा, शोथ, पुराना अतिसार, पाण्डुरोग, प्लीहारोग, जलोदर, परिणामशूल, अम्लपित्त, हृद्रोग, पुराने विषमज्वर, वात तथा कफ से होने वाले रोगों में विजय पर्पटी अत्युत्तम कार्य करती है। इसके प्रयोग से शरीर पुष्ट और बलवान होता है। जहाँ किसी अन्य पर्पटियों से लाभ होता न दिखाई दे, वहाँ इसका प्रयोग करें।

गगनपर्पटी

शुद्ध पारद १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला लें, प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना कर उसमें अभ्रकभस्म मिला, एक दिन मर्दन करें। फिर रस पर्पटी में कहे हुए विधान से पर्पटी बना कर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से ३ रत्ती दिन में २-३ बार शहद, दूध, मठा, मीठे अनार का रस इनमें से किसी के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह पर्पटी मन्दाग्नि, पाण्डु, राजयक्ष्मा, खाँसी, दमा और पुरानी संग्रहणी में लाभदायक है।

यह पर्पटी वात-कफजन्य राजयक्ष्मा की खाँसी या यक्ष्मा रोग में अधिक दस्त होना, कमजोरी, कफ की वृद्धि आदि विकारों को नाश करती है।

शरीर में रक्त की कमी से देह पीली पड़ गयी हो, साथ ही कफ की भी वृद्धि हो, मन्दाग्नि, भूख न लगना, पेट भारी रहना, अजीर्ण हो जाना आदि विकारों में लौह पर्पटी के साथ इसका मिश्रण बहुत उपयोगी है।

मण्डूरपर्पटी

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, माण्डूरभस्म १ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना कर उसमें मण्डूरभस्म मिला एक दिन मर्दन कर पर्पटी बना लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से ३ रत्ती, दिन में २-३ बार मधु, भुने हुए जीरे का चूर्ण, मट्ठा या फलों के रस आदि से दें।

गुण और उपयोग—यह पाण्डु, तिल्ली और यकृत-विकार, मन्दाग्नि, शोथ, संग्रहणी आदि रोगों में अत्यन्त लाभदायक है।

यकृत्-वृद्धि के साथ-साथ संग्रहणी और रक्त की कमी होने पर इस पर्पटी का उपयोग विशेष लाभकारक होता है।

श्वेतपर्पटी

अच्छा कलमी सोरा ४० तोला, फिटकरी ५ तोला और नौसादर २॥ तोला लें। सब का मोटा चूर्ण कर मिट्टी की हाँडी में अग्नि पर पकावें। जब सब एक हो द्रव (पतला) हो जाय, तब जमीन पर गोबर बिछा, ऊपर केले का बड़ा पत्र रख कर उस पर डाल दें और तुरन्त ऊपर से दूसरा केले का पत्र दबा दें। ठण्डा होने पर निकाल कर कपड़छान चूर्ण करके शीशी में भर दें। —सि यो० सं०

मात्रा और अनुपान—५ से १० रत्ती, सुबह-शाम, ठण्डा जल या कच्चे नारियल का पानी अथवा दूध या दही की लस्सी से दें।

गुण और उपयोग—यह अच्छा मूत्रल (पेशाब लाने वाला), स्वेदल (पसीना निकालने वाला) तथा वातानुलोमक योग है। अम्लपित्त, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पेट का दर्द, आफरा और अश्मरी में इसका उपयोग करें।

यह पर्पटी दीपन-पाचन भी है। अतएव मन्दाग्नि और अजीर्ण या पेट में दर्द होने पर इसके उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है। पेशाब का रुक जाना अथवा पित्त की गर्मी या और किसी कारण से पेशाब कम मात्रा में या जलन के साथ होना, ऐसी हालत में बराबर मिश्री मिलाकर उचित अनुपान के साथ सेवन करने से बहुत लाभ होता है। क्योंकि यह शीतल गुण-वीर्ययुक्त है और वृक्क (मूत्राशय) पर इसका प्रभाव विशेष रूप से होता है। अतः यह मूत्र सम्बन्धी सभी विकारों को दूर कर देती है और इससे पेशाब भी साफ होता है।

मल्लपर्पटी

२० तोले सफेद राल को लोहे की कढ़ाई (कढ़ाई में पहले घी चुपड़ दें) में डाल कर मन्द-अग्नि पर पिघलावें, जब राल बिलकुल

पतला हो जाय तब २॥ तोले मल्ल (संखिया सफेद) का महीन चूर्ण उसमें डाल कर शीघ्रता से नीचे उतार पर्पटी बना लें ।

—सि० भै० म०

मात्रा और अनुपान—आधी रत्ती से १ रत्ती, सुबह-शाम, मधु के साथ दें ।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से ज्वर तथा वातज्वर, कफ-ज्वर, अथवा वात-कफ-ज्वर, कफ-वात-ज्वर या और भी ज्वर के उपद्रव जैसे—वमन होना, श्वास की गति में बाधा पड़ना, अथवा श्वास कीगति तेज हो जाना, ज्वर की गर्मी (टेम्प्रेचर) अधिक हो जाना आदि विकार दूर होते हैं ।

इसमें मल्लभस्म का सम्मिश्रण है, अतएव इसके गुण भी मल्ल भस्म के समान ही हैं । यह पर्पटी हृदय और वातवाहिनी नाड़ी को उत्तेजित करने वाली है । क्योंकि यह तीक्ष्ण और उष्ण वीर्य गुणयुक्त है । अतः वात सम्बन्धी विकारों पर इसका खास असर होता है ।

प्राणदापर्पटी

शुद्ध पारद, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, सीसाभस्म, वंगभस्म, काली-मिर्च, शुद्ध बच्छनाग प्रत्येक १-१ तोला तथा शुद्ध गन्धक ७ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषध मिला कर अच्छी तरह खरल करके पर्पटी बनाने की क्रिया से पर्पटी बना लें ।

—वृ० यो० त०

मात्रा और अनुपान—१ से ३ रत्ती, सुबह-शाम, शहद के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें ।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से पाण्डु, अतिसार, संग्रहणी, ज्वर, खाँसी, यक्ष्मा, प्रमेह और अग्निमांद्य का नाश होता है । पुरानी संग्रहणी में रस-रक्तादि धातु कमजोर हो गये हों, साथ ही आँतें अपना कार्य करने में असमर्थ हो गयी हों, हृदय कमजोर, पाचक पित्त का अभाव; दस्त में आँव का भी अंश आता हो, साथ ही दर्द भी हो, तो ऐसी दशा में प्राणदा पर्पटी अपने नामानुरूप रोगी को प्राणदान देती है और रस-रक्तादि धातुओं को पुष्ट कर क्रमशः रोग से विमुक्त कर देती है ।

लौह-मण्डूर प्रकरण

शरीर में रक्त की कमी को पूर्ण करने के लिये लौह और मण्डूर प्रधान द्रव्य हैं। आयुर्वेद में इसीलिये लौह का महत्त्वपूर्ण वर्णन किया गया है। उचित मात्रानुसार इसका सेवन करना बहुत लाभदायक है।

लौह का ही मैल मण्डूर है, अतएव इसका भी गुण लौह के गुणों से कुछ मिलता-जुलता है। परन्तु लौह से मण्डूर कुछ सौम्य होता है। भस्म बनाने के लिये मण्डूर जितना पुराना होगा, उतना ही गुण विशिष्ट होगा। कम से कम १०० वर्ष का पुराना मण्डूर उत्तम समझा जाता है। कहते हैं कि—अंग्रेजों के यहाँ आने से पूर्व हिन्दुस्तान में लोहा बहुत बड़े परिमाण में तैयार किया जाता था। जहाँ-जहाँ लोहा तैयार किया जाता था, उन-उन स्थानों में आज भी अधिक-से-अधिक तादाद में मण्डूर मिल सकता है।

आयुर्वेदीय मतानुसार सौ वर्ष का पुराना मण्डूर उत्तम, अस्सी वर्ष का पुराना मध्यम और साठ वर्ष का पुराना मण्डूर अधम माना जाता है। जो मण्डूर भारी, चिकना, ठोस, तोड़ने पर अंजन के समान तथा बिना गड्ढेवाला हो, वह भस्म के लिए उत्तम होता है।

अग्निमुख लौह

निशोथ, चित्रक, निर्गुण्डी, थूहर, मुण्डी की जड़ प्रत्येक ३२-३२ तोला लेकर सबको कूटकर १२।।। सेर ४ तोला पानी में पकावें, गाढ़ा हो जाने पर उतारकर ठंडा होने पर उसमें बायबिडंग १२ तोला, त्रिकुटा ३ तोला, त्रिफला २० तोला, शिलाजीत ४ तोला, मैनसिल द्वारा भस्म की हुई तीक्ष्ण लौह-भस्म ४८ तोला, घी, शहद और चीनी प्रत्येक १ सेर ३ छटांक १ तोला मिलाकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना कर रख लें अथवा सुखा कर शीशी में भर कर रख लें।

—भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम—बबासीर में जमीकन्द चूर्ण या नीम की मिंगी के चूर्ण के साथ, मन्दाग्नि में गरम जल और नींबू-रस के साथ, सूजन और पाण्डु रोग में पुनर्नवा रस और मधु से दें।

गुण और उपयोग—यह दीपन- पाचन है। इसके सेवन से जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा पाण्डु शोथ, कुष्ठ, उदर-रोग, अर्श, आमवात आदि रोगों का नाश होता है।

वादी बवासीर में अग्निमुख लौह के सेवन से बहुत शीघ्र लाभ होता है। इसमें—रक्त नहीं गिरता और गुदा की बाहरी अवलि में भिगे हुए मटर या मुनक्का के समान मस्से दिखाई पड़ते हैं। इसमें दर्द बहुत होता है। बराबर कब्जियत रहने के कारण टट्टी के समय मल निकालने के लिये काफी जोर लगाना वा काँखना पड़ता है। वादी बवासीर होने का मूल कारण कब्जियत है। ऐसी स्थिति में अग्नि-मुख लौह से बहुत शीघ्र लाभ होता है। क्योंकि यह दीपन-पाचन होते हुये रेचक भी है, जिससे संचित मल को ढीला कर बिना तकलीफ के दस्त साफ लाता है। दस्त साफ आने से वायु निकलती रहती है, फिर मस्से फूलने नहीं पाते और न इसमें दर्द ही होता है, बल्कि मस्से सूख जाते हैं।

पाण्डु और शोथ-रोग में भी तिल्ली बढ़ जाने पर मन्दाग्नि से होने वाले अजीर्ण आदि रोगों में भी इसके उपयोग से काफी लाभ होता है। प्रकुपित वायु और कफ को शान्त करने तथा जठराग्नि को प्रदीप्त करने के लिये इस दवा का उपयोग किया जाता है। यह पाचक पित्त को जागृत कर मन्दाग्नि दूर कर देता है और अन्नादिकों का पाचन अच्छी तरह से करता है।

अग्निमुख मण्डूर

४८ तोले मण्डूर (भस्म) को ८ गुने गोमूत्र में पकावें और पाक के अन्त में उसमें पीपल, पिपला मूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, देवदारु, नागरमोथा, त्रिकुटा, त्रिफला, बायबिडंग, प्रत्येक का कूट-कपड़छान

किया हुआ चूर्ण ४-४ तोला मिला, चना-प्रमाण की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम घी और शहद के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से शोथ (सूजन) और पाण्डु-रोग का नाश होता है।

पाण्डु रोग पुराना हो जाने पर शरीर में जल भाग की वृद्धि हो जाती है, जिससे शरीर फूल जाता है। इसमें भूख नहीं लगती, मन्दाग्नि, अपचन, बद्धकोष्ठता आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। ऐसी दशा में इस मण्डूर के सेवन से शरीर में रक्ताणुओं की वृद्धि हो जल भाग कम हो जाता है।

यह दीपन-पाचन भी है, अतः पाचकपित्त (जठराग्नि) को प्रदीप्त कर मन्दाग्नि दूर करता है, फिर भूख अच्छी तरह लगने लगती है।

अष्टादशांग लौह

चिरायता, देवदारु, दारुहल्दी, नागरमोथा, गिलोय, कुटकी, परबल, जवासा, पित्तपापड़ा, नीम, त्रिकुटा (सोंठ, पीपल, मिर्च), चित्रक, हरड़, बहेड़ा, आँवला और बायबिडंग, सब समान भाग लेकर कूट-कपड़छान कर महीन चूर्ण बना लें। इन सबके समान भाग लौहभस्म मिला घी और शहद के साथ ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —भा० प्र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम छाछ के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—यह मण्डूर पीलिया (कामला), हलीमक और शोथ (सूजन) आदि की अव्यर्थ दवा है। अनेक कटु-तिक्त ओषधियों के साथ लौह का संयोग होने से श्वास, खाँसी, रक्तपित्त, अर्श (बवासीर), संग्रहणी, आमवात, गुल्म, रक्त-विकार, कुष्ठ और कफ के रोग नष्ट होते हैं।

अमृतार्णव लौह

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला और लौहभस्म प्रत्येक सम भाग और सबसे आधी शुद्ध शिलाजीत लें, फिर काष्ठौषधियों का कूट-कपड़छान कर महीन चूर्ण बना, इसमें गिलोय के स्वरस की तीन भावना देकर सुखा कर रख लें। अथवा घी और शहद मिला कर खरल करके ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना सुरक्षित रख लें।

—र० त०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली दिन में दो बार शहद में मिला कर दें।

गुण और उपयोग—यह रक्तशोधक, दीपक, पाचक और शक्ति-बर्द्धक है। इसके सेवन से सब प्रकार के कोढ़, वात-रक्त, अर्श (बवासीर) और उदर-रोगों का नाश होता है।

प्रकुपित वात जब रक्त को दूपित कर देता है तब शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। फोड़ा छोटी-छोटी फुन्सियाँ, लाल-लाल चकत्ते, कोढ़, शरीर में खुजली आदि रोग हो जाते हैं। ऐसी हालत में रक्त शोधन तथा प्रकुपित वायु को शान्त करने के लिए अमृतार्णव लौह का उपयोग करना अच्छा है। क्योंकि इसमें गुर्च-रस की भावना देने से इसमें रक्त-दोष नाशक गुण प्रबल रहता है तथा दीपन-पाचन होने की वजह से वायुनाशक भी है। अतएव वात-रक्त या फोड़ा-फुन्सी के विकार में इस लौह का उपयोग करने से लाभ होता है।

कालमेघ नवायस

सोंठ, पीपर, मिर्च, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, नागरमोथा, बायबिडंग, चित्रक मूल की छाल प्रत्येक का महीन चूर्ण १-१ तोला, लौहभस्म ६ तोला, और कालमेघ का कपड़छान चूर्ण ६ तोला मिला तथा काल-मेघ के क्वाथ की सात भावना दे अच्छी तरह खरल करके सुखा कर रख लें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—३-३ रत्ती सुबह-शाम गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—जीर्णज्वर या विषमज्वर के बाद की दुर्बलता, पाण्डु रोग और यकृत-वृद्धि में यह बहुत लाभप्रद है।

पुराना ज्वर—अधिक दिन तक ज्वर आने से शरीर दुर्बल और कमजोर हो जाता है। इसमें रक्त की कमी के कारण शरीर पाण्डु रङ्ग का हो जाता है, फिर भूख नहीं लगती, दस्त कब्ज हो जाने के कारण मल संचय होकर मन्दाग्नि हो जाती है। कभी रोग की वृद्धि हो, हाथ-पाँव भी सूज जाते हैं, मुँह पर भी सूजन आ जाती है, आँखें कुछ पीली हो जातीं तथा यकृत बढ़ जाता है, कभी-कभी यकृत और तिल्ली (प्लीहा) दोनों बढ़ जाते हैं। ऐसी अवस्था में इस दवा के सेवन से बहुत शीघ्र लाभ होता है। क्योंकि कालमेघ ज्वर नाश करने के लिये बहुत प्रसिद्ध दवा है। मलेरिया के लिये तो यह कुनैन के समान काम करता है, साथ ही ज्वर के कारण उत्पन्न अन्य उपद्रवों को भी यह सहज में ही नष्ट कर देता है। ज्वर बन्द होने के बाद रक्ताणुओं की वृद्धि हो पाण्डु रोग का नाश हो जाता है, साथ ही सूजन भी कम हो जाती है।

कार्श्यहर लौह

सफेद पुनर्नवा, दन्ती, असगन्ध, त्रिफला, त्रिकुटा, बायबिडङ्ग, चीता, नागरमोथा, शतावर और खरैंटी प्रत्येक समान भाग लेकर कूट कपड़छान कर महीन चूर्ण बना लें और समान भाग लौहभस्म लेकर खरल करके रख लें। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—३-४ रत्ती सुबह-शाम, भाँगरे के रस के साथ अथवा शहद से दें।

गुण और उपयोग—यह बल-वीर्यबर्धक, अग्नि-दीपक, वृष्य और रसायन है। इसके सेवन से शरीर में नवीन स्फूर्त्ति व रक्त पैदा होता है तथा दुर्बलता, कमजोरी और रक्त की कमी दूर हो शरीर पुष्ट और बलवान हो जाता है। रस-रक्तादि धातुओं के क्षय हो जाने के कारण जो दुर्बल हो गये हों—ऐसे मनुष्यों के लिए यह लौह बहुत शीघ्र लाभकारक है।

गुडूच्यादि लौह

गिलोय (गुर्च) का सत्त्व, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, वायबिडंग, मोथा और चित्रक प्रत्येक १-१ तोला लें। इनको कूट-कपड़छान कर महीन चूर्ण बनावें और इन सब दवाओं के समान भाग लौहभस्म लेकर एकत्र मिला कर खरल कर रख लें।

—भै० र०

मात्रा और अनुपान—२ रत्ती सुबह-शाम, शहद या दूध के साथ अथवा गुर्च के क्वाथ या धनियाँ के काढ़े के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस लौह के सेवन से वात-रक्त तथा फोड़े-फुन्सी आदि आराम होते हैं। इसमें लौह की प्रधानता से रक्त शुद्ध होकर खून की वृद्धि होती है। पित्तजन्य विकारों में भी यह फायदा पहुँचाता है।

प्रकुपित पित्त के कारण रक्त दूषित होने से शरीर के ऊपर लाल चट्ठे हो जाते हैं, कभी-कभी खुजलाने से भी चट्ठे पड़ जाते हैं। इनमें खुजली विशेष होती है, फोड़े-फुन्सियाँ निकल आती हैं तथा जलन भी होती है। शरीर में गर्मी अधिक बढ़ जाना, प्यास लगना, पेट तथा हाथ-पैरों में जलन, घी या मक्खन आदि शीतल उपचार से शान्त हो जाना, नया खून बनना बन्द हो जाना, इत्यादि उपद्रव होने पर गुडूच्यादि लौह का उपयोग करना चाहिये। यह पित्तशामक और रक्तशोधक भी है।

चन्दनादि लौह

लाल चन्दन, सुगंधवाला, पाठा, खस, पिप्पली, हरड़, सोंठ, लाल कमल, आँवला, बायबिडंग, नागरमोथा, चित्रक प्रत्येक दवा समान भाग लेकर, कूट-कपड़छान कर महीन चूर्ण बना लें। इन चूर्णों के सम भाग लौहभस्म मिला खरल कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—४ रत्ती, सुबह-शाम गुडूची सत्त्व और मधु से तथा ज्वर-रोग में, नेत्रों की जलन, शिर दर्द और चक्कर आने में मिश्री तथा मक्खन के साथ दें।

गुण और उपयोग—लौह का यह सौम्य योग है। बार-बार आनेवाला पारी का ज्वर, विषमज्वर तथा जीर्णज्वर में इसका अच्छा असर होता है। यह पाचन-विकार को ठीक करके बढ़ी हुई रक्त की गति को ठीक कर देता है। नेत्रदाह (आँखों में जलन), शिर में दर्द, प्रदाह और पित्त जन्य विकारों में यह सौम्य गुणयुक्त होने से बहुत कार्य करता है। यकृत और प्लीहा-रोग में भी यह बहुत अच्छा काम करता है। यह जीर्ण ज्वर की प्रसिद्ध दवा है।

चन्द्रामृत लौह

सोंठ, पीपर, कालीमिर्च, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, धनियाँ, चव्य, जीरा और सेंधानमक प्रत्येक का चूर्ण १-१ भाग तथा मैनसिल द्वारा भस्म किया हुआ लौहभस्म सबके बराबर लेकर एकत्र खरल कर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। ——र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान——१-१ गोली सुबह-शाम नीलकमल के रस, कुलथी-क्वाथ या शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग——इसके सेवन से सब प्रकार की खाँसी, श्वास, ज्वर, भ्रम, दाह, तृष्णा, शूल और जीर्ण-ज्वर का नाश होता है तथा अरुचि, जठराग्नि और बल-वर्ण की वृद्धि होती है।

इस लौह का गुणधर्म चन्द्रामृत रस के सदृश ही है। अन्तर इतना है कि इसमें लौह-भस्म विशेष मात्रा में पड़ने से यह रक्त बढ़ाता और बल-वर्ण की वृद्धि करता है।

ताप्यादि लौह

हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रक-मूल, बायबिडंग, प्रत्येक २॥-२॥ तोला, नागरमोथा १॥ तोला, पीपलामूल, देवदारु, दारुहल्दी, दालचीनी, चव्य प्रत्येक १-१ तोला, शुद्ध शिलाजीत, स्वर्णमाक्षिकभस्म, रौप्यभस्म, लौहभस्म प्रत्येक १०-१० तोला, मण्डूरभस्म २० तोला, मिश्री ३२ तोला——सबको बारीक पीसकर छान लें। ——आ० प्र०

मात्रा और अनुपान—३-३ रत्ती, दिन में दो बार, मूली के रस या गोमूत्र के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से पाण्डु, कामला, यकृत् एवं प्लीहा के विकार, रक्त की कमी, सूजन, स्त्रियों के मासिक धर्म की गड़बड़ी आदि रोग अच्छे होते हैं। मलेरिया के बाद उत्पन्न एनीमिया की यह सबसे अच्छी दवा है। इससे खून की वृद्धि होकर शरीर की सब इन्द्रियाँ बलवान हो जाती हैं। बालकों के धनुर्वात एवं बालग्रह के लिये भी अत्युपयोगी है।

पाण्डु रोग—अधिक दिन बुखार आने या शीतज्वर—जाड़ा देकर बुखार आते रहने से शारीरिक रस-रक्तादि धातु एवं वात-पित्त, कफ तथा इनके सहायक इन्द्रियों की शक्ति का क्षय हो जाने से शरीर की कान्ति ही बिगड़ जाती है। यथा—रक्त की कमी से शरीर पर कुछ-कुछ पीलापन, हृदय कमजोर, जठराग्नि मन्द, पाचन क्रिया में गड़बड़ी, शरीर कमजोर हो जाना, रक्ताणुओं की कमी के कारण शरीर में जल-भाग की वृद्धि होने से शरीर पर शोथ, त्वचा रूक्ष और फीका हो जाना, रक्त का संचार अच्छी तरह न होने से मन अनुत्साहित बना रहना, किसी काम में मन न लगना, न किसी काम को करने की इच्छा ही होना, यहाँ तक कि उठने-बैठने में भी आलस्य जान पड़ना, हृदय में घबड़ाहट, मुँह, हाथ, पैर, गाल और आँखों में सूजन इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में ताप्यादि लौह के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होते देखा गया है। क्योंकि इस दवा का असर जठराग्नि, हृदय और रक्त पर विशेष होता है। इसके सेवन से ज्वर के कीटाणु दूर हो जाते और पाचक पित्त उत्तेजित होकर जठराग्नि को प्रदीप्त कर देता है, जिससे खाये हुए पदार्थों का पाचन अच्छी तरह होने लगता है। फिर उत्तम रस-रक्तादि बन कर रक्ताणुओं की वृद्धि हो, शरीरस्थ दूषित जल भाग सूख जाने पर शोथ भी नष्ट हो जाता और शारीरिक शक्ति की भी वृद्धि होने लगती हैं। शरीर में एक प्रकार की नवीन स्फूर्ति पैदा हो जाती तथा रोगी बहुत शीघ्र स्वस्थ हो जाता है।

कामला रोग—पाण्डुरोगावस्था में गर्म पदार्थ अर्थात् पित्त बढ़ाने वाले पदार्थों के सेवन करने से पित्त प्रकुपित हो, मांस और रक्त को दूषित कर कामला रोग उत्पन्न करता है। इसमें—सम्पूर्ण शरीर तथा आँखें, मल, मूत्र और त्वचा पीली हो जातीं, कभी-कभी मल का रंग सफेद हो जाता, दस्त पतला और कफ विशेष होने से झाग (फेन) युक्त आता है। अन्न में अरुचि, मन्दाग्नि आदि लक्षण हो जाते हैं, ऐसी हालत में ताप्यादि लौह का उपयोग करना बहुत लाभदायक होता है। क्योंकि यह लौह सौम्य गुणप्रधान अर्थात् पित्त शामक, अग्नि प्रदीपक और रक्ताणुवर्द्धक होने के कारण कामला में बहुत शीघ्र लाभ करता है। परन्तु जिस कामला में यकृत विकृत होकर कमजोर पड़ गया हो, उसमें लौह का असर कम होता है।

प्रमेह रोग—शारीरिक कमजोरी से अथवा बुढ़ापे में जब शारीरिक इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, तब मूत्र-पिण्ड भी कमजोर हो जाता है, जिससे बार-बार पेशाब करना पड़ता है, साथ ही रक्त भी कभी-कभी विकृत हो जाता है, जिससे प्रमेह पिड़का आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। इन विकारों को दूर करने के लिये ताप्यादि लौह का उपयोग करना अच्छा है। क्योंकि इसमें शिलाजीत का भी मिश्रण है जो रक्तशोधक और मूत्राशय को बल देने वाला तथा शक्तिवर्द्धक है। यह दीपन-पाचन भी है।

आँतों की निर्बलता दूर करने के लिये भी इसका प्रयोग किया जाता है। आँतों की निर्बलता के कारण ही दस्त कब्ज हो जाता है जिससे मन्दाग्नि, भूख न लगना, अरुचि, मल-संचय आदि विकार उत्पन्न होते हैं, ऐसी अवस्था में यदि विरेचक ओषधियों द्वारा मल संचय दूर करने का प्रयत्न किया जाय, तो सर्वथा निष्फल हो जाता है, क्योंकि विरेचक औषधियाँ आँतों को और कमजोर बना देती हैं। परिणाम यह होता है कि वह ओषधि पेट में ही रह जाती और वहाँ सड़ कर एक प्रकार की दूषित गैस की उत्पत्ति कर देती है, जिससे आम संचय और बढ़ जाता तथा साथ ही बद्धकोष्ठता भी

हो जाती है। ऐसी स्थिति में इस तरह की दवा का आयोजन करना अच्छा होता है, जो आँतों को बलवान बना उत्तेजित करे। इस कार्य के लिये ताप्यादि लौह बहुत उपयोगी है। यह धीरे-धीरे आँतों को सबल बना देता और संचित मल को भी पिघला कर निकाल देता है, फिर क्रमशः आँते सबल हो जातीं और मल-संचय दूर हो, बद्धकोष्ठता का नाश हो जाता है।

कभी-कभी पित्त-प्रकोप के कारण फुफ्फुसों के भीतर दाह उत्पन्न हो जाती है, इसमें हृदय कमजोर हो जाता और कफ सूख कर छाती में बैठ जाता है और सूखी खाँसी होने लगती है। कभी-कभी तो प्रकुपित पित्त के कारण जलन इतनी बढ़ जाती है कि कितना भी पानी पिया जाय, तृप्ति ही नहीं होती। इसमें सूखी खाँसी देर तक होती रहती है। खाँसते-खाँसते पित्त वमन द्वारा निकलने पर कुछ देर के लिये शान्ति मिल जाती है। ज्यादे खाँसी होने की वजह से मुँह की नसें फूल सी जाती हैं, जिससे चेहरा लाल--उभरा हुआ (फूला हुआ) मालूम पड़ता है। ऐसी दशा में ताप्यादि लौह, च्यवन-प्राश और सितोपलादि चूर्ण घी अथवा दाड़िमावलेह या शर्बत अनार के साथ देना चाहिये।

शोथ रोग--किसी रोग के कारण या स्वतन्त्र रूप से ही शरीर में रक्त की कमी से शरीर सूज गया हो, तो ताप्यादि लौह के उपयोग से रक्ताणु की वृद्धि हो, शरीर का जल भाग सूख कर शोथ दूर हो जाता है। --औ० गु० ध० शा०

तारा मण्डूर

बायबिडंग, चित्रक, चव्य, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल प्रत्येक १-१ तोला, मण्डूर भस्म ६ तोला लेकर ७ छटाँक १ तोला गोमूत्र और ३।। छटाँक ६ माशा गुड़ सबको एकत्र मिला-कर मन्दाग्नि पर पकावें। जब गाढ़ा हो जाय तब १-१ माशे की गोलियाँ बना, सुखा कर सुरक्षित रख लें। --भं० र०

मात्रा और अनुपान--१-१ गोली भोजन के पहले और भोजन के बाद शीतल जल से दोनों समय सेवन करें।

गुण और उपयोग—इसका उपयोग विशेष कर पक्तिशूल (भोजन पचने के समय जोरों से पेट में दर्द होना), पाण्डु (पीलिया), कामला, शूल, हाथ-पैर और सारे शरीर में सूजन, मन्दाग्नि, बवासीर, ग्रहणी, गुल्म, अम्लपित्त आदि रोगों में होता है। परिणाम शूल में भी इससे काफी लाभ होता है।

त्रिफलादि लौह

त्रिफला (आँवला, हर्रे, बहेड़ा), मोथा, सोंठ, पीपल, मिर्च, वायविडंग, पोहकरमूल, वच, चित्रक और मुलेठी प्रत्येक का कपड़छान चूर्ण ८-८ तोला, लौहभस्म तथा शुद्ध गुग्गुल ३२-३२ तोला लें। सबको एकत्र कूट कर ४८ तोला शहद मिला १-१ माशे की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, आमवात में दशमूल क्वाथ के साथ, पाण्डुरोग में गोमूत्र के साथ तथा परिणाम शूल में गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से दुःसाध्य आमवात, पाण्डु-रोग, हलीमक, परिणाम शूल, शोथ और ज्वर आदि नष्ट होते हैं।

आमवात की उग्रावस्था में, जब गाँठों में सूजन और दर्द जोरों से हो रहा हो, दस्त की कब्जियत, सम्पूर्ण शरीर में जकड़न, रक्त की गति में बाधा, वातवाहिनी नाड़ियों में विकृति आदि उपद्रव होने पर इस दवा का प्रयोग करने से अच्छा और शीघ्र लाभ होता है। क्योंकि इसमें त्रिफला और त्रिकुटा का मिश्रण होने से यह बद्धकोष्ठता (कब्जियत) को दूर कर आमदोष को पचाता है तथा अग्नि प्रदीप्त करता है। गुग्गुलु प्रकुपित वायु (वातवाहिनी नाड़ियों की विकृति) को शमन करता है। इसमें लौहभस्म है, अतएव इससे रक्त-संचालन क्रिया अच्छी तरह होने लगती है। इस लौह का प्रधान कार्य प्रकुपित वात को शमन कर रक्त की कमी की पूर्ति करना है। यह बल-वीर्य बर्द्धक भी है।

त्रिफलादि मण्डूर

मण्डूरभस्म और त्रिफला के महीन चूर्ण को समान भाग लेकर एकत्र खरल करके रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—२-४ रत्ती, सुबह-शाम १ माशा घी और ३ माशा शहद एकत्र मिला कर इसके साथ दें।

गुण और उपयोग—यह मण्डूर अम्लपित्त रोग में उत्पन्न होनेवाले दर्द के लिये अच्छा है। इसके सेवन से पाण्डु, कामला, कब्ज आदि रोग अच्छे हो जाते हैं। विशेष कर प्लीहा की क्रिया को यह ठीक करता है। मलेरिया ज्वर के कारण बढ़ी हुई प्लीहा-वृद्धि और ज्वर को दूर करता है।

त्र्यूषणादि मंडूर

सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, बायबिडंग, चव्य, चित्रक, दारुहल्दी की छाल, सोनामाखी भस्म, पीपला मूल और देवदारु प्रत्येक का कपड़छान किया हुआ चूर्ण ८-८ तोला लें। इन दवाओं से दुगुना मण्डूरभस्म लेकर ८ गुने गोमूत्र में पकावें। गाढ़ा होन पर उसमें उपरोक्त चूर्ण मिला कर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर सुरक्षित रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम मधु या गोमूत्र से दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से पाण्डु, कुष्ठ, शोथ, उदररोग, उरुस्तम्भ, कफ, अर्श, कामला, प्रमेह और प्लीहा का नाश होता तथा इसके सेवन से शरीर में नवीन खून की उत्पत्ति भी होती है।

पाण्डुरोगी के लिये यह महौषध है। पाण्डुरोग में अन्न पर अरुचि, ज्वर, जी मिचलाना, विशेष प्यास लगना, देह में थकावट मालूम होना, सूजन, हृदय की कमजोरी, नाड़ी की गति मन्द हो जाना आदि लक्षण उत्पन्न होने पर त्र्यूषणादि मण्डूर के उपयोग से आशातीत लाभ होता है।

त्र्यूषणादि लौह

सोंठ, पीपल, काली मिर्च, भाँग, चव्य, चित्रक, विड्लवण, काला नमक, साँभर नमक, बावची और सेंधानमक प्रत्येक का कपड़-

छान किया हुआ चूर्ण १-१ भाग और लौहभस्म इन सब दवाओं के बराबर लेकर सबको एकत्र खरल कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—२ से ४ रत्ती सुवह-शाम शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस लौह के सेवन करने से स्थूलता (मोटापन), प्रमेह और कुष्ठरोग नष्ट होता है तथा बल-वर्ण और जठराग्नि की भी वृद्धि होती है। यह वायुशामक तथा वात-विकार को दूर करने वाला है।

स्थूलता में—स्निग्ध (चिकना), मधुर (कफवर्द्धक) पदार्थों के सेवन करने से शरीर में चर्बी बढ़ जाती है। इसकी वृद्धि स्त्रियों में अधिक होती है, जिससे उन्हें सन्तानादि होना भी बन्द हो जाता है। क्योंकि चर्बी ज्यादे बढ़ जाने से गर्भाशय का मुँह बन्द हो जाता है। फिर गर्भधारण ही नहीं होता। पुरुष में यदि चर्बी बढ़ जाती है तो पेट, स्तन तथा चूनड़ आदि माँसल अंगों की वृद्धि हो जाती है, जाँघें मोटी हो जाती हैं, जिससे चलने में तकलीफ होती है। किसी-किसी को तो मोटापन इतना बढ़ जाता है कि वह अपने हाथ से आवदस्त (शौच) भी नहीं कर पाता है। जिसकी चर्बी बढ़ी हुई रहती है, वह मनुष्य भीतर से कमजोर रहता है। थोड़े ही परिश्रम करने पर हाँफने लगता है। ज्यादा मोटा होना भी रोग ही है। अतः इस मोटापन को दूर करने के लिये त्र्यूषणादि लौह का उपयोग करना चाहिए। इससे वादी छटने लग जाती है और चर्बी विशेष नहीं बन कर रक्त ही बनने लगता है। परन्तु इस दवा के सेवन-काल में जौ और चना की रोटी मात्र ही खाने को दें। भात या पूड़ी आदि स्निग्ध और कफवर्द्धक पदार्थ बिलकुल बन्द कर दें।

धात्री लौह

आँवले का चूर्ण ३२ तोला, लौहभस्म १६ तोला, मुलैठी चूर्ण ८ तोला लेकर सबको गिलोय के क्वाथ की ७ भावना दे, खरल करके,

तेज धूप में सुखा (या ३-६ रत्ती की गोलियाँ बना) रख लें।

-भै० र०

मात्रा और अनुपान---३-६ रत्ती भोजन के पहले और अन्त में घी या शहद के साथ सेवन करना चाहिये।

गुण और उपयोग---यह परिणाम शूल (खाने के बाद पेट में दर्द होना), पक्तिशूल (भोजन पचने के समय पेट में दर्द होना), अजीर्ण, अम्लपित्त, कब्ज, गले में जलन, खट्टी डकारें आना आदि पैत्तिक रोगों में बहुत शीघ्र लाभ करता है। इसके सेवन से पाचन-विकार अच्छा होता है तथा नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। बालकों के लिये भी यह बहुत हितकर है।

नवायस मंडूर (लौह)

सोंठ, पीपल, काली मिर्च, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, वायविडङ्ग और चित्रक मूल की छाल प्रत्येक का कपड़छान चूर्ण १-१ तोला और लौहभस्म या मण्डूर भस्म ९ तोला लेकर सबको एकत्र कर ३ दिन खरल करके रखें। ---सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान---१-१ माशा सुबह-शाम घी या शहद अथवा छाछ या गोमूत्र के साथ दें। रक्त की कमी में दूध से, कृमि-रोग में बायबिडंग के चूर्ण और मधु से, हृद्रोग में अर्जुन के क्वाथ से तथा पाण्डुरोग में पुनर्नवा-स्वरस और मधु से दें।

गुण और उपयोग---यह लौहकल्प पाचक, दीपक, रसायन और रक्तवर्द्धक है। इसके सेवन से रक्ताणुओं की वृद्धि होती और रक्तगति का कार्य भी ठीक-ठीक होने लगता है। प्लीहा के दोष से या पेट की खराबी से होने वाले बुखार में इस दवा से अच्छा लाभ होता है। इसके सेवन से जठराग्नि तेज होती तथा प्लीहा की विकृति दूर होती है। बच्चों में प्लीहा की वृद्धि बहुत जल्दी हो जाती है जिससे बच्चा सूखने लगता है, उसके हाथ-पाँव सूखने लगते हैं, पेट कुछ आगे निकल आता है, ज्वर बराबर रहता है तथा दिन प्रति दिन कमजोरी बढ़ती ही जाती है। ऐसी हालत में यह

दवा अमृत के समान गुण करती है। शोथ, पाण्डुरोग, मन्दाग्नि, अर्श, उदर रोग, हृदय रोग, कृमि, भगन्दर आदि रोगों में इससे बहुत लाभ होता है। इसके सेवन से यकृत् की क्रिया ठीक होकर पाचक और रंजक पित्त की निर्माणक्रिया नियमित रूप से होने लगती है। अतएव शोथ और रक्त की कमी में इसका उपयोग विशेष किया जाता है।

प्रदरान्तक लौह

लौहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध हरताल, वंगभस्म, अभ्रकभस्म, कौड़ीभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, चित्रकमूल, बायबिडङ्ग, पाँचों नमक, चव्य, पीपल, शंख भस्म, वच, हाऊबेर, कूठ, कचूर, पाठा, देवदारु, इलायची और विधारा—सब चीजें समान भाग लेकर काष्ठौषधियों का कपड़छान चूर्ण बना, उसमें अन्य भस्में मिलाकर, सबको एकत्र खरल कर, पानी के साथ घोट कर, ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, सुबह-शाम मिश्री, घृत तथा शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह रक्त और श्वेतप्रदर, कुक्षि, कटि और योनि शूल, अरुचि, मन्दाग्नि आदि को नष्ट कर मासिक धर्म साफ लाता है। पुराने एवं कष्टसाध्य प्रदर भी इसके सेवन से नष्ट हो जाते हैं। गर्भाशय एवं बीज-कोष की शिथिलता में इसका उपयोग करने से बहुत लाभ होता है।

प्रदर रोग—पुराना हो जाने पर स्त्रियों के अङ्ग में रक्त की कमी होकर, देह पीली हो जाती, मन्दाग्नि, भूख नहीं लगना, कमजोरी, थोड़े ही परिश्रम से हाँफने लगना, गर्भाशय और डिम्ब (बीज-कोष) की कमजोरी से गर्भ धारण नहीं होना, बराबर स्राव होते ही रहना आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में प्रदरान्तक लौह के उपयोग से बहुत लाभ होता है। इससे गर्भाशय तथा बीज-कोष सशक्त होकर स्राव रुक जाता है और शरीर में नवीन रक्त पैदा होने लगता है।

प्रदरारि लौह

५ सेर कुटज की छाल को जौकुट करके ३२ सेर पानी में पकावें और ४ सेर पानी शेष रहने पर छान कर उसे पुनः पकाकर गाढ़ा करें, फिर उसमें मजीठ, मोचरस, पाठा, बेलगिरी, नागरमोथा, धाय के फूल और अतीस का कपड़छान किया हुआ चूर्ण ४-४ तोला, अभ्रक और लौह भस्म ४-४ तोला मिला, गाढ़ा होने पर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बनाकर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, प्रदर रोग में अशोक-छाल के क्वाथ से और रक्त-पित्त तथा खूनी बवासीर में मक्खन, मिश्री या बासा-स्वरस के साथ देना चाहिये।

गुण और उपयोग—रक्त-स्राव को रोकने के लिये केवल लौह-भस्म ही काफी है। परन्तु अन्य रक्तरोधक यथा—कुटज छाल, मोचरस आदि दवाओं के संमिश्रण से यह बहुत ही गुणकारी दवा बन जाती है। अतएव रक्तप्रदर में इससे शीघ्र लाभ होता है। रक्त-पित्त और रक्तार्श (खूनी बवासीर) में भी इससे लाभ होता है। रक्तस्राव से उत्पन्न हुई निर्बलता, अरुचि आदि इससे नष्ट होते हैं।

प्रदर रोग में तो इसका उपयोग किया ही जाता है, किन्तु ; इसके साथ ही रजो विकार (मासिक धर्म की विकृति) में भी उपयोग करने से लाभ होता है। कभी-कभी रक्त की कमी से या प्रकुपित वायु के कारण स्त्रियों को रजःस्राव के समय कई तरह के उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। यथा—मासिक धर्म होने के समय कमर और कोष्ठ में दर्द का होना। यह दर्द इतने जोरों का होता है कि कमजोर औरत तो कभी-कभी बेहोश हो जाती है। अथवा रक्ताल्पता के कारण मासिक धर्म ठीक समय पर उचित मात्रा में न होना, या किसी-किसी को मासिक धर्म बहुत कठिनता के साथ होता है। इसमें भूख नहीं लगना, कमजोरी, पेट में दर्द और मन्दाग्नि हो जाना आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी दशा में प्रदरारि लौह देने से बहुत गुण करता है।

रक्तपित्त और खूनी बवासीर में होने वाले रक्तस्राव को बन्द करने के अनेक उदाहरण मिले हैं। ज्यादा रक्त-स्राव होने से शरीर पाण्डु वर्ण का हो गया हो, कमजोरी, काम करने की शक्ति न हो, मन उत्साहरहित, अपने जीवन से निराश हो जाना, मन अप्रसन्न रहना, थोड़ा भी खून बनने पर सब निकल जाना, ऐसी हालत में भी प्रदरारि लौह द्वारा अनेक रोगी अच्छे हुए हैं।

पिप्पल्यादि लौह

छोटी पीपल, आँवला, मुनक्का, बेर की गुठली की गिरी, शहद, मिश्री, बायविडङ्ग, पोहकर मूल प्रत्येक १-१ भाग तथा लौह भस्म इन सब दवाओं के समान भाग (८ तोला) लेकर काष्ठौषधियों का कपड़छान चूर्ण बना, सबको एकत्र मिला कर रखें या पान के रस में घोट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली दिन में २-३ बार शहद और बहेड़े की मींगी के चूर्ण के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह कास, श्वास, हिचकी, वमन आदि रोगों को नाश करने के लिये अत्युत्तम दवा है। छाती में कफ जमा होकर बैठ जाने से बहुत खाँसने पर थोड़ा-सा कफ निकलता है, जिससे रोगी को बड़ी परेशानी होती है। ऐसी हालत में इसकी २-३ मात्रा देने से शीघ्र लाभ होता है।

यह दवा वात-पित्त प्रधान रोगों में विशेष उपयोगी और गुण-दायक है। प्रकुपित वात या पित्त—कफ को सुखा कर छाती में बैठा देता है, जिससे सूखी खाँसी आने लगती है। इसमें खाँसी का वेग थोड़ी-थोड़ी देर बाद आता है। खाँसते-खाँसते आँखें सूर्ख (लाल) हो जाती हैं, चेहरा तमतमा जाता है, साँस फूलने लगती है, प्यास की अधिकता, शीतल पदार्थ खाने की विशेष इच्छा आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी परिस्थिति में पिप्पल्यादि लौह को प्रवाल चन्द्र पुटी में मिला कर देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। इससे कफ पिघल कर खाँसी के साथ निकलने लग जाता है, साथ ही पित्त

भी शान्त हो जाता है। लगातार कुछ दिनों तक सेवन करने से खाँसी जड़ से चली जाती है।

पुनर्नवादि मंडूर

पुनर्नवा, निसोथ, सोंठ, पीपल, मिर्च, बायबिडङ्ग, देवदारु, चित्रक, पोहकरमूल, हल्दी, दारुहल्दी, दन्तीमूल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, चव्य, इन्द्र जौ, कुटकी, पीपलामूल और नागरमोथा प्रत्येक १-१ तोला तथा शुद्ध मण्डूर ४० तोला लेकर गोमूत्र में पका कर पुनर्नवा आदि के चूर्ण का प्रक्षेप दें। जब गाढ़ा हो जाय तो उसे घी लगे हाथ से ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना सुरक्षित रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम शोथ रोग में गोमूत्र के साथ, पाण्डु रोग में पुनर्नवा स्वरस के साथ और उदर रोग में जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—मण्डूर और पुनर्नवा का यह रासायनिक योग शरीर में खून को बढ़ाता, सूजन को नष्ट करता तथा आँतों को बलवान बनाता है।

यह समूचे शरीर की सूजन को नष्ट कर दता है। इसके प्रयोग से दस्त और पेशाब की क्रिया ठीक-ठीक होती तथा रक्त की गति नियमित होकर शरीर में नया रक्त पैदा होना है। सूजन, पेट के रोग, प्लीहा, बवासीर, कृमि, वातरक्त, कफ, खाँसी और आन्त्रिक क्षय में इससे अधिक लाभ होता है। इसका उपयोग शोथ रोग में विशेष किया जाता है

शोथयुक्त पाण्डु रोग में—पाण्डु रोग के पुराना हो जाने पर शरीर में जल भाग की वृद्धि से कफ-दोष बढ़ जाता है, साथ ही वायु भी प्रकुपित हो जाता है। जिससे —शरीर में सूजन, मन्दाग्नि, बद्धकोष्ठता, अन्न में अरुचि, मल संचय से पेट आगे को निकला हुआ, हाथ, पाँव और मुंह पर सूजन की विशेषता, पेट में दर्द, प्लीहा-वृद्धि ज्वर भी रहना, कमजोरी, रक्ताल्पता से शरीर पाण्डु वर्ण का हो जाना आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में पुनर्नवादि

मण्डूर के सेवन से बहुत लाभ होता है। इससे सवप्रथम बद्धकोष्ठता (कब्जियत) दोष दूर हो, दस्त पिघल कर आने लगते हैं और आँतें भी सबल बन जाती हैं। रक्ताणुओं की वृद्धि हो, शरीर के जल भाग सूखकर सूजन नष्ट हो जाती है। क्रमशः ज्वर प्लीहादि विकार भी धीरे-धीरे कम होने लग जाते हैं। इस तरह कुछ ही दिनों में रोगी स्वस्थ हो जाता है।

वरुणाद्य लौह

वरने की छाल और आँवला ८-८ तोला, धाय के फूल ४ तोला, हर्रे २ तोला, पृश्निपर्णी १ तोला, लौहभस्म १ तोला और अभ्रक-भस्म १ तोला लेकर (या वरने की छाल के क्वाथ में खरल कर ५-५ रत्ती की गोलियाँ बना) सुखा, सुरक्षित रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, सुबह-शाम पथरी रोग में कुलथी का काढ़ा और यवक्षार =) भर के साथ। मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्र में गोखुरू जल या तृण पंचमूल क्वाथ के साथ और सूजाक में दूध या दही की लस्सी अथवा कच्चे नारियल के जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—अश्मरी (पथरी), मूत्रकृच्छ्र, सूजाक आदि रोगों में पेशाब न होने के कारण असह्य वेदना पैदा होती है और रोगी कष्ट से चिल्लाने लगता है। उस समय इस दवा के सेवन से लाभ होता है।

इस दवा का असर मूत्राशय और मूत्र-नली पर होता है। यह मूत्रल है। किसी भी कारण से पेशाब रुक गया हो या पेशाब की नली में गड़बड़ी हो जाने के कारण पेशाब रुक गया हो, तो इस दवा को उचित अनुपान के साथ देने से तुरत लाभ होता है। विसूचिका में भी यह पेशाब खुल कर लाता है।

बालयकृदरि लौह

सहस्रपुटी अभ्रकभस्म, लौहभस्म, पारदभस्म (रससिंदूर), जम्बीरी नीबू के बीज, अतीस, सरफोंका की जड़, लाल चन्दन, पाषाणभेद प्रत्येक समान भाग लेकर, महीन चूर्ण बना, गिलोय (गुर्च)

के रस में घोटकर २-२ चावल की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।

—आ० वे० वि०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम मधु (शहद) अथवा माँ के दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह लौह बच्चे के कष्टसाध्य यकृत्-प्लीहा, ज्वर, शोथ, विबंध (कब्जियत), पाण्डु, खाँसी, मुखरोग, मुख के छाले और उदर रोगों को नष्ट करता है।

बाल यकृत्—विकृत् दूध पीने, छोटी अवस्था से ही अन्नादि खिलाने अथवा बचपन में मिश्री, चीनी, लड्डू आदि विशेषतया देने से बालकों का यकृत् बढ़ जाता है। बच्चों को यह रोग बहुत सरलता से तथा जल्दी हो जाता है, क्योंकि बाल्यावस्था में बच्चों का यकृत बड़ा और बहुत नरम रहता है। अतएव थोड़ा-सा भी अपच हो जाने पर उसमें तुरत विकृति या रोग उत्पन्न हो जाते हैं। फलतः बच्चा सूखने लगता है। रक्त की कमी से हाथ-पाँव सूखने लग जाते हैं तथा बच्चे का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। जिधर यकृत रहता है, उसीके बल जमीन पर बच्चे को लेटने की इच्छा होती है। अवसर पाकर वह जमीन पर लेट भी जाता है। पेट आगे को निकला हुआ मालूम पड़ता है, ज्वर बराबर रहता है, दस्त पतले होते हैं—ऐसी अवस्था में बाल यकृदरि लौह देने से बहुत लाभ होता है। क्योंकि; इससे यकृद्वृद्धि अथवा यकृत की विकृति यथाशीघ्र ही रुक जाती है और इसमें रससिन्दूर तथा अभ्रक और लौहभस्म के मिश्रण से यह रसायन बच्चों के लिये अमृत के समान गुणदायक बन जाता है। कफ-दोष या ज्वरादिक दोष भी इसके सेवन से दूर होकर बच्चा बहुत शीघ्र हृष्ट-पुष्ट हो जाता है।

विडङ्गादि लौह

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, काली मिर्च, जायफल, लौंग, पीपल, शुद्ध हरताल, सोंठ, सुहागा १-१ तोला, लौहभस्म ९ तोला और बायबिडंग चूर्ण १८ तोला लें। प्रथम पारा-गंधक की कज्जली

बना, फिर उसमें अन्य औषधियों का बारीक चूर्ण मिलाकर बायबिडंग-क्वाथ के साथ खरल करके ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

—र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम खुरासानी अजवायन के क्वाथ या प्याज के रस अथवा गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से उदर-कृमि, अर्श, अरुचि, मन्दाग्नि, विसूचिका (हैजा), शोथ, शूल, ज्वर, हिक्का, कास और श्वास का नाश होता है। कृमि रोग में इसका विशेषतया उपयोग किया जाता है।

मधु-मण्डूर

१ सेर शुद्ध मण्डूर को कूट कपड़छान कर एक पहर त्रिफला के क्वाथ में घोट कर गोला बना, शराब-सम्पुट में बन्द कर लघुपट में फूंक दें। इस तरह त्रिफला-क्वाथ, गोमूत्र, घृतकुमारी-रस और पंचामृत (गोखरू, मुण्डी, गिलोय, मूसली और शताबर का समान भाग चूर्ण) का क्वाथ प्रत्येक की २१-२१ भावना देकर लघुपुट में फूंकते जायँ। इस तरह पुट देने के बाद महीन पीस कर रख लें या त्रिफला के क्वाथ में घोटकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, सुरक्षित रख लें।

—यो० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, पीपल के चूर्ण और शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग—पाण्डु रोग जब किसी दवा से अच्छा नहीं होता, तब इसका उपयोग किया जाता है। पाण्डु रोग के लिये यह अव्यर्थ औषध है। इसका प्रभाव अचिन्त्य है तथा अनुपान भेद से यह अनेक रोगों का नाश करता है।

अधिक दिन तक ज्वर आते रहने से शरीर में रक्त की मात्रा
जाती है, यकृत और प्लीहा भी बढ़ जाती है। रक्त का भाग
शुद्ध बन कर जल-भाग ही विशेष मात्रा में बनने लगता है।
कुटकी, आ भाग विशेष होने से रोग प्रतिरोधक शक्ति धातु में नहीं

रह जाती, अतः अनेक प्रकार के उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। देह सूज जाना, बद्धकोष्ठ हो जाना, मन्दाग्नि, शरीर में आलस्य, शरीर का रंग पाण्डु वर्ण का हो जाना आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी दशा में मधुमण्डूर सेवन से अच्छा लाभ होता है।

मण्डूर वटक

पुनर्नवा, निसोथ, सोंठ, मिर्च, पीपल, बायबिडंग, देवदारु, चित्रक, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, दन्तीमूल, चव्य, इन्द्रजौ, कुटकी, पीपलामूल, नागरमोथा—प्रत्येक ४-४ तोला तथा इन सब दवाओं से दूनी मण्डूरभस्म लेकर २ सेर गोमूत्र में मन्दाग्नि पर पकावें। जब गाढ़ा हो जाय, तब ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, सुबह-शाम गोमूत्र या छाछ के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह पाण्डु, कामला, यकृत्-प्लीहा-वृद्धि, शोथ, प्रमेह, बवासीर, कफ-विकार, अजीर्ण आदि रोगों को नाश करता है। इससे रक्त की वृद्धि हो शरीर बलवान हो जाता है।

यकृत्-प्लीहारि लौह

हिंगुलोत्थ पारद, शुद्ध गंधक, लौह भस्म और अभ्रकभस्म १-१ भाग, ताम्रभस्म २ भाग, शुद्ध मैनसिल, हल्दी का चूर्ण, शुद्ध जमालगोटा, सुहागे की खील और शिलाजीत १-१ भाग लेकर सबको एकत्र मिलावें। फिर उसे दन्तीमूल, निसोथ, चित्रक, सम्भालू, त्रिकुटा, अदरक और भाँगरा इनके रस की पृथक्-पृथक् एक-एक भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।

—भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, सुबह-शाम गोमूत्र ... के साथ दें। ...पल,

गुण और उपयोग—इसके सेवन से पुराना यकृ... और ... रोग, उदर रोग, पेट फूलना, ज्वर, पाण्डु, कामला, श...कज्जली

अग्निमान्द्य और अरुचि का नाश होता है। यकृत रोग में इसका विशेष रूप से उपयोग किया जाता है।

यकृत् रोग—शरीर में यकृत्-जैसा दूसरा उपयोगी यन्त्र नहीं है। यकृत-रोग शुरू होते ही जाड़ा देकर बुखार आने लगता है। कुछ दिनों के बाद बुखार तो शान्त हो जाता है किन्तु; यकृत रोग बना ही रह जाता है। क्रमशः रोग पुराना होने पर यकृत कठोर और पहले की अपेक्षा बड़ा भी हो जाता है। यकृत्स्थान को दबाने से दर्द होना, परिश्रम करने से यकृत में दर्द होना, साथ ही मन्द-मन्द ज्वर बना रहना, आँव सहित मल आना, मुँह का स्वाद खराब हो जाना आदि लक्षण होते हैं। कब्जियत रहना और पेट में वायु भरना इस रोग के खास लक्षण हैं। जब रोग बढ़कर भयानक रूप धारण कर लेता है,तब यकृत में फोड़ा होकर यकृत-संकोचन हो, रोगी की मृत्यु तक भी हो जाती है। इस रोग की उत्पत्ति पुराने मलेरिया-बुखार, क्वीनीन आदि से होती है। आज कल शहरों में खान-पान की अनियमितता भी इस रोग की उत्पत्ति का प्रधान कारण है। दो-तीन वर्ष से ले कर ५-७ वर्ष तक की आयु वाले बच्चे को भी यह बीमारी हो जाती है, जिससे रोगी (बच्चे) के हाथ-पैर सूजने लगते हैं। शरीर में खून कम हो जाता और आँखें सफेद तथा रक्तहीन हो जाती हैं। ऐसी अवस्था में यकृत प्लीहारि लौह देने से बहुत फायदा होता है। क्योंकि यकृत रोग में सबसे पहले मन्दाग्नि हो जाती है। कारण यह है कि यकृत से पित्त निकल कर अन्न पचाने का जो काम करता है, वह कार्य यकृत में विकार होने से बन्द हो जाता है—अतएव मन्दाग्नि हो जाती है। उस विकार को दूर करने के लिये यह दवा बहुत उत्तम है। इसके सेवन से और भी उपद्रव दूर हो जाते हैं।

यकृदरि लौह (वृहत्)

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, अभ्रकभस्म, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, कुटकी, त्रायमाणा, अतीस, पाठा, नीम की छाल, हर्रे, चित्रकमूल,

पित्तपापड़ा और नागरमोथा इनका चूर्ण १-१ भाग तथा लौहभस्म सब दवाओं से आधी मात्रा में लेकर सबको एकत्र मिला कर १ दिन गिलोय (गुर्च) के रस में घोट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, सुबह-शाम जल या गोमूत्र के साथ दें।

गुण और उपयोग—यकृत् रोग नाश करने की यह प्रसिद्ध दवा है। यकृत में किसी तरह की बीमारी होने से अन्नादिक का पाचन ठीक से नहीं होता है। जिसके कारण रस-रक्त-वीर्य आदि शरीर को पुष्ट करने वाले सातों धातुओं की उचित परिमाण में पूर्ति नहीं हो पाती—पश्चात् शरीर सूखने लगता है, हाथ-पाँव पतले हो जाते, पेट आगे निकल आता है, बराबर थोड़ा-बहुत बुखार आता है और शरीर पीला पड़ जाता है। ऐसी अवस्था में यकृदरि लौह अमृत के समान गुण करता है। इसका प्रभाव सर्वप्रथम पाचक और रंजक पित्त पर होता है जिससे पित्त और रक्त उचित मात्रा में बनकर शरीर पुष्ट और नीरोग हो जाता है।

यक्ष्मान्तक लौह

रास्ना, तालीसपत्र, कपूर, मण्डूकपर्णी, मैनसिल, सोंठ, पीपल, मिर्च, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, बायबिडङ्ग, नागरमोथा और चित्रकमूल—इनका कपड़छान किया हुआ चूर्ण १-१ भाग और लौहभस्म इन सब सब दवाओं के समान भाग ले कर सबको एकत्र जल के साथ घोटकर रखें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम धारोष्ण बकरी के दूध या वासा (अडूसा) स्वरस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से राजयक्ष्मा, पाण्डु, स्वरभंग, खाँसी और क्षत-क्षय भी नष्ट हो जाते हैं। बल-वर्ण, अग्नि तथा शरीर की पुष्टि होती है।

यक्ष्मारि लौह

स्वर्णमाक्षिकभस्म, बायबिडङ्ग का महीन चूर्ण, शुद्ध शिलाजीत, लौहभस्म, हर्रे का महीन चूर्ण और घी तथा शहद प्रत्येक समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल में घोटकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम पिप्पलीचूर्ण और मधु से दें।

गुण और उपयोग—यक्ष्मा से उत्पन्न खाँसी, ज्वर, कफ-विकार आदि नष्ट होते हैं।

उपरोक्त दोनों दवा राजयक्ष्मा में—जब रोग पुराना हो गया हो, ज्वर और खाँसी का वेग बढ़ रहा हो, हृदय कमजोर, शरीर दुर्बल हो गया हो, नाड़ी की गति क्षीण, रक्त की कमी से शरीर का रंग पाण्डु वर्ण का हो गया हो, खाँसी के साथ रक्त भी आता हो, तब इस दवा के उपयोग से अच्छा लाभ होता है। इससे यक्ष्मा के कीटाणु नष्ट होते तथा ज्वरादिक उपद्रव भी कम हो जाते हैं। शरीर में नवीन रक्त की वृद्धि होने से शरीर और धातुएँ भी पुष्ट होने लगती हैं।

योगराज लौह

हर्रे, बहेड़ा, आँवला, बावची, भाँगरा, सोंठ, मिर्च, पीपल, गिलोय, चकौड़ के बीज, काला भाँगरा, नागर मोथा, आमला, खैरसार, सेंधा नमक, अजवायन, जीरा—दोनों, बायबिडंग प्रत्येक का कूट कपड़छान किया हुआ चूर्ण १-१ भाग और लौहभस्म सब दवा के बराबर लेकर सबको घोट सुखाकर सुरक्षित रख लें। —र० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, बावची चूर्ण १ माशा और शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग—कुष्ठ रोग में इसका उपयोग किया जाता है। कुष्ठ रोग होने पर रक्त और मांस में विकृति आ जाती है। त्वचा भी दूषित हो जाती है। पाचक और रंजक पित्त की विकृति

से परिशुद्ध रक्त न बनकर दूषित रक्त बनने लग जाता है, जिससे शरीर में हानि के सिवा लाभ नहीं होता। रक्त, मांस और त्वचा की विकृति से शरीर का वर्ण विवर्ण हो जाता, कान्ति नष्ट हो जाती, जरा-सा भी कहीं खुरच लग जाने पर भयंकर घाव हो जाता, खून ज्यादा और पतला बहने लगता है तथा खून का रंग कालापन लिये हुये रहता है। शरीर में चट्ठे पड़ने लग जाते हैं। ऐसी अवस्था में योगराज लौह के उपयोग से अच्छा लाभ होता है।

रक्तपित्तान्तक लौह

आँवला और पीपल का कपड़छान किया हुआ चूर्ण १-१ भाग तथा लौहभस्म सब दवा के बराबर लेकर एकत्र मिला आँवले के स्वरस (क्वाथ) में घोटकर रखें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम दूर्वारस और मधु के साथ दें। अम्लपित्त में मिश्री के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से रक्तपित्त और अम्लपित्त दोनों ही रोग नष्ट होते हैं। रक्तपित्त के लिए यह बहुत प्रसिद्ध दवा है। रक्तपित्त में—रक्त ज्यादा निकल जाने के कारण शरीर का रङ्ग पीला हो जाता है, हृदय कमजोर एवं नाड़ी की गति क्षीण, मन्दाग्नि, प्यास ज्यादा लगना, शरीर एकदम कमजोर हो जाना, ज्वर भी बना रहना—ऐसी दशा में रक्तपित्तान्तक लौह के उपयोग से प्रकुपित पित्त शान्त हो, रक्तस्राव बन्द हो जाता है। क्योंकि यह दवा पित्तशामक, रक्त-प्रसादक तथा शक्तिबर्द्धक है।

रोहितक लौह

हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रकमूल-छाल, नागरमोथा और वायबिडंग प्रत्येक १-१ तोला, रोहेड़ा वृक्ष के अन्दर की छाल ६ तोला। इन सब का सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण कर, उसमें लौहभस्म या मण्डूरभस्म ६ तोला मिलाकर रोहेड़ा वृक्ष के अन्दर की छाल के क्वाथ की ७ भावना दे, छाया में सुखा, पीस कर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—३-३ रत्ती, सुबह-शाम दूध या छाछ के साथ दें।

गुण और उपयोग—यकृत और प्लीहा की वृद्धि , शोथ, पाण्डु रोग और पुराने विषमज्वर में यह लाभदायक है।

यकृत और प्लीहा की वृद्धि होने पर मन्दाग्नि , भूख न लगना, जाड़ा देकर बुखार आना, रस-रक्तादि धातुओं की कमी के कारण शरीर दुर्बल और कान्ति बदल जाना, कभी-कभी शोथ और पाण्डु रोग भी हो जाता है, ऐसी दशा में रोहितक लौह के उपयोग से अच्छे हुए कई रोगी देखने में आये हैं। इसका कारण यह है कि इस दवा में रुहेड़ा और लौहभस्म की प्रधानता है। रुहेड़ा यकृत-प्लीहा के विकार तथा उदर-रोग नाश करने के लिए प्रसिद्ध है। अतः इससे यकृत-प्लीहा की वृद्धि रुक जाती है, और मन्दाग्नि आदि भी दूर हो जाती है। लौहभस्म नवीन रक्ताणुओं को बढ़ाते हुए अन्य धातुओं और शरीर को पुष्ट कर रोगी को स्वस्थ बना देती है।

शोथारि मण्डूर

मण्डूरभस्म ३५ तोला को संभालू, मानकन्द और अदरक-रस की १-१ भावना देकर सुखा लें, फिर अठगुने गोमूत्र में मन्दाग्नि पर पकावें, जब गाढ़ा होने लगे, तब इसमें—हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल तथा चव्य का चूर्ण २-२ तोला मिला दें। ठण्डा होने पर २० तोला शहद मिला ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना लें या वैसे ही पीसकर चूर्णरूप में ही रखें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम गोमूत्र या पुनर्नवा रस या दशमूल-क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग—यकृत्-प्लीहा या मल संचय अथवा पाण्डु रोग आदि किसी भी कारण से शरीर सूज गया हो, साथ ही कफ, खाँसी, ज्वरादिक उपद्रव भी रहते हों, तो इस मण्डूर के उपयोग से बहुत शीघ्र फायदा होता है। इसमें मण्डूर भस्म प्रधान है तथा गोमूत्र के क्षार का भी संमिश्रण है, अतः यह यकृत्-प्लीहा को नष्ट करता और शोथ को भी दूर करता है।

शोथारि लौह

सोंठ, मिर्च, पीपल इसका समभाग कपड़छान किया हुआ चूर्ण और जवाखार प्रत्येक १-१ तोला, लौह-भस्म इन सब दवाओं के समान भाग (४ तोला) लेकर सब को एकत्र मिला, खरल कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—२ से ३ रत्ती, सुबह-शाम त्रिफला-क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग—पाण्डु रोगयुक्त शोथ—पुराने पाण्डु-रोग में रस-रक्तादि धातु कमजोर होकर अपनी क्रिया करने में असमर्थ हो जाती हैं, तब शरीर में रक्ताणुओं का ह्रास और जल भाग की वृद्धि होती है। रक्तवाही शिराओं में जल प्रवेश कर जाता है, जिससे शिराएं फूल जाती हैं। शिराओं के फूलने से माँस भी फूल उठते हैं। इसमें रक्त की कमी के कारण शरीर का वर्ण कुछ सफेदी लिए हुये होता है, सम्पूर्ण शरीर में सूजन फैल जाती है। यह सूजन कफजन्य होने के कारण दबाने से गड्ढा पड़ जाता है, फिर धीरे-धीरे गड्ढा पूरा हो जाता है। यह अवस्था कठिनता से अच्छी होने वाली होती है। इस अवस्था में शोथारि लौह के उपयोग से आश्चर्यजनक लाभ होते देखा गया है। यह दवा दीपन, पाचन, कफनाशक और रक्त-बर्द्धक भी है। अतः यह दवा पाचक पित्त को जागृत कर अच्छा रस बनाने में सहायक होती है और लौह कफ को नाश करते हुए शरीर में नवीन रक्त की उत्पत्ति कर सब धातुओं को पुष्ट करती हुई, जल भाग को सुखा कर, शोथ को नष्ट करके रोगी को सबल बना देती है।

शोथोदरारि लौह

पुनर्नवा, गुर्च, चित्रक, इन्द्रायण की जड़, मानकन्द, सहजन की छाल, हुल-हुल और आक की जड़ प्रत्येक ३२-३२ तोला लेकर सबको एक द्रोण पानी में पकावें और अष्टमांश शेष रहने पर छान लें। फिर उसमें लौहभस्म ३२ तोला, घी ३२ तोला, आक का दूध

८ तोला, सेहुण्ड का दूध १६ तोला, शुद्ध गूगल १० तोला, शुद्ध पारा २ तोला तथा शुद्ध गन्धक ४ तोला की बनी हुई कज्जली मिला कर पुनः पकावें। जब पाक तैयार हो जाय, तो उसमें शुद्ध जमालगोटा, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, कंकुष्ठ, चित्रकमूल, जमीकन्द (सूरण), घण्टाकर्ण, शरपुंखा, पलाश के बीज, क्षीरकंचुकी, तालमूली, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, बायबिडंग, निशोथ, दन्तीमूल, हुलहुल, इन्द्रायण की जड़, पुनर्नवा और हड़जोड़ी—इनमें से प्रत्येक का दो-दो तोला चूर्ण मिला कर खरल करके सुरक्षित रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—२ से ३ रत्ती सुबह-शाम पुनर्नवा के रस या काढ़े के साथ दें।

गुण और उपयोग—कभी-कभी पेट में पुराने संचित मल के कारण आँतें शिथिल हो, अपना कार्य करने में असमर्थ हो जातीं हैं। फिर पेट में वायु भर जाता तथा आँतें भी सूज जातीं और साथ-साथ पेट की नसें भी फूल जाती हैं तथा यकृत्-प्लीहा भी बढ़ जाते हैं। रक्त का संचालन ठीक न होने से रक्त दूषित हो मांस और चमड़े को भी दूषित कर देता है। इन कारणों से पेट पर सूजन आ जाती है। ऐसी अवस्था में शोथोदरारि लौह देने से अपूर्व लाभ होता है। इससे मल संचय दूर हो, शोथरोग जड़मूल से नष्ट हो जाता है। क्योंकि इसमें निशोथ, थूहर के दूध आदि रेचक द्रव्यों का संम्मिश्रण है तथा अभ्रक और लौहभस्म की वजह से धातुओं की पुष्टि होती है और नवीन रक्त का निर्माण हो कर जल-भाग सूख जाता है। फिर शोथ अपने-आप नष्ट हो जाता है। धीरे-धीरे आँतें भी सबल हो अपना कार्य करने लग जाती हैं। कुछ दिनों के बाद रोगी स्वस्थ हो जाता है।

सप्तामृत लौह

हर्रे, बहेड़ा, आँवला, मुलैठी—इनका कपड़छान किया हुआ चूर्ण तथा लौहभस्म, शहद और घी १-१ भाग लेकर सबको एकत्र मिला, खरल कर सुरक्षित रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ माशा सुबह-शाम १ माशा घी और ३ माशे शहद मिला कर चाटें और ऊपर से गौ या बकरी का दूध पी लें।

गुण और उपयोग—यह सब प्रकार के नेत्र-रोगों की खास दवा है। इसके सेवन से दृष्टि शक्ति की कमी, आँखों की लाली, आँखों में खाज होना, आँखों के आगे अन्धेरा होना आदि विकार और नेत्र-रोग अच्छे हो जाते हैं। इससे दस्त साफ आता है, अग्नि (जठराग्नि) प्रदीप्त होती है और लौह का प्रधान मिश्रण होने के कारण यह औषध रक्त को भी बढ़ाती है।

यह प्रयोग केवल नेत्र-रोगों को ही नष्ट नहीं करता, बल्कि दाँत, कान और गले से ऊपर उत्पन्न होनेवाले रोगों में भी लाभप्रद है। यह अकाल (असमय) में बाल सफेद होने को रोकता है तथा पुरानी मंदाग्नि को भी दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

इसके सेवन से शरीर में काम-शक्ति की वृद्धि होती, मुख की कान्ति अच्छी हो जाती तथा बाल अत्यन्त काले हो जाते हैं। यह रसायन और वृष्य भी है।

समशर्कर लौह

लौंग, कायफल, कूठ, अजवायन, सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रकमूल, पीपलामूल, वासा (अडूसा), कटेली, चव्य, काकड़ासिंगी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, हर्रे, कचूर, कंकोल, नागरमोथा इनका चूर्ण तथा लौह भस्म, अभ्रकभस्म और जवाखार प्रत्येक १-१ तोला तथा मिश्री या चीनी सब दवाओं के समान भाग लेकर, एकत्र खरल कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—३-४ रत्ती मधु के साथ सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से वातज, कफज, पित्तज और क्षयजन्य खाँसी, रक्त-पित्त और श्वास रोग नष्ट होता है। यह दुर्बल व्यक्तियों के शरीर को पुष्ट कर बल, वर्ण और वीर्य की वृद्धि करता है।

यह दवा सौम्य गुण प्रधान होने की वजह से पित्त शामक, रक्त रोधक तथा रक्तवर्धक भी है। खाँसी की किसी भी अवस्था में विशेष कर पित्त के प्रकोप होने पर मुँह से कभी-कभी खून निकलना, ज्वर होना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी हालत में समशर्कर लौह के उपयोग से अवश्य ही लाभ होता है। क्योंकि यह दवा सौम्य है—इसलिये प्रकुपित पित्त को शमन कर कफ का कुछ अंश बढ़ा देती है और श्वास-नली को शुद्ध कर बिगड़े हुए कफ को भी निकाल देती है। फिर खाँसी स्वयं बन्द हो जाती है।

सम्मोह लौह

सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, चित्रकमूल और बाय-बिडङ्ग इनका चूर्ण तथा लौहभस्म और अभ्रकभस्म समान भाग लेकर सब को एकत्र कर थोड़े घी के साथ खरल करें और १-१ माशे की गोलियाँ बना लें। —र० चं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम। मधु या गोमूत्र के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से कामला, पाण्डु, हृद्रोग, शोथ, भगन्दर, कृमि, अग्निमान्द्य और अरुचि का नाश होकर बल, वर्ण तथा अग्नि की वृद्धि होती है। यह पाण्डु रोग में विशेष उपयोगी है।

सर्वज्वरहर लौह

चित्रकमूल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, बायविडंग, नागरमोथा, गजपीपल, पीपलामूल, खस, देवदारु, चिरायता, पाठा, कुटकी, कटेली, सहजने के बीज, मुलैठी और इन्द्र जौ, इनका चूर्ण १-१ तोला तथा लौहभस्म सब के बराबर ले, सबको पानी के साथ खरल कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना कर रख लें। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम हरसिंगार की पत्ती का रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह सब तरह के ज्वरों के लिये प्रसिद्ध है। इससे वातज, पित्तज, कफज, नये-पुराने ज्वर, सन्निपातज्वर, विषम-

ज्वर, धातुगतज्वर तथा जाड़ा देकर आनेवाले ज्वर आराम होते हैं। इसमें लौह का प्रधान मिश्रण होने के कारण यह मन्दाग्नि, अतिसार, प्लीहा, यकृत्, गुल्म, आमवात, अजीर्ण, ग्रहणी, पाण्डु, शोथ, दुर्बलता आदि रोगों के लिये बहुत ही फायदेमन्द है।

सर्वज्वरहर लौह (वृहत्)

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिक-भस्म, सोनाभस्म, चाँदीभस्म और शुद्ध हरताल प्रत्येक १-१ तोला, तथा कान्तलौह भस्म ४ तोला, सबको एकत्र कर करैले के पत्ते का रस, दशमूल, पित्तपापड़ा और त्रिफला इनका काढ़ा, गिलोय, पान, काक-माची, सम्भालू, पुनर्नवा और अदरक इन प्रत्येक के रस की ७-७ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें।
—भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम पुराना गुड़ और पीपल के महीन चूर्ण के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—ज्वर की हर हालत में इसका उपयोग किया जाता है। यह दवा अपनी अद्भुत शक्ति के कारण बहुत प्रसिद्ध है। किसी भी प्रकार के ज्वर क्यों न हो, ज्वर में शरीर का रक्त बहुत शीघ्र सूखने लगता है। रक्त की कमी के कारण ही ज्वर की शक्ति बढ़ती है। जब तक रक्त बलवान बना रहता है, वह अपनी प्रतिरोधक शक्ति द्वारा रोगों का आक्रमण नहीं होने देता। ज्वर ही एक ऐसा रोग है, जो धीरे-धीरे प्राकृतिक शक्ति का ह्रास कर अपनी शक्ति बढ़ा लेता है और रोगी का शरीर जर्जर बना देता है। अतएव इसकी चिकित्सा काल में रक्त को सबल बनाने का पूरा ध्यान रखा जाता है। रक्त सबल होने पर अन्य धातु भी बलवान हो जाती हैं। फिर रोग कमजोर हो अपने आप नष्ट हो जाते हैं। यही चिकित्सा का सार है। इस कार्य को समुचित रूप से निभाने के लिये वृहत् सर्वज्वर हर लौह का उपयोग किया जाता है। इसका असर सर्व-प्रथम रक्त पर पड़ता है और यह रक्त को सबल बना रोग को पराजित करता है। फिर नवीन रक्त की उत्पत्ति कर शरीर को दोषादि से रहित तथा धातु को बलवान बना देता है। मैंने कई रोगियों पर इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया है।

गुग्गुलु प्रकरण

आयुर्वेद में गुग्गुलु का बहुत बड़ा महत्त्व है। समस्त वायुरोगों में इसका प्रयोग किया जाता है, लेकिन इससे पूर्ण लाभ तभी हो सकता है जब कि यह उत्तम गुग्गुलु का शास्त्रोक्त विधि से शोधन कर खूब कुटाई के बाद तैयार किया गया हो।

अनेक बार गुग्गुलु का पाक किया जाता है और अनेक बार दवाइयों में मिलाकर घी आदि के साथ कूटा जाता है। गुग्गुलु का पाक भी गुड़ आदि के समान ही किया जाता है। परन्तु गुड़ आदि का पाक सिद्ध होने पर पतला रहता है और गुग्गुलु का घन रहता है। यदि गुग्गुलु पानी में डालने से नीचे बैठ जाय और इधर-उधर न फैले तो पाक सिद्ध समझना चाहिये।

यदि पाक न करना हो, तो गुग्गुलु को दवाइयों के चूर्ण में मिलाकर इमाम-दस्ते में डाल, खूब कूटना चाहिये। कूटते समय बीच-बीच में थोड़ा-थोड़ा घी डालते रहना चाहिये। जितना ही अधिक कूटा जायगा उतना ही अच्छा गुग्गुलु बनेगा। प्राचीन वैद्यों का कथन है कि यदि गुग्गुलु में एक लाख बार मूसली की चोट पड़ जाय, तो वह सर्व रोग नाशक बन जाता है।

इसके चमत्कारिक गुण के प्रभाव से पाश्चात्य डाक्टर भी अछूते नहीं रहे। उन लोगों ने इसका काफी अध्ययन किया है और वे लोग इसके गुण की उपयोगिता में कहाँ तक सफल हुए हैं उसका कुछ अंश मात्र नीचे दे रहा हूँ। वे लिखते हैं—

गुग्गुलु के गुण कोपेवा और कवाबचीनी से मिलते-जुलते हैं। यह फटे हुए चमड़ों और श्लैष्मिक झिल्लयों पर अपना कृमि नाशक प्रभाव दिखलाता है। अतः योग में लिये जाने पर यह अग्निदीपक शान्ति दायक और आफरा दूर करने वाला तथा पाचन शक्तिको बलवान बनानेवाला है। इसके सेवन से पेट में कुछ गरमी मालूम होने लगती है।

दूसरे—सभी "ओलियोरेजिन्स" की तरह यह भी रक्त के श्वेत कीटाणुओं को और "फेगोसाइटोसिस" नाम के कोषाणुओं को बढ़ाता है। गुदा और श्लैष्मिक झिल्लियों को यह उत्तेजित करता और उनके ग्रन्थियों के कृमियों को नष्ट करता है। यह पसीना लानेवाला, मूत्रल, उत्तेजक और कफ निस्सारक भी है।

यह गर्भाशय को उत्तेजित करता और मासिक धर्म को नियमित करता है। बहुत समय तक इसका सेवन करने से भी किसी प्रकार की हानि नहीं होती है।

कभी-कभी इससे गुर्दे में जलन पैदा हो जाती है और शरीर पर कोपेवा की तरह कुछ फुन्सियाँ हो जाती हैं, किन्तु; इसका सेवन बन्द करते ही ये फुन्सियाँ मिट जाती हैं।

इसका लोशन दुष्ट व्रणों को भरने तथा दाँतों की सड़न, मसूड़ों की सूजन, पायेरिया, तालुमूलग्रन्थि का पुराना प्रदाह, कण्ठनली की जलन और गले के व्रणों को मिटाने के काम में लिया जाता है। यह लोशन इसके एक ड्राम टिंचर को १० औंस पानी में मिला देने से तैयार होता है।

पुराने अग्निमान्द्य रोग में यह अग्निदीपक वस्तु की तरह काम में लाया जाता है। यह उदर-यन्त्रों के ढीलेपन तथा पेशी की दुर्बलता को भी मिटाता है। पुराना नजला, अतिसार, आँतों की सूजन; आँतों के व्रण और बड़ी आँतों के पुरातन प्रदाह में भी लाभदायक है।

फेफड़ों के क्षय में यह एक उत्तेजक और कृमिनाशक के तौर पर दिया जाता है। इसके सेवन से ज्वर कम होता है, भूख बढ़ती है, कृमि नष्ट हो जाते और जीवन-शक्ति को बल मिलता है।

जलोदर और पाण्डु रोग में तथा फुफ्फुस के व्रण प्रदाह में भी यह बहुत उपयोगी है। स्नायविक दुर्बलता और साधारण कमजोरी को दूर करके यह काम-शक्ति को भी बढ़ाता है।

स्वर नली के प्रदाह, वायु नलियों के प्रदाह, कुक्कुर खाँसी और निमोनियाँ में प्रति ४।६ घण्टे के बाद इसके प्रयोग से अच्छा लाभ होता है।

कुष्ठ रोगियों की भी हालत बहुत हद तक सुधारता है और इस व्याधि से उत्पन्न हुए अन्य व्याधियों को भी मिटाता है। मूत्राशय की जलन, सूजाक और पेड़ू की सूजन में तीव्र लक्षणों के दूर हो जाने पर इसे देने से अच्छा लाभ होता है। गर्भाशयावरण की पुरानी सूजन में तथा नष्टार्त्तव में भी यह लाभदायक है। यह श्वेतप्रदर और अत्यधिक रजःस्राव में भी फायदा करता है।

अमृतादि गुग्गुलु

गुर्च १ सेर, गुग्गुलु ऽ।। सेर, आँवला, हर्रे, बहेड़ा प्रत्येक आधा सेर, सब को जौ कूट कर १६ सेर पानी में पकावें। ४ सेर पानी शेष रहने पर छान लें और जब तक गाढ़ा न हो जाय पकाते रहें। फिर दन्ती, त्रिकुटा, बायबिडंग, गिलोय, त्रिफला, दालचीनी प्रत्येक २-२ तोला और निशोथ १ तोला लेकर सबका चूर्ण करके उपरोक्त गरम-गरम पाक में मिलावें। ठंडा होने पर १-१ माशे की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —भा० प्र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, सुबह-शाम गुर्च के क्वाथ के साथ अथवा गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से वातरक्त, कोढ़, अर्श, मन्दाग्नि, कुष्ठ, दुष्टव्रण, प्रमेह आमवात,भगन्दर, नाड़ीव्रण, आढ्य वात, सूजन आदि रोग नष्ट होते हैं। यह रक्तशोधक, वात तथा बद्धकोष्ठ नाशक है।

वातरक्त में—इस गुग्गुलु का उपयोग विशेष रूप से किया जाता है। इस रोग में वात ही प्रधान है अर्थात् प्रकुपित वात, रक्त को दूषित कर इस रोग की उत्पत्ति करता है। इस रोग का असर सर्व प्रथम हाथ-पैरों पर होता है। सम्पूर्ण शरीर में बहुत तेज दर्द होना, शरीर में सूजन, त्वचा रूक्ष हो जाना, नीली-नीली नसें शरीर पर दिखाई देना, रोग का कभी घटना और कभी बढ़ जाना, अंगुलियों के जोड़ों में संकोच (सिकुड़न) उसमें दर्द अधिक होना, शरीर में कम्प और चमड़े में स्पर्श-ज्ञान का अभाव अर्थात् शून्यता

आ जाना, ये वातप्रधान वातरक्त के लक्षण हैं। इसमें अमृतादि गुग्गुलु, बहुत शीघ्र लाभ पहुँचाता है, क्योंकि इस दवा का असर सर्व-प्रथम वातवाहिनी सिरा और रक्त पर होता है। अतः यह बहुत शीघ्र लाभ करता है।

इसी तरह कुष्ठ, दुष्ट व्रण, रक्त विकार आदि में भी इसका प्रयोग करने से काफी लाभ होता है।

आभा गुग्गुलु

बबूल की छाल, सोंठ, पीपल, मिर्च, आँवला, हर्रे, बहेड़ा सब समान भाग लें, और शुद्ध गुग्गुलु सबके समान भाग लेकर पहले काष्ठौषधियों का कूट-कपड़छान चूर्ण बना गुग्गुलु के साथ मिला घी के सहारे एकत्र कूटकर १-१ माशे की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर सुरक्षित रख लें। —चक्रदत्त

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, दिन भर में २-३ बार गर्म जल या दूध से देवें।

गुण और उपयोग—कहीं फिसल कर गिर पड़ने, किसी पेड़ आदि से नीचे गिर पड़ने अथवा डंडा इत्यादि की चोट लग जाने से हड्डियाँ टूट गयी हों, मोच आ गयी हो, अथवा छाती में चोट लग कर दूषित खून आमाशय में जमा हो गया हो, तो इन उपद्रवों को दूर करने के लिये आभा गूगल का उपयोग किया जाता है।

एकविंशतिक गुग्गुलु

चित्रक, त्रिफला, त्रिकुट, काला जीरा, कलौंजी, वच, सेंधा नमक, अतीस, कूठ, चव्य, इलायची, यवक्षार, बायबिडंग, अजमोदा, नागरमोथा, देवदारु प्रत्येक समान भाग, गुग्गुलु सबके बराबर लेकर प्रथम काष्ठौषधियों का चूर्ण कर गुग्गुलु के साथ कूट घी मिलाकर १-१ माशे की गोलियाँ बना लें। —वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम नीम की छाल के क्वाथ के साथ या गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से सब प्रकार के कुष्ठ, कृमि, दाद, घाव, संग्रहणीविकार, बवासीर, मुखरोग आदि व्याधियाँ नष्ट होती हैं।

इसका उपयोग—त्वचा और रक्त के विकारों में विशेषतया किया जाता है। प्रकुपित वात के कारण जो रक्त दूषित होता है, उस रक्त का रंग कुछ कालिमायुक्त हो जाता और त्वचा भी रूक्ष हो जाती है। कहीं-कहीं खुरदरी भी हो जाती है, फिर चर्म-रोग जैसे—दाद, घाव (फोड़ा-फुन्सियाँ), खुजली आदि उपद्रव हो जाते हैं, और रक्त विकृत होकर कुष्ठादि रोग उत्पन्न कर देते हैं। ऐसी दशा में "एकविंशतिक गुग्गुलु" के उपयोग से बहुत फायदा होता है। यह प्रकुपित वायु को तो शान्त करता ही है, साथ ही दूषित रक्त की भी विकृति को दूर कर शुद्ध रक्त बनाता है। अतएव उपरोक्त रोगों में यह गुग्गुलु बहुत लाभ करता है।

कांचनार गुग्गुलु

कचनार की छाल ४० तोला, त्रिफला २४ तोला, त्रिकुटा १२ तोला, वरने की छाल ४ तोला, इलायची, दालचीनी, तेजपात प्रत्येक १-१ तोला—सबको कूट कपड़छान चूर्ण बनावें। सब चूर्ण के बराबर गुग्गुलु मिला कर कूटें और घी के सहारे १-१ माशे की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली, सुबह-शाम कचनार की छाल, वरना की छाल, गोरखमुण्डी और खैरसार की छाल या लकड़ी के बुरादे के क्वाथ बना कर इसके साथ दें। यदि विशेष लाभ नहीं हो तो इसके साथ सुवर्ण भस्म अष्टमांश रत्ती और प्रवाल पंचामृत ५ रत्ती मिला कर दें।

नोट—गुग्गुलु, गंधक और रसौत तीनों समभाग लेकर जल में पीस करके गण्डमाला पर लेप करने से बहुत लाभ होता है।

गुण और उपयोग—इस गुग्गुलु के सेवन से गलगण्ड, गण्डमाला (गले में कण्ठवेल होना), अपची, ग्रन्थि, अर्बुद (रसौली), गले में

और नाक के भीतर गाँठें बढ़ना, व्रण, गुल्म, कुष्ठ व भगंदर आदि रोगों में अच्छा फायदा होता है।

काँचनार गुग्गुलु का उपयोग विशेषकर ग्रंथि (गाँठ) नाश करने के लिये ही किया जाता है। ये गाँठें वात और कफजन्य हुआ करती हैं। गलगण्ड और गण्डमाला की अपक्वावस्था अर्थात् जब इस रोग का प्रादुर्भाव ज्ञात हो, तभी से इसका उपयोग करना प्रारम्भ कर देने से २ महीने में शर्तिया लाभ होता है, ऐसा मेरा अनुभव है। इस दवा के सेवन के साथ ही यदि बाँझ ककोड़े की जड़ का लेप काँजी में मिला कर गले की गाँठ पर किया जाय तो अवश्य ही उक्त समय तक गाँठ अच्छी हो जायगी।

कैशोर गुग्गुलु

त्रिफला ३ प्रस्थ (२ सेर, ६ छटाँक, २ तोला), और गिलोय १ प्रस्थ (६४ तोला), को कूट कर लोहे की कढ़ाई में १९ सेर, ३ छटांक, १ तोला जल मिला कर काढ़ा बनाएँ, जब आधा जल शेष रहे तब उतार कर छान लें। उस काढ़े में ६४ तोला उत्तम गूगल डाल कर मन्द आग में पकावें। जब गूगल पतला होकर काढ़े में मिल जाय, तब छान कर उसको फिर चूल्हे पर चढ़ा कर औंटें और कलछू से चलाते रहें, जिससे जलने या कढ़ाई में गूगल लगने का भय न रहे। जब गूगल गाढ़ा अर्थात् गुड़पाक के समान हो जाय तब कढ़ाई से निकाल कर इसमें—त्रिफला ८ तोला, गिलोय ४ तोला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और बायबिडंग प्रत्येक २-२ तोला, जमालगोटे की जड़ और निसोथ १-१ तोला—इन सब दवाओं का महीन चूर्ण करके ऊपर वाले गुग्गुलु में मिला कर १-१ माशे की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। —शा० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम मंजिष्ठादि क्वाथ या गर्म जल अथवा दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से एकदोषज, द्विदोषज और पुराना शुष्क अथवा स्रावयुक्त फैला हुआ घुटनों तक वातरक्त-घाव,

खाँसी, कोढ़, गुल्म, शोथ, उदररोग, पाण्डु, प्रमेह, अग्निमांद्य, विबंध, प्रमेह पिड़िका आदि का नाश होता है। इसके निरन्तर अभ्यास से वायु और रक्त विकार सम्बन्धी सब रोग नष्ट हो जाते हैं। यह गुग्गुलु हर समय सेवन किया जा सकता है एवं इसके सेवन में किसी प्रकार का विशेष पथ्य-परहेज भी नहीं करना पड़ता है।

इसका उपयोग विशेषकर वातरक्त, कुष्ठ और रक्त-विकार में किया जाता है।

गोक्षुरादि गुग्गुलु

११२ तोले गोखरू के पंचांग को कूट कर छ गुने जल में पकावें। आधा जल शेष रहने पर छान लें। फिर इसमें २८ तोला शुद्ध गूगल मिला कर गुड़पाक के समान गाढ़ा कर उसमें निम्नलिखित प्रक्षेप द्रव्य मिलावें। सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला और नागरमोथा प्रत्येक का कपड़छान किया हुआ चूर्ण ४-४ तोला मिला और कूट कर १-१ माशे की गोलियाँ बना कर रख लें।

—शा० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम गोखरू क्वाथ या प्रमेहहर क्वाथ के साथ देना चाहिये।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र (रुक-रुक कर पेशाब होना), मूत्राघात, अश्मरी (पथरी), प्रदर रोग, वातरक्त, शुक्रदोष और मूत्राशयगत समस्त विकारों में लाभ होता है।

इस दवा का असर मूत्राशय और मूत्रनली तथा वीर्य्यवाहिनी शिराओं पर अधिक होता है।

मूत्रकृच्छ्र—यह रोग कई कारणों से होता है यथा—सूजाक, पथरी, कृमि, मूत्रग्रन्थि का प्रदाह, जरायु की विकृति, वृक्क (गुर्दे) का विकार आँव आदि से यह रोग उत्पन्न होता है। वृक्क (गुर्दे) के विकार से जब मूत्रकृच्छ्र होता है, तब वमन और दस्त की हाजत होती है। गुर्दे से वेदना (दर्द) उठ कर बस्ति (पेडू) तक या जननेन्द्रिय तक जाती है। प्रधानतया मूत्रकृच्छ्र में बारम्बार पेशाब करने की इच्छा होती है और बड़े कष्ट के साथ बूंद-बूंद पेशाब होता

या नहीं भी होता है। पेशाब के समय भयानक दर्द होता आदि लक्षण होते हैं। ऐसी अवस्था में गोक्षुरादि गुग्गुलु के उपयोग से बहुत लाभ होता है। क्योंकि यह मूत्राशय और मूत्रनली के विकारों को शमन करता है, जिससे पेशाब साफ और खुल कर आने लगता है।

मूत्राघात (मूत्रस्तम्भ)—यह भी बहुत खतरनाक रोग ह। इस रोग में पेशाब की थैली में पेशाब भरा रहता है, किन्तु पेशाब उतरता नहीं है। नाभि के नीचे तलपेट (पेडू) फूल जाता है—पेशाब करने की इच्छा होती है, किन्तु पेशाब नहीं होता। फिर बेचैनी, तन्द्रा, मोह, बेहोशी आदि लक्षण होते हैं। रोगी दर्द के मारे चिल्लाता रहता है, पेड़ू (बस्ति प्रदेश) फूल कर गाँठ-सी हो जाती है। वहाँ दबाने से कठोर मालूम पड़ता और रोगी को उससे विशेष कष्ट होता है। इसमें रबर की सलाई जननेन्द्रिय में डालकर पेशाब कराना चाहिये—साथ ही गोक्षुरादि गुग्गुलु का भी सेवन गोक्षुरादि क्वाथ के साथ यवक्षार और मिश्री मिला कर कराना चाहिये।

शुक्र प्रमेह या शुक्र की क्षीणता में भी यह बहुत लाभ करता है। गोदुग्ध के साथ कुछ दिनों तक लगातार इसका सेवन करने से शरीर में शुक्र की वृद्धि हो—शरीर हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। यह वृष्य और रसायन भी है।

त्रयोदशांग गुग्गुलु

बबूल की फली, असगन्ध, हाऊबेर, गिलोय, शतावर, गोखरू, विधारा, रास्ना, सौंफ, कचूर, अजवायन और सोंठ का चूर्ण समान भाग ले और सब दवा के समान भाग शुद्ध गुग्गुलु तथा गुग्गुलु से आधा घी लेकर गुग्गुलु और अन्य द्रव्यों के चूर्ण को एकत्र मिला कर थोड़ा-थोड़ा घी डाल कर कूटें। जब गोली बनने योग्य हो जाय, तब १-१ माशे की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें।

—वृन्दमाधव

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम गर्म जल या दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से वातशूल, गठिया, पक्षाघात, लकवा, गृध्रसीवात, अस्थि, सन्धि, मज्जागत तथा स्नायु एवं कोष्ठ-स्थित वात रोग नष्ट होते हैं। इसके नियमित सेवन से लूले, लगड़े और पंगु तक अच्छे हो जाते हैं। वातनाशक औषधियों के अनुपान के साथ देने से वातव्याधि नष्ट होती है।

त्रिफला गुग्गुलु

त्रिफला चूर्ण १२ तोला, पीपल का चूर्ण ४ तोला, शुद्ध गुंगुल २० तोला, सबको एकत्र कूट कर घी के साथ १-१ माशे की गोलियाँ बना लें। —शा० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम त्रिफलाक्वाथ या गोमूत्र के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से सब प्रकार के वातजशूल, भगन्दर, सूजन, बवासीर आदि रोग बहुत शीघ्र अच्छे हो जाते हैं। भगन्दर और बवासीर की शिकायत में कब्जियत हो जाने से तकलीफ अधिक होती है, किन्तु; त्रिफला गुग्गुलु के सेवन से कब्ज नहीं होने पाता, बल्कि पुराना कब्ज भी दूर हो जाता है। अतएव यह विशेष लाभदायक है।

यह दवा थोड़ा रेचक होते हुए वायुशामक और रसायन है। बवासीर या भगन्दर—ये दोनों रोग ऐसे कष्टदायक हैं कि रोगी बेचैन हो जाता है। यदि वादी बवासीर हुआ हो तो मस्से फूल जाते हैं। उनमें दर्द होने लगता, पेट में वायु भर जाती है, दस्त कब्ज हो जाता है। यदि थोड़ा दस्त होता भी है, तो बहुत कठिनता से। यदि खूनी हुआ तो इसमें से रक्त निकलना प्रारम्भ हो जाता है। इसी तरह भगन्दर में दस्त कब्ज होने से यह भी बढ़ जाता है, जिससे अत्यधिक दर्द तथा स्राव होने लगता है। त्रिफला गुग्गुलु का इन रोगों में उपयोग करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

पञ्चामृतलोह गुग्गुलु

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, रौप्यभस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक ४-४ तोला, लौहभस्म ८ तोला, शुद्ध गुग्गुलु २८ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली करें, पीछे गुग्गुलु को लोहे की खरल में मूसली से थोड़े कड़ुये तेल की छींटे देकर कूटें, जब गुग्गुल नरम हो जाय तब उसमें कज्जली तथा अन्य भस्में मिलाकर ६ घण्टा मर्दन कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम, दूध से अथवा चोप चीनी, असगंध, एरण्डमूल, उशबा, सोंठ और कड़ये सुरंजान के क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग—गृध्रसी, अपवाहुक, कमर और घुटने का दर्द तथा स्नायुओं में होने वाले दर्द में यह अच्छा काम करता है।

महायोगराज गुग्गुलु

सोंठ, छोटी पीपल, चव्य, पीपलामूल, चित्रकमूल की छाल, घी में सेंकी हुई हींग, अजमोद, पीली सरसों, जीरा दोनों, कलौंजी (मंगरैला), रेणुका, इन्द्रयव, पाढ़ के मूल, बायबिडंग, गज पीपल, कुटकी, अतीस, भारंगमूल, मूर्वा और बच प्रत्येक का कपड़छान चूर्ण ३-३ माशे, हर्रे, बहेड़ा, आँवला समभाग तीनों का कपड़छान चूर्ण १० तोला, गिलोय और दशमूल के क्वाथ में शुद्ध किया हुआ गुग्गुल १५ तोला, वंगभस्म, रौप्यभस्म, नागभस्म, लौहभस्म, माक्षिकभस्म, अभ्रकभस्म, मण्डूरभस्म और रससिन्दूर प्रत्येक ४-४ तोला लें।

(यदि भस्म सब न मिले, तो बिना भस्म के भी तैयार कर सकते हैं, परन्तु भस्म वाला विशेष गुणदायक होता है) इन सब दवाओं को एकत्र मिला, रेंडी के तेल के साथ इमामदस्ते में कूट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा, रख लें। —शा० सं०

नोट—कोई-कोई गुग्गुलु को त्रिफला और गिलोय के क्वाथ में शुद्ध किये बिना ही साफ कर और कूट कर उसमें अन्य द्रव्य मिला गोलियाँ बना लेते हैं।

मात्रा—१-१ गोली सुबह-शाम निम्नलिखित अनुपान के साथ दें।

अनुपान—समस्त वातविकारों में रास्नादि क्वाथ से, वातरक्त में गिलोय के क्वाथ से, मेदो वृद्धि में शहद से, पाण्डुरोग में गोमूत्र से, कुष्ठरोग में नीम की छाल के क्वाथ से, शोथ और शूल में पीपल के क्वाथ से, नेत्र रोग में त्रिफला क्वाथ से, उदर रोगों में पुनर्नवा के क्वाथ से देना चाहिये।

१—वात रोगों की शान्ति के लिये—रास्ना, गिलोय, एरण्डमूल, दशमूल प्रसारणी और अजवायन के क्वाथ के साथ सेवन करना चाहिये।

२—पित्त रोगों की शान्ति के लिये—जीवनीयगण की औषधियों में से किसी एक के क्वाथ के साथ अथवा वासा, लाल चन्दन, नेत्रवाला, मुनक्का, कुटकी, खजूर, फालसा, जीवक और ऋषभक के क्वाथ के साथ दें।

३—कफ रोगों की शान्ति के लिये—त्रिफला, त्रिकुटा, गोमूत्र, नीम की छाल, धनिया, पोहकरमूल, गिलोय, अजवायन और पटोलपत्र के क्वाथ के साथ सेवन करें।

४—व्रण, नासूर, ग्रन्थि, गण्डमाला, अर्बुद और प्रमेह में—त्रिफला-क्वाथ के साथ दें।

५—खुजली, पिडका के लिये—दारुहल्दी और पटोलपत्र के क्वाथ के साथ दें।

६—जलोदर और किलास कुष्ठ के लिये—हर्रे, पुनर्नवा, दारुहल्दी, गोमूत्र और गिलोय के क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह त्रिदोषघ्न रसायन सभी प्रकार के वात व्याधि, आमवात, अपस्मार, पक्षाघात, सन्धिवात, वातरक्त, उदावर्त, मेदोवृद्धि, हृदय का जकड़ना, मन्दाग्नि, श्वास, खाँसी, पुरुषों के वीर्यदोष एवं स्त्रियों के रजोदोष और शोथ, पाण्डु, कामला, कुष्ठ, नेत्ररोग आदि के लिये अत्यन्त लाभदायक है। असाध्य वात-विकारों में भी इसका सफल प्रयोग होता है।

यह रसायन दीपन, पाचन, आमदोषनाशक, वातघ्न और धातु-परिपोषक है। इसका उपयोग प्रधानतया आमवातजन्य विकार में बहुत होता है। आमवात में भी पुराने आमवात रोग में इसका उपयोग बहुत सफल होता है।

वातरक्त—पाचकपित्त की कमजोरी के कारण रस का परिपाक अच्छा न होकर आम की उत्पत्ति हो, आम का संचय होने लगता है। आम संचित होने से वात प्रकुपित हो रक्त को दूषित कर देता है। इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में पेट फूलना, पेट में मीठा दर्द होना, कभी-कभी आँतों में दर्द होना, मूत्रोत्पत्ति कम होना, दस्त कब्ज, कभी पतला दस्त भी हो जाना, कमजोरी आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस रोग का प्रारम्भ हाथ और पैरों से होता है। हाथ-पैरों की अंगुलियाँ मोटी तथा त्वचा रूक्ष और खुरदरी हो जाती हैं। इनमे दर्द, शून्यता, कहीं-कहीं काले चट्ठे, ठण्डी हवा या पानी अच्छा न लगना आदि लक्षण इस रोग की प्रौढ़ावस्था में उत्पन्न होते हैं। ऐसी दशा में महायोगराज गुग्गुलु का उपयोग करने से बहुत लाभ होता है। इससे पाचक पित्त सबल होकर आम को पचाता है और प्रकुपित वात को शान्त कर रक्त को भी शुद्ध करता है।

नष्टार्तव—स्त्रियों का गर्भस्थान जब वायु-कफ और चर्बी से आच्छादित हो जाता है, तब उनको मासिक धर्म होना बन्द हो जाता है और सन्तान होना भी रुक जाता है। ऐसे समय में उनको दो-एक लंघन करा लगातार एक महीने तक महायोगराज गुग्गुलु का सेवन कराना चाहिए। इससे गर्भाशय का मुँह खुल जाता और मासिक धर्म भी ठीक से होने लगता है, तथा गर्भाशय गर्भ धारण करने योग्य हो जाता है, फिर सन्तान भी होने लगती है।

स्नायु शूल—शरीर के प्रत्येक अंग में स्नायु शूल होता हो और उसमें दूसरी औषधियाँ निष्फल हो गयी हों, तो महायोगराज गुग्गुलु का सेवन अवश्य करावें। यदि यह शूल सूजाक के कारण उत्पन्न हुआ हो तो वृहत् मञ्जिष्ठादि क्वाथ के साथ महायोगराज गुग्गुलु सेवन करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

योगराज गुग्गुलु

चीता, पीपलामूल, अजवायन, कालाजीरा, बायबिडंग, अजमोद, जीरा, देवदारु, चव्य, छोटी इलायची, सेंधानमक, कूठ, रास्ना, गोखुरू, धनिया, हर्रे, बहेड़ा, आमला, नागरमोथा, सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, खस, यवक्षार, तालीस पत्र और तेजपत्र इन सबका कपड़छान किया हुआ चूर्ण १-१ तोला, शुद्ध गुग्गुलु सब दवा के बराबर लेकर गुग्गुलु में आवश्यकतानुसार थोड़ा-थोड़ा घी और थोड़ा-थोड़ा उपरोक्त चूर्ण मिलाकर कूटें, जब सम्पूर्ण चूर्ण गुग्गुलु में अच्छी तरह मिल जाय, तो ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर सुरक्षित रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली, सुबह-शाम वातविकारों में दशमूल क्वाथ के साथ तथा बलवृद्धि और शरीर पुष्टि के लिये गोदुग्ध के साथ दें।

वातरक्त में गोमूत्र या गिलोय (गुर्च) का रस और मधु के साथ दें। उदर-विकारों में पुनर्नवा रस के साथ दें, शिरोरोग में गरम दूध से, मेद रोग में केवल मधु से, पित्त विकार में गुर्च या धनियाक्वाथ के साथ और कफ-दोष में अश्वगंधादि क्वाथ या पीपल के क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग—यह योगवाही रसायन धातुओं का पोषण करता, वात और आम दोष को नष्ट करता तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है। अनुपान भेद से प्रायः सभी रोगों में इसका उपयोग किया जाता है। वात विकारों के लिये तो यह सर्वप्रसिद्ध औषध है। आमवात, गठिया, वातरक्त, भगन्दर, अरुचि, स्त्री-पुरुष के जननेन्द्रिय-विकार, कास-श्वास, धातुक्षीणता, बहुमूत्र, प्रमेह, अर्श और शिरोरोग को नष्ट करने में यह औषध बहुत प्रसिद्ध है। स्थायी कोष्ठबद्धता और स्त्रियों के प्रसव सम्बन्धी विकारों में इससे अच्छा लाभ होता है।

वातवाहिनियों के क्षोभ तथा रक्तवाहिनियों में संचित विष को निकालने में योगराज बहुत कार्य करता है। वृद्धों के लिये तो

यह अमृत तुल्य है। जिनके पेट में वायु के चक्कर उठते हों, उन्हें इसका सेवन अवश्य करना चाहिए। यह दूषित विष के विकार को नष्ट कर बल और स्मृति की वृद्धि करता है।

योगराज गूगल की बनावट में त्रिफला और गुग्गुल की प्रधानता है। आयुर्वेद ने गुग्गुल के अन्दर वातहर, शोधक, सारक, रोचक और कृमिनाशक तथा पौष्टिक गुण बतलाया है।

वातहर शब्द का अर्थ केवल वायु और पवन के दोषों को हरने वाला नहीं है, बल्कि ज्ञान-तन्तु और गति-तन्तु (वातवाहिनी नाड़ी) की खराबी को दूर कर उसका सुधार करना यह भी वातहर शब्द के अन्दर सम्मिलित है।

यह गुग्गुलु मस्तिष्क के तन्तुओं का पोषण करता है, जिस वातव्याधि में मज्जा तन्तु (नरबस) कमजोर पड़ जाते हैं और उनकी गति मन्द हो जाती है। उस वातव्याधि में यह अपना चमत्कारिक गुण दिखलाता है। ऐसी स्थिति में डाक्टर और हकीम जहरीली कुचले की बहुत तारीफ करते हैं, और उसका उपयोग भी करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जहरीली कुचला वास्तव में एक बहुत अच्छा "नरव्हाइटन टानिक" है, परन्तु साथ ही इस बात को भी नहीं भूलना चाहिये कि कुचला एक विष है और गुग्गुलु विष नहीं है। कुचले को २-४ महीने तक लगातार खाने से जिनको वातव्याधि या धनुर्वात छूट चुका है, उन्हें फिर होने का डर रहता है। किन्तु ; इस गुग्गुलु का २-४ वर्ष तक लगातार सेवन करने पर भी किसी तरह की हानि नहीं होती है।

अपने वातहर गुणों के कारण यह बिगड़े और कमजोर पड़े हुए तन्तुओं को बल देता है। ये तन्तु सम्पूर्ण शरीर में फैले हुए रहते हैं। विशेष कर मर्मस्थानों में तो इसका जाल-सा बिछा हुआ रहता है। उदाहरणार्थ—स्त्रियों का गर्भस्थान इन तन्तुओं से आच्छादित होने की वजह से गुग्गुलु की गर्भस्थान पर बहुत अच्छी क्रिया होती है, जिसके परिणाम स्वरूप स्त्रियों के ऋतु दोष सुधारने में और उनको सन्तानोत्पत्ति योग्य बनाने में गुग्गुलु बहुत सहायक

होता है। यह बात शास्त्र और अनुभव से भी सिद्ध है।

वातहर के सिवाय यह उत्तम कृमिनाशक भी है। एलोपैथी की कृमिनाशक औषधियाँ प्रायः जहरीली हुआ करती हैं, परन्तु यह जन्तुघ्न होते हुए भी निर्विष औषध है। बिगड़े हुए रक्त को सुधार कर शरीर के अन्दर संचित भिन्न-भिन्न दोषों और जन्तुओं को नष्ट करने में यह बहुत ही शक्तिशालिनी है। जब शरीर के मर्मस्थान बिगड़ते हैं, और उनका योग्य प्रतिकार न होने से शरीर की रस-रक्तादि सप्तधातुएँ उत्तरोत्तर दूषित होती जाती हैं, उस समय योगराज गुग्गुलु अमृत के समान गुण करता है। शरीर के अन्दर मर्मस्थानों को सुधारने के लिये यह एक बड़ी से बड़ी निर्भय कृमिनाशक औषध है।

वातहर और कृमिनाशक गुण के अतिरिक्त इसमें रोपक, सारक और पौष्टिक गुण भी रहते हैं। शरीर के अन्दर संचित दोषों को खोदकर निकाल देने का यह एक विश्वसनीय उपाय है।

गुग्गुलु के अतिरिक्त योगराज गुग्गुलु का प्रधान द्रव्य त्रिफला है, यह त्रिफला आयुर्वेद की रसायन औषधियाँ हैं। त्रिफला-गुग्गुलु की उष्णता और उग्रता को कम कर उसके गुणों की वृद्धि करता है।

इस प्रकार गुग्गुलु और त्रिफला का यह महान योग चर्मरोग, कुष्ठ, बवासीर, प्रमेह, ग्रहणी और भगन्दर के समान दुष्टव्याधियों को नष्ट करने में समर्थ हो तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है। अगर योगराज गुग्गुलु लम्बे समय तक उचित पथ्य-परहेज के साथ सेवन किया जाय तो यह विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है कि आयुर्वेद-शास्त्र में बतलाये गये रोगों में यह औषध बहुत उत्तम परिणामदायक होगी।

योगराज गुग्गुलु त्रिदोषनाशक माना जाता है। पित्त का कार्य्य पाचन वगैरह करना है, उसमें यदि शिथिलता आ जाय तो उसे यह दूर कर देता है। इसी प्रकार कफ का कार्य सारे शरीर की रस क्रिया को व्यवस्थित रख कर शरीर में स्निग्धता और तृप्ति प्रदान करने का है। इस कार्य में योगराज गुग्गुलु बहुत सहायता देता

है। पित्त तथा रस को उत्पन्न करनेवाली आशयों (सिस्टम्स) को यह योगराज नियमित करता है। इन दोषों को नियमित करने की शक्ति योगराज गुग्गुलु में इसलिये है कि मज्जातन्तु समूह के ऊपर यह अपना सीधा प्रभाव डालता है। मज्जातन्तुओं पर असर होने से सम्पूर्ण मर्म स्थान और पित्त तथा कफ की क्रिया भी नियमित हो जाती है, क्योंकि पित्त की क्रिया मज्जातन्तु और वायु चक्रों के अधीन रहती है। अतएव आयुर्वेद के अन्दर कफ और पित्त को पंगु (लंगड़ा) बतलाया गया है। सच बात तो यह है कि शरीर का सारा व्यापार वात के अधीन है और योगराज गुग्गुल उसी वात तंत्र पर अपना सीधा असर डालकर उसकी क्रिया को व्यवस्थित कर देता है, और उसी के द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वह सम्पूर्ण दोषों को दूर करता है। —वैद्यकल्पतरु

रास्नादि गुग्गुलु

रास्ना का कपड़छान चूर्ण ४ तोला और शुद्ध गुग्गुलु ५ तोला दोनों को एकत्र मिला उसमें आवश्यकतानुसार घी डाल कर कूटें और १-१ माशे की गोली बना कर रख लें। —ग० नि०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम दशमूल क्वाथ या रास्नादि क्वाथ अथवा गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से गृध्रसी, आमवात, गठिया, संधिवात आदि अनेक वात-विकार दूर हो जाते हैं। कर्णरोग, शिरोरोग, नाड़ी व्रण, नासूर और भगन्दर में भी यह गुणकारी है।

लाक्षादि गुग्गुलु

लाख, अस्थिसंहार (हर सिंगार की छाल, या हरजोड़ घास विशेष) अर्जुन की छाल, असगंध और नागबला प्रत्येक का कपड़छान चूर्ण समान भाग और शुद्ध गुग्गुलु सबके बराबर लेकर उसमें अन्य ओषधियों के चूर्ण मिला सबको अच्छी तरह कूटें। जब गोली बनने योग्य हो जाय, तब ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-२ गोली सुबह-शाम मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—अस्थि (हड्डी) के विकारों के लिए यह बहुत उत्तम औषधि है। इसके सेवन से शरीर के किसी भी भाग की हड्डी में चोट लग गयी हो, या दर्द होता हो अथवा हड्डी टूट गयी हो, तो उसमें यह बहुत फायदा करता है।

सप्तविंशति गुग्गुलु

त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, बायबिडंग, गिलोय, चित्रकमूल, कचूर, छोटी इलायची, पिपरामूल, हाऊबेर, देवदारु, तुम्बुरू (नैपाली धनियाँ—तेज बल के फल) पोहकरमूल, चव्य, इन्द्रायण की जड़, हल्दी, दारुहल्दी, विडनमक, काला नमक, यवक्षार, सज्जीखार, सेंधा नमक और गजपिप्पली प्रत्येक का कपड़छान किया हुआ चूर्ण १-१ तोला, शुद्ध गुग्गुलु ५४ तोला लें। प्रथम गुग्गुलु में थोड़ा घी मिला कर थोड़ा-थोड़ा चूर्ण मिला कर कूटने जायें। जब गोली बनाने योग्य हो जाए, तो ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भैं० र०

मात्रा और अनुपान—१-२ गोली सुबह-शाम। दिन में दो बार मधु से दें। ऊपर से मंजिष्ठादि क्वाथ पिला दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से भगन्दर, बवासीर, नासूर, नाड़ी व्रण, दुष्टव्रण आदि में विशेष फायदा होता है। हृदय और पसली के दर्द, कुक्षि, बस्ति (पेड़), गुदामार्ग और मूत्रनली के विकार इसके सेवन से नष्ट होते हैं। अन्त्र वृद्धि, श्लीपद, उन्माद, शोथ, कृमि, कुष्ठादि चर्म रोगों में भी उत्तम फल देने वाला है।

सिंहनाद गुग्गुलु

हरड़, बहेड़ा, आँवला, प्रत्येक (३ सेर ३ छटाँक १ तोला), गुग्गुलु ६४ तोला (ढीली पोटली में बंधा हुआ) इन्हें एकत्र कर १ मन ३६ सेर १२ छटाँक ४ तोला जल में डालकर क्वाथ करें। जब चतुर्थांश (१९ सेर ३ छटाँक १ तोला) जल रह जाय, तब उतार कर क्वाथ को छान लें और पोटली स्थित गुग्गुलु को पृथक् कर ६४

तोले कड़ुए तैल के साथ मर्दन करें। फिर इसे उसी क्वाथ में डालकर पकावें। आसन्न पाक-काल में—सोंठ, काली मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, मोथा, बायबिडंग, देवदारु, गिलोय, चित्रकमूल, निशोथ, दन्तीमूल, चव्य, शूरण (जमीकन्द), मानकन्द, पारा, गंधक (कज्जली) प्रत्येक ४-४ तोला, विशुद्ध जयपाल १००० (संख्या में) लें। इन्हें चूर्ण कर के प्रक्षेप दें और अच्छी प्रकार आलोडन कर मिला दें। फिर २-४ रत्ती की मात्रा में इसकी गोली बना, छाया में सुखा कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम गर्म जल या दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके प्रयोग से वात रक्त, गुल्म, शूल, उदर रोग, कुष्ठ तथा कठिन से कठिन आमवात रोग दूर होता है। नियमित रूप से गुग्गुलु का व्यवहार करने से आमवात, पक्षाघात, सन्धिवात आदि रोग आराम होते हैं। आम वात की यह श्रेष्ठ औषध है।

हरीतक्यादि गुग्गुलु

हर्रे, सोंठ और विधारे की जड़ का चूर्ण १-१ तोला लेकर सब को ६ तोला गुग्गुलु में मिला आवश्यकतानुसार अण्डी का तेल मिला एक दिन तक खरल कर १-१ माशे की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। —वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम गर्म जल या दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से आमवात, वातव्याधि, पीठ, कमर, जाँघ आदि में दर्द, बद्धकोष्ठता आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। यह वातघ्न, दीपन-पाचन और मृदुरेचक भी है। आमानुबंधी वात में इसके उपयोग से कब्जियत दूर हो जाती और पाचक रस की उत्पत्ति हो, आम संचय नष्ट हो जाता है।

अवलेह-पाक प्रकरण

क्वाथादीनां पुनः पाकात् घनत्वं सा रसक्रिया ।
सोऽवलेहश्च लेहःस्यात्तन्मात्रा स्यात्पलोन्मिता ।।

—शा० म० ख०

अर्थात् क्वाथ (काढ़ा), रस, फाण्ट आदि को फिर पकाकर जो गाढ़ा किया जाता है, उसको रसक्रिया, अवलेह और लेह कहते हैं। (इसके पाक दो तरह के होते हैं, जो चाटने योग्य पतला हो वह अवलेह और जो गाढ़ा हो उसे पाक कहते हैं) इसकी मात्रा ४ तोला है।

अवलेह में पड़नेवाली काष्ठौषधियाँ तथा सुगन्धित औषधियाँ अलग-अलग कूट-पीसकर डालें, और दाख, नारियल की गिरी और बादाम आदि के छोटे-छोटे टुकड़े करके मिलावें। खस और चिरौंजी आदि यथावत् ही रहने दें। जब पाक की चासनी हो जाये, तब उसमें पिसी हुई काष्ठौषधियों के चूर्ण मिलावें। इनके मिल जाने पर चासनी कुछ गरम रह जाय तब इलायची, लौंग आदि सुगन्धित वस्तुओं को डालें फिर करछी से चलावें, बाद में दाख आदि मेवा मिलावें।

केशर को घी में पीसकर मिलावें। पाक में यदि अफीम डालना हो, तो दूध में पीस कर पाक में छोड़ें। यदि भाँग डालनी हो, तो उसे मन्दाग्नि पर भूने और चूर्ण कर डाल देवें, फिर अवलेह को करछी से चलावें, जिससे सब एक में मिल जाय। परन्तु इस बात पर ध्यान रखें, कि प्रक्षेपवाली औषधि डालने के समय पाक के नीचे तेज अग्नि न हो, नहीं तो प्रक्षेपवाली औषधियों में अधिक ताप लगने से बलहीन हो जाएँगी।

पाक में यदि भस्में या कस्तूरी आदि मिलानी हो, तो वैद्य लोग अपने अनुमान से डालें। पाक को नीचे उतारकर थाली में जमावें,

फिर सोने या चाँदी का वरक लगाकर छोटी-छोटी कतरी काटकर अच्छे पात्र में रखें।

बरसात के समय यदि पाक या अवलेह बनाना हो, तो बहुत कम बनावें, जिससे जल्दी समाप्त हो जाय। ज्यादा बनाकर रखने से उसमें फफुन्द (फुफड़ी-जाली) पड़ जाने से उसका स्वाद विकृत होकर गुणहीन हो जाता है। अतः थोड़ा बनाकर उसे लगातार दो-तीन दिन तक घाम में रखकर फिर उसे भलीभाँति बाँधकर रखें, जिससे वर्षाकाल में उसमें छोटे-छोटे जीव न उत्पन्न हो जाएँ।

पाक के लिए सफेद-निर्मल और गुणकारी मिश्री अथवा शक्कर लें, यदि उसमें मैल हो, तो मैल निकाल दें। मैलवाली चीनी हो, तो उसे कड़ाही में चढ़ा जल डालकर औटावें। औटाते समय गाय का दूध और जल डालकर शुद्ध कर लें। उसका मैल जब चासनी पर आ जाए, तब पात्र पर दो लकड़ी रखकर उस पर झाली रखें और उस पर कपड़ा बिछा चासनी को कड़ाही में से लेकर झाली (टोकरी) में डालें, तो चासनी में से रस निकलकर कपड़े में से छनता हुआ नीचे के पात्र में जा गिरता है (इसे हलवाई लोग "बक्खर" कहते हैं।) चीनी की मैल कपड़े में और झाली में रह जाती है, इस प्रकार दो-तीन बार करने से चीनी की मैल निकलकर चीनी स्वच्छ-साफ हो जाती है। ऐसी स्वच्छ चीनी अवलेह, पाक या मोदक बनाने के काम में लें।

पूर्वोक्त प्रकार से औषधियाँ डालकर अवलेह जब तैयार हो जाता है, तो वह करछी या कूंचे से उठाने पर तार-सा बाँधकर उठता है। थोड़ा ठण्डाकर जल में डालने से जल में डूबकर एक जगह रह जाता है—बिखरता—फैलता नहीं। ठण्डा होने पर अँगुली से दबाने पर उसमें अँगुलियों की रेखा के निशान बन जाते हैं तथा जिस द्रव्य का अवलेह बनाया हो, उसकी सुगन्ध उसमें आने लगती है।

अवलेह में औषधियों के चूर्ण से मिश्री चौगुनी, गुड़ दुगुना और क्वाथादि द्रव (पतला) पदार्थ चौगुने लें।

प्रथम घी, तैल आदि स्नेहों को कड़ाही में चढ़ाकर गर्म करना चाहिए और यदि आँवले का कल्क, पेठा आदि स्नेह में भूनने योग्य पदार्थ हों, तो उन्हें भी इसी समय भून लेना चाहिए। फिर जब कल्कादि भुन जाएँ, तो उनमें क्वाथादि द्रव पदार्थ और चीनी, गुड़ आदि मिलाकर पका लेना चाहिए। जब चासनी तैयार हो जाए और उसमें तार छूटने लगे तो प्रक्षेप द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर कौंचे आदि से खूब घोटना चाहिए और नीचे उतारकर ठण्डा होने पर शहद मिलाकर मिट्टी या पत्थर अथवा चीनी आदि के चिकने पात्र में भरकर रख देना चाहिए।

अगस्त्य हरीतकी

बड़ी हरें १०० नग, जौ ३ सेर ३ छटांक १ तोला, दशमूल एक सेर, चित्रक, पिपलामूल, अपामार्ग, कपूरकचरी, कौंच के बीज, शंखपुष्पी, भारंगी, गजपीपल, खरैंटी और पुष्कर मूल प्रत्येक ८-८ तोला लें। बड़ी हरें और जौ को एक पोटली में बाँधें, और बाकी द्रव्यों को मिला कर अधकुटा करके पौने १६ सेर पानी में पकावें तथा इसी में उक्त पोटली रख दें। जब हरें और जौ उबल जाय तथा क्वाथ तैयार हो जाय, तो उतार लें। इस क्वाथ को छान कर इसमें उबाली हुई हरड़ को मिलावें। फिर उसमें घृत और तैल १६-१६ तोला तथा गुड़ ऽ५ सेर मिला कर पकावें। अवलेह सिद्ध होने पर तथा ठण्डा होने पर मधु और पिप्पली चूर्ण प्रत्येक १६-१६ तोले मिलाकर सुरक्षित रख लें। —शा० ध०

मात्रा और अनुपान—इसमें से १ हरड़ प्रातः और १ सायंकाल खाकर अवलेह चाट लें। ऊपर से गरम जल या दूध पी लिया करें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से दमा, क्षय, खाँसी, ज्वर, अर्श, अरुचि, पीनस तथा ग्रहणी रोग का नाश होता है। यह अवलेह रसायन तथा बल-वर्ण का देने वाला है। इस अवलेह में हरें की प्रधानता है। आयुर्वेद में हरीतकी के गुण-धर्मों का वर्णन बहुत विस्तार से है।

हर्रे का प्रधान कार्य शरीर से विजातीय द्रव्यों को बाहर निकाल कर शरीर के प्रत्येक अङ्ग की क्रियाशीलता को व्यवस्थित करना है। इन विजातीय तत्त्वों के बाहर निकल जाने के पश्चात् जठराग्नि प्रबल हो जाती, भूख लगने लगती और बदहजमी तथा अपचन के कारण होने वाले संग्रहणी, अतिसार आदि रोग अच्छे हो जाते हैं।

अगस्त्य हरीतकी—मृदु विरेचक भी है, इसीलिये अर्श (बवासीर) वाले को विशेष लाभ करता है। यह रसायन, कामोद्दीपक और अवस्था स्थापक भी है। बद्धकोष्ठ वाले को गर्म जल के साथ सेवन करने से एक-दो दस्त साफ हो जाता है। इससे न तो पेट में मरोड़ चलती है और न किसी प्रकार की तकलीफ ही होती है। अधिक दिनों तक भी इसके सेवन से किसी प्रकार की हानि नहीं होती। हृदय और रक्तवाहिनी सिराओं की शिथिलता दूर करने के लिए इसका सेवन किया जाता है। रक्ताभिसरण क्रिया में सुधार होने से मस्तिष्क में रक्त अधिक पहुँचता है, जिससे मस्तिष्क में तरावट आती है, निद्रा अच्छी आती, वीर्य गाढ़ा हो जाता और स्त्री संभोग में आह्लाद उत्पन्न होता है। शरीर की कान्ति में परिवर्तन होकर वजन बढ़ जाता है। परन्तु कम से कम १ माह सेवन करने पर ये लाभ होते हैं।

कफघ्न होने के कारण दमा, खाँसी, श्वास, यक्ष्मा आदि में बहुत उपकार करता है।

अफीम पाक

छोटी इलायची के बीज १ तोला, अकरकरा १ तोला, बंसलोचन २ तोला, छोटी पीपर २ माशे, बहमन सूर्ख ६ माशे, भीमसेनी कपूर ३ माशे, जावित्री २ माशे, जायफल ३ माशे, कस्तूरी १ माशा, अविध मोती ३ माशा, सोने का वर्क ७ नग, चाँदी का वर्क ३१ नग लाकर रखें।

मोती, कस्तूरी, कपूर और वर्कों को अलग रखें, शेष दवाओं का कपड़छान चूर्ण कर लें और मोती को अर्क गुलाब में १२ घण्टे

खरल करें, पीछे इसमें कस्तूरी, कपूर और वर्क डाल कर २ घण्टे तक घोट कर पूर्वोक्त चूर्ण मिला दें।

अब दो तोले अफीम को एक कलईदार कटोरी में रख उसमें अन्दाज से पानी डालकर खूब मन्दी आँच पर पकावें, जब उसकी गाढ़ी लेई सी और पतली चासनी हो जाय, तो नीचे उतार लें, और गरम रहते-रहते उक्त दवाओं का चूर्ण इसमें मिला दें और खूब एक दिल कर दें, फिर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना कर रख लें।

—चि० च०

मात्रा और अनुपान—१-२ गोली, मिश्री मिला हुआ दूध के साथ।

गुण और उपयोग—जिसको जितनी अफीम का अभ्यास हो, वह उसी हिसाब में (एक या दो गोली) सेवन करे। जिसको अफीम का अभ्यास न हो, पर जुकाम या खाँसी पीछा न छोड़ते हों, वह सन्ध्या समय १ गोली खाकर मिश्री मिला दूध पी ले। इससे शीघ्र ही लाभ होगा। स्त्री प्रसंग करने से दो घण्टे पूर्व इसे दूध के साथ सेवन करने से स्त्री प्रसंग में अपूर्व आनन्द आता है। प्रमेह में भी इससे लाभ होता है। इसके सेवन से शरीर का दर्द, लकवा, कानों की सन-सनाहट, दिल की कमजोरी और मसूढ़ों की सूजन प्रभृति रोग आराम होते हैं।

ध्यान रहे यह पाक वात या कफ प्रकृति वालों को ही विशेष लाभ करता है, इसकी मात्रा बढ़ानी नहीं चाहिए। सदा एक समान मात्रा में ही इसका सेवन करना गुणदायक है। जिन्हें अफीम खाने की आदत नहीं है उन्हें यह प्रारम्भ में दस्त कब्ज करती है, परन्तु दूध पीने से कब्जी दूर हो जाती है। विशेष मात्रा में इसके सेवन से पुंस्त्व शक्ति का ह्रास हो जाता है, परन्तु ; सदा एक समान मात्रा में सेवन करने से शरीर पुष्ट होता, स्त्री प्रसंग में आनन्द आता और प्रमेहादि रोग भी दूर हो जाते हैं।

अभयादिमोदक

हर्रे, काली मिर्च, सोंठ, बायबिडंग, आँवला, पीपल, पीपलामूल, दालचीनी, तेजपात और नागरमोथा प्रत्येक १-१ तोला, जमालगोटे

की जड़ २ तोला, निशोथ ८ तोला सबको कूट कपड़छान कर महीन चूर्ण बना, इसमें ६ तोला चीनी और जितने में गोली बन सके उतना शहद (मधु) मिला, १-१ तोले की गोली (मोदक) बना, सुरक्षित रख लें। —आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली प्रात:-सायं ठण्डे जल से सेवन करें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से बद्धकोष्ठता (कब्जियत), मन्दाग्नि, विषमज्वर, उदररोग, बवासीर, पाण्डु और वातरोग आदि अनेक रोग नाश होते हैं।

इसमें दन्ती और निशोथ ये दोनों विरेचक औषधियाँ हैं और इनमें भी निशोथ की मात्रा ज्यादा है, निशोथ विरेचन के लिये प्रसिद्ध दवा है। अतः इस मोदक से विरेचन का कार्य बड़ी सुलभता से हो जाता है। यही कारण है कि यह बद्धकोष्ठजनित रोगों में विशेषतया उपयोग किया जाता है और इसके उपयोग से लाभ भी होता है।

अमृतप्राशावलेह

जीवक, ऋषभक, विदारी कन्द, सोंठ, जीवन्ती, कचूर, सरिवन, पिठवन, जंगली उड़द (वनमाष), जंगली मूंग (वनमूंग), मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, कटेरी (छोटी कटाई-भट-कटैया), बड़ी कटाई, सफेद पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, मुलेठी, कवाँच के बीज, शतावर, ऋद्धि, फालसा, भारङ्गी मूल, मुनक्का, गोखरू छोटा, छोटी पीपल, सिंघाड़ा, भुई आँवला, दुद्धी, कंघी, पद्माख, वरियार, उन्नाव, अखरोट, पिण्डखजूर, बादाम, पिस्ता, चिलगोजा, खुरमानी, चिरौंजी, प्रत्येक १-१ तोला लें। इनका कपड़छान चूर्ण कर, जल में पीसकर कल्क बना लें, फिर उसमें ताजे आँवले का रस ६४ तोला, ताजी शतावरी का रस ६४ तोला, विदारी कन्द का स्वरस ६४ तोला, बकरी के मांस का रस ६४ तोला, बकरी या गाय का दूध ६४ तोला, गौ का घृत १२८ तोला मिलाकर घृतपाक विधि से घृत

तैयार करें, घृत सिद्ध होने पर कपड़े से छानकर उसमें ३२ तोला शहद और मिश्री ६४ तोला तथा तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर, दालचीनी और कालीमिर्च प्रत्येक का महीन चूर्ण २-२ तोला और बंशलोचन का चूर्ण १६ तोला सबको यथायोग्य मिलाकर काँच के बर्तन में सुरक्षित रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—आधा तोला से १ तोला तक गौ या बकरी के दूध के अनुपान से दें।

गुण और उपयोग—यह उत्तम पौष्टिक है। खाँसी, क्षय, दमा, दाह, तृषा, रक्तपित्त और शुक्रक्षय में इसका प्रयोग करें, कृश और जिनके शरीर का वर्ण और स्वर क्षीण हो गया हो उनको, तथा विशेष स्त्री-प्रसङ्ग करनेवालों को और रोगों से कृश हुए को यह पुष्ट करता है। राजयक्ष्मा और बच्चों के सूखा रोग में इसके सेवन से विशेष लाभ होता है।

नोट—इस योग में माँस-रस भी देने का विधान है। श्रीयुत आचार्य यादवजी का कहना है कि जो मांसाहारी न हों, उन्हें मांस-रस के स्थान पर उड़द का क्वाथ डालकर यह योग तैयार करना चाहिये।

अम्लपित्तहर पाक

त्रिकटु (सोंठ, पीपल, मिर्च), त्रिफला, भृङ्गराज, दोनों जीरा, धनिया, कूठ, अजमोद, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, काकड़ासिंगी, कायफल, नागरमोथा, इलायची, जायफल, जटामाँसी, तमालपत्र, तालीसपत्र, नागकेशर, अजवायन, कचूर, मुलेठी, लौंग और लाल चन्दन सब समभाग लें। सोंठ का महीन चूर्ण सब चूर्ण के बराबर और मिश्री सबसे दुगुनी, गाय का दूध चौगुना मिलाकर पाक विधान से विधिवत् पाक तैयार कर सुरक्षित काँच के वर्तन या चिकने पात्र में रख लें। —वै० क० द्रु०

मात्रा और अनुपान—१-१ तोला, सुबह-शाम गरम दूध या पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से अम्लपित्त, अरुचि, शूल,

हृद्रोग, वमन, कण्ठदाह, हृदय की जलन, शिर दर्द आदि रोग नष्ट होते हैं तथा यह बलवर्द्धक और पौष्टिक भी है।

इसमें अभ्रक और लौहभस्म के सम्मिश्रण होने से यह अम्लपित्त में विशेष गुण करता है। अभ्रकभस्म अम्लपित्त के लिये महौषध है।

अश्वगन्धा पाक

असगन्ध के ३२ तोले महीन चूर्ण को ६ सेर गो-दूध में पकावें, गाढ़ा होने पर उसमें चतुर्जात (दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, इलायची) १ तोला, जायफल, केशर, बंशलोचन, मोचरस, जटामांसी, चन्दन, खैरसार, जावित्री, पीपल, पीमलामूल, लौंग, कंकोल, पाढ़, अखरोट की गिरी, शुद्ध भिलावा, सिंघाड़ा, गोखरू, रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, नागभस्म, वंगभस्म, लौहभस्म प्रत्येक ६-६ माशे लेकर काष्ठौषधियों का महीन चूर्ण बना, सबको एकत्र मिला, चीनी की चाशनी में मिला, पाक विधि से पाक तैयार कर सुरक्षित रख लें।

—यो० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ तोला, सुबह-शाम शहद, गो-दुग्ध या जल से देना चाहिये।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से प्रमेह रोग नष्ट होता, शुक्र की वृद्धि होती तथा शारीरिक कान्ति अच्छी बन जाती है। यह पौष्टिक, बलवर्द्धक तथा अग्नि प्रदीपक है।

वात-पित्त प्रधान रोगों में इसका उपयोग विशेष रूप से किया जाता है। शुक्र-विकार—जैसे धातु की कमजोरी, स्वप्नदोष हो जाना, पेशाब के साथ धातु जाना आदि विकारों में इस पाक का निर्भय होकर प्रयोग करना चाहिये।

इसके अतिरिक्त वात के कारण शरीर में दर्द होता हो, तो इसमें भी यह दवा बहुत लाभ करती है। इसका असर वृक्क और शुक्राशय तथा वातवाहिनी नाड़ी पर विशेष होता है। अतएव यह उक्त रोगों में लाभ करता है।

अष्टाङ्गावलेह

कायफल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी, त्रिकुटा, धमासा, कालीजीरी प्रत्येक समान भाग लेकर कूट कपड़छान चूर्ण बना, शहद मिला कर रख दें या इस चूर्ण को शहद मिलाकर चाटें। —र० र०

मात्रा और अनुपान—२-३ माशे सुबह-शाम सेवन करें। कफाधिक्य में अदरक रस के साथ तथा पित्ताधिक्य में दूध के अनुपान से दें।

गुण और उपयोग—इसका उपयोग कफजनित रोगों में विशेष किया जाता है। जैसे—कफज्वर में खाँसी, श्वास अधिक होने पर या कफ छाती में बैठ गया हो, किन्तु निकलता न हो तो उस हालत में भी कफ निकालने के लिये इसे देते हैं। न्यूमोनिया आदि रोगों में भी कफ न निकलने पर खाँसी होने से भयंकर कष्ट होता है। ऐसी दशा में इस अवलेह से कफ सरलता से निकल जाता और रोगी को आराम भी मिलता है।

आमलक्याद्यवलेह

यन्त्र द्वारा निकाला हुआ आँमले का स्वच्छ रस ४ सेर को मन्दाग्नि पर पकावें, आधा सेर शेष रहने पर उतार लें, फिर पीपल २० तोला, मुनक्का २० तोला, मुलैठी २ तोला, बंशलोचन ४ तोला और सोंठ १ तोला लें। मुनक्का के बीज निकालकर पीस लें और शेष दवाओं का महीन चूर्ण बना, सबको एकत्र मिलाकर तीन पाव चीनी की चाशनी बना, उसमें इस चूर्ण को मिला दें। फिर पाव भर शहद मिलाकर सुरक्षित रख लें। —आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान—६ माशा से १ तोला तक गोमूत्र या छाछ (मट्ठा) के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसका उपयोग पाण्डु और कामला रोग में विशेष किया जाता है। पाण्डु रोग में तो यह बहुत ही लाभ करता है। इसमें आमले का स्वरस विशेष होने से यह रक्त कणों की वृद्धि कर पाण्डु रोग नष्ट करता है।

आम्र पाक

पके आमों का रस १०२४ तोला, चीनी २५६ तोला, घृत ६४ तोला, सोंठ ३२ तोला, काली मिर्च १६ तोला, पीपल ८ तोला और जल २५६ तोला लें। चूर्ण करने योग्य औषधियों का चूर्ण करके सबको एकत्र मिला, मिट्टी के बर्तन में पकावें और लकड़ी की कलछी से चलाते रहें। जब गाढ़ा हो जाय तब उतार कर निम्नलिखित चूर्ण मिला दें।

धनिया, जीरा, हर्रे, नागर मोथा, चीता, दारचीनी, जीरा, पीपलामूल, नागकेशर, छोटी इलायची, लवंग और जायफल प्रत्येक ४-४ तोला लेकर, इनको कूट कपड़छान चूर्ण बना, मिला दें। पाक जब ठंडा हो जाय, तब शहद ३२ तोला पाक में मिला कर सुरक्षित रख लें। —भा० प्र०

मात्रा और अनुपान—इसे भोजन से पहले २ तोला से २॥ तोला तक गोदुग्ध या जल के साथ लें।

गुण और उपयोग—यह अत्यन्त बाजीकर, पौष्टिक, बलदायक, ग्रहणी, क्षय, श्वास, अम्लपित्त, अरुचि, रक्तपित्त और पाण्डुरोग नाशक है।

केवल आम का ही रस यदि गोदुग्ध के साथ क्षय, संग्रहणी, श्वास, रक्तपित्त, वीर्य विकार आदि वाले रोगी को सेवन कराया जाय तो आशातीत लाभ होता है। इन रोगों में आम्रपाक से भी बहुत लाभ होते देखा गया है। कारण उत्तम जाति के आम के पके हुए रस में मनुष्य के पोषण करने वाले प्रायः सभी तत्व विद्यमान रहते हैं। इसके मीठे रस में बिटामिन "ए" और "सी" दोनों प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इनमें से बिटामिन "ए" रोगी को बाहर के विषों और कीटाणुओं के प्रभाव से बचाता है, और विटामिन "सी" चर्मरोगों को नष्ट करता है।

दूध के साथ इस पाक को खाने से पौष्टिक और बलवर्द्धक गुणों में बहुत वृद्धि हो जाती है। यह पाक मृदुरेचक होने से दस्त भी साफ

लाता है। अत: जिन लोगों को दस्त में कब्जियत रहती है, उनके लिये यह रेचक का भी काम करता है। आमाशय सम्बन्धी रोगों में भी इससे लाभ होता है, अतएव संग्रहणी आदि रोगों में इसका उपयोग किया जाता है। यह रक्त, वीर्य, माँस आदि को बढ़ाता है।

वीर्यवर्द्धक होने के कारण—शुक्र विकार वाले रोगी भी इससे लाभ उठाते हैं। शुक्र विकार वाले रोगी को प्राय: दस्त की कब्जी और शरीर में रक्त की कमी ये शिकायतें बनी ही रहती हैं। इन दोनों विकारों को दूर करने के लिए आम्रपाक का सेवन करना सर्वोत्तम है।

आर्द्रक पाक

अदरक के छिले हुए छोटे-छोटे टुकड़े आधा सेर, गुड़ आधा सेर और घी पाव भर लें। प्रथम अदरक को घी में लाल होने तक खूब भूने, फिर गुड़ की चासनी बना, उसमें अदरक के टुकड़े मिलाकर इन दवाओं का चूर्ण मिलावें। सोंठ, जीरा, काली मिर्च, नागकेशर, जाविञी, इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, पीपल, धनिया, कालाजीरा, पीपलामूल और वायबिडंग प्रत्येक ६-६ माशे लेकर कूट कपड़छान चूर्ण बना, उपरोक्त पाक में मिलाकर सुरक्षित रख लें। —यो० चि०

मात्रा और अनुपान—१ तोला से २ तोला तक, सुबह-शाम उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से श्वास, कास, स्वरभंग, अरुचि, स्मरण शक्ति की कमी, सूजन, ग्रहणी, शूल आदि रोग नष्ट होते हैं।

वात और कफ प्रधान रोगों में इस पाक के उपयोग से अच्छा लाभ होता है। यह कफघ्न है अतएव श्वास, कास, स्वरभंग आदि रोगों में कफ-विकार दूर करने तथा श्वास नली को साफ करने के लिये प्रयोग किया जाता है।

अन्नादिक से अरुचि होने पर —अदरक और सेंधा नमक मिलाकर भोजन से पूर्व ४-५ टुकड़े खा लेने की प्राचीन प्रथा है। आज भी बहुत लोग इस प्रथा को मानते हैं और तदनुसार इससे लाभ उठाते

हैं, ऐसी दशा में अदरक-पाक खाने से पूर्ण लाभ होता है। वातघ्न होने के कारण पेट का दर्द या शरीर के किसी अंग में दर्द होने पर इस पाक के सेवन से बहुत लाभ होता है।

एरण्ड पाक

अण्डी (एरण्ड) के बीज की गिरी १ सेर को ८ सेर दूध में पकावें, जब खोया हो जाय तो गिरी को महीन पीसकर घी में मन्दाग्नि से भून लें, जब खूब लाल हो जाय तब उसमें—त्रिकटु, लौंग, इलायची, दारचीनी, तेजपात, नागकेशर, असगंध, सोया, रास्ना, पीपलामूल, रेणुका, शतावर, लोहभस्म, पुनर्नवा, काली निशोथ, खस, जावित्री, जायफल और अभ्रकभस्म लें, इनमें लौह और अभ्रकभस्म को छोड़ कर शेष काष्ठौषधियों का कपड़छान महीन चूर्ण बना, ४ सेर चीनी की चासनी बना कर उसमें इन दवाओं को मिला, पाक विधान से पाक कर लें। —वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ तोला तक, गर्म दूध या पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से लकवा, पंगुपन, आमवात, उरुस्तम्भ, शिरागत वायु, कटिवात, बस्तिवात, कोष्ठगत वात, वृषणवृद्धि, पेटशूल, सूजन, उदरशूल, अपेण्डिसाइटिस आदि रोग नष्ट होते हैं। यह पाक सारक और वातनाशक दवाओं में अपना प्रधान स्थान रखता है।

कमजोर मनुष्यों की शक्ति बढ़ाने के लिये इसका सेवन करना बहुत लाभदायक है, इससे खाया हुआ अन्न हजम हो कर दस्त साफ होता है और शारीरिक शक्ति बढ़ती है। नवीन अर्दित रोगी के लिये यह अनुभूत और परीक्षित दवा है।

स्रंसन अथवा स्निग्ध होने के कारण यह पाक आँतों की श्लैष्मिक त्वचा को मुलायम करके उसमें जमी हुई मल की गांठ को ढीला करके बहुत सरलता से बाहर निकाल देता है। यह पाक सौम्य और वातघ्न होने के कारण विशेष मात्रा में सेवन करने पर भी कोई ज्यादा

हानि नहीं करता, सिर्फ दो-एक दस्त ज्यादे ला देता है। यह दुग्ध-वर्धक भी है। जिस स्त्री को दूध कम होता हो, वह यदि इसका सेवन करे तो इसके सेवन से दूध बढ़ जाता है। अपेण्डिसाइटिस में—जब दर्द बहुत जोर होने लगता है, दस्त भी साफ नहीं आता, ज्वर हो जाता, वमन भी होने लगता, नाड़ी की गति भी तेज हो जाती, रोगी इन उपद्रवों से बेचैन हो जाता है। इसमें एरण्ड तैल में हींग मिलाकर इसकी बस्ति (एनिमा) दें, और साथ ही इस पाक का भी सेवन करावें, तो इससे उपरोक्त सब उपद्रव दूर हो जाएँगे।

कटकायवलह

पाँच सेर छोटी कटेरी को छोटे-छोटे टुकड़े कर १२ सेर १३ छटाँक जल में पकावें। जब चौथाई जल बाकी रहे तब छान कर उस काढ़े में—गिलोय, चव्य, चित्रक की जड़, नागरमोथा, काकड़ासिंगी, पीपल, मिर्च, सोंठ, जवासा, भारंगी, रास्ना और कचूर प्रत्येक औषधि ४-४ तोला लेकर चूर्ण बना लें। फिर १ सेर मिश्री लेकर उपरोक्त काढ़े में डाल कर चासनी बनावें। इसमें कड़ुआ तैल और गो-घृत ३२, ३२ तोला डालकर सब चूर्ण मिला दें। जब अवलेह सिद्ध हो जाय, तब उतार कर ठंढा कर लें। फिर इसमें ३२ तोला शहद, १६ तोला बंशलोचन और १६ तोला पीपरि का चूर्ण भी मिलाकर सुरक्षित पात्र में रख दें। —शा० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से २ तोला, सुबह-शाम उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से श्वास, कास, हिचकी, कफ छाती में बैठ जाना आदि रोग नष्ट होते हैं।

इसका उपयोग विशेष कर खाँसी और श्वास रोग में किया जाता है। खाँसी चाहे सूखी या गिली कैसी भी हो, दोनों में लाभ करती है। सूखी खाँसी में छाती में बैठे हुए कफ को निकालता है और गीली खाँसी में दूषित नवीन कफ नहीं बनने देता। इस तरह दोनों में

यह गुण करता है। यह श्वास के दौरे को भी रोकता है। इसके खाने से श्वास नली में चिपके हुए कफ आसानी से पिघल कर निकल जाते हैं, फिर श्वास के आवागमन में सरलता हो जाने से श्वास का दौरा कम हो जाता है। ज्वरादिक उपद्रव में कभी-कभी खाँसी बहुत उग्र रूप धारण कर लेती है, जिससे रोगी परेशान हो जाता है। इसमें कंटकार्य्यवलेह के सेवन से ज्वर और खाँसी दोनों को लाभ होता है।

कामेश्वर मोदक

कूठ, गिलोय, मेथीबीज, मोचरस, विदारीकन्द, मूसली, गोखुरू-बीज, तालमखाना-बीज, शतावर, कसेरू, अजवाइन, तालाँकुर (मखाना), धनियाँ, मुलहठी, नागबला, तिल, सौंफ, जायफल, सेंधानमक, भारंगी, काकड़ासिंगी, त्रिकटु, जीरा, कालाजीरा, चित्रक, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, दालचीनी, पुनर्नवा, गजपिप्पली, द्राक्षा, कचूर, कायफल, सेमल की जड़, त्रिफला और कौंच के बीज प्रत्येक समभाग लेकर कूट-कपड़छान चूर्ण बना लें। इस चूर्ण से चतुर्थांश अभ्रकभस्म लें और अभ्रकभस्म से आधा शुद्ध गंधक का चूर्ण लें। इन सब चूर्णों के आधा भाँग लें। फिर इन चूर्णों से दुगुनी मिश्री या चीनी लेकर चासनी बना, उपरोक्त सब दवा मिलाकर उपयुक्त परिमाण में घृत और शहद मिला मोदक बना लें।

—भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ माशा से ३ माशा तक, गो-दुग्ध के साथ प्रातः काल दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से वीर्यवृद्धि तथा वीर्यस्तम्भन होता है। यह मोदक बाजीकरण और कामाग्नि संदीपक है। निर्बल पुरुषों को बल देता है तथा उरःक्षत, राजयक्ष्मा, कास, श्वास, अतिसार, अर्श, ग्रहणी, प्रमेह तथा श्लेष्मप्रकोप आदि अनेक व्याधियों को नष्ट करता है। यह बुद्धिवर्द्धक भी है।

कासकण्डनोऽवलेह

बकरी के ५ सेर मूत्र को मन्दाग्नि पर पकाकर गुड़पाक के समान गाढ़ा करके, उसमें बहेड़े का चूर्ण ८ तोला, पीपल का चूर्ण ४ तोला, लौहभस्म ४ तोला, कटेली के फलों का चूर्ण ८ तोला मिला कर सुरक्षित पात्र में रख लें। —वृ० यो० त०

मात्रा और अनुपान—२ से ४ माशे की मात्रा में शहद या गरम पानी के साथ प्रातःसायं सेवन करें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से पुरानी खाँसी, जैसे—जो कफ बराबर बनता और गिरता रहता है, ऐसे कफ निकलने में देर नहीं होती, और उसमें किसी तरह की दुर्गन्ध भी नहीं आती, परन्तु जो कफ पुराना हो छाती में बैठ जाता है, खाँसने पर छाती में दर्द होने लगता है, ज्यादा खाँसी होने पर कफ का दुर्गन्धयुक्त टुकड़ा निकलता है, रोगी खाँसी बन्द होने के बाद हाँफने लगता है, रोगी को मन्द-मन्द ज्वर, मन्दाग्नि तथा किसी काम में मन न लगना, किसी से बात करने की भी इच्छा न होना, शरीर में रक्त का अभाव हो जाना आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे रोगी की चिकित्सा करने में वैद्य भी घबड़ा जाते हैं। कभी-कभी रोगी की खाँसी कुछ दब भी जाती है, परन्तु अपथ्यादि सेवन से पुनः उत्पन्न हो जाती है। ऐसी अवस्था में इस अवलेह से काफी लाभ होता है। क्योंकि इसके सेवन से छाती में बैठा हुआ कफ पिघल कर बहुत सरलता से बाहर निकल आता है तथा नवीन विकृत कफ भी नहीं बनने देता है।

कुटजावलेह

कूटजमूलत्वक् ५ सेर को कूटकर २५।। सेर ८ तोला जल में पकावें। जब चौथाई भाग पानी शेष रह जाय, तो छानकर क्वाथ को पुनः पकावें। पाक के अन्त में उसमें सोंचर नमक, जवाखार, विड्नमक, सेंधा नमक, पीपल, धाय के फूल, इन्द्रजौ और काला जीरा—प्रत्येक का मिलित चूर्ण ८ तोले का प्रक्षेप दें और नीचे उतार सुरक्षित रख लें। —भ० र०

मात्रा और अनुपान—४ से ६ माशे की मात्रा में, शहद म मिलाकर प्रातः-सायं इसका सेवन करें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से कच्चे-पके, रङ्ग-विरंगे और वदनायुक्त सब प्रकार के अतिसार, दुःस्साध्य संग्रहणी तथा प्रवाहिका (पेचिश) का नाश होता है।

मरोड़ के दस्तों में जब कि भयंकर रीति से दस्तों में खून गिरता है। उस समय इस अवलेह के सेवन से बहुत जल्द लाभ होता है। चाहे जैसा भी खून के दस्त आते हों या जैसी भी वेदना के साथ दस्त होते हों, इसके उपयोग से शीघ्र लाभ होता है। रक्तातिसार के लिये इससे बढ़कर दूसरी दवा नहीं है। बवासीर और रक्त-पित्त में भी इससे बहुत फायदा होता है। इसके सेवन से शरीर में ताकत आती है। चेहरे का पीलापन मिटता है और आँखों की ज्योति बढ़ती है। प्रमेह और कामला रोगों में भी इससे लाभ होता है।

कूष्माण्ड खण्ड

बढ़िया सफेद कोंहड़े (पेठे) का ऊपर का छिलका उतार द। फिर इसे कलईदार ताम्बे के वर्तन में जल डालकर और उसमें पेठा डालकर औटावें, फिर उसका रस निकाल कर थोड़ी देर धूप में सुखावें। इस रस-रहित द्रव्य को ४०० तोले वजन करके १ सेर घी में भूनें। फिर १६ सेर पेठे के रस में ४०० तोले चीनी डालकर चासनी बनावें। चासनी तैयार होने पर नीचे उतार कर उपरोक्त ४०० तोले भुना हुआ पेठा डाल दें। फिर पीपल, सोंठ, जीरा प्रत्येक ८-८ तोले और दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, काली मिर्च तथा धनियाँ प्रत्येक २-२ तोला—इनके कपड़छान चूर्ण तथा आधा सेर शहद मिला, अवलेह को सुरक्षित रख लें। —आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान—१ से २ तोला, बकरी-दूध के अनुपान से सवन करें।

गुण और उपयोग—इसे रोगी के अग्निबलानुसार यथोचित मात्रा में सेवन करने से रक्त-पित्त, क्षत, क्षय, खाँसी, श्वास, छर्दि, ज्यादे प्यास लगना और ज्वर का नाश होता है। यह अवलेह वृष्य,

नवजीवन देनेवाला, बलवर्द्धक, वर्णशोधक, उरःसंधानकारक, बृंहण, स्वर को तीव्र करनेवाला और अत्युत्तम रसायन है।

रक्त-पित्त की यह बहुत अच्छी दवा है। जिन लोगों को रक्त-पित्त की शिकायत बराबर रहती हो, उनके लिये इसका सेवन विशेष लाभदायक है।

इस अवलेह में कूष्माण्ड (कुम्हड़ा) प्रधान द्रव्य है। अतः इसका गुण-धर्म शीतप्रधान है। अतएव यह रक्त-पित्त शामक है। इसीलिए रक्त और पित्तप्रधान रोगों में इसका विशेष उपयोग किया जाता है।

गोखुरूपाक

६४ तोले गोखुरू के महीन चूर्ण को चौगुने दूध में पका, खोया बनाकर इसे ३२ तोला गोघृत में भून लें। फिर इसमें खैरसार (कत्था), लौंग, लौहभस्म, काली मिर्च, कपूर, सफेद आक की जड़, समुद्रशोख, सफेद जीरा, स्याहजीरा, हल्दी, आँवला, पीपरि, नागकेशर, जाविश्री, जायफल, अजवायन, खस, सोंठ और करंजफल की गिरी—प्रत्येक समभाग ले, कूट-कपड़छान चूर्ण बना लें। इस चूर्ण के समानभाग मिश्री या चीनी की चाशनी बनाकर उपरोक्त सब चीजें मिला दें। बाद में चीनी या मिश्री से आधा भाँग का चूर्ण लेकर मिला करके सुरक्षित रख लें। —यो॰ त॰

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे तक, दूध या ठंढा पानी के साथ लें।

गुण और उपयोग—इसका उचित मात्रा में प्रातः सेवन करने से यह अर्श, प्रमेह और क्षय का नाश करता, शरीर को पुष्ट करता तथा काम-शक्ति बढ़ाता है।

इसका प्रभाव मूत्रपिण्ड और मूत्रेन्द्रिय के श्लेष्म त्वचा पर विशेष होता है। यह मूत्रपिण्ड को उत्तेजित करता है। बस्तिशोथ अथवा मूत्रपिण्ड की सूजन में जब कि मूत्र दुर्गन्धपूर्ण और गन्दला आता हो, इसके सेवन से लाभ होता है। यह पौष्टिक और बलवर्द्धक है।

अतएव शुक्रजनित या प्रमेह रोग से उत्पन्न दुर्बलता को भी दूर करता है। इसी तरह स्त्रियों के गर्भाशय के विकार को दूरकर यह गर्भाशय को सशक्त बना देता है।

चन्दनादि अवलेह

बिजौरा नीबू का रस १ सेर, अनार का रस आधा सेर, नारियल का पानी आधा सेर, चीनी आधा सेर, चन्दन सफेद, बंशलोचन, धनियाँ, अनन्तमूल, शीतलचीनी, खस, केशर, गुलाब के फूल और गिलोयसत्त्व प्रत्येक १-१ तोला लें।

इसे बनाने की विधि यह है कि एक चीनी मिट्टी के पात्र में बिजौरा नीबू का रस, अनार का रस, नारियल का पानी तथा चीनी डालकर चासनी बना लें, जब चासनी ठीक हो जाय, तब नीचे उतार कर उक्त दवाओं का महीन (कपड़छान) चूर्ण मिलाकर अवलेह तैयार करके सुरक्षित रख लें। —आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान—१-२ तोला प्रातः-सायं जल या दूध के साथ।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से हृद्रोग, भ्रम, मूर्च्छा, वमन और भयंकर दाह का नाश होता है।

चित्रक हरीतकी

चित्रक के मूल का क्वाथ ४०० तोला, आँवले का स्वरस अथवा क्वाथ ४०० तोला, गिलोय का स्वरस अथवा क्वाथ ४०० तोला, दशमूल का क्वाथ ४०० तोला, बड़ी हर्रे का चूर्ण २५६ तोला, गुड़ ४०० तोला, इन सब को एकत्र कर के पकावें। जब अवलेह जैसा हो जाय, तब, उसमें—सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, दालचीनी, तेजपात और इलायची प्रत्येक ८-८ तोला और यवक्षार २ तोला लेकर इनका कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिलाकर रखें, दूसरे दिन उसमें ३२ तोला शहद मिलाकर काच के बरतन में भर दें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—६-६ माशे सबेरे-शाम, गाय के गरम किये हुए दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—पुराने और बारम्बार होने वाले—प्रतिश्याय (जुकाम) में इसके सेवन से अच्छा लाभ होता है।

आचार्य यादवजी कहते हैं—इसके सेवन-काल में नाक में दिन में दो बार षड्बिन्दु तैल डालने से विशेष लाभ होता है, इस योग में प्रक्षेप में कायफल का चूर्ण २ तोला और मिला देने से अधिक लाभ होता है।

चोपचीनी पाक

चोपचीनी का कपड़छान किया हुआ चूर्ण—४८ तोला, पीपल, पीपलामूल, मिर्च, सोंठ, दालचीनी, अकरकरा और लौंग का चूर्ण १-१ तोला तथा इन सब के बराबर चीनी लेकर चाशनी बना, उसमें सब चूर्ण मिला, १-१ तोला के लड्डू बना लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ लड्ड, प्रातः-सायं चोपचीनी के क्वाथ या उष्ण जल के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से उपदंश (आतशक) व्रण, कुष्ठ, वातव्याधि, भगन्दर, धातुक्षय से उत्पन्न खाँसी, जुकाम और यक्ष्मा का नाश हो शरीर पुष्ट हो जाता है।

नोट—प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों में "चोपचीनी" का उल्लेख नहीं मिलता है। संग्रह काल (मध्य काल) में भाव मिश्र ने भाव प्रकाश में इसका उल्लेख किया, और जभी से यह अपने विशेष गुण के कारण आयुर्वेदीय औषध कल्पों में आ गयी।

यूनानी ग्रन्थ "मखजनुल अदविया" नामक ग्रन्थ में इसका वर्णन करते हुए लिखा है कि—यह एक जाति की लता की जड़ है, जो चीन से आती है। इसके टुकड़े प्रायः एक बलिस्त या उससे छोटे भी होते हैं। कोई टुकड़ा कम गठन वाला, कोई अधिक गठन वाला, कोई चिकना, कोई खुरदरी, कोई वजनदार, कोई हल्का, कोई सख्त, कोई मुलायम, कोई गुलाबी, सफेद या काले रंग के होते हैं। इनमें अच्छी चोपचीनी वह होती है—जो गुलाबी रंग की, स्वाद में

मीठी, चिकनी, रेशा और गाँठरहित तथा पानी में डालने से डूब जाय। इससे अतिरिक्त को खराब समझें।

गुण और उपयोग—इस पाक में चोपचीनी प्रधान द्रव्य है, अतः सूजाक की वजह से पैदा हुई सन्धियों की सूजन और सन्धियों की अकड़न में तथा उपदंश की दूसरी अवस्था में इससे बहुत लाभ होता है। सूजाक और उपदंश की वजह से पैदा हुई रस-ग्रन्थियों की सूजन में इसके सेवन से सर्वप्रथम दर्द की कमी होती है, पश्चात् सूजन उतरती है।

शरीर की सन्धियों और शिराओं के अन्दर प्रवेश करके अविकृत पित्त को सहायता पहुँचाता है, खून को साफ करता है, सन्धियों को मजबूत करता और पेशाब खुल कर लाता है। लकवा, हाथ-पैरों में सूजन और उपदंश की वजह से होने वाला सिर दर्द, आधा शीशी, पुराना नजला आदि रोगों में यह लाभ करता है। खून को शुद्ध करना इसका प्रधान कार्य होने से फोड़े-फुन्सी, घाव तथा खून की गर्मी से उत्पन्न होने वाले रोगों में विशेष फायदा करता है।

यह कामशक्तिबर्द्धक, बाजीकरण करनेवाला तथा शरीर को पुष्ट करनेवाला है।

च्यवनप्राशावलेह

बेल की छाल, अरणी, अरलू, खंभारी, पाटला, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पीपल, शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, गोखुरू, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, काकड़ासिंगी, भुई आँवला, मुनक्का, जीवन्ती, पोहकरमूल, अगर, गिलोय, बड़ी हर्रे, बला, ऋद्धि, (अभाव में वाराही कन्द), जीवक, ऋषभक (दोनों के अभाव में विदारीकन्द), कचूर, नागर मोथा, पुनर्नवा, मेदा, महामेदा (अभाव में शतावरी), छोटी इलायची, कमल, सफेद चन्दन, विदारीकन्द, अडूसे की जड़, काकोली, क्षीर-काकोली (अभाव में असगन्ध), काकनासा—प्रत्येक दवा का जौकुट चूर्ण ४-४ तोले लें।

पके हुए उत्तम आँवले गिनकर ५०० तथा जल १२ सेर १३ छटाँक सबको कलईदार बर्तन में डाल कर पकावें, जब चौथाई पानी

रह जाय, (ग्रन्थ में अष्टमांश पानी शेष रखने का पाठ है) तब चूल्हे पर से उतार लें और आँवले को एक तरफ रखकर पानी को छानकर सुरक्षित रख लें, अब आँवले की गुठली निकाल कर एक मोटे कपड़े से रगड़ें ताकि आँवले का छिलका और तन्तु (रेशा) अलग हो जाय। फिर कपड़े से निकले हुए गुद्दे में गाय का घृत २८ तोला डालकर मन्द-मन्द आग से तब तक भूनते रहें, जब तक पानी का अंश बिल्कुल जल न जाय, पानी का अंश जल जाने पर घी बरतन में फिर दीखने लगता है, अच्छी तरह पक जाने पर उतार कर नीचे रख दें। ऊपर जो काढ़ा (पानी) सुरक्षित रखने को लिखा है, उसमें २॥ सेर चीनी या मिश्री डालकर चाशनी बना लें, तब उसमें भुने हुए आँवले मिला दें और बंशलोचन १६ तोला, पीपल ८ तोला, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर और छोटी इलायची प्रत्येक ६-६ माशे ले कर इनका कपड़छान चूर्ण कर मिला दें, अवलेह जब ठंढा हो जाय, तब २४ तोला शहद मिलाकर सुरक्षित रख लें। —शा० ध० सं०

नोट—च्यवनप्राशावलेह में आँवला जितना पुष्ट और पका हुआ रहेगा उतना ही अच्छा अवलेह तैयार होगा, क्योंकि इसमें आँवला ही प्रधान द्रव्य है। साधारणतया आँवला संग्रह करने वाले पके हुए आँवले को बाँस से झाड़ते हैं, जो जमीन पर गिरकर फूट-फूटकर रसहीन हो जाते हैं, और उनमें मिट्टी, कंकड़ आदि भर जाते हैं, ये आँवले जल्दी ही सड़ जाते हैं। या सुखा कर रखें, तो इससे बनी दवा का स्वाद खराब हो जाता है तथा उचित गुण भी नहीं करता है। अतएव च्यवनप्राश के लिए आँवले का उत्तम संग्रह-विधि यह है कि, आँवले के पेड़ के नीचे जाल लगाकर एक आदमी पेड़ पर चढ़ जाए और डाल तथा टहनियों को जोर से हिला दे। जोर से हिलाने से पके हुए आँवले जाल में गिर जायेंगे। ये आँवले च्यवनप्राश के लिए उत्तम होते हैं।

मात्रा और अनुपान—१ से २ तोला प्रातः समय गाय या बकरी के दूध के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—अग्नि और बल का विचार कर क्षीण पुरुष को इस रसायन का सेवन कराना चाहिए। बालक, वृद्ध, क्षत-क्षीण, स्त्री-संभोग से क्षीण, शोषरोगी, हृदय के रोगी, और क्षीण स्वरभंग वाले को इसके सेवन से काफी लाभ होता है। इसके सेवन से खाँसी,

श्वास, प्यास, वातरक्त, छाती का जकड़ना, वातरोग, पित्तरोग, शुक्रदोष और मूत्रदोष नष्ट हो जाता है। यह बुद्धि और स्मरण-शक्तिवर्द्धक तथा मैथुन में आनन्द देने वाला है। इससे कान्ति, वर्ण और प्रसन्नता प्राप्त होती है तथा मनुष्य बुढ़ापा से रहित हो जाता है। —शा० सं०

च्यवन ऋषि इसे खाकर बूढ़े से जवान हो गए थे, अतः इसका नाम च्यवनप्राश हुआ। यह फेफड़े को मजबूत करता, दिल को ताकत देता, पुरानी खाँसी और दमा में बहुत फायदा करता तथा दस्त साफ लाता है। अम्लपित्त में यह बड़ा फायदेमन्द है, वीर्य- विकार और स्वप्नदोष नष्ट करता है, राजयक्ष्मा में लाभकारी है, एवं बल, वीर्य, कान्ति, शक्ति और बुद्धि को बढ़ाता है। —आ० ध० प्र०

उत्तम च्यवनप्राश देखने में गहरे लाल रंग का, सूंघने में सुगन्धित, चखने पर मीठा और आँवले के खट-मिट्ठे स्वाद से पूर्ण होता है। दाँतों में बंशलोचन की किरकिराहट या जलांध की मुंह में गन्ध नहीं आती है।

च्यवनप्राश केवल बीमारों की दवा ही नहीं है, बल्कि स्वस्थ मनुष्यों के लिए उत्तम खाद्य भी है। जवानों की अपेक्षा वृद्ध इसका उपयोग अधिक करते हैं। ऐसा करने से उनका पेट साफ रहता है, तथा भूख लगती है।रस-रक्तादि धातुएँ पुष्ट होने से शरीर में शक्ति का संचय होता है। स्मरणशक्ति तथा शरीर में स्फूर्त्ति की वृद्धि होती है।

किसी-किसी की धारणा है कि च्यवनप्राश शीतऋतु में ही सेवन करना चाहिए। परन्तु यह सर्वथा भ्रान्त है। इसका सेवन सब ऋतुओं में किया जा सकता है। ग्रीष्म ऋतु में भी यह गरम नहीं करता, क्योंकि इसका प्रधान द्रव्य आँवला है। जो शीतवीर्य होने से पित्तशामक है।

सिर्फ आँवले का ताजा फल प्यास को शान्त करनेवाला, पेशाब खुलकर लानेवाला तथा अनुलोमक है। बाहरी और भीतरी प्रयोग में शीतल होने से आँवला पित्त को शान्त करता है। गरमी या पित्त

प्रकोप से यदि हृदय में धड़कन और शूल हो, तो च्यवनप्राश का सेवन करावें। पैत्तिक विकारों में इसे धारोष्ण या दूध गरमकर ठण्डा किये हुए के साथ दें। रक्तप्रदर, खूनी बवासीर, नक्सीर बहना, पेशाब के रास्ते खून और पीव जाना आदि में पित्त प्रकोप जन्य रोगों को शान्त करने के लिए इसका सेवन किया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में गरमी से बचने के लिए च्यवनप्राश का सेवन करना अच्छा है।

पुराने रोगियों या रोग छूटने के बाद कमजोर रोगियों की निर्बलता दूर करने के लिए इसका प्रयोग बहुत लाभप्रद है।

आँवले में जितनी अधिक मात्रा में खाद्योज (विटामिन) "सी" रहता है, उतना सम्भवतः किसी दूसरे फल में नहीं होता। ताजे आँवले के रस में नारङ्गी रस की अपेक्षा बीसगुना अधिक विटामिन "सी" रहता है। एक आँवले में डेढ़-दो सन्तरों के बराबर विटामिन "सी" रहता है। फल और सब्जियों को गरम करने, पकाने या सुखाने से उनके खाद्योज नष्ट हो जाते हैं। परन्तु आँवला इस विषय का अपवाद है। पकाने या सुखाने पर भी इसका खाद्योज नष्ट नहीं होता। यही कारण है कि जो ताजे आँवले का च्यवनप्राश नहीं बना सकते, वे सूखे आँवले को भिगोकर च्यवनप्राश बना, अपने मरीजों को देते हैं। यद्यपि ताजे आँवले की अपेक्षा यह गुण और स्वाद में कुछ न्यून अवश्य होता है, परन्तु तात्कालिक अभाव-पूर्त्ति के लिए उत्तम है। अतः जहाँ तक सम्भव हो ताजे आँवले द्वारा ही बने च्यवनप्राश का उपयोग करना चाहिये।

विटामिन 'सी' ज्यादे होने से ही इसका प्रभाव पचन संस्थान पर स्थायी रूप से पड़ता है। महास्रोत की प्राचीरों में बल आता, पाचक रसों की उत्पत्ति पर्याप्त मात्रा में होती है। आन्त्रों द्वारा पाचन, शोषण और मलों का निर्हरण नियमित रूप से होता रहता है।

फेफड़े (फुफ्फुस) पर भी इसका प्रभाव बहुत पड़ता है। अतएव खाँसी, श्वास, राजयक्ष्मा, उरःक्षत आदि में इससे काफी लाभ होता है।

हृदय और रक्तवह-संस्थान पर भी इसका असर होता है। अतएव हृदय की धड़कन, हृदय निर्बल हो जाना, रक्त-संचार में बाधा पड़ना,

रक्त-संवहन क्रिया ठीक-ठीक होना आदि विकारों में इससे लाभ होता है।

यह रसायन है, अतएव शुक्रजनित विकार, दुर्बल और वृद्ध मनुष्यों के लिए अमृत तुल्य कार्य करता है।

क्षय की प्रथमावस्था में यदि केवल धातुक्षीणता ही उसका प्रधान स्वरूप हो, एवं क्षय के अन्यान्य लक्षण उत्पन्न नहीं हुए हों, साधारण कृशता, कमजोरी एवं कभी-कभी ज्वर का होना, थोड़े ही परिश्रम से ज्वर का बढ़ जाना या शैथिल्य विशेष की प्रतीति होना आदि दशा में जो औषध धातु को पुष्ट करे; वही लाभदायक होती है। परन्तु इस औषध में विशेष उत्तेजक गुण नहीं होना चाहिए। हाँ, धातुओं को निर्मल करने का गुण अवश्य होना चाहिए, क्योंकि; क्षीण हुए निःसत्त्व धातु घटकों के शरीर में वैसे ही बने रहने से भविष्य में राजयक्ष्मा की विशेष संभावना रहती है। अतः धातुघटकों को निर्मल कर उनमें उत्पादन शक्ति की वृद्धि करनेवाली रासायनिक औषधें इस अवस्था में विशेष लाभ करती हैं।

च्यवनप्राशावलेह गुणविशिष्ट आयुर्वेदीय उत्तम औषध है, इसमें लगभग ४० द्रव्यों का संकलन है, जिनमें प्रमुख द्रव्य आँवला है, जो शारीरिक धातुओं को स्वच्छ कर उनकी विदग्धता दूर करता है, और परिणाम में अभिसरण एवं उत्पादन क्रिया की वृद्धि कर धातु-पुष्टि करता है। आँवला के इसी गुण के सहायक द्रव्य च्यवनप्राश में मिलाये जाते हैं। अतः इस एक ही औषध से क्षय की प्रारम्भिकावस्था में उत्तम लाभ होता है। यदि सिर्फ च्यवनप्राश ही देना हो तो २ से ३ तोले की मात्रा में दें। इसमें सारकगुण होने से जिनका कोठा मुलायम है, उन्हें इसके प्रयोग से २-३ दस्त हो जाते हैं, किन्तु इससे कोई हानि नहीं होती। कुछ दिनों के बाद ज्यादा दस्त लगना आप ही बन्द हो जाता है। जिनका कोठा सख्त हो या जिन्हें मलावरोध की शिकायत हो, उन्हें चाहिए कि दिन में च्यवनप्राश की मात्रा कम लें और रात्रि में अधिक लें, इससे प्रातः खुलकर दस्त आते हैं।

उक्त अवस्था में यदि अजीर्ण, आध्मान आदि विकार हो, तो उनके नाशार्थ भोजनोत्तर द्राक्षासव बराबर जल मिलाकर सेवन करें।

शारीरिक धातुओं एवं इन्द्रियों की शक्ति घट जाने से उसी प्रमाण में पचनेन्द्रियों की शक्ति का भी ह्रास होता है, और ठीक समय पर आहार न पचना, खट्टी डकारें आना, कण्ठ में जलन, दाह होना, मुँह में कफ लिपा-सा मालूम होना, प्यास, जी मिचलाना इत्यादि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस अवस्था में प्रातः-सायं च्यवनप्राश तथा भोजनोत्तर द्राक्षासव के सेवन से बहुत लाभ होता है। इससे आभ्यन्तरिक धातु-पोषण कार्य को भी मदद मिलती है।

क्षय की इसी प्रारम्भिक अवस्था में च्यवनप्राश के साथ, मुक्ता-भस्म, प्रवालभस्म तथा मृगश्रृंग आदि भस्मों का भी उपयोग किया जा सकता है। इन भस्मों का मुख्य गुण अन्न पचन करना तथा पचनेन्द्रियों का और रस-रक्तादि धातुओं की अस्वाभाविक—विकारी अम्लता को नष्ट करना है। मौक्तिक और प्रवाल में ये गुण विशेष पाये जाते हैं। परन्तु ध्यान रहे, पाचन क्रिया को सुधारने के लिये शौक्तिकभस्म, शंखभस्म या कपर्दभस्म का प्रयोग करना विशेष हितकर है और विदाहावस्था के प्रतीकारार्थ मौक्तिक या प्रवालभस्म का प्रयोग लाभदायक है।

मृगश्रृंगभस्म का सामान्य स्वरूप यद्यपि उपर्युक्त प्रवालादि भस्मों जैसा ही है, तथापि इसका कार्य कुछ भिन्न प्रकार का होता है। मौक्तिक प्रवाल, शंख या शुक्ति में जितना पाचक और विदाहशामक गुण हैं, उतना इसमें नहीं। परन्तु शरीरान्तर्गत अस्थिमय द्रव्यों का पोषण कार्य "मृगश्रृंग" भस्म के द्वारा उत्तम होता है। धातु-क्षीणावस्था में तरुणास्थि या हड्डियों की संधियों में जो मृदु अवयव या भाग होता है, वह जब निःसत्त्व हो जाता है, तब मृगश्रृंगभस्म का प्रयोग विशेष लाभप्रद होता है।

प्रवाल, मौक्तिक या मृगश्रृंगभस्म इनमें से जिसका प्रयोग करना अभीष्ट हो, उसे च्यवनप्राशावलेह के साथ निम्न प्रकार से दें।

प्रातः-सायं च्यवनप्राश २ से ३ तोले तक (अनुपान दूध या

जल) तथा दोपहर और रात्रि में भोजनोपरान्त द्राक्षासव १।। से २ तोला तक चौगुने जल में मिलाकर दें। मृगश्रृंगभस्म देना हो, तो प्रातः-सायं च्यवनप्राश में मिलाकर दें और प्रवाल या मौक्तिक पिष्टी देनी हो, तो द्राक्षासव या द्राक्षारिष्ट में मिलाकर सेवन करायें।

धातुक्षीणता की अवस्था में यदि शुक्रक्षय की विशेषता हो, तो च्यवनप्राश और द्राक्षारिष्ट के साथ स्वर्णराजवंगेश्वर की योजना विशेष लाभदायक है। सुवर्ण वंग के ऊपर पारद का संस्कार होने से केवल वंगभस्म की अपेक्षा ज्यादा लाभ करता है, अभाव में वंगभस्म भी लिया जा सकता है।

ध्यान रहे, धातुक्षीणता की अवस्था में च्यवनप्राश विशेष गुण-दायक है, परन्तु यदि क्षयरोग अपना पूर्ण स्वरूप धारण कर लिया हो अर्थात् ज्वर, कास आदि उपद्रव पूर्णरूप से उत्पन्न हो गए हों, तो च्यवनप्राश से उतना ठीक-ठीक लाभ नहीं होगा। क्योंकि क्षय की ऐसी अवस्था में उन औषधियों का प्रयोग विशेष हितकारी होता है, जिनमें पौष्टिक गुणों की अपेक्षा विषैली अवस्था का प्रतिबन्धक या क्षय कीटाणु-नाशक गुण अधिक प्रमाण में हो। च्यवनप्राश में यह गुण विशेष प्रमाण में नहीं होता, यह तो केवल धातु-क्षय की अवस्था में या क्षय की प्रथमावस्था में अपने पैष्टिक गुणों से उत्तम कार्य कर सकता है, बाद की अवस्था में वह उतना सफल नहीं होता।

उपर्युक्त धातुक्षीणता की अवस्था में या क्षय की प्रथमावस्था में रक्त क्षीणता की विशेषता हो (शरीर श्वेत हो गया हो या हाथ-पाँव और मुख पर सूजन आ गयी हो) तो अभ्रक, लौह या मण्डूर-भस्म का उपयोग च्यवनप्राश और द्राक्षारिष्ट के साथ करें। अभ्रक और लोहा का उपयोग रक्त वृद्धि के लिए उत्तम होता है। इनमें भी लोह की अपेक्षा अभ्रक अधिक गुणदायक है, अतः प्रातः-सायं च्यवनप्राश के साथ अभ्रक १-१।। रत्ती की मात्रा में या लौह अथवा मण्डूर-भस्म १-२ रत्ती की मात्रा में सेवन करें। इसमें अभ्रक जितना अधिक पुट वाला होगा उतना ही विशेष लाभदायक होगा।

छुहारा पाक

गुठली रहित छुहारे ८० तोला और पीपल ५ तोला लेकर दोनों को अलग-अलग सिल पर पीस लें, फिर इसे चौगुने दूध में पकावें, जब खोया तैयार हो जाय, तो ३२ तोला घृत में भूने, फिर सब औषधों से दूनी मिश्री या चीनी लेकर उसकी चासनी बना, उसमें उक्त खोया तथा दाख, असगंध, दोनों मूसली, लौंग, जायफल, जावित्री, तेजपात, बला और केशर का महीन चूर्ण, वंग, लौह तथा अभ्रकभस्म एवं पिस्ता, बादाम, चिरौंजी, अखरोट की गिरी, गम्भारी के फल प्रत्येक २-२ तोला लेकर इनमें कूटने वाली दवा का कपड़छान चूर्ण बनाकर और शेष बादाम आदि के छोटे-छोटे टुकड़े काटकर अवलेह में मिलाकर पाक तैयार कर लें। —भा० भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ तोला से २ तोला तक; जल या गोदुग्ध से।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से मनुष्य हृष्ट-पुष्ट होता और रति शक्ति बढ़ती है तथा स्वप्नदोषादि रोग नष्ट होते हैं।

शुक्रक्षीणता के कारण पुरुष की तथा रजोदोष के कारण स्त्री की उत्पन्न हुई कमजोरी इसके सेवन से अवश्य दूर हो जाती है। स्वस्थ मनुष्यों के लिए भी यह उत्तम पौष्टिक का काम करता है। इसका सेवन शीत ऋतु में करने से विशेष लाभ होता है।

जीरकादि अवलेह

जीरे का महीन चूर्ण ६४ तोला, लोध का कपड़छान किया हुआ चूर्ण ३२ तोला, इनको ३२ तोले घृत में भूनें, फिर दूध ३ सेर ३ छटाँक १ तोला लेकर सबको मन्दाग्नि पर पकाकर खोया बना लें। पश्चात् ६४ तोले मिश्री की चाशनी बना, उसमें उपरोक्त दवा मिला कर निम्न दवाओं का चूर्ण मिलावें। यथा—तेजपात, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, पीपल, सोंठ, जीरा, मोथा, सुगन्धबाला, अनार-दाना, रसौत, धनियाँ, हल्दी, कपूर, बंशलोचन और कचूर प्रत्येक

२-२ तोला लेकर कपड़छान चूर्ण बना, अवलेह में मिलाकर रख लें। —वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—१-१ तोला, प्रातः-सायं ठण्डा जल या दूध से दें।

गुण और उपयोग—प्रमेह, प्रदर, ज्वर, निर्बलता, अरुचि, श्वास, तृष्णा, दाह और क्षय का नाश करता है। पुराने प्रदर रोग में इसका उपयोग विशेष रूप से किया जाता है। प्रदर रोग से पीड़ित स्त्री की अग्नि मन्द हो जाती है। कमजोरी, रक्त की कमी, पित्तवृद्धि, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाना, किसी काम में मन न लगना, शरीर में आलस्य, मन्द-मन्द ज्वरांश बना रहना, भूख कम या बिल्कुल न लगना, अरुचि आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। ऐसी दशा में इस अवलेह को दूध के साथ देने से बहुत शीघ्र फायदा होता है। स्त्रियों के लिए यह अत्युत्तम पौष्टिक है।

नारिकेल खण्डपाक

३२ तोले नारियल की गिरी (गोले) को पत्थर पर अत्यन्त महीन पीस लें या कद्दूकस से महीन छील लें। इसे ८ तोले घी डालकर भून लें, फिर इसे १२८ तोला नारियल के पानी (अभाव में गोदुग्ध) में मिलावें और उसमें ३२ तोला चीनी मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब चाशनी गाढ़ी हो जाय तो नीचे उतार कर रख लें और ठण्डा होने पर चिकने बरतन में भरकर रख दें। —वृ० यो० त०

मात्रा और अनुपान—१ से २ तोला सुबह-शाम दूध या जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से पुरुषत्व, निद्रा और बल की वृद्धि होती है तथा अम्लपित्त, परिणामशूल और क्षय का नाश होता है।

इसमें प्रधान द्रव्य नारियल है, जिसके शीतवीर्य, स्निग्ध और पौष्टिक होने के कारण इस पाक का प्रयोग पैत्तिक बीमारियों में तथा शुक्र-क्षयादि के कारण शारीरिक शक्ति का ह्रास हो जाने से उत्पन्न हुई

कमजोरी में सफलतापूर्वक किया जाता है। पाचकपित्त की गड़बड़ी होने से अन्नादि पचने में बाधा पड़ती हो, खट्टी डकारें आती हों, पेट में मीठा-मीठा दर्द होता रहता हो आदि उपद्रव होने पर इस पाक का अवश्य प्रयोग करें। अम्लपित्त जैसे भयंकर रोगों के लिए तो यह पाक बहुत उत्तम है। इस पाक का सेवन सब ऋतु में कर सकते हैं।

बादाम पाक

खूब पुष्ट बादाम की गिरी ३२ तोला लेकर रात्रि को पानी में भिगो दें और प्रातःकाल उसे छीलकर पत्थर पर पीस लें। फिर उसे ८ तोला घी में भूनकर ६४ तोले खाण्ड की चासनी में मिला दें और इसमें छोटी-बड़ी इलायची, जायफल, लौंग, केसर और दाल चीनी प्रत्येक का महीन चूर्ण १-१ तोला तथा पिस्ता और चिरौंजी ४-४ तोला एवं सोने-चाँदी के बर्क १००—१०० नग मिला दें। फिर इसके लड्डू बना लें या वर्फीनुमा काट कर रख लें।

—भा० भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ तोला गोदुग्ध या ठंडे जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—दिमाग एवं हृदय की कमजोरी तथा शुक्र क्षय नाशक, पित्तविकार, नेत्र एवं शिरोरोग में लाभकारी है। इसके सेवन से शरीर पुष्ट होता है। यह सरदियों में सेवन करने योग्य उत्तम पुष्टई है।

दिमागी काम करने वाले तथा शिरदर्द वाले को इस पाक का सेवन अवश्य करना चाहिये। किसी-किसी को शिरदर्द का दौरा-सा होता रहता है, महीना, दो महीना या इससे ज्यादे दिन पर शिर में दर्द प्रारम्भ हो जाता है, यह दर्द इतना तेज होता है कि रोगी बेचैन हो जाता है। इसके दो कारण हैं, एक तो पित्ताधिक्य और दूसरा कब्ज (बद्धकोष्ठ) होना। प्रथम कारण में तो वमन होने पर दर्द अपने आप ठीक हो जाता है। उसमें इस पाक की उतनी आवश्यकता नहीं, परन्तु बद्धकोष्ठ वालों के लिए यह बहुत मुफीद दवा है। क्योंकि

इसका प्रधान द्रव्य बादाम है, जो स्निग्ध और मृदुविरेचक होने के कारण मल को ढीला कर दस्त साफ लाता है। शिर दर्द को नाश करना तो इसका खास काम है। वह चाहे वातिक या पैत्तिक कैसा भी हो। अतः शिर दर्दवाले रोगी को इस पाक का अवश्य सेवन करना चाहिये।

रात को सोते समय इसे गोदुग्ध या शीतल जल के साथ सेवन करने से दिमाग की कमजोरी मिटती है। आमाशय में संचित आम दोषों के इकट्ठा हो जाने के कारण जो पेचिश हो जाती है, उसमें भी यह लाभदायक है। इसके सेवन से नया वीर्य बनता है। लगातार कुछ रोज तक इसके सेवन से शरीर में नया खून उत्पन्न होकर शरीर पुष्ट हो जाता है।

वासावलेह

अडूसे की जड़ की छाल २ सेर को १६ सेर पानी में औंटावें और ४ सेर पानी शेष रहने पर उसमें १ सेर चीनी डालकर चाशनी बना लें। गाढ़ा हो जाने पर नीचे उतार कर पीपल का चूर्ण और ताजा घी १-१ पाव और शहद १ सेर मिला कर पात्र में रख लें।

—आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान—६ माशे से १ तोला सुबह-शाम उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह सब तरह की खाँसी, श्वास, रक्तप्रदर, रक्तपित्त आदि रोगों को दूर करता है। पुरानी कफज खाँसी की यह अचूक दवा है। नवीन और प्राचीन कफ रोग अथवा खाँसी या श्वासनलिका की सूजन में यह बहुत लाभ पहुँचाता है। इससे कफ पतला होकर बाहर निकल जाता है, जिससे खाँसी और दमा में लाभ होता है। पुराने कफ रोगों में हृदय के अन्दर बहुत शिथिलता आ जाती है, जो इसके सेवन से कम हो जाती है। नवीन कफ रोगों की अपेक्षा प्राचीन कफ रोगों में यह विशेष लाभ करता है।

इसका प्रभाव छोटी-छोटी रक्तवाहिनी नाड़ियों पर भी पड़ता

है, जिससे रक्तवाहिनियों का संकोचन होकर रक्तस्राव रुक जाता है। अतएव रक्तपित्त, रक्तप्रदर, खूनी बवासीर, रक्तमिश्रित दस्त तथा कफ के साथ निकलने वाले रक्त में इसे बकरी-दूध के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

वासाहरीतक्यवलेह

अड़ूसे के मूल या ताजी पत्ती ४०० तोला लें, उसको जल से धो और कूटकर अठगुने जल में कलईदार बरतन में डालकर पकावें। जब चौथाई जल बाकी रहे तब ठण्डा करके कपड़े से छान, उसमें गुठली निकाली हुई बड़ी हर्रे का चूर्ण २५६ तोला और चीनी ४०० तोला डालकर पकावें। पकाते समय लकड़ी के कोंचे से हिलाते रहें, जब लेह जैसा हो जाय, तब नीचे उतार लें। ठण्डा होने पर उसमें ३२ तोला शहद तथा बंशलोचन १६ तोला, छोटी पीपल २ तोला, दालचीनी ४ तोला, छोटी इलायची ४ तोला, तेजपात ४ तोला, नागकेशर ४ तोला और काकड़ासिंगी ४ तोला—इनका कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिला कर काच या चीनी के बरतन में भर लें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—६ माशे से १ तोला अवलेह चाट कर ऊपर से गौ का गरम दूध पिला दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से खाँसी, क्षय, श्वास, रक्तपित्त और प्रतिश्याय (जुकाम) में फायदा होता है। नवीन और प्राचीन कफरोग अथवा खाँसी या श्वासनलिका की सूजन में इस अवलेह के सेवन से बहुत लाभ होता है। इससे कफ पतला होकर शीघ्र बाहर निकल जाता है, जिससे खाँसी और दमा में लाभ होता है। कफ-रोगों में हृदय के अन्दर बहुत शिथिलता आ जाती है, जो इस अवलेह के सेवन से दूर हो जाती है। इस अवलेह के सेवन से छोटी-छोटी रक्तवाहिनियों का संकोचन होकर रक्तस्राव, रक्तमिश्रित दस्त, खूनी बवासीर, क्षय और रक्तप्रदर आदि रोग अच्छे हो जाते हैं।

बाहुशालगुड़

इन्द्रायण की जड़, नागरमोथा, जमालगोटे की जड़, निशोथ, हर्रे, कचूर, बायबिडंग, गोखुरू, चित्रक, सोंठ और तेजबल प्रत्येक २-२ तोला, सूरण (जिमीकन्द) ३२ तोला, विधारा १६ तोला और शुद्ध भिलावा १६ तोला लें। इन सब ओषधियों को जौकुट कर २५ सेर १० छटाँक पानी में डाल कर पकावें। चौथाई शेष रहने पर छान कर उस पानी में ३। सेर पुराना गुड़ डाल कर लड्डुओं जैसी चाशनी बना लें, फिर इसमें चित्रक की जड़, निशोथ, दन्तीमूल और तेजबल—प्रत्येक ४-४ तोले, कालीमिर्च, सोंठ, पीपल, इलायची, आँवला और दालचीनी प्रत्येक १२-१२ तोले का महीन चूर्ण मिला दें। चाशनी ठण्डी हो जाने पर ६४ तोला शहद मिला कर रख लें। —शा० ध०

मात्रा और अनुपान—१-१ तोला, सुबह-शाम, बकरी के दूध या जल के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से बवासीर, आमवात, संग्रहणी, प्रमेह, प्रतिश्याय आदि रोग नष्ट होकर शरीर बलवान हो जाता है। बवासीर में पेट में वायु भर जाने पर उसे अनुलोमन करने के लिए बाहुशाल गुड़ बहुत प्रसिद्ध दवा है।

व्याघ्री हरीतकी

पाँच सेर अधकुटी कटेली का पंचांग और कपड़े में बंधी हुई १०० नग हर्रे को ४ गुने पानी में पकावें, चौथाई भाग जल शेष रहने पर छान कर उसमें २।। सेर गुड़ और उपरोक्त हर्रे डाल कर पुनः पकावें। जब गाढ़ा हो जाय, तो उसे अग्नि से नीचे उतार कर उसमें दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, पीपल और कालीमिर्च का चूर्ण ४-४ तोला तथा यवक्षार ६ माशा मिला दें और जब वह ठण्डा हो जाय तो २४ तोला मधु मिलाकर सुरक्षित रख लें। —ग० नि०

मात्रा और अनुपान—६ माशे से १ तोला, प्रातः-सायं जल या दूध से लें।

गुण और उपयोग—इसके उपयोग से खाँसी और श्वास नष्ट होते हैं तथा स्वर, वर्ण और अग्नि की वृद्धि होती है। कफ और वात प्रधान रोगों में इसका विशेष प्रभाव होता है। कास-श्वास रोगी के लिए यह अमृत के समान लाभ करता है। किसी कारण से गला बैठ गया हो, आवाज बहुत धीमी निकलती हो, तो इस अवलेह के सेवन से गला खुल जाता और आवाज (स्वर) साफ निकलने लगता है। क्योंकि इसके सेवन से श्वासनली में चिपका हुआ कफ ढीला होकर बाहर निकल जाता, फिर श्वासनली साफ हो जाने से खाँसी भी नहीं आती है। बद्धकोष्ठ के लिए भी इसका सेवन इसलिये किया जाता है कि इसमें हरीतकी की मात्रा विशेष होने से बद्धकोष्ठता दूर हो कोष्ठ साफ हो जाता है।

ब्राह्म्य रसायन

क्वाथ्य द्रव्य—शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, गोखरू, बेल-छाल, गनियार (अरणी), सोनापाठा-छाल, गम्भारी-छाल, पाढ़ल-छाल, पुनर्नवा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, खरेंटी पंचांग, एरण्डमूल, जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, शतावर, नरकुल (शर), गन्ने की जड़, कुश, कास, धान की जड़ प्रत्येक १०-१० तोला। हर्रे पन्द्रह सेर दश छटाँक, आमला एक मन ६ सेर चौदह छटाँक लेकर ३ मन सवा ग्यारह सेर जल में क्वाथ करें, तेरह सेर दो छटाँक जल (क्वाथ) शेष रखें।

प्रक्षेपद्रव्य—मण्डूकपर्णी (ब्राह्मी), पीपल, शंखपुष्पी, नागरमोथा, मोथा, बायबिडंग, सफेद चन्दन, अगर, मुलेठी, हल्दी, वच, नागकेसर, छोटी इलायची के बीज, दालचीनी प्रत्येक २०-२० तोला लें। चीनी एक मन साढ़े बाईस सेर, तिल तैल आठ सेर, घृत बारह सेर तथा मधु दश सेर।

पूर्वोक्त क्वाथ में आँवला और हरीतकी को पोटली बाँध कर छोड़ दें, स्विन्न हो जाने पर निकाल कर गुठली निकाल, पीठी बना लें। पीठी को घी में सेंक कर रख लें। फिर पूर्वोक्त शेष क्वाथ

(जल) में चीनी मिला चाशनी बनावें, चाशनी तैयार होने पर इसमें पिठी डाल कर पाक करें, कुछ गाढ़ा होने पर उपरोक्त प्रक्षेप द्रव्यों का चूर्ण और मधु देकर अवलेह तैयार कर लें। —च० चि० अ० १

मात्रा और अनुपान—३ माशे गोदुग्ध या जल के साथ लें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से शरीर की दुर्बलता और दिमाग की कमजोरी दूर होकर आयु, बल, कान्ति तथा स्मरण शक्ति की वृद्धि होती है। इसके नियमित सेवन से खाँसी, दमा, क्षय, कब्जियत आदि दूर हो, शरीर में स्थायी ताकत पैदा होती है।

भार्गीगुड़ावलेह

भारंगी की जड़ ५ सेर, दशमूल ५ सेर, बड़ी हर्रे १०० नग (हरड़ को साफ और मजबूत कपड़े में ढीली पोटली बाँध दें), इन सबको १ मन पानी में पकावें, चौथाई जल शेष रहने पर उतार लें। अब क्वाथ में से हरड़ की पोटली निकाल, चाकू से चीरा देकर गुठलियाँ निकाल लें। क्वाथ को छानकर उपरोक्त बीज निकाले हुए हरड़ तथा ५ सेर स्वच्छ पुराना गुड़ देकर पाक करें। जब गाढ़ा हो जाय, तब त्रिकटु (सोंठ, पीपल, मीर्च), त्रिसुगन्धि (दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र), प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तोला और यवक्षार २ तोला इनका प्रक्षेप देकर कोंचा से खूब मिला नीचे उतार लें। अवलेह ठंडा होने पर २४ तोला मधु मिलाकर सुरक्षित रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ तोला, सुबह-शाम सेवन करें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से दारुणश्वास तथा सब प्रकार के कास नष्ट होते हैं। यह स्वर को साफ करता और अग्नि—जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

पुराने कास-श्वास वाले रोगी के लिये यह अमृत समान फायदा करता है। क्योंकि इसका प्रभाव वातवाहिनी तथा कफवाहिनी नाड़ियों पर विशेष होता है, अतएव दमा का दौरा प्रारम्भ होते ही इस में से १ तोला खाकर ऊपर से कनकासव या वासारिष्ट १ तोला में समभाग जल मिलाकर पी लेने से दमा का दौरा रुक जाता है।

मदनानन्द मोदक

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, लौहभस्म प्रत्येक १-१ तोला, अभ्रकभस्म ३ तोला, कपूर, सेंधानमक, जटामांसी, आँवला, इलायची, सोंठ, मिर्च, पीपल, जायफल, जावित्री, तेजपत्ता, लौंग, जीरा दोनों, मुलेठी, बच, कूठ, हल्दी, देवदारु, हिज्जलबीज, सुहागा, भारङ्गी, सोंठ, नागकेसर, काकड़ासिंगी, तालीसपत्र, मुनक्का, चित्रकमूल की छाल, दन्तीमूल, बला (बरियारा), अतिबला (कंघी), दालचीनी, धनियाँ, गजपीपल, शठी (कचूर), सुगन्धबाला, मोथा, असगन्ध, विदारीकन्द, शतावरी, आक की जड़, कोंच के बीज, गोखरू, विधारा के बीज, भांग के बीज प्रत्येक १-१ तोला लें, इन सबका महीन चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को शतावरी के रस से भावना देकर सुखा लें। फिर सेमरमूसली का चूर्ण १३ तोला, धुली हुई भांग का चूर्ण ३२ तोला (भाँग को घी में भुन कर डालें) एकत्रित कर बकरी के दूध में पीस लें। पश्चात् २।। सेर चीनी की चाशनी करें। आसन्नपाक होने पर उपरोक्त सब चीजें मिला दें। पाक तैयार होने पर दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागकेसर, कपूर, सेंधानमक, सोंठ, मरीच और पीपल इन दवाओं का चूर्ण ६-६ माशे मिला दें, पाक जब ठंडा हो जाय तो १ पाव घृत तथा १ पाव मधु मिला कर रख लें।

—आ० प्र०, भै० र०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशा, दूध या जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—इससे बल-वीर्य की वृद्धि, रति शक्ति की वृद्धि और स्तम्भन शक्ति प्राप्त होती है। यह संग्रहणी और मन्दाग्नि की उत्तम दवा है।

स्त्रीसम्भोग के लिए सायंकाल इसका सेवन दूध के साथ करना चाहिए। आयुर्वेद के आचार्यों का मत है कि लगातार तीन सप्ताह तक इसका सेवन करने से मनुष्य कामान्ध हो जाता है, और इसके सेवन करनेवाले का स्वरूप कामदेव के समान सुन्दर, स्वर कोयल के समान मधुर तथा गरुड़ के समान दीर्घ दृष्टि होती है। वृद्ध पुरुष

भी इसके सेवन से युवा के समान सामर्थ्ययुक्त होता है, तथा अपस्मार ज्वर, उन्माद, क्षय, वातव्याधि, कास-श्वास, शोथ, भगन्दर, अर्श, ग्रहणी, बहुमूत्र, प्रमेह, शिरोरोग, अरुचि तथा वातिक, पैत्तिक और कफज रोग नष्ट होते हैं।

जो स्त्री बन्ध्या, मृतवत्सा (जिसके बच्चे पैदा होकर मर जाते हैं) अथवा नष्टपुष्पा (नष्टार्तवा) हो, उसे भी इसके सेवन से उक्त दोष नष्ट हो, गर्भाशय का शोधन होकर अच्छी तन्दुरुस्त सन्तान पैदा होती है। सूतिका रोग भी इसके सेवन से नष्ट होते हैं।

जाड़काले में ही विशेषतया इस मोदक का सेवन किया जाता है। इसमें भाँग की मात्रा विशेष होने से यह निशा भी करता है, अतः इसका सेवन थोड़ी ही मात्रा में करें।

मूसलीपाक

सफेद मूसली ३२ तोला, दूध ५ सेर, घी ३२ तोला, सोंठ, पीपल, मरीच, इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, हाऊबेर, सौंफ, शतावर, जीरा, सोंठ, अजमोद, चित्रकमूल, गजपीपर, अजवायन, पीपरामूल, आँवला, कचूर, गोखुरू, धनिया, असगन्ध, हरड़, नागरमोथा, समुद्रशोष, लवंग, जायफल, जावित्री, नागकेसर, तालमखाना, खरेंटी बीज, अतिबला, नागबला (गंगेरन), कौंचबीज, मुलेठी, सेमलगोंद, सिंघाड़ा, कमलगट्टा, बंशलोचन, सुगन्धवाला, कंकोल, अकरकरा, कपूर प्रत्येक ४-४ तोला, धुले हुए तिल ३२ तोला, चन्द्रोदय २ तोला, लौहभस्म, अभ्रकभस्म प्रत्येक ४-४ तोला लेकर काष्ठौषधियों का महीन चूर्ण कर लें। पहले मूसली चूर्ण को दूध में पका कर गाढ़ा कर लें, बाद में इसे घी में भून लें। पश्चात् सबसे दुगुनी सफेद चीनी की चासनी बनाकर उसमें उपरोक्त सब दवा डाल कर पाक बना लें। —यो० चि०, आरो० प्र०

मात्रा और अनुपान—६ माशे से १ तोला, दूध या जल के साथ।

गुण और उपयोग—यह पाक अत्यन्त पौष्टिक, बल-वीर्य तथा कामशक्ति बर्द्धक और नपुंसकता नाशक है। इसके सेवन से धातु-

दौर्बल्य नष्ट होकर शरीर स्वस्थ, कान्तियुक्त एवं बलिष्ठ हो जाता है। स्त्रियों के प्रदर रोग तथा पुरुषों के वीर्य दोषको नष्ट करने में यह अत्युत्तम है।

यह बात निश्चित है कि पौष्टिक चीजें गरिष्ट (देर में पचने वाली) होती हैं, इस अवलेह में पौष्टिक दवाओं की संख्या अधिक है। अतः इसके सेवनकाल में यदि बद्धकोष्ठता हो जाय, तो बद्धकोष्ठ दूर करने के लिए इसबगोल, मुनक्का त्रिफला, चूर्ण आदि उदरशोधक दवाओं का भी सेवन करते रहें। इससे बद्धकोष्ठता न होकर जठराग्नि प्रबल रहेगी और रस रक्तादि धातु भी अच्छे और पुष्ट बनते रहेंगे।

शीतकाल में इस पाक का सेवन विशेषकर धातुक्षीणता आदि कारणों से उत्पन्न शारीरिक कमजोरी दूर कर शरीर सबल और पुष्ट हो, इस निमित्त किया जाता है।

चूर्ण प्रकरण

अत्यन्तशुष्कं यद् द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्र गालितम् ।
चूर्णं तच्च रजः क्षोदस्तस्य पर्याय उच्यते ।।

अत्यन्त सूखे द्रव्य को सिल पर अच्छी तरह पीस कर या इमाम दस्ते में कूटकर महीन चूर्ण बना, कपड़े से छान लें। इसको "चूर्ण" कहते हैं। 'रज' और 'क्षोद' ये चूर्ण के पर्य्याय नाम हैं।

चूर्ण बनाने में भी कल्क के समान कुछ भी अंश नहीं छोड़ा जाता और चूर्ण को द्रव (पतले) पदार्थ में मिलाकर खाया जाता है। इसलिये चूर्ण को कल्क का भेद माना गया है।

साधारणतया चूर्ण ३-६ माशे की मात्रा में खाने को देनी चाहिये। ध्यान रहे यह मात्रा मृदु वीर्य औषध चूर्ण के लिये है। द्रव्य मध्य वीर्य वाला हो, तो उस चूर्ण की मात्रा ३ माशा और तीक्ष्ण वीर्य औषधि हो, तो उस चूर्ण की मात्रा १।। माशा करनी चाहिए।

चूर्ण का सामान्य तौरपर ३ विभाग किया जा सकता है। यथा–

१—क्षार मिश्रित–तेज, उष्ण, पाचक, सारक और मलावरोधक।

२—शक्कर (चीनी या मिश्री) मिलाये विरेचन गुण-धर्म युक्त सौम्य और पित्त शामक।

३—कटु (तिक्त) पदार्थ युक्त—कंडू (खुजली) और ज्वरनाशक।

चूर्ण लेने का समय—सुबह-शाम अच्छा है। पाचक चूर्ण को भोजन के बाद आवश्यकतानुसार मुंह में डालकर घूंट-घूंट भर ऊपर से पानी या अनुपान (आसव-अरिष्ट, अर्क आदि) पीना चाहिये। जो चूर्ण शहद या घी आदि के अनुपान से खाने वाला हो उसे पहले अनुपान में मिला कर सेवन करें।

अवधि (समय)—चूर्ण गरमी के मौसम में ३-४ माह रह सकता है, बरन्तु बरसात में चूर्ण तैयार किये गये हों, तो १-२ माह से ज्यादे नहीं ठहर सकते हैं। चूर्ण को काच के बैआम में दबा कर मजबूत डाट लगा कर रखने से हवा उसके भीतर नहीं जा सके;

ऐसे रखे हुए चूर्ण अधिक दिन तक ठहरते हैं। क्षार मिला हुआ चूर्ण यदि उपरोक्त तरीके से रखा जाय तो १ वर्ष तक रह सकता है। चूर्ण में बाहरी हवा लगने से ही वह गुण हीन तथा निर्वीर्य हो जाता है। लौह वाले पात्र में क्षार और नमक मिश्रित चूर्ण नहीं रखना चाहिये।

अग्निमुख चूर्ण

भूनी हींग १ तोला, बच २ तोला, पीपल ३ तोला, सोंठ ४ तोला, अजवायन ५ तोला, हर्रे ६ तोला, चित्रक मूल की छाल ७ तोला और कूठ ८ तोला, इन सब का कूट-कपड़छान कर महीन चूर्ण बना सुरक्षित रख लें। —बंगसेन

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे तक, सुबह-शाम दही के जल या गरम पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण का विशेष उपयोग मन्दाग्नि और अजीर्ण में किया जाता है। यह पाचक, अग्निवर्द्धक तथा रुचि उत्पन्न करने वाला है। मलावरोध और पेट में हवा भर जाने को भी नष्ट करता है।

अजमोदादि चूर्ण

अजमोद (वनजवायन), वच, कूठ, अम्लवेत, सेंधा नमक, सज्जीखार, हरड़, त्रिकुटा, ब्रह्मदण्डी, मोथा, हुलहुल, सोंठ, कालानमक प्रत्येक समान भाग ले कर कूट कर के महीन चूर्ण बना रख लें।

—वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—३ माशे से ६ माशे तक सुबह-शाम छाछ (मट्ठा) के साथ दें।

गुण और उपयोग—उचित अनुपान के साथ यह सब प्रकार के शूलों में अच्छा गुण करता है।

अमानुबन्ध वात—अर्थात् पेट में आम संचित हो कर वात प्रकुपित हो शरीर के जोड़ों में दर्द उत्पन्न करता है। इसमें तथा आमवात, गृध्रसी, पीठ, कमर एवं पेट में शूल (दर्द) होने पर इस दवा

का उपयोग किया जाता है। यह शूल नाशक तथा प्रकुपित वायु को शान्त कर शोथ और कफ दोष को भी दूर करता है।

दूसरा—अजमोद, बायबिडंग, सेंधानमक, देवदारु, चित्रकमूल की छाल, सोया, पीपल, पिपलामूल, कालीमिर्च प्रत्येक १-१ तोला, हर्रे ५ तोला, विधारा १० तोला, सोंठ १० तोला, इन सबका चूर्ण बना, एकत्र मिला सुरक्षित रख लें। —शा० ध०

मात्रा और अनुपान—३ माशा से ६ माशा तक गर्म जल के साथ सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से सूजन , आमवात, गठिया, गृध्रसी, कमर, पीठ, गुदा, जंघा आदि की पीड़ा (दर्द), तूनी, प्रतूनी, विश्वाची तथा कफ और वायु के विकार नष्ट होते हैं।

नोट—कोई-कोई वैद्य इस चूर्ण में सम भाग गुड़ मिला कर १-१ माशे की गोलियाँ भी बना लेते हैं।

अविपत्तिकर चूर्ण

सोंठ, पीपल, काली मिर्च, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, विड्नमक, बायविडंग, छोटी इलायची और तेजपत्र प्रत्येक १-१ तोला, लौंग ११ तोला, निशोथ की जड़ ४४ तोला और मिश्री ६६ तोला लेकर सबको कूट कपड़छान चूर्ण बना कर सुरक्षित रख लें।

—भै० र०

मात्रा और अनुपान—३-६ माशे, सुबह-शाम कच्चे नारियल के जल के साथ दें। यदि आवश्यकता हो, तो रात को सोते समय भी दें।

गुण और उपयोग—अम्लपित्त और शूल रोग में पहले इस चूर्ण से विरेचन कराकर पीछे अन्य दवा देने से अच्छा लाभ होता है। यह पैत्तिक विकारों के लिये बहुत उपयोगी है। अम्लपित्त में पित्त की विकृति से ही यह रोग बढ़ता है। उस विकृति को दूर करने के लिये ही इस चूर्ण का उपयोग किया जाता है। यह विरेचक होने से दस्त

भी साफ लाता है और कब्जियत दूर करता है। इस चूर्ण के सेवन से जठराग्नि प्रदीप्त हो, भूख खूब लगती है।

एलादि चूर्ण

इलायची, लौंग, नागकेशर, बेर की गुठली की मिंगी, धान की खील, फूलप्रियंगु, नागरमोथा, सफेद चन्दन और छोटी पीपल प्रत्येक समान भाग लेकर कूट-कपड़छान चूर्ण बनावें।

—शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे की मात्रा में मिश्री और शहद के साथ मिलाकर सुबह-शाम सेवन करावें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण वातज, कफज छर्दि एवं पित्तजन्य विकार, प्यास ज्यादे लगना, कण्ठ सूखना आदि को नाश करता है।

आमाशय में विशेष उत्तेजना होने से वमन होता है। यह वमन कभी-कभी इतना उग्र रूप धारण कर लेता है कि पानी तक को भी आमाशय में नहीं ठहरने देता। ऐसी हालत में बहुत खतरनाक अवस्था उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में एलादि चूर्ण का उपयोग करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। खासकर पित्त दोष से उत्पन्न छर्दि (वमन) के लिये यह विशेष उपयोगी है।

कर्पूरादि चूर्ण

कपूर, तज, कंकोल, जायफल, तेजपत्ता प्रत्येक १-१ तोला, लौंग १ तोला, जटामाँसी २ तोला, कालीमिर्च ३ तोला, पीपल ४ तोला, सोंठ ५ तोला और मिश्री या चीनी सब दवा के बराबर ले कर यथाविधि चूर्ण बना लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१ से ३ माशे की मात्रा में सुबह-शाम अथवा आवश्यकतानुसार दिन में ३-४ बार ठण्डा जल या छाछ (मट्ठा) के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से अरुचि, खाँसी, स्वरभंग, श्वास, गुल्म, वमन और कण्ठ के रोग नष्ट होते हैं।

इस चूर्ण का उपयोग स्वर भंग तथा कण्ठ रोग यथा—गले में कफ वृद्धि के कारण एकाएक दर्द हो जाना, गलशुण्डिका बढ़ जाना आदि रोगों में इस चूर्ण को दिन भर में ५-७ बार चुटकी से मुंह में (सूखा ही) डालने से बहुत शीघ्र गला खुल जाता है। आवाज साफ आने लगती तथा गले में अटका हुआ कफ छूँट कर निकल जाता है। इसके सेवन से गले का दर्द तुरन्त बन्द हो जाता है।

इसके अतिरिक्त अरुचि में भी इसका प्रयोग सफल सिद्ध हुआ है। यह चूर्ण पित्तशामक तथा कफ निःस्सारक है।

कर्कटी बीज चूर्ण

ककड़ी के बीज, सेंधानमक और त्रिफला सब चीजें समान भाग लेकर महीन चूर्ण बना, सुरक्षित रख लें। —वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—३ माशे की मात्रा में सुबह-शाम गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण पित्तशामक तथा मूत्रप्रवर्तक है। कभी-कभी पित्त की अधिकता के कारण मूत्रनली में उचित परिमाण में मूत्र नहीं आता अथवा खुल कर पेशाब नहीं होता। बूंद-बूंद कर पेशाब आता है। इसमें—बस्तिप्रदेश में दर्द होना, पेडू में सूजन, जननेन्द्रिय की नसों में खिचावट, दर्द से व्याकुलता, प्यास, कण्ठ सूखना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी दशा में इस चूर्ण के उपयोग से पित्त शान्त हो, मूत्र खुल कर आने लगता है।

नोट—इसमें सेंधानमक के स्थान पर यवक्षार और मिश्री सम भाग में मिला कर प्रयोग किया जाय तो बहुत शीघ्र लाभ करता है।

कमलाक्षादि चूर्ण

कमलगट्टा ७ तोला, जायफल २ तोला, केशर १ तोला, तेजपात १ तोला, शतावरी २ तोला, असगन्ध २ तोला, सफेद मूसली २ तोला, वंशलोचन १ तोला, सालम पंजा २ तोला, छोटी इलायची के बीज १ तोला, सोंठ १ तोला, रूमीमस्तगी १ तोला, पीपलामूल

१ तोला, कवाबचीनी १ तोला, सबको कूट कपड़छान चूर्ण करके शीशी में भर लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे चूर्ण को १ तोला गाय के घी में कुछ भून कर आध सेर गाय का दूध और अन्दाज से मिश्री मिला (गरम करके ठण्डा कर) उसके साथ दें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण पौष्टिक, बलकारक, कामोत्तेजक और उत्साहवर्द्धक है। अधिक वीर्यपात हो जाने से शारीरिक शक्ति का ह्रास हो गया हो, रस-रक्तादि धातुएँ कमजोर हो गयी हों, रक्त की कमी से शरीर दुर्बल तथा कान्तिहीन हो गया हो, ऐसी दशा में इस चूर्ण के सेवन से आशातीत लाभ होता है। विशेषकर जाड़े के समय में इसका सेवन करना बहुत उपयोगी है।

कामदेव चूर्ण

कौंच की गिरी १ तोला, सफेद मूसली २ तोला, मखाने की ठुड्डी (छिलका रहित) ३ तोला, तालमखाना ४ तोला, मिश्री ५ तोला सबका महीन चूर्ण कर मिश्री मिला कर काम में लावें।

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे तक सुबह-शाम गाय के दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से धातु (शुक्र) विकार, शीघ्र पतन और स्वप्नदोष आदि दोष मिट जाते हैं।

इस चूर्ण का उपयोग धातु (शुक्र) का पतलापन दूर कर उसे गाढ़ा करने के लिये किया जाता है। स्वप्नदोष या अतिस्त्री प्रसंग अथवा अप्राकृतिक ढंग से शुक्र का नाश करने से वीर्य पतला हो जाता है। वीर्य पतला हो जाने से मनुष्य सांसारिक सुख-भोगादि से वंचित रह जाता है। ऐसे मनुष्यों का जीवन बेकार-सा प्रतीत होने लगता है। अतः यदि अपने जीवन को आनन्द के साथ बिताना तथा शरीर को बलिष्ट और सुन्दर बनाना चाहें, तो इस चूर्ण का अवश्य उपयोग करें। शुक्र को गाढ़ा करने के लिये यह एक ही दवा है।

कुंकुमादि चूर्ण

केशर, कस्तूरी, नागरमोथा, तेजपात, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, त्रिफला, अकरकरा, धनियाँ, अनारदाना, काली मिर्च, पीपल, अजवायन, तिन्तड़ीक, हींग, कपूर, तुम्बुरू (नैपाली धनियाँ) तगर, सुगन्ध वाला, लौंग, जावित्री, मजीठ, पुष्करमूल, प्रियंगुफूल, कमलगट्टा, बंशलोचन, कपूरकचरी, तालीशपत्र, चीता, जटामाँसी, जायफल, खस, खरेंटी, नागबला, कूठ, पीपलामूल, अभ्रकभस्म, रौप्यमाक्षिक और स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक १-१ तोला लें। इन सब दवाओं के समान भाग मोचरस लेकर काष्ठौषधियों का कूट-कपड़छान चूर्ण बना भस्म मिलावें। फिर सब चूर्ण के बराबर मिश्री मिला चूर्ण को सुरक्षित रख लें। --यो० चि०

मात्रा और अनुपान---३ से ६ माशे की मात्रा में सुबह-शाम तथा खाना खाने के बाद गरम जल अथवा रात को गाय के दूध के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग---इस चूर्ण के सेवन करने से अजीर्ण, अग्नि-मांद्य, वात, पित्त और कफजन्य रोग, उबकाई, अरुचि, वमन, अतिसार, ग्रहणी, क्षय, कास-श्वास, खाँसी, उदर रोग, मूत्रकृच्छ्र, आदि रोगों का नाश होता है। यह बाजीकरण, बलवर्द्धक तथा दीपक-पाचक है। शारीरिक-शक्ति-वृद्धि के लिये इस चूर्ण का सेवन विशेष रूप से किया जाता है।

कृमिघ्न चूर्ण

ढाक (पलास) के बीज, कुटज, (कुड़ा) की छाल प्रत्येक एक-एक छटाँक, बायबिडङ्ग आधा पाव। इन तीनों को एकत्र कूट-कपड़छान चूर्ण बनाकर रख लें। ---रसा० सा०

मात्रा और अनुपान---३-६ माशे, सुबह-शाम गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग---इस चूर्ण के सेवन करने से पेट के कीड़े, दस्त की कब्जियत, जी मिचलाना आदि उपद्रव नष्ट होते हैं।

नोट—इस चूर्ण के सेवन करने से करीब २-३ घण्टा पहले २ तोले गुड़ खा लेना चाहिये। जिससे पेट के सब कीड़े एक जगह इकट्ठे हो जाएं। बाद में इस चूर्ण का सेवन करें। इससे दस्त द्वारा सब कीड़े मर कर निकल जाते हैं।

कृष्णादि चूर्ण

पीपल, सोंठ, बेलगिरी, नागरमोथा और अजवायन प्रत्येक समान भाग ले कर कूट-कपड़छान चूर्ण बना रख लें। —वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—४ से ६ रत्ती, सुबह-शाम तथा दोपहर को शहद और थोड़ा घी मिलाकर दें।

दूसरा—पीपल, अतीस, नागरमोथा और काकड़ासिंगी प्रत्येक दवा सम भाग ले कर चूर्ण कर के रख लें। —शा० ध० सं०

गुण और उपयोग—इसके सेवन से छोटे-छोटे बच्चों की संग्रहणी, अतिसार, दूध न पचना, पेट फूलना या दर्द होना आदि दूर हो जाते हैं।

छोटे-छोटे बच्चों को प्रायः दूध की खराबी से या दाँत निकलते समय फटा-फटा दस्त होने लगता है। बच्चा दिन-दिन दुबला और कमजोर होता चला जाता है। इसमें दस्त सफेद, खुरदरे और फटे-फटे से आते हैं। कभी पेट भी फूल जाता और दर्द करने लगता है। बच्चों का स्वभाव चिड़-चिड़ा हो जाता, ज्यादे रोता ही रहना आदि लक्षण होते हैं। यह अवस्था बच्चों के लिये बहुत भयंकर होती है। कभी-कभी इसी रोग के कारण सूखा रोग भी बच्चे को पकड़ लेता है। अतः इन उपद्रवों से बचाने के लिये कृष्णादि चूर्ण का उपयोग अवश्य करना चाहिये। यह बच्चों की आँतों को मजबूत कर दस्त बाँध देता है जिससे दस्त कम लगने लगते हैं, और धीरे-धीरे बच्चा स्वस्थ हो जाता है।

गंगाधर चूर्ण (वृहत्)

नागरमोथा, अरलू (सोनापाठा), सोंठ, धाय के फूल, लोध, नेत्रबाला, बेलगिरि, मोचरस, पाढ़, इन्द्रजौ, कुड़ा की छाल, आम की

गुठली की गिरी, लज्जालु और अतीस समान भाग लेकर कूट कपड़-छान चूर्ण बना रख लें। —शा० ध० सं०

दूसरा (लघु)—नागरमोथा, इन्द्रजौ, बेलगिरी, पाठानी लोध, मोचरस और धाय के फूल, प्रत्येक समान भाग लेकर कूट-कपड़छान चूर्ण बना सुरक्षित रख लें। —शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—१ माशे से ३ माशे, सुबह-शाम शहद के साथ चाट कर ऊपर से चावल का पानी पीला दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से प्रवाहिका, अतिसार और ग्रहणी रोग नष्ट होते हैं।

इस चूर्ण का प्रभाव आँतों पर विशेष होता है। यह अपने ग्राही गुण के कारण दस्त को रोकता है। अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी, संग्रहणी आदि रोगों में आँतें कमजोर होकर अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाती हैं। साथ ही ग्रहणी की ग्राहक शक्ति भी नष्ट हो जाती है। इस चूर्ण के सेवन से ये सब दोष दूर हो जाते हैं और दस्त भी बँध कर आने लगते हैं। अतएव अतिसार, प्रवाहिका या ग्रहणी आदि रोगों में इसका प्रयोग बहुत शीघ्र लाभदायक होता है।

गोक्षुरादि चूर्ण

गोखरू, तालमखाना, शतावर, कौंच के बीज, नागबला और अतिबला प्रत्येक दवा समान भाग लेकर कूट-कपड़छान चूर्ण बना लें। —यो० त०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे तक सुबह-शाम अथवा रात को सोते समय मिश्री मिले हुए गाय के दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण, वृष्य, बल-वीर्य वर्द्धक और कामोत्तेजक है। शुक्र की निर्बलता से स्त्री प्रसंग के समय शुक्र क्षरण बहुत शीघ्र हो जाने पर स्त्री-पुरुष वास्तविक आनन्द से वंचित रह जाते हैं। इसके लिये कई विषाक्त दवाओं का भी कभी-कभी लोग उपयोग कर बैठते हैं, जिससे नुकसान के सिवा लाभ कुछ नहीं होता। यह चूर्ण निर्विष होते हुए रोग को जड़ से नष्ट कर वास्तविक

आनन्द देने के लिए अभूतपूर्व है। रात को संभोग से एक घंटा पहले मिश्री मिला हुआ गर्म दूध के साथ सेवन करने से अपूर्व बाजीकरण होता है। साथ ही वीर्य का पतलापन दोष दूर हो कर वीर्य गाढ़ा हो जाता है। लगातार कुछ दिनों तक इस चूर्ण के सेवन से फिर यह रोग कभी नहीं होता है।

चन्दनादि चूर्ण

सफेद चन्दन, नल, लोध, खस, कमल केशर, नागकेशर, बेलगिरि, नागरमोथा, मिश्री अथवा खाँड़, नेत्रबाला, पाठा, कुड़ा की छाल, इन्द्रजौ, सोंठ, अतीस, धाय के फूल, रसौत, आम और जामुन की गुठली की मींगी, मोचरस, नीलोफर, मजीठ, छोटी इलायची और अनारदाना समान भाग लेकर चूर्ण बना कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे, सुबह-शाम शहद में मिलाकर दें। ऊपर से चावल का पानी (तण्डुलोदक) पिला दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से रक्त प्रदर, श्वेत प्रदर, रक्तातिसार, खूनी बवासीर और रक्तपित्त आदि पैत्तिक रोग नष्ट हो जाते हैं।

वात-पित्त तथा रक्त प्रधान रोगों में इसका उपयोग विशेष रूप से किया जाता है। रक्तरोधक तथा पित्त शामक गुण विशिष्ट होने के कारण ही रक्त प्रदरादि रोगों में इसका उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त हाथ-पाँव में जलन, सर्वाङ्ग में दाह, प्यास ज्यादा, कण्ठ सूखना, शीतल जल पीने से तृप्ति न मिलना आदि उपद्रव होने पर भी इस दवा का उपयोग किया जाता है। यह चूर्ण शीतवीर्य होने के कारण पैत्तिक रोगों में विशेष लाभदायक है। रक्तप्रदर में इसका उपयोग प्रधानतया किया जाता है।

चित्रकादि चूर्ण

चीता, पीपलामूल, पीपल, गजपीपल, हींग, पुष्करमूल, अनारदाना, कालाजीरा, बायबिडंग, धनिया, हाऊबेर, सोया, हिंगुपत्री, चव्य, अम्लवेत, जीरा, अजवायन, कचूर, बच, तुम्बुरू (नैपाली

धनिया) अजमोद, अजवायन और कालानमक प्रत्येक समान भाग तथा सब के बराबर सोंठ लेकर महीन चूर्ण करके बिजौरे नीबू के रस में घोट कर सुखा करके रख लें। —ग० नि०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे, सुबह-शाम। आवश्यकता होने पर भोजन के बाद भी गर्म जल से या छाछ के साथ देना चाहिये।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से सर्वाङ्गशूल, उदर-शूल, सफेद आमाशा, अरुचि, मन्दाग्नि, पेट में वायु का इकट्ठा होना संग्रहणी, गुल्म, प्लीहा आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। यह दीपन-पाचन तथा अग्निवर्द्धक है।

चोपचीन्यादि चूर्ण

चोपचीनी का चूर्ण १६ तोला, खाँड ४ तोला, पीपल, पीपलामूल, लौंग, कालीमिर्च, अकरकरा, तालमखाना, सोंठ, बायबिडंग और दालचीनी प्रत्येक दवा ६-६ माशे लेकर कूट कपड़छान चूर्ण बना लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे, सुबह-शाम। शहद और घी न्यूनाधिक मात्रा में मिला कर दें अथवा गरम जल या दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह उत्तम व्रणनाशक है। घाव, शिर के फोड़े-फुन्सी, झरनेवाले फोड़े-फुन्सी, मुँह के छाले, भगन्दर, नाड़ीव्रण, अर्बुद, विद्रधि, पीनस, आँख, कान और नाक, दाढ़ी, गर्दन, हाथ-पाँव आदि स्थानों के छोटे-बड़े सभी व्रण, प्रमेह उपदंश, सूजाक और आतशक अर्थात् गर्मी की बीमारी, खुजली, दद्रु मण्डल, कुष्ठ, दाद, रक्त विकार, गलगण्ड, गण्डमाला, ग्रन्थी-गाँठ, वीर्य विकार, कमजोरी, नपुंसकता आदि रोग नाशक है।

जातीफलादि चूर्ण

जायफल, लौंग, छोटी इलायची, तेजपात, दालचीनी, नागकेशर, शुद्ध कपूर, सफेद चन्दन, धोये हुए काले तिल, बंशलोचन, तगर, आँवला, तालीसपत्र, पीपल, हर्रे, चित्रकछाल, सोंठ, बायबिडङ्ग, मिर्च

और काला जीरा प्रत्येक समभाग लेकर कपड़छान चूर्ण तैयार करें, जितना चूर्ण हो उसके बराबर धुली हुई भाँग का चूर्ण मिला दें। फिर सब चूर्ण के समान भाग मिश्री मिला कर रख लें।—शा०ध०सं०

मात्रा और अनुपान—१ माशे से २ माशे, सुबह-शाम दें। यदि नशा अधिक मालूम पड़े तो मात्रा कम कर देनी चाहिये।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से ग्रहणी, अतिसार, अर्मांश, पेट के मरोड़, दर्द होकर दस्त आना, मन्दाग्नि, अरुचि, कास-श्वास, क्षय, हैजा, अपचन, आध्मान, शूल, पीनस, बार-बार जुकाम होने की आद और वात-कफ के विकार आदि रोग नष्ट होते हैं।

इसमें भाँग की मात्रा विशेष होने से यह अवष्टंभक अर्थात् दस्त रोकने वाला तथा निद्रा लानेवाला है। खाने में रुचिकर और मधुर है। संग्रहणी की अत्युग्रावस्था में जब किसी दवा से दस्त रुकता हुआ न दीखे तब इस चूर्ण के उपयोग से आश्चर्यजनक लाभ होते देखा गया है। यह कुछ नशीली भी है। अतः नींद भी अच्छी लाती है।

प्रतिश्याय (जुकाम) जैसी बुरी बीमारी के लिये तो यह एक ही दवा है। किसी-किसी आदमी को जुकाम होने की आदत-सी पड़ जाती है, बराबर सर्दी बनी ही रहती है। नया कफ बनता ही रहता और बराबर नाक बहती रहती है। ऐसी अवस्था में इस चूर्ण के सेवन से काफी लाभ होता है।

तालीसादि चूर्ण

तालीसपत्र १ तोला, कालीमिर्च २ तोला, सोंठ ३ तोला, छोटी पीपल ४ तोला, बंशलोचन ५ तोला, छोटी इलायची और दालचीनी ६-६ माशे लें—इन सबका महीन चूर्ण कर फिर इसमें ३२ तोला मिश्री या चीनी मिलाकर रख लें। —शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—२ से ३ माशे, सुबह-शाम-मधु और घी के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से खाँसी, विशेषकर सूखी

खाँसी, जीर्णज्वर, अग्निमान्द्य, संग्रहणी, अरुचि और पाचन शक्ति की कमी आदि विकारों में बहुत ही फायदा होता है। यह चूर्ण कुछ उष्ण, पाचक, अग्निप्रदीपक और दस्त को रोकनेवाला है।

इसका उपयोग सूखी खाँसी में विशेष किया जाता है। वात या पित्त प्रकोप के कारण कफ सूख कर छाती में बैठ जाने पर सूखी खाँसी उठती है। इसमें खाँसी ज्यादे होना, बहुत खाँसने के बाद थोड़ा-सा कफ का टुकड़ा (पीला) बाहर निकल जाने पर कुछ देर के लिए शान्ति मिलना, खाँसते समय छाती में मीठा-मीठा दर्द, नसों में खिचावट, प्यास और कण्ठ सूखना, आँखें और चेहरा लाल हो जाना आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी दशा में तालीसादि चूर्ण के उपयोग करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। क्योंकि यह कफ को पिघला कर बाहर निकाल देता तथा पित्त की गर्मी को शान्तकर तरी बनाये रखता है। श्वासनलिका में से कफ निकल जाने पर खाँसी स्वयं बन्द हो जाती है। इसके अतिरिक्त अरुचि आदि को नष्ट करने के लिये भी यह उपयोग में आता है।

दन्तप्रभा चूर्ण (मंजन)

खरियामिट्टी ६ तोला, सफेद कत्था ५ तोला, दालचीनी ४ तोला, मौलश्री की छाल, अजवायन, सेंधानमक, कालीमिर्च, भिलावे की राख, सोंठ, बादाम-छिलका की राख, जायफल, अकरकरा, लौंग, माजूफल इलायची ये दवाएँ ३-३ तोले, शुद्ध तूतिया, कपूर और खस प्रत्येक १-१ तोला, पुटासपरमेंगनेट ३ माशे—सब को कूट-पीसकर कपड़छान चूर्ण बना शीशी में रख लें। —च०

गुण और उपयोग—इसको दही में मिलाकर मुँह के छालों पर लगाने से छाले बहुत शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इसके मंजन से दाँत का दर्द, दाँत से खून जाना, पुराना पायरिया, मुँह की दुर्गन्धि, दाँत में कीड़े हो जाना, दाँतों की मैल, असमय में ही दाँत हिलना आदि विकार नष्ट होते हैं।

दूसरा—बादाम के छिलके की राख, मौलश्री की छाल का चूर्ण, खड़ियामिट्टी, अगर, लकड़ी का कोयला प्रत्येक ४-४ तोला, फिटकरी भुनी हुई १ तोला, सेंधानमक ६ माशा, असली कपूर ३ माशा, शुद्ध तूतिया ४ रत्ती सबका महीन कूट-पीसकर कपड़छान चूर्ण बना लें, फिर उसमें सत पिपरमेंट १ माशा मिलाकर चौड़े मुँह की शीशी में भर कर रख दें।

व्यवहार—यह सुगन्धित मंजन है। सुबह-शाम इसका मंजन करना बहुत गुणदायक है।

गुण और उपयोग—मुँह की दुर्गन्ध नष्ट करना इसका प्रधान गुण है। दाँतों के सब विकारों को नष्ट कर दाँत को मोती के समान चमका देता है।

दशनसंस्कार चूर्ण (मञ्जन)

सोंठ, हर्रे, मोथा, कत्था, कपूर, सुपारी की राख, कालीमिर्च, लौंग, और दालचीनी सब चीजें समान भाग लेकर कूट-कपड़छान कर महीन चूर्ण बना लें। इस चूर्ण के समान भाग खड़ियामिट्टी का चूर्ण मिला शीशी में भरकर रख लें।

नोट—कपूर सबसे पीछे मिलावें तथा खड़िया मिट्टी का पृथक् चूर्ण कर मिलावें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के मंजन से दाँतों के समस्त विकार नष्ट हो जाते तथा दाँत साफ-स्वच्छ और मजबूत बने रहते हैं।

दाड़िमाष्टक चूर्ण

अनारदाना ८ तोला, ख़ाँड ३२ तोला, दालचीनी, इलायची के दाने और तेजपात ४-४ तोले, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च प्रत्येक ८-८ तोले इन सबको एकत्र कर चूर्ण बना लें। —वृ० नि० र०

दूसरा—अनारदाना ३२ तोला, खाँड ३२ तोला, पीपल, पीपलामूल, अजवायन, कालीमिर्च, धनिया, जीरा, सोंठ, प्रत्येक ४-४ तोले, बंशलोचन १ तोला, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर प्रत्येक ६-६ माशे लें, इन सबको एकत्र कर चूर्ण बना लें। यह वृहद्दाड़िमाष्टक चूर्ण है।

मात्रा और अनुपान—३ माशे, सुबह-शाम तक्र या गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयो—इस चूर्ण के सेवन से आमातिसार, अग्नि-मान्द्य, अरुचि, खाँसी, हृदय की पीड़ा, पसली का दर्द, ग्रहणी और गुल्म रोग का नाश होता है।

पित्त-प्रधान रोगों में इसका उपयोग विशेष रूप से किया जाता है। यह सौम्य-शीतल-रुचिवर्द्धक तथा पित्तशामक और कण्ठ शोधक है।

पाचक पित्त की निर्बलता से आमाशय कमजोर हो जाने पर खाया हुआ पदार्थ आमाशय में ज्यों-का-त्यों पड़ा रहता है। इस अन्न के पड़े रहने से दूषित गैस की उत्पत्ति होती है; जिससे कण्ठ में जलन, खट्टी डकारें, पेट भारी, दस्त की कब्जियत आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में दाड़िमाष्टक चूर्ण का उपयोग उचित अनुपान के साथ करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

द्राक्षादि चूर्ण

मुनक्का, धान की खील, चीनी, कमल, मुलैठी, खजूर, अनन्त-मूल, बंशलोचन, सुगन्धबाला, आँवला, मोथा, सफेद चन्दन, तगर, कंकोल, जायफल, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, पीपल, धनिया प्रत्येक चीजें समान भाग लेकर चूर्ण करें तथा सबके बराबर खाँड (मिश्री) मिलाकर रख लें। —ग० नि०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे, सुबह-शाम शीतल जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन करने से अम्लपित्त, छर्दि, मूर्च्छा, अरुचि, प्रदर, पाण्डु, कामला और यक्ष्मा आदि विकार नष्ट होते हैं। यह चूर्ण पित्त और वातजन्य रोग शामक, शीतल, रक्त और बलवर्द्धक तथा पौष्टिक है।

अम्लपित्त में—इस चूर्ण के उपयोग से अनेक रोगी अच्छे किये गये हैं। अम्लपित्त में उत्पन्न छर्दी (बमन), अरुचि आदि को नष्ट करने के लिये यह अच्छी दवा है।

धातुपौष्टिक चूर्ण (शतावर्यादि चूर्ण)

शतावरी, गोखरू, बीजवन्द, वंशलोचन, कबाबचीनी, चोपचीनी, कौंच के बीज, सफेद मूसली, काली मूसली, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सालम मिश्री, विदारीकन्द प्रत्येक १-१ तोला, निशोथ ६ तोला, मिश्री २० तोले सबको एकत्र कूटकर चूर्ण बना लें। ——आ० प्र०

मात्रा और अनुपान——६ माशे से १ तोला, सुबह-शाम गाय के दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग——यह चूर्ण पौष्टिक, धातुवर्द्धक और वीर्य को गाढ़ा करनेवाला है। इसके सेवन करने से पतला धातु गाढ़ा हो जाता है और स्वप्नदोष दूर होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट बन जाता है।

नोट——यह चूर्ण गरिष्ठ (बहुत देर में पचनेवाला) है। अतएव इसका सेवन मन्दाग्निवाले को नहीं करना चाहिये। जिसकी जठराग्नि तेज हो वही इसके सेवन से लाभ उठा सकते हैं। इसके सेवन काल में गाय के दूध का सेवन अवश्य करना चाहिये।

नागकेशरादि चूर्ण

नागकेशर ४ तोला, बेलगिरी २ तोला, अनीसून २ तोला, सौंफ २ तोला, खसखस १ तोला, छोटी इलायची १ तोला, धनिया १ तोला, मोचरस १ तोला, खस १ तोला, सफेद चन्दन १ तोला, गुलाब के फूल १ तोला, कपूर कचरी १ तोला, जल से धोकर सुखी हुई भाँग ५ तोला और मिश्री ५ तोला लें। सबका एकत्र कपड़छान चूर्ण करके रख लें। ——सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान——२-३ माशे, सुबह-शाम जल से दें।

गुण और उपयोग——पित्तातिसार और रक्तातिसार में यह उत्तम योग है। इस चूर्ण को अकेला या रसपर्पटी के साथ मिलाकर दें।

नारसिंह चूर्ण

शतावर ६४ तोला, छोटा गोखरू ६४ तोला, वाराहीकन्द ८० तोला, गिलोय १०० तोला, शुद्ध भिलावा १२८ तोला, चित्रकमूल छाल ४० तोला, धोये हुए तिल ६४ तोला, दालचीनी, तेजपात और

छोटी इलायची प्रत्येक ३२-३२ तोला, मिश्री २८० तोला, विदारी-कन्द ६४ तोला लें, सबको एकत्र कूट-कपड़छान चूर्ण बनाकर शीशी में भर लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—३ माशे से ६ माशे, सुबह-शाम ६ माशे गाय का घी और १ तोला शहद मिलाकर दें, ऊपर से गाय का दूध पिला दें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण उत्तम बाजीकरण, बलवर्द्धक और रसायन है। इसके अतिरिक्त सब प्रकार के वातरोगों में भी इसका उपयोग किया जाता है।

नारायण चूर्ण

अजवायन, हाऊबेर, धनिया, हर्रे, बहेड़ा, आमला, कलौंजी, बनतुलसी, पीपलामूल, अजमोद, कचूर, बच, सोया, जीरा, सोंठ, मिर्च, पीपल, स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी की जड़-चोक), चीता, यव-क्षार, सज्जीक्षार, पुष्करमूल, कूठ, पाँचो नमक, बायबिडंग प्रत्येक १-१ तोला और दन्तीमूल ३ तोला, निशोथ ३ तोला, इन्द्रायन की जड़ २ तोला, सातला ४ तोला लेकर कूट कपड़छान चूर्ण बना रख लें। —शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे तक सुबह-शाम निम्नलिखित अनुपान के साथ दें। उदररोगों में—तक्र (छाछ) के साथ, गुल्म रोग में—बेर के क्वाथ के साथ, वायु पेट में भर जाने पर—मद्य के साथ अथवा अर्क सौंफ के साथ दें। वातव्याधि में—महारास्नादि क्वाथ के साथ दें। दस्त की कब्जियत में—दही के पानी के साथ, अर्श में—अनार के रस के साथ, अजीर्ण में—गरम जल के साथ दें।

इसके अतिरिक्त भगन्दर, पाण्डुरोग, खाँसी, श्वास आदि रोगों में उचित अनुपान के साथ प्रयोग करें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण का उपयोग विशेषकर उदर रोग में किया जाता है। जैसे—दस्त कब्ज रहना, हवा (अपान वायु) नहीं छूटना, पेट में वायु भर जाना, दूषित मल पेट में इकट्ठा हो

जाना, भूख नहीं लगना आदि रोगों में यह विशेष गुणकारी है। क्योंकि यह रेचक, मलशोधक तथा दीपक-पाचक है।

गुल्म, उदररोग—पेट फूलना, दस्त की कब्जियत, शोथ, उदावर्त्त, अरुचि, हृद्रोग, दमा, खाँसी, भगन्दर, मन्दाग्नि, कुष्ठ और बवासीर आदि रोगों में दस्त साफ होने के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

शोथ रोग में—पेट में ज्यादा मल-संचय होने पर रस-रक्तादि धातु क्षीण होने लगते हैं, साथ ही पाचक पित्त और शरीर के पोषण करनेवाली सहायक इन्द्रियाँ भी कमजोर हो जाती हैं, जिससे उचित परिमाण में रस-रक्तादि नहीं बनते। शरीर में जलीय-भाग विशेष होने से देह सूज जाती है। इसमें मुँह और पाँव पर विशेष सूजन होती, पेट भी कुछ उभर आता, नाभी उभर जाती, शरीर का रंग पीला और रोगी कमजोर हो जाता, दस्त साफ नहीं आता आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी दशा में नारायण चूर्ण वास्तव में नारायण भगवान की तरह रक्षा करता है। इसके सेवन से मल ढीला होकर दस्त साफ आने लगता है। पाचन क्रिया ठीक हो जाती और रस-रक्तादि भी उचित मात्रा में बनकर शरीर में रक्तकणों की वृद्धि हो जाती तथा शरीरस्थ जल-भाग सूखने लग जाते और शोथ भी नष्ट हो जाता है।

निम्बादि चूर्ण

नीम की छाल, गुर्च (गिलोय), हर्रे, आँवला और बावची प्रत्येक ४-४ तोला, सोंठ, बायबिडंग, पवाँड़ (चक्रमर्द-चकवड़), पीपल, अजवायन, बच, जीरा, कुटकी, खैरसार, सेंधा नमक, यवक्षार, हल्दी, दारुहल्दी, नागरमोथा, देवदारु और कूठ प्रत्येक १-१ तोला लेकर कूट-पीस कपड़छान चूर्ण बना सुरक्षित रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ माशा से ४ माशे तक सुबह-शाम गिलोय के क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से भयंकर वातरक्त, सफेद कोढ़, कुष्ठ, खुजली, दाद, शरीर पर लाल चट्ठे पड़ जाना,

आमवात जन्य शोथ, उदर रोग, पाण्डु, कामला और फोड़ा-फुन्सी आदि रक्तविकार नष्ट होते हैं।

यह चूर्ण वात और रक्त शोधक तथा कब्जियत दूर करनेवाला है। रक्त-विकार में इसका उपयोग अधिक किया जाता है। प्रकुपित वायु रक्त को दूषित कर शरीर में अनेक तरह के रोग उत्पन्न कर देते हैं। इसमें शरीर रूक्ष हो जाता, त्वचा फटने लगती, शरीर में लाल-लाल चकत्ते भी उठ आते, छोटी-बड़ी फुन्सियाँ भी निकल आती हैं। ऐसी हालत में इस चूर्ण के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

निम्बादि चूर्ण (ज्वर)

नीम के पत्ते १० तोले, त्रिफला चूर्ण ३ तोले, त्रिकटु (सोंठ, पीपल, कालीमिर्च) ३ तोले, अजवायन ५ तोले, सेंधा नमक, सोंचल नमक, विड्नमक प्रत्येक १-१ तोला और यवक्षार २ तोला लेकर चूर्ण बना रख लें। —भा० प्र०

मात्रा और अनुपान—२ से ३ माशे, प्रातः सायम् गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसे प्रातः-सायम् सेवन करने से ऐकाहिक, तिजारी, चौथिया, सन्तत -सतत और धातुगत ज्वर दूर होता है। मलेरिया ज्वर के लिये, यह बहुत उत्तम दवा है।

पंचसकार चूर्ण (विरेचन)

सनाय की पत्ती, सोंठ, सौंफ, सेंधानमक और शिवा (हरड़)—ये पाँचों समान भाग लेकर कूट-कपड़छन कर चूर्ण बनावें।

मात्रा और अनुपान—३ माशे से ६ माशे तक, रात को सोते समय गरम दूध या गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण दस्तावर और अग्नि को प्रदीप्त करनेवाला तथा पाचनशक्ति बढ़ानेवाला है। बद्धकोष्ठ (कब्जियत) में विरेचन के लिये इस चूर्ण का उपयोग किया जाता है। सनाय, सौंफ और हर्रे, के मिश्रण होने से यह उत्तम विरेचक योग बनता है।

पंचसम चूर्ण

पीपल, हर्रे, सोंठ, कालानमक, निशोथ, प्रत्येक समान भाग लेकर कूट कपड़छन चूर्ण बनावें। --शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान--३ माशा सुबह-शाम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग---इस चूर्ण के सेवन से जठराग्नि प्रदीप्त होती, और पाचक रस की उत्पत्ति हो हाजमा ठीक हो जाता है। इसके अतिरिक्त गुल्म, तिल्ली, पेट फूलना और अरुचि रोग भी नष्ट होते हैं।

मन्दाग्नि के कारण अन्नादिक की पाचन-क्रिया ठीक-ठीक न होने से आमाशय में कच्चा अन्न पड़ा रह जाता है और कच्चा रस तैयार होकर आँव (पेचिस) के रूप में यह दस्त के साथ निकलने लगता है। इसमें दस्त के समय पेट में असीम पीड़ा होती है, आँव जल्दी नहीं निकलती, रोगी दर्द के मारे परेशान हो जाता है, ऐसी अवस्था में इस आँव को निकालने तथा पाचक पित्त को प्रदीप्त कर पाचन क्रिया को ठीक करने के लिये यह चूर्ण बहुत उपयोगी है।

प्रवाहिकाहर चूर्ण

पोस्त के दाने, मोचरस, राल, बड़ीमाई, तुरंजबीन, धाय के फूल प्रत्येक १-१ तोला और रूमीमस्तगी २ तोला लें। पहले मोचरस और पोस्त के दाने को तवे पर डाल कर भून लें। बाद में सब चीजों को कूट-कपड़छन चूर्ण बना रख लें।

मात्रा और अनुपान---६ माशे से ९ माशे तक, सुबह-शाम छाछ के साथ दें।

गुण और उपयोग---अतिसार, रक्तातिसार, संग्रहणी, प्रवाहिका और पुराने अतिसार में यह अपना प्रभाव शीघ्र दिखाता है।

पामारि चूर्ण

शुद्ध गन्धक ४ तोला, बंशलोचन, कत्था, सत्त्वगिलोय प्रत्येक १-१ तोला, इलायची दोनों (छोटी-बड़ी) १-१ तोला औरक मलगट्टा के बीज १ तोला लें। प्रथम गन्धक को खूब महीन पीस कर रख लें,

फिर काष्ठौषधियों का कूट-कपड़छन कर महीन चूर्ण बना उसमें गन्धक का चूर्ण मिला सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ माशा, सुबह-शाम शीतल जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से रक्त की बिकृति के कारण उत्पन्न खुजली या त्वचा पर होने वाली छोटी-छोटी फुन्सियाँ और लाल-लाल चकत्ते आदि रक्त विकार जन्य रोग अच्छे होते हैं।

नोट—इस दवा के सेवन से यदि शरीर में गरमी विशेष मालूम हो तो शतधौत घृत (१०० बार का धोया हुआ घृत) में जौ का आटा, बेसन (चने का आटा) और हल्दी का महीन चूर्ण मिला शरीर पर उबटन (अभ्यंग) करने से दाह की शान्ति होती है।

दूसरा—अशुद्ध गंधक २ तोला, मैनशिल, कालीमिर्च, कबीला और दारुहल्दी प्रत्येक एक-एक तोला, नीलाथोथा (तूतिया), मुर्दाशंख, सुहागा और मटिया सिन्दूर प्रत्येक ६-६ माशे, इनका कूट-कपड़छन कर महीन चूर्ण बनावें।

गुण और उपयोग—सरसों के तेल में मिलाकर खुजली पर मालिश करने से तीन-चार दिन के अन्दर ही खुजली आराम हो जाती है। यह दबा तेज है अतः पहले बहुत कम चूर्ण तेल में मिलाकर मालिश करें। जैसे-जैसे सह्य होता जाय, वैसे-वैसे दवा की मात्रा बढ़ाकर लगाना चाहिए। यह सुकुमार प्रकृति वालों के लिए सेवन योग्य नहीं है।

पुनर्नवा चूर्ण

पुनर्नवा, गुर्च (गिलोय), पाठा, देवदारु, बेलछाल, गोखरू, दोनों कटेली, हल्दी, दारुहल्दी, पीपलामूल और चित्रक प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण बनावें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—३ माशे की मात्रा में गोमूत्र के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से समस्त शरीर पर फैला हुआ शोथ रोग दूर हो जाता है तथा उदर रोगों का नाश करता है।

इसमें पुनर्नवा की प्रधानता होने से यह चूर्ण दीपक, पाचक,

दस्तावर और मूत्रविरेचक (मूत्रलानेवाला) तथा शोथ नाशक है। इस चूर्ण का प्रधान गुण पेशाब खुल कर लाना तथा शोथ नाश करना है। मूत्रल होने की वजह से ही यह शोथघ्न है। क्योंकि पुनर्नवा के सेवन से मूत्रपिण्ड में बिना किसी प्रकार के कष्ट हुए मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है। मूत्रपिण्ड पर रक्त का दबाव बढ़ कर पेशाब की मात्रा बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त मूत्रपिण्ड के अन्दर मूत्र उत्पन्न करनेवाले परमाणुओं पर इस (पुनर्नवा) की उत्तेजक क्रिया होती है। जिससे पेशाब में क्षार की मात्रा बढ़ जाती है।

हृदय के ऊपर पुनर्नवा की क्रिया थोड़ी किन्तु स्पष्ट रूप से होती है। इससे हृदय की संकोचक क्रिया बढ़ जाती है, नाड़ियों में रक्त का प्रवाह जोरों से होने लगता है और रक्त का दबाव बढ़ जाता है। रक्त का दबाव बढ़ने के कारण ही मूत्र की तादाद बढ़ जाती है। जिससे शरीर में संचित दूषित जल निकल जाता है। अतएव पुनर्नवा में शोथघ्न धर्म माना गया है और यह वास्तव में शोथघ्न है भी। इन्हीं कारणोंसे शोथ रोग में इसके उपयोग से लाभ होता है।

पुष्यानुग चूर्ण

पाठा, जामुन की गुठली की गिरी, आम की गुठली की गिरी, पाषाणभेद, रसौत, आमडा, मोचरस, मजीठ, कमलकेसर, चित्रक, अतीस, नागरमोथा, बेल-गिरी, लोध, गेरू, कायफल, कालीमिर्च, सोंठ, मुनक्का, लाल चन्दन, सोना पाठा (स्योनाक-अरलू) की छाल, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, धाय के फूल, मुलैठी और अर्जुन की छाल प्रत्येक समभाग (मूल ग्रन्थ में ये सब चीजें पुष्यनक्षत्र में एकत्रित करने को लिखा है) लेकर एकत्र कूट-कपड़छन कर महीन चूर्ण बना रख लें।

—भै० र०

मात्रा और अनुपान—२ से ३ माशे तक सुबह-शाम शहद के साथ लेकर ऊपर से चावल का धोवन (पानी) पीना चाहिये।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से योनि रोग-योनिदाह, रजदोष, सब प्रकार के प्रदर,—नीला, काला, लाल व पीला-योनि-

स्राव, योनिक्षत, बवासीर, खूनी बवासीर, अतिसार, दस्त में खून आना, कृमि और खूनी आँव रोग नष्ट होते हैं।

स्त्रियों के बहुत से रोगों की जड़ उनके गुह्य (गुप्त) स्थान के रोगों में मिल जाती है। अकाल (छोटी आयु) में अति समागम तथा गर्भधारण, गुप्तांगों की सफाई न रखना, गर्भावस्था में प्रसव के समय या उसके बाद योग्य उपचार का अभाव, खट्टे या बासी आदि दोषकारक आहार-विहारादि कारणों से स्त्रियों के गुप्तेन्द्रिय (योनि) में विकृति पैदा हो जाती है। फिर उसका परिणाम बुरा होता है। यथा—गर्भाशय फूल जाना या योनि से किसी प्रकार का स्राव शुरू हो जाना आदि। ऐसी अवस्था में पुष्यानुग चूर्ण का उपयोग करना चाहिये।

किसी-किसी स्त्री को गर्भाशय बाहर निकल जाने की शिकायत बराबर बनी रहती है। ऐसी अवस्था में या योनि से किसी प्रकार के स्राव होने पर इसका उपयोग अमृत के समान लाभ पहुंचाता है।

वज्रक्षार चूर्ण

सामुद्र नमक, सधानमक, काचलवण, यवक्षार, कालानमक सुहागा और सज्जीखार समानभाग लेकर चूर्ण बनावें और फिर, उसे आक तथा सेहुंड (थूहर) के दूध की ३-३ भावना देकर सबका एक गोला बना सुखा लें। अब इस गोले को आक के पत्तों में लपेट कर हाण्डी में बन्द कर पुट दें और उसे स्वांगशीतल होने पर निकाल कर पीस लें फिर उसमें सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, अजवायन, जीरा और चित्रक-छाल का समान भाग मिश्रित चूर्ण इस क्षार के बराबर मिला खरल करके रख लें। —र० सा० सं०

मात्रा और अनुपान—२ से ३ माशे तक सुबह-शाम गर्म पानी के साथ या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण गुल्म, शूल, अजीर्ण, शोथ, सब प्रकार के उदर रोग, अग्निमांद्य, उदावर्त्त और प्लीहा रोग को नष्ट

करता है। अजीर्ण और उससे होनेवाले विकारों के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है।

यह दीपक-पाचक, कब्जियत दूर करने वाला और वात-कफ शामक है। विशेषतया इस चूर्ण का उपयोग उदर रोगों में यथा—पेट फूलना, भूख नहीं लगना, हाजमे की खराबी, दस्तकब्ज, मन्दाग्नि, गुल्म रोग, यकृत्-प्लीहा की वृद्धि आदि रोगों में किया जाता है।

बाकुचिकाद्य चूर्ण

बावची, हर्रे, बहेड़ा, आमला, चित्रकमूल, शुद्ध भिलावा, शतावर, सम्भालू, असगन्ध और नीम का पंचांग प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण बना सुरक्षित रख लें। —ग० नि०

मात्रा और अनपान—२ से ४ माशे तक, गुर्च (गिलोय) के क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण रक्तशोधक, विरेचक और कुष्ठघ्न है। इसके सेवन से रक्तविकार, कुष्ठ, वातरक्त, शरीर पर होनेवाली छोटी-छोटी फुन्सियाँ आदि नष्ट हो जाती हैं।

बालचातुर्भद्र चूर्ण

नागरमोथा, छोटी पीपल, अतीस और काकड़ासिंगी प्रत्येक समभाग लेकर कपड़छन चूर्ण बना शीशी में सुरक्षित रख लें। —शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—२ से ८ रत्ती, शहद में मिला कर दिन में दो बार दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से बच्चों के ज्वर, अतिसार, खाँसी और वमन आदि रोग नष्ट होते हैं।

यह चूर्ण बच्चों की बीमारी के लिये बहुत प्रसिद्ध है। सर्वसाधारण में यह चौहद्दी, चौभुजी, चटनी आदि नाम से प्रसिद्ध है। यह दवा बच्चों के लिये अमृत के समान गुण करती है। बच्चों के ज्वर के साथ होने वाले पतले दस्त, दूध न पचना, पेट फूल जाना, पेट में दर्द, होना आदि रोगों में यह दवा माँ के दूध के साथ अथवा उपरोक्त अनुपान के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ करता है।

बिल्वफलादि चूर्ण

बेल-गिरी, नागरमोथा, सुगन्धबाला, मोचरस और इन्द्रजौ समान भाग लेकर कूट-कपड़छान कर महीन चूर्ण बना लें। —वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—२ से ३ माशे, सुबह-शाम बकरी के दूध या शीतल जल से दें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण संग्राही है अर्थात् पतले दस्त को रोकता तथा आँतों को बलवान बनाता है। इस चूर्ण के सेवन से आम और खून्युक्त संग्रहणी नष्ट हो जाती है।

संग्रहणी की पुरानी अवस्था में—आँतों में खराश हो जाती अर्थात् आँतें छिल जातीं हैं; जिससे दस्त के समय थोड़ा-सा भी जोर लगने पर आँव के साथ दर्दसह खून निकल आता है। जब तक यह खून और आँव नहीं निकल जाते तब तक बहुत दर्द होता रहता है। ऐसी अवस्था में बिल्वादि चूर्ण के सेवन से आँतों की खराश भर जाती है तथा आँतें बलवान होकर अपने कार्य करने में समर्थ हो जाती और आँव भी जो आमाशय में संचित हुई रहती हैं बहुत शीघ्र निकल आती है।

दूसरा—बेलगिरी, नागरमोथा, धाय के फूल, पाठा, सोंठ, और मोचरस प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण बना सुरक्षित रख लें।

—बं० से०

गुण और उपयोग—अतिसार रोग के लिये यह उत्तम दवा है। तक्र के साथ इसका उपयोग किया जाता है। संग्रहणी में भी यह लाभदायक है।

विदार्यादि चूर्ण

विदारीकन्द, सफेद मूसली, सालमपंजा, असगंध, गोखुरू, अकरकरा, प्रत्येक समभाग ले कपड़छन चूर्ण करके शीशी में भर लें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—३-३ माशा, सुबह-शाम भोजनके तीन घण्टे पहले गाय के गरम दूध के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से वीर्य की वृद्धि और स्तम्भन तथा कामोत्तेजना होती है।

यह चूर्ण गुरुपाकी अर्थात् देर से हजम होने वाला है। अतएव मन्दाग्नि वाले रोगी या जो अधिक कमजोर हों उन्हें इस दवा का सेवन कम मात्रा में करना चाहिये। वीर्य विकार अर्थात् जिसका वीर्य पतला हो गया हो, अथवा, जो स्त्री-प्रसंग के समय तुरत स्खलित हो जाते हों, जिनकी शुक्रवाहिनी शिरा कमजोर हो गयी हो, ऐसे रोगियो के लिये यह चूर्ण बहुत लाभदायक है।

वृहच्छर्करासम चूर्ण

लौंग, जायफल, पीप्पली—प्रत्येक १-१ तोला, कालीमिर्च २ तोला और सोंठ १६ तोला—प्रत्येक का कूट-कपड़छन चूर्ण बना लें और सब चूर्ण के बराबर उसमें चीनी या खाँड मिलाकर रख लें। —बं० से०

मात्रा और अनुपान—२ से ५ माशे, दिन में २-३ बार शहद या घृत के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण खाँसी, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, श्वास, अग्निमांद्य और ग्रहणी विकार को नष्ट करता है। यह पित्त और वात शामक तथा अग्नि प्रदीपक है। इस चूर्ण के सेवन से कफ पिघल कर निकल जाता है।

सूखी या पुरानी खाँसी में—इस चूर्ण का उपयोग विशेष किया जाता है। पित्त प्रकोप के कारण कफ पककर छाती में बैठ जाने पर खाँसने से साधारणतया नहीं निकलता। इसमें सूखी खाँसी होती है। यह खाँसी वेग के साथ कुछ मिनट तक लगातार होती रहती है, ज्यादे खाँसी आने के बाद कफ का पीला या काला छोटा-सा खण्ड निकल जाने पर खाँसी कुछ देर के लिये बन्द हो जाती है। ऐसी अवस्था में इस चूर्ण के उपयोग से कफ पिघल कर बाहर निकल आता तथा प्रकुपित पित्त भी शान्त हो जाता है, फिर धीरे-धीरे सर्वदा के लिये खाँसी दूर हो जाती है। यदि इसमें मुलैठी और बंशलोचन का चूर्ण भी मिला दिया जाय, तो यह क्षय (राजयक्ष्मा) जन्य कास में भी बहुत लाभ करता है।

बृहत्तालीशादि चूर्ण

तालीसपत्र, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, फूलप्रियंगु, पीपलामूल, नागर मोथा, कचूर, दारुहल्दी, इलायची, तेजपात, नागकेशर लौंग, सोंठ, पीपल, कबाबचीनी, सुगन्धबाला, चव्य, मूर्वा, अतीस, काकड़ासिंगी, मुनक्का, कूठ, हल्दी, चीता, इन्द्रजौ, वासा, गोखरू, कुटकी, बिजौरा-नींबू, खट्टे अनार के दाने या रस, पके बेर के फल का चूर्ण—प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण के समान भाग उसमें चीनी या खाँड मिला घोटकर सुरक्षित रख लें। —हा० सं०

मात्रा और अनुपान—६ माशे सुबह-शाम, शहद या घृत अथवा अनार के शर्बत या लिसौड़े के शर्बत के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से क्षतज कास (खाँसी), श्वास, पाण्डुरोग, कामला, प्रमेह, शारीरिक दुर्बलता, बवासीर और राज-यक्ष्मा में उत्पन्न खाँसी का नाश होता है। इसके अतिरिक्त जितने गुण लघु ताशीशादि चूर्ण में हैं, वे सब गुण इसमें वर्तमान हैं।

व्योषादि चूर्ण

सोंठ, मिर्च, पीपल, इन्द्रजौ, नीम की छाल, चिरायता, भांगरा, चीता, कुटकी, पाठा, दारु हल्दी और अतीस प्रत्येक १-१ तोला तथा कूड़े की छाल सबके बराबर लेकर चूर्ण बनावें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे तक सुबह-शाम, शहद के साथ चाटकर ऊपर से चावलों का पानी पीना चाहिये।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण पाचन और ग्राही (दस्त को रोकने-वाला) है। इसके सेवन से प्यास, अरुचि, ज्वरातिसार, प्रमेह, संग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, कामला, पाण्डु और शोथ का नाश होता है।

भास्कर लवण चूर्ण

सेंधा नमक, विड नमक, धनियाँ, पीपल, पीपलामूल, स्याह-जीरा, तेजपात, नागकेशर, तालीसपत्र और अम्लबेत प्रत्येक २-२ तोला। समुद्र नमक ८ तोला, संचर नमक ५ तोला, काली मिर्च, जीरा और सोंठ १-१ तोला, अनारदाना ४ तोला, दालचीनी, बड़ी

इलायची ६-६ माशे—इन दवाओं का कूट-कपड़छन चूर्ण बना (बिजौरे नीबू के रस की भावना देकर) रखें। —आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान—१ माशे से ३ माशे, सुबह-शाम भोजन के बाद शीतल जल, छाछ (मठा), दही के पानी आदि के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से मन्दाग्नि, अजीर्ण, वात-कफज गुल्म, तिल्ली, उदर रोग, क्षय, अर्श, ग्रहणी, कुष्ठ, विबंध, शूल, आम विकार आदि रोग नष्ट होते हैं।

यह चर्ण खाने में बहुत स्वादिष्ट और अत्यन्त लाभकारी भी है। रोज भोजन के बाद यदि इस चूर्ण का सेवन किया जाय; तो पेट के रोग होने की सम्भावना नहीं रहती। रात को सोते समय गर्म पानी से लिया जाय तो प्रातः पाखाना साफ होता है। यदि सम भाग पंचसकार चूर्ण मिलाकर रोगी को दिया जाय; तो सुख-पूर्वक दो-तीन दस्त खुलासे हो जाते हैं।

मन्दाग्नि और संग्रहणी रोग की यह उत्कृष्ट दवा है। वात-पित्त और कफ इनमें से किसी भी दोष प्रधान के कारण मन्दाग्नि या संग्रहणी हो तो इसके सेवन से दूर हो जाती है।

भूनिम्बादि चूर्ण

चिरायता, इन्द्रजौ, सोंठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, कुटकी, प्रत्येक १-१ तोला, चित्रक की जड़ २ तोला और कुड़ा की छाल १६ तोला लेकर कूट-कपड़छन कर चूर्ण बनावें। —वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—२ माशे से ३ माशे तक सुबह-शाम; गुड़ के शर्बत या छाछ के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से ज्वरातिसार, ग्रहणी, कामला, पाण्डु; प्रमेह, अरुचि आदि रोग नष्ट होते हैं।

मदनप्रकाश चूर्ण

ताल मखाना, मूसली, विदारीकन्द, सोंठ, असगन्ध, कोंच के बीज, सेमल के फूल, खरैंटी (बीज बन्द), शतावर, मोचरस, गोखुरू,

जायफल, उड़द की दाल (घी में भुनी हुई), भांग और बंसलोचन प्रत्येक १-१ भाग तथा मिश्री सब चूर्ण के बराबर लेकर कूट-कपड़-छन चूर्ण बनावें। —भा० भै० र०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे, प्रातः और रात्रि को सोने से एक घण्टा पूर्व गाय के दूध अथवा जल से दें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण पौष्टिक, रसायन और बाजीकरण है। इसके सेवन से बल और वीर्य की वृद्धि होती तथा प्रमेह का नाश होता है। अधिक स्त्री प्रसंग या छोटी अवस्था में अप्राकृतिक ढंग से शुक्र (वीर्य) का ज्यादे दुरुपयोग करने से शुक्र पतला हो जाता साथ ही शुक्र वाहिनी शिराएं भी कमजोर हो जाती हैं फिर वे शुक्र धारण करने में असमर्थ हो जातीं, परिणाम यह होता है कि स्वप्न-दोष, शीघ्र वीर्य गिर जाना, वीर्य का पतलापन, पेशाब के साथ ही वीर्य निकल जाना आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इन विकारों को दूर करने के लिये 'मदन प्रकाश चूर्ण' का उपयोग करना बहुत हित-कर है। क्योंकि यह शुक्र की विकृति को दूर कर वीर्य को गाढ़ा करता और शरीर में बल बढ़ाता है।

मञ्जिष्ठादि चूर्ण

मजीठ, छोटी इलायची, सौंफ प्रत्येक १-१ तोला, सोनागेरू २ तोला, पाषाण भेद १ तोला, कलमी सोरा २ तोला, गोखरू, रेबन्द चीनी १-१ तोला, घी में सेंकी (भुनी) हुई छोटी हरड़ २ तोला, आँवला, हर्रे, बहेड़ा प्रत्येक २-२ तोला, गुलाब का फूल २ तोला, और सनाय ४ तोला लें। सबको एकसाथ कूट-कपड़छन कर चूर्ण बना लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—४ से ६ माशे, प्रातःकाल या रात को सोते समय ठण्डे या गरम जल से दें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण दस्त और पेशाब साफ लानेवाला और रक्त शोधक है। मल-मूत्र की रुकावट, अर्श (बवासीर) और रक्त-विकार में इसके प्रयोग से विशेष लाभ होता है। पित्त प्रकृति तथा रक्त और पित्त के विकारों में इसका प्रयोग बहुत लाभप्रद है।

मद्यन्त्यादि चूर्ण

छाया में सुखाये हुए मेंहदी के पत्ते या बीज का कपड़छनचूर्ण २ तोला और भाँगरे के रस में शुद्ध किया हुआ गन्धक का कपड़छन किया हुआ चूर्ण १ तोला लें। दोनों को ३ घण्टे तक मर्दन करके शीशी में भर लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ से दो माशा, दिन भर में २-३ बार जल या सारिवादि हिम[1] के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण रक्तशोधक और साधारण रेचक है। पित्त प्रधान रोग में इस चूर्ण का उपयोग विशेषतया किया जाता है। खुजली, फोड़ा-फुन्सी आदि रक्त विकार होने पर इस चूर्ण के उपयोग से बहुत लाभ होता है।

मधुयष्टयादि चूर्ण

मुलेठी २ तोला, सौंफ १ तोला, समाय २ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला और मिश्री ६ तोला लेकर सबको एकत्र मिला कूट-कपड़छन चूर्ण बना सुरक्षित रख लें। —आ० प्र०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे, सुबह-शाम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण कोष्ठ शुद्धि के लिये तथा आँव के दस्तों में विशेष गुणकारी है।

१—सारिवादि हिम—अनन्तमूल, उसबा, चोपचीनी, मजीठ, गिलोय, धमासा, रक्तचन्दन, गुलवनप्सा, खस, गोरखमुण्डी, शाहतरा, कमल के फूल, गुलाब के फूल, गूमा, पद्माख और शंखाहुली प्रत्येक समभाग लेकर उसका मोटा (जौकुट) चूर्ण बना रख लें। उसमें से १ तोला चूर्ण को रात में ६ तोला गरम जल में मिट्टी या काँच के पात्र में भिगो दें। सबेरे हाथ से मल, छानकर पीने को दें। सबेरे फिर उसी में गरम जल ६ तोला डालकर रख दें और शाम को पुनः उक्त विधान से छानकर पीने को दें।

पेचिस की प्रारम्भिक अवस्था में—आँव निकलने में बहुत दर्द होता है, आँतों में ऐंठन और दर्द बहुत जोर से होता है; रोगी को कुछ भी खाने की इच्छा नहीं होती, खुलकर आँव भी नहीं निकल पाता, ऐसी दशा में इस चूर्ण के उपयोग से बहुत फायदा होता है। यह कोष्ठ शोधन करता तथा आँव को निकलता है। कुछ दिनों तक लगातार सेवन करने से कुल आँव निकल आता और रोगी भी चंगा हो जाता है।

मधुर विरेचन चूर्ण

काला दाना, सनाय की पत्ती, छोटी हर्रे, गुलाब के फूल, प्रत्येक १-१ तोला, सोंठ ६ माशे और मिश्री २ तोला लें। प्रथम कालादाना और छोटी हर्रे को घी में भून लें, तदुपरान्त सब दवा एकत्र कर कूट-कपड़छन कर महीन चूर्ण बना सुरक्षित रख लें। —च०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे, गरम जल से रात को सोते समय दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से बिना तकलीफ के साधारण दो-तीन दस्त हो जाते हैं। पेट साफ हो जाता और कमजोरी आदि भी नहीं मालूम पड़ती है। सुकुमार स्त्री, और कमजोर आदमी के लिये यह विरेचन बहुत उपयोगी है।

मरिचादि चूर्ण

काली मिर्च का कूट-कपड़छन किया हुआ महीन चूर्ण और मिश्री या चीनी चूर्ण के बराबर मिलाकर रखें। —वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ माशे, सुबह-शाम मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से खाँसी और श्वास रोग नष्ट होते हैं। वात और कफ प्रधान कास और श्वास रोग में इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है। इस चूर्ण को शहद के साथ खाने के बजाय सूखा ही चूर्ण चुटकी भर दिन में दो-चार बार या जब खाँसी या श्वास का वेग (दौरा) मालूम पड़े, मुख में डालने

से श्वास का दौरा रुक जाता है। इसके सेवन से आवाज भी साफ और मधुर होती है।

मलशोधक चूर्ण

हर्रे, पीपलामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, कालाजीरा, नागरमोथा, निशोथ, आँवला, भूमि आँवला, सेंधानमक, बायविडङ्ग, लौंग, तेजपात, कूठ, हींग और चत्रक प्रत्येक समान भाग लेकर कूट-कपड़छन चूर्ण बनाकर सुरक्षित रखें। —यो० त०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे, सुबह-शाम गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण दस्तावर, कोष्ठ को साफ करने वाला और भूख लगाने वाला है। इसके सेवन से कोष्ठ में संचित दूषित मल फूल कर दस्त के साथ-साथ बाहर निकल आता है। विरेचन के लिये यह उत्तम औषध है।

महाखाण्डव चूर्ण

तालीसपत्र, कालीमिर्च, नागकेशर और पाँचो नमक १-१ तोला तथा पीपल, पीपलामूल, तिन्तिड़ीक (पकी इमली या चूक), चित्रक, दालचीनी और जीरा २-२ तोला, सोंठ, बड़ी इलायची,, बेर, अम्लवेत, नागरमोथा, धनियाँ और अजमोद ३-३ तोला, अनारदाने का चूर्ण सवादश तोला, खाण्ड या चीनी सब दवा से आधी (२५।। तोला) मिलाकर यथा विधि चूर्ण बनावें। —शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—२ से ४ माशे, सुबह-शाम शहद के साथ या ठंढे जल से दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से अरुचि, मन्दाग्नि, कण्ठ रोग मुख रोग, उदर रोग, हृदयविकार, गुल्म, आध्मान (पेट फूलना), विसूचिका, श्वास, छर्दी, अतिसार आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

(महा) सुदर्शन चूर्ण

आँवला, हर्रे, बहेड़ा, हल्दी, दारुहल्दी, कटेरी दोनों, कचूर, सोंठ मिर्च, पीपल, पीपलामूल, मूर्वा, गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापड़ा,

नागर मोथा, त्रायमाणा, नेत्रबाला, नीम की छाल, पोहकरमूल, मुलैठी, कुड़ा की छाल, अजवायन, इन्द्रजौ, भारंगी, सहजनके बीज, फिटकरी, बच, दालचीनी, पद्माख, खश, सफेद चन्दन, अतीस, खरेंटी (वरियार), शालपर्णी, पृष्णिपर्णी, बायबिडङ्ग, तगर, चित्रकमूल, देवदारु, चव्य, पटोलपत्र, जीवक (अभाव में शतावरी), ऋषभक (अभाव में असगन्ध), लौंग, बंशलोचन, कमल, काकोली (अभाव में शकाकुल मिश्री), तेजपत्र, तालीसपत्र और जावित्री। ये ५३ दवाएँ समभाग लेकर चूर्ण कर लें। इस चूर्ण के वजन से आधा चिरायते का चूर्ण मिला कर कर रख लें। —शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे, सुबह-शाम गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण निस्संदेह समस्त ज्वरों को नष्ट करने वाला है। इसके सेवन से एक दोषज, द्विदोषज, आगन्तुक और विषमज्वर एवं सन्निपात ज्वर, मानसिक ज्वर, पारी से आने वाला ज्वर, प्राकृतिक ज्वर, वैकृतिक ज्वर, सूक्ष्म रूप से रहने वाला ज्वर, अन्तर्दाह (शरीर के भीतर दाह उत्पन्न करने वाला) ज्वर, वहिर्दाह (शरीर के बाहर दाह उत्पन्न करने वाला) ज्वर, सामज्वर अनेक देशों के जलविकार के कारण उत्पन्न होने वाला ज्वर, दवा अनुकूल न पड़ने से उत्पन्न होने वाला ज्वर, यकृत् और प्लीहा जनित ज्वर, शीत ज्वर, पाक्षिक ज्वर,) पन्द्रह दिन पर आने वाला ज्वर), मासिक (एक मास पर आने वाला) ज्वर, विषम ज्वर, रजोदोष से उत्पन्न ज्वरादि दूर होते हैं। ज्वर नाश करने की इसमें कितनी और कैसी शक्ति है, इसकी प्रशंसा करते हुए आयुर्वेद में लिखे है—

सुदर्शनं यथा चक्रं दानवानां विनाशनम्।
तद्वज्ज्वराणां सर्वेषामिदंचूर्णं विनाशनम्॥

अर्थात्—जिस प्रकार सुदर्शनचक्र दैत्यों को नष्ट करता है उसी प्रकार यह चूर्ण समस्त ज्वरों का नाश कर देता है।

यह चूर्ण शीतल, दीपन, पाचन, कटु, पौष्टिक, ज्वरघ्न, दाह नाशक, कृमि नाशक, प्यास, कफ, कुष्ठ, व्रण, अरुचि आदि को दूर करने वाला है। गर्भिणी ज्वर में भी थोड़ी मात्रा में प्रयोग करने से लाभ होता है। इससे आमाशयस्थ ज्वरादि दोष अच्छी तरह पच जाता है।

पुराने विषमज्वर में जब कि विषमज्वर का विष शरीर के अन्दर गुप्त रूप से रहता और अपना स्वरूप ज्वर के रूप में प्रकट न कर अजीर्ण, अग्निमान्द्य और हल्की हरारत के रूप में प्रकट करता है। ऐसी स्थिति में सुदर्शन चूर्ण के उपयोग से बहुत लाभ होता है। इस चूर्ण में ज्वर नाशक गुण सर्वप्रधान है। आमाशय की शिथिलता को दूर करने के लिए यह एक उत्तम औषध है। इस चूर्ण से दस्त भी साफ होता है।

अन्न-प्रणाली के ऊपर यह अपना प्रभाव विशेष रूप से डालता है। मुंह में डालते ही यह स्वाद के स्नायुओं को उत्तेजित करता है। पेट में पहुँच कर यह उदर-ग्रन्थियों को और पाकस्थाली के रस प्रवाह को उत्तेजित करता है। वृहदन्त्र के ऊपर भी अपना प्रभाव दिखाता है।

मीठा स्वादिष्ट चूर्ण

कालानमक ३ तोला, सेंधानमक ३ तोला, सोंठ २ तोला, हींग २ माशे, सतपोदीना १ माशा, नौसादर २ तोला, सफेद मिर्च २ तोला, अजवायन, टार्टरी एसीड, छोटी हर्रे, अनारदाना और पीप्पली प्रत्येक २-२ तोला लें तथा ३ छंटाक मिश्री मिला कर यथाविधि चूर्ण बना रख लें।

—अद्‌भुतपंचता काव्यम्

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे तक, सुबह-शाम या भोजन बाद जल से दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से मन्दाग्नि, अजीर्ण और मन की ग्लानि, जी मिचलाना अथवा खट्टी डकार आना आदि पेट के रोग दूर हो जाते हैं। यह उत्तम जायकेदार चूर्ण है।

यवक्षारादि चूर्ण

यवक्षार और मिश्री समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ माशे तक सुबह-शाम या आवश्यकतानुसार गर्म जल अथवा छाछ के साथ दें।

गुण और उपयोग—कभी-कभी गर्मी ज्यादे बढ़ जाने से पेशाब में विकृति आ जाती है जैसे—पेशाब खुल कर न होना, बूंद-बूंद होना, जलन और दर्द के साथ पेशाब लाल या अधिक पीला होना आदि। ऐसी हालत में यह चूर्ण देने से बहुत लाभ करता है। यवक्षार का प्रभाव मूत्रपिण्ड (वृक्क) पर अधिक पड़ता है। क्योंकि यह मूत्रल है और मिश्री पित्तशामक तथा तर है। अतएव इस रोग में यह बहुत गुण करता है।

दूसरा—यवक्षार और सेंधानमक, अजवायन, अम्लवेत, हर्रे, बच और घी में भुनी हुई हींग समान भाग लेकर चूर्ण बनावें।

—वद्यामृत

मात्रा और अनुपान—१ माशा सुबह-शाम गर्म जल से दें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण मन्दाग्नि को नष्टकर जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

यवानीखाण्डव चूर्ण

अजवायन, तिन्तड़ीक़, सोंठ, अम्लवेत, अनारदाना और खट्टे बेर १-१ तोला, धनियाँ, कालानमक, जीरा, दालचीनी ६-६ माशे, पीपल २।। तोला, कालीमिर्च ७।। माशे और खाँड या चीनी १६ तोला लेकर काष्ठौषधियों का कूट-कपड़छन चूर्ण बनावें। फिर उस चूर्ण में चीनी या खाँड का चूर्ण मिलाकर सबको एकत्र करके सुरक्षित रख लें। —शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—२ से ४ माशे, सुबह-शाम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण में से थोड़ा सूखा ही चूर्ण प्रातःकाल

मुँह में डालने से अरुचि रोग नष्ट होता है। इसके अतिरिक्त जिह्वा और कंठ शुद्ध करता है, यह दीपक और पाचक है। पेट में वायु भर जाना, हवा नहीं छूटना, अजीर्ण, मन्दाग्नि आदि रोगों के लिये यह बहुत गुणकारी है।

रक्तचन्दनादि चूर्ण

लालचन्दन, नागरमोथा, शालिपर्णी, कलिहारी, अजमोद, पाठा, असगन्ध, शतावर, कंकोल, पीपल, देवदारु, इलायची, अजवायन, सोया, पीपलामूल, बच, सेंधानमक, पखाख, कूट, मजीठ, देवदारु करेला, रास्ना, अरलू की छाल, सोंठ और गिलोय समान भाग ले कर कूट-कपड़छन चूर्ण बनावें। —ग० नि०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशा, सुबह-शाम घी या रास्नादि क्वाथ के साथ दे।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से सर्वाङ्गगत वात-विकार नष्ट हो जाता है। वात प्रकोप के कारण वातवाहिनी नाड़ी संकुचित हो जाने से रक्त का संचालन ठीक-ठीक नहीं होता, फिर सम्पूर्ण शरीर की स्नायुओं में खिचाव होने से दर्द होने लगता है। हाथ-पाँव फैलाने में भी कष्ट और दर्द होता है। गाँठों में विशेष दर्द होता है; रोगी कराहने और चिल्लाने लगता है। ऐसी दशा में इस चूर्ण के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

रसादि चूर्ण

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, कपूर, बेर की गुठली का मज्जा, लौंग, नागरमोथा, प्रियंगु, धान का लावा (खील), सफेद चन्दन, छोटी पीपल, दालचीनी, छोटी इलायची और तेजपात प्रत्येक समान भाग लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना उसमें अन्य द्रव्यों का महीन कपड़छन चूर्ण मिला चन्दन के अर्क में या चन्दन का चूर्ण १ भाग और जल २ भाग में १२ घण्टा तक भिगोकर कपड़े से छान उस जल में १ दिन तक मर्दन कर छाया में सुखा लें। —सि० यो० सं

मात्रा और अनुपान—२ से ६ रत्ती, दिन में तीन बार मधु (शहद) या जल, पोदीने का रस अथवा अथवा चन्दनादि अर्क के साथ दें।

गुण और उपयोग—बमन (उल्टी-कै), अम्लपित्त, हिचकी और विदग्धाजीर्ण में यह योग उत्तम कार्य करता है। इसमें जहरमोहरा-पिष्टी २ रत्ती की मात्रा में मिला देने से विशेष गुणदायक हो जाता है। पैत्तिक विकारों में इस चूर्ण का उपयोग विशेष रूप से किया जाता है। यह चूर्ण पित्तशामक और प्रकुपित वायुनाशक है।

लघु सुदर्शन चूर्ण

गिलोय (गुर्च), पीपलामूल, पीपल, कुटकी, हर्रे, सोंठ लौग, नीम की छाल और सफेद चन्दन १-१ भाग तथा चिरायता सबसे आधा ले कर सबका कूट कपड़छन चूर्ण बनावें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१।। से ३ माशा, सुबह-शाम गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह भी सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है। तन्द्रा, भ्रम, तृषा, पाण्डु, कामला, कमर की पीड़ा, पीठ का दर्द, पसली का दर्द आदि रोगों को दूर करता है।

लघुमाई चूर्ण

छोटी माई; मोचरस, आम की गुठली की गिरी, पाषाणभेद धाय के फूल और अतीस ३-३ माशे, अफीम और गेरू ६-६ माशे लेकर सब को यथाविधि चूर्ण बना लें। —वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—४ रत्ती सुबह-शाम चावल के पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से आम शूल, आमातिसार और विशेषतः रक्तातिसार नष्ट होता है। रक्तातिसार में इस चूर्ण के उपयोग से शीघ्र लाभ होता है।

लवंगादि चूर्ण

लौंग, भीमसेनी कपूर, कंकोल, खस, सफेदचन्दन, तगर, नीलकमल, काला जीरा, छोटी इलायची, काला अगर, दालचीनी,

नागकेशर, पीपर, सोंठ, जटामांसी, सुगन्धवाला, जायफल, बंशलोचन प्रत्येक १-१ भाग लेकर कूट-कपड़छन चूर्ण बनावें, फिर सम्पूर्ण चूर्ण से आधी मिश्री मिलाकर रख लें। —शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे, सुबह-शाम। मधु या गोदुग्ध अथवा ठंण्डे जल के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण रुचि उत्पन्न कारक, अग्नि प्रदीपक बलकारक, पौष्टिक और त्रिदोष नाशक है तथा छाती की धड़कन, तमकश्वास, गलग्रह, खाँसी, हिचकी, यक्ष्मा, पीनस, ग्रहणी, अतिसार और प्रमेह को शीघ्र नष्ट करता है।

अधिक दिनों तक ज्वर आकर छूटने के बाद जो कमजोरी रहती है उसमें किसी तरह के कुपथ्य हो जाने से पुनः हरारत मालूम पड़ने लगती है। इसमें भूख न लगना, कमजोरी विशेष, अन्न पर अरुचि, रक्त की कमी के कारण शरीर पाण्डु वर्ण का हो जाना, कफ की वृद्धि आदि उपद्रव होने पर इस चूर्ण का उपयोग करना चाहिये। इससे हरारत दूर हो जाती है और उपद्रव भी नष्ट हो जाते हैं।

कभी-कभी मन्दाग्नि के कारण पाचन-शक्ति में खराबी होने से अन्न का पाक अच्छी तरह नहीं हो पाता, तब पेट फूलना, पेट में आबाज होना, दस्त पतला होना, प्यास विशेष, शरीर में दाह, वायु के विकार आदि उपद्रव हो जाते हैं। ऐसी हालत में इस चूर्ण का उपयोग करने से शीघ्र लाभ होता है।

लाई चूर्ण

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोंठ, मिर्च, पीपल, अजवायन, सफेद और काला जीरा, काला नमक, सेंधा नमक, घी में भुनी हुई हींग, विडनमक प्रत्येक १-१ भाग तथा इन्द्रजौ सब चूर्ण के बराबर लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्ज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियों का कपड़छन किया हुआ महीन चूर्ण मिला कर सुरक्षित रखें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१ माशा, सुबह-शाम। तक्र (छाछ) के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से संग्रहणी, शूल, आफरा, और अतिसार का नाश होता तथा मन्दाग्नि दूर होती है और पाचन शक्ति बढ़ती है। संग्रहणी की प्रारम्भिक अवस्था में इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है। यह पाचक पित्त को उत्तेजित कर पाचन क्रिया को ठीक करता तथा आमातिसार और रक्तातिसार जो दर्द के साथ होता हो, उसे भी दूर करता है।

शतपत्र्यादि चूर्ण

गुलाब का फूल २० तोला, मोथा, जीरा, सफेद चन्दन, छोटी इलायची, सौंफ, कत्था, संगजराहत, कबाबचीनी, गिलोय का सत्त्व, खस, बंशलोचन, खसखस, इसबगोल की भूसी, गोखरू, दालचीनी, तमालपत्र, नागकेशर, सारिवा (अनन्तमूल), कमलगट्टा, कमल और तिखुर-आरारोट प्रत्येक १-१ भाग, मिश्री ४० भाग लेकर कूट-कपड़छन चूर्ण बना कर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१।। माशे से ३ माशे तक सुबह-शाम शीतल जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—विदग्धाजीर्ण, अम्लपित्त और पेट की खराबी से उत्पन्न होने वाले मुखपाक में यह चूर्ण दिया जाता है।

शतपुष्पादि चूर्ण

सौंफ, सोंठ, सफेद जीरा, हर्रे और पोस्ते का डोडा प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण बनावें। इस चूर्ण को मन्दाग्नि पर घी में कुछ सेंक (भून) लें, फिर उसमें सब चूर्ण की आधी मिश्री मिला रख लें।

—वृ० नि० र०

मात्रा और अनुपान—३-३ माशे, सुबह-शाम, छाछ (मट्ठा) या दही के पानी से दें।

गुण और उपयोग—आमातिसार (पेचिश) की प्रारम्भिक अवस्था में आँव अच्छी तरह नहीं निकलने से पेट में बहुत दर्द होता है,

आँतों में मरोड़ उठने के कारण रोगी बेचैन हो जाता है, बार-बार टट्टी के लिये दौड़ लगानी पड़ती है, ऐसी हालत में दर्द बन्द करने और धीरे-धीरे आँव पचित होकर मल के साथ निकालने के लिये यह चूर्ण बहुत उपयोगी है।

इसी तरह दर्द के साथ होनेवाले अतिसार, शूल आदि में भी यह बहुत लाभ करता है। पाचक पित्त को प्रदीप्त कर पाचन-क्रिया को सुधारता तथा वायु को शान्त करता है।

शिरदर्द नाशक चूर्ण

सफेद चन्दन, केसर, खस, भाँगरा, मुनक्का, फूलप्रियंगु, कालीमिर्च, गिलोय, मुलैठी और सोंठ समान भाग ले कर कूट-कपड़छन चूर्ण बनावें। फिर इस चूर्ण के बराबर मिश्री या चीनी मिलाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान—३-३ माशे शहद और घी में मिलाकर दें ऊपर से दूध या ठंडा जल पिला दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से पित्त और रक्तजन्य शिरदर्द आराम होता है। यदि इसी चूर्ण में थोड़ी मात्रा में "एस्प्रीन" और मिला दिया जाय तो शिरदर्द तो दूर होगा ही, साथ ही निद्रा भी अच्छी आयगी।

सरल विरेचन चूर्ण

सनाय की पत्ती १६ तोला, अनारदाना १६ तोला, बड़ी हर्रे, आँवला, काला जीरा और कालानमक प्रत्येक ४-४ तोला, सेंधानमक ६ तोला लेकर सबको कूट कर कपड़छन चूर्ण बना सुरक्षित रख लें।

—ध०

मात्रा और अनुपान—६ माशे से १ तोला, रात को सोते समय गरम जल या दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण विरेचन के लिये सर्वोत्तम है। बहुतदिनों का मलावरोध इसके सेवन से नष्ट हो जाता है।

आमाशय, शिर और नासा रोगों के लिये यह बहुत गुणदायक है। यह रक्त शोधक और क्षुधा वर्द्धक (भूख बढ़ानेवाला) भी है।

सारस्वत चूर्ण

कूठ, सेंधा नमक, सफेद जीरा, काला जीरा, पीपल, पाढ़, असगंध, सोंठ, अजमोद, शंखपुष्पी, मिर्च प्रत्येक १-१ तोला लेकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर इस चूर्ण के बराबर दूधिया बच का चूर्ण मिला ब्राह्मी रस की भावना देकर छाया में सुखाकर रख लें।

—यो० चि० म०

मात्रा और अनुपान—२ से ४ माशे, सुबह-शाम घृत और शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग—उन्माद, अपस्मार, मस्तिष्क की कमजोरी, स्मरणशक्ति की हीनता आदि में इसका उपयोग किया जाता है।

सामुद्रादि चूर्ण

सामुद्रनमक, सेंधानमक, यवक्षार, सज्जीखार, कालानमक, विड्नमक, सोंचरनमक, दन्तीमूल, लौहभस्म, मण्डूरभस्म, निशोथ जिमीकन्द इनका चूर्ण १-१ भाग लेकर सबको एकत्र मिला गोमूत्र, गोदुग्ध और दही इन तीनों द्रव्यों से अच्छी तरह भीगोकर मन्द-अग्नि पर पकावें। जब जलाँश जलकर चूर्ण मात्र रह जाय, तब उतार कर सुरक्षित उतारकर सुरक्षित रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१।। से ३ मासे, सुबह-शाम या भोजन के बाद गरम जल से दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से नाभिशूल नष्ट हो जाता है। साधारणतया समस्त शूलों के लिये यह चूर्ण बहुत गुणप्रद है। इसका विशेष उपयोग परिणाम शूल में किया जाता है। परिणामशूल के लिये इस चूर्ण से बढ़ कर दूसरी कोई दवा नहीं है। इसके अतिरिक्त गुल्म, प्लीहा, यकृत्, अजीर्ण, वातप्रकोप आदि रोगों में यह बहुत शीघ्र लाभ करता है।

सितोपलादि चूर्ण

मिश्री १६ तोला, बंशलोचन ८ तोला, पिप्पली ४ तोला, छोटी इलायची के बीज २ तोला, और दालचीनी १ तोला लेकर सबको कूट-कपड़छान कर चूर्ण बना लें। —शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—२ माशे, प्रातः-सायं ६ माशा घृत और १ माशा मधु के साथ दें अथवा केवल मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन से श्वास, खाँसी, क्षय, हाथ और पैरों की जलन, अग्निमान्द्य, जिह्वा की शून्यता, पसली का दर्द, अरुचि, ज्वर और उर्ध्वगत रक्तपित्त शान्त हो जाता है। यह चूर्ण—बढ़े हुए पित्त को शान्त करता है, तथा कफ को छाँटता है अन्न पर रुचि उत्पन्न करता, जठराग्नि को तेज करता और पाचक रस को उत्तेजित कर भोजन को पचाता है।

पित्तवृद्धि के कारण कफ सूखकर छाती में बैठ गया हो, प्यास ज्यादे हाथ-पाँव और शरीर में जलन हो, खाने की इच्छा न हो, मुंह से खून गिरना, साथ-साथ थोड़ा-थोड़ा ज्वर रहना, (यह ज्वर विशेष कर रात में बढ़ता है)। ज्वर रहने के कारण शरीर निर्बल और दुर्बल तथा कान्तिहीन हो जाना आदि उपद्रवों में इस चूर्ण का उपयोग किया जाता है और इससे काफी लाभ भी होता है।

बच्चों के सूखा रोग में, जब बच्चा कमजोर और निर्बल हो जाय, साथ-साथ थोड़ा ज्वर भी बना रहे, श्वास, खाँसी भी हो, तो इस चूर्ण के साथ प्रबालभस्म और मालतीवसन्त की थोड़ी मात्रा मिलाकर प्रातः-सायं सेवन कराने से अपूर्व लाभ होता है।

बिगड़े हुए जुकाम में भी इस चूर्ण का उपयोग किया जाता है। ज्यादे सर्दी लगने या शीतल जल अथवा असमय में जल पीने से जुकाम हो गया हो। कभी-कभी यह जुकाम रुक भी जाता है। इसका कारण यह होता है कि जुकाम होते ही यदि सर्दी रोकने के लिये शीघ्र ही उपाय किया जाय तो कफ सूख जाता है, परिणाम यह होता है कि शिर में दर्द, सूखी खाँसी, देह में थकावट, आलस्य और देह भारी

मालूम पड़ना, शिर भारी, अन्न में रुचि रहते हुए भी खाने की इच्छा न होना आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी स्थिति में इस चूर्ण को शर्बत बनप्सा के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है; क्योंकि यह रुके हुए दूषित कफ को पिघला कर बाहर निकाल देता है और इससे होनेवाले उपद्रवों को भी दूर कर देता है।

हिंग्वष्टक चूर्ण

सोंठ, मिर्च, पीपल, अजवायन, सेंधानमक, सफेद जीरा, काला जीरा इन सात दवाओं का सम भाग लेकर महीन चूर्ण करें बाद में घी में भुनी हुई हींग का चूर्ण आठवाँ भाग लेकर चूर्ण में मिला कर रख लें। —भैं० र०

मात्रा और अनुपान—३-३ माशे, गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण को भोजन के समय प्रथम ग्रास में घृत में मिलाकर खाने के बाद फिर यथेष्ट भोजन करने से अग्नि-प्रदीप्त होती और वात रोग का नाश होता है। इससे वातप्रधान मन्दाग्नि अच्छी हो जाती है। पेट में वायु जमा होना, खट्टी या वैसी ही डकारें ज्यादे आना, भूख न लगना, अजीर्ण आदि की यह उत्तम दवा है।

यह चूर्ण उत्तम दीपक और पाचक है। अजीर्ण, पेट फूलना, पेट में वायु भर जाना, पेट में दर्द होना, कुपच होकर दस्त होना, आदि रोगों में यह चूर्ण बहुत लाभ करता है।

हिंग्वादि चूर्ण

हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, पाठा, हपुषा, हर्रे, कचूर, अजमोद, वनतुलसी, तिन्तिड़ीक, अम्लवेत, आनारदाना, पोहकरमूल, धनियाँ, जीरा, चित्रकमूल, बच, यवाखार, सज्जीखार, पाँचो नमक, और चव्य प्रत्येक दवा समभाग ले कर चुर्ण बनावें। —शा० ब० सं०

मात्रा और अनुपान—२ माशे से ४ माशे तक प्रातः-सायं गर्म जल या मठा (छाछ) के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से पार्श्वशूल, हृदयशूल, वस्तिशूल, वात-कफज गुल्म, आफरा, ग्रहणी, अरुचि, छाती की धड़कन, श्वास, कास और स्वरभंग अर्थात् आवाज बैठ जाना आदि रोग दूर होते हैं।

यह चूर्ण वात दोष की विकृति से पैदा हुए अजीर्ण, पेट फूलना, पेट में दर्द होना , दस्त पतला होना आदि रोगों में भी बहुत अच्छा लाभ करता है।

क्षार चूर्ण

नौसादर, कालानमक, कालीमिर्च प्रत्येक समान भाग लेकर कूट कपड़छन कर महीन चूर्ण बनावें।

मात्रा और अनुपान—१ माशा से ३ माशे तक भोजन के बाद गरम जल से दें।

गुण और उपयोग—इस चूर्ण के सेवन करने से अजीर्ण, अन्न हजम न होना, अरुचि, जी मिचलाना, पेट में दर्द होना आदि रोग अच्छे होते हैं।



आसवारिष्ट प्रकरण

द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्सन्धितं भवेत् ।
आसवारिष्टभेदैस्तु प्रोच्यते भेषजोचितम् ।

अर्थात्—जो वस्तु जल आदि पतले पदार्थों में डालकर बहुत समय तक पड़ी रहे उसको 'सन्धान' कहते हैं। वह आसव और अरिष्ट भेद से औषधोपयोगी दो तरह का कहा जाता है।

आसव-अरिष्ट क्यों बनाये गये—वनस्पतियों के स्वरस, कषाय (काढ़े) आदि द्रव - पदार्थ कुछ दिन बाद दोषपूर्ण हो जाते हैं, अतः उन्हें स्थायी गुणदायक बने रहने के लिये 'आसव-अरिष्ट' बनाए गए।

आसव-अरिष्ट किसे कहते हैं—जल में औषधि-द्रव्य एवं मीठा मिलाकर कुछ दिनों तक जो सन्धान किया जाता है, उसे 'आसव और अरिष्ट' कहते हैं।

आसव और अरिष्ट में भेद—

'यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः ।
अरिष्टः क्वाथसिद्धः स्यात् तयोर्मानं पलोन्मितम् ।।

अर्थात्—बिना क्वाथ बनाये कच्चे जल में औषधि डाल कर जो संधान किया जाता है, उसे 'आसव' तथा क्वाथ करके जो बनाया जाता है, उसे 'अरिष्ट' कहते हैं। परन्तु यह बात सर्वथा यथार्थ नहीं प्रतीत होती ; क्योंकि आसव नाम रहने पर भी क्वाथ करके बनाना और अरिष्ट नाम रहने पर भी क्वाथ न कर बनाने का निर्देश अनेक ग्रन्थों में पाया जाता है, जैसे—द्राक्षासव, लोध्रासव, आदि का क्वाथ करके बनाना एवं पिप्पल्यरिष्ट, मंडूराद्यरिष्ट, त्रिफलारिष्ट आदि का क्वाथ न करके बनाने का विधान प्रत्यक्ष है। ',आसूय—निष्पद्यते इति आसवः' इस व्याख्या से संधानित औषधिमात्र को आसव माना है। और मद्य शब्द आसव पर्यायवाची है, इसलिये सभी प्रकार के मद्य आसवान्तर्गत आ जाते हैं, फिर भी अरिष्ट, सीधू, वारुणी, सुरा, मैरेय आदि विभिन्न नाम शास्त्र में पाये जाते हैं और उनके गुण भी

विभिन्न हैं। लेकिन यहाँ विस्तार भय से इनका वर्णन न कर केवल आसव-अरिष्ट के विशुद्ध निर्माण के विषय में ही लिखना है।

वनस्पतियों की विशुद्धता—आसव-अरिष्ट बनाते समय सब से पहले उनके मूलद्रव्य की तरफ ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि बहुत पंसारी लोग असली द्रव्य की जगह नकली द्रव्य बेचा करते हैं। जैसे—अनन्तमूल, नेत्रवाला, सफेदमूसली, स्याहमूसली, जीरा, अतीस, दारुहरिद्रा, मुसब्बर, कबाबचीनी, चिरायता, अशोक-छाल, चन्दन सफेद, दशमूल की चीजें, पीपल, कूठ, मधु, कस्तूरी, केशर आदि। अतः इनको लेते समय पूर्ण सावधानी रखनी चाहिये अन्यथा इन नकली चीजों द्वारा बने आसव-अरिष्ट ही क्या कोई भी औषध गुण कारी नहीं होगी। कुछ चीजें असली मिलने पर भी उनमें बहुत अंश में मिलावट रहती है। जैसे—धनियाँ, सौंफ, अजवायन, जीरा स्याह और सफेद, घाय के फूल आदि। अतः इन्हें खूब साफ करके काम में लेना चाहिये। असली और नकली दोनों जिसमें मिली हों उसमें असली निकालना सम्भव हो तब तो लें, अन्यथा उसे छोड़ देना ही उत्तम है।

स्वच्छता एवं तौल—कोई भी वनौषधि काम में लेने के पहले खूब साफ कर लेनी चाहिये। तौलते समय ध्यान रखे कि उस काँटे पर नमक, खटाई, निम्बू-रस आदि न लगा हो। इसी तरह इमाम-दिस्ता या डिसेन्ट्रीगेटर आदि, जिसमें आसव-अरिष्ट का सामान कूटा-पीसा जावे, इसे भी खूब साफ कर नमक आदि से रहित हो जाने पर ही दवाओं को कूटें-पीसें अन्यथा अम्ल संयोग से आसवारिष्टों में एसिड की मात्रा पैदा होने से बिगड़ जाने की सम्भावना रहती है।

पात्र एवं उसकी सफाई—क्वाथ बनाने के लिये पीतल या ताम्बे के कलईदार बर्तन लेना चाहिये। लोह-पात्र में क्वाथ बनाने से रंग काला एवं स्वाद में भी अन्तर पड़ जाता है। एक आसवारिष्टका क्वाथ समाप्त हो जाने के बाद सभी पात्रों को गरम पानी में छाई (राख) या सोडा मिलाकर बिचाली या चट (टाट) से खूब रगड़ कर साफ करना लेने के बाद दूसरा क्वाथ बनाना चाहिये।

संधान के लिये प्राय: मिट्टी के पात्र, सीमेन्ट के हौज या सागोन अथवा सीसम-काठ के बने पात्र काम में लिये जाते हैं।

यद्यपि मृत्तिका पात्र में आसवारिष्ट बनाने की पुरानी प्रथा है, जो सर्वथा उपयुक्त नहीं है ; क्योंकि कभी-कभी दूषित खारी नमकयुक्त मिट्टी के बने पात्र में संधान करने से आसवारिष्ट खट्टे हो कर खराब हो जाते हैं। इसके अलावे जमीन में पात्र को गाड़ने से कभी फूट कर बह जाने का भय तथा जमीन के ऊपर रखने से फूटने तथा सर्दी या गर्मी की अधिकता से संधान ठीक नहीं होने का भय रहता है और बहुत-सा आसवीय अंश का शोषण भी हो जाता है।

सीमेन्ट के बने हौज में भी कुछ दिनों तक तो आसव ठीक बनते हैं, परन्तु पुराने हो जाने पर या सीमेन्ट आदि की खराबी से संधान क्रिया की उष्णता से सीमेन्ट गलकर आसव में घुल जाता है, जिससे आसव-अरिष्ट गाढ़े, घोल जैसे , एवं गन्दे हो जाते हैं तथा स्वाद में खराब एवं साफ भी नहीं होता, कल्कि कभी-कभी तो बोतलों में भरने या पात्र में पड़े रहने पर आसवारिष्ट जम कर थाक हो जाते हैं।

काठ के बने पात्र में उपरोक्त कोई दोष नहीं पाये जाते, इनमें बाहर की सर्दी या गर्मी का असर जल्दी नहीं होता तथा संधान भी ठीक से होता है और चिरकालतक पड़े रहने पर धीरे- धीरे स्वच्छ होते जाते हैं। इसलिये सबसे उत्तम काठ के पात्र ही आसवारिष्ट के लिये उपयोगी है, परन्तु यदि थोड़े परिमाण में बनाने हों और काष्ठ-पात्र की सुविधा न हो और मृत्तिका पात्र लेना जरूरी हो, तो निम्न प्रकार के पात्र लें। नमक आदि से रहित मृत्तिका पात्र बनवा कर उसमें जल १-२ दिन भरा रहने दें, बाद में उस पर सीमेन्ट का मोटा लेप बाहर से कर दें और उसके ऊपर से मोटा चट सिलाई कर दें। अगर चट के अन्दर थोड़ी रुई या बिचाली काट कर भर दी जाय तो और भी उत्तम रहता है। भाण्ड के भीतर राल या चपड़ा को स्प्रीट में गला कर ५-७ बार लेप कर दें, जिससे छिद्र बन्द हो जाये। उसके बाद संधान देने से आसवारिष्ट का संधान ठीक होता है। काठ के

पात्र और सीमेन्ट के हौज बड़ी फार्मेसियों में रहते हैं। उन्हें देख कर तदनुकूल बनवाना चाहिये।

पात्र रखने के स्थान—जहाँ अधिक शीतल हवा या गर्मी-लू अथवा प्रखर धूप का प्रवेश न हो तथा कीड़े-मकोड़े-मच्छर, गन्दगी, अम्ल पदार्थ न हो, ऐसे स्वच्छ, शीतल एवं साधारणतः वायु प्रवेश वाले स्थान में पात्र रखना चाहिये। अधिक गर्मी से आसवीय कीटाणुओं के नष्ट हो जाने एवं अधिक शीतलता से खमीर न उठने से आसवारिष्ट ठीक तैयार नहीं होते अतः कड़ी धूप, गर्मी एवं अधिक ठंडक एवं वर्षाती हवा से पात्र को सुरक्षित रखना चाहिये। पात्र रखने वाले स्थान को नित्यप्रति साफ रखना एवं उस स्थान पर धूप आदि देना चाहिये। काठ के पात्रों को जमीन से २-३ फुट ऊँचे स्थान पर रखना चाहिये ताकि सफाई करने में दिक्कत न हो।

क्वाथ्यद्रव्य—कठिन काष्ठादिक वनौषधियों को महीन एवं मृदु-वस्तुओं को यवकूट कर लेना चाहिये। बहुत महीन चूर्ण नहीं करना चाहिये अन्यथा आसवारिष्ट घोल जैसा बन जाते हैं, जिससे जल्दी साफ नहीं होते। बहुत-सी वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिन्हें केवल साफ करके ही लेना उत्तम है। जैसे—नागकेशर, सौंफ, अजवायन, खस, नीलोफर, तालीसपत्र, गोरखमुण्डी, साहतरा आदि, धाय के फूल सर्वथा साफ करके ही डालना चाहिये।

जल और उसका परिमाण—जल लेते समय ध्यान रखना चाहिये कि जल खारी, गन्दा, कीटाणुयुक्त एवं अम्ल पदार्थ मिश्रित न हो, क्योंकि ऐसे जल में आसवारिष्ट न बनकर सिरका बन जाता है। कच्चा जल काम में नहीं लेना चाहिये,क्वाथकर लेने पर जल कास्वतः पाक हो ही जाता है,लेकिन जिनका क्वाथ नहीं बनाते, ऐसे आसवों में भी जल को गरम कर लेना चाहिये, गरम कर लेने से जल के दूषित कीटाणुओं का नाश हो जाताहै और संधानक्रियाअच्छी तरह होती है। शार्ङ्गधर के मतानुसार जो कच्चे जल से आसव बनाने का विधान है, उपयुक्त नहीं है। कारण, कच्चे जल से संधान में विलम्ब होता है यहाँ तक कि जाड़े में कभी-कभी संधानक्रिया उत्पन्न ही नहीं होती

और मीठा या जल अथवा क्वाथ ऐसे ही पड़े रह जाते हैं। अगर उनकी देख-भाल ठीक से न की जाय तो कालान्तर में उसमें उष्णता पैदा होने से पुनः संधान क्रिया पैदा हो जाती है, जिससे अगर बोतलों में भरा रहता है, तो बोतल फूट जाती हैं। पात्र में रहता है, तो उसे भी फूटने या उफान आदि आने का भय रहता है।

प्रायः क्वाथ द्रव्य से चतुर्गुण, अष्टगुण या इससे कम-बेशी भी जल देकर पका कर उचित अवशिष्ट जल रहने पर मीठा आदि मिला कर संधान किया जाता है। यह प्राचीन पद्धति है, परन्तु इस प्रकार के बनाये गये आसव-अरिष्ट पूर्ण गुणकारी नहीं होते ; कारण क्वाथ द्रव्य में बहुत-सी उड़नशील गुणयुक्त औषधियाँ रहती हैं, जिनका पाक करने पर उनका बहुत अंश उड़ जाता है। जैसे— अजवायन, जीरा, लवंग, चन्दन सफेद, खश, देवदारु, सौंफ आदि-आदि, अतः जिनमें ऐसी वस्तुएँ हों, उन्हें तो खासकर तथा जिन में न हो, उन्हें भी निम्न प्रकार से बनाने से विशेषगुण युक्त आसवारिष्ट तैयार होते हैं। मैंने दोनों तरह से बनाया, पर नीचे लिखी विधि ही उपयोगी साबित हुई।

क्वाथ द्रव्य को जिसमें काष्ठादिक शुष्क वस्तुएँ ज्यादा हो, उन्हें चतुर्गुण तथा मृदु एवं सरस औषधियुक्त क्वाथ द्रव्यवाली औषधि से द्विगुण गरम जल देकर किसी कलईदार पात्र में भिगोकर रख लें। २४ घण्टे बाद उसे खूब मसल कर छान लें और बाकी बचे हुए क्वाथ-द्रव्य में त्रिगुण या चतुर्गुण जल देकर मन्दाग्नि पर पाक करें। उचित अवशिष्ट जल रहने के बाद छान लें और पहले का बिना पका हुआ जल भी मिला लें। नीचे की गाद छोड़ देनी चाहिये। बाद में उसमें गुड़,चीनी, मधु आदि मीठा मिलाकर प्रक्षेप देकर संधान करें। इस तरह के बनाए हुए अरिष्ट पूर्ण गुणकारी एवं स्वादयुक्त होते हैं। यह प्रक्रिया अरिष्ट बनाने के लिये है। आसव में तो स्वतः सम्पूर्ण द्रव्य महीनों पड़े रहने से सर्वांश आ ही जाता है।

मीठा कब, कैसा और किस परिमाण में देना चाहिये—मधु, गुड़, चीनी ये तीनों चीजें आसवारिष्ट की जान हैं। अगर इनमें

खट्टापन, खारीपन, गन्दापन आदि दोष होंगे तो उनके द्वारा आसवारिष्ट शुक्त होकर खट्टे तैयार होंगे, जिनका सेवन शास्त्र विरुद्ध है ; अतः खूब मधुर स्वच्छ, मीठा ही उपयोग में लाना चाहिये। बाजार में बिकनेवाला मधु प्रायः दोषपूर्ण रहता है ; अतः यदि मधु लेना हो तो अपने सामने खूब विश्वासी आदमी द्वारा निकाला हुआ मधु (शहद) लें, अगर ऐसा सम्भव न होतो मधु की जगह पुराना गुड़ ही लेना उत्तम है।

शास्त्रों में किसी आसव में जल एवं मीठा ठीक तथा किसी-किसी में अधिक तथा किसी में कम लिखा रहता है, तदनुसार बनाने से कोई आसव-अरिष्ट तो ठीक बनते हैं, कोई ज्यादा मीठा, कोई बिल्कुल कम मीठा होता है। कम-ज्यादा मीठा दोनों ही आसवारिष्ट के गुण में बाधक हैं ; अतः अगर जल कम है, तो उसे द्रवद्वैगुण्य परिभाषानुसार बढ़ा देना चाहिए और मीठा, जल का आधा भाग देना चाहिए। उदाहरणार्थ अश्वगन्धारिष्ट, द्राक्षारिष्ट, अरविन्दासव, पत्रांगासव को ही लीजिये। उन में यदि जल और मीठा का परिमाण शास्त्रानुकूल दिया जाय, तो कोई बिल्कुल गाढ़े, कोई मीठे और कोई खट्टे तैयार होते हैं।

क्वाथ बनाने के बाद तत्काल मीठा मिलाना चाहिये और उसे चट या कपड़े से छान कर ही पात्र में डालना चाहिये, क्योंकि गुड़ चीजें आदि में कंकड़, पत्थर, कीड़े-चीटियाँ आदि बहुत-सी दूषित चीजें मिली रहती हैं। छानने से वे सब दूर हो जाते हैं। मीठा एक साथ सब न मिला कर जितना मीठा देना अभीष्ट हो, उसका तीन भाग पहले मिलाकर संधान करें। बाकी एक भाग संधान समाप्ति के बाद या छानने के बाद मिलाना चाहिए। इससे आसवों में मधुरता ठीक बनी रहती है और बिगड़ने का भय भी नहीं रहता। एक साथ मिलाने से गाढ़ा हो कर संधानक्रिया में बाधा पड़ने का डर रहता है।

प्रक्षेपादि द्रव्य कब मिलाना—सन्धान समाप्ति (खमीर उठना बन्द) होने के बाद एक प्रकार की मैल आसवारिष्टों के ऊपर जमी

रहती है। उसे हटा कर आसवों को छान कर बाद में प्रक्षेपादि द्रव्य बहुत लोग मिलाते हैं, बहुत लोग मीठा मिलाने के बाद तत्काल प्रक्षेप मिलाते हैं। मैंने दोनों तरह से बनाया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मीठामिलाने के बाद ही प्रक्षेप द्रव्य भी डाल देना चाहिये। ऐसा करने से बराबर चलाते रहने से सन्धान समाप्ति तक सब प्रक्षेप द्रव्य धीरे-धीरे नीचे बैठ जाता है, जिससे उसका पूरा अंश आसवों में आ जाता है। सन्धान समाप्ति के बाद प्रक्षेप द्रव्य देने से एक तो प्रक्षेप मिलाने के लिये दूसरा तैयार होने पर दो बार छानने से आसवों के रङ्ग में कालापन आ जाता है। बिना ५-६ दिन खूब चलाये प्रक्षेप द्रव्य जल में अच्छी तरह भीगता भी नहीं। अगर सन्धान समाप्ति के बाद ५-६ दिन प्रक्षेप द्रव्य मिलने के लिये पात्र का मुंह खुला रख कर चलाया जाय, तो मद्यांश बहुत अंशों में उड़ता रहता है और तुरन्त प्रक्षेप मिला कर बन्द करने से प्रेक्षेप सूखा रह जाता है जाने से गुण पूरा नहीं आता। अतः मीठा मिलाने के बाद ही प्रक्षेप मिलाना उत्तम है।

पात्र का मुंह खुला या बन्द रहना चाहिये?—संधान के समय आसवारिष्ट के पात्र के पास कान लगाकर सुनने से सूँ-सूँ-जैसी आवाज आती है और सन्धानित पात्र से एक प्रकार की तेज गन्ध-जिसे 'कार्बोलिक एसिड गैस' कहते हैं, वाष्प रूप में बाहर निकलती रहती है। इसके न निकलने से आसवों में विकृति आती है। आगर पात्र का मुंह खुला रहता है तब तो धीरे-धीरे यह विकार निकल जाता है और संधान क्रिया ठीक होती है। यदि पात्र का मुँह तत्काल बन्द कर दिया जाये, तो यह दूषित गैस बाहर न निकल कर वाष्प का द्रवरूप हो कर पात्र के ढक्कन से टकरा कर पुनः संधानित पात्र ही में गिरती है,जिससे पूरा मद्यांश न बनकर उसमें एसीड की मात्रा पैदा हो जाती है और छानने के बाद अम्लत्व गुण विशिष्ट आसव तैयार मिलता है। कभी-कभी तो तत्काल बन्द कर देने से कर्बोलिक एसीड गैस का निस्सरण न होने से साधारण पात्र या मृत्तिका पात्र वगैरह फूट भी जाते हैं। इसलिये संधान के समय पात्र के मुँह को बन्द न करके

उसके मुंह के ऊपर स्वच्छ जालीदार कपड़ा या हल्का चट बाँध देना चाहिये। जिससे छिद्रों द्वारा दूषित विकार भी निकल जाता है और पात्र में किसी जानवर आदि के गिरने का भय भी नहीं रहता। संधान समाप्ति के बाद तत्काल पात्र का मुँह कपड़मिट्टी कर बन्द कर देना चाहिये। संधान समाप्त हुआ या नहीं, यह तो नित्य-प्रति चलाने-देखने से भी मालूम हो जाता है। लेकिन कभी-कभी अधिक ठण्डक आदि के कारण धीरे-धीरे खमीर उठता है, जिससे सूँ-सूँ की आवाज से साफ-साफ पता नहीं चलता। उस समय सलाई या तेल की बत्ती आदि जलाकर पात्र के भीतर ले जाएँ। अगर खमीर उठना बन्द न हुआ होगा तो सलाई आदि बुझ जायगी, किन्तु संधान-क्रिया समाप्त हो जाने पर नहीं बुझेगी। उस समय पात्र को खुला न रक्खें अन्यथा अल्कोहल (मद्यांश) उड़ने का भय रहता है। उसी समय पात्र को कपड़मिट्टी कर बन्द कर देना चाहिये।

पात्र पूरा भरा होना या खाली रहना चाहिये ?—जिसमें आसव संधान किया जाय या छानकर रक्खा जाय वह पात्र लबालब भरा हुआ न होना चाहिये। पात्र का तीन भाग दवा से पूर्ण एवं एक भाग खाली रखना चाहिये। खास कर संधानवाले पात्र को तो अवश्य खाली रखना चाहिये ; क्योंकि प्रक्षेपादि द्रव्य के फूलने से पात्र के खाली न रहने पर फूटने या उफान आकर बहने का भय रहता है। छने हुए आसवों के रखनेवाले पात्र भी अगर कुछ खाली न रखा जाय, तो मद्यांश के उड़ने का भय रहता है। संधान समाप्ति के बाद तथा छानने के बाद पात्र के मुँह को खूब मजबूत कर मिट्टी से बन्द कर देना चाहिये, ताकि आसवीय अंश उड़ने का भय न रहे।

आसवों को छानना—सन्धान समाप्ति के १५-२० दिन या एक महीने बाद आसवों को छान कर प्रक्षेपादि (कूड़ा) द्रव्य बाहर फेंक देना चाहिये। छानने के समय पात्र के अधोभाग में स्थित गाढ़ा घोल जैसा गन्दा भाग हटा देना चाहिये, कारण उसे मिलाने से समूचा आसव गन्दा हो जाता है और उसमें आसवीय मद्यांश भाग

भी बहुत सूक्ष्म रहता है। आसवों को बन्द पात्र में छानना चाहिये। खुले पात्र में छानने से वायु के लगने से कालापन दोष आ जाता है। जितनी जल्दी हो सके छान कर पात्र को बन्द कर देना चाहिये, अन्यथा कभी-कभी उसमें वायु के प्रवेश से सन्धान-क्रिया उत्पन्न हो जाती है। बिना छाने हुए पात्र से भी आसवारिष्ट काम में लिये जा सकते हैं, लेकिन यह प्रक्रिया ठीक नहीं होती। क्योंकि कभी-कभी सन्धान के समय कुछ असावधानी होने से मीठा भाग पात्र के तलस्थ भाग में जमा रह जाते हैं और ऊपर का भाग कम मीठा रह जाता है। उसमें से खर्च करने से कुछ भाग मीठा चला जाता है। कुछ कम मीठा होने पर उसमें अम्लता आदि उत्पन्न होने का भय हो या छानने के बाद मीठा मिलाना हो, तो बिना छाने कैसे हो सकता है ; अतः छान कर ही उपयोग में लाना हर हालत में ठीक है। छानने से सब एक-सा हो जाता है।

लोह मिश्रण—जिनमें लोहचूरा मिलाया जाता है, उनमें साबित लोहचूरा देने से लोह का सर्वांश नहीं घुलता, अतः लोहचूरा को घृतकुमारी रस से भावित कर पुट देकर भस्म बना लें। पश्चात् उस भस्म को बड़ी हरीतकीक्वाथ या त्रिफलाक्वाथ में डाल कर धूप में ५-७ दिन रख कर चलाते रहें, बाद में लोह विलीन हो जाने पर आसवों में डालें, इस प्रकार से डाला हुआ लोह का पूरा अंश आसव में आ जाता है।

आसवों में किण्व डालना—जिस तरह दूध से दही बनाने के लिये दूध को औंट कर उसमें दही, निम्बू-खटाई आदि अम्ल पदार्थ देकर जमाते हैं, उसी तरह आसवारिष्ट में खमीर उठने के लिये धातकीपुष्प, बबूलछाल, बेरछाल, महुएका फल आदि डालते हैं। इनसे भी खमीर उठता है, लेकिन अगर उसमें थोड़ा-सा (सुराबीज) एक मन में १। सेर के परिमाण में डाल दें,तो सोने में सुगन्ध हो जाय। किण्व के लिये जो आसव बनाने हों, उसी के तलस्थ भाग को सुखा कर रख लें। अगर प्रत्येक आसवों की अलग-अलग गाद सुखानी सम्भव न हो, तो द्राक्षासव के नीचे भाग को सुखा कर रख लें और

उसी को प्रत्येक आसवों में डालें। किण्व डालने से आसवों में आसवीय अंश पैदा करने वाले कीटाणुओं की संख्या अधिक बलवान हो जाने से अन्य एसीड आदि पैदा करने वाले कीटाणु कमजोर हो जाते हैं, जिससे शुद्ध आसव तैयार होते हैं। जो चिरकाल तक पड़े रहने से विशेष गुणकारी बनते जाते हैं और बिगड़ने का भय भी नहीं रहता है।

सुगन्धित द्रव्य मिलाना—कस्तूरी, केसर, कपूर आदि को आसवों के छानने के बाद जिसमें मिलाना हो, उसी आसव में अथवा अल्कोहल में घोट कर डालें। संधान के समय डालने से इनका कुछ अंश प्रक्षेप आदि में तथा कुछ गन्ध खमीर उठने के समय उत्ताप से नष्ट हो जाता है; इसलिये छानने के बाद उपरोक्त विधि से बनाकर रक्खे हुये आसव पात्र में अलग या बोतलों में भरते समय मात्रानुसार डालें।

कुछ प्रमुख बातें—मुनक्का, घृतकुमारी आदि किस रूप में कैसा लेना चाहिये—मुनक्का काला, आवजूस, किशमिश तथा अन्य कई तरह के आते हैं। काला मुनक्का अन्य ओषधियों के लिये तो श्रेष्ठ होता है, परन्तु उसमें अम्लता रहने से आसवों के काम लायक नहीं होता। किशमिश अगर मधुर हो, तो काम में ली जा सकती है। परन्तु आसवों के लिये आबजूस (बड़े दाने का मुनक्का) ही सर्वथा उपयुक्त होता है। बाजार में सड़े-गले रसरहित तरह-तरह के मुनक्के पाये जाते हैं। उन्हें कभी भी न लेना चाहिये।

कुछ दिन पूर्व अमेरिकन मुनक्का के नाम से किशमिश की तरह, परन्तु बिल्कुल काले रङ्ग का मुनक्का बहुत तादाद में आया था। उन दिनों आबजूस पाकिस्तान आदि के रास्ते से आने के कारण बाजार में बहुत कम मिलता था। अभाव में उसे कुछ लोगों ने काम में लेने का विचार किया। हमने भी उसे मंगाया और बना कर देखा। परन्तु वह किसी काम का नहीं निकला। रङ्ग तो खराब था ही, साथ में स्वाद में अम्लता प्रधान गुणयुक्त था। अभी

भी बाजार में ऐसे मुनक्के मिलते हैं। वैद्यों को उन्हें कभी भी व्यवहार में न लेना चाहिये।

मुनक्के का क्वाथ कर प्रायः द्राक्षासव, द्राक्षारिष्ट आदि बनाये जाते हैं। बहुत से आसवों में साबुत ही बिना क्वाथ कर डालने का निर्देश पाया जाता है। हमने एक बार बिना क्वाथ किये थोड़ा-सा द्राक्षासव बनाया, जो रङ्ग रूप में सुन्दर एवं बिल्कुल साफ पारदर्शक जैसा मालूम होता था। जिसके सामने क्वाथ कर बनाया द्राक्षासव कभी भी पसन्द नहीं आ सकता, स्वाद में भी ठीक था, परन्तु धीरे-धीरे उसमें अम्लता आती गई और अन्त में बिल्कुल शुक्त रूप में परिणत हो गया। उसके बाद में हम अन्य आसवों में भी जिनमें साबुत मुनक्का ही डालते थे; उनमें भी पका कर ही डालना शुरू किया। फलस्वरूप हमें उसका बहुत अच्छा असर मालूम पड़ा और जो आसव खट्टे हो जाते थे, उनमें वह दोष फिर न हुआ। अतः मुनक्के को पका कर डालना ही उत्तम है। कच्चा रस प्रधान द्रव्य एवं कच्चे स्वरस आदि से आसवारिष्ट ठीक नहीं बनते। गिलोय, पुनर्नवा, धतूरपंचांग, बासक पत्ता, ब्राह्मी, शतावर आदि के स्वरस या इन्हें कच्चा डाल कर बनाने से आसवारिष्ट खट्टे तैयार होते हैं तथा कभी उनमें सफेद कीड़े भी पड़ते नजर आते हैं। अतः इनको सुखा कर ही काम में लेना उपयुक्त है। घृत कुमारी रस को भी पका कर ही काम में लेना चाहिये। पत्ते को छील कर गूदा निकालने में थोड़े परिमाण में तो किसी तरह बना सकते हैं, फिर भी बड़ी दिक्कत होती है। और गूदा सहित संधान के लिये डाल दिया जाय तो छानने के बाद गूदा रूप में ही बहुत अंश निकल जाता है, अतः घृत कुमारी को धोकर लोहे की कड़ाही में डाल कर खूब पकावें। बाद में उतार कर हाथों से मसल कर रस निकाल लें।

इस तरह रस का पाक भी हो जाता है और रस भी ठीक निकल आता है। कुमारी-आसव में लोहे का मिश्रण किया जाता है, अतः लोह पात्र में उबालने में कोई हर्ज नहीं है। ऊपर तो मुनक्का एवं

कच्चे रस वाली औषधियों के विषय में लिखा, परन्तु अन्य और भी कोई अम्ल गुण विशिष्ट वस्तु अगर आसवारिष्टों के क्वाथ द्रव्य में हों, तो उन्हें भी निकाल देना चाहिये। जैसे—आँवला, कपित्थ आदि।

आसवों का पारदर्शक होना—गुण-धर्म के अलावे आसवों का पारदर्शक होना भी बहुत महत्त्व रखता है। पारदर्शक के लिये आसवों को साफ एवं पुराना होना जरूरी है। नये आसवों को फिल्टर वेग, रिफाइन करने की मशीन आदि से छानने के बाद भी कुछ दिन बाद बोतलों के तलस्थ भाग में गाद बैठ जाती है और ऊपर स्वच्छ आसव दिखाई पड़ता है। आसवों को पुराना होना ही पारदर्शक के लिये जरूरी है। पुरामे होने पर स्वतः धीरे-धीरे गाद नीचे टंकियों में बैठ जाती है और स्वच्छ मद्यांश युक्त भाग ऊपर रह जाता है, फिर उसे साधारण कपड़े से भी छान लें तो आसव स्वच्छ-गाद रहित पारदर्शक रहेगा।

आसवों की परीक्षा—आसवों को छानने के बाद बोतल में भर-कर कार्क लगा कर खूब हिलावें और कान के पास बोतल का मुँह लगाकर कार्क खोलें। अगर आसव कच्चा होगा या उसमें एसीड पैदा हो रही होगी, तो बोतल के मुंह से जोर की आवाज निकलेगी और बोतल फेन से भर जायगी। कभी-कभी तो बोतल से बाहर आसव बहने लगता है। अगर ज्यादा दोष होगा, तो बोतल हिलाने के बाद अपने आप कार्क उड़ जायगा या बोतल कमजोर रही तो फूट जायगी। शुद्ध आसवों में उपरोक्त बातें नहीं पायी जाती। उनको बोतल में भर कर हिलाने के बाद कार्क खोलने से आवाज नहीं आती तथा फेन जल्द बैठ जाता है।

कभी-कभी सूक्ष्म दोष रहने पर इस तरह साफ नहीं मालूम होता। अतः बोतल में आसव भर कर कार्क लगाकर धूप में रख दें। कुछ देर बाद उसमें उष्णता आने से अपने आप कार्क फेंक देगा और आसव बोतल से बाहर निकलना शुरू हो जायगा। इस तरह के आसवों को काम में नहीं लेना चाहिये और जिस पात्र में

आसव हो उसका मुख खोल कर सलाई जला कर देखें अगर सलाई बुझ जाय, तो उसे २-४ दिन मुख पर पतला कपड़ा बांध कर खुला रहने दें और रोज देखते रहें। जब सलाई न बुझे, तब उसे बन्द कर दें और २-३ महीना पड़ा रहने के बाद काम में लें। अगर उसमें मधुरता कम हो, तो ऊपर से उचित मीठा और मिला दें। शुद्ध आसव मधुर गुण युक्त होते हैं और उसके पीने से बदन में स्फूर्ति एवं चित्त प्रसन्न रहता है। इसके विपरीत कच्चे एवं अम्ल युक्त आसव पीने से चित्त में उद्विग्नता और बदन में लहर पैदा होती है। ऐसे आसवों को व्यवहार में नहीं लेना चाहिये।

बोतलों में भरना—आसवों को बोतलों में भरते समय बड़ी सावधानी रखनी चाहिये। प्राय: आसवों को, पात्र के लगे हुये नल से सीधे बोतलों में भरना चाहिये। भरते समय बोतलों के मुँह पर महीन जाली या मोटा कपड़ा लगी हुई कूपी रख लेनी चाहिये, ताकि कोई दूषित वस्तु बोतल के भीतर न जा सके। पात्र के नल में फिल्टर बेग लटका देना चाहिये। अगर सीधे नल से भरने में सुविधा न हो या दूसरे स्थान पर ले जाकर भरना हो तो छोटे-छोटे पीतल या ताम्बे के कलईदार बर्तन जिसके मुँह पर चूड़ीदार ढक्कन लगा हो, उसमें नल लगवा लें। और भरे हुये आसव के पात्र में फिल्टर वेग लगाकर इस कलईदार बर्तन में भर लें और भरने के बाद पात्र को बन्द कर किसी ऊँचे स्थान पर रख कर उसमें लगे नल के द्वारा बोतलों में भरें। ऐसा करने से आसवों में वायु के लगने से होनेवाला कालापन दोष नहीं होता। बोतलों को खूब धोकर सुखा कर ही उसमें आसव भरें, अगर बोतलों में कुछ पानी की बूदें रहेंगी, तो कुछ दिन बाद उसमें का आसव विकृत हो, बोतल फूटने का भय भी रहेगा। बोतलों को खूब लबालब नहीं भरना चाहिये। कुछ भाग खाली रखना चाहिए, अन्यथा आसवों में जोश आने से बोतलों के फूटने या कार्क खुलने का भय रहता है।

गुण-दोष—बहुत से आसवों में पेट की वादी दूर करने और भूख बढ़ाने का गुण होता ह। परन्तु ऐसे आसवों में दस्त साफ लाने का गुण उसमें नहीं रहता है।

आसवों के साधारण गुण—ये हैं कि पाचनशक्ति को बढ़ा कर मल गाढ़ा करना, पेट में रुकी हुई हवा दूर कर दस्त साफ लाना, शरीर में स्फूर्ति पैदा करना, पेशाब उचित मात्रा में और खुल कर होना, मूत्र की विकृति दूर करना इत्यादि।

नये और पुराने आसवारिष्ट—आसवारिष्ट यदि ठीक विधान से बनाये गये हों, तो वे कभी भी बिगड़ नहीं सकते हैं, बल्कि और भी गुणवृद्धि ही होती है। ऐसा अनुभव और शास्त्र सिद्ध बात है। आसवारिष्ट जितने पुराने होते हैं, उतने ही रुचिकर, जायकेदार, शीघ्र गुणकारी और तेज होते हैं। कारण नये आसवों में दवाओं की मिलावट से उत्पन्न होनेवाले गुण अच्छी तरह प्रकट नहीं हो पाते। अतः लाभ कम होता है। पुराने आसवों में उपरोक्त गुण की बराबर वृद्धि होती जाती है।

आसवारिष्ट लेने की मात्रा और अनुपान—अधिकतर पुराना आसवारिष्ट में तीक्ष्णता उत्पन्न हो जाती है। अतः आसवारिष्ट अकेला न लेकर बड़े या बच्चों को भी पानी मिला कर ही सेवन कराना चाहिये। आसव में यदि दूध मिलाना हो, तो पहले पानी मिला कर फिर दूध मिलावें। ऐसा करने से दूध नहीं बिगड़ेगा। बड़े और बलवान मनुष्यों को १ से १॥ तोला तक, कमजोर को ६ माशे तक, बच्चे को ३ से ६ माशे तक और दूध पीनेवाले बच्चे को २ से १० बून्द तक आसवारिष्ट देना चाहिये।

आसव सेवन के विधान—आसवारिष्ट से पानी चौगुने या अठगुने मात्रा में (गर्म या ठण्डा) मिलाना चाहिये। आसवारिष्ट इस तरह से पीवें कि मसूड़े में न लगने पावें।

पथ्यापथ्य—जिस रोग-विनाश के लिये आसवारिष्ट का सेवन किया जाय, उस रोग में बताये हुए पथ्यापथ्य का ही सेवन करना अच्छा है। यदि स्वस्थावस्था में अपने स्वास्थ्य की रक्षा के लिये आसवारिष्ट का सेवन किया जाय, तो स्निग्ध (घी, दूध आदि) और पौष्टिक पदार्थों का सेवन करें। क्योंकि आसवारिष्ट के प्रभाव से अन्नादि शीघ्र ही पच जाते हैं। अतएव स्वास्थ्य-रक्षा के लिए

आसवारिष्ट का सेवन करते समय चिकना और देर से हजम होनेवाली चीजों का सेवन अवश्य करें।

अभयारिष्ट

काढ़ा बनाने की औषधियाँ—बड़ी हर्रे का छिलका ५ सेर, मुनक्का २।। सेर, बायबिडंग ४० तोला, महुये का फूल (इसको काढ़े के प्रारम्भ में न डाल कर जब आधा काढ़ा हो जाय तब डालें) ४० तोला का जौकूट चूर्ण करें।

क्वाथ के लिये जल—उपरोक्त दवा को १ मन ११ सेर १६ तोला पानी में डाल कर पकावें। चौथाई जल शेष रहने पर शीतल कर छान लें।

प्रक्षेप—इसमें ५ सेर गुड़ घोल दें। बाद में छोटा गोखुरू, निशोथ, धनियाँ, धाय के फूल, इन्द्रायण की जड़, चब्य, सौंफ, सोंठ, दन्तीमूल और मोचरस प्रत्येक ८-८ तोला लेकर मोटा चूर्ण करें और डाल दें।

सन्धान—किसी चिकने और बड़े बर्तन में डाल कर बन्द कर दें। एक मास बाद निकाल कर छान लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ तोला, प्रातः और सायं भोजन के बाद जल मिला कर दें।

गुण और उपयोग—रोग और रोगी का बल, रोगी की अग्नि (पाचन-शक्ति) और कोष्ठ का विचार कर उचित मात्रा में इसका सेवन करने से बवासीर और आठ प्रकार के उदर रोग नष्ट होते हैं। यह मल-मूत्र की रुकावट को दूर करता है और अग्नि को भी बढ़ाता है।

अभयारिष्ट—साधारण रेचक और पाचक तथा बद्धकोष्ठ (कब्जियत) को दूर करनेवाला है। इसके अतिरिक्त—सब प्रकार के अर्श (बवासीर), उदर रोग, मन्दाग्नि, मूत्राघात, यकृत्, गुल्म और हृद्रोग को नाश करता है।

यह जमाल गोटे की तरह रेचक (दस्तावर) नहीं है। जमाल गोटा से जो दस्त (रेचन) होते हैं, उसमें आँतों की क्रिया शिथिल (निर्बल) हो जाती है, जिससे विरेचन के बाद आँतों में पुनः मल संचय होने लगता और उससे दूषित गैस उत्पन्न हो अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अभयारिष्ट द्वारा जो दस्त होते हैं, उसमें आँतें कमजोर न होकर सबल बनी रहती हैं, जिससे दूषित मल-संचय नहीं होता है।

इसका उपयोग विशेष कर अर्श (बवासीर) के रोग में किया जाता है। बवासीर बहुत ही परेशान करनेवाली बीमारी है। इसके मस्सों में दर्द बहुत जोर का होता है। इस दर्द को शान्त करने के लिये—अर्शकुठार, बोलबद्ध रस, कामदुघा रस, सूरण बटक आदि में से किसी एक दवा का सेवन करने के उपरान्त जब दर्द का जोर कम हो, तब अभयारिष्ट के सेवन से बहुत फायदा होता है। क्योंकि बवासीर में दस्त कब्ज हो जाना प्रधान लक्षण है। दस्त कब्ज होने के कारण जोर लगाने (कींछने) से और भी दर्द होता है। उस कब्जियत को यह बहुत शीघ्र दूर कर देता है। साथ ही सूजन को भी दूर करता है। बवासीर का सन्देह होते ही अथवा प्रारम्भिक अवस्था में (दर्द होने से पहले) ही यदि अभयारिष्ट का सेवन करा दिया जाय तो यह रोग आगे न बढ़ कर वहीं रुक जाता है।

उदर रोगों में मन्दाग्नि बहुत भयंकर और दुखदायी रोग है। यदि मन्दाग्नि के कारण मल संचय हो दस्त कब्ज (बद्धकोष्ठ) हो गया हो तो इच्छाभेदी, अश्वकंचुकी आदि दवा का उपयोग करना चाहिये, परन्तु इनमें जमालगोटे का मिश्रण होने से कुछ हानि होने का डर रहता है। अतएव अभयारिष्ट में बराबर कुमार्यासव मिला कर लेने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। यह मल और मूत्र को साफ करके अग्नि (जठराग्नि) को बढ़ाता, उदर के रोगों को नष्ट करता और पाचक रस की उत्पत्ति कर अन्न को पचाने की शक्ति पैदा करता है।

अमृतारिष्ट

क्वाथ द्रव्य—ताजी गिलोय ५ सेर के छोटे-छोटे टुकड़े कर लें, और दशमूल (बेल की छाल, अरणी, अरलू की छाल, गम्भारी की छाल, पाढ़ल की छाल, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली; गोखरू) ५ सेर लेकर यवकूट चूर्ण कर लें।

क्वाथ—इन्हें १ मन ११ सेर १६ तोला पानी में डालकर पकावें, १२॥ सेर ४ तोला पानी शेष रहने पर उतार कर छान लें।

प्रक्षेप—इस क्वाथ में १५ सेर गुड़ घोल दें, बाद में काला जीरा ६४ तोला, पित्तपापड़ा ८ तोला, सतौना की छाल, सोंठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, नागकेशर, कुटकी, अतीस, इन्द्रजौ प्रत्येक ४-४ तोला लेकर चूर्ण बना क्वाथ में डाल दें।

सन्धान—इसे चिकने पात्र में डालकर मुंह बन्द कर दें, १ मास बादछान कर काम में लावें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१। तोला से २॥ तोला, बराबर जल मिला भोजन के बाद दोनों शाम दें।

गुण और उपयोग—अमृतारिष्ट के सेवन करने से पुराना ज्वर, ज्वर के आने से हुई निर्बलता, विषमज्वर (सतत, सन्तत, एक दिन, दो दिन, तीन दिन के बाद में आनेवाला ज्वर), रस-रक्तादि धातुगतज्वर, प्लीहा और यकृत्जन्य ज्वर, पाण्डु, कामला तथा बार-बार छूट कर होने वाले ज्वर दूर होते हैं।

अधिक दिन तक जाड़ा देकर आनेवाले ज्वरों में प्लीहा और यकृत की वृद्धि हो जाने से ज्वर का प्रकोप विशेष हो जाता है और मन्दाग्नि भूख न लगना, शरीर में रक्त की कमी, दुर्बलता आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं, ऐसी अवस्था में अमृतारिष्ट अमृत के समान गुण करता है। इसके साथ में सुदर्शन चूर्ण का भी उपयोग करना चाहिये, इससे रोगी बहुत शीघ्र निरोग हो जाता है।

अमृतारिष्ट में गुर्च की प्रधानता है। अतः इसके गुण भी इसमें अधिक पाये जाते हैं, इसलिये मूत्राशय की कमजोरी के कारण

यदि बार-बार पेशाब करने की शिकायत हो गयी हो, तो यह उसे भी दूर करता है। सूजाक और उपदंश रोग में भी यह सौम्य तथा रक्त-शोधक गुण-युक्त होने के कारण दिया जाता है।

जीर्णज्वर (पुराना ज्वर) के कारण मन्दाग्नि हो जाती, जिससे रस-रक्तादि धातुएँ ठीक और उचित परिमाण (मात्रा) में नहीं बनती हैं। अतएव शरीर में रक्त की कमी हो जाने के कारण देह पीली (पाण्डु रंग की) हो जाती है। यकृत-प्लीहा की वृद्धि हो जाने से पित्त का स्राव अच्छी तरह नहीं होता। अतएव पेट में दर्द, अन्न नहीं पचना, पेट में आवाज होना, वायु नहीं घूमना आदि उपद्रव हो जाते हैं, पतले दस्त भी आने लग जाते हैं। ऐसी हालत में अमृतारिष्ट के सेवन से शीघ्र लाभ होते देखा गया है, क्योंकि इसका प्रभाव प्रथम आमाशय पर होता है। यह पाचक पित्त को उत्तेजित कर पाचन क्रिया को ठीक करता तथा भूख की वृद्धि करता है। साथ ही रंजक पित्त को भी जागृत कर रक्त-कणों की वृद्धि करते हुए शरीर की कान्ति अच्छी बना देता है और यकृत, प्लीहा की वृद्धि को रोक कर उसे नीरोग बना देता है।

प्रसूत ज्वर में भी इसका उपयोग किया जाता है। यद्यपि प्रसूत ज्वर में दशमूलारिष्ट का उपयोग करने से अच्छा लाभ होता है। परन्तु पित्तप्रधान प्रसूत ज्वर में—जिसमें हाथ-पाँव में जलन हो, पेट से दाह, प्यास ज्यादा लगे, कभी-कभी चक्कर आने लगे, ज्वर की गर्मी बढ़ी हुई रहती हो, शीतल पदार्थ से विशेष प्रेम हो, ऐसी दशा में इसके उपयोग से अच्छा लाभ होता है। क्योंकि यह पित्तशामक और पौष्टिक भी है। ज्वरघ्नता तो इसका प्रधान ही गुण है। इसके साथ में सूतिका, विनोद या प्रतापलंकेश्वर रस आदि का भी यदि उपयोग किया जाय, तो यह विशेष गुणदायक हो जाता है।

अरविन्दासव

लाल कमल के फूल, खस, गम्भारि फल, नील कमल, मजीठ, छोटी इलायची, खरेंटी, जटामांसी, मोथा, अनन्तमूल, हर्रे, बहेड़ा,

वच, आँवला, कचूर, कालीनिशोथ, नीलीमूल, परबल के पत्ते, पित्त-पापड़ा, अर्जुन की छाल, मुलेठी, महुए के फूल, मुरामांसी प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तोला और मुनक्का १ सेर तथा धाय के फूल ६४ तोला का भी चूर्ण बना लें।

सन्धान—चिकने मिट्टी के पात्र में २५।। सेर ८ तोला जल डाल कर उसमें ५ सेर उत्तम चीनी और शहद २।। सेर डाल कर घोल दें। फिर पात्र का मुख बन्द कर १ मास तक रखा रहने दें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—बच्चों को २ से ४ माशे तक और बड़ों को १ से १।। तोला तक बराबर जल के साथ देना।

गुण और उपयोग—अरविन्दासव बच्चों के सब रोगों को दूर करता, बल और अग्नि को बढ़ाता एवं शरीर को पुष्ट करता है। यह आयु बढ़ाने वाला तथा बालग्रहों को दूर करने वाला है।

अरविन्दासव बच्चों को कमल की तरह स्वच्छ, कान्तिमान और प्रसन्न बना देता है। बच्चों के सब रोगों में इसका उपयोग किया जाता है, विशेष कर यह सूखा रोग (बालशोष) में बहुत फायदा करता है। यह रोग माता के दूध की खराबी के कारण होता है। इसमें पहले कफ की वृद्धि ,ज्वर, खाँसी, पतले दस्त होना आदि उपद्रव होने के बाद बच्चा धीरे-धीरे सूखने लगता है। इसके चूतड़ की खाल लटक जाती है, शरीर की हड्डी उभर आती है और कान्ति नष्ट हो जाती है। हड्डियाँ इतनी कमजोर हो जातीं हैं, कि बच्चा खड़ा नहीं हो सकता, चल-फिर भी नहीं सकता, बार-बार रोता ही रहता है तथा स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। यह अवस्था नाजुक बच्चों के लिये बहुत कष्टकर होता है। ऐसी हालत में अरविन्दासव के उपयोग से अच्छा लाभ होता है, किन्तु इसके साथ-साथ प्रवाल (चन्द्रपुटी) भस्म और मालती बसन्त का मिश्रण देते रहना उत्तम है, क्योंकि यह हड्डी को कड़ा कर देता है और हृदय में ताकत पहुँचाता है। इससे रक्त की वृद्धि जल्दी हो जाती है, जिससे शरीर कान्ति-मान हो जाता है। साथ ही उपरोक्त उपद्रव भी क्रमशः शान्त हो जाते हैं।

पित्त की विकृति और मूत्र में जलन, बूंद-बूंद पेशाब होना, पेशाब करते समय दर्द-जलन आदि उपद्रव होना, स्त्रियों के प्रदर रोग, श्वेत प्रदर आदि रोगों में भी इसका उपयोग किया जाता है।

अशोकारिष्ट

अशोक की छाल ५ सेर को यवकुट कर अच्छे ताम्बे या पीतल के कलईदार बरतन में १ मन ११ सेर १६ तोला जल में डाल कर मन्दाग्नि से क्वाथ बनावें। जब चतुर्थांश जल १२॥ सेर ४ तोला बाकी रहे तब उतार कर कपड़े से छान लें। ठण्डा हो जाने पर उसमें १० सेर गुड़ मिलावें। पश्चात् भाँड या उत्तम काठ की टंकी में डाल कर उसमें धाय के फूल ६४ तोला, स्याहजीरा, नागरमोथा, सोंठ, दारुहल्दी, नीलोफर, त्रिफला, आम की गुठली, सफेद जीरा, वासक छाल, और सफेद चन्दन प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तोला मिला कर यथाविधि सन्धान करके १ माह बाद छान कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१। तोला से २॥ तोला तक समभाग जल मिला कर भोजन के बाद दें।

गुण और उपयोग—स्त्रियों के होने वाले प्रमुख रोग यथा—रक्त-श्वेत प्रदर, पीडितार्तव, पाण्डु, गर्भाशय व योनि भ्रंश, डिम्ब-कोष प्रदाह, हिस्टीरिया, बन्ध्यापन आदि तथा ज्वर प्रमेह, अर्श, मन्दाग्नि, सूजन, अरुचि इत्यादि रोगों को नष्ट करता है।

अशोकारिष्ट में अशोक की छाल की ही प्रधानता है। अशोक की कई जातियाँ होती हैं, इनमें एक जाति के पत्ते रामफल के समान, फूल नारंगी के रंग के होते हैं, जो वसन्त ऋतु में खिलते हैं, इसको लैटिन में "जौनेसियाअशोक" कहते हैं, और यही असली अशोक है। अशोकारिष्ट के लिये इसी अशोक की छाल लेनी चाहिए। यद्यपि शास्त्र में "अशोकस्य तुलामेकां चतुर्द्रोणे जले पचेत्" इतना हीं लिखा है, वहाँ स्पष्ट उल्लेख नहीं है, कि किस जाति के अशोक की छाल लें। परन्तु अनुभव से ज्ञात हुआ है, कि उपरोक्त अशोक-छाल द्वारा निर्मित अशोकारिष्ट जितना गुणद होता है, उतना अन्य

जाति के अशोक की छाल द्वारा निर्मित अशोकारिष्ट गुणद नहीं होता है। उपरोक्त अशोक बंगाल में बहुत परिमाण में मिलता है। अस्तु।

अशोक मधुर, शीतल, अस्थि को जोड़ने वाला, प्रियसुगंधित, कृमि-नाशक, कसैला, देह की कान्ति बढ़ाने वाला, स्त्रियों के रोग दूर करने वाला, मलशोधक, पित्त, दाह, श्रम, उदररोग, शूल, विष, बवासीर, अपच और रक्त रोग नाशक है।

डाक्टरों ने भी अशोक का रासायनिक विश्लेषण करके देखा है। इसके अन्दर के आलकोहलिक एक्सट्रैक्ट गरम पानी के अन्दर घुलने वाला है। इसमें टेनिन की मात्रा काफी पाई गई है। और एक इस प्रकार का प्राणिवर्ग से सम्बन्ध रखने वाला पदार्थ पाया गया, जिसमें लोहे की मात्रा काफी थी, इसमें—अलकेलाइड और एसेन-शियल आइल की मात्रा बिल्कुल नहीं पाई गयी। अशोक के विषय में प्राय: प्रसिद्ध-प्रसिद्ध डाक्टरों का मत है, कि अशोक की छाल बहुत सख्त ग्राही है, क्योंकि उसमें टेनिन एसिड रहता है।

वास्तव में अशोकारिष्ट स्त्रियों का परम मित्र है, इसका कार्य गर्भाशय को बलवान बनाना होता है। गर्भाशय की शिथिलता से उत्पन्न होने वाले अत्यार्तव विकार में इसका उत्तम उपयोग होता है, गर्भाशय के भीतर के आवरण में विकृति, बीज वाहिनियों की विकृति, गर्भाशय के मुख पर योनि मार्ग में या गर्भाशय के भीतर या बाहर व्रण हो जाना आदि कारणों से अत्यार्तव रोग उत्पन्न होता है। इसमें अशोकारिष्ट के उपयोग से अच्छा लाभ होता है।

कितने स्त्रियों को मासिक धर्म आने पर उदर पीड़ा होने की आदत पड़ जाती है, जिसे पीड़ितार्तव या कष्टार्तव कहते हैं—इस रोग में मुख्यत: बीजवाहिनी और बीजाशय की विकृति कारण होता है। कितनी रुग्णाओं को पीड़ा अत्यधिक तीव्र रूप में होती है, कमर में भयंकर दर्द, सिर दर्द, वमन आदि लक्षण होते हैं। इस विकार में अशोकारिष्ट उत्तम कार्य करता है।

प्रदररोग—मद्यपान, अजीर्ण, गर्भस्राव, गर्भपात, अति मैथुन, कमजोरी में परिश्रम, चिन्ता, अधिक उपवास, गुप्तांगों का आघात,

दिवाशयन आदि से स्त्रियों का पित्त दूषित होकर पतला और अम्लरस प्रधान हो जाता है, यह खून को भी वैसा ही बना डालता है, फलतः शरीर में दर्द, कटिशूल, शिर दर्द, कब्ज तथा बेचैनी आरम्भ हो जाती है। साथ ही योनि द्वार से चिकना, लस्सेदार, सफेदी लिए, चावल के धोवन के समान, पीला-नीला, काला, रूक्ष, लाल, झागदार मांस के धोवन के समान रक्त गिरने लगता है। रोग पुराना हो जाने पर उससे दुर्गंध निकलने लगती है और रक्तस्राव मज्जामिश्रित भी हो जाता है। ऐसा हो जाता है, कि चलते-फिरते उठते-बैठते हरदम खून जारी रहता है, कोई अच्छा कपड़ा पहनना मुश्किल हो जाती है। कभी-कभी खून के बड़े-बड़े जमे हुए कलेजे के समान टुकड़े गिरने लगते हैं। इस अवस्था में खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना सब मुश्किल हो जाती है। यह हालत लगातार महीनों तक चलती है। कभी-कभी किसी उपचार से या अधिक रक्ताभाव से कुछ दिन के लिए खून का वेग बन्द भी हो जाता है। परन्तु फिर वही हालत हो जाती है। इस प्रकार तमाम शरीर का रक्त गिर जाता और शरीर बिल्कुल रक्तहीन हो जाता है, पाचन-शक्ति बिल्कुल खराब हो जाती है। अतः नया रक्त भी नहीं बन पाता है। अशोकारिष्ट उपरोक्त उपद्रवों को दूर कर शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए अपूर्व गुणकारी दवा है।

इसी तरह श्वेत प्रदर में रक्त की जगह सफेद और गाढ़ा लस्सेदार पानी गिरता है। इसकी उत्पत्ति के दो स्थान हैं, योनि की श्लैष्मिक कला तथा गर्भाशय की भीतरी दीवाल, यह रस इसी कला या त्वचा में बनता है और निकलता रहता है। थोड़ा-बहुत रस तो यह त्वचा बनाती ही रहती है, जो योनि को तर रखने के लिए आवश्यक भी है। किन्तु अधिक सहवास के कारण इस स्थान में विकृति पैदा हो जाने से यह रस अधिकता से बनने लगता है, और फिर योनिमार्ग से सदा सफेद, लस्सेदार पदार्थ गिरता रहता है। पहले तो गन्ध-रहित, फिर दुर्गंध युक्त स्राव होने लगता है, और पीड़ा भी धीरे-धीरे बढ़ने लगती है। इस रोग में भी वे सभी उपद्रव होते हैं, जो

रक्तप्रदर में होते हैं। अशोकारिष्ट का सेवन इन उपद्रवों को दूर करने के लिए बहुत प्रसिद्ध दवा है।

पीड़ितार्तव—मन्द ज्वर होता है। मासिकधर्म बड़े कष्ट से और कम आता है, कमर, पीठ, पार्श्व आदि सभी अंगों में बहुत दर्द होता है। पेशाब भी बड़े कष्ट से उतरता है। इस रोग में सबसे अधिक पीड़ा बस्ति स्थान (पेडू) में होती है। इससे मुक्त होने के लिए अशोकारिष्ट का अवश्य सेवन करना चाहिए।

गर्भाशयभ्रंश व योनिभ्रंश में—मैथुनक्रिया का ज्ञान नहीं रहने के कारण या कामोन्मादवश मूर्खतापूर्ण ढंग से मैथुन करने पर गर्भाशय तथा योनि दोनों अपने स्थान से हट जाते हैं। गर्भाशय तो भीतर ही टेढ़ा होकर नाना प्रकार की पीड़ा का कारण बनता है, और योनि बाहर निकल आती है, या बार-बार बाहर-भीतर आती-जाती रहती है। इसके साथ पेड़ और कमर में दर्द होना, पेशाब करने में दर्द होना, श्वेत-प्रदर का जारी होना तथा मासिकधर्म कम होना, या बिल्कुल बन्द हो जाना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी स्थिति में अशोकारिष्ट का तो सेवन करावें ही साथ में चन्दनादि चूर्ण में त्रिवंगभस्म मिला कर सुबह-शाम दूध के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है।

डिम्बकोषप्रदाह—यह रोग ऋतुकाल में पुरुष के साथ संगम करने से होता है, व्यभिचारिणी और वेश्याओं को यह रोग अधिक होता है। इसमें पीठ और पेट में दर्द होना, वमन होना, रोग पुराना हो जाने पर योनि से पीव निकलना आदि लक्षण होते हैं। स्त्रियों के लिए यह रोग बहुत त्रासदायक है। इसमें प्रातः-सायं चन्द्रप्रभा-वटी १-१ गोली तथा भोजनोत्तर अशोकारिष्ट बराबर जल मिला कर पिलाने से लाभ होता है।

हिस्टीरिया में—स्नायुसमूह की उग्रता से यह रोग पैदा होता है, रोग पैदा होने से पहले छाती में दर्द, तथा शरीर और मन में ग्लानि उत्पन्न होती है, ऐसे देखने में तो यह रोग मृगी जैसा ही प्रतीत होता है, परन्तु इसमें रोगिणी के मुँह से झाग नहीं जाते। कभी-कभी इस रोग के रोगी के पेट के नीचे से एक गोला-सा उठ कर ऊपर की

ओर आ जाता है। गर्भाशय सम्बन्धी किसी भी रोग से यह रोग उत्पन्न हो सकता है। यह रोग बड़ा दुष्ट और नवयुवतियों को तंग करनेवाला है। अशोकारिष्ट के सेवन से उपरोक्त उपद्रव दूर हो जाते हैं।

पाण्डुरोग—स्त्रियों के रक्तप्रदरादि कारणों से रक्त का क्षय होकर उनका शरीर पीताभ रंग का हो जाता है, इसमें शारीरिक शक्ति का क्रमशः ह्रास होने लगता है, आलस्य और निद्रा हरदम घेरे रहती है, थोड़ा भी परिश्रम करने से भ्रम-चक्कर आने लगता है, भूख नहीं लगती, यदि कुछ खा भी लें, तो मन्दाग्नि के कारण हजम नहीं हो पाता, जिससे पेट भारी बना रहता है। यदि कदाचित् तरुणावस्था में यह रोग हुआ, तो यौवन का विकास ही रुक जाता है; और स्त्री अपनी जिन्दगी से निराश रहने लग जाती है। इस दुष्ट रोग का कारण बहुमैथुन या बाल विवाह है। इस रोग में प्रातः-सायं नवायस लौह और भोजनोपरान्त अशोकारिष्ट में समभाग लौहासव तथा बराबर जल मिला कर देने से आशातीत लाभ होता है।

ऊर्ध्वगत रक्तपित्त के लिए अशोकारिष्ट अत्युत्तम औषध है। रक्तार्श में भी विशेषतः वेदना या जलन न होने पर अशोकारिष्ट के सेवन से उत्तम लाभ होता है।

अश्वगन्धारिष्ट

क्वाथ द्रव्य—असगंध २।। सेर, मूसली सफेद ८० तोला, मजीठ, हर्रे का छिलका, हल्दी, दारुहल्दी, मुलैठी, रास्ना, विदारीकन्द, अर्जुन की छाल, नागरमोथा, निशोथ प्रत्येक ४०-४० तोला, सफेद व काली सारिवा, लालचन्दन और श्वेत चन्दन का बुरादा, बच, चीते की जड़ प्रत्येक ३२-३२ तोला लेकर सबका मोटा चूर्ण बना लें।

क्वाथ—इन सबको २ मन २२ सेर ५ छटाँक २ तोला पानी में डालकर पकावें। अष्टमांश पानी शेष रहने पर छान लें।

प्रक्षेप—इसमें असली शहद १५ सेर, धाय के फूल ६४ तोला, सोंठ, मिर्च, पीपल प्रत्येक ८ तोला, दालचीनी, इलायची, तेजपात प्रत्येक १६ तोला, फूलप्रियंगु १६ तोला और नागकेशर ८ तोले का चूर्ण डाल दें।

सन्धान—इन सबको चिकने घड़े में डालकर मुख बन्द करके १ मास तक छोड़ दें। बाद में छान कर प्रयोग करें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला, बराबर जल मिलाकर दोनों शाम दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से मूर्च्छा, स्त्रियों का हिष्टीरिया रोग, दिल की धड़कन, हौलदिल (बेचैनी), चित्त की घबड़ाहट, चित्तभ्रम, याददाश्त की कमी, बहुमूत्र, मन्दाग्नि, बवासीर, कब्जियत, सिर दर्द, काम में चित्त न लगना, स्नायुदौर्बल्य, हर प्रकार की कमजोरी, बुढ़ापे की शिथिलता आदि रोग नष्ट होकर बल, वीर्य, कान्ति एवं शक्ति की वृद्धि होती है। प्रसूता स्त्रियों की कमजोरी इससे बहुत शीघ्र दूर हो जाती है। दिमाग की विकृति या कमजोरी दूर करने के लिये अभ्रक भस्म प्रातः-सायं मधु के साथ और भोजन के बाद यह दवा लेने से विशेष लाभ होता है। दिमागी मिहनत करने वालों को यह आसव हमेशा लेने चाहिये। यह मानसिक थकावट को दूर करता है, और स्नायुओं में एक तरह की नवीन स्फूर्ति पैदा कर दिमाग को तरो-ताजा बना देता है, अतएव थकावट नहीं मालूम होती है। दिमाग को पुष्ट करने की यह एक ही दवा है।

अहिफेनासव

अफीम १६ तोला, नागरमोथा, जायफल, इन्द्रजौ, छोटी इलायची के बीज प्रत्येक ४-४ तोला लें।

सन्धान—चीनी मिट्टी या काँच के पात्र में ५ सेर देशी शराब डाल दें, इसमें पहले अफीम को घोल कर बाद में शेष चारों वस्तुओं के चूर्ण डाल करके मुख बन्द कर १ मास तक रखने के बाद छान लें।

—भै० र०

नोट—इसके पात्र को धूप में रखने से १५ दिन में ही अच्छा सन्धान हो जाता है और गुण भी विशेष करता है। प्रायः इसी तरह से वैद्य लोग इसका निर्माण करते हैं।

मात्रा और अनुपान—२ से १० बूंद तक चीनी या बताशे अथवा पानी में डाल कर पीना चाहिये।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से भयंकर अतिसार और हैजा का नाश होता है। इस आसव का उपयोग वात और कफ जन्य विकारों में अधिक किया जाता है। वातजन्य अतिसार में जब किसी दवा से लाभ न हो, तो इसका उपयोग करना चाहिये। इससे अवश्य लाभ होगा।

इसी तरह हैजा की भयंकर अवस्था में शरीर ठण्ढा हो जाना, नाड़ी अपने स्थान से छूटती हुई दिखाई पड़ना, बेहोशी, सम्पूर्ण शरीर में ऐंठन, दाँत बंध जाना, दस्त बहुत पतला और दुर्गन्धयुक्त होना, अनपच दस्त होना, वमन बड़े जोर के साथ होना, पेशाब बन्द हो जाना, पड़े-पड़े ही दस्त हो जाना आदि उपद्रव होने पर अहिफेनासव चीनी या बताशे अथवा गर्म पानी में मिला-मिला कर १५-१५ मिनट पर बराबर देते रहें। और वायु शमन के लिये तथा खून में गर्मी लाने के लिये हाथ-पाँव की मालिश अजवायन की पोटली से करें। इससे बहुत शीघ्र लाभ होता है। इसके साथ ही हृदय में कुछ ताकत बने रहने के लिये मकरध्वज का भी उपयोग तुलसीपत्र स्वरस और मधु के साथ करना चाहिये। इससे रक्त में गर्मी आकर रक्त का संचालन होने लगता है, साथ ही हृदय और नाड़ी की गति में भी सुधार होता है।

उशीरासव

खस, सुगंध बाला, कमल, गम्भारी, नीलोफर, फूल प्रियंगू, पद्माख, लोध, मजीठ, धमासा, पाठा, चिरायता, बड़ की छाल, गूलर की छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, सफेदकमल, पटोलपत्र, कचनार की छाल, जामुन की छाल, मोचरस प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तोला, मुनक्का कुटा हुआ ८० तोला, और धाय के फूल ६४ तोला लें।

सन्धान—इनको एक मटके में डालकर उसमें २५।। सेर ८ तोला जल में देशी खाँड़ ५ सेर, शहद २।। सेर मिला कर उसी मटके में डाल दें, और मुख बन्द कर १ मास तक छोड़ दें, बाद में छानकर रख लें। —भैं० र०

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला तक, बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद दोनों शाम दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से नाक, कान, आँखें, मल-मूत्र द्वार से होने वाला रक्तस्राव, खूनी बवासीर, स्वप्नदोष, पेशाब में धातु जाना, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, उष्णवात, प्रमेह, बहुमूत्र, स्त्रियों के रोग, श्वेत और रक्तप्रदर, ऋतुकाल या प्रसव के बाद में अत्यन्त रक्तस्राव, गर्भाशय दोष, पेट का दर्द, रजःकृच्छ्रता, पाण्डु, कुष्ठ, कृमि, क्षय आदि रोगों का नाश होता है। इसका विशेष उपयोग— रक्तस्राव, अर्श, रक्तप्रदर, ऋतुकाल में अत्यन्त रक्त जाना, पेट में दर्द होना आदि रोगों में होता है। शुक्रविकार में इसके साथ चन्द्र-प्रभावटी का उपयोग करने से बहुत लाभ होता है।

उपदंश, कुष्ठविकार आदि रोगों में पित्त की विशेषता के कारण अथवा अधिक तेज दवा के सेवन से शरीर में गर्मी ज्यादे बढ़ गयी हो या वीर्य पतला होकर पेशाब के रास्ते निकलता हो, तो इस आसव के साथ गोक्षुरादि गूगल का उपयोग करना चाहिए।

यह आसव सौम्य (ठंढा) होने की वजह से गर्भिणी स्त्री को भी दे सकते हैं। अकाल प्रसव—असमय में गर्भ पात होना, अथवा इसका डर लगा रहना या बच्चा होने के बाद अधिक खून गिरना आदि उपद्रव में १। तोला उशीरासव बराबर जल और शहद मिलाकर लेने से बहुत फायदा होता है। यह रक्तरोधक, रक्तशोधक, गर्मी को शान्त करने वाला और वीर्यवर्द्धक है।

कनकारिष्ट (रक्तशोधक)

क्वाथ—खैरसार ८ सेर के छोटे-छोटे टुकड़े कर लें और ६४ सेर पानी में पकावें। १६ सेर पानी शेष रहने पर छान कर इसे मिट्टी या चीनी के पात्र में डाल दें।

प्रक्षेप—इसमें हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, हल्दी, दालचीनी, बाकुची, गिलोय और बायबिडंग प्रत्येक ५-५ तोला लेकर चूर्ण बनावें। धाय के फूल ४० तोला दें।

सन्धान—पहले खदिर क्वाथ में १२।। सेर उत्तम मधु को घोल दें। बाद में प्रक्षेप डाल कर यथा विधि सन्धान करें और एक माह बाद छान कर रख लें। —ग० नि०

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला, बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद दोनों शाम दें।

गुण और उपयोग—इसे प्रातःकाल बिना कुछ खाये ही सेवन करने से पुराना कुष्ठ एक मास में शान्त हो जाता है। यह अरिष्ट रक्तशोधक है। अतएव इसका प्रयोग रक्तविकार में करने से विशेष लाभ होता है। प्रमेहपिड़िका, शरीर में छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाना, खून की विकृति के कारण त्वचा रूक्ष और मलीन हो जाना आदि रोगों में भी इसका उपयोग किया जाता है।

कनकासव

शाखा, जड़, पत्ते और फल सहित धतूरे को कूटकर १६ तोला (गीला हो तो ३२ तोला) लें, वासा की जड़ की छाल १६ तोला, मुलैठी, पीपल, छोटी कटेली, नागकेशर, सोंठ, भारंगी और तालीस पत्र प्रत्येक ८-८ तोला, धाय के फूल ६४ तोला, मुनक्का ८० तोला, सबका जौकुट चूर्ण बनावें।

सन्धान—उपरोक्त चीजों को पात्र में रखें। फिर २५।। सेर ८ तोला जल में देशी खाँड़ या चीनी ५ सेर, मधु २।। सेर घोलकर सन्धान (बन्द) कर दें। एक मास बाद छानकर रख लें।

—भै० र०

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला, बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद दोनों समय दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से श्वास, कास, यक्ष्मा, उरःक्षत, क्षय, पुराना ज्वर, रक्त-पित्त आदि शान्त हो जाते हैं।

कास-श्वास की उग्रावस्था में इसका उपयोग अधिकतर किया जाता है। क्योंकि श्वासनलिका की श्लैष्मिक त्वचा को शिथिल करके यह दम्मे की पीड़ा को दूर करता है। इसीलिए श्वासनलिका में संकोच-विकास-प्रधान रोग में इसका उपयोग विशेषतया सफल होता है। श्वासनली की सूजन, दमा और फेफड़ों के रोगों में इसका बहुत उपयोग किया जाता है। इससे कफ ढीला होकर गिरने लगता है। श्वासनली की संकुचित होने की शक्ति कम हो जाती है और दमे का वेग बन्द हो जाता है।

कर्पूरासव

उत्तम देशी मद्य ५ सेर, उत्तम कर्पूर ३२ तोला और छोटी इलायची के बीज, नागरमोथा, सोंठ, अजवायन, वायबिडंग प्रत्येक ४-४ तोला लेकर चूर्ण बना, एक बर्तन में डाल दें और मुख बन्द कर १ मास तक छोड़ दें। बाद में छानकर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—५ से २० बूंद पानी में मिलाकर दें।

दूसरी विधि—(अर्ककपूर)—असली रेक्टीफाइड स्प्रीट १६ औंस में ४ औंस कपूर डाल दें। यदि इसमें एक औंस फूल पिपर-मेण्ट भी डाल दें, तो अच्छा। कुछ समय में ही अर्क कपूर तैयार हो जायगा।

मात्रा—५ से २० बूंद तक दें।

तीसरी विधि—(अमृतधारा)—कपूर, फूलपिपरमेण्ट, सत्त अजवायन ये चीजें सम भाग लेकर शीशी में डाल, मुँह बन्द कर दें। थोड़ी देर में अर्क तैयार हो जायगा।

मात्रा और अनुपान—५ से १० बूंद तक, चीनी या बताशे में देना।

गुण और उपयोग—ये तीनों हैजा, अजीर्ण, बदहजमी, पेट के दर्द, जी मिचलाना आदि के लिए अक्सीर दवा है। कई बार का अनुभूत है।

नोट—अर्क कपूर बनाने का विधान उपरोक्त ही है और प्रायः सब बनाते भी इसी तरह हैं। परन्तु बाजार में बिकनेवाला अर्ककपूर में धूर्त व्यापारी

पानी मिला देते हैं। अतः जितना लाभ होना चाहिये, उतना नहीं हो पाता। इसकी पहचान यही है कि अर्ककपूर में दियासलाई लगाने पर तुरत जलने लगता है नकली जलता नहीं है।

कुटजारिष्ट

क्वाथ द्रव्य—कुड़े की जड़ की छाल ५ सेर, मुनक्का २।। सेर, महुआ के फूल, गम्भारी की छाल प्रत्येक ४०-४० तोला को जौकुट चूर्ण करें, इनको एक मन ११ सेर १६ तोला जल में पकावें। १२।।। सेर ४ तोला जल शेष रहने पर छान कर ठण्डा कर लें।

प्रक्षेप—इसमें ५ सेर गुड़ घोल दें और १ सेर धाय के फूल डाल दें।

सन्धान—इन सबको चिकने पात्र में डालकर मुख बन्द कर १ मास तक छोड़ दें। बाद में छानकर काम में लावें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ तोला तक बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद दोनों शाम देना।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से पुरानी संग्रहणी, अतिसार, कृमि, आमांश, अग्निमांद्य, अरुचि, दुर्बलता, जीर्णज्वर, रक्त गिरना, खाँसी आदि रोग नष्ट होते हैं। कितनी ही पुरानी संग्रहणी, श्वेत आँव और ज्वर के साथ क्यों न हो उसे निवारण के लिये यह अरिष्ट बहुत उपयोगी है।

पुरानी संग्रहणी में—मल थोड़ा और आँव के साथ आना, पेट में दर्द होना, ज्वर भी हो जाना, अन्न में अरुचि, दस्त के समय आँतों में मरोड़ होना आदि उपद्रव होते हैं। इसमें कुटजारिष्ट, कुटजावलेह के साथ देने से अच्छा फायदा होता है।

संग्रहणी रोग आराम हो जाने पर भी कुछ रोज तक कुटजारिष्ट का सेवन थोड़ी-थोड़ी मात्रा में करते रहना चाहिये, क्योंकि, अक्सर देखा जाता है कि पुरानी संग्रहणी दूर हो जाने पर दवा और पथ्यादि का सेवन बन्द कर देने से पुनः यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इस तरह बार-बार यह रोग अपना प्रभाव जमाकर रोगी को अधिक

कष्ट देता है। अतएव इसके दौरे रोकने के लिये कुटजारिष्ट का सेवन रोग छूटने पर भी कुछ रोज तक बराबर करना चाहिये।

संग्रहणी रोग में पाचक पित्त की दुर्बलता के कारण जठराग्नि मन्द हो जाती है, फिर मन्दाग्नि होना, भूख नहीं लगना, कभी-कभी पेट में दर्द, अनपच दस्त आदि उपद्रव होने लगते हैं, ऐसी हालत में कुटजारिष्ट के सेवन से पाचक पित्त उत्तेजित हो,जठराग्नि को प्रदीप्त कर देता है और पाचनक्रिया भी ठीक करता है।

कुटजारिष्ट कफ को भी ढीला करता है। विशेषकर छोटे-छोटे बच्चों के कफ को ढीलाकर दस्त की राह निकाल देता है। अतएव बच्चों की खाँसी या कफ-वृद्धियुक्त खाँसी में अथवा न्यूमोनियाँ या मोतीझाला आदि में कफ-दोष को दूर करने के लिये बबूलारिष्ट या द्राक्षासव के साथ इसे मिलाकर बराबर जल मिला थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दिनभर में ३-४ बार देने से कफ ढीला होकर निकल जाता है और खाँसी भी कम हो जाती है।

कुमार्यासव

अच्छा पका हुआ और रस भरा ग्वारपाठा (घीकुमार) लाकर उसे जल से धो, छोटे-छोटे टुकड़े कर, लोहे की बड़ी कढ़ाई में डाल, आग पर चढ़ा, पाँच-दस उफान आवे इतना गरम कर नीचे उतार रख छोड़ें। ठण्डा होने पर हाथ से मसलकर कपड़े से छान लें।

इस प्रकार निकाला हुआ रस १२।।। सेर ४ तोला, गुड़ ५ सेर, लौह चूर्ण २।। सेर, शहद २।। सेर और सोंठ, मिर्च, पीपल, लौंग, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर, चित्रक, पीपलामूल, वायबिडंग, गजपीपल, चव्य, हाऊबेर, धनियां, कुटकी, सुपारी, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आँवला, रास्ना, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वामूल, मुनक्का, दन्तीमूल, पुष्करमूल, बला, नागबला, कौंच के बीज, गोखुरू, सौंफ, हिंगुपत्री (डीकामाली), अकरकरा, उटंगन बीज, श्वेत पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, लोध, स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक

२-२ तोला और धाय के फूल ३२ तोला लेकर सबको चीनी मिट्टी के पेचदार ढक्कन की बरनी या लकड़ी के पीपे में डालकर रख छोड़ें, फिर मुख बन्द कर १ मास तक रहने के बाद छानकर रख लें।

—शा० ध०

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला तक बराबर जल मिलाकर दोनों शाम भोजन के बाद दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से गुल्म, शूल, यकृत्, प्लीहा, नलाश्रित वायु, मेदोवायु, जुकाम, श्वास, दमा, खाँसी, अग्निमांद्य, कफ और मन्द ज्वर, पाण्डु, पुराना ज्वर, कमजोरी, शक्तिक्षय, गर्भाशय दोष और आर्त्तव की अशुद्धि, अम्लपित्त, संग्रहणी, अपस्मार, वातविकार और बवासीर आदि समस्त रोग नष्ट होते हैं।

कुमार्यासव में मुख्य वस्तु घीकुमारी का रस है, इसके अतिरिक्त लौहचूर्ण, हर्रे आदि भी दवाएं हैं, अतएव यह पाचक, कोष्ठ को शोधन करने वाला, भूख बढ़ाने वाला और पौष्टिक है।

ऐसे बच्चे जो अन्न खाते हों, उनके लिये यह दवा बहुत मुफीद है। तथा ५-६ माह के भी बच्चों के लिये यदि बराबर पेट खराब रहता हो, जिगर या तिल्ली बढ़ी हुई हो, अनपच दस्त आदि होते हों, तो देने में कोई नुकसान नहीं है। क्योंकि यह तिल्ली, जिगर, कफ विकार, श्वास-खाँसी आदि बच्चों के रोगों में विशेष गुण करता है।

इसका उपयोग विशेष कर पेट के विकारों में बच्चे से लेकर बूढ़े तक सबके लिये किया जाता है। प्रारम्भ में इसकी मात्रा थोड़ी ही देनी चाहिये। जैसे-जैसे बर्दाश्त होता जाय, वैसे-वैसे मात्रा बढ़ाते जाना यही इसका अच्छा नियम है। एक-दो सप्ताह लगातार सेवन करने से इसका गुण मालूम होता है। शूल, गुल्मादि रोगों में यदि रोगी बलवान हो, तो इसके साथ वज्रक्षार चूर्ण का भी उपयोग करें। इससे पेट में वायु भरने नहीं पाता और रोग भी बहुत शीघ्र आराम हो जाता है तथा अग्नि (जठराग्नि—हाजमा) भी तेज हो जाती, खायी हुई चीजें बहुत जल्दी हजम होने लगती और रस-रक्तादि धातु बढ़ कर शरीर पुष्ट और बलवान हो जाता है।

स्त्रियों के दर्द—मेदो वृद्धि, रजोदर्शन के समय पेट में दर्द होना, दमा, खाँसी, अम्लपित्त, पेट में वायुगोला, अतिशय दुबलापन, शक्ति-हीन होना आदि, दर्द के कारण गर्भ धारण न होना, अथवा गर्भ धारण होने में कोई अड़चन होना, इसके लिये कुमारी-आसव का बराबर कुछ दिनों तक सेवन करना चाहिए।

कुमार्यासिव यकृत को बल देनेवाला है। अतएव यकृत-वृद्धि होने पर जब पित्त का स्राव अच्छी तरह होने में बाधा होती है, तब इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है। इसी तरह यकृद्दाल्युदर रोग में रोग की प्रारम्भिक अवस्था में कुमार्यासिव के उपयोग करने से पेट में जल संचय नहीं हो पाता है। क्योंकि इसमें लौह का अंश वर्तमान है, जो रक्ताणुओं की वृद्धि कर जलीय भाग को सोखता रहता है, अतएव पेट में जल संचय नहीं होने देता। पुराने प्लीहा रोग में कुमार्य्यासिव के प्रयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है। इस रोग में भी रक्तकणों की वृद्धि के लिये लौह प्रधान कोई दवा ताप्यादि लौह आदि का सेवन करना अच्छा रहता है।

खदिरारिष्ट

क्वाथ—खैरसार और देवदारु प्रत्येक २।।-२।। सेर, बावची ४८ तोला, दारुहल्दी १ सेर, हर्रे, बहेड़ा, आँवला तीनों मिलाकर ८० तोला, इन सब को जौ कुट कर १०२ सेर ३२ तोले जल में पका १२।।। सेर ४ तोला जल बाकी रहे तब छान लें।

प्रक्षेप—पीछे उसमें शहद १० सेर, चीनी ५ सेर तथा धाय के फूल १ सेर, कंकोल, नागकेशर, जायफल, लौंग, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात प्रत्येक ४-४ तोला तथा पीपल १६ तोला, इनका महीन चूर्ण बना, डाल दें।

सन्धान—इन सबको चीनी मिट्टी के बर्तन में या सागौन लकड़ी के पीपे में, भर कर १ मास रहने दें, १ मास बाद कपड़े से छानकर रख लें। —शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद सुबह-शाम देना।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से—लाल, काले और कोढ़ के चकत्ते, कपालकुष्ठ, औदुम्बरादि महाकुष्ठ, खुजली, मण्डल कुष्ठ, दाद आदि क्षुद्र कोढ़, रक्तविकारजन्य ग्रन्थी, रक्तविकार, वातरक्त, विसर्प, व्रण, सूजन, नारूरोग, गण्डमाला, अर्बुद, श्वेतकुष्ठ, यकृत्, गुल्म, कास श्वास, बदहजमी, कफ, वायु, आमविकार, हृद्रोग, पाण्डुरोग और उदर रोग नष्ट होते हैं।

अनेक प्रकार के दूषित आहार-विहार के कारण रक्त दूषित हो, उसमें रोग उत्पन्न करने वाले कृमि उत्पन्न हो जाते हैं, फिर यही कृमि-कण्डू (खुजली) कुष्ठ, विसर्पादि रोगों को उत्पन्न करते हैं। रक्त में विकार होने से चमड़ी, मांस, हड्डियाँ, शुक्रधातु आदि बिगड़ जाते तथा पाचक शक्ति भी कमजोर हो जाती है; ये रोग जल्दी अच्छे भी नहीं हो पाते हैं। ऐसे कठिन रोगों को अच्छा करने के लिये खदिरारिष्ट गंधक रसायन के साथ उपयोग किया जाता है। यह अत्यन्त पाचक, रक्त-शोधक और विरेचक है। यह रक्त में उत्पन्न दूषित कृमि को नष्ट करता आँतों को सबल बनाता तथा साफ करता है, रक्त को शुद्ध करता और त्वचा के रोगों को भी नष्ट करता है। यह अनेक कुष्ठों में तथा कण्डु, दाद आदि क्षुद्र कुष्ठों में होने वाले कृमि को शीघ्र नष्ट कर रोग मुक्त कर देता है। अतएव इसकी गणना कुष्ठघ्न दवाओं में की जाती है।

खदिरारिष्ट का प्रभाव लसीका पर विशेष पड़ने से महाकुष्ठ में भी यह बहुत शीघ्र लाभ करता है, क्योंकि महाकुष्ठ में—लसीका में सर्व प्रथम कीटाणु उत्पन्न होते हैं और वहीं से सम्पूर्ण शरीर में फैल कर त्वचा माँस आदि को दूषित करते हैं। महाकुष्ठ के कीटाणु और राजयक्ष्मा के कीटाणुओं में बहुत समता पायी जाती है। खदिरारिष्ट के सेवन से ये कीटाणु निर्बल और शिथिल हो जाते हैं। हृदय की घबराहट या हृदय की अधिक धड़कन में खदिरारिष्ट बहुत लाभ करता है।

चन्दनासव

सफेद चन्दन, सुगंधवाला, नागरमोथा, गम्भारी फल, नीलोफर, प्रियंगु, पद्माख, पाठानीलोध, मजीठ, लालचन्दन, पाठा, चिरायता,

बड़ की छाल, पिप्पली, कचनार की छाल, आम की छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, मुलैठी, रास्ना, परवल का पत्ता, मोचरस प्रत्येक ४-४ तोले और धाय के फूल ६४ तोला और मुनक्का १ सेर, इन सब का चूर्ण कर लें।

इन सब को २५।। सेर ८ तोला पानी में डाल कर ५ सेर चीनी और २।। सेर गुड़ मिला कर घोल दें, बाद में उपरोक्त चूर्ण डालकर पात्र का मुख बन्द कर दें। १ मास बाद छानकर रख लें।

——भै० र०

मात्रा और अनुपान——१। से २।। तोला तक बराबर जल मिला कर भोजन के बाद सुबह-शाम देना।

गुण और उपयोग——इसके सेवन से पेशाब में धातु जाना, स्वप्न-दोष, प्रमेह, कमजोरी, पेशाब की जलन, श्वेतप्रदर, प्रमेह और उपदंश के विकार, अग्निमाँद्य और हृद्रोग अच्छे हो जाते हैं।

यह आसव शीतवीर्य होने की वजह से उष्णता को नष्ट करता है और धातुस्थान की गर्मी को दूर कर बल तथा वीर्य की वृद्धि करता है। पेशाब पीला या लाल होता हो, तो उसे भी दूर कर साफ पेशाव लाता है।

शुक्र प्रमेह (सूजाक) में चन्दनासब के साथ चन्दन के तैल का सेवन करने से काफी लाभ होता है। अथवा——चन्दनासव २।। तोला देवदार्वारिष्ट १। तोला, सारिवाद्यासव २।। तोला तथा चन्दन तैल २० बूंद मिलाकर ३ मात्रा बनाकर देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। उपदंश की कसर को दूर करने के लिये यह मिश्रण बहुत गुणदायक है।

यह शीत वीर्य होने से सूजाक, उपदंश एवं मूत्रविकारों में बहुत गुणदायक है। यह हृदय को बल देने वाला, पौष्टिक तथा बल वर्द्धक एवं अग्नि दीपक है।

सूजाक की प्रथमावस्था में जलन होती है, जिससे पेशाब करने के समय चिनक (दाह-दर्द) होता और पेशाब खुलकर नहीं होता है। कुछ रोज तक यही क्रम चालू रहने से मूत्रनली में घाव हो कर

पीव निकलने लगता है और यह स्राव बराबर जारी रहता है। रोग पुराना होने पर पीव में दुर्गन्ध आने लगती है, शरीर कान्तिहीन हो जाता, रक्तविकार होने से त्वचा रूक्ष हो जाती है तथा चकत्ते आदि भी निकल आते हैं। ऐसी अवस्था में चन्दनासव के उपयोग से दाह शान्त हो, पेशाब खुलकर आने लगता है। धीरे-धीरे स्राव भी रुक जाता है।

जम्बीरद्राव

चीनी मिट्टी के चिकने पात्र (बरनी) में जम्बीरी नीबू का रस ५ सेर डाल दें। इसमें हींग ८ तोला, सेंधानमक, बायबिडङ्ग, सोंठ, मिर्च, पीपल और अजवायन प्रत्येक ४-४ तोला सोंचर नमक और सरसों प्रत्येक १६-१६ तोला लेकर चूर्ण बनाकर डाल दें। पात्र का मुख बन्द कर २१ दिन तक रहने दें। बाद में छान कर काम में लावें।

—यो० चि०

मात्रा—१। से २।। तोला तक दोनों शाम दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से यकृत्, गुल्म, प्लीहा, विद्रधि, अष्ठीला, वायुगोला, दस्त, पेट का दर्द, हृद्रोग, नाभिशूल, कब्ज, आफरा, उदररोग और वात तथा कफ सम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं।

यह पाचक (अन्न को पचाने वाला) दीपक-जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाला, रुचिबर्द्धक, कृमिनाशक औरअरुचि को नष्ट करनेवाला है।

शरीर के अन्दर से दूषित विषों को निकालने के लिये जितने द्वार हैं, उन सब के द्वारा यह आसव एकत्रित दूषित दोषों को निकाल देता है। पेशाब और पसीना के द्वारा यह शरीर के अनेक तरह के मल को बाहर निकाल देता है। यकृत्, गुल्म और उदर रोग के लिये जम्बीर द्राव के समान गुणदायक अन्य कोई भी दवा नहीं हैं।

जब खाली आमाशय में यह आसव जाता है, तब सबसे पहले जिन कृमियों से आमाशय में वादी पैदा होती है, उन कृमियों को नष्ट करना शुरू कर देता है। इन कृमियों से आमाशय में अनेक प्रकार के हानिकारक एसिड उत्पन्न होते रहते हैं। यह आसव इन कृमियों को नष्ट करके एसिड पैदा होना बन्द कर देता है।

पेट के अन्दर कृमियों को नष्ट करके यह आसव रस-रक्तादि में मिलकर रक्त में रोग प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाता है। इसके बाद यह जलरूप में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार यह पाचनक्रिया को शुद्ध करके रक्त के साथ मिलने के पश्चात् पानी और कार्बोलिक एसिड के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यह कार्बोलिक एसिड रक्त में रहनेवाले अम्ल प्रतियोगित लवणों के साथ मिलता है। फिर उसमें से कार्बोलिक एसिड और दूसरे तत्त्वों का मिश्रण बनता है। ये सब कार्य नीबू रस की प्रधानता से ही होते हैं।

मेदोवृद्धि के लिये—इस आसव को बराबर जल मिलाकर २ तोले की मात्रा में प्रातः - सायं लेने से अद्भुत गुण देखने में आया है।

इसके अन्दर कृमिनाशक गुण भी है। आँतों के अन्दर अनेक प्रकार के जो कृमि पैदा हो जाते हैं और जिन के द्वारा टायफाइड, अतिसार, हैजा इत्यादि रोग उत्पन्न होने का डर रहता है, इन रोगों की जड़ (कीटाणुओं) को यह आसव बहुत शीघ्र दूर कर देता है। क्योंकि इन में नीबू रस के साथ हींग का भी सम्मिश्रण है। अतएव कृमियों को नष्ट करने में यह बहुत उपयोगी है।

शरीर के सन्धियों (जोड़ों) में एक प्रकार के जन्तु उत्पन्न हो कर सन्धिवात, आमवात आदि रोगों को उत्पन्न करते हैं। इन जन्तुओं को नष्ट करने के लिये यह आसव बहुत उपयोगी है।

जीरकाद्यरिष्ट

१० सेर जीरे को जौकुट चूर्णकर ५१ सेर १६ तोला पानी में पकावें। जब १२ सेर तीन पाव ४ तोला पानी शेष रह जाय, तब उसमें गुड़ १५ सेर, धाय के फूल का चूर्ण ६४ तोला, सोंठ का चूर्ण ८ तोला, जायफल, मोथा, दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, इलायची, अजवायन, कंकोल और लौंग का चूर्ण ४-४ तोला लेकर मिट्टी के चिकने बर्तन में अथवा चीनी की बरनी में उपरोक्त सब दवा डाल कर मुख बन्द करके १ मास तक छोड़ दें, बाद में छान कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला तक खाना खाने के बाद सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग—यह शीतल, रुचिकारक, चरपरा, मधुर, अग्नि को प्रदीप्त करनेवाला, विष, दोष शामक तथा पेट के अफारे को दूर करनेवाला है। यह थोड़ा उष्ण (गर्म) भी है और गर्भाशय को शुद्ध करता है। इसके अतिरिक्त सूतिका रोग, संग्रहणी, अतिसार और मन्दाग्नि के विकारों को यह दूर करता है। भूख बढ़ाता और पाचन शक्ति को प्रबल करता है।

तक्रारिष्ट

अजवायन, आमला, हर्रे, काली मिर्च प्रत्येक १२-१२ तोला, पाँचों नमक ४ तोला, इनका चूर्ण बना, एक पात्र में डाल कर उसमें तक्र ६ सेर ६ छटाँक २ तोला डाल दें और पात्र का मुख बन्द कर १ माह बाद छान कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१। तोला से २।। तोला तक प्रातः-सायं जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग—यह दीपन-पाचन है तथा शोथ, गुल्म, अर्श, कृमि, प्रमेह, ग्रहणी, अतिसार और उदर रोगों को नष्ट करता है।

इसका उपयोग ग्रहणी और अतिसार में—जब कि ये रोग पुराने हो गये हों, किसी दवा से लाभ नहीं होता हो, आँतें कमजोर हो—अपना कार्य करने में असमर्थ हों, ग्रहणी निर्बल हो गयी हो, अन्न की पाचन-क्रिया ठीक से न हो, पतले दस्त या अनपच दस्त होते हों, भूख न लगती हो, यदि कुछ खा भी लें तो ठीक से हजम न हो, पेट में दर्द, कमजोरी, रस-रक्तादि धातुओं की कमी, कभी-कभी शोथ, हाथ, पाँव सूज जाएँ आदि विकार होने पर इस अरिष्ट के सेवन से बहुत लाभ होता है।

त्रिफलारिष्ट

त्रिफला, चित्रक, पीपल, अजवायन, लौह चूर्ण और बायबिडंग का चूर्ण १६-१६ तोले, शहद ३२ तोले और पुराना गुड़ ५ सेर तथा

जल १६ सेर सबको घृत लगे चिकने मिट्टी के वर्तन में भर कर मुख बन्द करके जौ के ढेर में रख दें। फिर १ माह बाद निकाल कर छान लें। —ग० नि०

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से हृद्रोग, पाण्डु, शोथ, प्लीहा-वृद्धि, चक्कर आना, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, वातोदर, पित्तोदर, कफोदर, बद्धोदर आदि श्वास, कास, ग्रहणी रोग, कुष्ठ, कण्डू, शाखागत वात, बद्धकोष्ठ, हिचकी, किलास और हलीमक आदि रोग नष्ट होकर बल, वर्ण, आयु तथा ओज की वृद्धि होती है।

दशमूलारिष्ट

दशमूल (शालिपर्णी, पृष्ठपर्णी, बड़ी और छोटी कटेरी, गोखुरू, बेल, गम्भारी, सोनापाठा, पाटला और गनियारि) प्रत्येक २०-२० तोले, चित्रकमूल और पुष्करमूल १।-१। सेर, गिलोय और लोघ्र १-१ सेर, आँवला ६४ तोले, जवासा ४८ तोला, खैर की छाल, विजयसार और हर्रे ३२-३२ तोला, कूठ, मजीठ और देवदारु, बायबिडंग, मुलैठी, भारंगी, कैथ का गूदा, बहेड़ा, पुनर्नवा, चव्य, जटामांसी, फूलप्रियंगु, सारिवा, कालाजीरा, निशोथ, रेणुका, रास्ना, पीपल, सुपारी, कचूर, हल्दी, सोया, पद्माक, नागकेसर, नागरमोथा, इन्द्रजौ, काकड़ासिंगी, जीवक, ऋषभक (अभाव में विदारीकन्द)—मेदा, महामेदा (अभाव में शतावरी) काकोली, क्षीर काकोली (अभाव में असगन्ध) और ऋद्धि-वृद्धि (अभाव में बाराही कन्द) इनमें से प्रत्येक चीज ८-८ तोला लेकर सबको जौकुट कर अठगुने जल में पकावें। चौथाई जल शेष रहने पर छान लें। बाद में ६४ पल (२५६ तोला) मुनक्का को चौगुने जल में पका कर तीन-चौथाई भाग पानी शेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ को तथा उपरोक्त क्वाथ को एकत्र कर उसमें शहद १२८ तोला और गुड़ २० सेर, धाय के फूल १२० तोला, कंकोल, सुगन्धबाला, सफेदचन्दन, जायफल, लौंग, दालचीनी,

इलायची, तेजपात, नागकेशर और पीपल—प्रत्येक ८-८ तोला का चूर्ण और कस्तूरी ३ माशा इन सब को क्वाथ में डालकर मिट्टी या सागौन के बने वर्तन (टंकी) में यथाविधि सन्धान करें। एक महीना बाद छानकर बोतलों में भर कर रख दें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ तोला बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद सुबह-शाम देना चाहिए।

गुण और उपयोग—इसे यथोचित मात्रा में सेवन करने से धातु क्षय, खाँसी, श्वास, बवासीर, उदररोग, प्रमेह, अरुचि, पाण्डु, सब प्रकार की वात व्याधियाँ, शूल, श्वास, वमन, प्रदर, कुष्ठ, भगन्दर, मूत्रकृच्छ्र, अम्लपित्त, प्रसूतरोग, गर्भाशय की अशुद्धि, अग्निमांद्य, कामला, श्वेतप्रदर आदि रोग नष्ट होते हैं।

इसका उपयोग वात और कफजन्य रोगों में विशेष होता है। दशमूलारिष्ट में दशमूलों का सम्मिश्रण अधिक प्रमाण में है। इसमें अनेक वनस्पति ऐसे मिले हुये हैं, जिनसे जीवनीय शक्ति की भी वृद्धि होती है।

कस्तूरी आदि बहुमूल्य सुगंधित, रुचिकर और पौष्टिक अनेक द्रव्यों के संयोग से यह स्वादिष्ट-जायकेदार और विशेष गुणदायक है। शक्ति को कम करनेवाली संग्रहणी, धातु विकार और प्रसूतरोग में अनेक प्रकार के वात जन्य दर्द एवं ज्वरादिक उपद्रवों को यह दूर करता है। धातु क्षीणता मिटकर शक्ति बढ़ती है, शरीर कान्तिमान बन जाता है, वीर्य की वृद्धि होती है।

क्षय के विकार में यह और "काडलिवर आयल" समभाग या कुछ कम-ज्यादा मिलाकर देने से अच्छा लाभ होता है। इसमें कस्तूरी आदि सुगंधित और अनेक मिठी दवाइयों के सम्मिश्रण होने से बच्चे भी इसे अच्छी तरह पी जाते हैं। और स्त्रियाँ तो बड़ी ही खुशी से इसे पीती हैं। इससे बहुत शीघ्र स्त्रियों का बल बढ़ता तथा वे स्वस्थ हो जाती हैं।

दशमूलारिष्ट प्रसूता स्त्रियों के लिये अमृत है, यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगा। प्रसूता स्त्रियों को प्रसूतगृह में या उससे

निकलने के बाद जो अग्निमांद्य, खाँसी, ज्वर आदि उपद्रव होते हैं, वे सब इसके सेवन से नष्ट हो जाते हैं। रक्तस्राव के कारण आयी हुई कमजोरी और निर्बलता इससे दूर हो जाती हैं। इसके सेवन से बच्चे को भी दूध ज्यादा मिलता है, यदि बच्चा पैदा होने के बाद से ही कुछ रोज तक प्रसूता को इसका सेवन कराया जाय, तो प्रसूता को किसी तरह की तकलीफ ही नहीं हो सकती है।

दशमूलारिष्ट पौष्टिक भी है, अतएव जिन स्त्रियों का गर्भाशय गर्भ धारण करने में असमर्थ हो अथवा जिन्हें गर्भस्राव या गर्भपात की शिकायत हो, उन्हें यह अरिष्ट बहुत गुण करता है। क्योंकि इसमें जीवनी शक्ति बढ़ाने एवं शरीर को पुष्ट करने वाली अनेक दवाइयों का सम्मिश्रण होने से यह गर्भाशय की कमजोरी को दूर कर सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति प्रदान करता है।

प्रसूता स्त्री को यदि दूध कम मात्रा में उतरता हो, तो १ तोला शतावरी को यवकुट कर २० तोला पानी में उबालें। जब ५ तोला शेष रहे, तब उसमें १ तोला दशमूलारिष्ट मिलाकर सुबह और शाम को पिला देने से दूध बढ़ जाता है। परन्तु प्रसूता को पथ्य से ही रहना चाहिये।

वातजन्य खाँसी में—खाँसी का एक प्रकार का दौरा होता है। यह दौरा जब शुरू होता है, तो रोगी खाँसते-खाँसते बेचैन हो जाता, पेट की नसें दुखने लगतीं, मुंह की नसें फूल जातीं और आँखें सुर्ख हो जाती हैं। यदि रोगी कमजोर रहा, तो बेहोश भी हो जाता है। दौरा लगातार १०-१५ मिनट तक रहता है। कुछ कफ का खण्ड निकल जाने पर कुछ देर के लिये खाँसी शान्त हो जाती है। ऐसी हालत में दशमूलारिष्ट थोड़ी-थोड़ी मात्रा में जल मिलाकर दिन भर में ३-४ बार देते रहने से बहुत लाभ होता है। क्योंकि यह प्रकुपित वायु को शान्त कर कफ को ढीला करके बाहर निकालता है और श्वास नली को भी साफ करता है जिससे खाँसी का वेग रुक जाता और रोगी क्रमशः अच्छा हो जाता है।

दन्ती-अरिष्ट

दन्ती की जड़, चित्रक की जड़, दशमूल (बेल की छाल, अरणी, श्योनाक की छाल, गम्भारी की छाल, पाढल की छाल, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, गोखरू प्रत्येक) ४-४ तोला और त्रिफला १२ तोला लेकर सबको यवकुट चूर्ण बना, २५।। सेर ८ तोला पानी में पकावें, चौथाई पानी शेष रहने पर उतार लें। फिर उसमें ५ सेर गुड़ मिला, बर्तन में भर कर मुँह बन्द करके रख दें। १५ दिन बाद छान कर रख लें। —चरक

मात्रा और अनुपान—१ से २ तोला बराबर जल मिलाकर सुबह-शाम कुछ खाना खाकर लें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से बवासीर, ग्रहणी, पाण्डु, अरुचि आदि रोग नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त यह मल और वायु का अनुलोमन करता तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है।

इसका उपयोग विशेषतया अर्श रोग में किया जाता है। बवासीर में भी यह बादी में जितना लाभ करता है, उतना खूनी में नहीं; क्योंकि इसमें रेचक और बात को अनुलोमन करनेवाली दवाओं का मिश्रण ज्यादा है। बादी अर्श में वायु अच्छी तरह नहीं खुलता, पेट में वायु भरा रहता है, जिसकी वजह से मल शुष्क हो जाता, अतः पाखाना कड़ा और रूक्ष होता है—वह भी बहुत कीछने पर। मस्से में वायु भर जाने से, मस्से फूले हुए दीखने लगते और उसमें सूई चुभोने जैसी पीड़ा होती रहती है। दर्द के मारे रोगी बेचैन हो जाता, भूख नहीं लगती, बद्धकोष्ठता, रक्त की कमी, निर्बलता आदि उपद्रव होने लगते हैं। ऐसी हालत में इसके उपयोग से अर्श में बहुत फायदा होता है। सबसे पहला गुण तो यह होता है कि दस्त खुलकर आने लगता और साथ ही वायु का संचार भी होने लगता है।

द्राक्षारिष्ट

मुनक्का २।। सेर को २५।। सेर ८ तोला जल में क्वाथ करें, जब चौथाई भाग जल शेष रहे, तब उतार कर शीतल होने पर मुनक्का

को उसी क्वाथ में खूब मर्दन कर फिर क्वाथ को छान कर एक घड़े में भर दें। फिर इसमें गुड़ १० सेर और दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेसर, फूल प्रियंगु, मरीच, पीपरि, बायबिडंग प्रत्येक ४-४ तोला लेकर यवकुट चूर्ण बनाकर डाल कर घड़े का मुख बन्द कर दें। एक मास बाद छानकर काम में लावें। —भै०र०

नोट—मूल पुस्तक में धाय के फूल डालने का उल्लेख नहीं है, परन्तु आधा सेर धाय के फूल डाल देने से सन्धान अच्छा होता है।

मात्रा और अनुपान—१। से २॥ तोला बराबर जल मिलाकर दिन में आवश्यकतानुसार दें।

गुण और उपयोग—यह भूख बढ़ाता, दस्त साफ लाता, कब्जियत को दूर करता, ताकत पैदा करता, नींद लाता, थकावट को दूर करता, दिल और दिमाग में ताजगी पैदा करता तथा शरीर के प्रत्येक अङ्गों को ताकत देता है। कफ, खाँसी, सर्दी, जुकाम, हरारत, कमजोरी, क्षय, बेहोशी आदि रोगों में शर्तिया लाभ करता है। जिनके फेफड़े कमजोर हों, कफ, खाँसी हमेशा ही होती रहती हो, उन लोगों के लिए यह बहुत गुण करनेवाला है। इसके अतिरिक्त कुक्कुरखाँसी, उरःक्षत, अर्श, ग्रहणी, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, नकसीर, अरुचि आदि रोगों में भी इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है।

राजयक्ष्मा की खाँसी में—खाँसी का वेग विशेष बढ़ जाय, रोगी कमजोर और शिथिल हो गया हो, फेफड़े दूषित हो गये हों, ज्वर की गर्मी १०० से १०४ तक पहुँच जाती हो, कफ की वृद्धि, अग्निमांद्य आदि उपद्रव होने पर द्राक्षारिष्ट के सेवन से बहुत शीघ्र लाभ होता है क्योंकि इससे बढ़ा हुआ कफ कम होकर खाँसी कम हो जाती है। और रोगी को कुछ बल भी मिल जाता है, साथ ही भूख भी लगने लगती है और रोगी अपने को नीरोग होता हुआ अनुभव करने लगता है। इस अरिष्ट के साथ स्वर्ण-वसन्तमालती, च्यवनप्राशावलेह, सितोपलादि चूर्ण आदि दवाओं का भी उपयोग करने से विशेष लाभ होता है।

किसी भी कारण से शरीर में निर्बलता आ गयी हो अथवा शरीर भारी मालूम पड़ना, कोई भी काम करने की इच्छा न होना, मन में अनुत्साह, भूख नहीं लगना, अन्न पर अरुचि, दस्त कब्ज आदि उपद्रव होने पर इसका सेवन करने से बहुत लाभ होता है।

कभी-कभी स्त्रियों को रजोधर्म के समय अथवा बच्चा पैदा होने के बाद खून अधिक तादाद में निकलने लगता है, जिससे कान्ति नष्ट हो जाती, स्त्री दुर्बल हो जाती, उठने-बैठने में असमर्थ, स्वभाव चिड़चिड़ा, कोई भी बात अच्छी न लगना, अपनी जिन्दगी से हताश हो जाना, खाने की इच्छा न होना ; पेट में वायु भरा रहना, पेट भारी मालूम पड़ना, अन्न में अरुचि आदि उपद्रव हो जाते हैं, ऐसी दशा में प्रवाल चन्द्रपुटी और मधुकाद्यवलेह के साथ द्राक्षारिष्ट का सेवन करना बहुत लाभदायक है।

द्राक्षासव

मुनक्का ५ सेर, खाँड २० सेर, बेर की जड़ १० सेर, धाय के फूल ५ सेर तथा सुपारी, लौंग, जावित्री, जायफल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, सोंठ, पीपल, मिर्च, रूमीमस्तगी, अकरकरा, और कूठ प्रत्येक आधा आधा सेर लेकर, कूटने योग्य चीजों को कूटकर मिट्टी के चिकने पात्र में या सागौन लकड़ी के पीपे में भर दें। इन सब औषधियों से चौगुना पानी डालकर उसका मुंह बन्द कर दें। १४ दिन पश्चात् उसमें से आसव को निकाल कर अर्क खींचनेवाले यन्त्र द्वारा इसका अर्क खींच लें। —यो० चि०

यदि इसमें केशर, कस्तूरी आदि डालनी हो, तो जहाँ से अर्क शीशी में टपकता है, वहीं पर एक पोटली में बाँधकर लटका दें। इस अर्क को तीन दिन तक रखा रहने दें, पीछे इसमें चौथाई चीनी मिलाकर बोतलों में छानकर भर दें ; बाद में सेवन करें।

मात्रा—२ से ४ तोला तक प्रातः-सायं भोजन के बाद देना।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से ग्रहणी, बवासीर, क्षय, दमा, खाँसी, काली खाँसी और गले के रोग, मस्तक रोग, नेत्र रोग,

रक्तदोष, कुष्ठ, कृमि, पाण्डु, कामला, दुर्बलता, कमजोरी, आमज्वर आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। यह सौम्य, पौष्टिक तथा बल-वीर्य-बर्द्धक है।

धात्र्यरिष्ट

अच्छे पके हुए २००० आमलों को कूटकर उसका रस निकाल जितना रस हो उसका आठवाँ भाग शहद, पीपल चूर्ण ८ तोला तथा चीनी २।। सेर मिलाकर सबको अग्नि पर जोश देकर ठण्डा करके चिकने मटके में भरकर मुँह बन्द करके १५ दिन रखा रहने दें, पश्चात् निकाल कर छान लें। —चक्रदत्त

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला तक बराबर जल मिलाकर कुछ खिलाकर के सुबह शाम दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से पाण्डु, कामला, हृद्रोग, वातरक्त, विषमज्वर, खाँसी, हिचकी, अरुचि और श्वास रोग नष्ट होते हैं।

पाण्डु और कामला रोग में—जब शरीर में रक्तकणों की कमी होकर जल भाग की वृद्धि विशेष हो जाती है; तब शरीर पीताभ दीखने लगता है, भूख कम लगती, दस्त कब्ज हो जाता, शरीर कान्ति-हीन तथा चेहरा रूक्ष हो जाता है, कमजोरी, देह में थकावट आदि मालूम होने लगते हैं। ऐसी दशा में इसके सेवन से काफी लाभ होता है। क्योंकि इसमें आँवले का रस ही प्रधान है और आँवले में लौह का अंश होने से शरीर की पुष्टि तथा रक्तकणों को बढ़ाने में बहुत लाभदायक है। रक्तकणों की वृद्धि होने से जलभाग शुष्क होकर सूजन नष्ट हो जाती है और धीरे-धीरे पीलापन भी नष्ट होकर रोगी कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो जाता है।

नारिकेलासव

नारियल का पानी १२।।। सेर ४ तोला, ईख का रस ६ सेर ६ छटाँक २ तोला, सेमल का क्वाथ ६४ तोला, दशमूल क्वाथ ६४ तोला, और दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर का जौकुट

चूर्ण तथा धाय के फूल प्रत्येक ६४-६४ तोला, कस्तूरी ३ माशे और केशर ३ माशे, तगर, सफेद चन्दन और लौंग का चूर्ण ४-४ तोले सबको एकत्र मिला कर घृत से चिकने पात्र (मटकों) में भरकर मुख बन्द करके १ मास तक छोड़ दें। बाद में छानकर रख लें।

—ग० नि०

मात्रा और अनुपान—१ से २ तोला बराबर जल मिलाकर प्रातः-सायं दें।

नोट—केसर और कस्तूरी पहले न डालकर, आसव तैयार हो जाने के बाद रेक्टीफाइड स्प्रीट में घोटकर डालें।

गुण और उपयोग—यह आसव, पौष्टिक, बल-वीर्य बढ़ाने वाला और बाजीकर है। इसके सेवन से कामशक्ति की वृद्धि होती है।

धातुक्षीणता—छोटी आयु में अप्राकृतिक ढंग से शुक्र का नाश करने या अधिक स्वप्न दोष अथवा और भी किसी कारण से वीर्य पतला हो गया हो, वीर्यवाहिनी नाड़ियाँ शिथिल हो गई हों, जिससे वे वीर्य धारण करने में असमर्थ हो गई हों, अथवा इन कारणों से स्त्री प्रसंग का विचार होते ही वीर्य स्राव हो जाय या नामर्दी हो गई हो, तो ऐसी हालत में इस आसव का सेवन करने से अच्छा लाभ होता है। इससे वीर्य विकार दूर हो, वीर्य गाढ़ा बन जाता तथा शरीर पुष्ट और बलवान हो जाता है।

पत्रागासव

पतंगकाष्ठ, खैरसार, वासक, सेमल के फूल, खरैंटी, शुद्ध भिलावा, सारिवा दोनों, गुड़हल की कली, आम की गुठली, दारु हल्दी, चिरायता, पोस्त के डोंडे, जीरा, लौह, रसौत, बेलगिरी, भांगरा, दालचीनी, केसर, लौंग प्रत्येक ४-४ तोला लेकर चूर्ण बनावें। इन्हें २५।। सेर ८ तोला पानी में डालें। फिर इसमें मुनक्का १ सेर, धाय के फूल ६४ तोला, खांड ५ सेर, शहद २।। सेर और उपरोक्त चूर्ण अच्छी तरह घोलकर उसे चिकने मटके में भरकर मुख बन्द कर दें तथा एक मास पश्चात् छान कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१ से २ तोला तक बराबर जल मिलाकर खाना खाने के बाद में दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से रक्त-श्वेत, प्रदर दर्द के साथ रज निकलना, ज्वर, पाण्डु, सूजन, अरुचि, अग्निमांद्य, गर्भाशय के अवयवों की शिथिलता, कमजोरी, दुष्टार्तव आदि रोग नष्ट होते हैं।

इस आसव का प्रभाव स्त्रियों के कटि (कमर) प्रदेश के अवयवों पर विशेष होता है। यह स्त्रियों के कटि प्रदेश के अवयवों पर तो काम करता ही है, साथ ही उन अवयवों में किसी तरह के विकार न हों, इसे भी यह रोकता है। अतएव प्रत्येक स्त्री को लगातार एक-दो महीने अथवा साल भर में इसकी २-३ बोतल अवश्य पीना चाहिये। इससे स्त्रियों की तन्दुरुस्ती तथा सुन्दरता ठीक बनी रहती है। स्त्रियों की तन्दुरुस्ती या सुन्दरता कटि प्रदेश पर ही निर्भर है। कटि प्रदेश जितना नीरोग और स्वस्थ रहेगा, तन्दुरुस्ती भी उतनी ही अच्छी बनी रहेगी। इस बात का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये।

यह आसव गर्भाशय को भी बलवान बनाता है। गर्भ नहीं रहना अथवा गर्भ रह कर असमय में ही स्राव या पात हो जाना, मरा हुआ बच्चा पैदा होना, या सन्तान होते ही मर जाना, अथवा रोगी सन्तान होना, आदि-आदि उपद्रवों में भी इसका लगातार कुछ रोज तक बराबर सेवन करते रहने से अच्छा फायदा होता है। साथ में चन्द्रप्रभावटी का भी उपयोग करने से विशेष लाभ होता है।

पार्थाद्यरिष्ट

अर्जुन की छाल ५ सेर, मुनक्का २।। सेर, महुंवे के फूल १ सेर लेकर सबको १ मन ११ सेर १६ तोला पानी में पकावें। चौथाई पानी शेष रहने पर छान लें। फिर उसमें १ सेर धाय के फूल और ५ सेर गुड़ मिलाकर उसे मिट्टी के चिकने वर्तन (मटका) में भर कर मुख बन्द करके १ मास तक रहने दें, बाद में छान कर रख लें।

—भै० र०

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला प्रातः-सायं भोजन के बाद बराबर जल मिलाकर देवें।

गुण और उपयोग—इसके उपयोग से हृदय की कमजोरी, दिल की धड़कन, एवं फेफड़ों के विकार नष्ट होते हैं। यह हृदय को ताकत देता—हार्ट फेल नहीं होने देता तथा हृदय की निर्बलता को दूर कर बलवान बना देता है।

पिप्पल्यासव

पीपल, काली मिर्च, चव्य, हल्दी, चीता, नागरमोथा, बायबिडंग, सुपारी, लोध, जलजमनी, आँवला, एलुआ, खस, सफेद चन्दन, कूठ, लौंग, तगर, जटामांसी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, प्रियंगु; नागकेशर प्रत्येक २-२ तोला, इनका चूर्ण कर २५।। सेर ८ तोला जल में डाल दें। फिर इसमें धाय के फूल आधा सेर, मुनक्का ३ सेर, गुड़ १५ सेर लेकर कूटने योग्य चीजों को कूट कर उपरोक्त जल में मिला कर चिकने मटके में भर कर यथाविधि सन्धान कर आसव तैयार कर लें। —शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला तक, प्रातः-सायं भोजन के बाद बराबर जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से ग्रहणी, पाण्डु, अर्श, क्षय, गुल्म, उदर रोग, संग्रहणी आदि रोग नष्ट होते हैं। यह अग्निदीपक, पाचक और भूख बढ़ाने वाला है। आँतों की कमजोरी दूर कर बलवान बनाता है।

पुनर्नवारिष्ट

सफेद और लाल पुनर्नवा, बला, अतिबला, आकनादि पाठा, पाढ़, गिलोय, चित्रक की जड़, छोटी कटेली और वासाछाल प्रत्येक १२-१२ तोले लेकर सबको कूट कर १ मन ११ सेर १६ तोला पानी में पकावें। चौथाई पानी शेष रहने पर छान लें। फिर उसमें १० सेर गुड़ और ६४ तोला शहद मिला, मटके में डाल कर मुख बन्द करके १ मास तक छोड़ दें। बाद में छान कर रख लें। फिर

इसमें नागकेशर, दालचीनी, इलायची, काली मिर्च, सुगंधवाला और तेजपात का चूर्ण २-२ तोला लेकर मिला दें। १ मास के बाद छानकर उपयोग में लावें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला तक बराबर जल मिला कर दोनों शाम भोजन के बाद दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से पाण्डु, हृद्रोग, बढ़ा हुआ शोथ, प्लीहा, भ्रम, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, अर्श, उदर रोग, खाँसी, श्वास, संग्रहणी, कोढ़, खुजली, शाखागत वायु, मल बन्ध, हिचकी, किलास, कुष्ठ और हलीमक रोग नष्ट होते हैं।

इस अरिष्ट का प्रभाव वृक्क (मूत्र पिण्ड), यकृत्, प्लीहा और हृदय पर विशेष रूप से होता है। अतएव यकृत्, प्लीहा की विकृति के कारण अथवा मूत्र पिण्ड की विकृति के कारण उत्पन्न हुए शोथ अथवा हृदय की निर्बलता आदि को यह शीघ्र नष्ट करता है। यह हृदय को ताकत पहुँचाता और उसे अपने कार्य करने में समर्थ बनाता है।

शोथ (सूजन) की उग्रावस्था में—रस रक्तादिधातु कमजोर हो जाते हैं। पाचक पित्त की शिथिलता के कारण मन्दाग्नि और शरीर में जल भाग की वृद्धि हो, रक्तकणों का ह्रास हो जाता है। फिर शरीर कान्तिहीन, पीला तथा सफेदमायल दीखने लगता है। शोथ रोगी को पेशाब या दस्त साफ नहीं आता। अतएव इसकी चिकित्सा करते समय ऐसी दवा का उपयोग करना चाहिये जो मूत्र (पेशाब) साफ लावे तथा दस्त भी खुलकर हो। इससे शरीर में रुका हुआ दूषित विकार मल-मूत्र द्वारा निकल जाता है और सूजन भी घटने लगती है। इसके साथ इसमें यदि सारिवाद्यासव भी थोड़ा मिलाकर दिया जाय तो बहुत शीघ्र फायदा करता है। इससे रक्त की वृद्धि होती है तथा शुद्ध रक्त तैयार होता है।

पाण्डु रोग में—पाण्डु रोग जब पुराना हो जाता है और शरीर में इस रोग की जड़ अच्छी तरह जम जाती है, तब शरीर का रंग पाण्डु वर्ण का हो जाता, हाथ, मुँह, पाँव आदि सूज जाते हैं, ज्वर भी होने लगता तथा प्लीहा और यकृत भी बढ़ जाती है। ऐसी अवस्था

में पुनर्नवारिष्ट—नवायस लौह के साथ उपयोग करने से बहुत शीघ्र लाभ होते देखा गया है।

फलारिष्ट

बड़ी हर्रे और आँवला ६४-६४ तोला, इन्द्रायन के फल, कैथ का गूदा, पाठा, चित्रकमूल प्रत्येक ८-८ तोला लेकर सबको कूट कर २५।। सेर ८ तोला पानी में पकावें। जब ६ सेर ६ छटाँक २ तोला पानी शेष रह जाय, तो छान कर उसमें ५ सेर गुड़ मिला कर यथाविधि मिट्टी के चिकने पात्र में भर कर उसका मुख बन्द करके रख दें। १५ दिन पश्चात् छान कर रख लें। —चरक संहिता

मात्रा और अनुपान—१। तोला से २।। तोला तक बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद दें।

गुण और उपयोग—यह अरिष्ट ग्रहणी, अर्श, हृद्रोग, पाण्डु, प्लीहा, कामला, विषम ज्वर, वायु तथा मल-मूत्र का अवरोध, अग्निमान्द्य, खाँसी, गुल्म और उदावर्त का नाश करता है तथा जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

यह अरिष्ट—दीपन-पाचन, पुष्ट और बलबर्द्धक है। यह शरीर में रक्त के कणों को बढ़ाता और रक्त को शुद्ध करता तथा हृदय संबंधी विकार जैसे हृदय कमजोर हो जाना या ज्यादा धड़कना, घबराहट होना आदि विकारों को दूर करता है। यह पाचक पित्त को उत्तेजित करने वाला है। अतएव यह अग्नि प्रदीपक तथा भूख बढ़ाने वाला और उदावर्त नाशक है।

मलेरिया ज्वर अधिक दिन तक आने की वजह से शरीर में रक्त की कमी हो जाती और प्लीहा बढ़ जाती है। यही रोग जब पुराना हो जाता है, तब पाण्डु कामला आदि के रूप में प्रकट हो जाता है। ऐसी अवस्था में यह अरिष्ट, विषमज्वरान्तक लौह अथवा सुदर्शन चूर्ण के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ करता है।

बब्बूलारिष्ट

१० सेर बब्बूल की छाल को १ मन ११ सेर १६ तोला पानी में पकावें, जब चौथाई पानी शेष रह जाय, तो छान कर ठंडा करके उसमें १५ सेर गुड़, धाय के फूल ६४ तोला, पीपल का चूर्ण ८ तोला तथा जायफल, लौंग, शितलचीनी, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर और काली मिर्च प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तोले सबको चिकने मटके में भर कर उसका मुख बन्द करके १ माह तक छोड़ दें। १ माह बाद छान कर रख लें।

—शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला तक बराबर जल मिला कर भोजन के बाद सबेरे और शाम को दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से क्षय, सोमरोग, उरःक्षत, दमा, खाँसी, रक्तपित्त, मूत्रविकार, रक्तविकार, अतिसार, कुष्ठ, प्रमेह आदि रोग नाश होते हैं।

यह अरिष्ट कफ को दूर करता है और श्वासनली को साफ करता तथा खाँसी के साथ आने वाले खून को रोकता है। अग्नि को दीप्त कर हाजमा ठीक करता है।

क्षय रोग में जब खाँसी और ज्वरादि उपद्रवों की अधिकता हो, खाँसी के साथ खून मिश्रित कफ निकलता हो, शरीर कमजोर हो, दुर्बलता, अग्निमांद्य आदि उपद्रव विशेष हो तो ऐसी दशा में इसका उपयोग किया जाता है।

दमा या खाँसी की उग्रावस्था में—बब्बूलारिष्ट और द्राक्षारिष्ट दोनों सम भाग में एकत्र मिला कर देने से बहुत शीघ्र लाभ करता है। विशेष कर सूखी खाँसी में जिसमें खाँसते-खाँसते रोगी बेचैन हो जाता है। भूख नहीं लगती हो, कफ छाती में बैठा हुआ हो, तो ऐसी हालत में इस दवा के साथ-साथ चन्द्रपुटी प्रवाल और सितोपलादि चूर्ण, वासावलेह आदि का भी उपयोग करते रहने से शीघ्र फायदा होता है।

वासकासव

१० सेर वासे को कूट कर २५।। सेर ८ तोला पानी में पकावें, १२।।। सेर ४ तोला शेष रहने पर छान लें, फिर उसमें ५ सेर गुड़, धाय के फूल ३२ तोला, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, कंकोल, सोंठ, मिर्च, पीपल और सुगन्धवाला का चूर्ण प्रत्येक ४-४ तोला लेकर सबको एकत्र मिला, चिकने मटके में भर कर मुह बन्द कर दें। १ माह बाद उसे छान कर सुरक्षित रख लें। —यो० र०

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला खाना खाने के बाद दोनों शाम बराबर जल मिला कर दें।

गुण और उपयोग—यह सब प्रकार की खाँसी को दूर करता तथा शरीर को पुष्ट कर बलवान बनाता है। यह काम शक्ति को भी बढ़ाता तथा बन्ध्या स्त्री को सन्तानोत्पत्ति की शक्ति प्रदान करता है। खाँसी दूर करने के अतिरिक्त यह पौष्टिक, वीर्य्यबर्द्धक तथा हाजमा को ठीक करने वाला है।

इसका उपयोग शोथ रोग नष्ट करने के लिये भी किया जाता है। कफ प्रधान शोथ में—जल भाग की वृद्धि एवं रक्ताणुओं की भी कमी होने पर वहाँ सूजन हो जाती है। इस सूजन को अंगुली से दबाने पर गढ्ढा हो जाता है जो फिर धीरे-धीरे भरता है और यही इसकी पहचान भी है। ऐसी सूजन को मिटाने तथा कफ को शान्त करने के लिये इसका उपयोग करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

वासक में लौह का अंश होने से वह कफ दोष को नष्ट करता तथा रक्ताणुओं की शरीर में वृद्धि कर, जल भाग को सुखा कर शोथ (सूजन) कम कर देता है जिससे फिर धीरे-धीरे शरीर बलवान, पुष्ट और सुन्दर-स्वस्थ बन जाता है।

इसका प्रभाव गर्भाशय पर भी होता है। प्रदर, श्वेतप्रदर अथवा रजोविकार या और भी किसी कारण से गर्भाशय कमजोर हो गया हो अथवा गर्भाशय की खाल मोटी हो गयी हो, शरीर की चर्बी ज्यादे बढ़ जाने के कारण गर्भाशय का मुँह ढक गया हो, और इन

कारणों से यदि सन्तान न होती हो, तो इस आसव का सेवन लगातार कुछ दिनों तक करावें। इसके साथ ही चन्द्रप्रभा वटी आदि का भी प्रयोग कराते रहने से गर्भाशय का दोष दूर हो, स्त्री सुन्दर और स्वस्थ सन्तान पैदा करती है।

यदि स्त्री-पुरुष के रज-वीर्य की कमजोरी से सन्तानोत्पत्ति में बाधा हो, तो दोनों को इसका सेवन कराना चाहिये, साथ ही जब तक यह दवा चालू रखें, ब्रह्मचर्य से रहें।

मध्वरिष्ट

शहद ३।≡ १ तोला, पानी ३।≡ १ तोला, बायबिडंग ८ तोला, पीपल १६ तोला, बंशलोचन, नागकेशर, कालीमिर्च प्रत्येक ४-४ तोला, दालचीनी, इलायची, तेजपात, कचूर, सुपारी, अतीस, नागरमोथा, रेणुका, एलबालुक, तेजबल, पीपलामूल, चित्रकमूल प्रत्येक १-१ तोला लेकर कूटने योग्य चीजों को कूट लें। फिर शहद मे पीपल का चूर्ण मिला कर एक चिकने मटके मे भर दें, उसी में और भी दवाओं के चूर्ण को डालकर मुख बन्द कर १ माह तक रखा रहने दें। बाद में छान कर रख ले। —च० चि० स्थान

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला तक– खाना खाने के बाद बराबर शीतल जल मिला कर दोनों शाम दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से मन्दाग्नि और विषमाग्नि-विकार दूर हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह अरिष्ट हृद्रोग, पाण्डु, ग्रहणी, कुष्ठ, अर्श, ज्वर, शोथ, और अन्य कफज रोगों को भी नष्ट करता है।

जठराग्नि की विकृति में—भूख नहीं लगना, खायी हुई चीजें ठीक से हजम न होना, खट्टी डकारें आना, कभी सुवह, कभी शाम और कभी रात को भूख लगना, कभी दो-दो दिन तक भूख नहीं लगना, पेट भारी मालूम पड़ना, दर्द भी होना, जी मिचलाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी हालत में यह अरिष्ट भास्कर लवण या क्रव्याद रस अथवा हिंग्वष्टक चूर्ण आदि के साथ देने से बहुत फायदा

करता है। क्योंकि यह पाचक पित्त को प्रदीप्त कर जठराग्नि को बढ़ाता है तथा हाजमें को भी ठीक करता है। मन्दाग्नि से उत्पन्न होने वाले पाँडु, ग्रहणी आदि रोगों में भी इससे बहुत फायदा होता है।

मस्त्वासव

मस्तु (दही का पानी) १२।। सेर ४ तोला लेकर उसमें ५ सेर गुड़ तथा पीपल ६४ तोला और हर्रे, बहेड़ा, आँवला ६४-६४ तोला, बायबिडंग, कालीमिर्च, मुनक्का, गम्भारि के फल और इन्द्र जौ प्रत्येक १६-१६ तोला, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेली दोनों, गोखरू, पिपरामूल, चित्रकमूल और शुद्ध भिलावा प्रत्येक ८-८ तोला, इनका जौकूट चूर्ण कर उपरोक्त मस्तु में मिला, मिट्टी के चिकने बर्तन में भर कर, उसका मुंह बन्द कर, १ माह तक छोड़ दें। बाद में छान कर रख लें। —ग० नि०

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला तक सुबह-शाम बराबर जल मिला कर देना चाहिये।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से पाण्डुरोग, उदररोग, ग्रहणी-विकार, अर्श (बवासीर), भगन्दर, प्लीहा, शोष, खाँसी, आमवात आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। इसका उपयोग ग्रहणी और अर्श रोग में विशेष किया जाता है।

मृगमदासव

मृतसंजीवनीसुरा (अथवा रेक्टी फाइड स्प्रीट) २।। सेर, शहद १। सेर, पानी १। सेर, कस्तूरी १६ तोला तथा काली मिर्च, लौंग, जायफल, पीपल, दालचीनी प्रत्येक ८-८ तोला लेकर प्रथम कस्तूरी को सुरा में घोल लें, फिर सब चीजों को काँच के पात्र में भर कर उसका मुख बन्द करके रख दें। १ माह बाद निकाल कर छान लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१० से १५ बूंद १ तोला जल अथवा चीनी या बताशे में मिलाकर दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से हैजा, हिचकी और सन्निपात ज्वरादि में कोष्ठ और बल का विचार कर उचित मात्रा में प्रयोग करने से ये सब रोग दूर हो जाते हैं।

विसूचिका (हैजा) की अत्युग्रावस्था में—जब सम्पूर्ण शरीर शीतल हो गया हो, नाड़ी क्षीण, बेहोशी, वमन और दस्त अनायास ही हो रहे हों, प्यास ज्यादा हो, शरीर में ऐंठन हो, शरीर की कान्ति नष्ट हो गयी हो, चेहरा काला पड़ गया हो, ऐसी अवस्था में यह आसव अमृत के समान गुण करता है।

हिचकी—प्रकुपित वायु का ऊपर मुँह होना ही हिचकी कहलाती है। यह आठ प्रकार की होती हैं। अन्नजा (खाना खाने के बाद जो हिचकी होती है, उसको अन्नजा कहते हैं), यमला (एक ही बार में दो बार हिचकी होने को यमला कहते हैं), क्षुद्रा (यह बहुत धीरे-धीरे होती है), गम्भीरा (यह हिचकी नाभिस्थान से उठती है और इसमें सब नसें खिंचने लगती हैं), महती (यह हिचकी जब होती है तो जोर के साथ आवा होती है) और आदि भेद हैं। इन में वायु की ही प्रधानता रहती है। ऐसी दशा में यह आसव थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दिन भर में ३-४ बार देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

सन्निपात ज्वर में—तीनों दोषों का प्रकोप रहता है। इसमें—वायु प्रधान सन्निपात में—अक-बक बकना (प्रलाप), बेहोशी, शरीर में दर्द, हृदय की कमजोरी, नाड़ी क्षीण, हाथ-पाँव ठण्डे पड़ जाना, ज्वर गम्भीर रूप में रहना आदि अवस्था उत्पन्न होने पर हृदय को ताकत पहुँचाने के लिये अन्य दवाओं के साथ-साथ इसका भी प्रयोग स्वतन्त्र रूप से अथवा किसी दवा में मिलाकर किया जाता है। इससे रोगी ज्यादा जोर नहीं करता तथा निद्रा भी आ जाती है। अण्ट-सण्ट बकना भी बन्द हो जाता है। हृदय भी बलवान हो जाता है और नाड़ी की चाल भी ठीक पर आ जाती है।

यह पौष्टिक भी है। स्वस्थ आदमी अपने शरीर में ताकत बढ़ाने के लिये दूध के साथ इसका व्यवहार करते हैं। नियमित रूप से कुछ दिनों तक इसका व्यवहार करने से शरीर हृष्ट-पुष्ट हो जाता है।

मृत संजीवनी

१ साल से अधिक का पुराना गुड़ १२।।। सेर ४ तोला, कीकर की छाल १ सेर तथा अनार की बक्कल, बासा, मोचरस, वराहक्रान्ता (लज्जालु),अतीस, असगन्ध, देवदारु, बेलछाल, अरलू की छाल, पाढ़ल की छाल, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, दोनों कटेली, गोखरू, बेर की छाल, इन्द्रायणकी जड़, चित्रक, कौंच के बीज, पुनर्नवा प्रत्येक ४०-४० तोले लेकर गुड़ के अतिरिक्त सब दवा को कूट कर रख लें। फिर गुड़ से ८ गुने पानी में इन सब दवाओं को घोलकर एक मटके में रख करके बन्द कर दें। १६ दिन पश्चात् उसका मुंह खोल कर १२८ तोला उसमें सुपारी का यवकुट चूर्ण और धतूरे की जड़, लौंग, पद्माख, खस, सफेद चन्दन, सौंफ, अजवायन, काली मिर्च, जीरा दोनों, कचूर, जटामाँसी, दालचीनी, इलायची, जायफल, नागरमोथा, ग्रन्थिपर्णी (गठिवन), सोंठ, मेंथी, मेंढ़ासिंगी और लाल चन्दन का चूर्ण प्रत्येक ८-८ तोला मिला कर फिर उसका मुँह बन्द कर दें। १४ दिन पश्चात् भवके (अर्क निकालने वाला यन्त्र) से अर्क खींच लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—६ माशे से १ तोला तक बराबर जल मिला कर दें।

गुण और उपयोग—इसे यथोचित मात्रा अनुसार सेवन करने से देह सुदृढ़ होती तथा बल-वर्ण की वृद्धि होकर शरीर की कान्ति अच्छी हो जाती है। हैजा अथवा सन्निपात ज्वर में शरीर ठंढा हो जाने पर इस दवा का उपयोग किया जाता है।

यह पौष्टिक, अग्निवर्धक और प्रकुपित वायुशामक तथा स्फूर्ति पैदा करने वाला है। यह प्रसूता स्त्री की कमजोरी को दूर कर बलवृद्धि करता और स्वप्नदोष या विशेष वीर्यपात से होने वाली कमजोरी को दूर करता है।

प्रसूता स्त्री को—प्रसव के बाद नियमित आहार या उपचार के अभाव से वायु प्रकुपित हो, अनेक उपद्रव उत्पन्न कर देता है। जैसे—ज्वर होना, शरीर भर में विशेषकर गाँठों और कमर तथा हाथ-पैर

आदि में दर्द होना, भूख न लगना, उठते-बैठते चक्कर-सा आना, अन्न पर अरुचि, हाजमें की गड़बड़ी, पेट फूल जाना, कभी-कभी पतला दस्त हो जाना आदि-आदि उपद्रव होने पर यह आसव देने से बहुत शीघ्र लाभ करता है।

सन्निपात ज्वर अथवा हैजा में शरीर बहुत जल्द ठण्डा हो जाता है। इसका कारण यह है कि इन रोगों का प्रभाव सबसे पहले हृदय और रक्तवाहिनी शिराओं पर पड़ता है, जिससे हृदय की गति में अन्तर पड़ जाता अर्थात् गति मन्द हो जाती है, फिर नाड़ी भी मन्द-मन्द चलने लगती और खून का संचार ठीक-ठीक न होने से उसमें गर्मी की जगह शीतलता आ जाती है। ऐसी हालत में शरीर का शीतल हो जाना स्वाभाविक है। ऐसी अवस्था में अन्य दवाओं के साथ थोड़ा-थोड़ा इस आसव का भी उपयोग करना बहुत लाभदायक होता है। इससे रक्त में गर्मी आकर शरीर गर्म हो जाता तथा हृदय की गति भी ठीक पर आ जाती है और नाड़ी भी ठीक-ठीक चलने लगती है।

यह पौष्टिक और वाजीकर होने के कारण शरीर की पुष्टि तथा वाजीकरण के लिये भी लोग इसका प्रयोग करते हैं।

रोहितकारिष्ट

रोहेड़े की छाल ५ सेर को जौकूट करके ५१ सेर १६ तोला पानी में पकावें। जब १२॥। सेर ४ तोला पानी शेष रहे, तो छान लें। फिर इस काढ़े में १० सेर गुड़ और धाय के फूल ६४ तोला, तथा पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, दालचीनी, इलायची, तेजपात, हर्रे, बहेड़ा; आमला प्रत्येक ४-४ तोला लेकर चूर्ण बना, उपरोक्त काढ़े में मिला, मिट्टी के चिकने बर्तन (मटके) में रख कर मुख बन्द कर एक माह तक छोड़ दें। फिर एक माह बाद निकाल कर छान लें।

—शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—१। से २॥ तोला तक बराबर जल मिला कर खाना खाने के बाद में दोनों शाम दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से तिल्ली, यकृत्, वायुगोला, अग्निमान्द्य, हृद्रोग, पाण्डु, संग्रहणी, कुष्ठ, शोथ (सूजन) आदि रोग दूर हो जाते हैं।

यह रक्तशोधक और पाचक भी है। प्लीहा अथवा यकृत बढ़ जाने से शरीर कमजोर हो जाना, भूख नहीं लगना, अग्निमान्द्य हो जाना, पेट भारी रहना, अन्न में, अरुचि, खाने की इच्छा न होना आदिउपद्रव होने पर यह अरिष्ट बहुत अच्छा काम करता है। क्योंकि यह पाचक है और पित्त को जागृत कर हाजमा (पाचन-शक्ति)को ठीक करता है तथा बढ़ी हुई प्लीहा और यकृत् को भी घटाता है।

हृद्रोग और खूनी तथा बादी बवासीर में भी इसके उपयोग से लाभ होता है। अर्श (बवासीर)में दस्तकब्ज होना ही रोग सूचक है। यदि दस्त साफ-साफ और समय पर होता रहे, तो फिर अर्श में वेदना आदि किसी तरह की तकलीफ नहीं होती है। रोहितकारिष्ट में यह विशेष गुण है कि दस्त साफ लाता है और भूख को भी जगाता है। अतएव अर्श रोग में इसके सेवन से लाभ होता है।

लवङ्गासव

लौंग, पीपल, अगर, कालीमिर्च और एलवालुक का चूर्ण ८-८ तोला लेकर सबको १ मन ११ सेर १६ तोला पानी में पकावें। १२।।। सेर ४ तोला पानी शेष रहने पर छान लें। क्वाथ जब ठण्डा हो जाय, तब १० सेर गुड़ मिला कर, मटके में भर कर मुँह बन्द कर, एक माह तक रहने दें और बाद में छान कर रख लें। —ग० नि०

मात्रा और अनुपान—१ से २ तोला भोजन के बाद बराबर जल मिला कर दोनों शाम दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से अर्श, संग्रहणी, पाण्डु, हृद्रोग, प्लीहा, गुल्म, उदर रोग, कुष्ठ, सूजन, अरुचि, कामला आदि रोग नष्ट होते हैं।

लोध्रासव

लोध, कचूर, पोहकरमूल, इलायची, मूर्वा, बायबिडंग, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, अजवायन, चव्य, फूलप्रियंगु, सुपारी, इन्द्रायण की जड़, चिरायता, कुटकी, भारंगी, तगर, चित्रक, पीपलामूल, कूठ, अतीस, पाठा, इन्द्रजौ, नागकेशर, कुड़े की छाल, नखी, तेजपात, काली मिर्च (वाग्भट में दालचीनी लेने का आदेश है), और मोथा प्रत्येक १-१ तोला लेकर सबको अधकुटा (जौकुट) करके १२।।। सेर ४ तोला पानी में पकावें और ऽ३≡ छटाँक १ तोला पानी शेष रहने पर छान लें। फिर इसमें २ सेर शहद मिला कर सबको घृत से चिकने किये हुए मटके में रख मुंह बन्द कर दें। १ माह बाद छान कर रख लें। ——ग० नि०

मात्रा और अनुपान——१ से २ तोला, खाना खाने के बाद सुबह-शाम समान भाग जल मिला कर सेवन करें।

गुण और उपयोग——पेशाब की जलन, बार-बांर या अधिक तादाद में बून्द-बून्द पेशाब होना, मूत्राशय का दर्द, पेशाब की नली की सूजन, धातुस्राव होना—विशेष कर स्वप्नावस्था में, कफ, खाँसी, चक्कर आना, संग्रहणी, अरुचि, पाण्डुरोग आदि इसके सेवन से नष्ट होते हैं।

यह आसव पाचक, रक्त को शुद्ध करने वाला तथा कब्जियत (बद्धकोष्ठता) नाशक है। इसके सेवन से स्त्रियों के रजोविकार नष्ट होते हैं और गर्भाशय को बल मिलता है। अतएव स्त्रियों के लिये यह बहुत उपयोगी दवा है।

इस आसव का उपयोग प्रमेह, शुक्रप्रमेह तथा रक्तप्रदरादि रोगों में विशेषतया किया जाता है। क्योंकि इसका असर वृक्क (मूत्रपिण्ड), गर्भाशय और यकृत् पर विशेष होता है। रक्तप्रदर में अरविन्दासव और सारस्वतारिष्ट अथवा उशीरासव या अशोकारिष्ट के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ होते देखा गया है।

लौहासव

लोहे का बुरादा, सोंठ, मिर्च, पीपल, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, अजवायन, बायबिडंग, नागरमोथा, चित्रकमूल प्रत्येक १६-१६ तोले,

धाय के फूल १ सेर, शहद ३ सेर ३ छटाँक १ तोला; गुड़ ५ सेर और शुद्ध जल २५।। सेर ८ तोला लेकर कूटने योग्य चीजों को कूटकर सबको घृत से चिकने किये हुए पात्र में भर कर उसका मुख बन्द कर के १ माह तक रहने दें। पश्चात् छानकर रख लें।

—शा० ध० सं०

नोट—लौहासव में 'लौहचूर्ण के स्थान में लौहभस्म डाली जाय तो उत्तम है। लौहभस्म को प्रथम हर्रे के क्वाथ में भिगो दें। फिर तीन दिन पश्चात् उसमें आँवला और बहेड़े का चूर्ण और मिला दें। इसके चार दिन बाद इस मिश्रण को आसव के घड़े में डालना चाहिये। इस क्रिया से लौह आसव में विलीन हो जाता है।

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला तक भोजन के बाद दोनों शाम समान भाग जल मिला कर सेवन करें।

गुण और उपयोग—पाण्डु, गुल्म, सूजन, अरुचि, संग्रहणी, जीर्णज्वर, अग्निमान्द्य, दमा, कास, क्षय, उदर, अर्श, कुष्ठ, कण्डू, तिल्ली, हृद्रोग और यकृत-प्लीहा की विकृति को यह नष्ट करता है।

जीर्णज्वर अथवा अधिक दिन तक मलेरिया ज्वर (विषमज्वर) आने से यकृत या प्लीहा की वृद्धि होने पर इस आसव का प्रयोग किया जाता है। इसमें ज्वर की गर्मी अथवा ज्वर बराबर बना रहना या दूसरे-तीसरे दिन ज्वर हो जाना, कुछ देर तक रहकर ज्वर का वेग कम हो जाना, बुखार जाड़ा लगकर चढ़ना, अग्निमांद्य, भूख की कमी, रसरक्तादि धातुओं के क्षीण हो जाने के कारण शरीर पाण्डु (पीले) वर्ण का हो जाना, मुँह और हाथ-पैरों में कुछ-कुछ सफेदी और सूजन दिखाई देना तथा दस्त में कब्जी आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी हालत में यह आसव बहुत शीघ्र अपना प्रभाव दिखाता है।

पाण्डुरोग में—जब रक्ताणुओं (रक्तकणों) की कमी के कारण शरीर पीला हो जाता है, तब मन्दाग्नि, बद्धकोष्ठता (कब्जियत), कमजोरी, किसी काम में मन न लगना, अनुत्साहित बना रहना आदि उपद्रव हो जाते हैं। ऐसी दशा में लौहासव के उपयोग से मन्दाग्नि

आदि दोष दूर हो जाते हैं। धीरे-धीरे जल-भाग कम होने लगता और सूजन भी कम हो जाती है।

श्रीखण्डासव

सफेद चन्दन, काली मिर्च, जटामाँसी, हल्दी, दारुहल्दी, चित्रक-मूल, मोथा, खश, तगर, मुनक्का, लालचन्दन, नागकेशर, पाठा, आमला, पीपल, चव्य, लौंग, एलबालुक, लोध प्रत्येक दवा २-२ तोला लेकर सबको यवकुट चूर्ण बना लें। फिर इन सब को २५।। सेर ८ तोला पानी में डाल दें। इसमें मुनक्का ६० पल, गुड़ १५ सेर और धाय के फूल ४८ तोला मिला कर, सबको एक मटके में भर कर, उसका मुँह बन्द कर दें। १ मास बाद निकाल कर छान लें।

—भै० र०

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला तक प्रातः-सायं बराबर जल मिला कर दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से मद्यजनित रोग यथा—पानात्यय, पानविभ्रम, पानाजीर्ण आदि रोग दूर होते हैं। पैत्तिक (पित्तजन्य) रोगों में इसका विशेष उपयोग किया जाता है।

सारस्वतारिष्ट

ब्राह्मी, मण्डूकपर्णी और शंखाहुली प्रत्येक ६४-६४ तोले, पेठा, शतावर, विदारीकन्द, बड़ी हर्रे, खस, अदरख और सौंफ प्रत्येक २०-२० तोले, सब को जौकूटकर २५।। सेर ८ तोले जल में पकावें। जब चौथाई (६ सेर ६ छटाँक २ तोला) जल बाँकी रहे तब कपड़े से छान कर उसमें शहद ४० तोला और देशी चीनी (खाण्ड) २।। सेर, धाय के फूल २० तोला, तगर, निशोथ, छोटी पीपल, लौंग, बच, कूठ, असगंध, बहेड़ा, गिलोय (गुर्च), छोटी इलायची, बायबिडंग, दालचीनी और केशर प्रत्येक १-१ तोला, इनका कपड़छान चूर्ण कर चीनी मिट्टी की पेचदार ढक्कनवाली बरनी (बर्तन) में भर कर १

मास रहने दें। १ मास बाद कपड़े से छान, उसमें सुवर्णलवण[1] २ तोला मिलाकर बरनी में भर कर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ तोला अरिष्ट में २ तोला जल मिला, सुबह-शाम खाना खाने के बाद समान भाग जल अथवा दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से आयु, वीर्य, धृति, मेधा (बुद्धि) बल, स्मरणशक्ति और कान्ति की वृद्धि होती है। यह रसायन—हृद्य अर्थात् हृदय के रोगों को दूर करनेवाला या हृदय को बल प्रदान करने वाला है। बालक, युवा (जवान) वृद्ध, स्त्री, पुरुषों के लिये हितकारी है। यह ओज बर्द्धक है। इसके सेवन से आवाज मधुर हो जाती है। रजोदोष और शुक्रदोष नष्ट करने के लिये इस आसव का उपयोग किया जाता है। अधिक पढ़ने अथवा और भी किसी कारण से स्मरणशक्ति का ह्रास हो गया हो, तो उसे भी ठीक करता है।

यह आसव, बलवर्द्धक, हृदय को पुष्ट करनेवाला, चित्त को प्रसन्न करनेवाला तथा दिमाग को तर रखने वाला है। इसका प्रभाव वातवाहिनी नाड़ियों पर विशेष होता है। यह पित्तशामक है।

कभी-कभी स्त्रियों को ऐसा मालूम होता है कि शरीर घूम रहा है। उसकी नजर के सामने सब चीजें घूमती हुई दिखाई देती हैं। इसमें चक्कर आना, आँख बन्द करने से अच्छा मालूम पड़ना, आँख खोलने में परिश्रम और चक्कर का वेग विशेष मालूम होना, घबराहट, चित्त में अशान्ति, तन्द्रा, निद्रा न आना, किसी की बात अच्छी न लगना, कभी-कभी बेहोश भी हो जाना आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी अवस्था में सारस्वतारिष्ट के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होते देखा गया है। क्योंकि उपरोक्त विकार मासिक धर्म की खराबी से उत्पन्न होता है। जिस स्त्री को मासिक धर्म ठीक-ठीक नहीं होता अथवा एकदम ही नहीं होता या नियत समय पर और उचित मात्रा में नहीं होता है, उसे पित्त प्रकोप के कारण उपरोक्त उपद्रव

१—सुवर्णलवण (गोल्ड क्लोराइड) के नाम से विलायती दवा बेचनेवालों के यहाँ बाजार में मिलता है।

उत्पन्न होते हैं, जिससे वातवाहिनी नाड़ियाँ भी उत्तेजित हो जाती हैं। इन सब को सारस्वतारिष्ट तुरन्त शमन कर देता है।

छोटे-छोटे बच्चों को लगातार दूध के साथ कुछ दिनतक नियमित रूप से सेवन कराने से उसकी बुद्धि तीव्र हो जाती है, स्मरण शक्ति बढ़ती, बोली अच्छी और स्पष्ट निकलने लगती तथा आँख की रोशनी तेज हो जाती है। अर्थात् गले से ऊपर जितने अंग हैं, उन अंगों को इससे काफी सहायता मिलती है। इसीलिये उन्माद और अपस्मार आदि मानसिक विकारों को दूर करने के लिये सबसे पहले इसी का प्रयोग किया जाता है।

जिस स्त्री को जवानी आने पर भी रजोधर्म न होता हो, शरीर दुबला हो, अंग-प्रत्यङ्ग पुष्ट न हों, शरीर में रक्त की कमी हो, उसे सारस्वतारिष्ट के सेवन से बहुत शीघ्र लाभ होता है। यह गर्भाशय और बीजाशय दोनों को बलवान बनाता है।

सारिवाद्यासव

सारिवा (अनन्तमूल), मोथा, लोध, बरगद की छाल, पीपल वृक्ष की छाल, कचूर, अनन्तमूल सफेद, पद्माख, सुगन्धवाला, पाठा, आमला, गिलोय, खश, दोनों चन्दन, अजवायन, कुटकी, तेजपत्ता, छोटी और बड़ी इलायची, कूठ, सनाय, हर्रे प्रत्येक १६-१६ तोले लेकर सब को जौकुट चूर्ण बना लें। फिर एक मटके में २५।। सेर ८ तोला पानी डाल कर उसमें यह चूर्ण और १५ सेर गुड़, ४० तोले धाय के फूल तथा ६० पल मुनक्का डालकर मुख बन्द कर दें, और १ माह पश्चात् निकाल कर छान लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—१। से २।। तोला तक भोजन के बाद सबेरे और शाम को समान भाग जल मिला कर दें।

गुण और उपयोग—यह आसव २० प्रकार के प्रमेह, प्रमेह पिडिका, उपदंश और इसके उपद्रव, वातरक्त, भगंदर, मूत्रकृच्छ्र, नाड़ीव्रण, पीव बहने वाले फोड़े-फुन्सियाँ आदि रोगों को नष्ट

करता है। यह आसव रक्तशोधक, रक्तप्रसादक, मूत्रशोधक और पेशाब साफ लाने वाला है।

अधिकतर प्रमेह रोग बहुत दिनों तक ध्यान में ही नहीं आता है। जब इस रोग की तरफ ध्यान जाता है, उस समय यह मधुमेह के रूप में बदल जाता है अथवा पिडिका उत्पन्न हो गयी होती है। अतएव ऐसे भयंकर रोग के ऊपर विशेष ध्यान रखना चाहिये। प्राकृतिक नियमों में थोड़ा भी अन्तर पड़ जाने से तुरत किसी सद्-वैद्य (अच्छे वैद्य) से इसके विषय में परामर्श कर उचित दवा लेनी चाहिये।

प्रमेह की प्रारम्भिक अवस्था में यदि सारिवाद्यासव का सेवन कुछ दिनों तक नियम पूर्वक किया जाय, और पथ्य-पूर्वक रहा जाय, तो निःसन्देह प्रमेह आगे न बढ़ कर वहीं समाप्त हो जाता है। फिर मधुमेह या प्रमेह पिडिका आदि उपद्रव पैदा ही नहीं हो सकते। प्रमेह पिडिका रोग हो जाने पर भी लगातार कुछ दिनों तक सेवन करने से यह दोष मिट जाता है।

पित्तजन्य प्रमेहों पर इसका उपयोग विशेष किया जाता है। इसका प्रभाव वातवाहिनी नाड़ियोंपर तथा मूत्र-पिण्ड, स्त्री जन-नेन्द्रिय, गर्भाशय, बीजाशय आदि पर अधिक होता है।

मस्तिष्क के विकारों में भी इसका अच्छा असर होता है। कोई-कोई वैद्य उन्माद रोग में सर्पगन्धा चूर्ण के साथ इस आसव का प्रयोग करने की राय देते हैं और, इससे लाभ भी होता है।

मूत्राश्मरी, मूत्रकृच्छ्र अथवा रुक-रुककर पेशाब होना, पेशाब में जलन होना, लाल रंग का पेशाब होना, पेशाब करते समय पेडू में अथवा मूत्रनली में दर्द होना या सूजाक रोग के कारण मूत्र में जलन अथवा दर्द होना या पीव आना आदि विकारों में इस आसव के उपयोग से बहुत लाभ होता है।

सूजाक या उपदंश, पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिये विशेष कष्टदायक है। एक बार जिस स्त्री को यह रोग हो गया हो कि फिर उसकी जड़ उखड़ना कठिन हो जाता है। इसमें स्त्रियों को

ज्यादे तकलीफ होती है। जननेन्द्रिय में खुजली चलती, काम की प्रवृत्ति विशेष बनी रहती, मवाद आता, और साथ ही सूजन भी आ जाती है। ऐसी स्थिति में सारिवाद्यासव का उपयोग लगातार करने से बहुत लाभ होता है। साथ ही त्रिफला-जल से रोज योनि को धोते रहने और यह क्रिया दिन भर में तीन-चार बार करते रहने तथा इस आसव का नियमित रूप से सेवन करने और पथ्य पूर्वक रहने से बहुत शीघ्र लाभ होते देखा गया है।

घृत प्रकरण

घृतपाक करने में सबसे पहले घृत को मूर्च्छित किया जाता है। इसके बाद उसमें क्वाथ, दूध, दही आदि द्रव पदार्थ और ओषधियों का कल्क डालकर उसे पकाया जाता है।

घृतमूर्च्छन—१ सेर घी को मन्दाग्नि पर गर्म करके फेनरहित होने पर उसमें हरड़, बहेड़ा, आँवला, हल्दी और नागर मोथा ४-४ तोला, इन सबको एकत्र कर, बिजौरे नीबू के रस में पीसकर, कल्क बनाकर डालें। इससे घृत साफ, आमदोष रहित और वीर्यवान हो जाता है।

क्वाथ—घृत पाक के लिये जिन चीजों का क्वाथ बनाना हो, वह सब मिलाकर घृत से दुगुनी लें और अठगुने पानी में पका कर चौथा भाग शेष रहने पर छान लें। यदि क्वाथ द्रव्यों का परिमाण बहुत अधिक हो, तो सबका क्वाथ एक साथ ही न बनाकर ५-५ सेर क्वाथ द्रव्य लेकर कई बार में क्वाथ तैयार करें और सब क्वाथों को मिला लें। ओषधि (क्वाथ द्रव्य का परिमाण) ५ सेर हो, तो जल २५।। सेर ८ तोला लेना चाहिये।

दूध आदि—यदि केवल दूध से ही घृत पाक करना हो, और उसमें क्वाथ आदि अन्य द्रव पदार्थ नहीं डालने हों, तो दूध, घृत से अठगुना लें और यदि अन्य द्रव पदार्थ भी डालने हों, तो दूध घृत के समान लेना चाहिये। यदि तीन द्रव पदार्थों से घृत पाक करना हो, तो इन्हें बराबर-बराबर मिला कर घृत से चार गुना लेना चाहिये। और यदि चार या चार से अधिक द्रव पदार्थ डालने हों, तो प्रत्येक पदार्थ घृत के समान लेना चाहिये। यदि केवल स्वरस, दूध-दही आदि से पाक करने को लिखा हो, तो भी घृत से चौगुना जल अवश्य मिला लेना चाहिये; क्योंकि केवल दूध, दही आदि से स्नेह का पाक भलीभाँति सिद्ध नहीं होता है।

कल्क—स्नेह में साधारणतः स्नेह का चौथा भाग कल्क डाला

जाता है। परन्तु यदि बासापुष्प आदि का कल्क डालना हो तो स्नेह से आठवाँ भाग लेना चाहिये। यदि केवल जल से ही स्नेह सिद्ध करना हो, तो कल्क चौथा भाग, क्वाथ से सिद्ध करना हो तो छठा भाग और स्वरस से सिद्ध करना हो, तो आठवाँ भाग कल्क डालना चाहिये।

विशेष जानकारी—स्नेह (तैल-घृत) का परिमाण (तौल) नहीं लिखा हो, तो १ सेर स्नेह लेना चाहिये और उसमें उक्त परिभाषा के अनुसार जलादि डालना चाहिये।

१—उपर्युक्त परिभाषायें केवल उस स्थान के लिये हैं, जहाँ द्रव्यों का परिमाण नहीं लिखा हो। जहाँ परिमाणों का उल्लेख हो, वहाँ लेखानुसार ही डालना चाहिये।

२—यदि गोमूत्रादि क्षारयुक्त पदार्थों के साथ स्नेह पाक करना हो, तो बहुत सावधानी रखनी चाहिये कि कहीं स्नेह कड़ाही से बाहर न निकल जाये; क्योंकि क्षार पदार्थों के योग से स्नेह में अत्यधिक झाग आते हैं।

३—जिस प्रयोग में जितने स्नेह पाक करने का विधान लिखा हो, उतना ही लेना चाहिये। उससे आधे, चौथाई या दो चार गुने स्नेह का पाक ठीक नहीं होगा।

४—जहाँ किसी गण की समस्त औषधियाँ न मिल सकें, वहाँ जितनी ही मिल जाएँ, उतनी ही से काम लेना चाहिए।

५—यदि स्नेह को दूध के साथ सिद्ध करना हो, तो २ दिन में और स्वरस के साथ सिद्ध करना हो, तो ३ दिन में और तक्र, काँजी आदि से सिद्ध करना हो तो ५ दिन में पाक पूर्ण करना चाहिये—अर्थात् पहले दिन थोड़ी देर उसे पका कर छोड़ दें, फिर दूसरे दिन पकावें। इस प्रकार एक ही दिन में पाक सिद्ध न करके कई दिनों में सिद्ध करने से घृत-तैल अधिक गुणवान होता है।

स्नेहसिद्ध के लक्षण—यदि स्नेह का कल्क अग्नि में डालने पर किसी प्रकार का शब्द न हो, तो स्नेह को सिद्ध समझना चाहिये। का पाक पूर्ण होने के समय खूब झाग उठता है।

स्नेह पाक—३ प्रकार का होता है—मृदु, मध्य और खर। यदि स्नेह का कल्क किंचित् रसयुक्त हो, तो उसे मृदुपाक, नीरस, किन्तु कोमल हो तो मध्यम, एवं कठिन हो तो खर पाक समझें।

इन तीनों प्रकार के पाकों में मध्यम पाक सर्वोत्तम है, और खरपाक निकृष्ट माना गया है। परन्तु मालिश के लिये खरपाक ही अच्छा होता है।

घृतों के सामान्य गुण—गाय का घी अत्यन्त स्निग्ध और पौष्टिक होता है। ओषधियों द्वारा सिद्ध होने पर यह अधिक पाचक तथा अंतड़ियों और बस्ति को शुद्ध करके मलावरोध और मूत्रसंकोच को दूर करता है। यह स्निग्ध होने से मलाशय, दिमाग, मांस, हड्डियों, नसों आदि को शक्ति प्रदान कर पुष्ट करता है। धातुक्षीणता को दूर करने लिये यह अमृत समान गुण करता है।

प्रयोग—घृतों का विशेष उपयोग पित्त-विकार एवं नलाश्रित वायु विकार (पेट में वायु भर जाने) पर करने से अधिक लाभ करता है। यथा–अपच-बदहज्मी, संग्रहणी, बवासीर, रक्तपित्त, अपस्मार, हिस्टीरिया, रक्तविकार, खून के विकार, माथे का दर्द, भ्रम, नेत्ररोग, व्रण, भगन्दर, तथा गर्भाशय के अनेकों रोगों में सिद्ध घृत विशेष लाभदायक होते हैं।

मात्रा और अनुपान—३ माशे से १ तोला तक सुबह-शाम दिन में दो-तीन बार लिये जा सकते हैं। गुनगुने पानी, दूध या रोगोक्त किसी काढ़े के साथ दें।

अशोक घृत

६४ तोला अशोक की छाल को ५३≡ छटाँक ४ तोला जल में पकावें,चौथाई रहने पर छान लें। यह काढ़ा और जीरे का क्वाथ, चावलों का पानी, बकरी का दूध तथा भाँगरे का रस प्रत्येक ६४-६४ तोला और जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलैठी), चिरौंजी, फालसा, रसोत, मुलैठी, अशोक की जड़ की छाल, मुनक्का,

शतावर, चौलाई की जड़ प्रत्येक २-२ तोला लें। इनके कल्क के साथ ६४ तोला घृत पकावें। घृतपाक सिद्ध हो जाने पर, उतार कर ठंडा हो जाने के बाद छान कर ऽ।। सेर शक्कर (चीनी) मिला कर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान— १-१ तोला प्रातः-सायं दूध अथवा गर्म पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह घृत रक्त-सफेद, नीले-पीले रंग के प्रदर रोग, कोंख का दर्द, कमर और योनि की पीड़ा, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डु, दुबलापन, श्वास, कामला आदि स्त्रियों के सब रोगों का नाश करता है। यह बल और शरीर की कान्ति को बढ़ाता है।

यह घृत स्त्रियों के लिये अमृत समान लाभकारक है। प्रदर रोग में विशेषतया पित्त और वायु के दोष पाये जाते हैं। यथा—हाथ-पाँव में जलन होना, आँखों के सामने चिनगारियाँ उड़ना, अन्न नहीं पचना, भूख न लगना, कमर में दर्द होना, आलस्य आदि। इसमें अशोक घृत के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है; क्योंकि यह प्रकुपित वायु तथा पित्त को शमन कर उसके विकार को दूर करता है और पाचक पित्त को उत्तेजित करके हाजमा ठीक करता है, फिर भूख भी लगने लगती तथा खाना हजम होने लगता है। धीरे-धीरे शरीर पुष्ट होकर रोगिणी स्वस्थ हो जाती है।

कल्याण घृत

इन्द्रायन, त्रिफला, रेणुका (सम्हालू बीज), देवदारु, एलुवा, शालपर्णी, अनन्तमूल, दोनों सारिवा, हल्दी, दारुहल्दी, फूल प्रियंगु, नीलकमल, इलायची, मजीठ, दन्ती, अनार, नागकेशर, तालिसपत्र, बड़ी कटेली, चमेली के ताजे फूल, बायबिडंग, पृश्निपर्णी, कूठ, चन्दन, कमल प्रत्येक १-१ तोला लेकर सबका कल्क बना लें और चौगुने पानी के साथ ६४ तोला घी का पाक सिद्ध कर लें। च०चि०

गुण और उपयोग—यह घृत उन्माद, अपस्मार, हिस्टीरिया, भूतोन्माद, दिमाग की खराबी, दिमाग की कमजोरी, तुतलापन,

अग्निमान्द्य, पाण्डु, कण्डू, जहर, सूजन, प्रमेह, कास, श्वास, ज्वर, पारी का ज्वर, वातरोग, जुकाम, वीर्य की कमी, बन्ध्यापन, बुद्धि की कमी, कमजोरी , मूत्रकृच्छ्र, विसर्प आदि रोगों का नाश करता है।

दिमाग की कमजोरी या बौद्धिक परिश्रम करनेवालों के लिये तो यह अमृत समान काम करने वाला है। इस घी के साथ ही साथ "कुष्माण्डावलेह" भी लिया जा सकता है। कुष्माण्डावलेह में इस घी को मिला देने से जायका भी अच्छा हो जाता तथा गुण भी विशेष करता है।

जिसकी बुद्धि कमजोर हो, या जो बच्चा तुतलाता हो यानी जल्द शब्द का उच्चारण नहीं कर पाता हो, उसके लिये भी यह विशेष लाभकारक है। गर्भपुष्टि के लिये इसका विशेष उपयोग किया जाता है। गर्भावस्था में इस घृत के सेवनोपरान्त जो बच्चा पैदा होता है, वह बहुत बुद्धिमान् होता है।

पागलपन या मृगी, हिष्टीरिया आदि रोगों में इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है। साथ में भूत भैरव रस, स्मृतिसागर या अभ्रकभस्म आदि का भी सेवन करावें।

कामदेवघृत

असगन्ध ५ सेर, गोखुरू २।। सेर, बरियारा, गिलोय, सरिबन, विदारीकन्द, शतावर, सोंठ, गदहपुरना, पीपल की कोंपल, गम्भारी के फल, कमलगट्टा और उड़द प्रत्येक २०-२० तोले लें। सबको जौकुट करके ५१ सेर १६ तोले जल में पकावें। जब १२।।। सेर ४ तोले जल शेष रहे तब कपड़े से छान, उसमें गाय का घी २५६ तोले, गन्ने का रस २५६ तोले तथा मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, कूठ, पद्माख, लालचन्दन, तेजपात, छोटीपीपल, मुनक्का, केवाँच-बीज, नील कमल, नागकेशर, अनन्तमूल, बरियारा और गंगेरन—प्रत्येक १-१ तोला, मिश्री ८ तोला—इनका कपड़छन किया हुआ चूर्ण जल में पीस कर, बनाया हुआ

कल्क मिलाकर घृतपाक विधि से पकावें। घृत तैयार होने पर कपड़े से छान कर शीशी में भर लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—६ माशे से २ तोले तक बराबर मिश्री का चूर्ण मिला करके दें और ऊपर से गाय का दूध पिलावें।

गुण और उपयोग—यह घृत रक्तपित्त, क्षत-क्षीणता, कामला, वातरक्त, हलीमक, पाण्डु, स्वरक्षय (गला बैठ जाना), मूत्रकृच्छ्, हृदय की दाह और पसली के दर्द को दूर करता है।

यह उत्तम पौष्टिक और बाजीकरण है। वीर्यक्षय, शरीर की कृशता (दुबलापन) और नपुंसकता में इसका प्रयोग करें।

घृत वैसे ही पुष्टिकारक होता है, परन्तु पौष्टिक दवाइयों द्वारा बना हुआ घृत तो और भी पुष्टिकारक होगा। इसमें अनेक दवाइयाँ पौष्टिक और बल-वीर्यवर्द्धक हैं। इसलिये यदि शुक्रक्षय के कारण शरीर दुबला हो गया हो अथवा भूख नहीं लगती हो, हाजमा (पाचन) शक्ति कमजोर हो गयी हो, रस-रक्तादि धातुओं की कमी के कारण शरीर की कान्ति नष्ट हो गई हो, आदि उपद्रव हों तो इसके उपयोग से पूर्ण लाभ होता है।

यह बाजीकर भी है। अतएव जो विशेष विषय भोग की इच्छा रखतें हों, वे भी इसके उपयोग से लाभ उठा सकते हैं। किन्तु इसके साथ-साथ और भी दवाइयों का सेवन करना तथा पौष्टिक और बलवर्द्धक आहारों का उपयोग करना आवश्यक है।

रक्तपित्त और गला बैठ जाने पर भी इसके उपयोग से लाभ होता है।

यदि वीर्यवाहिनी नाड़ियों की कमजोरी से नपुंसकता उत्पन्न हुई हो, तो उसमें भी यह लाभ करता है। परन्तु लगातार कुछ दिनों तक सेवन करने से ही इसमें लाभ होता है।

कुमार कल्याण घृत

शंखाहुली, वच, ब्राह्मी, कूठ, हरड़, बहेड़ा, आँवला, मुनक्का, मिश्री, सोंठ, जीवन्ती, जीवक, बरियार, कचूर, यवासा, बेल, अनार,

तुलसी, सरिवन, नागरमोथा, पुष्करमूल, छोटी इलायची, छोटी पींपल, खस, गोखुरू, अतीस, आकनादिपाठा, बायबिडंग, देवदारु, मालती के फूल, महुआ के फूल, पिंड खजूर, बेर और बंशलोचन सब समभाग ले, कूट-कपड़छन कर, जल में पीस, उसमें चौगुना गाय का घी तथा दूध, एवं छोटी कटेरी का क्वाथ घी से चौगुना मिलाकर घृत-पाक विधि से पकावें। जब घृत तैयार हो जाय, तब सबको कपड़े से छानकर शीशी में भर लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे गरम दूध में डालकर पिलावें।

गुण और उपयोग—इस घृत के सेवन से बल, वर्ण, रुचि, जठराग्नि, मेधा और वायु बढ़ती है। दाँत आने के समय में बालकों को इसके सेवन कराने से बिना उपद्रव के दाँत निकल आते हैं।

चित्रकादि घृत

चित्रक, धनियाँ, जीरा, अजवायन, सोंचल नमक, त्रिकुटा, अम्लबेत, बेलगिरी, अनारदाना, जवाखार, पीपलामूल और चव्य का कल्क १-१ तोला, जल ऽ३≡ छटाँक १ तोला और घृत ६४ तोला—सबको एकत्र मिला, घृतपाक विधि से सिद्ध करके रख लें।

—च० सं०

मात्रा और अनुपान—१ तोला से १॥ तोले तक गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग—यह घी अग्नि प्रदीपक और तिल्ली, गुल्म, सूजन, उदर रोग, बवासीर आदि रोगों में विशेष फायदा करने वाला है। संग्रहणी, पुराना अतिसार, पेट फूलना व अरुचि आदि रोगों में भी इससे लाभ होता है।

यह मन्दाग्नि दूर कर भूख बढ़ाता तथा बढ़ हुए वायु और पित्त को शान्त करता है।

चैतस घृत

शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, दोनों कटेली, गोखुरू, खम्भारी की छाल,

रास्ना, एरण्डमूल, निशोथ, खरेंटी, मूर्वा और शतावरी प्रत्येक ८-८ तोला लेकर, १६ गुनें जल में पका कर, चौथाई भाग जल शेष रहने पर, उतारकर छान लें। फिर इसमें कल्याण घृत में कही हुई दवाओं का कल्क और कल्क से चौगुना घृत मिला कर घृतपाक विधि से सिद्ध करके रख लें। —बं० से०

मात्रा और अनुपान—६ माशे से १ तोले तक गरम दूध या पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग—इस घृत का अधिकतर उपयोग मानसिक रोगों में किया जाता है। उन्माद रोग की प्रारम्भिक अवस्था में इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है। इसी तरह हिस्टीरिया, मृगी (अपस्मार), मूर्च्छा, संन्यास आदि रोगों में भी इसके उपयोग से लाभ होता है।

जात्यादि घृत (मलहम)

चमेली के पत्ते, नीम के पत्ते, परवल के पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मजीठ, मुलेठी, मोम, करंज के पत्ते, खस, अनन्तमूल और तूतिया—इन सबको समान भाग ले, कल्क बनावें। कल्क से चौगुना घृत और घृत से चौगुना जल डाल कर पकावें। —शा० ध० सं०

गुण और उपयोग—यह घृत नाड़ीव्रण (नासूर), पीड़ायुक्त व्रण और जिस व्रण से रक्त निकल रहा हो, उस व्रण को तथा मकड़ी के घाव, अग्नि से जलने और कठिन तथा गहरे घाव को ठीक करता है। इसको मरहम की भाँति लगाने से मर्मस्थानों के घाव, पीव-युक्त और अधिक पीड़ायुक्त घाव आदि भरकर अच्छे हो जाते हैं।

त्रिफलादि घृत

त्रिफला क्वाथ ६४ तोला, भाँगरे का रस ६४ तोला, बाँसे का रस ६४ तोला, बकरी का दूध ६४ तोला और घी ६४ तोला, इन सबको एकत्र कर इन ओषधियों का कल्क डालें। पीपल, मिश्री, मुनक्का, त्रिफला, नीलोफर, मुलेठी, क्षीर काकोली, काकोली, मेदा, काली मिर्च, सोंठ, सफेद कमल, पुनर्नवा, हल्दी, दारुहल्दी, चन्दन,

सैन्धानमक, वरियारा प्रत्येक १-१ तोला लेकर कल्क बना लें। फिर सबको एकत्र मिला कर पकावें। जब समस्त जलांश भाग जल जाय, तब घृत छानकर रख लें। —शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—६ माशे से १ तोला—बराबर मिश्री मिलाकर दोनों शाम दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से रक्तदुष्टि, रक्तस्राव, रतौंधी, तिमिर, आँखों में ज्यादा दर्द होना, आँखों से कम दिखाई पड़ना, शरीर की कमजोरी और नेत्ररोग दूर होते हैं।

त्रिफला की महिमा आयुर्वेदशास्त्र में बहुत वर्णित है तथा इसके उपयोग से लाभ उठाने वाले भी बहुत देखे जाते हैं। यह घृत नेत्रों के लिये बहुत लाभदायक है। केवल त्रिफला के जल से ही प्रातः-काल आँख धोने तथा त्रिफला का चूर्ण रात में मिश्री मिला, पानी के साथ लेने से आँख की ज्योति बढ़ जाती है। यह आनुभविक बात है।

यदि पित्तवृद्धि के कारण आँखों में तकलीफ हो, जैसे आँखें ज्यादा सूर्ख हो जाना, आँखों की पलकें सूज जाना, प्रकाश में आँख नहीं खुलना, रोहें बढ़ जाना, दर्द होना आदि लक्षण उपस्थित होने पर, इस घृत का मिश्री मिला कर सेवन करावें। और त्रिफला के जल से प्रातः काल आँख को धोवें तथा रात को सोते समय त्रिफला चूण ३ माशे में बराबर मिश्री मिलाकर दूध या पानी के साथ दें। इस उपचार से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

वैसे भी जिन्हें नेत्ररोग की शिकायत बराबर बनी रहती हो, वे भी यदि नियमित रूप से कुछ रोज तक इस घृत का सेवन करें, तो आँख तो अच्छी हो ही जायगी, साथ ही रक्त की भी वृद्धि हो, शरीर पुष्ट हो जायगा।

दूर्वादि घृत

दूब, अनार के फूल, मजीठ, कमल केशर, गूलर के फल, खस, नागरमोथा, सफेद्चन्दन, पद्माख, अडूसे के फूल, केशर, गेरू और

नागकेशर प्रत्येक १-१ तोला लेकर, कपड़छान चूर्ण बना, जल में पीस कर कल्क बना लें। फिर उसमें बकरी का दूध, घी, पेठे का रस, अयापान का रस और चावल का पानी—प्रत्येक ६४-६४ तोले मिलाकर मन्द आँच पर पकावें। जब घृत सिद्ध हो जाय, तब नीचे उतार, उसे कपड़े से छानकर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—६ माशे से १ तोला—बराबर मिश्री मिलाकर सबेरे-शाम सेवन करें।

गुण और उपयोग—यह घृत मुख से रक्त आता हो तो पीन को देना, नाक से रक्त आता हो, तो नस्य देना, कान या आँख से रक्त आता हो, तो कान या आँख में डालना, और लिङ्ग, योनि अथवा गुदा से रक्त आता हो, तो उत्तर बस्ति या अनुवासन बस्ति द्वारा देना चाहिए।

रक्तपित्त में पित्त की विकृति से रक्त दूषित होकर वायु द्वारा कभी ऊपर, कभी नीचे और कभी रोमछिद्रों द्वारा बाहर निकलता है। यद्यपि इस रोग में कफ विकृत हो जाता है, परन्तु पित्त का प्रकोप विशेष रहता है। अतएव प्यास लगना, शरीर में जलन-दाह, मुँह सूखना, चक्कर आना, शीतल पदार्थ खाने की इच्छा ज्यादा होना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी हालत में इस घृत के उपयोग से शीघ्र लाभ होते देखा गया है। साथ में प्रवालपिष्टी, कहरवा पिष्टी, अशोकारिष्ट आदि दवाओं में से भी किसी का सेवन करते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

पंचगव्य घृत

दशमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुड़े की छाल, मूर्वा, भारंगी, छतिबन, गजपीपल, अपामार्ग, अमलतास, कठगूलर की छाल, प्रत्येक समानभाग मिश्रित १ सेर लेकर अधकुटा करके ८ सेर पानी में पकावें। २ सेर पानी शेष रखकर छान लें। फिर चिरायता, त्रिफला, त्रिकुटा, चित्रक, निशोथ, पाठा, हल्दी, दारुहल्दी, दोनों सारिवा, पुष्करमूल, कुटकी, यवासा, दन्तीमूल, बच, नील का पंचांग और

बायविडंग सब समान भाग मिश्रित २० तोला लेकर कल्क बना लें।

अब क्वाथ और कल्क तथा गाय का घी, गाय के गोबर का रस, दही, दूध और गोमूत्र प्रत्येक २-२ सेर लेकर, सबको एकत्र मिलाकर घृतविधान से पकावें। जब घृत मात्र शेष रहे, तो उसे छान कर रख लें। —ग० नि०

मात्रा और अनुपान—६ माशे से १ तोला, गर्म पानी में मिला कर दें।

गुण और उपयोग—प्रधानतया इसका उपयोग गुल्म, उदर और पेट-दर्द में होता है। पेट, वृषण (पोता) तथा हाथ-पाँव पर सूजन आ गई हो, तो उसमें यह बहुत लाभ करता है।

जुलाब हो जाने के बाद यदि इसका सेवन किया जाय, तो पेट में वायु नहीं भरता तथा मलों की गुठलियाँ भी नहीं बनती। इसके अतिरिक्त अपस्मार, भगन्दर, पाण्डु, कामला, दमा, खाँसी, थोड़ा बहुत बुखार, बालग्रह, विशेष कर धातुक्षीणता, नलाश्रित वायु आदि रोगों में भी इसके प्रयोग से काफी लाभ होता है।

फल घृत

मुलैठी, कूठ, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, बच, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी, घी में सेकी हुई हींग, कुटकी, नीलोफर, चन्दन दोनों, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, छोटी पीपल, चमेली के फूल, वंशलोचन, बायबिडंग, कमल, अजमोद, कायफल, दोनों सारिबा, प्रियंगु, सौंफ, रास्ना, मिश्री, दन्ती, नागरमोथा, इन्द्रायण की जड़ प्रत्येक १-१ तोला ले, कूट कपड़छान चूर्ण बना, जल में पीस, कल्क बना लें। फिर उस कल्क में गाय का घी ६४ तोला, पकार्थ जल २५६ तोला और गाय का दूध २५६ तोला सबको एकत्र मिला कर घृतपाक विधि से पकावें। जब घृत मात्र शेष रहे, तब उसे छान कर काँच के बर्तन में भर कर रख दें। —शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—६ माशे से १ तोला, मिश्री का चूर्ण बराबर मिला कर दें और ऊपर से गाय का दूध पिला दें।

गुण और उपयोग—इस घृत के सेवन से स्त्रियों के शरीर या कमर में दर्द होना तथा गर्भाशय की कमजोरी दूर होती है। इससे गर्भ का पोषण होता है। कुछ दिनों तक इसके सेवन से स्त्रियों के आर्त्तव और पुरुषों का वीर्यदोष दूर हो जाता है।

जिस स्त्री को बारम्बार गर्भपात होता हो, या मरे हुये अथवा अल्पायु बालक पैदा होते हों; एक बालक होकर फिर सन्तानादि न होती हो या गर्भ नहीं रहता हो, तो इस घृत के सेवन से बुद्धिमान्, दीर्घायु तथा हृष्ट-पुष्ट बच्चा पैदा होता है।

बलादि घृत

बला (खरेंटी) की जड़, नागबला के मूल और अर्जुन की छाल प्रत्येक ६४-६४ तोला लेकर यवकुट करके १०२४ तोला जल में पकावें। जब चौथाई (२५६ तो०) जल शेष रहे तब काढ़े को छान कर उसमें गाय का घी ६४ तोले, मुलेठी ८ तोले और अर्जुन की छाल का चूर्ण ८ तोले दोनों का कल्क बना, सबको एकत्र मिला, घृत-पाक विधि से मन्द मन्द आँच पर पकावें। जब घृतमात्र शेष रहे तब उतार कर उसे छान लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ तोला घृत, दूध या गर्म जल में मिला कर प्रातः-सायं सेवन करें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से हृद्रोग, शूल, उरःक्षत, रक्तपित्त, खाँसी और वातरक्त रोग दूर होते हैं। यह पौष्टिक और बलवर्द्धक है। खाँसी और रक्तपित्त में इसके उपयोग से अच्छा लाभ होता है।

ब्राह्मी घृत

मूल और पत्रसहित ताजी ब्राह्मी को पानी से धो कर कूट करके निकाला हुआ स्वरस ऽ३≡ छटाँक १ तोला में ६४ तोले घी और निम्नलिखित कल्क तथा ऽ३≡ छटाँक १ तोला पानी एकत्र मिला कर पकावें। जब घृत मात्र शेष रह जाय तो उसे छान लें।

कल्क द्रव्य—हल्दी, चमेली के फूल, कूठ, निशोथ, हर्रे प्रत्येक ४-४ तोले तथा छोटी पीपल, बड़ी पीपल, गजपीपल, बायबिडंग,

सेंधानमक, खाँड और बच प्रत्येक १-१ तोला लेकर, सबको पानी के साथ पीस कर मिला दें। —चक्रदत्त

मात्रा और अनुपान—६ माशे से १ तोला, बराबर मिश्री के साथ ऊपर से धारोष्ण दूध पिलावें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से अपस्मार, उन्माद, बोलने की कमजोरी, अर्थात् साफ-साफ न बोलना, अथवा कमजोरी से मिन-मिना कर बोलना, ज्यादे देर या जल्दी-जल्दी बोलना आदि, बुद्धि की निर्बलता, मनोदोष, स्मरण शक्ति (याददाश्त) की कमी, स्वर-भंग (गला बैठ जाना) दिमाग की कमजोरी, वातरक्त तथा कुष्ठरोग दूर होते हैं।

आयुर्वेद में इसके गुण वर्णन करते हुए लिखा है कि—इस घृत का केवल १ सप्ताह मात्र सेवन करने से स्वर, किन्नरों के समान मधुर और सुरीला हो जाता है। २ सप्ताह तक सेवन करने से मुख कान्तिमान हो जाता है। यदि नियम पूर्वक १ माह तक इसका सेवन किया जाय तो मनुष्य की स्मरणशक्ति बहुत बढ़ जाती है।

महातिक्त घृत

सतौने की छाल, अतीस, अमलतास का गूदा या छाल, कुटकी, पाठा, नागरमोथा, खस, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, पटोल की पत्ती, नीम की अन्तर्छाल, पित्तपापड़ा, धमासा, सफेद चन्दन, छोटी पीपल, पद्माख, हल्दी, दारु हल्दी, बच, इन्द्रायण की जड़, शतावर, अनन्त मूल, वासा, कुड़ा की छाल, जवासा, मूर्वा, गिलोय, चिरायता, मुलैठी और त्रायमाणा प्रत्येक १-१ तोला लेकर, सबको एकत्र चूर्ण बना कर कल्क बना लें। पीछे उसमें गाय का घी १२८ तोला, जल १०२४तोला, आमले का रस २५६ तोला मिला, सबको एकत्र करके मन्दाग्नि, पर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर उसे छान कर रख लें।—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—६ माशे से १ तोला, गर्म जल में मिला कर अथवा गुर्च के क्वाथ में मिलाकर सेवन करें।

गुण और उपयोग—यह घृत कुष्ठ, रक्तपित्त, खूनी बवासीर, विसर्प, अम्लपित्त, वातरक्त, पाण्डु रोग, विस्फोट, यक्ष्मा, उन्माद, कामला, कण्डू, ज्वर, रक्तप्रदर आदि रोगों को नष्ट करता है।

तैल प्रकरण

तेलों का पाक भी घृत के समान ही होता है। अतएव घृत प्रकरण में ही इसके पाक करने की विधि तथा तैल सिद्ध (पाक) हुआ या नहीं, और पाक कितने प्रकार के होते हैं आदि बातों का वर्णन देखें। ये सब बातें दोनों में समान ही होते हैं, किन्तु; तैल की मूर्च्छा विधि अलग होती है। यथा—

कटु तैल मूर्च्छा—आमला, हल्दी, नागरमोथा, बेल की छाल, अनार की छाल, नागकेशर, काला जीरा, नलुका, सुगन्धबाला और बहेड़ा, सब समान भाग लेकर १ सेर तेल में १ तोले के हिसाब से डालें। तैल को मन्दाग्नि पर गरम करके इनका कल्क धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा करके पचावें।

तिल तैल मूर्च्छा—मजीठ, हल्दी, लोध, नागर मोथा, नलिका, आँवला, बहेड़ा, हरड़, केवड़ा की जड़, बड़ की जटा और सुगन्धबाला, इनमें से तैल का सोलहवाँ भाग मजीठ और मजीठ का चौथा भाग अन्य सब दवा (समान भाग में) लेकर मन्दाग्नि पर गरम करके रख लें।

एरण्ड तैल मूर्च्छा विधि—मजीठ, नागरमोथा, धनियाँ, त्रिफला, जयन्ती, सुगंधबाला, खजूर, बड़-जटा, हल्दी, दारु हल्दी, नलिका, सोंठ, केतकी, दही और कांजी, १ सेर तैल को मूर्च्छित करने के लिये इनमें प्रत्येक दवा ४-४ माशे लें।

बने हुये तैलों के गुण—अपनी चिकनाहट के कारण चमड़ी को मुलायम करता, सूक्ष्मता के कारण बालों के छेद में प्रवेश हो, रक्त में मिल जाता, शरीर का रूखापन, जड़ता और दर्द आदि को दूर करता तथा खराब हवा का असर शरीर पर नहीं होने देता इत्यादि अनेक गुण बने हुये तैलों में होते हैं। औषधियों द्वारा सिद्ध तैल रोग नाशकारक, शरीर को हृष्ट-पुष्ट तथा सशक्त बना देता है।

सौम्य और तीक्ष्ण भेद से ये तैल दो प्रकार के होते हैं। यथा

विष गर्भ तैल अपनी तीक्ष्णता के कारण रक्त में गर्मी पैदाकर रक्त को संचालित करके दर्द, सूजन, ऐंठन आदि उपद्रवों को शीघ्र दूर कर देता है। नारायण तैल सौम्य गुण के कारण कमजोर शरीर या शरीर के अवयवों की विकृति को दूर कर सशक्त (बलवान) बना देता है।

तैल लगाने का समय—इसके लिये सबसे उत्तम समय सुबह ७ या ८ बजे का है। अन्यथा रात के ८ बजे या शाम को ४ बजे भी लगा सकते हैं। परन्तु वात-विकारों में आवश्यकतानुसार ४-५ घण्टे पर मालिश और सेंक करना चाहिए।

तैल मालिश—शरीर में धीरे-धीरे तैल की मालिश करने से रक्त के अन्दर गर्मी पहुँच कर उसका संचार होने लगता है। तैल मालिश करने वाला मनुष्य नीरोग तथा तन्दुरुस्त होना चाहियें। मालिश करते समय शरीर में सुख और आराम का अनुभव हो, इस तरह की मालिश अच्छी होती है।

कुम्भी तैल

जल-कुम्भी का कल्क १६ तोला, तिल का तैल ६४ तोला और जल-कुम्भी का स्वरस २५६ तोला सबको तैलपाक विधि से पकावें। जब तैल सिद्ध हो जाय, तब उसको कपड़े से छान कर शीशी में भर लें। —सि० यो० सं०

गुण और उपयोग—कान के रोगों में इस तैल का व्यवहार किया जाता है। इससे कान का दर्द, कान का पकना, मवाद आना आदि रोग दूर हो जाते हैं।

कान के अन्दर फोड़ा-फुन्सी हो जाने से वह पक कर बहने लगता है। यदि कहीं अधिक दिन तक मवाद बहता रहा, तो सुनाई भी कम पड़ने लगती है। ऐसी हालत में पहले नीम के पत्ते डाल कर गर्म किये हुए पानी से पिचकारी द्वारा कान साफ करके यह तैल दिन भर में दो-तीन बार डालने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। इसके अतिरिक्त कान में मैल जम जाने अथवा कान की जड़ में चोट लगने से यदि दर्द हो, तो उस हालत में भी इससे बहुत लाभ होता है।

कुमारी तैल

घीकुमारी का स्वरस ६४ तोला, धतूर के पत्तों का स्वरस ६४ तोला, भाँगरे का स्वरस १२८ तोला, दूध २५६ तोला और तैल ६४ तोला लें।

कल्कद्रव्य—मुलैठी, सुगन्धबाला, मजीठ, नागरमोथा, नख, कपूर, भाँगरा, इलायची, जीवन्ती, पद्माख, कूठ, कालाभाँगरा, बासक, बालीसपत्र, राल, तेजपात, बायबिडंग, सौंफ, असगन्ध, एरण्डमूल, पुनर्नवा और नारियल प्रत्येक १-१ तोला लेकर चूर्ण बना, पानी के साथ पीस कर कल्क बना करके उपरोक्त दवा में मिला, तैलपाक विधि से तैल सिद्ध करके छान कर रख लें। —भा० प्र०

गुण और उपयोग—इस तैल की मालिश करने और शिर में डालने से अर्दित, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, तालु, नासा, अक्षिपात, शोष (सूखा), पाण्डु, हलीमक, बहरापन और कान के दर्द दूर हो जाते हैं।

यह तैल सौम्य—शीतल गुणयुक्त है। अतएव पैत्तिक विकारों में इससे काफी लाभ होता है। पैत्तिक शिरदर्द में इस तैल का विशेष उपयोग किया जाता है। पित्त-वृद्धि के कारण निद्रा में कमी हो, शरीर में जलन ज्यादे रहती हो, आँखों से दाह निकलती हो, माथा हरदम गर्म बना रहता हो, दिमाग खाली मालूम पड़ता हो आदि उपद्रव होने पर कुमारी-तैल की मालिश करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। इसके अतिरिक्त यह बालों के लिये भी बहुत हितकारक है। यदि इस तैल की मालिश कुछ दिनों तक बराबर की जाय, तो कम उमर में जो पित्त की वृद्धि के कारण बाल पकने लगते हैं, रुक जाते हैं।

कान के दर्द में कान में मैल जम जाने के कारण दर्द होता हो, तो इस तैल को थोड़ा गरम करके कान में डालने से फायदा होता है। परन्तु जिसमें मवाद आता हो, उसमें यह लाभ नहीं करता है।

कुष्ठराक्षस तैल

पारा, गन्धक, कूठ, सतौना, चीता, सिन्दूर, लहसन, हरताल, बावची, अमलतास के बीज, ताँबे का चूरा और मैनशिल प्रत्येक १-१ तोला लेकर इनका कल्क बना, इन्हें ३२ तोले कड़वे तैल में डालकर धूप में रख दें, (कोई-कोई इसमें ४ सेर पानी भी मिलाने को कहते हैं। परन्तु पानी मिलाने से सूर्यपाक द्वारा पानी जल्दी नहीं सूखता, अतएव बिना पानी मिलाये ही १ सप्ताह या ३ दिन तक घाम में रखा रहने दें) फिर छान कर बोतल में भर लें। —भै० र०

गुण और उपयोग—यह तैल सफेद कुष्ठ (कोढ़), खुजली, वातरक्त, औदुम्बर कुष्ठ (शरीर भर में लाल चट्ठे पड़ जाना) आदि रक्त-विकार में बहुत लाभ करता है।

कुष्ठ या खुजली की प्रारम्भिक अवस्था में इस तैल की मालिश करने और साथ-साथ कैशोर गूगल या अमृतादि गूगल आदि के खाने एवं खदिरारिष्ट भोजनोत्तर बराबर जल मिलाकर पीने से रोग आगे न बढ़कर वहीं रुक जाता है।

खदिरादि तैल

खैर की छाल ५ सेर, मौलसरी की छाल ५ सेर—दोनों को कूट कर २५॥ सेर ८ तोला जल में पकावें। जब ६ सेर ६ छटाँक २ तोला जल बाकी रहे, तब कपड़े से छान उसमें १२८ तोला तिल तैल मिलावें। फिर खैर की छाल, गेरू, लौंग, अगर, पद्माख, मजीठ, लोध, मुलैठी, लाख, बड़ की छाल, नागरमोथा, दालचीनी, जायफल, कबाबचीनी, अकरकरा, पतंग, धाय के फूल, छोटी इलायची, नागकेशर और कायफल प्रत्येक १-१ तोला लें। इनका कल्क बना, तैलपाक विधि से मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध कर लें। जब तैल सिद्ध हो जाय, तब ठण्डा होने पर उसमें १ तोला कपूर का चूर्ण मिला, कपड़े से छान लें।

—सि० यो० सं०

गुण और उपयोग—इस तैल के प्रयोग से मुंह का पकना, मसूड़ों का पकना और मवाद (पीव) आना, दाँतों का सड़ना, दाँतों में

छिद्र होना फटना, दाँतों में कीड़े लगना, मुँह की दुर्गन्ध तथा जीभ, तालु और होठों के रोग नष्ट हो जाते हैं।

मुखरोग—मुंह में छाले हो जाने पर इस तेल को रूई के फाहे में लगा, छालों पर लगावें और लार नीचे टपकावें। ऐसे दिन-भर में ३-४ बार करने से धीरे-धीरे छाले दूर हो जाते हैं।

इसी तरह मसूड़े सड़ने पर—कभी-कभी मसूड़ों का मांस सड़ कर कटने लगता है, जिससे दाँत कमजोर हो, जल्दी गिर पड़ते हैं। अथवा पायरिया आदि के कारण मसूड़ों से खून आने लगता है। इसकी उचित चिकित्सा न करने पर दाँत कमजोर होकर गिरपड़ते हैं। दाँतों के छेद में मैल जमा होने अथवा मसूड़ों में पीव (मवाद) भर जाने से मुँह से दुर्गन्ध आने लगती है। इन विकारों में इस तैल को फाहे से लगाने के बजाय, इस तैल का कुल्ला कराया जाय तो बहुत शीघ्र लाभ होता है। तेल को मुंह में डालकर करीब २-३ मिनट तक मुंह में चारों तरफ चलाते रहें, फिर कुल्ला कर दें। इस विधि से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

गन्धकपिष्टी तैल

गन्धक को खरल में घोटकर पिष्टी बना, चौगुने कटु तैल में मिलाकर सूर्य की प्रखर धूप में रख दें। जब वह तैल, सूर्य की प्रखर गरमी से तप्त हो जाय, तब शीतल होने पर उसको शीशी में भर लें। —र० र० स०

गुण और उपयोग—इस तैल के उपयोग से नयी-पुरानी खुजली, वह चाहे सूखी हो या गीली, कुछ दिनों तक धूप में बैठकर मालिश करने तथा बाद में नीम का साबुन लगाकर स्नान करने से चली जाती है। इसके साथ-साथ शुद्ध गन्धक २ रत्ती बराबर मिश्री मिला कर घी के साथ दोनों शाम लेते रहने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

गर्भविलास तैल

शिवलिंगीकन्द, अनार के पत्ते, हल्दी, हरड़, बहेड़ा, आँवला,

सिंघाड़े के पत्ते, चमेली के फूल, शतावर, नीलकमल और सफेद कमल, इन सबका कल्क और क्वाथ बनाकर तैल सिद्ध कर लें।

—भै० र०

गुण और उपयोग—गर्भावस्था में कभी-कभी गर्भिणी के पेट में दर्द होने लगता है। उस समय दर्द शान्त करने के लिये कोई दवा खिला नहीं सकते, ऐसी दशा में इस तैल की मालिश धीरे-धीरे पेट पर तथा पेट के चारों तरफ करने से दर्द बन्द हो जाता है।

कभी-कभी गर्भावस्था में योनि द्वारा खून निकलने लगता है। यह बहुत खतरनाक बीमारी है। इससे गर्भाशय कमजोर होकर बच्चा असमय में ही बाहर निकल आता है, इसी को गर्भस्राव या गर्भपात कहते हैं। ऐसी हालत में रूई की एक मोटी बत्ती बना, इस तैल में डुबोकर योनिमार्ग द्वारा गर्भाशय में रखने से रक्तस्राव रुक जाता है। फिर गर्भपात या स्राव होने का डर नहीं रहता। यह प्रयोग लगातार कम से कम एक सप्ताह करना चाहिये।

इस तैल की बराबर मालिश करने से गर्भ पुष्ट होता है और बच्चा हृष्ट-पुष्ट तथा चिरायु उत्पन्न होता है। गर्भिणी के लिये यह तैल बहुत उपयोगी है।

ग्रहणीमिहिर तैल

धनियाँ, धाय के फूल, लोध, मजीठ, अतीस, हर्रे, खस, मोथा, नेत्रबाला, मोचरस, रसौत, बेलगिरी, नीलोफर, तेजपात, नागकेशर, कमलकेशर, गिलोय, इन्द्रजौ, काली निशोत, पद्माख, कुटकी, तगर, छारछरीला, भाँगरा, काला भाँगरा, पुनर्नवा, आम की छाल, जामुन की छाल, कदम्ब की छाल, कुड़े की छाल, अजवायन और जीरा प्रत्येक १-१ तोला लेकर इनका कल्क बना लें। यह कल्क और मट्ठा (छाछ) या कुड़े की छाल का क्वाथ २५६ तोला के साथ ६४ तोला तिल तैल मिलाकर तैलपाक विधान से तैल सिद्ध कर लें।

—भै० र०

गुण और उपयोग—यह सब प्रकार की ग्रहणी, अतिसार, ज्वर, तृष्णा, श्वास, हिक्का और उदर रोगों का नाश करता है।

यह तैल रसायन है और अकाल में केश (बाल) पकने को रोकता तथा देह की ढीली चमड़ी को सख्त करता है। इसे यथोचित अनुपान के साथ ३-६ माशे की मात्रा में पिलाना और पेट पर मालिश करनी चाहिये।

संग्रहणी रोग में—पुरानी संग्रहणी में रस-रक्तादि धातुओं की कमी तथा अन्नादिकों का पचन ठीक तरह से न होने और आँतों की कमजोरी के कारण दस्त पतले होने लगते हैं। इस रोग में जब किसी दवा से लाभ होते न दीख पड़े, तब इस तैल में से ३ माशे बकरी या गाय के दूध में मिलाकर पिलावें तथा थोड़ा-सा तैल लेकर शरीर में या पेट पर मालिश करें, साथ ही पीयूषबल्ली रस और धान्य-पंचक काढ़े का भी सेवन करते रहने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। खाने के लिये केवल मट्ठा ही पीने को दें, और कुछ नहीं। इस तरह करीब दो सप्ताह में ही काफी सुधार मालूम होने लगता है। यह तैल वायुशामक होने के कारण ग्रहणी रोग में विशेष लाभ करता है।

चन्दन-बला-लाक्षादि तैल

चन्दन सफेद, खरेंटी की जड़, लाख, खस प्रत्येक ६४-६४ तोला लेकर १२॥। सेर ४ तोला जल में पकावें। जब चौथाई पानी शेष रहे, उतारकर छान लें। फिर यह क्वाथ तथा निम्नलिखित कल्क और ३ सेर ३ छटाँक १ तोला दूध के साथ १२८ तोला तैल सिद्ध कर लें।

कल्कद्रव्य—सफेद चन्दन, खस, मुलैठी, शतावरी, कुटकी, देव-दारु, हल्दी, कूठ, मजीठ, अगर, नेत्रबाला, असगंध, खरेंटी, दारुहल्दी, मूर्वा, मोथा, मूली, इलायची, दालचीनी, नागकेशर, रास्ना, लाख, अजमोद, चम्पक, पीतसार (पीला चन्दन), सारिवा, विड्लवण और सेंधा नमक, सब चीजें समान भाग मिलाकर, आध सेर लेकर कल्क बना, उपरोक्त दवा में मिला, तैलपाक विधि से तैल सिद्ध कर लें।

—वृ० नि० र०

गुण और उपयोग—यह तैल खाँसी, श्वास, क्षय, छर्दि, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, कफ रोग, दाह, कण्डू, विस्फोटक, शिरोरोग, नेत्रदाह,

शरीर की दाह, सूजन, कामला, पाण्डुरोग और ज्वर का नाश करता है।

इसके अतिरिक्त—ज्वर, दाह, पाण्डु, छाती, कमर, हाथ-पाँव का जकड़ जाना, इसमें भी लाभदायक है। सूखी खुजली, चेचक, जोड़ों की सूजन आदि में भी इस तैल का उपयोग किया जाता है। जीर्ण ज्वर और पाण्डु रोग में यह विशेष उपयोगी है।

किसी भी बीमारी के कारण रस-रक्तादि धातुओं की कमी होने से शरीर कमजोर हो गया हो, अर्थात् शरीर में रक्त की कमी, थोड़ा-थोड़ा बुखार का भी अंश बना रहना, हाथ-पाँव आदि में जलन अथवा अशक्ति, किसी भी कार्य में मन नहीं लगना, ज्यादे चलने-फिरने में असमर्थ रहना इत्यादि लक्षण उपस्थित होने पर इस तैल की मालिश दोनों शाम करते रहने से, ज्वर की गर्मी धीरे-धीरे कम हो जाती है तथा शरीर में रस-रक्तादि धातुओं की वृद्धि होकर शरीर पुष्ट होने लगता है।

इसी तरह बच्चों की बीमारी—सूखा रोग में भी इस तैल की मालिश करने से बहुत लाभ होता है। परन्तु तैल मालिश के साथ-साथ प्रवाल या मुक्तापिष्टी, लौहभस्म अथवा स्वर्णवसन्तमालती उचित मात्रा में सेवन कराना चाहिये। इससे बच्चे की तन्दुरुस्ती बहुत शीघ्र बन जाती है और बच्चा हृष्ट-पुष्ट हो जाता है।

चन्दनादि तैल

तिल तैल १ सेर ९ छटाँक ३ तोला, कल्कद्रव्य—लाल चन्दन, सुगंधबाला, नखी, कूठ, मुलैठी, छरीला, पद्माख, मजीठ, सरल काष्ठ, देवदारु, कचूर, छोटी इलायची, पूति (मुश्कविलाव), नागकेशर, तेजपात, शिलारस, मुरामांसी, शीतलचीनी, प्रियंगु, मोथा, दोनों हल्दी, दोनों सारिवा, कुटकी, लौंग, अगर, केसर, दालचीनी, रेणुका, नालुका प्रत्येक १-१ तोला, दही का पानी ६। सेर १२ तोला, लाक्षा रस १ सेर ९ छटाँक ३ तोला, सबको तैलपाक विधि से पकावें।

—भै० र०

गुण और उपयोग—यह चन्दनादि तैल रक्त-पित्त, क्षय, ज्वर, दाह, पसीने की दुर्गन्ध, जीर्णज्वर, अपस्मार, उन्माद, शिर-दर्द, धातु की विकृति आदि रोगों को दूरकर शरीर की कान्ति बढ़ाता और दीर्घायु प्रदान करता है। यह तैल सौम्य (शीतल) गुण प्रधान होने के कारण पित्त-विकारों में विशेष लाभदायक है।

जात्यादि तैल

चमेली के पत्ते, नीम के पत्ते, पटोल पत्र, करंज के पत्ते, मोम, मुलैठी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मजीठ, पद्माख, लोध, हर्रे, नीलोफर (नील कमल), नीला थोथा, सारिवा और करंज के बीज प्रत्येक समान भाग लेकर पानी में पीस, कल्क बना लें। इस कल्क को चौगुने तैल में मिलाकर तैल से चौगुना पानी डाल, मन्दाग्नि पर पकावें। जब पानी जल जाय, तैल मात्र शेष रहे, छानकर रख लें। —शा० ध० सं०

गुण और उपयोग—इस तैल के सब गुण लगभग जात्यादि घृत के समान ही हैं। इसके लगाने से विषाक्त घाव, जैसे मकड़ा आदि विषैले जन्तुओं के स्पर्श से होनेवाले घाव और साधारण घाव, चेचक, खुजली—सूखी-गीली दोनों तरह की, विसर्प, शस्त्रादि से कट जाने पर हुआ घाव, अग्नि से जलने या कील आदि घुस जाने से उत्पन्न हुआ घाव तथा नाखून या दाँतों के काटने से होनेवाले घाव या कहीं रगड़ लगकर चमड़ी छिल गयी हो, इस तरह के घावों के लिये यह तैल बहुत उपयोगी है।

तुवरक तैल

भारतवर्ष के पश्चिम समुद्र के तट पर कोंकण से त्रावणकोर तक तुवरक के वृक्ष होते हैं। इसके फल को मराठी में 'कडूकवीठ' कहते हैं। वर्षा ऋतु के आरम्भ में जब इस वृक्ष के फल पककर तैयार हो जायें, तब लाकर उसके अन्दर का मगज निकाल सुखा करके कोल्हू में पेरवाकर तैल निकाल लें अथवा मगज का चूर्णकर

उसको जल के साथ पकावें। जब तैल पानी के ऊपर आ जाये, तब धीरे-धीरे उसमें से तैल निकाल लें। फिर इस तैल को मन्दी आँच पर इतना पकावें कि जलभाग जलकर तैल मात्र शेष रह जाय, बाद को उतार कपड़े से छानकर रख लें। इस तैल को बेर की छाल के तिगुने क्वाथ में पुनः पकावें। जब क्वाथ का पानी जल जाय और तैल मात्र शेष रहे, तब छानकर बोतलों में रख लें। इन बोतलों को कण्डे के चूर्ण में तीन दिन तक गाड़ कर रखने के बाद तैल काम में लावें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और उपयोग विधि—सबेरे-शाम दिन में दो बार यह तैल पाँच बूंद की मात्रा में आरम्भ करे और प्रति चौथे दिन पाँच बूंद की मात्रा बढ़ाकर १ तोले तक गाय के ताजे मक्खन या दूध की मलाई में मिला कर देवें। रोगी जितनी मात्रा सहन कर सके, उतनी बढ़ावें। जब मात्रा सहन नहीं होती है, तब जी मिचलाने लगता है, और वमन भी होती है। ऐसी अवस्था उत्पन्न होने पर तैल की मात्रा घटा दें। स्नान करने के बाद इस तैल की मालिश करावें, रोगी जितनी मात्रा सहन कर सके, उतनी मात्रा में ६ माह तक इसका सेवन करावें।

सब प्रकार के कुष्ठों में इस तैल के खाने और लगाने से बहुत लाभ होता है। इस तैल में कपड़ा भिगोकर व्रण पर रखने से व्रण भर जाता है। खुजली आदि में भी लगाने से लाभ होता है।

नारायण तैल

असगंध, बरियार की जड़, बेर की जड़, पाढ की जड़, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखुरू, सम्भालू की पत्ती, सोनापाठा के मूल या छाल, गदहपूरना के मूल, उड़द, कटसरैया, रास्ना, एरण्ड मूल, देवदारु, प्रसारणी और अरणी—प्रत्येक ४०-४० तोला लें। उनको जौकुट करके ५१ सेर १६ तोला जल में पकावें। जब १२॥। सेर ४ तोला जल शेष रहे, तब उतार कर ठण्डा होने पर कपड़े से छान लें। फिर उसमें तिल का तैल २५६ तोला, सतावर का रस २५६ तोला, गाय का दूध २५६ तोला, कूठ, छोटी इलायची, सफेद चन्दन, बरियार

के मूल, जटामांसी, छरीला, सेंधा नमक, असगंध, बच, रास्ना, सौंफ, देवदारु, सरिवन, पिठवन, माषपर्णी, मुद्‌गपर्णी, तगर प्रत्येक ८-८ तोला ले कल्क बना, तैल में मिलाकर पकावें। तैल सिद्ध होने पर कपड़े से छान, शीशियों में भर लें। —सि० यो० सं०

गुण और उपयोग—इस तैल के उपयोग से सब प्रकार के वायु रोग जैसे—पक्षाघात, अर्दित, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, अपबाहुक, कमर का दर्द, पसली का दर्द, कान का दर्द, शरीर के किसी अवयव का सूखना, लँगड़ापन, शिर का दर्द तथा अन्य एकांग या सर्वाङ्ग में होने वाले वात रोगों में लाभ होता है। इस तैल का उपयोग मालिश करने में, नस्य देने में, कान में डालने में, पिलाने और बस्ति देने में किया जाता है।

यह तैल सौम्य और अद्‌भुत चमत्कार दिखाने के कारण बहुत विख्यात है। इसमें शतावरी का रस प्रधान है और चूँकि शतावरी का नाम नारायणी है, अतएव इसका भी नाम "नारायण तैल" रखा गया है।

जहाँ-जहाँ दर्द हो, वहाँ-वहाँ इस तैल की धीरे-धीरे मालिश करें। फिर दर्दस्थान को ऊनी कपड़े से लपेट दें। लगभग तीन घण्टे के बाद पुनः गरम पानी से सेक करें। यदि वायु की प्रबलता हो तो पानी गरम करते समय निर्गुण्डी, करंज, नीम इनमें से एक या सब वृक्षों के पत्ते और खशखश के पोस्त डालकर पानी गरम करना चाहिये। रात को एक बार या ज्यादा दर्द हो, तो सुबह-शाम तेल लगाकर सेंक दें। शरीर के किसी भी कोमल स्थान पर यह तैल लगाने से किसी प्रकार की हानि नहीं होती है। छोटे बच्चों के एक अण्ड-कोष-वृद्धि या बड़ी उम्र वालों की अण्ड-वृद्धि पर भी इसका उत्तम उपयोग होता है।

धनुर्वात में—छाती पर, गले से लेकर कमर तक पीठ की सभी नसों पर यह तैल लगाकर उपरोक्त विधि से सेक करना चाहिए। हर दो घण्टे के बाद १५ बूंद तैल गर्म पानी या किसी वातनाशक काढ़े में मिलाकर पिलाने से भी लाभ होता है। इस तरह से

गला व ठोड़ी का स्तम्भ, गलग्रह, सर्वाङ्ग शरीर या हाथ-पाँव की ऐंठन आदि अति त्रासदायक वायु के दर्द दूर हो जाते हैं।

शरीर का एक भाग सूख जाना—लकवा, पक्षाघात आदि वायु के कारण शरीर का एक भाग सूख जाता है। वहाँ रक्त-संचार न होने से वह भाग शून्य और पतला हो जाता है। ऐसी हालत में नारायण तैल की मालिश से बहुत लाभ होता है।

कभी-कभी गला और पाँव के जोड़ों की हड्डियों में विकार पैदा होकर उनके कारण हाथ-पाँव के हिलने-डुलने में बाधा पड़ने लगती है। उसमें रह-रह कर चमक होने लगती है, ऐंठन पैदा होती है—ऐसी अवस्था में नारायण तैल के लगातार कुछ दिनों तक मालिश एवं सेक करने से काफी लाभ होता है। करीब १ माह बाद वहाँ की हड्डियों की विकृति दूर हो जाती और रक्त-संचार होने लग जाता है।

पुराने वात रोगों में इस तैल की मालिश करें और साथ ही चन्द्रप्रभा बटी, योगराज गूगल आदि का सेवन करने से कष्टसाध्य वात रोग भी दूर हो जाते हैं।

ज्वर, राजयक्ष्मा, माथे का दर्द, बुद्धि की कमी, स्मरणशक्ति का ह्रास, बधिरता आदि का नाश करने के लिये नारायण तैल का उपयोग किया जाता है।

त्वचा (चमड़ी), नसें, मांस, हड्डियों को मजबूत करना इत्यादि गुण इस तैल में विशेष होने की वजह से, यह बालक, युवक, वृद्ध, गर्भवती स्त्रियाँ सब को लाभ करता है। इस तैल की मालिश से नसें फैल जाती हैं तथा रक्त का संचार अच्छी तरह होने लगता है। यही कारण है कि जो अंग शुष्क-निर्जीव-से हो जाते हैं, उनमें भी इसकी मालिश से जीवन प्राप्त हो पुष्ट हो जाता है। यह गुण और तैलों की अपेक्षा इसमें अधिक है।

नासार्शोहर तैल

गृहधूम (घर की छत में जमा हुआ धुआँ), छोटी पीपल, देवदारु, जवाखार, करंज की छाल, सेंधा नमक और अपामार्ग के बीज, प्रत्येक

२-२ तोला लें, इन्हें जल में पीसकर कल्क बनावें। फिर इसको ६४ तोला तिल तैल और २५६ तोला जल में मिलाकर तैलपाक विधि से पकावें। सिद्ध होने पर छान कर रख लें।

—सि० यो० सं०

गुण और उपयोग—रूई को फाहा बनाकर इस तैल में डुबोकर नाक में टपकाने से नाक में होने वाले मस्से दूर हो जाते हैं।

निर्गुण्डी तैल

सँभालू का रस ६४ तोला, भांगरे का रस ६४ तोला, धतूरे का रस ६४ तोला, गोमूत्र ६४ तोला और तिल तैल ६४ तोला लें। फिर इसमें बच, कूठ, धतूरे का बीज, मालकाँगनी और कायफल प्रत्येक २-२ तोला तथा बच्छनाग इन सब के बराबर लेकर इनका कल्क बनाकर तैलपाक विधि से तैल तैयार करें। —वैद्यामृत

गुण और उपयोग—यह तैल तीक्ष्ण और उष्ण गुणयुक्त है। अतः जिन्हें सर्दी के कारण अथवा जाड़े की ऋतु में वायुप्रकोप के कारण शरीर में दर्द हो, उनके लिये यह तैल बहुत उपयोगी है। इस तैल का अधिक उपयोग जाड़े की ऋतु में ही किया जाता है। वात रोगों में इस तैल के उपयोग से बहुत लाभ होता है।

पंचगुण तैल

हर्रे, बहेड़ा, आँवला प्रत्येक ५-५ तोला, नीम और सम्भालू की पत्ती प्रत्येक १५-१५ तोला ले जौ कुट करके अठगुने जल में पकावें। जब चौथाई जल बाकी रहे, तब उसमें तिल का तैल ८० तोला तथा मोम, गन्धाबिरोजा, शिलारस, राल और गूगल प्रत्येक ४-४ तोला डालकर मन्दी आँच पर पकावें। जब पकते-पकते खरपाक होकर तैल अलग हो जाय, तब कपड़े से छान थोड़ी गरम हालत में उसमें कपूर का मोटा चूर्ण ५ तोला डाल, चमचे से हिलाकर मिला दें। ठण्डा होने पर उसमें तार्पीन का तैल, युकेलिप्टस का तैल और केजोपुटी का तैल २।।-२।। तोला मिलाकर शीशी में भर लें।

—सि० यो० सं०

गुण और उपयोग—संधिवात में—शरीर के किसी भी अवयव के शूल (दर्द) में हल्के हाथ से मालिश करें। कर्णशूल में कान में डालें। सब प्रकार के व्रणों में—व्रण को नीम और सम्भालू की पत्ती के क्वाथ से धोकर उस पर इस तैल में भिगोई हुई रूई या स्वच्छ कपड़ा रख ऊपर से केला-पत्ता, समुद्रशोष, धाय-पात अथवा बड़ का पत्ता रख कर बाँध दें। यह तैल उत्तम वेदनाहर और व्रण का शोधन तथा रोपण करनेवाला है।

प्रमेहमिहिर तैल

सोया, देवदारु, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, कूठ, असगंध, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, रेणुका, कुटकी, मुलेठी, रास्ना, दालचीनी, इलायची, भारंगी, चव्य, धनियाँ, इन्द्रजौ, करंजबीज, अगर, तेजपात, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, नलुका, सुगन्धबाला, खरैटी, कंघी, मजीठ, सरल काष्ठ, कमलपुष्प, लोध, सौंफ, बच, कालाजीरा, खस, जायफल, बासा और तगर प्रत्येक १-१ तोला लेकर कल्क बनावें। फिर तैल ६४ तोला, शतावर का रस ६४ तोला, लाख का रस २५६ तोला, दही का पानी २५६ तोला और दूध २५६ तोला सबको एकत्र कर उपरोक्त कल्क मिलाकर तैलपाक विधि से तैल सिद्ध करें। तैल सिद्ध हो जाने पर छानकर रख लें। —भै० र०

गुण और उपयोग—इसकी मालिश से वात-विकार तथा वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, मेदोगत और मांसगत ज्वर नष्ट होते हैं। यह शुक्रक्षय के कारण दुर्बल व्यक्तियों के लिये विशेष उपयोगी है। यह तैल दाह, पिपासा, पित्त, छर्दि (वमन), मुंह सूखना तथा २० प्रकार के प्रमेह रोगों को नष्ट करता है।

यह तैल पित्त और वायु शामक तथा सौम्य और रक्तादि धातु-वर्द्धक एवं शरीर को पुष्ट करने वाला तथा वीर्यवाहिनी नाड़ियों को ताकत देने वाला है।

प्रसारिणी तैल

५ सेर प्रसारिणी को १२॥। सेर ४ तोला जल में पकावें, जब ३८१ तोला जल शेष रह जाय, तब उतार कर छान लें। फिर इसमें

६३ॾ १ तोला तैल तथा दही और काँजी तेल के बराबर, गौ का दूध तैल से चौगुना और तैल का आठवाँ हिस्सा निम्न ओषधियों का कल्क लें यथा—मुलेठी, पीपलामूल, चित्रक की जड़, सेंधानमक, बच, प्रसारिणी, देवदारु, रास्ना, गजपीपरि, भिलावा, सौंफ और जटामांसी सब समान भाग लेकर कल्क बना, सबको एकत्रकर विधिपूर्वक तैल सिद्ध करें। —शा० ब० सं०

गुण और उपयोग—इस तैल की मालिश की जाती और नस्य तथा अनुवासन बस्ति दी जाती है। यह तैल गृध्रसी, अस्थि-भंग (हड्डी टूटना), मन्दाग्नि, अपस्मार (मृगी), उन्माद (पागलपन) और विद्रधि का नाश करता है। जो व्यक्ति तेज नही चल सकते, उनकी नसों में रक्त का संचार कर फुर्ती पैदा करता है। त्वचा और शिरा तथा सन्धि (जोड़) गत वायु को नष्ट करता है। इस तैल में यह विशेषता है कि जितना फायदा वायु से पीड़ित मनुष्यों को इससे होता है, उतना ही फायदा पशुओं (बैल, घोड़े, गाय आदि) को भी होता है।

यह तैल रक्त और मांस को पुष्ट करने वाला तथा कमजोर हाथ-पाँव आदि शारीरिक अंगों में शक्ति प्रदान करनेवाला और शरीर की कान्ति को सुधारने वाला है। इसकी मालिश से शरीर में बल की वृद्धि होती तथा सन्तानोत्पादन की शक्ति आती है। जो मनुष्य लंगड़ा कर चलता हो वह इस तैल की लगातार नियमित रूप से कुछ दिनों तक मालिश तथा दूध के साथ सेवन करे, तो लंगड़ापन अवश्य दूर हो जायगा। क्योंकि इसमें प्रसारिणी प्रधान है, जो नसों तथा हड्डियों के विकार को ठीक करने में प्रसिद्ध है।

बाधिर्य नाशक तैल

शहद, अदरक का रस, संहजने की जड़ की छाल का रस और केले की जड़ का रस प्रत्येक १-१ सेर, तिल तैल १ सेर लेकर सबको एकत्र मिलाकर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर उतार कर छान करके रख लें। —यो० त०

गुण और उपयोग—कान में ज्यादा मैल जम जाने अथवा कान के छेद किसी कारण बन्द हो जाने अथवा सुनने की शक्ति कम हो जाने या सुनाई कम देने पर इस तैल का उपयोग करें। कान में किसी प्रकार की बीमारी हो, इससे पूर्ण लाभ होता है।

वासाचन्दनाद्य तैल

कल्क—सफेद चन्दन, रेणुका, जुन्दबेदस्तर, असगंध, प्रसारणी, दालचीनी, तेजपात, इलायची, पीपलामूल, नागकेशर, मेदा, महा-मेदा, सोंठ, मिर्च, पीपल, रास्ना, मुलैठी, भूरि छरीला, कचूर, कूठ, देवदारु, फूल प्रियंगू और बहेड़ा प्रत्येक ४-४ तोला लेकर सबको एकत्र पीस लें। फिर ५ सेर वासे को कूटकर १२।।। सेर ४ तोला पानी में पकावें और चौथाई पानी शेष रहने पर छान लें। बाद में—लाल चन्दन, गिलोय (गुर्च), भारंगी, दशमूल और कटेली प्रत्येक १-१ सेर लेकर सबको एकत्र कूट करके १२।।। सेर ४ तोला पानी में पकावें, जब चौथाई शेष रहे, छान लें। फिर तिल तैल ३ सेर ३ छटाँक १ तोला, लाख का रस और दही का पानी प्रत्येक तैल के बराबर लेकर सबको एकत्र मिला, तैल पाक विधि से तैल तैयार कर रख लें।

—भै० र०

गुण और उपयोग—यह तैल कास, ज्वर, रक्तपित्त, पाण्डु, हलीमक, कामला, क्षत-क्षय, राजयक्ष्मा और श्वास में उपयोगी है। इसकी मालिश से बल-वर्ण की वृद्धि होती है।

इस तैल का उपयोग राजयक्ष्मा की खाँसी, पुरानी खाँसी और श्वास से जिसका शरीर दुर्बल हो गया हो, उसमें किया जाता है। यह तैल सौम्य होने की वजह से कफ को ढीला करता है तथा श्वासपथ अथवा छाती में बैठे हुए पुराने कफ को पिघलाकर बाहर निकालता है। साथ ही शरीर में रक्त की भी वृद्धि कर देह को पुष्ट और कान्तिमान बना देता है।

रक्तपित्त में पित्त की विकृति के कारण खून ज्यादा मात्रा में गिरता हो, खाँसी तेज आती हो, शरीर में दाह-जलन होता हो, प्यास

ज्यादा लगती हो, ज्वर भी बना रहता हो, रक्त की कमी के कारण शरीर का वर्ण पीला हो गया हो, इत्यादि लक्षण उपस्थित होने पर इस तैल की मालिश से अच्छा लाभ होता है ; क्योंकि यह पित्त विकार शामक तथा खून को रोकने वाला है। रक्त को रोकना भी इसका प्रधान कार्य है। इसीलिये रक्त-पित्त रोग में वासा द्वारा अनेक औषधियाँ बनाकर देने का शास्त्र में उपदेश है। इसकी प्रशंसा करते हुए यहाँ तक लिखा गया है कि जब तक वासक का पेड़ है, तब तक रक्तपित्त के रोगी को चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

विपरीतमल्ल तैल

कल्क—सिन्दूर, कूठ, बच्छनाग, हींग, लहसन, चित्रक, सुगन्ध बाला की जड़ और कलिहारी की जड़ प्रत्येक १-१ तोला लेकर सबको एकत्र पीस लें। —भै० र०

१ सेर कड़ुए तैल में यह कल्क तथा ४ सेर पानी मिलाकर पकावें। जब पानी जल जाय, तब तैल को छान लें।

गुण और उपयोग—यह तैल खुजली, दाद, कुष्ठ के घाव, अस्त्र-शस्त्र द्वारा कटे हुए घाव, फोड़े, उपदंश के घाव, नासूर आदि को नष्ट करता है।

विषगर्भ तैल

ताजे असगन्ध के मूल, कनेर की जड़, आक की जड़, धतूरे का पंचांग, संभालू की पत्ती और कायफल प्रत्येक ६४-६४ तोला लेकर अठगुने जल में क्वाथ करें, चौथाई जल बाकी रहने पर क्वाथ को कपड़े से छानकर उसमें तिल तैल १२८ तोले और बच्छनाग, धतूरे के बीज, घुंघची, अफीम, खुरासानी अजवायन, कलिहारी की जड़, कूठ, कुचला और बच प्रत्येक ४-४ तोले का कल्क मन्दी आँच पर पकावें। तैल तैयार होने पर कपड़े से छान थोड़ी गरम हालत में उसमें ५ तोला कपूर का महीन चूर्ण मिलाकर शीशी में भर लें।

—सि० यो० सं०

गुण और उपयोग—इस तैल की मालिश से सन्धियों की सूजन गृध्रसी, सिर दर्द, समूचे शरीर में हड़फूटन होना, कानों में आवाज होना, आधा शरीर सूख जाना आदि रोग नष्ट होते हैं।

यह बहुत प्रसिद्ध तैल है। पुराने वात रोगों में इस तैल की मालिश से बहुत लाभ होता है। ज्यादा परिश्रम या रास्ता चलने आदि के कारण शरीर में थकावट मालूम हो अथवा देह अकड़ती हो, जम्भाई बार-बार आती हो, शरीर में दर्द होता हो, कभी-कभी ज्यादे सर्दी लग कर शरीर में वायु सम्बन्धी दर्द होने लगता हो, इन अवस्थाओं में विषगर्भ तैल की मालिश से शीघ्र लाभ होता है।

विष्णु तैल

शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, बला, शतावर, रेंड़ी की जड़, बड़ी और छोटी कटेली की जड़, करंज की जड़, नागबला और कटसरैया की जड़ प्रत्येक का जौकुट चूर्ण ४-४ तोला, तैल ६४ तोला (१२ छटांक ४ तोला), गाय या बकरी का दूध ऽ३≡ १ तोला लेकर सबको एकत्र कर तैलपाक विधि से पकाकर तैल छानकर रख लें। —भै० र०

गुण और उपयोग—इस तैल की मालिश से वात व्याधि से पीड़ित हाथी घोड़े तक भी अच्छे हो जाते हैं। विशेष शुक्रपात होने अथवा छोटी आयु में अप्राकृतिक ढङ्ग से शुक्र का नाश करने से यदि शुक्रवाहिनी नाड़ियाँ कमजोर हों, नपुंसकता उत्पन्न हो गयी हो, तो इस तैल की मालिश से वह भी दूर हो जाती है। इसके अतिरिक्त यह तैल हृच्छूल; पार्श्व-शूल, अर्धावभेदक, पाण्डु, कामला, राजयक्ष्मा, लकवा और वातरक्त को भी नष्ट करता है।

जो पुरुष जवान होते हुए भी शुक्र की कमी के कारण अपने को बुड्ढे समझते हों, उन्हें भी इस तैल की मालिश से बहुत लाभ होता है। जिन स्त्रियों के सन्तान नहीं होती हो, उन्हें इस तैल का अवश्य सेवन करना चाहिये। इस तैल की मालिश से गर्भाशय सशक्त हो गर्भ धारण करता है। यदि गर्भ गिर जाता हो, तो विशेषकर पेडू तथा पेट के आसपास एवं जांघों में इस तैल की मालिश करें,

और रूई के फाहे में इस तैल को भिगोकर योनि द्वारा गर्भाशय के मुख पर रखें। इस तरह एक सप्ताह तक फाया रखने से फिर गर्भ गिरने का डर नहीं रहता है।

भृङ्गराज तैल

भाँगरे का स्वरस २५६ तोले, ब्राह्मी स्वरस ६४ तोले, आँवले का रस ६४ तोले, तिल का तैल १२८ तोले, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, कचूर, लोध, मजीठ, बावची, बरियार के मूल, चन्दन, पद्माख, अनन्तमूल, मण्डूर, मेहदी, प्रियंगु, मुलैठी, जटामांसी और कूठ प्रत्येक १-१ तोला इनका कल्क मिलाकर सब को तैलपाक विधि से एकत्र पकावें। जब तैल सिद्ध हो जाय, तब कपड़े से छानकर शीशी में भर लें। —सि० यो० सं

गुण और उपयोग—यह तैल नित्य शिर पर लगाने से शिर के बाल बढ़ते हैं तथा शिर का दर्द, बाल सफेद होना और गिरना ये रोग अच्छे होते हैं। बराबर इस तैल को शिर में लगाने से बाल न तो जल्दी पकते हैं और न झड़ते ही हैं। स्वस्थ स्त्री-पुरुषों को नित्य सिर में लगाने के लिए यह तैल उत्तम है।

मल्ल (संखिया का) तैल

जावित्री, जायफल, लौंग, कालीमिर्च और दालचीनी प्रत्येक ४-४ तोले लेकर महीन चूर्ण करें। एक आस्मानी (नीली) रंग की बोतल पर तीन कपरोटी करके उसमें आधा चूर्ण भर दें। बीच में तीन तोला संखिया का चूर्ण डालकर उसके ऊपर गूगल और गन्धक का ६-६ माशे चूर्ण डाल दें। तदुपरान्त शेष चूर्ण भरकर झाड़ू के पतले तिनकों से बोतल का मुंह बन्द कर दें और पाताल यन्त्र की विधि से तैल निकाल लें। जल जैसा तैल निकलेगा।

—आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान—५ से १० बूंद तिल तैल में मिलाकर लगावें।

गुण और उपयोग—यह तेल बहुत उग्र और तत्काल फल दिखाने-वाला है। वात-वेदना में इस तैल की १० बूंद को अन्य तैल में मिलाकर मालिश करने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

नीम की सींक तैल में भिगाकर पान में रगड़ दें। इस पान के खाने से दमे में तत्काल फायदा होता है। बराबर खाने से बल की वृद्धि होती है। नपुंसकता में इन्द्रिय का मूंह छोड़कर मालिश करें तथा १-१ बूंद खाने को दें। शर्तिया आराम होगा।

मरिचादि तैल

कड़ुवा तैल ६४ तोले, गोमूत्र १२८ तोले, कालीमिर्च, हरताल, मैनसिल, जटामांसी, नागरमोथा, आक का दूध, कनेर की जड़, निशोथ, गोबर का रस, इन्द्रायण की जड़, कूठ, दारुहल्दी, हल्दी, देवदारु, लाल चन्दन, प्रत्येक १-१ तोला, तेलिया मीठा विष २ तोले, इन दवाओं का कल्क बना, उपरोक्त तैल में डाल दें। फिर तैल-पाक विधि से तैल तैयार कर रख लें। —शा० ध० सं०

गुण और उपगोग—कुष्ठ, सूजन, सुनबहरी वात, देह में चट्ठे निकलना और व्रण आदि रोगों में इस तैल के लगाने से लाभ होता है। आग से जल जाने पर होने वाला घाव, नासूर, कहीं गिर पड़ने से खुर्च (छिल) कर हुआ घाव, जो फोड़ा बराबर बहता ही रहता हो, फोड़ा-फुन्सी, छाला, गण्डमाला, गाँठ, बदन पर इसकी मालिश या रूई में लगाकर पट्टी रखने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

गीली या सूखी खुजली, दाद, विसर्प, पित्ती उछलना (शीतपित्त) खाज आदि में भी इस तैल से लाभ होता है। इस तैल की पट्टी से व्रण के सड़ने की क्रिया बन्द हो कर कृमि (कीड़े) मर जाते हैं।

ऋतुकाल में स्त्रियों के पेट में दर्द होता हो, तो इसकी ८-१० बूंद नाभि में डाल कर पेट मलने से शूल कम हो जाता है। इस तैल लगे हाथ से आँख नहीं छूना चाहिए। तैल मालिश के बाद हाथ को साबुन से खूब मलकर साफ कर लेना चाहिए। क्योंकि यह तैल विषाक्त है।

महामाष तैल (निरामिष)

२५६ तोला तिल तैल को खूब औटाकर संस्कार कर लें। फिर असगंध, कपूरकचरी, देवदारु, खरेंटी, रास्ना, प्रसारणी, कूठ, फालसा, भारङ्गी, विदारीकन्द, क्षीर विदारीकन्द, पुनर्नवा, शतावरी, बिजौरा नीबू, सफेद जीरा, स्याह जीरा, हींग, सौंफ, गोखुरू, पीपरामूल, चित्रक, सेंधा नमक और जीवनीय गण—इन सब दवाओं को सम-भाग मिलाकर ६४ तोले का कल्क करके तैल में डालें। फिर ३ सेर तीन छटाँक १ तोला दशमूल को २५।। सेर ८ तोला जल में पकावें, जब १२।।। सेर ४ तोला शेष रह जाय, तब छानकर उक्त तैल में यह क्वाथ डालकर पकावें, फिर बढ़िया माष (उड़द) ऽ३≡ १ तोला को २५।। सेर ८ तोला जल में पकावें। चौथाई जल शेष रहने पर छानकर क्वाथ तैल में डालें। इसी प्रकार १०२४ तोला दूध भी तैल में डालकर पकावें, पकते-पकते जब तैल मात्र शेष रह जाय, तब गर्म ही छानकर बोतलों में भर लें। बहुत से वैद्य तैल को ठण्डा होने पर छानते हैं। परन्तु ऐसा होने पर तैल कल्क में रह जाता है; अतः गर्म ही छानना चाहिये। —भै० र०

गुण और उपयोग—पक्षाघात, हनुस्तम्भ, अर्दित, अपतन्त्रक आदि कठिन रोगों में लाभ पहुँचाता है।

पुराने वात रोगों में—कफ और वात प्रकृतिवाले पुराने वात-रोगी को यह बहुत शीघ्र और अद्‌भुत चमत्कार दिखलाता है। परन्तु इस तैल मालिश के साथ-साथ महारास्नादि क्वाथ के साथ वृहत् योगराज गूगल दोनों शाम सेवन कराते रहें और बादी या कफवर्द्धक अथवा दस्तकब्ज करने वाले पदार्थों से परहेज रखें, तो पुराने से पुराना वातरोगी इस उपचार से अच्छे हो जाते हैं। कई बार का अनुभव है।

महासुगन्धित तैल

यूकलिप्टस आइल (इलायची का रूह) २।। तोला, कपूर २।। तोला, सन्तरे का रूह (तैल) २।। तोला लें। इन तीनों को बोतल

में भर कर डाट लगा दें। एक घण्टे में तीनों चीजें मिलकर तैल हो जायगा। फिर सफेद तिल का तैल भी इसी बोतल में डालकर डाट लगाकर रख देने से एक घण्टे में यह सुगन्धित तैल तैयार हो जाता है। —घ०

गुण और उपयोग—जिसके मस्तक में आधाशीशी का दर्द होता हो, उसको सीधा लेटाकर गर्दन के नीचे तकिया लगा कर मस्तक को तकिये के पीछे झुका दें, जिससे नाक के छेद आस्मान की तरफ हो जायँ, फिर २-२ बूंद नासिका में यह तैल डालें और जोर से ऊपर को खींचने के लिये रोगी से कहें, जिससे तैल मस्तक में चढ़ जाय।

एक-दो बार के डालने से ही दो-चार दिन में आधाशीशी का दर्द दूर हो जाता है। यदि वर्षों का रोग हो, तो १०-१५ दिन तक रोज डालने से शर्तिया लाभ होता है। यह तैल इतना सुगन्धित है कि शिर में डालते ही इसकी खुशबू चारों तरफ फैल जाती है। इसको माथे में लगाने से गर्मी के कारण होनेवाले शिर दर्द, दिमाग की गर्मी, बेचैनी, ज्यादा गरमी लगना, माथा बराबर गर्म रहना आदि दूर हो जाते हैं।

लक्ष्मीविलास तैल

छोटी इलायची, सफेद चन्दन, रास्ना, लाख, नखी, कपूर, कंकोल, नागरमोथा, सुगन्धवाला, दालचीनी, देवदारु, काला अगर, तगर, जटामाँसी और कूठ—प्रत्येक १-१ तोला तथा काली राल सब दवा से ३ गुनी लेकर सब को एकत्र कूटकर पातालयन्त्र अथवा डमरूयन्त्र द्वारा तैल निकाल लें और उसमें सुगन्धित फूलों को बसा लें। —यो० र०

गुण और उपयोग—यह तैल वातजन्य अनेक रोगों को नष्ट करता है। पान में इसे खाने से पाचकाग्नि बढ़ती है। इस की मालिश से अर्श, दाद और वात रोगों का नाश होता है।

लाक्षादि तैल

तैल ६४ तोला, सौंफ, हल्दी, मूर्वामूल, कूठ, रेणुका, कुटकी, मुलैठी, रास्ना, असगन्ध, देवदारु, मोथा, सफेद चन्दन—ये १२ दवाएँ १-१ तोला लेकर इनका कल्क बना, तैल में डाल दें। साथ में २५६ तोला दही का पानी और २५६ तोला पीपल की लाख का काढ़ा डाल कर पकावें। जब केवल तैल मात्र शेष रह जाय, तब छानकर बोतल में भर लें। —शा० ध०

गुण और उपयोग—जीर्णज्वर, विषमज्वर, रस-रक्तादिगत धातुज्वर गर्भावस्था में होनेवाला गर्भिणी का ज्वर आदि ज्वरों में इस तैल की मालिश से बहुत लाभ होता है। इसके अतिरिक्त पित्त की गर्मी ज्यादा बढ़ जाने से शरीर में दाह होती हो, हाथ-पाँव एवं आँखों में जलन होती हो, निद्रा न आती हो, शरीर में थकावट मालूम पड़ती हो, इन उपद्रवों में इस तैल की मालिश से बहुत लाभ होता है।

यह तैल सौम्य गुण प्रधान होने से गर्भिणी स्त्री के लिये बहुत उपयोगी है। बालक, वृद्ध और युवा सब के लिये यह तैल उपयोगी है।

शंखपुष्पी तैल

शंखपुष्पी का रस या क्वाथ ४ सेर, बकायन की छाल का क्वाथ ४ सेर, अडूसा का रस ४ सेर, अर्जुन की छाल का क्वाथ, काँजी और लाख का रस प्रत्येक ४-४ सेर और दही ४ सेर लें। फिर अनार की छाल, देवदारु, दारु हल्दी, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, लाल चन्दन, खस, सुगन्धबाला, सफेद चन्दन, मुलैठी, नागर मोथा, श्यामलता (अनन्त-मूल), सेंवार (शैवाल), हरसिंगार, लाल कमल और रसौत समान भाग (एक सेर मिश्रित) लेकर कल्क बनावें।

१ सेर तिल के तैल में यह कल्क और उपरोक्त काढ़े आदि पदार्थ मिलाकर पकावें। जब जलांश शुष्क हो जाय, तब तैल को छान लें। —भै० र०

गुण और उपयोग—इस तैल के मर्दन से बालकों के समस्त रोग

दूर हो जाते हैं तथा यह कान्ति, मेधा, धृति और पुष्टि की वृद्धि करता है।

बच्चों के सूखा रोग में इस तैल के उपयोग से विशेष लाभ होता है। यह तैल रक्त बढ़ानेवाला तथा मांस को पुष्ट करनेवाला है।

शोथशार्दूल तैल

धतूरा, दशमूल, संभालू, जयन्ती, पुनर्नवा और करंज प्रत्येक ३०-३० तोला लेकर सब को १२।। सेर ४ तोला पानी में पकावें और चौथाई जल शेष रहने पर छान लें। फिर रास्ना, पुनर्नवा, देवदारु, सूखी मूली, सोंठ और पीपल समान भाग मिलाकर १६ तोले लेकर कल्क बनावें।

६४ तोले सरसों के तैल में यह कल्क तथा उपरोक्त क्वाथ मिला कर पकावें, जब तैल मात्र रह जाय, तब छान कर रख लें। —भै० र०

गुण और उपयोग—यह तैल वातज, पित्तज, कफज तथा सन्निपातज सर्व देहगत भयंकर से भयंकर शोथ को भी नष्ट कर देता है। इसके अतिरिक्त यह ज्वर, पाण्डु आदि रोगों का भी नाश करता है।

श्रीगोपाल तैल

शतावर, पेठा, आँवला प्रत्येक का रस २५६-२५६ तोले; असगंध, कटसरैया और खरेंटी प्रत्येक ५-५ सेर को पृथक्-पृथक् २५।। सेर ८ तोला जल में क्वाथ करें और ६ सेर ६ छटाँक २ तोला जल शेष रहने पर क्वाथ छानकर रख लें। इस तरह सब क्वाथ १९ सेर २ छटाँक ६ तोला होगा। फिर बेलछाल, अरलू-छाल, खम्भारीछाल, पाढ़ल-छाल, अरणी, कटेली एवं मूर्वा की जड़, केवड़ा की जड़, जुन्दवेदस्तर, फरहद की छाल प्रत्येक ४०-४० तोले लेकर सबको कूटकर २५।। सेर ८ तोला पानी में पकावें, ६ सेर ६ छटाँक २ तोला पानी शेष रहने पर छान लें।

असगंध, चोरपुष्पी, पद्मकाष्ठ, कटेली, खरेंटी, अगर, नागरमोथा, जुन्दवेदस्तर, शिलारस, अगर, सफेद चन्दन, लालचन्दन, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, मूर्वा, जीवक, ऋषभक काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलैठी, सोंठ, मिर्च, पीपल जुन्दवेदस्तर, केसर, कस्तूरी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नाग-

केशर, छारछरीला, नख, नागरमोथा, कमलनाल, नील कमल, खस, जटामाँसी, मुरामाँसी, देवदारु, बच, अनार की छाल, नैपाली धनियाँ, ऋद्धि, वृद्धि, दमनक (दौना मरुआ) और छोटी इलायची, प्रत्येक २-२ तोला लेकर कल्क बनाकर तिल तैल ३ सेर ३ छटाँक १ तोला में उपरोक्त सब दवा मिलाकर तैलपाक विधि से पकावें। तैल सिद्ध हो जाने पर छान कर रख लें। —भै० र०

गुण और उपयोग—इस तैल की मालिश से वातपित्त और कफजन्य सभी तरह के रोग आराम होते हैं। स्मरणशक्ति बढ़ती है और बुद्धि तीव्र हो जाती है। इस तैल के उपयोग से प्रमेह रोग में बहुत लाभ होता है। इसका प्रभाव गर्भाशय पर भी होता है। जिस स्त्री को गर्भपात या गर्भस्राव की आदत हो, इस तैल के सेवन से गर्भाशय बलवान होकर गर्भ धारण करने योग्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त अपस्मार (मृगी), उन्माद, शिर दर्द, दिमाग की कमजोरी आदि रोगों को नष्ट करता है। यह तैल वीर्य-वर्द्धक तथा नपुंसकता नाशक है।

षड्विन्दु तैल

एरंड की जड़, तगर, सोया, जीवन्ती, रास्ना, सेंधा नमक, भांगरा, दालचीनी, बायबिडंग, मुलेठी और सोंठ समान भाग मिश्रित चूर्ण १६ तोला लें, सबको बकरी के दूध में पीसकर, काले तिल का तैल ६४ तोले, बकरी का दूध ६४ तोले और भांगरे का रस २५६ तोले मिला कर मन्दी आँच पर तैलपाक विधि से पकावें। जब तैल सिद्ध हो जाय, तब कपड़े से छान कर शीशी में रख लें। —ग० नि०

गुण और उपयोग—सिर के दर्द के रोगी को चित्त लेटाकर दोनों नथुनों में इस तैल की ६-६ बूँदें डालें। पुराना जुखाम, बार-बार सर्दी, जुखाम होना, नाक के मस्से, नाक के अन्दर की सूजन आदि रोगों में एक सींक पर रूई लगा, इस तैल में भिगोकर नाक के अन्दर लगाएँ।

शिरोरोग के लिये यह तैल बहुत प्रसिद्ध है और तथाकथित गुण भी करता है। पुराने सिरदर्द अथवा सूर्य्यावर्त्त (आधाशीशी,) बालों का विशेष गिरना अथवा शिर के बाल कहीं-कहीं से बिल्कुल उड़ जाना (जिसको गंज कहते हैं) आदि सब उपद्रवों में यह तैल बहुत गुणकारी और लाभदायक है।

क्काथ प्रकरण

१ तोला क्वाथ की ओषधि को अध कुटी (मोटा चूर्ण) करके सोलह गुने पानी में मन्द अग्नि पर पकावें। जब चौथाई पानी शेष रहे, तब कपड़े से छानकर सुखोष्ण (थोड़ा गरम रहते) पिलावें। क्वाथ बनाते समय बरतन का मुँह खुला रखना चाहिए। ढक देने से क्वाथ भारी हो जाता है, ऐसी शास्त्राज्ञा है। क्वाथ मिट्टी के कोरे बरतन में बनाना चाहिए और क्वाथ बनाकर उसे अधिक देर तक नहीं रखना चाहिए। यदि किसी गोली के अनुपानरूप में क्वाथ लेना हो, तो पहले गोली का चूर्ण कर मुँह में रख, ऊपर से क्वाथ पीना चाहिए*।

अभयादि क्काथ

हरड़, नागरमोथा, धनियाँ, लाल चन्दन, पद्माख, अडूसा, इन्द्र-यव, खस, गिलोय (गुर्च), अमलतास का गूदा, पाढ़, सोंठ और कुटकी ये सब द्रव्य सम भाग लेकर उसको १६ तोला जल में पकावें, जब चार तोला शेष रहे, तब कपड़े से छान कर और उसमें ५ रत्ती छोटी पीपल का चूर्ण मिला कर पिलावें। —शा० ध० सं०

गुण और उपयोग—यह अभयादि क्वाथ पाचन, दीपन, मल-मूत्र और वायु के विबंध (कब्ज) को दूर करने वाला तथा प्यास, खाँसी, दाह, प्रलाप, श्वास, तन्द्रा, वमन, मुंह का सूखना और अन्न पर अरुचि इन लक्षणों से युक्तज्वर को नष्ट करता है। सब प्रकार के ज्वरों में यह क्वाथ केवल या इसमें ५ रत्ती नौसादर-चूर्ण और ५ रत्ती कलमी सोरा मिला कर अकेला या अन्य ज्वरनाशक रस जैसे मृत्युञ्जय, संजीवनी, ज्वरांकुश आदि रसों के अनुपान के रूप में दें।

* क्वाथ (कषाय) के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए देखें—'आयुर्वेद सार-संग्रह' के पृष्ठ ६ पर "औषध निर्माण परिभाषा"।

अश्मरी-हर कषाय

पाषाणभेद, सागौन के फल, पपीते (अण्ड खर्बूजे) की जड़, शतावरी, गोखुरू, वरना की छाल, कुश की जड़, कास की जड़, ककड़ी के बीज, प्रत्येक सम भाग लें और जटामांसी तथा खुरासानी अजवायन, प्रत्येक दो-दो तोला लेकर सब को जौकुट (दरदरा) चूर्ण करके रख लें।

इसमें से १ तोला चूर्ण को १६ तोले जल में पकावें, ४ तोले जल शेष रहने पर कपड़े से छान और उसमें ५—१० रत्ती शिलाजीत या १० रत्ती क्षारपर्पटी या जवाखार मिलाकर पीने को दें, आवश्यकतानुसार रोगी को दिन-भर में तीन बार भी दे सकते हैं। इस क्वाथ को "हजरुल यहूद" की भस्म के साथ देने से विशेष लाभ होता है।

—सि० यो० सं०

गुण और उपयोग—यह कषाय अश्मरी (पथरी), शर्करा (पेशाब की नली में छोटी-छोटी कंकड़ी जैसा पत्थर हो जाना) और उससे होने वाले वृक्कशूल और पेट के दर्द में इसका प्रयोग किया जाता है। यह कषाय सौम्य गुणयुक्त होते हुए भी इसमें क्षार-पर्पटी या यवक्षार का सम्मिश्रण हो जाने से यह तीक्ष्ण हो जाता है और इसी तीक्ष्णता के कारण यह अश्मरी (पथरी) को गलाकर पेशाब के रास्ते निकाल देता है और पेशाब भी साफ और खुलकर लाता है। यदि पेट में वायु भर गया हो, हवा नहीं खुलती हो, दर्द होता हो, पेट भारी मालूम पड़ता हो; तो इस कषाय के उपयोग से बहुत लाभ होता है।

अमृतादि क्वाथ

गिलोय, कुटकी, नीम की छाल, पटोल पत्र, नागरमोथा, लाल चन्दन, सोंठ और इन्द्रजौ ३-३ माशे लेकर जौकुट चूर्ण बनावें। इसमें से १ तोला चूर्ण को १६ तोला पानी में पकावें, ४ तोला जल शेष रहने पर कपड़े से छान, २-४ रत्ती पीपल का चूर्ण मिला, पिलावें।

—च० द०

गुण और उपयोग—इस क्वाथ के सेवन से पित्त और कफजन्य ज्वर, जी मिचलाना, अरुचि, वमन, अधिक प्यास लगना, पेट, हाथ-पैर और आँख आदि में जलन होना आदि उपद्रव शान्त होते हैं।

यह काढ़ा सौम्य गुण प्रधान होते हुए कफघ्न भी है, अतएव इस क्वाथ का प्रयोग विशेषकर पित्त और कफजन्य विकार में किया जाता है।

आरग्वधादि क्वाथ (दस्तावर)

अमलतास का गूदा २ तोला, कुटकी २ तोला, निशोथ २ तोला, मुनक्का (बीज निकाली हुई) पाँच नग, सनाय की पत्ती २ तोला, बड़ी हरड़ की वक्कल २ तोला, सूखे हुए गुलाब के फूल—(यदि सूखे न हों तो गीले ही ४ तोला लें) २ तोला, सब ओषधियों से आधा गुलकन्द लें।

इन आठों में से अमलतास का गूदा, दाख और गुलकन्द इन तीन चीजों को छोड़कर बाकी ५ चीजों को जौकुट चूर्ण बना लें। पीछे इन तीनों चीजों को मिलाकर रख लें। इस कल्क में से २–२॥ तोले के अन्दाज पाव भर पानी में डाल कर क्वाथ बनाकर पियें।

गुण और उपयोग—ज्यादा दिन तक दस्त कब्ज रहने के कारण पेट में गाँठ-सी पड़ जाती है, पेट को दबाने पर सख्त मालूम पड़ता है। रोगी उत्साह-हीन, और धीरे-धीरे दुर्बल होता जाता है। थोड़ा-थोड़ा बुखार भी रहने लगता, कभी-कभी देह सूज भी जाती है; आँखें पीली हो जातीं हैं और रक्त की कमी के कारण शरीर पाण्डु वर्ण का हो जाता है। ऐसी अवस्था में इस क्वाथ के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है; क्योंकि इस क्वाथ में जिन दवाओं का सम्मिश्रण है, वे सब अनुलोमक, दस्तावर तथा उदरशोधक हैं। इसके उपयोग से एक-दो दस्त साफ आते हैं। जिससे पेट साफ हो जाता, वायु खुलने लगता और भूख भी लगने लगती है।

कमलादि फाण्ट

कमल के फूल, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, मुलेठी, नागरमोथा, खस, धान का लावा और मिश्री, प्रत्येक दवा २-२ तोला लेकर जौकुट चूर्ण करें। फिर ६४ तोले उबलते हुए जल में डालकर ठंडा होने तक रखकर ढक छोड़ें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—इसमें से ८ से १० तोले तक की मात्रा में दिन भर में दो-तीन बार पिलावें।

गुण और उपयोग—इस फाण्ट से हृदय का संरक्षण होता है, पेशाब खुलकर साफ आता है, दाह कम होती है। दस्त पतले हों, तो बँध जाते हैं तथा हृदय की धड़कन और नाड़ी की गति तीव्र हो, तो वह भी कम हो जाती है। ज्वर की तीव्रावस्था में हृदय की पेशी विकृत और शिथिल हो जाती है। यदि ज्वर की प्रारम्भिक अवस्था से ही इस फाण्ट का व्यवहार किया जाय, तो हृदय पर ये दोनों घातक प्रभाव नहीं होते हैं।

गुडूच्यादि क्वाथ

गिलोय (गुर्च), धनियाँ, नीम के अन्दर की छाल, लाल चन्दन और पद्माख ये पाँचों द्रव्य सम भाग ले, जौकुट करके रख लें। इसमें से एक तोला चूर्ण लेकर ४ तोले जल में पकाकर दिन-भर में ३-४ बार दें। —सि० यो० सं०

गुण और उपयोग—यह क्वाथ सब प्रकार के ज्वर, दाह, जी मिचलाना, वमन होना और अरुचि आदि को दूर करता तथा अग्नि को भी प्रदीप्त करता है।

इस क्वाथ में रोहेड़ा की छाल, दारुहल्दी, सरफोंका की जड़ और पुनर्नवा (गदहपूर्ना) के मूल, ये चार दवा और मिलाकर क्वाथ तैयार करने से यकृत्, प्लीहा सम्बन्धी विकार में बहुत गुण करता है। यकृद्विकार वालों को यह क्वाथ पिलाते समय इसमें ५-१० रत्ती शुद्ध नौसादर का चूर्ण मिलाने से अधिक लाभ होता है।

किसी-किसी को मलेरिया ज्वर छूटकर जरा-सा भी कुपथ्य

होने पर फिर बुखार आने लगता है, और दवा करने पर छूट जाता है; परन्तु कुछ दिन के बाद फिर हो जाता है, । ऐसी अवस्था में लगातार इस क्वाथ का सेवन कराने से बहुत शीघ्र और आशातीत लाभ होता है। इस क्वाथ के साथ जयमङ्गल रस या सुदर्शन चूर्ण आदि का सेवन कराना अच्छा है।

गोजिह्वादि क्वाथ

गाजवाँ, मुलैठी, सौंफ, मुनक्का, अंजीर, उन्नाव, अडूसा जूफा, लिसोड़ा (सूखा), खूबकला (खाकसीर), हंसराज, गुलबनप्सा, अलसी, खतमी की जड़ और भटकटैया प्रत्येक समान भाग तथा काली मिर्च आधा भाग लें। इनको जौकुट चूर्ण करके रख छोड़ें। इसमें से १ तोला चूर्ण लेकर १६ तोला जल में पका ४ तोला जल बाकी रहने पर कपड़े से छान, उसमें ३ माशा मिश्री या मधु मिलाकर दिन में २-३ बार दें। —सि० यो० सं०

गुण और उपयोग—प्रतिश्याय—जुकाम-सर्दी—कफज्वर में तथा उस खाँसी-श्वास में, जिसमें कफ गाढ़ा जमा हुआ हो और सरलता से न निकलता हो, इस क्वाथ के प्रयोग से बहुत लाभ होता है। केवल इस क्वाथ को या इसमें ५ रत्ती नौसादर, ५ रत्ती यवक्षार और द्राक्षारिष्ट १-२ तोला मिलाकर उपयोग करें। कफज्वर में त्रिभुवन कीर्त्ति, ज्वर संहार आदि योगों के अनुपान रूप में इसका अच्छा उपयोग होता है।

जात्यादि क्वाथ

चमेली की पत्ती, दाड़िम (अनार) की पत्ती, बबूल की छाल और बेर की जड़, प्रत्येक ६-६ माशे लें। सब को जौकुट कर ६४ तोले जल में पकावें, आधा जल शेष रहने पर कपड़े से छान, उसमें फिटकरी १० रत्ती और शुद्ध सुहागा १० रत्ती मिलाकर कुल्ला करने से मुंह और गले के छाले में अच्छा लाभ होता है।

दूसरा योग—मुखपाक, मसूड़े फूलना और मुंह तथा गले में छाले पड़ना, इन रोगों में उदुम्बर सार को जल में मिलाकर कुल्ला

करना, खदिरादि तैल लगाना, या उसको मुंह में रखकर फिराना, यदि दस्त की कब्जियत हो, तो, मंजिष्ठादि चूर्ण सोते समय देना और मुखपाक आदि रक्त विकार या पेट की गर्मी से हो, तो सारिवादि हिम पीने को और शतपत्र्यादि चूर्ण खाने को देना चाहिये ।—सि० यो० सं०

गुण और उपयोग—इस क्वाथ का उपयोग रक्त-विकार सम्बन्धी विकारों—फोड़े-फुन्सी होना, मुंह में छाले पड़ जाना, गले में छाले पड़ जाना आदि रोग—में होता है।

तगरादि क्वाथ

तगर (यूनानी-आसारून), पित्त पापड़ा, अमलतास का गूदा, नागरमोथा, कुटकी, जटामांसी, असगंध, ब्राह्मी, मुनक्का, लाल चन्दन, दशमूल (शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटा गोखरू, छोटी और बड़ी कटैया, बेल, गम्भारि, अरणी, सोना पाठा, पाढ़)और शंखाहुली ये सब द्रव्य समभाग लेकर अधकचरा (दरदरा) कूटकर रख लें। इसमें से १ तोला दवा को १६ तोले जल में पकावें, जब ४ तोले बाकी रहे, तब छानकर प्रयोग करें। —सि० यो० सं०

गुण और उपयोग—प्रलापक सन्निपात में (सन्निपातज्वर में रोगी प्रलाप करने लगे तब) इस क्वाथ के उपयोग से बहुत लाभ होता है। इस क्वाथ को अकेले, या वृहद् कस्तूरीभैरव रस, के अनुपान के रूप में उपयोग करें। यदि रोगी को पतले दस्त आते हों, तो इस योग में से—कुटकी, अमलतास और मुनक्का निकालकर इसका उपयोग करें।

तरुण्यादि कषाय (दस्तावर)

गुलाब के फूल१तोला, सनाय १ तोला, सौंफ १ तोला और मुनक्का २ तोला लेकर सबको बिना कूटे ही रात को २० तोला जल में भिगो दें। सबेरे पकाकर ५ तोला जल बाकी रहे, तब उसमें १ तोला शर्करा (यूनानी-तुरंजबीन) या ६ माशा मिश्री मिला, कपड़े से छान कर पिलावें। —सि० यो० सं०

गुण और उपयोग—यह क्वाथ दस्तावर है। इस क्वाथ के उपयोग से बिना तकलीफ के दो-तीन साफ दस्त होकर पेट शुद्ध हो जाता है।

दशमूल क्वाथ

छोटी और बड़ी कटेरी का पंचांग, शालिपर्णी और पृश्निपर्णी का पचांग, बेल-छाल, गम्भारी-छाल, सोनापाठा-छाल, अरणी-छाल, पाढ़, गोखुरू का पंचांग या फल प्रत्येक समान भाग लेकर यवकुट चूर्ण कर रख लें। —शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—इसमें से १ तोला चूर्ण लेकर १६ तोले जल में पकावें। जब ४ तोला जल बाकी रहे, तब नीचे उतार कर कपड़े से छानकर पिलावें। यह क्वाथ आवश्यकतानुसार दिन-भर में २-३ बार दें।

गुण और उपयोग—इस क्वाथ का उपयोग वात और कफ सम्बन्धी विकारों में विशेष होता है। प्रसूत रोग के लिए यह क्वाथ बहुत प्रसिद्ध है। वातप्रकोप में भी अनुपानरूप से इसका प्रयोग किया जाता है।

मुंह सूखना, हाथ-पाँव आदि अवयव ठंडे पड़ जाना, चक्कर आना, पसीना अधिक आना, खाँसी, श्वास, छाती तथा पसली का दर्द, तन्द्रा (झपकी आना) और शिर-दर्द युक्त सन्निपातज्वर, सूतिका (प्रसूत) ज्वर और शोथ रोग में इसके प्रयोग से लाभ होता है। यदि सन्निपातज्वर में प्रलाप और नींद न आना, ये उपद्रव हों, तो इस क्वाथ में लौंग, ब्राह्मी, जटामांसी, तगर, शंखाहुली और सर्पगन्धा प्रत्येक १-१ तोला और मिला दें। इससे यह क्वाथ बहुत गुणकारी हो जाता है।

प्रसव के बाद प्यास अधिक लगना, रक्त की कमी, पेट का दर्द, संपूर्ण अंग में दर्द होना, अन्न पर अरुचि आदि लक्षण उपस्थित होने पर इस क्वाथ का उपयोग करना आदि हितकर है।

प्रसव के बाद कमजोरी और थकान आना, प्रसूता स्त्री के लिये स्वाभाविक बात है। बच्चा पैदा होने के बाद पेट में दूषित रक्तादि रह जाते हैं, इन्हें बाहर निकालना आवश्यक रहता है। नहीं निकलने से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं; जैसे—ज्वर, अन्न पर अरुचि, रक्त की कमी, सम्पूर्ण शरीर में दर्द होना, शरीर सूज जाना आदि।

ऐसी स्त्रियों के दूध भी दूषित हो जाते हैं, जिसका बुरा प्रभाव बच्चे के ऊपर पड़ता है। बच्चा पैदा होने से पहले यदि ज्वरादिक आता रहता है, तो वह रोग भी प्रसव के बाद प्रकोप कर जाता है। इन उपद्रवों को रोकने या दूर करने के लिये दशमूल क्वाथ का प्रयोग करना बहुत उपयोगी है।

. बच्चा पैदा होने के दिन से लेकर दस दिन पर्यन्त दशमूल क्वाथ प्रसूता को अवश्य देना चाहिए; क्योंकि दस दिनों में प्रसवजन्य अनेक तरह की वेदना जच्चा को होती है। इस वेदना को दूर करने के लिये "दशमूल क्वाथ" का उपयोग करना बहुत लाभदायक है। फिर प्रसूतजन्य कोई भी बीमारी होने का डर नहीं रहता है।

प्रसूता को अधिक उष्ण उपचार से बचावें। अधिक उष्ण उपचार से शरीर में गर्मी विशेष होकर अनेक उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं; जैसे—मुँह में छाले हो जाना, हाथ-पाँव और आँखों में जलन, दूध कम होना, इतना ही नहीं, बच्चे के मुँह में भी छाले हो जाते हैं, शरीर पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाती हैं, दूध कम मिलने की वजह से बच्चा बराबर रोता रहता है। बच्चे का शरीर, विशेष कर चेहरा, लाल वर्ण का हो जाता है। इसमें भी उष्णताजन्य उपद्रवों को दूर करने के लिए इस काढ़े का प्रयोग करें।

वात-रोग में भी इस क्वाथ का उपयोग अनुपानरूप से होता है। पुराने वायु रोग में वातघ्न ओषधें; जैसे—महायोगराज गूगल, योगराज गूगल, वातारि वटी, वातचिन्तामणि रस आदि दवाओं के साथ अनुपानरूप में दिया जाता है।

देवदार्वादि क्वाथ

देवदारु, बच, कूठ, छोटी पीपल, सोंठ, कायफल की छाल, नागर-मोथा, चिरायता, कुटकी, धनियाँ, हरड़, बड़ी पीपल, छोटी कटेरी, गोखुरू, धमासा, बड़ी कटेली, अतीस, गिलोय, काकड़ासिंगी और स्याहजीरा, ये सब द्रव्य समभाग लेकर उसको दरदरा कूटकर रख लें। —शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—इसमें से १ तोला चूर्ण लेकर १६ तोला जल में पकावें। ४ तोला जल शेष रहने पर उतार कर छान करके प्रसूत स्त्री को पिलावें।

गुण और उपयोग—देवदार्वादि क्वाथ प्रसूत ज्वर में उत्तम है। इसका केवल या "वृहत्कस्तूरी भैरव" के अनुपान रूप में प्रयोग करें। इससे शूल, खाँसी, श्वास, मूर्च्छा, कम्प, शिर का दर्द और तन्द्रा-प्रलाप आदि उपद्रवयुक्त सूतिकाज्वर दूर हो जाता है। यदि प्रलाप हो, तो इस क्वाथ में लौंग, ब्राह्मी, जटामाँसी, तगर, शंखाहुली, खुरासानी अजवयान १-१ तोला और मिलावें। प्रसूतास्त्री को प्रसव के दिन से ही देवदार्वादि क्वाथ और दशमूल क्वाथ दोनों मिला कर देने से प्रायः सूतिका रोग होने का डर नहीं रहता।

धान्यपंचक क्वाथ

धनियाँ, खस, बेल की गिरी (बीज), नागरमोथा और सोंठ समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करके रख लें। —वक्रदत्त

मात्रा और अनुपान—इसमें से १ तोला चूर्ण को दश तोले जल में पकावें, जब चार तोला जल शेष रहे, तब ठंडा कर स्वच्छ कपड़े से छानकर रोगी को दें। इस तरह आवश्यकतानुसार दिन-भर में ३ बार तक दें। यदि पित्तातिसार में इसका प्रयोग करना हो, तो इसमें से सोंठ निकाल दें।

गुण और उपयोग—यह क्वाथ उत्तम दीपन-पाचन और ग्राही है। अतिसार में इसका उपयोग विशेष होता है। पित्तातिसार या रक्तातिसार में इसका उपयोग करना हो, तो सोंठ की जगह सौंफ डालकर इसका प्रयोग करें। इस क्वाथ का अकेला या महागंधकरसायन, पीयूषवल्ली रस आदि दवाओं के अनुपानरूप में प्रयोग करें।

पटोलादि क्वाथ

कडुए परवल के पत्ते, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नीम के अन्दर

की छाल, मुनक्का, इन्द्रजौ, नागरमोथा, मुलैठी, गिलोय और अडूसा, प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर उसको दरदरा कूटकर रख लें।

—शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—इसमें से १ तोला अधकुटा चूर्ण लेकर उसको १६ तोले जल में पकावें, ४ तोला शेष रहने पर कपड़े से छान कर केवल यह कषाय या इसमें ५ रत्ती नौसादर का चूर्ण और ५ रत्ती कलमी शोरा मिलाकर दिन-भर में तीन-चार बार दें।

गुण और उपयोग—यह क्वाथ ज्वर-पाचन के लिये दिया जाता है। ज्वर-पाचन के लिये अकेले या त्रिभुवनकीर्त्ति रस, ज्वरसंहार, ज्वरांकुश, सप्तपर्णघनवटी आदि योगों के अनुपानरूप में दें।

पथ्यादि क्वाथ

बड़ी हर्रें, बहेड़ा, आँवला, चिरायता, हल्दी तथा नीम के वृक्ष पर लगी हुई गिलोय (गुर्च) प्रत्येक समभाग लेकर जौकुट करके रख लें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१ तोला क्वाथ का चूर्ण लेकर १६ तोला जल में पकावें, ४ तोला शेष रहने पर उतारकर कपड़े से छान लें। इसमें ६ माशा गुड़ मिलाकर पिला दें

गुण और उपयोग—इसका उपयोग शिर-दर्द में किया जाता है। अकेले या शिरःशूलादि बज्रस के अनुपानरूप में भी इसका प्रयोग करें।

नोट—शिर-दर्द के लिए गोदन्ती भस्म और मिश्री का चूर्ण प्रत्येक १॥-१॥ माशा ले, एकत्र मिलाकर छः माशे घृत के साथ देने से शिर-दर्द में अच्छा लाभ होता है।

प्रदरान्तक क्वाथ

झरबेरी की जड़, जामुन की छाल, आम की छाल, अशोक की छाल प्रत्येक समभाग लेकर दरदरा चूर्ण बनाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान—इस चूर्ण में से १ तोला लेकर १६ तोले जल में पकावें और ४ तोला शेष रहने पर कपड़े से छान, सेवन करें।

गुण और उपयोग—रक्त और श्वेतप्रदर मं इस क्वाथ का उपयोग किया जाता है। इससे गर्भाशय दोषरहित होकर सन्तान धारण करने में समर्थ होता है।

प्रतिश्यायघ्न क्वाथ

मुलैठी, मुनक्का, अडूसा-पत्र, लिसोड़ा, बनप्सा और गुल-बनप्सा प्रत्येक १-१ तोला, काली मिर्च और मिश्री ६-६माशे मिलाकर यवकुट चूर्ण बनाकर रखलें।

मात्रा और अनुपान—इस चूर्ण में से १ तोला दवा लेकर १६ तोले जल में डाल मिट्टी के बर्तन में पकावें, ४ तोला जल शेष रहने पर उतारकर महीन कपड़े से छान लें तथा तीन माशे शहद और ६ माशे घी मिलाकर सेवन करें। दिन में २-३ बार और रात को सोते समय इस क्वाथ को पीकर चुपचाप सो जाएँ।

रोग और रोगी के अवस्थानुसार ३ से ७ दिन तक इसका प्रयोग करें।

गुण और उपयोग—जुकाम नया हो या पुराना, या रुक गया हो ; जुकाम के मारे ज्वर हो गया हो, शिर में दर्द रहता हो, किसी काम में मन नहीं लगता हो, आदि उपद्रव युक्त जुकाम (प्रतिश्याय) में इस क्वाथ से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

पुनर्नवाष्टक क्वाथ

पुनर्नवा की जड़, हरड़, नीम की छाल, दारु हल्दी, कुटकी, परवल का पंचांग, गिलोय और सोंठ प्रत्येक समान भाग लेकर, जौकुट चूर्ण बनाकर रख लें। —शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—इसमें से १ तोला चूर्ण लेकर उसको १६ तोले पानी में पकावें, जब ४ तोला पानी शेष रहे, तब उसे कपड़े से छान, उसमें १-२ तोला गोमूत्र मिलाकर पिलावें। दिन भर में आवश्यकतानुसार २-३ बार दें।

गुण और उपयोग—यकृत् और प्लीहा की वृद्धि, शोथ, उदररोग, सर्वाङ्गशोथ और सन्धिवात (जोड़ों के दर्द) में इसका

प्रयोग करना चाहिये। इससे दस्त और पेशाब साफ होकर शोथ (सूजन) उतर जाता है। इसमें पुनर्नवा और कुटकी दो भाग लें और रोहेड़ा की छाल तथा शरपुंखा (सरफोंका) की जड़ १-१ तोला और मिला दें, तो अधिक गुणदायक होता है। इस क्वाथ का केवल या आरोग्यवर्द्धनी और पुनर्नवादिमण्डूर के अनुपान से प्रयोग करना चाहिये। सन्धिवात और आमवात में इस क्वाथ में चोपचीनी सुरंजान, एरण्डमूल, सोनापाठा की छाल, हरमल और रास्ना एक-एक भाग और मिलाकर शृंगभस्म १-२ माशा के साथ इसका प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है।

वत्सकादि क्वाथ

कुड़ा की छाल, अतीस, बेल का गूदा, सुगन्धबाला और नागरमोथा प्रत्येक समान भाग लें और यवकुट कर रखलें। —चक्रदत्त

मात्रा और अनुपान—इसमें से १ तोला चूर्ण लेकर १६ तोला जल में क्वाथ करें। ४ तोला जल शेष रहने पर छानकर सेवन करें।

गुण और उपयोग—आमातिसार, रक्तातिसार और नये-पुराने अतिसार में इसके उपयोग से लाभ होता है।

वरुणादि कषाय

वरुण की छाल, सोंठ, गोखरू और पाषाणभेद प्रत्येक १-१ तोला लेकर यवकुट चूर्ण बनाकर रख लें। —भै० र०

मात्रा और अनुपान—इसमें से यवकुट किया हुआ चूर्ण १ तोला को १६ तोला जल में पकावें। ४ तोला शेष रहने पर छानकर इसमें क्षार-पर्पटी या यवक्षार ५ रत्ती की मात्रा में मिलाकर पिलावें।

गुण और उपयोग—अश्मरी रोग, मूत्रकृच्छ्र, वृक्कशूल, वस्तिशूल, आदि में इसके उपयोग से काफ़ी लाभ होता है।

भार्ग्यादि क्वाथ

भारंगीमूल, नीम की छाल, नागरमोथा, हरड़, गिलोय (गुर्च), चिरायता, अडूसा, अतीस, त्रायमाणा, कुटकी, बच, सोंठ, काली मिर्च

छोटी पीपल, सोनापाठा, कुड़ा की छाल, रास्ना, जवासा, कड़ुवे परवल के पत्ते, पाढ़, निशोथ, दारु हल्दी, इन्द्रायन की जड़, हल्दी, ब्राह्मी, पुष्करमूल, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, कचूर, आँवला, बहेड़ा और देवदारु, इन ३२ दवाओं को समभाग ले, दरदरा कूटकर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—इसमें से १ तोला यवकूट चूर्ण लेकर १६ तोला जल में पकावें, ४ तोला जल शेष रहने पर उतार लें और छानकर पिलावें।

गुण और उपयोग—यह भार्ग्यादि क्वाथ आवश्यकतानुसार दिन में २-३ बार अकेला या इसमें ५ रत्ती नौसादर चूर्ण और ५ रत्ती यवक्षार मिलाकर दें। यह क्वाथ कफज्वर, कफाधिक्य सन्निपातज्वर, श्वसनक (न्यूमोनियाँ) ज्वर, उरस्तोय (प्लूरसी), पार्श्वशूल, कफकास और श्वास को दूर करने के लिये उत्तम है। इसको केवल या अभ्र और मृगश्रृङ्ग भस्म २-२ रत्ती के अनुपान रूप में दें।

उरस्तोय—(प्लूरसी) की प्रारम्भिक अवस्था में—छाती में थोड़ा-थोड़ा जलसंचय होने लगता है। इस रोग में सूखी खाँसी उठती है, क्योंकि कफ छाती में बैठा हुआ रहता है, निकलता नहीं है, जिससे रोगी खाँसते-खाँसते घबराने लगता है। पसली में दर्द होने लगता है, बुखार भी हो जाता है। दस्त कब्ज, चेहरा उदास एवं रोगी निरुत्साहित हो जाता है। इसमें मृगश्रृङ्ग भस्म ४ रत्ती, मण्डूर भस्म २ रत्ती मधु में मिलाकर दें और ऊपर से यह क्वाथ पिलावें।

महामंजिष्ठादि क्वाथ

मजीठ, नागरमोथा, कुड़ा, गिलोय (गुर्च), कूठ, सोंठ, भारंगी, छोटी कटेली, बच, नीम की अन्तर्छाल, हल्दी, दारुहल्दी, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, पटोल, कुटकी, मूर्वा, बायबिडंग, विजयसार, चित्रकमूल, शतावर, त्रायमाणा, पीपरि, इन्द्रजौ, अडूसा, भांगरा, देवदारु, पाढ़, खैरसार, रक्तचन्दन, निशोथ, वरना की छाल, चिरायता, बावची,

अमलतास, शाखोटक (सिहोरा), बकायन की छाल, करंज, अतीस, नेत्रबाला, इन्द्रायन की जड़, अनन्तमूल, सारिवा और पित्तपापड़ा सब समान भाग लेकर जौकूट चूर्ण बनाकर रख लें। —शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—इसमें से १ तोला चूर्ण लेकर उसको १६ तोले जल में पकावें, ४ तोला जल शेष रहने पर कपड़े से छान, उसमें शहद और मिश्री मिलाकर पिलावें। इस तरह सुबह-शाम दोनों समय दें।

गुण और उपयोग—इस क्वाथ के सेवन से महाकुष्ठ, क्षुद्रकुष्ठ, वातरक्त, सुन्नबहरी वात, व्रण (घाव), दाह, सुई चुभोने जैसी पीड़ा, उपदंश, शरीर पर लाल-लाल चकत्ते पड़ जाना, अर्दित, पक्षाघात, नेत्ररोग, मेद रोग, श्लीपद (फीलपाँव) तथा रक्तमण्डल आदि दोष नष्ट होते हैं।

इन रोगों में गन्धक रसायन, गलित्कुष्ठारि रस, कैशोर गूगल, शिलाजीत गुटिका, माणिक्य रस आदि दवाओं के साथ अनुपान रूप में इस क्वाथ का प्रयोग करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

यह क्वाथ तीक्ष्ण है, अतएव छोटे बच्चों और स्त्रियों तथा नाजुक प्रकृतिवालों को देते समय इसमें समभाग गुर्च का काढ़ा मिला लेना चाहिये, क्योंकि इससे तीक्ष्णता नष्ट होकर क्वाथ में सौम्यता आ जाती है।

महारास्नादि क्वाथ

रास्ना २ तोला, धमासा, बरियार के मूल, एरण्ड मूल, देवदारु, कचूर, बच, अडूसे की जड़, सोंठ, हर्रे, चव्य, नागरमोथा, गदहपूर्ना, गिलोय (गुर्च), विधारा, सोया के बीज, गोखरू, असगंध, अतीस, अमलतास का गूदा, शतावर, छोटी पीपल, कटसरैया, धनियाँ, छोटी-कटेली, बड़ी कटेली, सम भाग ले जौकुट करके रख लें।—शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—इसमें से १ तोला चूर्ण लेकर १६ तोला जल में पकावें और ४ तोला शेष रहने पर सोंठ का चूर्ण २ रत्ती, पीपल चूर्ण २ रत्ती, योगराज गूगल १ गोली, हींग भुनी २ रत्ती, संचर नमक,

का चूर्ण ४ रत्ती अथवा एरण्ड तैल १० बून्द, इनमें से किसी एक के अनुपान के साथ मिलाकर दें। सुबह-शाम दो बार प्रयोग करें।

गुण और उपयोग—इस क्वाथ के सेवन से सर्वाङ्ग वात, अर्धाङ्ग वात, सन्धिगत वात, मेदगत वात, कम्प वात, अपबाहुक, गृध्रसी, आमवात, श्लीपद, अपतानक, अन्त्रवृद्धि, आध्मान, अर्दित, एकांग वात, शुक्रदोष, योनिरोग और बन्ध्यादोष नष्ट होते हैं।

वात सम्बन्धी रोगों को नष्ट करने के लिये यह दवा बहुत प्रसिद्ध है। वात रोगघ्न औषधें; जैसे—महायोगराज गूगल, योगराज गूगल, सिंहनाद गूगल, वातारि रस, वात विध्वंसन रस, दशमूलारिष्ट, अश्वगंधा पाक इत्यादि दवाओं के अनुपान रूप में इस क्वाथ का प्रयोग किया जाता है।

आमवात रोग में १ तोला रेंडी का तैल और २ तोला महारास्नादि क्वाथ (स्वरस) दोनों को एकत्र मिलाकर सेवन करने से बहुत लाभ होता है। इसी प्रकार पुराने वात रोगों में ६ माशे से प्रारम्भ कर १ तोला तक नारायण तैल में महारास्नादि क्वाथ १ से २ तोला मिलाकर सेवन करने से शीघ्र फायदा करता है।

मांस्यादि क्वाथ

जटामाँसी १ तोला, असगंध चौथाई तोला, खुरासानी अजवायन के बीज १।। माशा, इन को जौकुट कर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—इसमें से १ तोला चूर्ण को १० तोला जल में पकावें और ४ तोला जल शेष रहने पर उसे छान कर रख सेवन करें।

गुण और उपयोग—इस क्वाथ का हिस्टीरिया, आक्षेप, और बालकों का आक्षेपक आदि रोगों में अकेले या अपतन्त्रकारि वटी, या वृहद्वातचिन्तामणि या ब्राह्मी वटी (रस) या सर्पगंधायोग—इनके अनुपान रूप में प्रयोग करें।

मूत्रलकषाय

पुनर्नवा की जड़, गन्ना (ईख) की जड़, कुश की जड़, काँस की जड़, छोटा गोखरू, खुरासानी अजवायन, रक्तचन्दन, अनन्तमूल,

देवदारु, सौंफ, धनियाँ, सागौन के फल, मकोय, कासनी के बीज, (ककड़ी या खीरा के बीज) गिलोय, पाषाणभेद, काकनज और कमल के फल—सब समान भाग लें, जौकुट चूर्ण करके रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—इसमें से २ तोला लेकर १६ तोला जल में पकावें। ४ तोला जल शेष रहने पर छानकर इसमें अच्छा शिलाजीत ५ से १० रत्ती मिलाकर पिलावें या क्षार पर्पटी ५ से १० रत्ती मिलाकर दिन भर में आवश्यकतानुसार २-३ बार पिलावें।

गुण और उपयोग—गुर्दे के शोथ से जो सर्वाङ्ग शोथ होता है, उसमें इसका उपयोग करना अच्छा है। यह क्वाथ मूत्रल और मूत्रवर्द्धक (पेशाब बढ़ाने और साफ लाने वाला) है। अश्मरी के कारण जो पेट और कमर में दर्द होता है, उसके लिये इस क्वाथ में—जटामाँसी २ तोला और खुरासानी अजवायन के बीज या पत्ती १ तोला मिलाकर इसका प्रयोग करें। साथ में हजरुल् यहूद की भस्म ४ से ८ रत्ती तक देने से विशेष लाभ करता है।

रजः प्रवर्तक क्वाथ

अपामार्ग के बीज, मूली के बीज, सोया के बीज, हंसराज, अमलतास का गूदा, अजमोद, बायबिडंग, मजीठ, कलौंजी प्रत्येक ६-६ माशा, चित्रकमूल-छाल ४ माशा, गाजर के बीज १ तोला, पुराना गुड़ (पाँच साल का) २ तोला—इन सब को कूटकर रात को आधा सेर जल में भिगो दें। प्रातः आग पर चढ़ा क्वाथ कर लें। आधा पाव जल शेष रहने पर, छानकर रख लें।

मात्रा और अनुपान—इसमें से १ छटाँक क्वाथ प्रातःकाल रजः-प्रवर्तनी वटी या योगराज गूगल के साथ दें, इसी तरह शाम को भी दें।

गुण और उपयोग—इस क्वाथ के उपयोग से अधिक दिनों का रुका हुआ मासिक धर्म भी खुलकर आने लगता है।

रास्नासप्तक क्वाथ

रास्ना, गोखरू, एरण्ड की जड़, गिलोय, (गुर्च), देवदारु, पुनर्नवा, सोंठ और अमलतास का गूदा प्रत्येक समान भाग लेकर जौकुट चूर्ण बनाकर रख लें। —शा० ध० सं०

मात्रा और अनुपान—१ तोला चूर्ण लेकर १६ तोला जल में पकावें। ४ तोला जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। फिर उसमें रेंडी का तेल मिलाकर पीने को दें।

गुण और उपयोग—इस क्वाथ के सेवन से आमवात, कमर, जाँघ पीठ और पसली का दर्द और वात सम्बन्धी पेट का दर्द दूर होता है।

षडङ्गपानीय

नागरमोथा, पित्तपापड़ा, सुगन्धबाला, लालचन्दन, खस और सोंठ—ये सब द्रव्य समान भाग लेकर जौकुट करके रख लें।—च० चि०

मात्रा और अनुपान—इस में से १ तोला चूर्ण लेकर उसको १२४ तोले जल में—मिट्टी के बर्तन में पकावें, जब ६४ तोला जल शेष रह जाय, तब नीचे उतारकर ठंडा करके कपड़े से छान लें।

गुण और उपयोग—ज्वरवाले रोगी को जब अधिक प्यास लगे, तब यह जल थोड़ा-थोड़ा पीने को दें। इससे प्यास कम लगती है और ज्वर का वेग भी कम हो जाता है। यह षडङ्गपानीय ज्वर में उत्तम पाचन है। सब तरह के ज्वर में इसका उपयोग किया जाता है। विशेषतया पैत्तिक और वातिकज्वर में यह बहुत लाभ करता है।

सरिवादि हिम

अनन्तमूल, उशवा, चोपचीनी, मजीठ, गिलोय, धमासा, रक्त-चन्दन गुलबनप्सा, खस, गोरखमुण्डी, शाहतरा, कमल के फूल, गुलाब के फूल, गूमा, पखाख और शंखाहुली—प्रत्येक समान भाग लेकर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—इसमें से १ तोला चूर्ण को रात में ६ तोला गरम जल में मिट्टी के बर्तन या काँच के बर्तन में भिगो दें, सबेरे हाथ से मसल कपड़े से छानकर पीने को दें।

गुण और उपयोग—इसके सेवन से रक्त-विकार— कण्डू खुजली दोनों (सूखी, गीली), हाथ-पाँव की जलन, अम्लपित्त, पुराना बुखार आदि तथा पित्त और दूषित रक्त के कारण उत्पन्न हुए रोग दूर हो जाते हैं।

मरहम (मलहम)

जो व्रण (घाव) तैल, घृत आदि लगाने से अच्छे नहीं होते, अथवा जहाँ पर तैल-घृत आदि पतले-चिकने द्रव्य देर तक नहीं रह पाते, वहाँ पर मलहम लगाया जाता है। ये मलहम कई तरह के होते हैं और उनके बनाने के क्रम भी अनेक प्रकार के हैं। कोई तो तैल-घृत आदि स्निग्ध पदार्थ डालकर कुछ-कुछ पतला (गाढ़ा) बनाया जाता है, तो कोई बिल्कुल गाढ़ा बनाया जाता है। कोई आग पर डाल कर तैयार किया जाता है, तो कोई बिना आग के ही पानी के द्वारा तैयार किया जाता है। गुण में भी दोनों के भेद रहते हैं। पानी के द्वारा बनाया गया शीतल, ठण्डा और व्रणरोपण होता है तथा अग्नि-संस्कार द्वारा बनाया हुआ, कुछ उष्ण-प्रधान और व्रण-शोषक होता है।

लगाने की विधि—खुजली और दाद पर मलहम लगाना हो, तो उस जगह नीम के साबुन से खूब धोकर और खादी के तौलिये से (सफेद मुलायम कपड़े से) पोंछकर दाद या खुजली पर थोड़ा-थोड़ा मलहम लगाकर धीरे-धीरे हाथ की अंगुलियों से मलता रहे। इस तरह कम से कम १५-२० मिनट तक मलने से सब मलहम भीतर प्रवेश करके कीटाणुओं को मार देता है और दाद या खुजली भी अच्छी हो जाती है।

घाव धोने की तरकीब—गहरे घाव, जैसे—नासूर (नाड़ीव्रण) और कारबंकल (पिठिया घाव) आदि का मवाद धोकर निकाल डालने के लिये नीचे लिखी तरकीब काम में लावें।

नीम के पत्तों को पानी में डालकर गरम कर लें। इस पानी से दो बार घाव को धोकर साफ करें और सूख जाने पर टिंचर आयडीन डालकर कपड़ा बाँध दें। यदि घाव गहरा हो, तो एडोफार्म की रूई दबाकर बाँध दें। पुराने और सड़े हुए तथा फैलनेवाले घाव को गरम पानी में जरा-सा पोटासियम-परमेगनेट डालकर दोनों समय साफ

करना बहुत लाभकारक है। फिर मल्हम या तैल का फाया या मुलायम कपड़े (लिंट) की बत्ती मलहम में भिगोकर उसमें भरना चाहिए। ऐसा करने पर घाव बहुत जल्द भीतर से अच्छा होने लगता है।

मरहम-पट्टी—कपड़े की पट्टी के बीच में छेद करके उसपर मलहम लगाकर व्रण पर पट्टी लगानी चाहिये। इससे पट्टी भीतर से खराब नहीं होती और पट्टी के छेद से व्रण का मवाद बाहर निकलता रहता है।

सावधानी—घाव पर पट्टी लगाने के बाद कम-से-कम दो घण्टे तक आराम से एक जगह लेटे रहें, कहीं भी घूमने-फिरने न जायें। ऐसा करने से मरहम का पूरा गुण घाव पर होता है।

कुछ मलहम ऐसे भी होते हैं, जिनमें अशुद्ध पारद, विष आदि मिलाये जाने के कारण विषाक्त होते हैं। उन मलहमों को लगा कर हाथ को साबुन या मिट्टी से अच्छी तरह धो लें। बगैर हाथ धोये हुए हाथ यदि आँख में लग जाय और आँख से आँसू ज्यादे निकलने लगे, तो आँख में गौ का घी डालें, जब तक विष-भाग दूर न हो जाय, तब तक बराबर घी डालते रहें।

संयोगवश यदि कहीं विषादि मिश्रित मरहम पेट में चला जाय, तो रोगी को वमन-विरेचनादि दवा देकर पेट साफ कर देना चाहिये।

उपदंशहर मरहम

कज्जली १ तोला को तुलसी पत्र के रस में १ दिन तक घोंटकर खुश्क बना लें, फिर तूतिया २ माशे, खुरासानी अजवायन, अकरकरा, बायबिडंग, सतबहरोजा, मेढ़ासिंगी, कपूर, इलायची के दाने, तज-कलमी, शीतलचीनी, ये ९ ओषधियाँ १-१ तोला लेकर कूट-कपड़छन चूर्ण बना, एक हजार बार बासी पानी से धोए हुए गाय के नवनीत (मक्खन) में मिलाकर एक डब्बे में रख लें।

गुण और उपयोग—उपदंश के घाव, उपदंश से होने वाले मुँह के छाले, शरीर में छोटे-बड़े उत्पन्न चकत्ते, जलन आदि उपदंश सम्बन्धी उपद्रवों को यह बहुत शीघ्र शमन करता है।

गरमी अर्थात् उपदंश या आतशक के कारण जननेन्द्रिय के ऊपर या भीतर चट्ठे पड़ना, उनमें से मवाद बहना, दर्द होना आदि उपद्रव पैदा हो जाते हैं। जननेन्द्रिय पर शोथ हो जाता है। फिर जननेन्द्रिय के मुण्ड पर से चमड़ी इधर-उधर नहीं हो पाती और भीतर-ही-भीतर घाव सड़ने लगता तथा मवाद बाहर आने लग जाता है। ऐसी अवस्था में इस मरहम को दिन-रात में दो-तीन बार मल करके लगाना बहुत गुणदायक है।

इससे जलन पैदा न होकर ठंडक पहुँचती है। यह मरहम तरखुजली के लिये भी अच्छा है।

खाज का मरहम

पारा, गंधक, सफेदजीरा, स्याहजीरा, कालीमिर्च, हल्दी, दारु हल्दी, सिन्दूर, मैन्सिल—प्रत्येक ३-३ माशे लें। प्रथम पारा और गन्धक की कज्जली बनावें, बाद में शेष दवाओं का कपड़छन चूर्ण बनाकर कज्जली के साथ घोटें, जब एक जीव हो जाय, तब ५ तोला गाय का घृत मिलाकर २ रोज तक घोटते रहें। मरहम-सा बन जाने पर उसे चौड़े मुँह की शीशी में रख लें।

गुण और उपयोग—मलहम लगाने से पहले नीम के साबुन या कार्बोलिक साबुन से धोकर यह मलहम लगाना चाहिये।

यह मलहम सब प्रकार की खुजली (तर-सूखी) में गुण करता है। इस मलहम को घाव पर धीरे-धीरे मलने से जलन कम होती है। किसी नस के ऊपर ख़ुजली के फोड़े हो जाने से नस तन जाती है तथा उसमें दर्द होने लगता है। इस मरहम को लगाने से फोड़े मुलायम हो जाते और नसें भी मुलायम हो जाती हैं। फिर दर्द वगैर: आप ही आप बन्द हो जाता है।

उपदंश (गर्मी) से होने वाले चट्ठे पर भी इस मलहम को लगाने से अच्छा फ़ायदा होता है।

गुल़ाबी मलहम

१०० बार का धोया हुआ घी १० तोला, पुष्पांजन (सफेद जिंक आक्साइड) १ तोला, सिन्दूर १ तोला, रसकपूर ६ माशा, कपूर १

तोला, चन्दन का तैल १ तोला, सब को एकत्र घोट-मिलाकर काँच के पत्र में भर लें। —सि० यो० सं०

गुण और उपयोग—इस मलहम के उपयोग से खाज, खुजली, आग से जला हुआ घाव और बवासीर के मस्से अच्छे होते हैं।

घाव का उत्तम मलहम

मुरदाशंख, सुहागा, तूतिया, कत्था, कबीला, कालीमिर्च, अजवायन ये ७ चीजें ३-३ तोला, कपूर ६ माशे, सफेद कागज (जो जयपुर में बहुत मिलता है) १।। तोला, सुपारी नग ४, पीली कौड़ी नग ४ लें। इनमें से कालीमिर्च, अजवायन और सुपारी—इन तीनों को अधजली कर लें और पीली कौड़ी की भस्म बना लें। फिर सब का कपड़छन चूर्ण करके गाय के घी में मिलाकर रख लें। —आरोग्य प्रकाश

गुण और उपयोग—यह मलहम सब तरह के घावों में फायदा करता है। नीम के पत्ते के पानी से घावों को अच्छी तरह धोकर दिन भर में २ बार इस मलहम को लगावें। इससे सड़े-पुराने घाव भी अच्छे हो जाते हैं।

चर्मरोग नाशक मलहम

कसीस, हरिताल, बायबिडंग, कूठ, सिन्दूर, नीम के पत्ते, मजीठ, लोध, हल्दी, मैनसिल, गूगल, नीलाथोथा, राल, करंज, महुआ की छाल, पद्माख, दारु हल्दी, कबीला, मोम, सरसों, लालचन्दन, अनन्त मूल, जटामाँसी, पमार के बीज, मोथा, गंधक, काली मिर्च, रसौत, खैर, बच, सिरस, हरड़ प्रत्येक १-१ तोला लेकर कूट-कपड़छन चूर्ण बना, १।। सेर घृत (गौ घृत हो तो अच्छा) मिलाकर ताँबे के बर्तन में रखकर ७ दिन तक धूप में रखें, आठवें रोज खूब अच्छी तरह उसे घोट कर काँच के बर्तन में सुरक्षित रख लें। —ध०

गुण और उपयोग—इस मलहम के लगाने से छोटी-छोटी फुन्सियाँ जो अक्सर खुजलाती रहती या खुजलाने पर फटकर बहने लगतीं और फिर दूसरी जगह उत्पन्न हो जाती हैं; फोड़े, पुराने और सड़े-गले व्रण, दाद, खाज, नासूर, भगन्दर, अपरस (छाजन) आदि अनेक तरह के व्रणादि अच्छे होते हैं।

जीवन्त्यादि मलहम

जीवन्ती (गुजराती-दोड़ी का शाक) के मूल, मजीठ, दारुहल्दी और कबीला प्रत्येक का कपड़छन चूर्ण ४-४ तोला, और नीलाथोथा का महीन किया हुआ चूर्ण १ तोला—इनको जल में पीसकर कल्क करें। पीछे उसमें तिल का तैल ३२ तोला, गाय का घी ३२ तोला, गाय का दूध ६४ तोला और पानी २५६ तोला मिलाकर स्नेहपाक विधि से पकावें। जब स्नेह सिद्ध हो जाय, तब उसको कपड़े से छान, थोड़ा गरम करके उसमें राल का चूर्ण ८ तोला और मोम ८ तोला मिला, कपड़े से छानकर काँच के बर्तन या चीनी मिट्टी के पात्र में भरकर ऊपर से चार अंगुल ठंडा जल भरकर सुरक्षित स्थान में रख दें। इस जल को चार दिन के बाद बदलते रहें। —सि० यो० सं०

गुण और उपयोग—बिना धोये इस मलहम को हाथ-पाँव के तलवे फटने और पाँव की अंगुलियों के बीच के हिस्से पकने पर लगावें। धोये हुए मलहम को आग से जले हुए घाव, खुजली, खाज और बवासीर के मस्सों पर लगावें।

नासूर नाशक मलहम

चूना-पत्थर (खानेवाला) का टुकड़ा ऽ= पाव लेकर ऽ। भर तिल्ली के तैल में डालकर खूब घुटाई करें, जब मलहम जैसा बन जाय तो इसको डिब्बे में भरकर रख लें। —ध०

गुण और उपयोग—आवश्यकता पड़ने पर नासूर के मुख पर लगाकर ऊपर से आक के पत्ते बाँध दें। तीन दिन तक पट्टी वैसी ही बंधी रहने दें, तीन दिन के बाद पट्टी खोलने पर नासूर (नासूर-घाव के अन्दर एक पतला डोरा रहता है, यही इस घाव में प्रधान उपद्रव-कारक है। इसके निकल जाने पर घाव बहुत जल्द भर जाता है, यही डोरा) भीतर से गलकर बाहर निकल जाता है। इसमें किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती है। प्रायः एक ही पट्टी में यह कार्य हो जाता है। यदि कुछ अंश बचा रह जाय, तो तीन दिन के बाद फिर दूसरी पट्टी दें। परन्तु जब तक पट्टी बंधी रहे, स्नान करना निषिद्ध है।

न्यूमोनियाहर मलहम

घृत ५ तोला और मोम २ तोला को आग पर गरम करके उतार लें, फिर इसमें कपूर, सत्त्व-अजवायन, पिपरमेण्ट प्रत्येक—३-३ माशे, दालचीनी का तैल १५ बूंद, लौंग का तैल १५ बूंद खूब मिलाकर शीशी में रख लें। —ध०

गुण और उपयोग—इस मलहम को लगाने से पहले ऽ= तारपीन के तैल में ६ माशा कपूर और तीन माशे अफीम मिलाकर, इस तैल की मालिश करके थोड़ा सेंक भी कर दें, पश्चात् धीरे-धीरे इस मलहम को लगाकर मालिश करके एरण्ड पत्र गरम करके पसली, छाती आदि में चिपकाकर, ऊपर गरम रूई रखकर, कपड़े से बाँध दें। इस प्रकार दिन भर में दो-तीन बार इस दवा का उपयोग करें। इससे पसली और छाती में न्यूमोनिया से होनेवाली पीड़ा में लाभ होता है। इसके अतिरिक्त शिरदर्द में भी यह फायदा करता है।

नेत्ररोगहर मलहम

फिटकरी की खील ३ माशे, अफीम ३ रत्ती, नीम की पत्ती की राख ३ माशा, गौ का पुराना घृत १।। तोला, सब को एकत्र मिलाकर काँसे की थाली में काँसे के कटोरे से घिसकर मलहम बना, डिब्बी में रख लें। —ध०

गुण और उपयोग—छोटे-छोटे बच्चों को अक्सर आँखें आ जाती हैं, आँख आना, चाहे बच्चा हो या बड़ा, सब के लिये दुःखदायी है। इस मलहम से आई हुई आँख (विशेष कर बच्चों की) बहुत शीघ्र अच्छी हो जाती है।

बिरौजे का लाल मलहम

गन्धाबिरौजा ४० तोला और हिंगुल (सिंगरफ) १ तोला लें। प्रथम गन्धाबिरौजा को मन्दाग्नि पर रखकर पिघलावें, बीच-बीच में उसको एक-दो बूंद चम्मच या चाकू से जल भरे पात्र में डाल, दो

अंगुलियों से दबाकर देखता रहे, कि मलहम बनाने योग्य हुआ या नहीं। जब मलहम बनाने योग्य हो जाय, तब कपड़े से छान, उसमें महीन पिसा हुआ सिंगरफ का चूर्ण थोड़ा-थोड़ा करके डालते जाएँ, और तब तक हिलाते रहें, जब तक मलहम ठंडा न हो जाय। यदि इस प्रकार हिलाया न जायगा, तो सिंगरफ भारी होने से नीचे बैठ जायगा।

—सि० यो० सं०

गुण और उपयोग—यह मलहम शोधन (व्रणों को शुद्ध करने वाला), रोपण (व्रणों को भरनेवाला) तथा वेदना (पीड़ा) नाशक और प्लीहा की वृद्धि को दूर करने वाला है। पार्श्वशूल (पसली के दर्द) या अन्य स्थानों के दर्द में भी इससे बहुत लाभ होता है।

इसके प्रयोग के लिये, व्रण, प्लीहा या जहाँ शूल (दर्द) हो उस स्थान के बराबर मोटे कपड़े की पट्टी काट एक चाकू गरम कर, उस पर मलहम लेकर पट्टी पर फैलाते जाएँ। पट्टी तैयार होने पर उसे जहाँ लगाना हो वहाँ लगा दें। लगाने से पूर्व उस्तरें से बाल उतार लेना चाहिये, अन्यथा पट्टी निकालते समय पट्टी के साथ बाल खिचेंगे। पट्टी उखाड़ते समय यदि बाल खिचें, तो कुछ बूँद तारपीन के तेल पट्टी के किनारे को जरा उखाड़कर अन्दर डालें, इससे पट्टी आसानी से उतर जायगी।

महात्माजी का मलहम

उत्तम राल १० तोले का महीन चूर्ण करें, और ६ माशे पारा को २॥ तोला तूतिया के महीन चूर्ण के साथ खूब घोटकर राल के चूर्ण में मिला दें, फिर घी डालकर पत्थर की लोढ़ी-शिल पर भाँग की तरह ६ घण्टे तक घोटें। (घी अन्दाज से डालें, जिससे दवा रोटी बनाने के जल मिले आटे की तरह हो जाये) घोटने के लिये मजबूत आदमी चाहिये, क्योंकि मलहम पत्थर से बहुत चिपक जाता है। मलहम तैयार होने पर उसे टीन के डिब्बे में भर दें। —आरोग्य प्रकाश

गुण और उपयोग—इस मलहम को जिस फोड़े पर लगाना हो, पहले कपड़े की गोलाकार उतनी ही बड़ी पट्टी काट लें, बीच में जरा-सा

छेद रहने दें। फिर मलहम को उस कपड़े पर लगाकर आग की सहायता से जरा तपाकर फोड़े पर चिपका दें। इससे फोड़ा बहुत जल्द पककर बह जायगा। यदि मामूली सूजन होगी, तो वह भी बैठ जायगी। यह बहुत चमत्कारी मलहम है।

शीतल मलहम

सफेद कत्था ४ तोला, कपूर २ तोला, सिन्दूर १ तोला, गौ घृत २० तोला लें। पहले कत्था और कपूर को अलग- अलग पीसकर महीन कपड़े से छान लें। फिर काँसे की थाली में १०८ बार धुला हुआ गौ का घी लेकर उसमें कपूर और सिन्दूर मिला, फेंट कर रख लें।

गुण और उपयोग—इसके लगाने से गीली खुजली की फुन्सियाँ तत्काल फट जाती हैं। और बार-बार इसी को कुछ रोज तक लगाने से आराम होकर सूख जाती हैं। फोड़े, फुन्सी, जले हुए घाव आदि भी इससे अच्छे होते हैं।

श्वेत मलहम

१६ तोला तिल का तैल लेकर उसे मन्दी आँच पर रखें। उसमें से जब धुआँ निकलने लगे, तव ४ तोला राल का चूर्ण और तीन माशा सूक्ष्म पिसा हुआ तूतिया उसमें डालकर, तैल को नीचे उतार लें। राल तैल में घुल जाने पर उसे कपड़े से छान, एक थाली में डालकर ठंडा होने दें। ठण्डा होने पर उसमें थोड़ा-थोड़ा पानी मिलाते जाएँ और हाथ से मसलते जाएँ। थोड़ी-थोड़ी देर से पानी बदलते जाएँ, जब मलहम सफेद रंग का हो जाय, तब उसे काँच के पात्र में भर, ऊपर से थोड़ा-सा पानी डाल, बन्द कर रख दें। पानी तीसरे दिन पर बदलता रहे, अन्यथा मलहम काला हो जायगा। पानी नहीं डालने से मलहम खुश्क हो जायेगा। —सि० यो० सं०

गुण और उपयोग—बच्चों की गुदा और मूत्रेन्द्रिय के आस-पास के स्थान की सूजन और पाक में तथा अन्यत्र भी फोड़े, फुन्सी, बवासीर, अग्निदग्ध आदि में इससे बहुत फायदा होता है।

हरा मलहम

गन्धाबिरौजा ४० तोला, जंगाल २ तोला, साबुन २ तोला, पापड़खार ३ तोला और पत्थर का कोयला २ तोला लें। प्रथम गन्धाबिरौजा को धीमी आँच पर पिघला लें। पिघल कर मलहम बनने योग्य हो जाने पर उसे कपड़े से छान लें, फिर अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिलावें और ठंडा होने तक हिलाते रहें। —सि० यो० सं०

गुण और उपयोग—यह मलहम व्रणों का शोधन करनेवाला तथा फोड़े को पकाकर फोड़नेवाला (विदारक) है। यदि व्रण-शोथ पक जाने पर भी न फूटता हो, तो इसकी पट्टी लगाने से जल्द फूटकर मवाद बह जाता है।

शरीर में रक्त-विकार के कारण छोटी-छोटी फुन्सियाँ और बड़े-बड़े फोड़े हो जाते हैं, कभी-कभी तो वे पककर बहजाते हैं और कभी घाव का आकार धारण कर लेते हैं। चोट लगने,कट जाने,या जल जाने आदि से भी घाव हो जाते हैं। उपयुक्त उपचार न होने के कारण घाव नासूर—नाड़ीव्रण—का रूप धारण कर लेता है। प्राकृतिक नियम है, कि मवाद (पूय) जिस स्थान में उत्पन्न होता है, यदि उस स्थान को साफ न रखा जाय, तो आसपास में सड़न पैदा कर देता है, भीतर-ही-भीतर जब सड़न बहुत दूर तक फैल जाती है, तब नासूर (नाड़ी-व्रण) होता है। इसमें यह मलहम बहुत गुण करता है।

एक तरह का भयानक फोड़ा पीठ पर होता है, उसे "अदृष्ट-व्रग" या कारबंकल कहते हैं। यह बत्तक के अण्डे जैसा या सन्तरे जैसा होता है, और यह घाव प्रायः ४० वर्ष की अवस्था के बाद होता है। मधुमेह वाले रोगी को यह घाव होने से मृत्यु हो जाती है। इसके लिये भी यह मलहम बहुत लाभदायक है।

॥ इति ॥

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के विकास का इतिहास

हमारे देवस्थानों में सिद्धपीठ नाम से सुप्रसिद्ध तीर्थस्थान, श्री बैद्यनाथ धाम (देवघर) में, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड की स्थापना, आज से ३६ वर्ष पूर्व, हुई थी। आधि-व्याधि-नाशक श्री बाबा बैद्यनाथ के सम्मुख की गई मानव-कल्याण की कामना कभी विफल नहीं होती। आयुर्वेद के इष्टदेव भगवान् शंकर के शुभाशीर्वाद तथा हमारे अथक परिश्रम, श्रेष्ठ अध्यवसाय तथा विशुद्ध लगन के कारण, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड का काम बड़ी तेजी से आगे बढ़ा।

स्थापन-काल

राज्य की उपेक्षा, हमारे शिक्षित-समाज पर विदेशी आचार-विचार का प्रभाव एवं अपनी प्राचीन संस्कृति के प्रति उनकी उदासीनता के साथ जबर्दस्त सङ्घर्ष, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के इतिहास की प्रारम्भिक विशेषता है। करीब-करीब यही वक्त था, जब कि हमारे देश में राष्ट्रिय चेतना का आना और आजादी की लहर का उठना प्रारम्भ हुआ। हमारे समाज के प्रत्येक अङ्ग पर, विदेशी आचार-विचार और सत्ता का जो प्रभुत्व था, एक अन्धकार का आवरण था, उसके खिलाफ एक सुरसुराहट-सी होने लगी। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में, धीरे-धीरे, हमारे समाज के मृतप्राय शरीर में प्राणवायु का संचार हुआ। इसके बाद, हमारा राष्ट्रिय कारवाँ जिन-जिन बाधाओं, कठिनाइयों और तूफानों का सामना करते हुए अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ता रहा, वह हमारे देश के इतिहास का एक सर्वश्रेष्ठ, गौरवपूर्ण अध्याय है।

संघर्ष-काल

राष्ट्रिय ह्रास या समृद्धि, केवल राजनीतिक ही नहीं होती; बल्कि, व्यक्तिगत और समष्टिगत रूप में वह समाज की संस्कृति, साहित्य, कला, उद्योग, व्यापार, कृषि आदि सभी अङ्गों के सार्वभौमिक ह्रास और विकास पर निर्भर करती है। और चूंकि आयुर्वेद—हमारा राष्ट्रिय चिकित्सा-विज्ञान—हमारी संस्कृति, साहित्य और कला का एक सर्वोच्च ज्ञान-भाण्डार है; अतएव राष्ट्र के जीवन के साथ इसका अविच्छिन्न सम्बन्ध कोई नई और आश्चर्यजनक बात नहीं।

इसीलिए, जब हम श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के पिछले ३६ साल के सङ्घर्षमय जीवन और उसके फलस्वरूप प्राप्त उत्तरोत्तर उन्नति की ओर दृष्टिपात करते हैं, तब हमें गर्व और प्रसन्नता, दोनों ही होती है। गर्व इसलिए कि एक कर्त्तव्यपरायण सिपाही की तरह राष्ट्रिय पुनरुद्धार का एक जबर्दस्त मोर्चा—राष्ट्रिय चिकित्सा-विज्ञान—आयुर्वेद के प्रति अपने कर्त्तव्य का हमने हरेक कठिनाई और बाधा में भी, खूबी के साथ पालन किया है; और प्रसन्नता इसलिये कि हमारे राष्ट्रिय-संग्राम के नेताओं और सेनानियों ने हमारे इस काम की सराहना की, सहयोगियों ने प्रशंसा की और सर्वसाधारण ने स्वागत किया। आज नवराष्ट्र-निर्माण के दिनों में, जब कि प्रकाश की स्पष्ट झलक अन्तरिक्ष पर दिखाई पड़ रही हैं, हमारे उत्साह और आनन्द का सर्वोच्च कारण, एकमात्र वही अनुभूति है, जो राष्ट्रिय संघर्ष के आघात और उसकी आग की प्रत्येक लपट का अपना हिस्सा प्राप्त करने का सौभाग्य हमें मिला है।

उत्कर्ष-काल

अपनी जिन तीन विशेषताओं के कारण, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० बराबर सङ्घर्ष में विजयी होता आया है, वे ये हैं—(१) शुद्ध ओषधियों का निर्माण, (२) आयुर्वेदोन्नति के लिए ठोस कार्य और (३) वैज्ञानिक ढङ्ग से उनका प्रचार।

आज श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० का जो स्वरूप है, उसे विस्तृत रूप से बतलाने की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है। भारतवर्ष भर में ओषधि-निर्माण के चार बड़े-बड़े कारखाने, बड़े-बड़े शहरों में बैद्यनाथ दवाओं के १२५ से अधिक बिक्री-केन्द्र (डिपो) तथा १५ हजार से ऊपर एजेन्सियाँ (एजेण्ट) आदि इसकी विशालता को प्रकट करने के लिये पर्याप्त हैं। आज नगर-नगर और गाँव-गाँव में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० का जो साइनबोर्ड आप देखते हैं, तथा घर-घर में बैद्यनाथ-ओषधियाँ देखी जाती हैं, उनके मूल में जो तथ्य हैं, वे नीचे लिखे विवरण से आप की समझ में अच्छी तरह आ जायँगे।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के विभिन्न कार्य-विभाग

१—ऋषि-अर्चन (रिसर्च) विभाग

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० ने अपने स्थापन-काल से ही इस कार्य की ओर विशेष ध्यान दिया है। पहले काशी विश्वविद्यालय आदि संस्थाओं को आर्थिक सहायता देकर शोध (रिसर्च) का कार्य सम्पादित होता रहा है। किन्तु, अब इस महत्त्वपूर्ण कार्य को स्वयं हम अपने निरीक्षण में करने लगे हैं। गत दो वर्षों से इस कार्य के लिए ५०,०००) (पचास हजार) प्रतिवर्ष खर्च करने का निश्चय किया गया है। इस द्रव्य से शीघ्र ही प्रयोगशाला (Research

Laboratory) और रुग्णालय (Indoor Hospital) स्थापित किये जायेंगे।

(क) वनस्पति

वनैस्पतियों के शोध का कार्य गत दो वर्षों से विशद रूप में चलाया जा रहा है। इस विभाग में आयुर्वेदिक ओषधियों में काम आनेवाली वनस्पतियों का संदिग्ध-निर्णय और गुण-धर्म-परीक्षण होता है तथा नई चमत्कारिक वनस्पतियों को प्राप्त कर उनके स्वरूप और गुण-धर्म-निर्णय द्वारा समग्र भारतीय वैद्यों को लाभ पहुँचाने का प्रयत्न किया जाता है।

(ख) विश्लेषण

ओषधियों के काम में आनेवाले मूल द्रव्यों की असलियत को मालूम करना तथा तैयार ओषधियों की यथार्थ गुणकारिता और यथावत् निर्माण की, विश्लेषण (Analysis) द्वारा जांच करना, इस विभाग का मुख्य कार्य है। गत दो वर्षों से यह कार्य निरन्तर चालू है।

(ग) गुण-धर्म-निर्णय

आयुर्वेद-शास्त्र में वर्णित वनौषधियों एवं सिद्धौषधियों के गुण-धर्म-निर्णय का यह एक पृथक् अन्य विभाग है। इस विभाग के अन्तर्गत शीघ्र ही रुग्णालय (Indoor Hospital) स्थापित करने की योजना है, जिसमें २० रोगियों के लिए शय्या (Beds) रहेंगी। इस रुग्णालय द्वारा रोगियों पर शतशः अनुभूत की गई वनस्पतियों तथा योगों का गुण-धर्म निश्चय होगा। आयुर्वेद-विज्ञान में मानव-शरीर पर किये गये सफल औषध-परीक्षण को ही यथार्थ एवं असंदिग्ध गुण-धर्म-निर्णय माना गया है। यह कार्य चार्ट एवं रोगियों पर तैयार की गयी रिपोर्टों के आधार पर सम्पादित होगा।

(घ) शास्त्र-निर्माण-विभाग

उपरोक्त विभागों का शास्त्रीय निरूपण आयुर्वेदीय सिद्धान्तों से किया जायेगा। त्रिदोषतत्त्व, पञ्चमहाभूत, द्रव्य, रस, गुण, विपाक, वीर्य्य, प्रभाव-आधार पर ही नूतन ग्रन्थों का निर्माण होगा। वर्तमान विज्ञान (Modern Science) को भी इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर आत्मसात् करके समन्वयात्मक रूप में प्रकाशित किया जायेगा।

(ङ) शोध-कार्य की प्रगति

आयुर्वेदीय सिद्धान्तों के अनुसार, आयुर्वेद का संशोधन और परिवर्द्धन कोई सामान्य कार्य नहीं है। भारतवर्ष भर में स्वयं भ्रमण करके प्रायः, हमने देखा है कि इस अतीव महत्त्वपूर्ण कार्य को अब तक कहीं भी क्रियात्मक रूप नहीं दिया गया है। इस विषय में अपनी राष्ट्रिय सरकार की योजनाएँ भी अभी बन ही रही हैं। इस कार्य का कोई रचनात्मक उद्योग वहाँ भी नहीं हुआ। क्रियात्मक रूप के अभाव एवं द्रव्य और समय के अपव्यय की आशंका से हमने आयुर्वेदीय

शोध-कार्य की समस्या को अखिल भारतीय आयुर्वेद-शास्त्र-चर्चा-परिषद् के समक्ष उपस्थित किया तथा अखिल भारतीय आयुर्वेद-शास्त्र-चर्चा-परिषद् के प्रथम अधिवेशन—श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के व्यय से, पटना स्थित बैद्यनाथ-निर्माणशाला में—लगातार दस दिनों तक सम्पन्न कराया, जिसमें देश-भर के प्राय: सभी उच्चकोटि के आयुर्वेद-विशेषज्ञों ने भाग लिया था। परिषद् के इस अधिवेशन में आयुर्वेद के मूल आधार त्रिदोषतत्त्व और पञ्चमहाभूत सिद्धान्तों पर सूक्ष्म विवेचन के द्वारा उनके स्वरूप-निर्णय और गुणधर्म-निर्णय का अतीव महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ।

उपरोक्त परिषद् का द्वितीय अधिवेशन भी, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के द्रव्य-व्यय से ही गत वर्ष (सन् १९५३) के मई महीने में, हरद्वार में किया गया। जिसमें समस्त भारत के प्रधान वैद्यराजों एवं आयुर्वेद-प्रेमी डॉक्टरों ने भी भाग लिया। आयुर्वेदीय ओषधियों का प्रतिसंस्कार (Research) का अपना विशेष मार्ग, द्रव्य-गुण पर आधारित है। परिषद् के अधिवेशन में द्रव्य-गुण (रस-विपाक-वीर्य्य-प्रभाव) पर ही विवेचन हुआ है एवं इसी आधार पर श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा होनेवाले आयुर्वेदीय प्रतिसंस्कार (Research) की रूपरेखा निश्चित की गयी है। जीवित मानव-शरीर ही आयुर्वेद-विज्ञान की प्रधान प्रयोगशाला है। प्राचीन काल से ही आयुर्वेद-शास्त्र में द्रव्यगुण (रस-विपाक-वीर्य्य-प्रभाव) द्वारा ही किसी भी द्रव्य का गुण-धर्म-निर्णय हुआ है। इस सनातन पद्धति से ही अब भी आयुर्वेद का प्रति-संस्कार (Research) होना चाहिए। रुग्ण-सेवा, बिना आयुर्वेद के वास्तविक तत्वज्ञान के, कदापि सम्भव नहीं है। अत: इस कार्य के लिये एक आतुरालय (Indoor Hospital) का होना आवश्यक है, जिसमें पृथक्-पृथक् और मिश्रित (विश्लेषण और संश्लेषण) विधि से आयुर्वेदीय योगों और द्रव्यों का स्वरूप और गुणधर्म-निर्णय असन्दिग्ध रूप से हो। इस दिशा में हमलोग प्रयत्नशील हैं। कुछ अंशों में यह कार्य अभी भी किया जा रहा है जिसकी रिपोर्ट 'सचित्र आयुर्वेद' में समय-समय पर प्रकाशित होती रहती है। समुचित स्थान पर, कार्य-क्षमता-योग्य विस्तृत स्थान अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। आशा है, श्री धन्वन्तरि भगवान् की कृपा से, यह बड़ी कठिनाई भी शीघ्र ही हल हो जायेगी और हमारा यह आयुर्वेदीय प्रतिसंस्कार (Research) का महत्त्वपूर्ण कार्य दिन-प्रति-दिन उन्नति करता रहेगा। हमारा यह दृढ़ सिद्धान्त है कि किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य को ठोस आधार पर करने से निश्चित ही सफलता प्राप्त होती है।

२—ओषधि-निर्माण-विभाग

आयुर्वेद-चिकित्सा-पद्धति की उत्तमता और लोक-प्रियता उसके शास्त्र-सम्मत औषध-निर्माण की श्रेष्ठता पर निर्भर करती है। आयुर्वेदीय ओषधियों का निर्माण कठिन, अनुभव-गम्य और प्रभूत उपकरण-साध्य कार्य है। प्राचीन समय से केवल चिकित्सक ही इसे करते आये हैं। अभी भी हजारों वैद्य-बन्धु ऐसा ही कर रहे हैं। परन्तु महँगाई और कठिनाइयों के इस वर्तमान युग में परिस्थिति बिल्कुल बदल गई है। अर्थाभाव के कारण, ओषधि-निर्माण के आवश्यक उपकरण और उत्तम मूल द्रव्यों का जुटाना सर्वसाधारण वैद्यों के लिए ही नहीं, अपितु छोटी-मोटी फार्मेसी वालों के लिए भी अत्यन्त कठिन कार्य है। उपकरणों और उत्तम मूल द्रव्यों के अभाव में ओषधियाँ उत्तम गुणकारी नहीं बन पाती हैं। यही सब खास कारण हैं, जिनकी वजह से लोग ओषधियों में गुणहीनता की शिकायत करते हैं। ओषधियों के उत्तम गुणकारी होने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उनमें पड़नेवाले मूल द्रव्यों को शुद्ध (मिलावट-रहित), ताजे (नये) और विधि-पूर्वक संग्रह किये हुए प्रमाणित होना चाहिए। पंसारी लोगों से सड़े-गले, घुने और नकली द्रव्यों को लेकर उनसे ओषधि-निर्माण जैसा उत्तरदायित्व-पूर्ण कार्य करना, अपनी ओषधियों की गुण-हीनता ही नहीं, बल्कि इससे आयुर्वेद-विज्ञान के मूल पर ही कुठाराघात होता है।

ओषधियों के मूल द्रव्यों को उत्पत्ति-स्थानों से विधिपूर्वक संग्रह करना, उपकरणों का जुटाना तथा अनुभवी और निर्माण के विशेषज्ञ आयुर्वेदाचार्यों की देख-रेख में अत्यन्त कुशलता तथा स्वच्छता-पूर्वक ओषधि-निर्माण का कार्य कराना, अत्यन्त कठिन और उत्तरदायित्वपूर्ण काम है। इसे केवल सर्व साधन-सम्पन्न निर्माणशालाएँ ही यथावत् कर सकती हैं। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० भारतवर्ष भर में ओषधि-निर्माण के कार्य में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। कलकत्ता, पटना, झाँसी और नागपुर, इन चारों स्थानों पर सर्व साधन सम्पन्न औषध-निर्माणशालाएँ स्थापित हैं, जिनमें अपने स्वयं के वनौषधि-विभाग-द्वारा संग्रह किये गये उत्तम मूल द्रव्यों से अनुभवी एवं निर्माण-विशेषज्ञ आयुर्वेद-शास्त्र के आचार्यों के द्वारा शास्त्रीय विधि से अत्यन्त कुशलता तथा स्वच्छतापूर्वक ओषधि-निर्माण का कार्य होता है। प्रतिमास हजारों मन ओषधियाँ निर्मित होकर उचित मूल्य में जनता की सेवा में प्रस्तुत की जाती हैं। ओषधि-निर्माण का इससे श्रेष्ठ और सुव्यवस्थित प्रबन्ध भारतवर्ष-भर में अन्यत्र मिलना कठिन है।

बैद्यनाथ-ओषधियों की उत्तमता के तीन प्रमुख कारण हैं:—(१) मूल-द्रव्यों का नया, ताजा और विधिपूर्वक संग्रह किया जाना तथा द्रव्यगुण-विशेषज्ञों

के द्वारा सुपरीक्षित होना, (२) निर्माण-कुशल और अनुभवी आयुर्वेदाचार्यों द्वारा शास्त्रीय विधानानुसार ओषधि-निर्माण करना, (३) श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के मैनेजिङ्ग डाइरेक्टरों का स्वयं बहुत अनुभवी और ओषधि-निर्माण-विशेषज्ञ होना तथा ओषधि-निर्माण-कार्य का उनके द्वारा सतत निरीक्षण होना। निर्माण की इस विशुद्धता और उत्कृष्टता के कारण, बैद्यनाथ ओषधियों की जनता में इतनी व्यापक माँग बढ़ी है कि हमारी कलकत्ता, पटना, झाँसी, नागपुर, इन चार रसायनशालाओं के निरन्तर औषध-निर्माण कार्य में संलग्न रहने और एक हजार से अधिक कार्यकर्त्ताओं के होने पर भी जनता की दिनों-दिन बढ़ती हुई माँग की पूर्त्ति करने में कठिनाई अनुभव होती है। बैद्यनाथ औषधि-विक्रेताओं को क्रमशः नम्बरवार दवाएँ भेजी जाती हैं तथा इसके लिए हमें हर साल कार्यकर्त्ताओं की संख्या बढ़ानी पड़ती है।

३—ओषधि-विक्रय-विभाग

४ निर्माण केन्द्र, १२५ से अधिक बिक्री-केन्द्र और १५ हजार से अधिक एजेन्सियों (एजेन्टों) द्वारा बैद्यनाथ-दवाओं की निरन्तर बिक्री होती रहती है। देश-भर में सर्वत्र समान मूल्य (सब जगह एक दाम) में ओषधियों के विक्रय का प्रबन्ध है। बैद्यनाथ-अधिकार-प्राप्त औषध-बिक्रेताओं को कार्यालय उचित कमीशन देता है। जनता के लाभ के लिए भारतवर्ष के प्रमुख शहरों में एजेण्टों के अतिरिक्त १२५ से अधिक स्वतन्त्र बिक्री-केन्द्र भी हैं, जहाँ केवल बैद्यनाथ-ओषधियाँ ही बिकती हैं। इन बिक्री-केन्द्रों पर जनता को बैद्यनाथ-आयुर्वेद भवन लि० द्वारा निर्मित सभी ओषधियाँ मिलती हैं। उनमें से यहाँ कुछ बिक्री-केन्द्रों के स्थानों का निर्देश किया गया है; जैसे—देहली, आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, काशी, गोरखपुर, लखनऊ, मथुरा, लश्कर, इन्दौर, उज्जैन, आरा, भागलपुर, मुजफ्फरपुर, गया, बैद्यनाथ-धाम, रायपुर, गोंदिया, जबलपुर, अकोला, अमरावती, बिलासपुर आदि। प्रत्येक निर्माण-केन्द्र में एजेन्सी विभाग के मैनेजर अलग हैं, जिन के पास एजेन्ट बनने की इच्छावाले लोगों के पत्र (और वे स्वयं भी) बराबर आते रहते हैं। एजेन्सी के लिए स्वयं कार्यालय में आनेवाले महाशयों को पहले पत्र-व्यवहार द्वारा जान लेना चाहिए कि जिस स्थान की वे एजेन्सी लेना चाहते हैं, उस स्थान की एजेन्सी रिक्त है या नहीं। दवाओं के साथ-साथ उत्तम रूप से विधि-पूर्वक संगृहीत वनौषधियों की भी थोक बिक्री होती है। वनौषधियों की खुदरा बिक्री नहीं की जाती है। औषधियों के माँग-सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर—औषधि-विक्रय-विभाग के नाम करना चाहिए।

४—प्रचार-विभाग

सर्वसाधारण जनता को उत्तम ओषधियों की जानकारी देने के लिए प्रचार-कार्य की आवश्यकता होती है। इसके लिए हमारा प्रचार-विभाग पूर्ण सुव्यवस्थित रूप से, निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। हमारे प्रचार-विभाग के द्वारा वैद्यनाथ-दवाओं का प्रचार जिन श्रेष्ठ तरीकों से किया जाता है, उनमें पञ्चाङ्ग, सूचीपत्र, कलेण्डर, डायरी, हनुमानचालीसा, देवस्तोत्र, तीर्थ-माहात्म्य, नोट-बुक, ब्लाटिङ्ग (स्याही सोखता), सचित्र पोस्टर, साइनबोर्ड, दीवालें लिखवाना, प्रचार-मोटरों आदि से अनेक भाषाओं में हमारी दवाओं का प्रचार किया जाता है, जिससे वैद्यनाथ-ओषधि-विक्रेताओं की दवाएँ शीघ्र-से-शीघ्र बिक जाती हैं। हमारे प्रचार-विभाग की सर्वश्रेष्ठ विशेषता यह है कि वह विज्ञापन की प्रत्येक सामग्री को उपयोगी बनाकर प्रकाशित करता है। हमारी विज्ञापन-सामग्री को पढ़नेवाले स्वस्थ लोगों को स्वास्थ्य-सम्बन्धी उत्तम जानकारी प्राप्त होती है तथा रोगी मनुष्यों को उत्तम ओषधियों की ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त होती है। हमारे यहाँ से प्रकाशित धार्मिक-स्तोत्रों और तीर्थ-माहात्म्यों को पढने से मानसिक शुद्धि होती है। साथ ही हम यह भी जानते हैं कि हमारा वास्तविक प्रचार तो उत्तम गुणकारी (असली) वैद्यनाथ-दवाओं के द्वारा ही होता है। वैद्यनाथ-दवा का सेवन कर जब रोगी तन्दुरुस्त हो जाता है, तब वह स्वयं ही अन्य लोगों में वैद्यनाथ-दवाओं की श्रेष्ठता का प्रचार करता है और इस प्रकार वह हमारा ठोस प्रचारक सिद्ध होता है। वैद्यनाथ-दवाओं के ऐसे प्रचारकों की संख्या करोड़ों में है।

५—प्रकाशन-विभाग

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० का प्रारम्भ से ही यह सत्प्रयत्न रहा है कि आयुर्वेद के मूल सिद्धान्तों के आधार पर सुयोग्य विद्वानों द्वारा निर्मित तथा अनुवादित, प्रामाणिक ग्रन्थ सरल भाषा और सुलभ मूल्य में जनता को प्राप्त हों, जिससे आयुर्वेद का प्रचार और प्रसार बढ़े। इसके लिए हमारे यहाँ एक स्वतन्त्र प्रकाशन-विभाग है। हमारे यहाँ से प्रकाशित सभी आयुर्वेद-साहित्य के प्रकाशन की व्यवस्था का संचालन इसी विभाग के द्वारा होता है। अब तक प्रकाशित ग्रन्थों के अलावा प्रतिवर्ष दो-चार नूतन ग्रन्थ-रत्नों का प्रकाशन भी किया जाता है। हमारे यहाँ से अब तक दर्जनों ऐसे उच्च कोटि के ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, जो आज आयुर्वेद ग्रन्थ-भाण्डार के अमूल्य रत्न समझे जाते हैं।

६—परीक्षण-विभाग

वैद्यनाथ-ओषधियों के उपयोग में आनेवाले पदार्थों की परीक्षा इस विभाग द्वारा की जाती है। ओषधियों के मूल द्रव्य ; जैसे—जड़ी-बूटियाँ, खनिज द्रव्य,

धातु-उपधातु, रस-उपरस तथा केमिकल (रासायनिक) वस्तुओं के परीक्षण का कार्य सुयोग्यतम, अनुभवी, द्रव्यगुण-शास्त्र के विशेषज्ञ वैद्यों और आधुनिक रसायन-शास्त्र और फार्मोकोलोजी के ज्ञाता केमिस्टों के द्वारा किया जाता है, जो कि अपने विषय के अनुभवी और सर्वोच्च परीक्षोतीर्ण हैं। हमारी चारों निर्माणशालाओं के साथ, अपनी-अपनी प्रयोगशालाएँ भी हैं। बैद्यनाथ-ओषधियों का परीक्षण, उनके निर्मित होने के बाद भी किया जाता है कि ओषधि ठीक बनी है, या किसी प्रकार की इसमें कमी रह गयी है। इस परीक्षण-विभाग द्वारा परीक्षा में ठीक सिद्ध होनेवाली ओषधियाँ ही बिक्री की जाती हैं।

७—आयुर्वेद उन्नति-विभाग

आयुर्वेद-विज्ञान की वास्तविक समुन्नति करके उसको लोक-प्रिय और राज्यमान्य बनाना इस विभाग का मुख्य कार्य है। इसके लिए नीचे लिखे प्रयत्न किये गये हैं।

(क) आयुर्वेद-विद्यालय—श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के द्वारा गत ७ वर्षों से एक स्वतन्त्र आयुर्वेद विद्यालय, सफलता के साथ, चलाया जा रहा है। इस विद्यालय में अखिल भारतीय विद्यापीठ की आयुर्वेदाचार्य तथा राजस्थान की आयुर्वेद शास्त्री तक की शिक्षा निःशुल्क दी जाती है। छात्रों के कर्माभ्यास के लिए धर्मार्थ औषधालय की व्यवस्था भी है। प्रतिवर्ष लगभग एक दर्जन छात्र स्नातक होकर निकलते हैं। इसके अलावा भारत के अन्य कई आयुर्वेद-विद्यालयों को भी आर्थिक सहायता दी जाती है।

(ख) छात्रवृत्तियाँ—जो छात्र, आर्थिक अभाव के कारण, आयुर्वेद पढ़ने में कठिनाई का अनुभव करते हैं, ऐसे योग्य छात्रों को प्रतिवर्ष छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं।

(ग) सचित्र आयुर्वेद—आयुर्वेद-जगत् में उच्चकोटि के वैज्ञानिक पत्र का अभाव देखकर श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० गत छः वर्षों से उच्च स्तर की पाठ्य-सामग्री से परिपूर्ण "सचित्र आयुर्वेद" मासिकपत्र का प्रकाशन कर रहा है। इसमें प्रकाशित होनेवाले सभी लेख, आयुर्वेद के सुयोग्यतम विद्वान् लेखकों द्वारा लिखे हुए, उच्चकोटि के होते हैं। लेखों के साथ-साथ उनसे सम्बन्धित चित्र बनवाकर भी छापे जाते हैं, जिनसे पत्र की उपयोगिता और अधिक बढ़ जाती है। प्रतिवर्ष प्रायः एक विशेषांक भी प्रकाशित किया जाता है, जो अपने विषय पर सर्वोच्च सामग्री से सम्पन्न होता है। ऐसे विशेषांकों की माँग, उनके प्रकाशित होने के वर्षों बाद भी लोग करते हैं। 'सचित्र आयुर्वेद' का प्रत्येक अङ्क इतना उत्तम, वैज्ञानिक, पठनीय और मननीय सामग्री से भरपूर होता है कि गुणग्राही और

विद्वान् वैद्य इसके वर्ष-भर के अङ्कों को पुस्तकाकार जिल्द बँधवाकर उनका पुनः पुनः अनुशीलन करते हैं। आयुर्वेद के प्रायः सभी उच्चकोटि के विद्वान् इसके नियमित ग्राहक और लेखक हैं।

(घ) **धन्वन्तरि-जयन्ती**—आयुर्वेद के प्रवर्तक भगवान् श्री धन्वन्तरिजी की स्मृति के उपलक्ष में प्रतिवर्ष कार्तिक कृ० १३ को, यह पुण्य पर्व श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की निर्माणशालाओं तथा सभी बिक्री-केन्द्रों में विधिपूर्वक पूजन, आयुर्वेद की उन्नति-विषयक भाषण तथा प्रसाद-वितरण के साथ बहुत उत्साह-पूर्वक मनाया जाता है। सभी जगहों के स्थानीय वैद्य-बन्धु और सम्भ्रान्त नागरिकों को निमन्त्रित कर बुलाया जाता है और सभी लोग सम्मिलित रूप से आयुर्वेद-विज्ञान की समुन्नति की प्रतिज्ञा करते हुए भगवान् श्री धन्वन्तरिजी को अपनी-अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ नतमस्तक होकर अर्पण करते हैं। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के द्वारा प्रतिवर्ष १५०००) इस पुनीत कार्य में खर्च किया जाता है। ऐसे समारोह के आयोजन से वैद्य-समाज में भ्रातृत्व-भाव का उदय और संगठन का प्रचार होता है, जो आयुर्वेद की उन्नति के लिये अत्युपयोगी है। निकट भविष्य में यह समारोह, राष्ट्रिय स्वास्थ्य-पर्व के रूप में समग्र देश में मनाया जाय, इसके लिए हमारा यह प्रारम्भिक प्रयास है।

(ङ) **धर्मार्थ औषधालय और स्वास्थ्यरक्षा-केन्द्र**—जनता में आयुर्वेद की लोक-प्रियता बढ़ाने के लिए श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० ने झाँसी, पटना और नागपुर में धर्मार्थ औषधालयों तथा स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्रों की स्थापना की है। इनके द्वारा रोग-पीड़ित जनता को; चिकित्सा की उत्तमोत्तम सुविधाएँ सेवा-भाव से निःशुल्क प्रदान की जाती हैं। कठिन-से-कठिन रोगों का इलाज सुयोग्य और अनुभवी आयुर्वेदाचार्य, सेवाभाव-परायण वैद्यराज करते हैं, जो कार्यालय द्वारा अच्छा वेतन देकर जनता की सेवा के लिए ही नियुक्त किये गये हैं। आवश्यकतानुसार रोगियों को कीमती-से-कीमती औषधियाँ तक मुफ्त ही दी जाती हैं। इन धर्मार्थ औषधालयों की लोक-प्रियता और उपयोगिता इतनी अधिक बढ़ गई है कि प्रत्येक स्थान पर रोगियों की उपस्थिति २५०-३०० तक प्रतिदिन रहने लगी है। रोगियों को रोगमुक्त करने के बाद, एवं स्वस्थ लोगों को स्वस्थ बने रहने के लिए स्वास्थ्य-सम्बन्धी समुचित जानकारी हमारे स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्रों द्वारा दी जाती है। आहार-विहार और निद्रा तथा प्रत्येक ऋतु की दिन और रात्रिचर्य्या भी लोगों को बहुत सुन्दर ढङ्ग से समझाई जाती है। इस विभाग द्वारा समय-समय पर स्वास्थ्य-सम्बन्धी ट्रैक्ट भी प्रकाशित कर जनता में मुफ्त बाँटे जाते हैं।

(च) **धर्मार्थ औषधालयों को सहायता**—हमारे निजी धर्मार्थ औषधालयों

के अलावा, दूसरे लोगों द्वारा स्थापित धर्मार्थ औषधालय को भी हमारे कार्यालय द्वारा पर्याप्त सहायता दी जाती है। किसी भी प्रामाणिक धर्मार्थ औषधालय को, ओषधि माँगने पर, आधे मूल्य में ही ओषधियाँ भेज दी जाती हैं।

संवत् २०१० में की गई आयुर्वेद-सेवाएँ

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा सदैव की भाँति गत वर्ष भी आयुर्वेद की उन्नति के लिए जन-सेवा और शास्त्र-सेवा के बहुत से कार्य हुए हैं। परिमित स्थान के कारण, उनसे प्रमुख कार्यों के संक्षिप्त विवरण नीचे दिये गये हैं। इससे आप भली-भाँति जान सकेंगे कि श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० केवल ओषधि बनाकर बेचनेवाली फार्मेसी ही नहीं है, बल्कि आयुर्वेद-विज्ञान की ठोस सेवा करनेवाली एक आदर्श संस्था भी है, जिसमें सैकड़ों आयुर्वेदाचार्य और अनेक रसायनाचार्य निरन्तर कार्य कर रहे हैं। वनौषधि-संग्रह से लेकर ओषधियों के निर्माण तथा प्रयोगात्मक-परीक्षण तक का प्रत्येक कार्य, आयुर्वेद-शास्त्र के पारङ्गत, सुयोग्यतम, अनुभवी, कार्य-कुशल वैद्यराजों के सतत निरीक्षण में ही किया जाता है। रोगी मनुष्य को नीरोग तथा नीरोग को सर्वदा स्वस्थ बनाये रखने का आदर्श प्रयत्न, इस संस्था का प्रधान उद्देश्य है।

१—आयुर्वेद-शास्त्र-चर्चा-परिषद् का द्वितीय अधिवेशन

समस्त भारत के आयुर्वेद महारथियों को एकत्रित करके प्राचीन भारतीय चिकित्सा-शास्त्र आयुर्वेद के प्रतिसंस्कार (Research) का महत्वपूर्ण कार्य इस परिषद् के द्वारा हम लोग कर रहे हैं। परिषद् का प्रथम अधिवेशन पटना में किया गया था एवं गतवर्ष, मई, सन् १९५३ में, इसका द्वितीय अधिवेशन ओषधियों की पावन-भूमि, पर्वतराज हिमालय के अंचल में बहती हुई पुण्यसलिला भगवती गंगा के तट पर, सुशोभित भारतवर्ष के प्रधान तीर्थस्थान हरद्वार में हुआ है। आयुर्वेद-जगत् के सर्वश्रेष्ठ विद्वान्, आयुर्वेदोद्धारक, आयुर्वेद मार्त्तण्ड, आचार्य श्री यादवजी त्रिकमजी, आयुर्वेद-वाचस्पति महोदय की अध्यक्षता में हुए इस अधिवेशन में महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, पंजाब, दिल्ली प्रान्त, उत्तर-प्रदेश, मध्य प्रदेश, बंगाल, बिहार, दक्षिण भारत आदि देश के सभी भागों के ऋषिकल्प, उच्चकोटि के आयुर्वेद-विशेषज्ञों ने, ७०-७५ की संख्या में, भाग लिया है। परिषद् के इस अधिवेशन में आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त, द्रव्य के रस-गुण-विपाक-वीर्य-प्रभाव पर पूर्ण रूप से विचार कर सिद्धान्त स्थापित किये गये हैं। परिषद् के इस अधिवेशन का पूर्ण विवरण हमारे यहाँ से प्रकाशित मासिकपत्र "सचित्र आयुर्वेद" के जुलाई मास के 'परिषद्-अङ्क' नामक विशेषांक में प्रकाशित हो चुका है। परिषद् के इस अधिवेशन में सम्मिलित होनेवाले वैद्य महानुभावों

को महर्षि अग्निवेश कालीन 'शुभे हिमवतः पार्श्वे समवेत्ताः महर्षयः' सम्भाषा परिषदों की कल्पना स्मरण होती थी । भारत के समस्त वैद्य-समाज ने इस कार्य को आयुर्वेद-विज्ञान की समुन्नति के लिए एक अभूतपूर्व प्रयत्न माना है । परिषद् के इस अधिवेशन का उद्घाटन भारतीय संस्कृति के परम उपासक राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डनजी ने किया और दीक्षान्त भाषण सन्त-शिरोमणि प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी के द्वारा सम्पन्न हुआ । इस परिषद् का समस्त व्यय-भार श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० ने उठाया है । 'द्रव्यगुण-विज्ञानम्' पूर्वार्द्ध (द्रव्य के रस-गुण-विपाक-वीर्य-प्रभाव पर आचार्य यादवजी त्रिकमजी कृत सर्वोत्तम ग्रन्थ) तथा निबन्ध-संग्रह-ग्रन्थ, (परिषद् के द्वितीय अधिवेशन के समालोच्य विषय पर विवेच्य-निबन्धों का संग्रह-ग्रन्थ) इन दोनों ग्रन्थों को प्रकाशित कर मुफ्त वितरण किया है तथा इस विषय का अंग्रेजी-साहित्य भी भारत स्थित अमेरिकन दूतावास से प्राप्त कर सदस्यों के विचारार्थ सुलभ किया गया था ।

२—धर्मार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के द्वारा झाँसी और पटना में धर्मार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र कई वर्षों से स्थापित हैं । गत दिसम्बर, १९५३ ई० से नागपुर में भी धर्मार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र की स्थापना हो गयी है । इसका उद्घाटन करते हुए मध्य प्रदेश के महामहिम राज्यपाल डा० पट्टाभि सीतारमैया ने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के इस कार्य को आदर्श बतलाते हुए कहा कि—"ऐसे कल्याणकारी कार्यों का अनुसरण अन्य औषध-निर्माताओं को भी करना चाहिए । औषध-बिक्री के साथ-साथ गरीबों को मुफ्त औषध देना एक बहुत ही उत्तम कार्य है ।"

हमारे ये धर्मार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र इतनी उत्तमता से, सेवा-भाव के साथ चलाये जाते हैं कि रोगियों की भीड़ यहाँ सदैव लगी रहती है । हमारी विशेषता यह है कि हम मुफ्त चिकित्सा करने के अलावा जनता में आयुर्वेद के मूल सिद्धान्तों के अनुसार, ठोस स्वास्थ्य-प्रचार भी करते हैं । भोजन (आहार), ब्रह्मचर्य (संयम), ये दो स्वास्थ्य-ट्रैक्ट प्रकाशित कर मुफ्त बाँटे जा चुके हैं । व्यायाम-विषयक ट्रैक्ट भी शीघ्र ही प्रकाशित होंगे । प्रत्येक घर में सफाई सम्बन्धी आदर्श वाक्य लटकाकर स्वच्छता का प्रचार भी किया जाता है ।

३—महाकुम्भ पर्व : प्रयागराज

गत माघ मास में, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा प्रयागराज (इलाहाबाद) के महाकुम्भपर्व पर यात्रियों की सेवा का पूर्ण प्रबन्ध हुआ था ।

सभी सम्प्रदायों के सन्त, महात्मा एवं साधारण यात्रियों की रुग्ण-सेवा यहाँ अहर्निश (दिनरात, २४ घण्टा) निःशुल्क की जाती थी। रोगियों को आवश्यकतानुसार कीमती-से-कीमती (बहुमूल्य) औषधियाँ भी मुफ्त देने की व्यवस्था की गई थी। कार्यालय द्वारा नियुक्त सुयोग्यतम अनुभवी, सेवाभाव-परायण वैद्यों, उपवैद्यों तथा परिचारकों के पूरे दल ने इस महान् कार्य को बड़ी तत्परता और जिम्मेवारी के साथ किया है। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के मैनेजिंग डायरेक्टर पं० रामदयाल जोशी तथा वैद्यराज पं० रामनारायणजी शर्मा वैद्य शास्त्री ने स्वयं उपस्थित रह कर रोगी-यात्रियों की सेवा-सुश्रूषा के इस पुनीत कार्य में बड़ी उदार भावना से आदर्श-सेवाव्रत का पालन किया है। उनके इस सत्प्रयत्न की सुसंचालित व्यवस्था को देख कर कुम्भ मेला में आये हुए यात्रिगणों ने प्रसन्नता प्रकट की है।

धर्मार्थ-औषधालय और स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र के संचालन के अलावा, कुम्भ मेला में, एक आयुर्वेद-प्रदर्शिनी भी कार्यालय की ओर से की गयी थी, जिसका उद्घाटन उत्तर प्रदेश के राज्यपाल, महामहिम श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के कर-कमलों द्वारा हुआ था। इस प्रदर्शनी में हिमालय और विन्ध्याचल की सुदुर्लभ वनस्पतियों का प्रदर्शन किया गया था। अष्टवर्ग, सर्पगन्धा, गुड़मार आदि अनेक हरी-ताजी जड़ी-बूटियों के प्रदर्शन का विशेष प्रबन्ध किया गया था, ताकि साधारण जनता अच्छी तरह जान सके कि बैद्यनाथ-दवाओं के निर्माता कहाँ-कहाँ से और कैसी-कैसी दुर्लभ जड़ी-बूटियों को संग्रह करके उनसे उत्तमोत्तम औषधियाँ बनाकर सुलभ मूल्य में जनता की सेवा में प्रस्तुत करते हैं।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० का वनस्पति-विभाग एक स्वतन्त्र-विभाग है जो कि पंसारी और अत्तारों पर निर्भर नहीं रहता है। हमारे इस विशाल वनस्पति-विभाग के द्वारा वनौषधि-शास्त्र विशेषज्ञों के तत्त्वावधान में प्रति वर्ष हजारों मन वनौषधियों का संग्रह शास्त्रीय पद्धति से कराया जाता है। हमारे औषधि-निर्माण में इस वनस्पति विभाग द्वारा संगृहीत वनौषधियों का ही उपयोग होता है। यही एक खास कारण है कि बैद्यनाथ-औषधियाँ गुणों में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होती हैं। इस प्रदर्शनी में पारद-संस्कार के काम में आनेवाले यन्त्रों के प्रदर्शन का भी विशेष आयोजन था। सर्व-साधारण जनता को स्वास्थ्य-विषयक जानकारी प्राप्त हो, इसके लिये हजारों रुपये की लागत से स्वास्थ्य-सम्बन्धी तथा शरीर रचना के आकृति चित्र (Models) बनवाकर प्रदर्शित किये गये थे।

कुम्भ मेला में आये हुए बैद्यनाथ-औषधियों के ग्राहकों को औषधियाँ सुलभता से प्राप्त हो सके, इसके लिये मेला में बैद्यनाथ-औषधियों का बिक्री-केन्द्र

भी स्थापित किया गया था। जहाँ पर ग्राहकों को प्रत्येक ओषधि कलकत्ता के ही दर-भाव में मिलने का उत्तम प्रबन्ध था।

४—आयुर्वेदीय-ग्रंथ-प्रकाशन

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा अबतक प्रकाशित सभी ग्रन्थ आयुर्वेद के रत्न सिद्ध हुए हैं। 'आयुर्वेद-क्रिया-शारीर,' 'पदार्थ विज्ञान,' 'द्रव्यगुण विज्ञान,' 'मानस रोग-विज्ञान, आदि हमारे प्रकाशित अनेक ग्रन्थों को देश के आयुर्वेद महाविद्यालयों तथा कालेजों ने पाठ्य-क्रम में स्वीकार किया है। गतवर्ष, दो विशाल-ग्रन्थ (१) **यूनानी चिकित्सा-सार,** और (२) **संक्रामक रोग-विज्ञान** प्रकाशित हुए हैं। ये दोनों ही ग्रन्थ विशेषतापूर्ण और अनुपम हैं।

'आयुर्वेद-शारीर' नामक ग्रन्थ, आयुर्वेद-शास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान् कविराज श्री उपेन्द्रनाथदासजी, आयुर्वेद-सरस्वती, वाइस-प्रिन्सिपल, आयुर्वेद-यूनानी तिब्बिया कालेज, देहली द्वारा लिखाया जा रहा है, जो अपने विषय का अत्युत्तम ग्रन्थ सिद्ध होगा। इस ग्रन्थ की रचना में कई आयुर्वेद-विशेषज्ञ वैद्य और आधुनिक विज्ञान के शारीर-शास्त्र-विशेषज्ञ डाक्टर भी कार्य कर रहे हैं, जिन्हें उचित पारिश्रमिक दिया जाता है। आशा है, आगामी वर्ष तक, यह महान् ग्रन्थ भी हमारे प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित हो जायगा। आयुर्वेद-जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् लेखक श्री रणजितरायजी, आयुर्वेदालंकार का 'आयुर्वेदीय-हितोपदेश ग्रन्थ भी शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद-मार्त्तण्ड श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य द्वारा लिखित **"व्याधिविज्ञान"** के प्रथम भाग के प्रकाशन की व्यवस्था भी की गई है। आयुर्वेद-विज्ञान के इस उपादेय ग्रन्थ को (१) **व्याध्याश्रय**—लक्षण-भेद-विज्ञानीय, (२) **व्याधिविज्ञान विषय**—साधन-विज्ञानीय, (३) **दोष-धातु**—मल-विज्ञानीय तथा (४) **विविध परीक्ष्य-विज्ञानीय** नामक चार अध्यायों में विभाजित करके विषय को अतीव सुग्राह्य एवं सुबोध बनाकर लिखा गया है, जिससे पुस्तक विशुद्ध आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम में अति उपयोगी सिद्ध होगी।

हमारे प्रकाशित ग्रन्थों के मूल्य को देखकर सभी लोग यह स्वीकार करते हैं कि श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा यह प्रयत्न आयुर्वेद की उन्नति के लिये ही किया जा रहा है।

आयुर्वेद की उन्नति के लिये जहाँ अत्युत्तम ओषधियों के निर्माण, उसकी गुणकारिता के व्यापक प्रचार की नितान्त आवश्यकता है, वहाँ इसके वास्तविक ज्ञान-विज्ञान की जानकारी के लिये वैद्योपयोगी एवं जनसाधारणोपयोगी आयुर्वेदशास्त्र-विषयक उत्तमोत्तम ग्रन्थों का निर्माण, सरल एवं सुबोध भाषा और सुग्राह्य शैली में , किया जाना भी वांछनीय है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० का प्रकाशन-विभाग दिनानुदिन अपने कार्य में अग्रसर हो रहा है। हमें विश्वास है, हमारा यह प्रयास, हमारे प्राचीन आयुर्वेद-विज्ञान की प्रगति और प्रसार में सहायक सिद्ध होगा ।

वैद्यनाथ आयुर्वेदीय-प्रकाशन

हमारा कारखाना केवल ओषधि-निर्माता नहीं है। यह शुद्ध अर्थ में एक आयुर्वेदीय संस्था है। इसका प्रथम उद्देश्य है भारतीय चिकित्सा-पद्धति, आयुर्वेद का प्रतिसंस्कार कर उसके स्वाभाविक मानव-कल्याणकारी गुणों, उसकी विशेषताओं और चिकित्सा-प्रणाली की श्रेष्ठता की जानकारी जनता को करा देना। ओषधि और ग्रन्थ, दोनों इसके साधन हैं। इसलिये एक ओर जहाँ हम उत्तमोत्तम ओषधि-निर्माण-द्वारा आयुर्वेद की विशेषता को प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं, वहाँ दूसरी ओर इसके उत्तमोत्तम और प्रामाणिक ग्रन्थों के प्रकाशन का भी समुचित प्रबन्ध करते हैं। जिस कोटि के उत्तम ग्रन्थों का प्रकाशन कर हम आयुर्वेद का भण्डार भर रहे हैं, उनकी प्रशंसा मुक्तकण्ठ से समस्त देश की विद्वन्मण्डली ने की है। राजकीय शिक्षा-संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों ने हमारे आयुर्वेदीय प्रकाशन को अपने पाठ्यक्रम की पुस्तकों में प्रमुख स्थान दिया है। साथ-ही-साथ कम-से-कम यानी लागत मात्र मूल्य पर ऊँचे दर्जे के आयुर्वेदीय-साहित्य का प्रचार-प्रसार करना बैद्यनाथ-आयुर्वेदीय प्रकाशन का मूल सिद्धान्त रहा है। यही कारण है कि बैद्यनाथ प्रकाशन से निकली हुई उत्तम आयुर्वेदीय पुस्तकों का आज घर-घर में प्रचार है। हमारे "आरोग्य प्रकाश" को तो जनता ने इतना पसन्द किया है कि उसके दस संस्करणों में ८८००० प्रतियाँ छप कर हाथों-हाथ बिक चुकी हैं। इसी प्रकार अन्य ग्रन्थों के भी कई-कई संस्करण छप चुके हैं।

आरोग्य प्रकाश—(**आरोग्य, स्वच्छता और चिकित्सा पर सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ**) श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर, वैद्यराज पं० रामनारायण शर्मा, वैद्यशास्त्री ने ५-६ वर्षों के सतत परिश्रम से स्वयं इस ग्रन्थ का निर्माण किया है। इस ग्रन्थ का एक-एक वाक्य, समय पर, हजारों रुपये का काम देता है। व्यायाम, ब्रह्मचर्य, भोजन, सदाचार, उत्तम विचार आदि पूर्वार्द्ध के विषयों को पढ़कर और तदनुसार चलकर सदा बीमार रहनेवाला व्यक्ति भी बिना दवा के नीरोग (तन्दुरुस्त) हो जाता है। ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में शरीर में पैदा होनेवाले सभी रोगों की उत्पत्ति, कारण, निदान, रोग के लक्षण, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि इतनी सरल भाषा में लिखे गये हैं कि इसके द्वारा विद्वान् से लेकर साधारण पढ़े-लिखे, दोनों, समानरूप से लाभ उठा सकते

हैं। इसमें दवाओं के जो नुस्खे लिखे गये हैं, वे बहुत बार के परीक्षित, कभी भी विफल न होनेवाले एवं शास्त्रानुमोदित हैं। शहर हो या देहात—सब जगह इस पुस्तक के घर में रहने से रोगी को तत्काल लाभ पहुँचाया जा सकता है। औषध तैयार करने का विधान तो इस पुस्तक में बहुत ही श्रेष्ठ हैं; क्योंकि लेखक इस विषय के स्वयं निर्णयात्मक अधिकारी हैं। अति शीघ्र ही इस पुस्तक का ग्यारहवाँ संस्करण प्रकाशित होने जा रहा है। संस्करणों की इस सूचना से प्रस्तुत पुस्तक की लोकप्रियता और उपयोगिता स्पष्ट मालूम होती है। इसलिये, यदि यह कहा जाय कि हिन्दी में ऐसी पुस्तक दूसरी नहीं है, तो अनुचित न होगा। प्रचार की दृष्टि से पुस्तक का मूल्य भी बहुत कम रखा गया है। ४०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य सिर्फ २), डाक खर्च ।।=)। हमारी चार निर्माणशालाओं, १२५ बिक्री-केन्द्रों एवं १५००० एजेन्सियों से प्रत्यक्ष खरीदने पर या एक साथ तीन प्रति लेने पर डाक-खर्च नहीं लगेगा।

आयुर्वेदीय क्रिया-शारीर—(**सचित्र, रायल अठपेजी, विलायती पेपर**) लेखक—वैद्य रणजितराय देसाई, वाइस प्रिन्सिपल, आयुर्वेद महाविद्यालय, सूरत। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा प्रकाशित "शरीर-क्रिया-विज्ञान" का देश में सर्वत्र ही समादर हुआ था और प्रायः समग्र हिन्दुस्तान के आयुर्वेदीय कॉलेजों के पाठ्य-क्रम में यह पुस्तक नियत हो गयी थी। उसी ग्रन्थ का यह संशोधित और परिवर्द्धित तृतीय संस्करण है।

आयुर्वेद की इस पुनरुत्थान-वेला में, वैद्य रणजितराय, जो स्तुत्य और ऐतिहासिक महत्व का कार्य कर रहे हैं, उसे आज हिन्दुस्तान में कौन नहीं जानता? आयुर्वेद के संशोधन को दृष्टि में रख कर उन्हों ने जो अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, उन्हीं में से एक ग्रन्थ यह 'आयुर्वेदीय क्रिया-शारीर' है।

प्रस्तुत संस्करण के पाठ्य विषयों में तो पहले की अपेक्षा बहुत परिवर्तन किये ही गये हैं, इसमें अनेक एकरंगे चित्रों की भी संख्या में वृद्धि कर, विषय को अधिक सुबोध बनाया गया है एवं पुस्तक की उपयोगिता में और भी अधिक वृद्धि कर दी गयी है। मूल्य—११)

आयुर्वेद सार-संग्रह—(तृतीय संस्करण) हिन्दी में ऐसी आयुर्वेदीय पुस्तकों की बहुत कमी थी, जिन में रोग-विचार के साथ-साथ चिकित्सा, औषध-निर्माण, अनुपान, पथ्यापथ्य आदि का विवरण समझाकर, सरल भाषा में दिया गया हो। इससे सर्व साधारण पाठकों के सामने बहुत दिक्कतें आती रहती थीं। प्रस्तुत पुस्तक में आयुर्वेदीय साहित्य की इसी कमी को दूर करने का सफल प्रयत्न किया गया है। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा बनायी

जानेवाली सभी दवाओं की निर्माण-विधि तथा उनके गुण-धर्म और प्रयोग-विधि के साथ, सभी वैद्योपयोगी बातों का सविस्तार वर्णन सरल हिन्दी भाषा में किया गया है। रस-रसायन, अर्क आदि बनाने के यन्त्रों के चित्र भी दिये गये हैं, जिनके देखने से औषध-निर्माताओं को काफी सुविधा होगी। डिमाई साइज के ११०० पेज के ग्रन्थ का मूल्य—७) मात्र है।

आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान—लेखक—वैद्य रणजितराय देसाई, वाइस-प्रिन्सिपल आयुर्वेद महाविद्यालय, सूरत। **'आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान'** में अन्य दर्शन ग्रन्थों से क्या विशेषता है और क्यों है, इस पर प्रकाश डालते हुए इस ग्रन्थ में आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान के सभी विषय सरल भाषा में समझाये गये हैं।

आधुनिक अन्वेषित मूल तत्वों के साथ आयुर्वेदोक्त तत्त्वों का समन्वय करने के लिए किस दृष्टि से प्रयास होना चाहिये, इस पर विद्वान् लेखक ने यथास्थान स्वमत प्रकाशित किया है। आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान अन्य सभी आयुर्वेदीय विषयों का आधार भूत है, अतः इसका अध्ययन किस शैली से होना चाहिये, इस बात का विशद विवेचन करते हुए विषय को नया ही रूप देने का सफल प्रयास किया गया है। मूल्य ६)

उपचार पद्धति—(पंचम संस्करण) सर्व-साधारण गृहस्थ के सैकड़ों रुपये प्रति वर्ष बच सकते हैं, यदि उन्हें उपचार और पथ्य का साधारण ज्ञान भी हो जाय। इसी लक्ष्य को सम्मुख रख कर इस पुस्तक का प्रकाशन किया गया है। इसमें रोगियों की परिचर्या का विवेचन दिया गया है। मूल्य —।=)

किशोर-रक्षा और ब्रह्मचर्य—किशोर बालकों को हस्तमैथुन रूपी सर्वस्व नाशकारी व्याधि से बचाने का इस पुस्तक में सफल प्रयास किया गया है। पृष्ठ ११० ; मूल्य—।≡)

त्रिदोष-तत्त्व-विमर्श—लेखक—आयुर्वेद-वृहस्पति वैद्य रामरक्ष पाठक आयुर्वेदाचार्य। इस ग्रन्थ में आयुर्वेद के आधारभूत त्रिदोष-सिद्धान्त का शास्त्रीय विवेचन विधिवत् किया गया है। मानव-शरीर के अनेकानेक द्रव्यों में वात-पित्त-कफ प्रधान हैं, इसी तथ्य को केन्द्रित कर विद्वान् लेखक ने त्रिदोषतत्त्व के विभिन्न स्वरूपों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। इससे ग्रन्थ की शास्त्रीयता निखर गयी है। प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्ययन के बाद त्रिदोष-तत्त्व और पंच-महा-भूत का ज्ञान सरलता से हो जाता है। आयुर्वेद के जिज्ञासुओं के लिए पुस्तक अत्यन्त उपादेय है। मूल्य—२॥=)

पदार्थ-विज्ञान—(देश भर की आयुर्वेदीय संस्थाओं एवं परीक्षा-समिति के पाठ्यक्रम में स्वीकृत) लेखक—आयुर्वेद-वृहस्पति पं० रामरक्ष पाठक,

प्रिन्सिपल अ० शि० आयुर्वेदिक कालेज़, बेगूसराय । इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में पदार्थ का तुलनात्मक विवेचन किया गया है और द्वितीय अध्याय में आनेवाले पदार्थों का विवेचन किया गया है। तृतीय अध्याय में आयुर्वेद के मूलभूत त्रिदोष-सिद्धान्त की जननी प्रकृति तथा उससे उद्भूत-तत्त्वों की छान-बीन की गयी है। चतुर्थ अध्याय में आत्मतत्त्व का विवेचन किया गया है और यह दर्शाया गया है कि पूर्वजन्मकृत पापों का परिणाम भोगने के लिये किस प्रकार सगुण आत्मा भिन्न-भिन्न योनियों में प्रवेश कर अपने कर्मों का फल भोगा करती है। मूल्य—३॥)

मानस-रोग-विज्ञान—इस ग्रन्थ के विद्वान् लेखक स्वर्गीय डॉ० बालकृष्ण अमरजी पाठक ने बनारस हिन्दू विश्व-विद्यालय के आयुर्वेदिक कालेज के अध्यक्ष एवं प्रधानाध्यापक के रूप में काफी कीर्ति प्राप्त की थी और एक उच्च कोटि के विचारक और उद्भट्ट मनीषी के रूप में आप सम्पूर्ण भारत में सुप्रसिद्ध हो गये थे।

इस ग्रन्थ की रूपरेखा पूज्यपाद यादवजी ने तैयार की थी और इस विषय पर आयुर्वेदीय साहित्य में खटकनेवाली जबर्दस्त कमी को पूरा करने के लिये डॉ० पाठक जैसे अनुभवी विद्वान् वैद्य को यह ग्रन्थ लिखने के लिए उत्साहित किया था।

आज के युग में, जब कि काम, क्रोध, आदि तथा मिरगी (अपस्मार), उन्माद, न्यूरेस्थिनिया, मानसिक अस्थिरता, पागलपन, हिस्टीरिया आदि मानसिक-रोग मनुष्य-जाति को बुरी तरह त्रस्त कर रहे हैं, यह पुस्तक एक नवीन सन्देश देनेवाली है। अंग्रेजी-भाषा के ज्ञाताओं का कहना है कि मानस-शास्त्र जैसा अंग्रेजी में हैं, वैसा अन्यत्र नहीं है; किन्तु इस पुस्तक के अवलोकन से उनके भ्रम का निवारण होगा, ऐसा हमारा विश्वास है। मूल्य —५॥)

यूनानी चिकित्सासार—लेखक—हकीम डा० दलजीतसिंह। इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने रोगों के निदान तथा चिकित्सा को सरल हिन्दी भाषा में लिखकर सर्व-साधारण जनता तथा साधारण पढ़े-लिखे वैद्यों तक के लिए सुलभ बना दिया है।

यह सुविदित है, कि यूनानी दवा के नुस्खे बहुत सस्ते तथा आशुफलदायक साबित होते हैं। विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक में ऐसे अनेक योगों का उल्लेख कर पुस्तक की उपयोगिता अत्यधिक बढ़ा दी है।

डबल डिमाई साइज, उत्तम कागज तथा सुन्दर गेट-अप युक्त ६०० पेज की इस उपयोगी पुस्तक का मल्य सिर्फ ४॥) है।

यूनानी-सिद्धयोगसंग्रह—यूनानी चिकित्सा-पद्धति का महत्त्व सभी जानते हैं। यह आयुर्वेद के बहुत समीप है। इसके नुस्खे, आयुर्वेदीय नुस्खों की भाँति ही लाभदायक और तुरन्त फायदा करनेवाले तथा सस्ते होते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ भी उपर्युक्त लेखक द्वारा ही लिखवाकर प्रकाशित किया गया है। चिकित्सकों तथा सर्वसाधारण दोनों के लिये बहुत उपयोगी पुस्तक है। मूल्य–२॥)

सिद्धयोग-संग्रह—(चतुर्थ संस्करण) आयुर्वेदोद्धारक वैद्यवाचस्पति श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य के करकमलों से लिखा हुआ यह ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ को पढ़ने से प्रत्येक वैद्य को लाभ होगा, इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं है। डिमाई ८ पेजी २०० पेज के ग्रन्थ का मूल्य——२॥।)

संक्रामकरोग-विज्ञान—लेखक—कविराज बालकराम शुक्ल, आयुर्वेद-शास्त्राचार्य। आज जब कि देश में मलेरिया, कुष्ठ, यक्ष्मा, हैजा, प्लेग आदि जैसे भयंकर रोगों से हजारों-लाखों मनुष्य आक्रान्त हो रहे हैं, तो यह आवश्यक है कि संक्रामक रोगों से बचने का उपाय तथा रोग-परीक्षा, निदान-चिकित्सा आदि से भारतीय जनता को पूर्ण परिचित करा दिया जाय, जिससे प्रथम तो यह भयंकर रोग होने ही न पावे और यदि हो भी तो, उसका उचित प्रतीकार किया जा सके।

प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं विषयों का सरल हिन्दी भाषा में वर्णन कर सर्वसाधारणोपयोगी बना दिया गया है। डबल डिमाई १०७९ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य मात्र ६)

द्रव्यगुण विज्ञानम्—पूर्वार्धः (तीसरा संस्करण)—लेखक—आयुर्वेद-मार्त्तण्ड—वैद्यवाचस्पति वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य, बम्बई। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में सूत्ररूप में यत्र-तत्र बिखरे हुए द्रव्यगुण विषय को आयुर्वेद-तत्त्ववेत्ता पूज्य आचार्य जी ने बड़े परिश्रम से द्रव्यों के रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव आदि विषयों पर पृथक्-पृथक् पाँच अध्यायों में बहुत उत्तमतापूर्वक संकलित कर सरल संस्कृत तथा हिन्दी भाषा में विवेचन किया है, जो आयुर्वेद-विज्ञान की प्रगति के लिए बहुत उपकारक है। स्नातकोत्तर शिक्षण के लिए भी यह ग्रन्थ अत्युपयोगी है। मूल्य—४॥)

आयुर्वेदीय हितोपदेश—लेखक-वैद्य श्री रणजितराय देसाई। आयुर्वेद के रहस्य-बोधन के लिये संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। प्रायः आयुर्वेदीय पाठ्यक्रमों की प्रारम्भिक परीक्षाओं में संस्कृत भी एक अनिवार्य विषय रहता है, परन्तु इसका अध्ययन-अध्यापन संस्कृत-साहित्य के पाठ्य-ग्रन्थ हितोपदेश, पंचतन्त्र प्रभृति आयुर्वेदेतर विषयों के रूप में होता है। किन्तु, यह प्रचलित

पद्धति आयुर्वेदीय अध्ययन-अध्यापन के लिये पूर्ण समीचीन प्रतीत नहीं होती। इसी दृष्टिकोण को सामने रख कर आयुर्वेदीय अध्ययन-अध्यापन के कार्य में दक्ष वैद्य श्री रणजितरायजी ने **आयुर्वेदीय हितोपदेश** नाम की इस पुस्तक का प्रणयन किया है। वैद्य श्री रणजितराय के **आयुर्वेदीय-क्रिया-शारीर** तथा **आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान** नामक दो ग्रन्थों का जिन्होंने अवलोकन किया है, उन्हें लेखक की लेखन-शैली की विशेषताओं का कोई विशेष परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। इस ग्रन्थ में मूल वचनों का हिन्दी अनुवाद तथा नवीन विचारों का समन्वयात्मक विवेचन भी किया गया है। यह उपयोगी ग्रन्थ अति शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। आयुर्वेद के अध्यापकों और विद्यार्थियों को इस ग्रन्थ की प्रतियाँ अभी से सुरक्षित करा लेनी चाहिए। मूल्य लगभग २॥) या ३) होगा।

औषधियों की क्रमिक सूची

(मूल्यदर संवत् २०११ के सूचीपत्र के अनुसार)

"आयुर्वेद सार-संग्रह" में उल्लिखित सभी दवाएँ पर्याप्त मात्रा में

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

की ४ रसायनशालाओं, १०१ से अधिक बिक्रीकेन्द्रों तथा १५००० से अधिक एजेन्सियों में हर समय प्रस्तुत रहती हैं।

आसवारिष्ट

पृ० सं०	नाम औषधि	६० तोला	४० तोला	३० तोला	२० तोला
८०३	अशोकारिष्ट	३)	२।)	१॥=)	१।)
	अर्जुनारिष्ट	२॥=)	२=)		१≡)
७९८	अभयारिष्ट	२॥=)	२=)		१≡)
८००	अमृतारिष्ट	२॥-)	२)		१=)
८०१	अरविन्दासव	१पौ०२॥=)	८औंस१।≡)		४औंस॥-)
८०७	अश्वगन्धारिष्ट	३=)	२।=)		१।-)
८०९	उशीरासव	२॥-)	२)		१=)
८११	कनकासव	२॥-)	२)		१=)
	कालमेघासव	२॥-)	२)		१=)
८१३	कुटजारिष्ट	२॥=)	२=)		१≡)
८१४	कुमारी आसव	३)	२।)		१।)
	,, ,, नं० ३				१।=)
८१६	खदिरारिष्ट	२॥-)	२)		१=)
	चन्दनासव	२॥-)	२)	२० तोला	१=)
	चव्यकारिष्ट		३।)	१॥)	१०तो०१)
८२०	जीरकाद्यरिष्ट	३=)	२।=)		१।-)
८२२	दशमूलारिष्ट		३)		१॥≡)
८२७	द्राक्षासव	२॥=)	२=)	१॥-)	१≡)
८२५	द्राक्षारिष्ट	२॥)	२)	१॥)	१=)
८२९	पत्राङ्गासव	२॥=)	२=)		१≡)

उपरोक्त दवाओं की पृष्ठ संख्या "आयुर्वेद सार-संग्रह" की है।

पृ०सं०	नाम ओषधि	६० तोला	४० तोला	२० तोला
८३१	पिप्पल्यासव	२॥-)	२)	१=)
८३१	पुनर्नवारिष्ट	२॥-)	२)	१=)
	बलारिष्ट	२॥-)	२)	१=)
८३४	बब्बूलारिष्ट	२॥।=)	२=)	१≡)
	बासारिष्ट	२॥।=)	२=)	१≡)
	विडङ्गासव	२॥।=)	२=)	१≡)
	महामञ्जिष्ठाद्यरिष्ट	२॥-)	२)	१=)
	मुस्तकारिष्ट	२॥।=)	२=)	१≡)
८४०	रोहितकारिष्ट	२॥-)	२)	१=)
८४२	लोध्रासव	२॥-)	२)	१=)
८४२	लोहासव	२॥-)	२)	१=)
८४४	सारस्वतारिष्ट	१ पौ०३॥)	८औं०१॥।=)	४औं०१)
	सारिवाद्यरिष्ट	२॥।=)	२=)	१≡)
८४६	सारिवाद्यासव	२॥।=)	२=)	१≡)

चूर्ण

पृ०सं०	नाम ओषधि	१० तोला	५ तोला
७४१	अग्निमुख चूर्ण	५ तोला ॥।=)	२॥ तोला ॥)
७४२	अविपत्तिकर चूर्ण	१=)	॥≡)
	अश्वगन्धादि चूर्ण	१=)	॥≡)
७४३	एलादि चूर्ण	५ तोला १)	२॥ तोला ॥=)
७४७	गङ्गाधर चूर्ण	१=)	॥≡)
७५०	चोपचीन्यादि चूर्ण	१॥।=)	१-)
,,	जातिफलादि चूर्ण		२॥ तोला १)
७५१	तालीशादि चूर्ण	५ तोला १।)	२॥ तोला ॥।)
	तीक्ष्णविरेचन चूर्ण		२॥ तोला ॥)
	त्रिफला चूर्ण	॥।)	।≡)
७५३	दाड़िमाष्टक चूर्ण	१।)	॥।)
७५५	धातुपौष्टिक चूर्ण	२।)	१।)
७५५	नारसिंह चूर्ण	१।)	॥।)

उपरोक्त मूल्य संवत् २०११ के सूचीपत्र के अनुसार हैं।

पृ०सं०	नाम औषधि	१० तोला	५ तोला
७५६	नारायण चूर्ण	१।)	।।।)
७५८	पञ्चसकार चूर्ण	१-)	।।=)।।
७६१	पुष्यानुग चूर्ण	१।=)	।।।-)
	प्रदरनाशक चूर्ण	१।=)	।।।-)
७६२	वज्रक्षार चूर्ण		२।। तो. १=)
७६४	बिल्वादि चूर्ण	।।।=)	।।-)
७६९	मधुयष्ट्यादि चूर्ण	१।=)	।।।-)
७७१	महासुदर्शन चूर्ण	१)	।।-)
७७३	मीठास्वादिष्ट चूर्ण	१।=)	।।।-)
७७४	यवानी खाण्डव चूर्ण	१।)	।।।)
७६६	लवणभास्कर चूर्ण	१=)	।।=)
७७६	लवङ्गादि चूर्ण	१।।।≡)	१-)।।
७७७	लाई चूर्ण		२।।तो.।।।≡)
७५५	शतावर्यादि चूर्ण	१।।)	।।।=)
७८०	सारस्वत चूर्ण	२=)	१≡)
७८०	सामुद्रादि चूर्ण		१=)
७८१	सितोपलादि चूर्ण	५ तो० १।।)	२।।तो.।।।=)
	सुखविरेचन चूर्ण	५ तो० ।।=)	२।।तो. ।≡)
	स्वादिष्टविरेचन चूर्ण	५ तो० ।।=)	२।।तो. ।≡)
७८२	हिंग्वष्टक चूर्ण	१=)	२।।तो.।।=)

अवलेह मोदक

पृ०सं०	नाम औषधि	१० तोला	५ तोला
७०५	अगस्त्य हरीतकी	१।-)	।।।)
७११	अष्टांग अवलेह		।।।≡)
७१४	एरण्ड पाक	१।।।=)	
७१५	कण्टकार्य्यवलेह	२)	१=)
७१७	कुटजावलेह	२)	१=)
७१८	कुष्माण्ड खण्ड	१।।)	
७२०	चित्रक हरीतकी	१।।=)	।।।≡)

वर्तमान मूल्य जानने के लिए वर्तमान सूचीपत्र देखिए।

प० सं०	नाम ओषधि	१० तोला	५ तोला
७२२	च्यवनप्राशावलेह (अष्टवर्गयुक्त)	४० तो. ४)	२०तो. २=)
७३१	बादाम पाक	२० तो. ५।।)	१०तो.२।।।=)
७३२	वासावलेह	१।)	।।।)
७३३	वासाहरीतक्यवलेह	१।)	।।।)
७३४	बाहुशाल गुड़	१।≡)	।।।–)।।
७३४	व्याघ्री हरीतकी	१–)	।।=)।।
७३५	ब्राह्मरसायन	१।।)	।।।=)
७३६	भार्गी गुड़	१।=)	।।।–)
७३७	मदनानन्द मोदक	५ तो. १।)	।।।)
७३८	मूसली पाक	२० तो. ५)	१०तो.२।।=)
	सुपारी पाक	२० तो. ३)	१०तो.१।।=)
	सौभाग्य सुंठी पाक	२० तो. ३।।)	१०तो.१।।।=)
	हरीतकी खण्ड		।।।)
	हरिद्रा खण्ड बृहत्		।।।)

क्षार लवण

पृ०सं०	नाम ओषधि	१ तो०	पृ० सं०	नाम ओषधि	१ तो०
	अर्कक्षार	।।)		धतूरा-क्षार	।।)
	अर्क लवण	।≡)		नारिकेल-लवण	।≡)
	अडूसा-क्षार	।।)		पीपल-क्षार	।।)
	अपामार्ग-क्षार	।।)		पुनर्नवा-क्षार	।।)
	अभया-लवण	।≡)		मूली-क्षार	।।)
	इमली-क्षार	।।)		यव-क्षार	।≡)
	कंटकी-क्षार	।।)		"	५तो२)
	चणक-क्षार	।।)		स्नूही-क्षार	।।)
				क्षारागद	।।)

उपरोक्त मूल्य संवत् २०११ के सूचीपत्र के अनुसार हैं।

आयुर्वेदीय औषधि तैल

पृ० सं०	नाम औषधि	१० तोला	५ तोला	१। तो०
	अणु तैल	१।तो. १।)		
	इरिमेदादि तैल	२≡)	१≡)॥	
	कासीशादि तैल	२।=)	१।–)	
	किराततादि तैल	२≡)	१≡)॥	
	गुडुच्यादि तैल	१।।।)	१)	
८६७	ग्रहणी मिहिर तैल	२।।।)	१।)	
८६८	चन्दनबलालाक्षादि तैल	२।≡)	१।–)॥	
	दशमूल तैल	५ तो. १≡)	२।।तो.।।≡)॥	
८७१	प्रमेह मिहिर तैल	३।।)	१।।।=)	
	पुनर्नवादि तैल	२।।)	१।=)	
	बिल्व तैल		१औंस ।।।)	
८७६	बासाचन्दनाद्य तैल	३।।)	१।।।=)	
	व्रण राक्षस तैल		,, १।।)	
८८०	मल्ल तैल		१ड्राम १।)	
	महामरिच्यादि तैल	२)	१=)	
८६९	महाचन्दनादि तैल	३)	१।।=)	
	महाविषगर्भ तैल	१।।।≡)	१–)॥	
८७१	महानारायण तैल	२।।=)	१।≡)	
८८०	महाभृङ्गराज तैल	२।≡)	१।–)॥	
८८२	महामाष तैल	३।।।)	२)	
८८४	महालाक्षादि तैल	२।–)	१।)॥	
८७९	विष्णुतैल वृहत्	३)	१।।=)	
८८५	श्रीगोपाल तैल	६।)	३।)	।।।≡)
	शुष्कमूलकाद्य तैल	२=)	१≡)	
८८४	शङ्खपुष्पी तैल	२।।–)	१।=)॥	
८८६	षड्बिन्दु तैल	५ तो. १।)	२।।तो.।।।)	
	सैन्धवादि तैल	१।।।≡)	१–)॥	
	सोमराजी तैल	१।।।≡)	१–)॥	
	हिमसागर तैल	५।।)	२।।।=)	

वर्तमान मूल्य जानने के लिए वर्तमान सूचीपत्र देखिए ।

घृत

पृ० सं०	नाम औषधि	१० तोला	पृ.सं.	नाम औषधि	१०तोला
	अर्जुन घृत	३)		पुराना घृत	२॥तो॥।-)
	अश्वगन्धादि घृत	४)		पंचतिक्त घृत	३)
८५१	अशोक घृत	२॥।=)	८५५	फल घृत	४॥)
८५३	कामदेव घृत	३॥।=)	८५६	ब्राह्मी घृत	३॥)
	काशीसादि घृत	२॥।=)		महाचैतस घृत	३।)
८५६	त्रिफला घृत	३।)		महातिक्त घृत	३।)
	पुराना घृत	५तो.१॥)		शतावरी घृत वृहत्	३।)

भस्म

पृ०सं०	नाम औषधि	१ तोला	॥) भर	।) भर	-) भर
१२२	अकीक भस्म	१॥)	॥।-)	।≡)	
११३	अभ्रकभस्म सहस्र पुटी	६४)	।)भ.१६-)	=)भ.८-)	४-)
११३	अ० भ० शतपुटी	६)	।)भ.२।-)	=)भ.१≡)	॥=)
११२	अ० भ० साधारण	१॥=)	॥।=)	।≡)॥	
१२३	कपर्दक भस्म	॥)	।-)		
१२६	कहरवा (तृ० पि०)	१६)	।)भ.४-)	=)भ.२-)	१-)
१२८	कासीस भस्म	॥)	।-)		
१३१	कांस्य भस्म	॥।≡)	॥)॥	।)॥।	
	कांतलौह भस्म	७॥)	।)भर १॥।≡)	=)भर १)	॥)॥
१३४	खर्पर भस्म	॥।=)	॥)	।)॥	
१४४	जहरमोहरा खताई पि०	१)	॥-)	।-)	
	" " भस्म	१)	॥-)	।-)	
१४७	ताम्र भस्म	३।)	१॥≡)	॥।=)	
	तीक्ष्ण लौह भस्म	५॥=)	२॥।=)	१।≡)॥	=)भ.॥।)॥
१५५	त्रिवङ्ग भस्म	२॥)	१।-)	॥≡)	
१५८	नाग भस्म	२=)	१=)	॥-)॥	
१५२	पन्ना भस्म	१६)	।)भ.४-)	=)भ.२-)	१-)

उपरोक्त मूल्य संवत् २०११ के सूचीपत्र के अनुसार हैं।

पृ०सं०	नाम ओषधि	१ तोला	॥) भर	।) भर	―) भर
१६७	प्रवाल पिष्टी	२)	१―)	॥―)	
१६६	प्रवाल भस्म	२)	१―)	॥―)	
१६७	प्रवाल भस्म चन्द्र पुटित	२=)	१=)	॥―)॥	
१८०	पीतल भस्म	॥।=)	॥)	।)॥	
१८२	बङ्ग भस्म	२॥)	१।―)	॥≡)	
१९६	विमल भस्म	१॥)	॥।―)	।≡)	
१९४	वैक्रान्त भस्म	१६)	।)भ.४―)	=)भ.२―)	१―)
१९७	मण्डूर भस्म	॥=)	।=)	≡)॥	
२०२	मधु मण्डूर भस्म	२=)	१=)	॥―)॥	
२०८	मयूर चन्द्रिका भस्म	३=)	१॥=)	॥।―)॥	
२०९	माणिक्य भस्म	१६)	।)भ.४―)	=)भ.२―)	१―)
२१०	मोती भस्म	५०)	=)भ.६।―)	―)भ.३≡)	
	मोती भस्म नं० १	८०)	=)भ.१०―)	―)भ.५―)	
	मुक्ता भस्म (चंद्र पुटित)	८५)	„ १०॥≡)	―)भ.५।=)	
२११	मोतीपिष्टी सर्वोत्तम नं० १	७६)	=)भ.९॥―)	„ ४॥―)	
	मोती पिष्टी	४६)	=)भ.५॥।―)	„ २॥≡)	
२१९	मुक्ताशुक्ति पिष्टी	१॥)	॥।―)	।≡)	
२१८	मुक्ताशुक्ति भस्म	१॥=)	॥।=)	।≡)॥	
१३९	यशद भस्म	१॥)	॥।―)	।≡)	
२२३	रौप्य (चांदी) भस्म	६)	।)भ.१॥―)	=)भ.॥―)	।≡)
	रौप्यमाक्षिक भस्म	॥।≡)	॥)॥	।)॥।	
२३३	लोह भस्म	१।)	॥≡)	।=)	
	लोहभस्म शतपुटी	९)	।)भ.२।―)	=)भ.१≡)	॥=)
	लोहभस्म सहस्रपुटी	६०)	।)भ.१५―)	=)भ७॥―)	१॥।≡)
	लोह सार	३।)	१॥≡)	॥।=)	
२४८	शङ्ख भस्म	॥=)	।=)	≡)॥	
२५६	शृङ्ग भस्म	॥।)	।≡)	।)	
२६३	स्वर्ण भस्म	१५६)	=)भ.१९॥―)	―)भ.९॥।―	
२७३	स्वर्णमाक्षिक भस्म	१॥)	॥।―)	।≡)	
२६२	हजरुल यहूद भस्म	॥।=)	॥)	।)॥	
१३५	हरिताल (गोदंती) भस्म	॥)	।―)		

वर्तमान मूल्य जानने के लिए वर्तमान सूचीपत्र देखिए।

रस-रसायन

पृ०सं०	नाम औषधि	१ तोला	॥) भर	।) भर	=) भर
३४१	अगस्तिसूतराज रस	६॥)	३।-)	१॥≡)	॥।=)
३४३	अग्निकुमार रस	॥।)	।≡)	।)	
३५०	अग्निसन्दीपन रस	॥।)	।≡)	।)	
३५१	अजीर्ण कण्टक रस	॥।)	।≡)	।)	
३५२	अजीर्णारि रस	॥।=)	॥)	।)॥	
३५२	अर्धनारी नटेश्वर रस	२।=)	१।)	॥=)॥	
३५३	अमर सुन्दर (वटी) रस	॥।)	।≡)	।)	
३५४	अमीर रस	६)	४॥-)	२।-)	१≡)
३५५	अमृतार्णव रस	॥।=)	॥)	।)॥	
३६५	अर्शकुठार रस	१॥=)	॥।=)	।≡)॥	
३५६	अश्व कंचुकी रस	॥।=)	॥)	।)॥	
३५६	अश्विनीकुमार रस	२)	१-)	॥-)	
३६६	आनन्दभैरव रस (कास)	१)	॥-)	।-)	
३६८	आनंदभैरव रस (ज्वर)	॥।=)	॥)	।)॥	
३६६	आमवातारि रस	॥।=)	॥)	।)॥	
३७०	आरोग्यवर्द्धिनी वटी	॥।≡)	॥)॥	।)॥।	
३७४	इच्छाभेदी रस	१=)	॥=)	।-)॥	
३७६	उन्मत्त रस	१॥)	॥।-)	।≡)	
	उन्माद गजाङ्कुश रस	२।)	१≡)	॥=)	
३७७	एकाङ्गवीर रस	५।)	२॥≡)	१।=)	॥≡)॥
३७६	कनक सुन्दर रस	१।-)	॥≡)॥	।=)।	
	कफ कर्तरी	१॥=)	॥।=)	।≡)॥	
३८४	कफकेतु रस	॥।=)	॥)	।)॥	
३८५	कफ चिन्तामणि रस	५॥)	२॥।-)	१।≡)	
३८२	कर्पूर रस	३)	१॥-)	॥।-)	
३८५	कल्पतरु रस	॥।)	।≡)	।)	
३८६	कल्याण सुन्दर रस	५२)	।)भर१३-)	=)भर६॥-)	
३८६	कस्तूरी भूषण रस	२०)	„ ५-)	„ २॥-)	

उपरोक्त मूल्य संवत् २०११ के सूचीपत्र के अनुसार हैं।

पृ०सं०	नाम औषधि	१ तोला	।।) भर	।) भर	=) भर
३८६	कस्तूरी भैरव रस	१७।।)	।)भर४।≡)	=)भर२।)	
३८७	कस्तूरीभैरवरसवृ०	२६)	„ ६।।−)	„ ३।−)	
३९६	कामदुघा रस	२।।=)	१।=)	।।≡)।।	
	कामदुधारस मौ.यु.	८)	।)भर२−)	=)भर१−)	
३९९	कामधेनु रस	३)	१।।−)	।।।−)	
४०२	कामिनीविद्रावणरस	८)	४−)	२−)	
४०२	कालकूट रस	२।।=)	१।=)	।।≡)।।	
४०५	कालारि रस	१।।)	।।।−)	।≡)	
४०७	कुमुदेश्वर रस	६०)	।)भर१५−)	=)भ.७।।−)	
४०६	कुमार कल्याण रस	६४)	„ १६−)	„ ८−)	
४०८	कुष्ठ कुठार रस	२।।।)	।।।≡)	।।)	
३९०	क्रव्याद रस	१।।।)	।।।≡)	।।)	
३९३	कृमि कुठार रस	१।।)	।।।−)	।≡)	
४१०	खंजनिकारि रस	५।।)	२।।।−)	१।≡)	
४१०	गङ्गाधर रस	१।=)	।।।)	।=)।।	
४११	गण्डमाला कण्डनरस	१।)	।।≡)	।=)	
४१२	गन्धक रसायन	१।।।=)	१)	।।)।।	
४१४	गर्भचिन्तामणि रस	२६)	।)भ.६।।−)	=)भ.३।−)	
४१५	गर्भपाल रस	३)	१।।−)	।।।−)	
४१७	ग्रहणी कपाट रस	२)	१−)	।।−)	
४२०	गुल्मकालानल रस	१।।=)	।।।=)	।≡)।।	
४२४	चतुर्मुख रस	.२४)	।)भ ६−)	=)भ.३−)	−)भ.१।।−)
४२७	चन्द्रकला रस	६।।।)	३।≡)	१।।।)	=)भ.।।।=)।।
४३१	चन्द्रकान्त रस	५)	२।।−)	१।−)	
४३२	चन्द्रामृत रस	१)	।।−)	।−)	
४३२	चन्द्रशेखर रस	७।।)	३।।।−)	१।।।≡)	=)भर १)
४३३	चन्द्रांशु रस	४।।।)	२।≡)	१।)	
	चिन्तामणि चतु.रस	४०)	=)भ.५−)	−)भ.२।।−)	)।।भ.१।−)
४३६	चिन्तामणि रस	२८।।)	।)भ.७≡)	=)भ.३।।=)	−)भ.१।।−)।।
	चौंसठ प्रहरी पीपल	१।।)	।।।−)	।≡)	

वर्तमान मूल्य जानने के लिए वर्तमान सूचीपत्र देखिए।

पृ. सं.	नाम औषधि	१ तोला	।।) भर	।) भर	=) भर
४३७	जयमङ्गल रस	३६)	।)भ.६–)	=)भ.४।।–	–)भ.२।–)
४३८	जलोदरारि रस	२।।)	१।–)	।।≡)	
४४०	ज्वरांकुश रस	।।।=)	।।)	।)।।	
४४४	ज्वरारि अभ्र	१।।)	।।।–)	।≡)	
४४३	ज्वर मुरारि	।।।≡)	।।)।।	।)।।।	
	ज्वर शूलहर रस	४।।)	२।–)	१≡)	
४४५	ज्वर संहार रस	१।।।)	।।।≡)	।।)	
४४६	तारकेश्वर रस	४।।)	२।–)	=)भ.१≡)	
४४७	तालकेश्वर रस	२।)	१≡)	।।=)	
४५१	त्रिविक्रम रस	६।।)	३।–)	१।।≡)	=)भ.।।।=)
४४८	त्रिभुवनकीर्ति रस	।।।=)	।।)	।)।।	
४५२	त्रैलोक्य चि० रस	७४।।)	=)भ.६।=)	–)भ ४।।≡।।	)।।भ.२।=।।
४५६	दन्तोद्भेद ग० रस	१।)	।।≡)	।=)	
४५६	दुर्जलजेता रस	१।)	।।≡)	।=)	
४५६	नष्ट पुष्पान्तक रस	४।)	२≡)	१=)	
४५८	नवज्वरेभसिंह रस	२।।=)	१।=)	।।≡)।।	
४६१	नागार्जुनाभ्र रस	४।)	२≡)	१=)	
४६०	नाराच रस	१।।=)	।।।=)	।≡)।।	
४६२	नित्यानन्द रस	१।)	।।≡)	।=)	
४५६	नृपतिवल्लभ रस	१।।=)	।।।=)	।≡)।।	
४६४	पंचवक्त्र रस	१।।)	।।।–)	।≡)	
४७६	पाशुपत रस	१।)	।।≡)	।=)	
४७६	पाण्डु पंचानन रस	१।=)	।।।)	।=)।।	
४७६	पुष्पधन्वा रस	६)	३–)	१।।–)	
४८१	पूर्णचन्द्र रस	६)	३–)	१।।–)	
४८१	पूर्णचन्द्ररस(वृहत्)	१२।।)	।)भर३≡)	=)भ.१।।=)	
४६७	प्रतापलंकेश्वर रस	२।।)	१।–)	।।≡)	
४७०	प्रदरान्तक रस	३।।=)	१।।।=)	।।।≡)।।	
४७१	प्रदर रिपु	१।)	।।≡)	।=)	
४७३	प्रवालपंचामृत	१४।।)	।)भ.३।।≡)	=)भ.१।।।=	

उपरोक्त मूल्य संवत् २०११ के सूचीपत्र के अनुसार हैं।

पृ. सं.	नाम औषधि	१ तोला	।।) भर	।) भर
४७७	पीयूषवल्ली रस	२।=)	१।)	।।=)।।
४८६	बड़वानल रस	२।=)	१।)	।।=)।।
५०३	वंगेश्वर रस	८)	४–)	२–)
५०२	वंगेश्वर रस (वृहत्)	१९।।)	।)भ ४।।।≡)	=)भ.२।।)
४८२	वसन्त कुसुमाकर रस	३७)	।)भ.९।–)	=)भ.४।।≡)
४८४	बसन्ततिलक रस	३२)	।)भ.८–)	=)भ.४–)
५५४	बसन्तमालती रस (स्वर्णघटित)	२६)	।)भ.६।।–)	=)भ.३।–)
४८५	बहुमूत्रान्तक रस	१२)	६–)	३–)
४८७	वातकुलान्तक रस	१२)	६–)	३–)
४८८	वातगजांकुश रस	२।)	१≡)	।।=)
४८६	वात चिन्तामणि रस (वृहत्)	३८)	।)भ.९।।–)	=)भ४।।[illegible]
४८९	वात रक्तान्तक रस	२।।)	१।–)	।।≡)
	वातारि रस	१।)	।।≡)	।=)
४९०	वातविध्वंसन रस	२।।)	१।–)	।।≡)
	बालरोगान्तक रस	३)	१।।–)	।।।–)
४९७	बालार्क रस	६।)	३≡)	१।।=)
४९७	विद्याधराभ्र रस	२)	१–)	।।–)
४९८	विश्वतापहरण रस	२)	१–)	।।–)
५००	बेताल रस	२।।)	१।–)	।।≡)
५०१	बोलबद्ध रस	१।।=)	।।।=)	।≡)।।
	भुवनेश्वर रस	।।–)	।–)।।	≡)।।
५०३	मकरध्वज रसायन गुटिका	१४)	।)भ.३।।–)	=)भ.१।।।–
५०४	मन्मथ रस	१।।)	।।।–)	।≡)
५०८	महागन्धक रस	२)	१–)	।।–)
४४२	महाज्वरांकुश रस	१)	।।–)	।–)
५०९	महामृत्युञ्जय रस	१।।=)	।।।=)	।≡)।।
५१२	महालक्ष्मीविलास रस	१६)	।)भ.४–)	=)भ.२–)
	महावातविध्वंसन रस	६)	३–)	१।।–)
५१५	मुक्तापंचामृत रस	३६)	।)भ.९–)	=)भ.४।।–)
	महामृगाङ्क रस	३०)	–)भ.१।।।≡	७।।–)

वर्तमान मूल्य जानने के लिए वर्तमान सूचीपत्र देखिए।

लौह

नाम औषधि	१ तोला	॥) भर	।) भर
अग्निमुख लौह	२।=)	१।)	॥=)॥
अम्लपित्तान्तक लौह	२।=)	१।)	॥=)॥
अष्टादशांग लौह	१)	॥-)	।-)
काममेघ नवायस	१॥=)	॥।=)	।≡)॥
कार्श्यहर लौह	१॥।=)	१)	॥)॥
गुडूच्यादि लौह	॥।≡)	॥)॥	।)॥।
चन्दनादि लौह	१॥=)	॥।=)	।≡)॥
चन्द्रामृत लौह	१।)	॥≡)	।=)
ताप्यादि लौह	१॥।)	॥।≡)	॥)
तारा मण्डूर	॥।=)	॥)	।)॥
त्रिफला मण्डूर	१॥)	॥।-)	।≡)
त्र्यूषणादि मण्डूर	१॥=)	॥।=)	।≡)॥
धात्री लौह	१॥=)	॥।=)	।≡)॥
नवायस लौह	१॥)	॥।-)	।≡)
नवायस मण्डूर	१।)	॥≡)	।=)
प्रदरान्तक लौह	१।=)	॥।)	।=)॥
प्रदरारि लौह	१)	॥-)	।-)
पिप्पल्यादि लौह	२=)	१=)	॥-)॥
पुनर्नवादि मण्डूर	१॥)	॥।-)	।≡)
वरुणाद्य लौह	१)	॥-)	।-)
विडङ्गादि लौह	॥।-)	।≡)॥	।)।
विषमज्वरांतकलौह (पुटपक्व)	२०)	।)भ.५-)	=)भ.२॥-
विषमज्वरांतक लौह	४॥)	॥)भ.२।-)	।)भ.१≡)
मण्डूर वटक	॥।)	।≡)	।)
यकृत्प्लीहारि लौह	३॥=)	१॥।=)	॥।≡)॥
यकृदरि लौह	१॥।)	॥।≡)	॥)
यक्ष्मारि लौह	३)	१॥-)	॥।-)
रक्तपित्तान्तक लौह	२।=)	१।)	॥=)॥

वर्तमान मूल्य जानने के लिये वर्तमान सूचीपत्र देखिये।

पृ०सं०	नाम औषधि	१ तोला	।।) भर	।)
६७८	रोहितक लौह	१।।)	।।।-)	।≡
६८०	शोथारि लौह	२।=)	१।)	।।=
६७६	शोथारि मण्डूर	१)	।।-)	।-
६८१	सप्तामृत लौह	१।।।)	।।।≡)	।।
६८३	सर्वज्वरहर लौह (वृहत्)	३२)	।)भर८-)	=)भ.४ -)भ.२
६८३	सर्वज्वरहर लौह	२।।)	१।-)	।।≡)

बटी-गोलियाँ

पृ०सं०	नाम औषधि	१ तोला	।।) भर	।) भ
३४६	अग्नितुण्डी बटी	।।≡)	।=)।।	≡)
५८१	अग्निवर्द्धक बटी	२।।तो.।।=)		
५८२	अपतन्त्रकारि बटी	१।।)	।।।-)	।≡)
५८३	अर्शोघ्नी बटी	३)	१।।-)	।।-)
५८५	एलादि बटी	।।≡)	।=)।।	≡)
३८२	कर्पूरादि बटी	१)	।।-)	।-)
५८६	कृमिघातिनी बटी	।।।)	।≡)	।)
५८७	कांकायन बटी (बवासीर)	।।-)	।-)।।	≡)
५८७	कांकायन बटी (गुल्म)	।।≡)	।=)।।	≡)
५८८	कुटजघन बटी	।।=)	।=)	≡)
५८६	खदिरादि बटी	।।।)	।≡)	।)
५६३	चन्द्रकला बटी	३)	१।।-)	।।।-)
५६२	चन्दनादि बटी	२।।)	१।-)	।।≡)
५६४	चन्द्रप्रभा बटी	२तो.१।-)	१तो ।।≡)।।	
५६७	चित्रकादि बटी	२।।तो.।।≡)		
६००	जातीफलादिबटी (संग्रहणी)	७।।)	३।।।-)	१।।।≡)
६०१	जातीफलादिबटी (स्तम्भक)	८।।)	४।-)	२≡)
६०४	दुग्धबटी (शोथ)	४)	२-)	१-)
६०४	दुग्धबटी (संग्रहणी)	३)	१।।-)	।।।-)
६०७	पञ्चतिक्त घनबटी	१)	।।-)	।-)

उपरोक्त मूल्य संवत् २०११ के सूचीपत्र के अनुसार हैं।

पृ. सं.	नाम औषधि	१ तोला	॥) भर	।) भर
५१७	मृगाङ्क रस	९६)	।)भ.२४–)	=)भ.१२–)
५१०	मृत्युञ्जय रस	॥।=)	[illegible])	।)॥
५१९	याकूति	४८)	)॥भ.१॥–	=)भ.६–)
५२०	योगेन्द्र रस	५८)	)॥भ.१॥।=	=)भ.७।–)
५२२	रत्नगर्भपोट्टली	६७)	)॥भ.२=॥	=)भ.८।≡)
५२२	रत्नगिरि रस	१०)	।)भ.२॥–)	=)भ.१।–)
	रत्नगिरी	५०)	=)भ.६।–)	–)भ.३≡)
२५	रसपीपरी	२।=)	१।)	॥=)॥
२४	रसमाणिक्य	२।=)	१।)	॥=)॥
५	रसराज रस	३०)	।)भ.७॥–)	=)भ.३॥।–
	राजमृगाङ्क रस	२५)	१२॥–)	६।–)
	रसादि रस	१॥=)	॥।=)	।≡)॥
	रामबाण रस	॥।=)	॥)	।)॥
	लघुमालिनी वसन्त	३)	१॥–)	॥।–)
२९	लघ्वानन्द रस	२॥=)	१।=)	॥≡)॥
	लवङ्गाभ्रकयोग	॥।=)	॥)	।)॥
५२९	लक्ष्मीनारायण रस	३।)	१॥≡)	॥।=)
५३१	लक्ष्मीविलासरस (रसेन्द्रकास)	३॥।=)	२)	१)॥
	लक्ष्मीविलासरस (नारदीय)	१॥=)	॥।=)	।≡)॥
५३२	लीलाविलास रस	४)	२–)	१–)
५३२	लोकनाथ रस	२।)	१≡)	॥=)
	लोकनाथ रस (वृहत्)	२॥)	१।–)	॥≡)
	लौह रसायन	१३)	६॥–)	३।–)
५३५	शक्रवल्लभ रस	१९)	।)भ ४॥।–)	=)भ.२।≡)
५३८	शशिशेखर रस	४॥)	२।–)	१≡)
५३७	शङ्खोदर रस	३॥)	१॥।–)	॥।≡)
५३९	श्वासकुठार रस	१।)	॥≡)	।=)
५४१	श्वासचिन्तामणि रस वृहत्	२०)	।)भर५–)	=)भ.२॥–
	श्लेष्मकालानल रस	१।=)	॥।)	।=)॥
५४२	शिरःशूलादिवज्र रस	१।)	॥≡)	।=)

उपरोक्त मूल्य संवत् २०११ के सूचीपत्र के अनुसार है।

पृ० सं०	नाम औषधि	१ तोला	॥) भर	।) भर
५४४	शीतभंजी रस	२॥)	१।-)	॥≡)
५४७	शूलकुठार रस	२)	१-)	॥-)
५४५	शूलगज केशरी	४॥)	२।-)	१≡)
५३८	शृङ्गाराभ्र रस	१॥=)	॥।=)	।≡)॥
५४८	सन्निपातभैरव रस	१॥=)	॥।=)	।≡)॥
५४९	सर्वतोभद्र रस	३)	१॥-)	॥।-)
५५०	सर्वांग सुन्दर रस	४८)	।)भ.१२-)	=)भ.६-)
५५६	स्मृति सागर रस	३।)	१॥≡)	॥।=)
५६३	सिद्धप्राणेश्वर रस	१।)	॥≡)	।=)
५६५	सुधानिधि रस (रक्तपित्त)	३)	१॥-)	॥।-)
५६४	सुधानिधि रस (शोथ)	१॥।)	॥।≡)	॥)
५५४	सुवर्णमालिनी वसंत (वृ०)	२४)	।)भ.६-)	=)भ.३-)
	सुवर्णमालिनी वसंत लघु	२२)	।)भ.५॥-)	=)भ.२॥।-
५६६	सूतशेखर रस नं० १	१२)	।)भर३-)	=)भ.१॥-
५६६	सूतशेखर रस (सुवर्णरहित)	३)	१॥-)	॥।-)
५७०	सूतिकारि रस	२॥)	१।-)	॥≡)
५७०	सूतिकाविनोद रस (वृहत्)	३)	१॥-)	॥।-)
	सूतिकाभरण रस	३२)	।)भर८-)	=)भर४-)
५७१	सोमनाथ रस	१।)	॥≡)	।=)
	सोमनाथ रस (वृहत्)	२४)	।)भ.६-)	=)भ.३-)
	सोमेश्वर रस	१)	॥-)	।-)
५५३	स्वच्छन्द भैरव रस	१॥=)	॥।=)	।≡)॥
५७२	हिंगुलेश्वर रस	१=)	॥=)	।-)॥
५७४	हृदयार्णव रस	३॥)	१॥।-)	॥।≡)
५७५	हेमगर्भ पोट्टली	५६)	।)भ.१४-)	=)भ.७-)
५७७	हेमनाथ रस	४२)	।)भ.१०॥-	,, ५।-)

वर्तमान मूल्य जानने के लिए वर्तमान सूचीपत्र देखिए।

पृ० सं०	नाम औषधि	१ तोला	॥) भर	।) भर
६०७	प्राणदा गुटिका	॥-)	।-)॥	≡)।
६०८	प्लीहारि बटी	॥।≡)	॥)॥	।)॥।
	विषमुष्टयादि बटी	॥।)	।≡)	।)
६१२	ब्राह्मी बटी	४०)	।)भ.१०-)	=)भ.५-)
	ब्राह्मी बटी (चेचक).	४।)	२≡)	१=)
६११	वृद्धिबाधिका बटी	२।=)	१।)	॥=)॥
६१०	व्योषादि बटी	॥≡)	।=)॥	≡)॥।
६१३	भागोत्तर गुटिका	१।)	॥≡)	।=)
६१४	मकरध्वज बटी	६॥)	४॥।-)	२।≡)
६१६	मरिचादि बटी	॥-)	।-)॥	≡)।
६१७	महाशङ्ख बटी	॥।=)	॥)	।)॥
६१८	मुक्तादि बटी	१८)	।)भ.४॥-)	=)भ.२।-)
६१८	मेहमुद्गर बटी	॥।=)	॥)	।)॥
६१६	रजःप्रवर्तिनी बटी	१॥=)	॥।=)	।≡)॥
५६०	राजवटी (गंधकबटी)	२½तो॥।=		
६२१	लवङ्गादि बटी	॥≡)	।=)॥	≡)॥।
६२२	लशुनादि बटी	॥=)	।=)	≡)॥
	शङ्ख बटी	॥=)	।=)	≡)॥
६२४	शुक्रमातृका बटी	४॥।)	२।≡)	१।)
६२४	शिलाजत्वादि बटी	२६)	।)भ.६॥-)	=)भ.३।-)
६२५	शूलवर्जिनी बटी	॥।-)	।≡)॥	।)।
६२५	सर्पगन्धाघन बटी	१॥)	॥।-)	।≡)
६२६	सारिवादि बटी	२॥=)	१।=)	॥≡)॥
	सूरण बटक	॥=)	।=)	≡)॥
६२८	संजीवनी बटी	॥=)	।=)	≡)॥
५६१	संशमनी बटी	॥।=)	॥)	।)॥
६३०	सौभाग्य बटी (प्रसूत)	१॥)	॥।-)	।≡)
	सौभाग्य बटी	१॥=)	॥।=)	।≡)॥
	हिंगुकर्पूरादि बटी	१४)	७-)	३॥-)
	हिस्टीरियामर्दनबटी	४)	२-)	१-)

वर्तमान मूल्य जानने के लिए वर्तमान सूचीपत्र देखिए ।

कूपीपक्व रसायन

पृ०सं०	नाम औषधि	१ तोला	।) भर	=) भर
२९२	चन्द्रोदय (अन्तर्धूम)	६०)	१५-)	७॥-)
	चन्द्रोदय (बहिर्धूम)	११)	२॥।-)	१।≡)
	पूर्णचन्द्रोदय	१७)	४।-)	२≡)
२९३	मकरध्वज	८)	२-)	१-)
	मकरध्वज षड्गुणबलिजारित	३२)	८-)	४-)
२९४	मकरध्वज (सिद्ध)	५०)	१२॥-)	६।-)
३१६	ताम्रसिन्दूर	६॥।)	१॥।)	॥।=)॥
३१०	तालसिन्दूर	६॥।)	१॥।)	॥।=)॥
३१३	मल्लसिन्दूर	६॥।)	१॥।)	॥।=)॥
३०२	रस सिन्दूर	४)	१-)	॥-)
	रजत सिन्दूर	६॥।)	१॥।)	॥।=)॥
३३८	व्याधिहरण रसायन	६॥)	१॥≡)	॥।=)
३१८	शिला सिन्दूर	६॥।)	१॥।)	॥।≡)॥
३३६	स्वर्णसिन्दूर	७॥)	१॥।≡)	१)
३२१	समीरपन्नग रस	८)	२-)	१-)
३२६	सुवर्णसमीरपन्नग रस	२४)	६-)	३-)
३३५	सुवर्णभूपति रस	५०)	१२॥-)	६।-)
३२८	सुवर्णराजवंगेश्वररस (स्वर्णवंग)	५)	१।-)	॥≡)

पर्पटी

पृ०सं०	नाम औषधि	१ तोला	॥) भर	।) भर
६५०	गगन पर्पटी	४)	२-)	१-)
६४०	ताम्र पर्पटी	४।)	२≡)	१=)
६४४	पञ्चामृत पर्पटी	४)	२-)	१-)
६४६	विजय पर्पटी	२८)	१४-)	७-)
६४८	बोल पर्पटी	२॥)	१।-)	॥≡)
६५०	मण्डूर पर्पटी	३)	१॥-)	॥।-)
६३६	रस पर्पटी	३)	१॥-)	॥।-)
६४३	लौह पर्पटी	४)	२-)	१-)
६५१	श्वेत पर्पटी	।=)		
६४२	स्वर्ण पर्पटी	२४॥)	१२।-)	६≡)

उपरोक्त मूल्य संवत् २०११ के सूचीपत्र के अनुसार हैं।

गुग्गुलु

पृ०सं०	नाम ओषधि	५ तोला	२॥ तोला
६८६	काञ्चनार गुग्गुलु	१॥-)	॥=)॥
६९०	कैशोर गुग्गुलु	१॥-)	॥=)॥
६९१	गोक्षुरादि गुग्गुलु	१॥)	१)
६९२	त्रयोदशाङ्ग गुग्गुलु	१॥-)	१)॥
६९३	त्रिफला गुग्गुलु	१॥=)	॥≡)
	त्रिफला गुग्गुलु (स्वनिर्मित)	१॥≡)	॥≡)॥
	पञ्चतिक्तघृत गुग्गुलु	२)	१=)
६९४	पञ्चामृत लौह गुग्गुलु	१तो.१॥-)	
	पुनर्नवादि गुग्गुलु	१॥-)	॥=)॥
६९७	योगराज गुग्गुलु	१॥)	॥≐)
६९४	योगराज गुग्गुलु (महा)	१ तो. २)	½ तो. १=)
७००	रास्नादि गुग्गुलु	१॥-)	१)॥
७००	लाक्षादि गुग्गुलु	१॥-)	॥=)॥
७०१	सप्तविंशति गुग्गुलु	१॥-)	१)॥
७०१	सिंहनाद गुग्गुलु	१॥-)	॥=)॥

विविध एवं उपयोगी द्रव्य

नं०	नाम ओषधि	मूल्य	नं०	नाम ओषधि	मूल्य
१	गिलोयसत्व ५ तोला	२।)		केशर काश. १ तोला	१०)
	,, १ तोला	॥)		,, ,, ।) भर	२॥-)
१	चन्द्रोदयावर्ति १ तोला	॥=)	६	गुलकंद १ पाव	१॥)
	,, आधा तोला	॥)		,, आधा पाव	॥=)
	,, चौथाई तोला	।)॥		गोरोचन १ तोला	२४)
२	महाशंखद्राव २ ड्राम	॥=)		विशुद्ध मधु ऽ।	१॥=)
३	शंखद्राव आधा औंस	॥=)		,, ,, ऽ=	॥=)
	अम्बर १ तोला	४८)		,, ,, ऽ-	॥)
	कस्तूरी १ तोला	७५)		,, ,, २॥ तोला	।-)

वर्तमान मूल्य जानने के लिये वर्तमान सूचीपत्र देखिये।

सुगन्धित केश-तैल

नं०	तेलों के नाम	मूल्य	नं०	तेलों व शर्बतों के नाम	मूल्य
२०	आमला केश तैल ४ औंस	१।।)	२९	आमला तैल नं० १०००	
२१	कामिनीविलासतैल२औं	१=)		१ पौंड	३)
२२	ब्राह्मीतैल (औषधसिद्ध)			" " १० औंस	२=)
	" " ४ औंस	१=)		" " ६ औंस	१।=)
	" " २ औंस	।।≡)	३०	ब्राह्मी आमला तैल१पौंड	४।=)
२३	ब्राह्मीतैल (औषधसिद्ध			" " "१० औंस	३)
	एवं सुगंधित) ४ औंस	१।=)		" " " ६ औंस	१।।।=)
	" " २ औंस	।।।-)		**शर्बत और अर्क**	
२४	हिमानीकल्याणतैल२औंस	१।।)	३१	बैद्य०केवड़ाशर्बत२४औंस	२।।)
	" " " १ औंस	।।।)	३२	" खश शर्बत "	२।।)
	सुवासित और		३३	" गुलाब शर्बत "	२।।)
	सुगन्धित तैल		३४	" गुलबनप्साशर्बत "	२।।)
२५	गुलरोगन १ पौंड	५।।)	३५	" चन्दन शर्बत "	२।।)
	" १० औंस	३।।≡)	३६	" अजबायन अर्क "	१।।)
	" ६ औंस	२।-)		" " " ८ औंस	।।=)
२६	चमेली का तैल १ पौंड	५)	३७	"अनंतमूलअर्क २४ औंस	२।)
	" " १० औंस	३।=)		" " " ८ औंस	।।।=)
	" " ६ औंस	२=)		" उस्वा २४ औंस	२)
२७	बेला का तैल १ पौंड	५)		" " ८ औंस	।।।-)
	" " १० औंस	३।=)	३८	"गोरखमुंडीअर्क२४ औं.	१।।)
	" " ६ औंस	२=)		" " " ८ औंस	।।=)
	सुगन्धित तैल		३९	"दशमूल अर्क २४ औंस	१।।)
				" " " ८ औंस	।।=)
२८	आमला तैल १ पौंड	३।।)	४०	"सुदर्शनअर्क२४ औंस	२)
				" " " ८ औंस	।।।-)
	" " १० औंस	२।≡)	४१	" सौंफ अर्क २४ औंस	१।।)
	" " ६ औंस	१।।-)		" " " ८ औंस	।।=)
				"महामंजिष्ठादि अर्क	
				२४ औंस	१।।)
				" " " ८ औंस	।।=)
				" जामुन का सिरका	
				४ औंस	।।।)

उपरोक्त दवाओं का मूल्य संवत् २०११ के सूचीपत्र के अनुसार हैं।

पेटेण्ट दवाएँ

नं०	दवाओं के नाम	गुण और उपयोगिता	साइज और मूल्य
१	बैद्यनाथ प्राणदा	सब तरह के बुखारों की निर्दोष दवा।	४ औंस १।।) २ औंस ।।।-)
२	,,विषमज्वरघ्नीबटी	जाड़ा या कम्प देकर आने वाले बुखार की अक्सीर दवा है।	१२ गोली का ।।।)
३	,, तिल्ली की दवा	तिल्ली की अचूक दवा है।	१६ खुराक १।।।) ८ खुराक १)
४	,, बालामृत	बच्चों को मोटा-ताजा और नीरोग बनानेवाली मीठी दवा है।	३२ खुराक १=) १६ खुराक ।।=)
५	,, जन्मघूंटी	छोटे बच्चों के लिए अमृत तुल्य गुणकारी है।	१ डिब्बा ।≡) आधा डिब्बा ।)
६	,, जीवनकल्प	इसका जैसा नाम है, वैसा ही यह महारसायन अमृत समान गुण करता है।	१ पाव २।।) आधा पाव १।=)
७	,, सुन्दरीकल्प	यह दवा सभी प्रकार के स्त्री-रोग को नष्ट कर शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाती है।	८ औंस २) ४ औंस १=)
८	,, कफ मिक्श्चर	सब तरह के कफ-खाँसी की हुक्मी दवा।	१६ खुराक १।) ८ खुराक ।।≡)

वर्तमान मूल्य जानने के लिए वर्तमान सूचीपत्र देखिये।

नं०	दवाओं के नाम	गुण और उपयोगिता	साईज और मूल्य
९	बैद्यनाथ कासवटी	गले की खराबी को दूर करके खाँसी को नष्ट करती है।	५० गोली का ।।।) २५ गोली का ।≡)
१०	,, श्वास कल्प	दमा रोग के लिए अमृत के समान लाभ पहुँचाने वाली दवा।	४८ खुराक का १।।=) १२ खुराक का ।।)
११	,, अनन्त सालसा	खून साफ करने की अक्सीर दवा है।	१६ खुराक २।।) ८ खुराक का १।=)
१२	,, चर्मरोगकीमहोषधि	खुजली होते ही इस दवा को लगाकर नष्ट कर दीजिए, वरना घर भर में फैल जायगी।	एक औंस ।।।=) आधा औंस ।।) चौथाई औंस ।-)
१३	,, गुल्लरिन	टान्सिल बढ़ जाना, मुख पाक, मलरोग आदि की अनुभूत दवा है।	१ औंस की शी० ।।।=)
१४	,, घाव का मलहम	इस मलहम के लगाने से घाव साफ होकर अंकुर भर आता है और नया मांस पैदा होता है।	१ औंस ।।=)
१५	,, दादूरीन	दाद में इसे लगाने से २४ घण्टे के अन्दर ही फायदा मालूम होने लगता है।	आधा औंस ।≡)
१६	,, दाद का मलहम	बिना किसी तरह की तकलीफ के दाद को फायदा पहुंचाती है।	आधा औंस ।।) चौथाई औंस ।) नमूना =) सफेद आधा औंस ।।)

उपरोक्त दवाओं का मूल्य संवत् २०११ के सूचीपत्र के अनुसार हैं।

नं०	दवाओं के नाम	गुण और उपयोगिता	साईज और मूल्य
१७	बैद्यनाथ एग्जीमा क्योर	इसे लगाने से नया-पुराना जैसा भी एग्जीमा हो, जल्द आराम होता है।	आधा औंस ।।)
१८	,, अर्क कपूर	हैजे के रोगी १०० में ९० अच्छे होते हैं, यह हैजे की मशहूर दवा है।	आधा औंस ।।।) २ ड्राम ।≈)
१९	,, अर्क पुदीना (सब्ज)	बदहज़मी और बाल रोगों की उत्तम दवा है। प्रत्येक को इसकी एक शीशी घर में रखनी चाहिए।	एक औंस १) आधा औंस ।।–) दो ड्राम ।–)
२०	,, क्लोरोडिन	इससे वायु के दर्द व शूल दो-तीन खुराक पीते ही अच्छे हो जाते हैं।	आधा औंस ।।=) चौथाई औंस ।=)
२१	,, अर्क सुधा	इसकी एक शीशी घर में रखना एक वैद्य या डाक्टर के बराबर काम देता है।	एक ड्राम ।।)
२२	,, हीलर मलहम	आग से झुलसना, जलना; मार-पीट से या किसी प्रकार की चोट से जखम होने को अच्छा करता है।	एक औंस ।।।) नमूना =)
२३	,, सप्तगुण तैल	आग से जलना, चोट, मोच वायु का दर्द, कान का दर्द, बहना, फोड़ा आदि की उत्तम दवा है।	२ औंस ।।।=) एक औंस ।।)

वर्तमान मूल्य जानने के लिए वर्तमान सूचीपत्र देखिये।

नं०	दवाओं के नाम	गुण और उपयोगिता	साईज और मूल्य
२४	बैद्यनाथ टिंचर आयडिन	इस दवा को शुरू में ही लगाने से घाव पकने की सम्भावना नहीं रहती है।	आधा औंस ।-) दो ड्राम ≡)
२५	,, पेनबाम	इसके लगाने से सब प्रकार के दर्द दूर हो जाते हैं, शरीर के किसी भी भाग में दर्द हो, लगाते ही आराम होता है।	आधा औंस ।।।) चौथाई औंस ।≡) नमूना =)।।
२६	,, दर्दनाशक टेबलेट	वायु से तमाम शरीर का दर्द, गठिया वात, कमर का दर्द आदि में शीघ्र लाभ करता है।	१६ टेबलेट ।।।) एक टेबलेट -)
	,, ,, चूर्ण		एक खुराक -)
२७	,, कान दर्द की दवा	किसी तरह के कान दर्द हो, इससे फौरन आराम हो जायगा। कान दर्द की अच्छी दवा है।	आधा औंस ।।) चौथाई औंस ।-)
२८	,, कानपी	इससे कान बहने की बीमारी शर्तिया नष्ट हो जाती है।	आधा औंस ।≡)
२९	,, दाँत-दर्दकी दवा	इस दवा को लगाते ही मुँह से लार गिरकर दाँत दर्द अच्छा हो जाता है।	दो ड्राम ।।=) १।८ औंस ।=)
३०	,, नेत्र-रक्षक अर्क	यह सब तरह के नेत्र रोग की परीक्षित दवा है।	आधा औंस ।।=) नमूना ≡)

उपरोक्त मूल्य संवत् २०११ के सूचीपत्र के अनुसार हैं।

नं०	दवाओं के नाम	गुण और उपयोगिता	साईज और मूल्य
३१	बैद्यनाथ हिमालय सुरमा	हिमालय की तरह यह ठंढेपन में श्रेष्ठ है, रोजाना इस सुर्मे को लगाने से धुंध, जाला, माड़ा आदि नेत्र-रोग अच्छे हो जाते हैं।	एक ड्राम १।)
३२	,, नेत्रामृत सुरमा	इसके रोज के व्यवहार से आँखोंकी रोशनी बढ़ती है,	दो ड्राम ।।)
३३	,, ममीरे का सुरमा	आँख जैसे अमूल्य रत्न के लिए इससे बढ़कर दूसरी दवा नहीं है।	एक शीशी १।)
३४	,, मोतीका सुरमा नं० १	नित्य के व्यवहार से आँखें निर्मल और ठंडी रहती हैं, और आँखोंकी कोई बीमारी पास नहीं फटकती है।	एक ड्राम २)
३५	,, दन्तमंजन लाल	यह मंजन आयुर्वेदीय दवाओं से तैयार किया गया है। पायरिया की अचूक दवा है।	४ औंस की शीशी १) २ औंस की शीशी।।=)
३६	,, दन्तमंजन सफेद	इसके व्यवहार से मुँह की दुर्गन्ध दूर होती है, चित्त प्रसन्न रहता है तथा दाँत मोती के समान चमकते हैं।	२ औंस की शीशी ।।)
३७	,, दन्तवेष्टारि	दो-तीन दिन मसूढ़ों पर लगाने से खून का गिरना बन्द हो जाता है।	एक औंस ।।।-)

वर्तमान मूल्य जानने के लिए वर्तमान सूचीपत्र देखिए।

नं०	दवाओं के नाम	गुण और उपयोगिता	साइज और मूल्य
३८	वैद्यनाथ कृमिहर चूर्ण	सिर्फ एक खुराक दवा के खानेमे पेटके कीडे मरकर निश्चय निकल जाते हैं।	४ खुराक १।।) १ खुराक ।।)
३९	,, शोधी हुई स्वादिष्ट हर्रे	यह बदहजमी, कब्जियत आदि पेटकी बीमारियोको नष्ट करने मे मशहूर है।	प्रायः १०० हर्रों का डिब्बा ।।।)
४०	,, स्वादिष्ट मुनक्का	भोजनके बाद ५-७ मुनक्के खाने मे अन्न अच्छी तरह से हजम हो जाता है। खानेमे बहुत स्वादिष्ट है।	एक छटाँक १=)
४१	,, क्षुधाकारी बटी	भोजनके बाद १-२ गोली चूसने से चित्त प्रसन्न हो जाता है और भूख खुल कर लगती है।	२ औस की शीशी ।।।=)
४२	,, नमक सुलेमानी	अन्न मे अरुचि, खाये हुए अन्न का न पचना, वायु-गोला, पेटदर्द आदि बीमा-रियाँ इससे आराम होती है	२ औस ।।।) १ औंस ।≡)
४३	ग्रहणी कपाट बटी	इससे संग्रहणी रोग निश्चय आराम होता है, इस रोग की यह परीक्षित दवा है।	कीमत १।)
४४	,, मन्दाग्नि संहार	इससे अन्न जल्दी हजम होता है और भूख खुलकर लगती है। शरीर में नया खून बनने लगता है।	कीमत ४० गोली १।)

उपरोक्त मूल्य संवत् २०११ के सूचीपत्र के अनुसार हैं।

नं०	दवाओं के नाम	गुण और उपयोगिता	साईज और मूल्य
४५	बैद्यनाथ अम्ल-पित्तान्तक योग	अम्लपित्त रोग के लिए यह बहुत अच्छी दवा है।	२० खुराक १।)
४६	,, जुलाब की गोलियाँ	पेट का विकार निकालकर शरीर को नीरोग करने के लिए यह मातदिल जुलाब है।	२० गोली ।।।) नमूना -)।।
४७	,, स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण	इसके व्यवहार से मिचली, पेट मे गड़बड़ी, जलन आदि उपद्रव दूर होते हैं और पेट साफ होजाता है।	५ तोला ।।=) २।। तोला ।≡)
४८	,, विशुद्ध एरण्ड तैल (रेंडी का तैल)	इसके सेवन से आँतों में चिपटा हुआ पुराना मल बहुत जल्दी साफ हो जाता है।	१२ औंस १।।।) ४ औंस ।।।-) १ औंस ।-)
४९	,, बवासीर का मलहम	बवासीर खूनी हो या वादी इसके लगाने से तुरत फायदा नजर आता है।	१ औंस ।।।=) आधा औंस ।।)
५०	,, सुगन्धित धूप	इस धूपको जलानेसे संपूर्ण घर सुगन्धित और रोग कीटाणु रहित हो जाता है।	कीमत ।।=)
५१	,, सूजाक कुठार	सूजाककी हर हालतमें इस दवा से लाभ होता है।	३२ खुराक २।।) १६ खुराक १।-)
५२	,, मूत्रल पाउडर	सूजाक में खुल कर पेशाब लाने के लिए इसका सेवन करना अच्छा है।	२० खुराक ।।=)

वर्तमान मूल्य जानने के लिए वर्तमान सूचीपत्र देखिये।

नं०	दवाओं के नाम	गुण और उपयोगिता	साईज और मूल्य
५३	वैद्यनाथ उपदंश केशरी	उपदंश (आतशक) की यह यह अक्सीर दवा है।	१२ गोली २)
५४	,, उपदंश का मलहम	इस मलहम के लगाने से सूजन मिटती और इन्द्रिय के घाव अच्छे हो जाते हैं।	आधा औंस ।।=)
५५	,,आमलकी रसायन	इसका नियमपूर्वक सेवन करने से धातु के तमाम दोष दूर होकर वीर्य पुष्ट हो जाता है।	१० तोला १।।)
५६	,, दिमाग दोषहरी	हिस्टीरिया,पागलपन,मृगी ब्लडप्रेशर आदि दिमागी रोगों की अच्छी दवा है।	५० गोली १।)
५७	,, बिच्छू की दवा	इस दवा के लगाते ही बिच्छू के जहर में तत्काल फायदा होता है।	कीमत ।=)
५८	,, स्वप्न दोषहरी	स्वप्नदोष की अचूक दवा, यह कई बार की अनुभव-सिद्ध दवा है।	४० खुराक २।।) १० खुराक ।।।)
५९	,, लीवरोल	यकृत्दोषसे उत्पन्न होने-वाले रोगों के लिए परी-क्षित दवा है।	४० खुराक २।।) १० खुराक ।।।)

उपरोक्त मूल्य संवत् २०११ के सूचीपत्र के अनुसार हैं।

सं०	दवाओं के नाम	गुण और उपयोगिता	साईज और मूल्य
६०	बैद्यनाथ मधुमेहारि योग (स्वर्णघटित) स्वर्णरहित	इस दवाकी सैकड़ो मधुमेह रोगियोपर परीक्षण करके देख लिया गया है ।	१ तोला ५) १ तोला १=)
६१	,, जवाहर मोहरा	यह वीर्यवर्द्धक, बाजीकरण, दिल-दिमाग और ताकत के लिये सुप्रसिद्ध दवा है ।	१ तोला १६) २ आना भर २-) १ आना भर १-))॥ भर ॥-)
६२	,, जवाहर मोहरा न० १	राजयक्ष्मा, पुरानी खाँसी, कमजोरी आदि में बहुत फायदेमन्द है ।	१ तोला ३४) २ आना भर ४।-) १ आना भर २≡))॥ पैसा भर १=)
६३	,, ग्लूकोज		१ पौण्ड १।॥=) ४ औंस ॥=) १ औंस ।)
६४	,, मधु मकरध्वज	मधु मकरध्वज जितना पुराना होता है उतना ही ज्यादा गुणकारी होता है ।	७ खुराक १।)
६५	,, अतुल शक्ति-दाता सन्यासी प्रयोग	इसके सेवन से चेहरा लाल हो जाता, वजन बढाता है, कमजोरी और नपुसकता नष्ट होती है ।	१ तोला ८) आधा तोला ४-) चौथाई तोला २-)

वर्तमान मूल्य जानने के लिए वर्तमान सूचीपत्र देखिए ।